संक्षिप्त

कांग्रेस का इतिहास

(१८८५ से १९४७ तक)

डॉ० बी० पट्टाभि सीतारामय्या

१९५८

सस्ता साहित्य-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग

प्रकाशकीय

कई वर्ष पहले 'मडल' ने डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या की सुप्रसिद्ध पुस्तक 'काग्रेस का इतिहास' प्रकाशित की थी। वह तीन जिल्दो मे है और प्रत्येक जिल्द का मूल्य दस रुपया है। यद्यपि वह अपने विषय की एक ही पुस्तक है और काग्रेस तथा आजादी के लिए किये गए सघर्ष की वह विस्तृत जानकारी प्रस्तुत करती है, फिर भी वह आकार मे इतनी बडी है और उसका मूल्य इतना अधिक है कि सामान्य स्थिति के पाठक उसे सहज ही नही खरीद सकते।

इसलिए बहुत दिनो से विचार हो रहा था कि इस विशाल पुस्तक का सक्षिप्त सस्करण निकाला जाय। फलत' कुछ विवरणो को कम करके, पुस्तक का आकार घटाकर, उसे एक जिल्द मे प्रकाशित किया जा रहा है। अब इसका रूप ऐसा और मूल्य इतना हो गया है कि सीमित साधनोंवाले व्यक्ति भी इसे खरीदकर लाभ उठा सकते है। पाठक यह न समझे कि सक्षिप्त करने मे कुछ विशेष घटनाएं छूट गई होगी। नही, ऐसी बात नही है। विवरण कम हुए है, पर महत्व की घटनाएँ न छूटे, ऐसी सावधानी बराबर रक्खी गई है।

पुस्तक की भाषा मे भी यत्र-तत्र थोडा बहुत सुधार कर दिया गया है। इसलिए वह पहले की अपेक्षा अब अधिक प्रवाहपूर्ण बन गई है।

अपने देश को समझने के लिए काग्रेस तथा उसके काम की विस्तृत जानकारी आवश्यक है और इस दृष्टि से इस इतिहास का पहले से भी अधिक महत्व है।

पुस्तक का सक्षिप्तीकरण श्री राजेन्द्रसिह गौड ने किया है। वे बडे अनुभवी व्यक्ति है और उन्होने बड़े परिश्रम से ग्रथ को अच्छी तरह पढ़कर तथा काग्रेस के क्रमिक विकास को समझकर इस जिम्मेदारी-भरे काम को किया है। हम गौड जी तथा अन्य बधुओ के, जिन्होने इस कार्य मे सहायता दी है, आभारी है।

हमे पूर्ण विश्वास है कि यह पहला सस्करण हाथोहाथ निकल जायगा और हमे शीघ्र ही नया सस्करण करना होगा। शिक्षा-सस्थाओ मे इस पुस्तक का उपयोग

पाठ्य पुस्तक के रूप मे किया जा सकता है, और कोई भी ऐसी शिक्षा-सस्था नही रहनी चाहिए, जिसमे इसकी प्रति न हो। कम प्रतियाँ छापी गई है, इसलिए अपनी आवश्यकता की प्रति या प्रतियाँ जल्दी ही प्राप्त कर ले।

पाठको को स्मरण होगा कि पहले तीनो जिल्दो का मूल्य ३०) था। अब केवल ५) रुपया है।

हम यह भी आशा करते है कि अन्य भारतीय भाषाओ मे इसका अनुवाद होगा।

—मत्री

प्रस्तावना

पहले संस्करण से

: १ :

काग्रेस का इतिहास मुख्यत: मानवीय इतिहास है । मानव दो श्रेणियो मे विभाजित किये जाते है। कुछ तो अपने तजरबे से जानकारी हासिल करते है और कुछ ऐसे है जो दूसरो के अनुभव से लाभ उठाते है। निस्सन्देह इस दूसरे प्रकार के लोग अधिक बुद्धिमान होते है और उन्हे मिसाल या चेतावनी के तौर पर सम-सामयिक या चालू जमाने का इतिहास पढने की आवश्यकता होती है। भावी राष्ट्रीयता के लिए समय-समय पर उसकी सफलताओ का लिपिबद्ध होना आवश्यक है जिससे भावी नेता बदले हुए जमाने मे और परिवर्तित स्थिति के अनुसार अपना रास्ता तय कर सके।

ठीक ही कहा गया है कि 'एशिया दुनिया का केन्द्र है।' भौगोलिक दृष्टि से यूरोप उसकी शाखा है, अफ्रीका उप-महाद्वीप है और आस्ट्रेलिया उसका टापू। एशिया एक पुराना महाद्वीप है।

१९ वी सदी की शुरूआत का जमाना ऐसा था जब उपेक्षित भूखण्डो का साबका दुनिया की बड़ी-बडी क़ौमों से पडा। इस सम्बन्ध से एशिया का पुनर्स्थापन हो गया और वह अपने आदर्शो की छाप बाहरी दुनिया पर डालने लगा। टैगोर और गाधी एशिया के बौद्धिक प्रसार की मिसाले है। सिकन्दर महान् का पूर्व और पश्चिम को मिलाने का स्वप्न पुनर्जीवित हो रहा है। एशिया का समन्वय-कारी आदर्श एक ऐसे विकास की ओर ले जा रहा है, जो मुक्ति की दिशा मे है। एशिया महाखण्ड अपने भविष्य मे विश्वास रखता है और उसका यह भी विश्वास है कि वह ससार को एक सन्देश देगा। उसमे आत्म-चेतनता जग रही है, जो चगेज खा की वह यादगार ताजी कर देती हैं जिसने सबसे पहले एशिया की एकता का आन्दोलन चलाया था। उन भावनाओ को जापान मे समुचित उर्वर भूमि मिली। पर सारा एशिया इस बात को महसूस करता है कि कनफ्यूशियस के शब्दों मे हम अभी तक अव्यवस्थित हालत मे जी रहे है, हम उस शाति की मजिल से दूर है, जिससे 'कुछ स्थिरता' मिलती है और वह 'अन्तिम शाति की अवस्था' तो अभी हमारी दृष्टि मे नही आई है।'

---

१. एशिया और अमेरिका, जून १९४४, पृष्ठ २७५।

दुनिया अब जुदा-जुदा कौमो का समूह नही है। राष्ट्रीयता को व्यापक अर्थ मे अन्तर्राष्ट्रीयता के सिद्धात मे बदल देने पर भी उसे उस दूर तक पहुचानेवाले परिवर्तनो का प्रतिनिधित्व पर्याप्त रूप मे नही मिलता, जिसे दूसरे विश्व-व्यापी महायुद्ध ने इसके स्वरूप मे ला दिया है। उसी की बदौलत हिन्दुस्तान के साथ एक स्वतत्र अलग टुकडे के रूप मे वर्ताव नही हुआ। इसी कारण दुनिया मि० विन्स्टन चर्चिल के इस झासे से परितुष्ट नही हुई कि हिन्दुस्तान का मामला तो इग्लैण्ड का अपना है और अटलाटिक का समझौता ब्रिटिश साम्राज्यान्तर्गत देशो पर लागू नही होगा। हिन्दुस्तान अब ब्रिटिश-भवन का महत्वपूर्ण भाग नही रहा। यह बात अब आम तोर पर स्वीकार कर ली गई है कि हिन्दुस्तान ससार के धर्मो का सन्धि-स्थल और विश्व-सस्कृति का एक सस्थल है, पर साथ ही यह देश ससार के ध्यान मे ध्रुव-तारा बन गया है, और ससार की दिलचस्पी का केन्द्र हो गया है। जिस प्रकार भूमण्डल के उस गोलार्द्ध मे अमेरिका है, उसी तरह इस गोलार्द्ध मे यह अटलाटिक और प्रशात महासागर का सन्धि-स्थल है। कन्याकुमारी जाकर आप पवित्र 'केप' के छोर पर खडे होकर समुद्र की ओर मूह कीजिए। आपके दाहिने हाथ अरब सागर होगा जो 'केप आव गुडहोप' (अर्थात् अफ्रीका के दक्षिणी छोर पर स्थित आशा अतरीप) पर जाकर अटलाटिक महासागर से मिलता है, और आपके बाये हाथ की ओर बगाल की खाडी होगी, जो प्रशात महासागर से जा मिलती है। इस तरह हिन्दुस्तान पूर्व और पश्चिम के मिलने का स्थान है, प्रशात-स्थित राष्ट्रो की आजादी की कुजी है और अटलाटिक-स्थित राष्ट्रो की मनमानी पर एक नियत्रण है। हिन्दुस्तान उस चीन के लिए मुख्य द्वार है, जिसकी स्वतत्रता टापू के राष्ट्र जापान द्वारा खतरे मे पड गई थी और उसने वहाँ के ४५ करोड निवासियो की आजादी को सकट मे डालने की कोशिश की थी, पर अब खुद विजेता के गर्वीले चरणो पर गिरा पडा है। जापानी साम्राज्यवाद के भयकर रोग की एक दवा आजाद चीन है। पर गुलाम हिन्दुस्तान आधे-गुलाम चीन के लिए नही लड सकता था या यूरोप को गुलाम नही बना सकता था। ऐसी अवस्था मे हिन्दुस्तान की आजादी नई सामाजिक व्यवस्था का बुनियादी तथ्य कायम करेगी और इस देश के चालू सामूहिक सघर्ष का ध्येय ऐसे ही आजाद हिन्दुस्तान की स्थापना करना है। इस लडाई मे अगर हिन्दुस्तान निष्क्रिय दर्शक की तरह बैठा यह देखता रहता कि यहाँ दूसरे स्वतन्त्र देशो को गुलाम बनाने के वास्ते परिचालित युद्ध मे भाग लेने के लिए भाडे के टट्टू भर्ती किए जा रहे है और भारत की अपनी ही आजादी-जैसी वर्तमान समस्या की उपेक्षा की जा रही है, तो इसका मतलब भावी विश्व-सकट को निमत्रण देना होता, क्योकि बिना आजादी हासिल किये हुए हिन्दुस्तान पर लालच-भरी निगाह रखनेवाले नव-शक्ति-सयुक्त पडोसी या पडोसी के पडोसी की लार टपकती। उस समय भारत की अभिनव राजनीति,

ससार की आर्थिक परिस्थिति और विविध नैतिक पहलुओ के वाहरी दबाव के कारण काग्रेस ने एक योजना की कल्पना की और १९४२ मे सामूहिक अवज्ञा आरम्भ करने का निश्चय किया। इन पृष्ठो मे उस सघर्ष के विभिन्न रूपो और उसके परिणामो का वर्णन है जो वम्वई मे ८ अगस्त १९४२ मे किये गए फैसले को अमल मे लाने के लिए किया गया था। 'भारत छोडो' का नारा इस ऐतिहासिक प्रस्ताव का मूल-विन्दु था जिसके चारो ओर उसी के अनुसरण मे आन्दोलन चलता था। जल्द ही यह लडाई का नारा बन गया जिसमे स्त्री-पुरुष और बच्चे सभी समा गये, शहर, कस्वे और गाव सभी जुट गये, पदाधिकारी से किसान तक सभी सम्मिलित हो गये, व्यापारी और कारखानेदार, परिगणित जातियाँ और आदिम निवासी सभी इस भावना के भवर मे, हगामा और क्राति की लहर मे आ गये। अलग-अलग जमाने मे विभिन्न शताब्दियो मे जुदे-जुदे राष्ट्र ऐसे ही प्रभावो मे बहते रहे है। किसी समय अमेरिका की वारी थी, कभी फ्रास की, किसी दशाब्द मे यूनान की तो कभी जर्मनी की। इन सभी विद्रोहो के कार्य-कारण का तात्विक मूल एक ही था। सरकारो की शरीर-रचना, शासन की अवयव-क्रिया और राजनैतिक जमातो का रोगाणु निदान सभी जमाने मे और सभी मुल्को मे हुआ है।

: २ :

अक्सर दुनिया मे जो लडाइयाँ हुई है उनमे शस्त्रास्त्रो और साज-सरजामो की उत्कृष्टता को ही सवसे ऊचा महत्व प्राप्त हुआ है। एक इतिहासकार ने कहा है कि मैसोडोनिया के भालो की वदौलत यूनान की सस्कृति एशिया मे पहुँची है और स्पेन की तलवार ने रोम को इस योग्य बनाया था कि वह आजकल की दुनिया को अपनी परम्परा प्रदान कर सका है। इसी तरह १९४४ मे जर्मनी के 'उड़ाने-वाले वमो' द्वारा लडाई का पलडा ही पलट जानेवाला था, पर वह व्यर्थ हो गया। तो भी तथ्य यह है कि यूरोप के युद्ध-कौशल के अतिरिक्त युद्ध मे काम देने वाली और और शक्तियां भी होती है जिनका वर्णन वेकन ने इस प्रकार किया है—"शारीरिक वल और मानव-मस्तिष्क का फौलाद, चतुरता, साहस, धृष्टता, दृढ निश्चय, स्वभाव और श्रम।" इस बात के वावजूद कि वेकन एक दार्शनिक और वैज्ञानिक था, वह सामान्य बुद्धि के स्तर से अधिक ऊँचा नही उठ सका और जहाँ वह उठा वहा वह साहस से वढकर और गुणो की कल्पना नही कर सका। हिन्दुस्तान मे हमने सामान्य स्तर से ऊपर उठकर सत्य और अहिसा के लिए कष्ट-सहन करते हुए लडाई जारी रखी है. और इस तरह हम सत्याग्रह की जिस ऊँचाई पर पहुँचे है, उससे निस्सन्देह इतिहास का रूप वदल गया है, और शक्ति और अधिकार, सच और झूठ, हिंसा और अहिसा तथा पशु-वल एवं आत्म-वल के सघर्ष मे विजय की

सम्भावना भी परिवर्तित हो गई है। जिस युद्ध को ससार का दूसरा महायुद्ध कहा जाता है उसका श्रीगणेश किमी ऊँचे सिद्धात को लेकर नही हुआ था और अटलाटिक का समझौता—जो एक साल बाद हुआ था, टीका-टिप्पणी के बाद भी हिन्दुस्तान और जर्मनी के लिए एक जैसा किसी पर भी लागू न होनेवाला होगा। उससे बीसवी सदी के आरम्भिक चालीस वर्षो के युद्ध-नायको का असली रूप प्रकट हो गया। और उस पर भी तुर्रा यह कि यह युद्ध एक सर्वग्राही युद्ध बन गया, जिसने खुले रूप मे एकाधिकार के द्वारा और मनमाने ढग मे—आयोजित रूप मे जनता की सैनिक भर्ती करके युद्ध-सचालन किया और आज दी तथा प्रजातन्त्र की सभी ऊँची बाते हवा, भाप और सुन्दर वाक्यालकार की तरह उड गई। जन कष्ट-ग्रस्तो के दावो पर अपनी नीति की दृष्टि से विचार करने का अवसर आया और चर्चिल की 'अपने पर दृढ रहने' की अस्पष्ट बात को कार्यान्वित करने का मौका आया तो ब्रिटेन और हिन्दुस्तान के नामधारी राजद्रोहियो को दण्ड देने, अपने पसन्द की सन्धि करने, निर्वाचन स्थगित करने और समाचारपत्रो तथा पत्र-व्यवहार तक पर कठोर निरीक्षण—सेसर रखने की नीति बरती गई। यदि युद्ध का यही उद्देश्य था और उसे जीतने के लिए यही ढग थे, तो हिन्दुस्तान को इस बात के लिए बदनाम नही किया जा सकता कि उसने पोलैण्ड, चेकोस्लवाकिया, यूनान और फिनलैण्ड को आजाद कराने के उत्तम कार्य मे उत्साह और उत्तेजना क्यो नही प्रदर्शित की। केवल ब्रिटेन साम्राज्यवादी और अनुदार नही है, बल्कि रूस ने भी वह वैदेशिक नीति ग्रहण करली जो जारशाही के शासन के लिए अधिक उपयुक्त होती और सीधे निकोलस द्वितीय-द्वारा परिचालित होने पर अधिक उपयुक्त प्रतीत होती। पोलैण्ड का उद्धार करने के लिए जो युद्ध सचालित किया गया था उसका नतीजा यह हुआ कि उसके टुकडे हो गये और उसे रूस की निर्दयता-पूर्ण इच्छा पर छोड दिया गया और उन्होने मामले को वही तक नही रखा। रूस ने बसराबिया और बुकोविना, फिनलैण्ड और लटविया तथा इस्टोनिया और लिथुआनिया तक पर आक्रमण किया और डार्डेनिल्स के द्वारा मेडिटरेनियन या मृतक सागर पर भी कब्जा जमाने की माग की। डार्डेनिल्स पर रूस का हाथ होने का मतलब था फारस की मौत। इस युद्ध मे हिन्दुस्तान को, बिना उससे पूछे या जाचे ही ग्रस्त कर लिया गया। यह वह युद्ध था जिसने अपने साथ ब्रिटेन के लिए 'भारत-छोडो' का नारा लगाया और जिसके लिए हिन्दुस्तान को भारी दण्ड भोगना पडा—सैकडो को बेत लगाये गये, हजार से अधिक को गोली से उडा दिया गया, कितने ही हजारो को जेल मे ठूस दिया गया और करीब दो करोड के सामूहिक जुर्माने वसूल किये गये।

यद्यपि इतिहास का विकास सारे ससार मे सामान्य सिद्धातो पर होता है, विशिष्ट राष्ट्रो, देशो और राज्यो के विकास का मार्ग उनकी अपनी विलक्षण स्थिति

मे होता है। खासकर हिन्दुस्तान मे इन स्थितियो का जन्म और विकास विचित्र रूप मे हुआ है। एक ऐसे विस्तृत देश का, जो लम्बाई-चौडाई मे महाद्वीप के समान और जमीन और आकृति मे विभिन्न है, लगभग दो सदी तक पराधीन रहना एक ऐसी बात है जिसका उदाहरण आधुनिक इतिहास मे नही मिल सकता। इसके लिए हमे ससार के इतिहास मे बहुत पीछे तक मुडना पडेगा जब ईसा की आरम्भिक शताब्दियो मे रोम ने एक ऐसे साम्राज्य की स्थापना की थी जिसका विस्तार पश्चिम मे ब्रिटेन से पूर्व मे मिस्र तक था और जो लगभग चार सदियो तक कायम रहा था। किन्तु इस पराधीनता के उदाहरण मे एक जगह सादृश्य समाप्त हो जाता है। जब मुक्ति की प्रक्रिया आरम्भ होती है तो हिन्दुस्तान मे यह पराधीनता एक ऐसा नितात विरोधी रूप धारण कर लेती है जैसा ससार के इतिहास मे कही भी देखने मे नही आता। हिन्दुस्तान मे गत चौथाई सदी से घटनाओ ने जो रूप धारण किया है वह संसार मे अद्वितीय है और सत्य और अहिसा के सिद्धातो का प्रयोग——जिसे सक्षेप मे 'सत्याग्रह' कहते है——ऐसा है जिसकी बहुत-सी मजिले और दर्जे है जिनके द्वारा राष्ट्रीय क्षोभ——असहयोग से करबन्दी तक सविनय अवज्ञा-आदोलन के विभिन्न रूपो द्वारा प्रकाशित किया गया है और युद्ध-काल मे हिन्दुस्तान की यह अस्पृहणीय——अप्रत्याशितता——स्थिति बना दी गई है। काग्रेस की हमेशा यह राय थी कि युद्ध-प्रयत्न मे हिन्दुस्तान का भाग लेना इस बात पर निर्भर करना चाहिये कि वह एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप मे उसमे जुटना अपना कर्त्तव्य समझे। इस तरह की माग लगातार की गई, पर वह फिजूल साबित हुई। सघर्ष का कारण स्पष्ट था। सविनय-अवज्ञा-आदोलन के लिए वातावरण तैयार था, जो देश के लडने और साहसपूर्वक लडने के लिए एकमात्र मार्ग था। जिस प्रकार स्वशासन की योग्यता की कसौटी यह है कि जनता को स्वशासन प्रदान कर दिया जाय, उसी प्रकार सघर्ष के लिए योग्यता की कसौटी यह है कि देश को सघर्ष करने दिया जाय। क्या इग्लैण्ड १ अगस्त १९१७ या ३ सितम्बर १९३९ को लडाई के लिए तैयार था? जनता जब युद्ध मे लग जाती है तो उसे सीख लेती है। हिसा और अहिसा दोनो ही प्रकार की लडाइयो मे यह बात सच है। सवाल सिर्फ उसकी माप-तोल का रह जाता है कि वह व्यक्तिगत हो या सामूहिक। पहले की परीक्षा हो चुकी है और 'क्रिप्स-मिशन' के समय उसका आशिक परिणाम भी देखने मे आया है। दूसरे ने सारी दुनिया को प्रबल वेग से हिला दिया, जिसके फलस्वरूप मार्च १९४६ मे हिन्दुस्तान मे ब्रिटेन से मन्त्रि-मण्डल मिशन' आया।

: ३ :

इस ऐतिहासिक काल का वर्णन इस पुस्तक मे सक्षिप्त रूप मे किया गया है। काग्रेस करीब ३३ महीने जेल मे रही और न केवल बिना किसी प्रकार की हानि

मे पडे, वल्कि इज्जत के साथ वाहर आई। फिर भी इस थोडे मे अन्तर्काल मे कितनी ही घटनाएँ गुजर चुकी। हम एक ऐसे जमाने मे रहते है जब सदियो की तरक्की सघन होकर दशाब्दियो मे और दशाब्दियो की वरसो मे आ जाती है। काग्रेस की गिरफ्तारी से व्यापक हलचल फैल गई। पुरानी और नई दोनो ही दुनिया के लोगो ने पूछा कि क्या हिन्दुस्तान को लडाई मे घसीटने के पहले उससे पूछ लिया गया था, और यह कि क्या ब्रिटिश-सरकार हिन्दुस्तान की जनता के वारे मे जैसी होने का दावा करती है वैसी सचमुच है, और अगर ऐसा है तो फिर हिन्दुस्तानियो ने लडाई मे भाग लेने के विरुद्ध इतना शोर क्यो मचाया? यह प्रश्न भी हुआ कि अगर मुस्लिम लीग और काग्रेस दोनो ही ने युद्ध की कोशिशो मे मदद नही की, तो क्या जो रँगरूट फौज मे भर्ती हुए है वे साम्राज्य के भक्त के रूप मे आये है या इसे खेल समझ कर इसमे साहसी पुरुषो की तरह शामिल हो गये है? अथवा वे लडाई के कठिन दिनो मे गुजारे के लिए पेशेवर सैनिक सिपाही के रूप मे भर्ती हुए है। एक शब्द मे, आजादी के लिए हिन्दुस्तान का मामला इस प्रकार व्यापक रूप मे विज्ञापित हुआ कि दूसरा महायुद्ध शुरु होने के पहले ऐसा कभी नही हुआ था। ब्रिटेन मे जो लोग युद्ध-क्षेत्र मे जाने से रह गये थे उनकी आवाज अभी तक क्षीण तो थी, पर उसमे समानता और न्याय की पुट थी, इसलिए उसमे काफी जोर था। वह युद्ध की घोर ध्वनि और धूलि मे भी सुनाई पडी। धीरे-धीरे यह लडाई सर्वग्राही और सर्वशोषक वन गई।

अमेरिका मे लोग तीन हिस्सो मे वँट गये थे—एक तो राष्ट्रपति रुजवेल्ट के साथ यह विचार रखते थे कि हिन्दुस्तान ब्रिटेन का निजी मामला है, और एक दूसरा छोटा दल इस विचार का था कि हिन्दुस्तान की आजादी जैसी विशाल समस्या पर लडाई के दिनो मे विचार नही हो सकता, उसे लडाई खत्म होने तक रुकना चाहिए। तीसरा और सबसे वडा दल जनता के उन सीधे-सादे लोगो का था जो चाहते थे कि हिन्दुस्तान को इसी वक्त आजादी मिल जानी चाहिए।

जब हिन्दुस्तान ने अमेरिका और चीनी राष्ट्रो से अपील की तो वह इस बात को जानता था कि ब्रिटेन यह दावा करेगा कि हिन्दुस्तान तो उसका घरेलू मामला है और अन्य राष्ट्रो का हिन्दुस्तान या ब्रिटेन के किसी भी उपनिवेश या अधीनस्थ देश से कोई सम्बन्ध नही है। तो भी हिन्दुस्तान और कांग्रेस इस बात से अवगत थे कि ब्रिटेन सभ्य-राष्ट्रो के नक्षत्रमण्डल से अलग कोई चीज नही है और वह अन्य राष्ट्रो के साथ घनिष्ट रूप मे अन्तर्सम्वन्धित है। हिन्दुस्तान अपनी शक्ति और कमजोरी दोनो को जानता है और वह केवल मानवता के नाम पर वाहरी देशो का हस्तक्षेप मात्र नही चाहता। ऐसा होने पर भी तथ्य यह है कि यदि किसी व्यक्ति के साथ उसके ही देश मे वुरा वर्ताव होता है, तो अन्तर्राष्ट्रीय कानून उसका वचाव किसी तरह नहीं कर सकता। तो भी किसी भी देश का अपने देशवासियो

या उसके किसी हिस्से के प्रति दुर्व्यवहार कभी-कभी इतना घोर होता है (जैसा कि बेलजियन कांगो के मूल निवासियो के साथ हुआ है या टर्की-साम्राज्य-द्वारा आर्मेनियन ईसाइयो के प्रति किया गया) कि ऐसी हालत मे दुनिया का लोकमत उससे प्रज्वलित हो उठता है। सामान्य मानवता की भावना दूसरे राष्ट्रो को प्रेरित करती है कि वह ऐसे अत्याचारो का विरोध करे।

इसलिए अगर हिन्दुस्तान दमन का हाथ रोकने मे सफल नही हुआ तो उसके शारीरिक कष्टसहन और त्याग उस पूर्ण नैतिक समर्थन-द्वारा अपनी क्षतिपूर्ति कर चुके जो सघर्ष मे उसने औरो से प्राप्त किया है, क्योकि सत्य और अहिसा के ऊँचे मापदण्ड की दृष्टि से देखते हुए उसका आजादी का ध्येय ऐसा ऊँचा है कि वह हिमालय की ऊँचाई से बजता हुआ प्रतिध्वनित होता है, और काबुल के सघन देश मे होते हुए मक्का मुअज्जन, मदीना मुनव्वर, फिलस्तीन के सीनाई पर्वत और एशिया माइनर के पामीर तक उसकी आवाज पहुँचती है। यही नही, आल्प्स के द्वारा वह पच्छिम की ओर और एपीनाइन, पाइरेनीस और एलबियन की चाल की शृगमाला तक जा पहुँचती है। इसी प्रकार उसकी गूज काकेशिया और यूराल तक भी पहुँचती है और कितने ही दुर्लध्य पहाडियो को पार करती हुई नई दुनिया मे पहुच जाती है। हिन्दुस्तान अच्छी तरह जानता है और पहले से जानता आया है कि उसके उद्देश्य की सफलता उसके हाथो मे है और 'देशी तलवार' और देशी हाथों-द्वारा' ही उसका उद्धार होगा; पर उसने बायरन का युद्ध-कृपाण गाधीजी की शाति-पूर्ण सहारे की लाठी से बदल लिया है। हिन्दुस्तान ने युद्ध के लिए नये शस्त्र का प्रयोग कर इतिहास बनाने की कोशिश की है और खून के प्यासे योद्धाओ के रक्त-मास प्रदर्शन को बदलकर उसे ऊँचाई पर पहुँचा दिया है, जहाँ मानवीय विवेक दैवी आत्मा बन जाता है। बीसवी सदी ने एक नया ही ध्येय प्राप्त कर लिया और पा लिया है, एक नया झण्डा और नया नेता और इन पृष्ठो मे भारत की आजादी के पवित्र ध्येय के प्रति ससार की प्रतिक्रिया का वर्णन किया गया है। उसकी आजादी के राष्ट्रध्वज के परिवर्तन और स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए भारत के राष्ट्रव्यापी सघर्ष का नेतृत्व करने वाले महात्मा गाधी के महान् उपदेश और उनकी योजना का भी इसमे समावेश है।

—राजेन्द्र प्रसाद

लेखक की ओर से

मुझे हर्ष है कि 'काग्रेस का इतिहास' का यह सक्षिप्त सस्करण पाठको के हाथो मे पहुच रहा है। बडा संस्करण हिन्दी मे तीन भागो मे प्रकाशित हुआ था। वह बहुत वृहद था और उसका मूल्य भी इतना था कि सामान्य पाठक उसे नही खरीद सकते थे। इस सस्करण मे विस्तार कम कर दिया गया है, लेकिन उसकी प्रमुख घटनाओ को ज्यों-का-त्यो रक्खा है। आकार घट जाने से मूल्य मे भी काफी कमी हो गई है। मुझे आशा है कि अब अधिक-से-अधिक पाठक इससे लाभ उठा सकेंगे।

पाठक जानते हैं कि कोई उद्देश्य निश्चित करके मैंने इस पुस्तक की तैयारी का भार नही उठाया था। १९३५ की ग्रीष्म-ऋतु मे बेकारी के समय कलम-घिसाई करते-करते यह ग्रंथ अपने-आप तैयार हो गया। बात यह हुई कि काग्रेस के मत्री महोदय ने किसी दूसरे मामले मे मुझसे यो ही एक बात पूछी। उसी सिलसिले मे मत्री महोदय द्वारा काग्रेस के अध्यक्ष को, जो उस समय राष्ट्रपति कहलाते थे, इस छोटी-सी कृति की सूचना मिल गई। उन्होने यह मामला कार्य-समिति मे पेश कर दिया, और कार्य-समिति ने कृपा-पूर्वक काग्रेस की स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर इस पुस्तक के प्रकाशन का भार उठा लिया।

१९४२ से १९४५ तक जेल की जिन्दगी मे मुझे काफी फुरसत मिली, जिससे मैं यह लम्बा इतिहास लिख सका। अवकाश मिलना लिखने की दृष्टि से सुविधा की वात होती है, पर चालू जमाने का इतिहास लिखना कोई सुविधाजनक बात नही होती। सबसे पहली बात तो इसमे अनुपात समझने की होती है। जो ऐति-हासिक वर्णन किसी जमाने मे काफी महत्व के होते है,वे भी यकायक अपनी अहमियत और विश्वस्तता खो बैठते हैं। इसीलिए जो इतिहासकार अपने लिखे हुए को छाती से लगाये रहता है, वह अपनी इतिहासकारिता का उपहास कराता है। इस सचाई को ध्यान मे रखते हुए जितनी सामग्री वृहद ग्रथ मे प्रकाशित हुई उससे दुगनी बडी कठोरता से और कुछ खेद के साथ अस्वीकार कर देनी पडी, यहाँ तक कि पोथी भारी न होने देने के लिए अनेक महत्वपूर्ण विवरण छोड देने पडे। भिन्न-भिन्न अधिवेशनो के निश्चय क्रमश. उद्धृत नही किये गए। लेकिन फिर भी पुस्तक आशातीत रूप मे वडी हो गई। पुस्तक मे दोष भी वहुत रह गये। फिर भी मै जो कुछ कर सकता था, उसे मैंने किया। काग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष ने पुस्तक को

दो बार पढा। इस प्रकार उन्हे पुनरावलोकन और सशोधन-कार्य मे बडा परिश्रम करना पडा। काग्रेस के तत्कालीन प्रधान मत्री आचार्य कृपलानी ने भी इस पर विशेष परिश्रम किया। इन तथा अन्य मित्रो को, जिन्होने इस जिम्मेदारी के काम मे मेरी मदद की, मै धन्यवाद देता हूँ। लिखना आसान है—जिस तरह भवन-निर्माण सरल है, पर उसे साफ-सुथरे रूप मे पेश करने मे बडे ध्यान और शक्ति की जरूरत होती है।

इस पुस्तक मे सन १९४७ के वाद की घटनाओ का समावेश नही किया गया है। सन् ४७ मे देश स्वतत्र हो गया। तब से देश के शासन की वागडोर एक पार्टी के हाथ मे आ गई। स्वभावत यह पार्टी काग्रेस थी। इसका परिणाम यह हुआ कि अब देश का दैनिक शासन और काग्रेस की दैनिक गति-विधियाँ न केवल एकाकार हो गई है, अपितु वह एक-दूसरे से सबद्ध एव अन्योन्याश्रित भी हो गई है। इसलिए स्वाधीनता के आगमन के वाद से इतिहास की शृखला को जारी रखने का दायित्व उन लोगो पर है, जो शासन-सचालन से निकट सबध रखते है। इसके लिए आवश्यक है कि इस कार्य मे वे काग्रेस के उन नेताओ का भी सहयोग प्राप्त करे, जिन्होने मौजूदा इतिहास को सर्वागीण रूप से प्रभावित किया है।

१५ अगस्त १९४७ एक तरह से गगा और यमुना के सगम का प्रतीक है, जिसके वाद दोनो नदियाँ मिलकर बहती है। इस तिथि के वाद देश के विभिन्न क्षेत्रो मे जो काम हुआ है, उसे सब जानते है।

मुझे आशा है कि इस सक्षिप्त सस्करण का उसी प्रकार स्वागत होगा, जिस प्रकार वडे सस्करण का हुआ था।

—बी० पट्टाभि सीतारमाय्या

हैदराबाद
२२ अप्रैल, १९५८

विषय-सूची

संक्षिप्त

कांग्रेस का इतिहास

संक्षिप्त संस्करण

कांग्रेस का इतिहास

: १ :

कांग्रेस का जन्म : १८८५

कांग्रेस का इतिहास हिन्दुस्तान की आजादी की लडाई का इतिहास है। कई सदियो से भारतीय राष्ट्र विदेशियो का गुलाम बना हुआ था। उन दिनो वह जिस गुलामी मे फसा हुआ था उसका आरम्भ भारतवर्ष मे एक व्यापारी कम्पनी के पदार्पण करने के साथ हुआ था और उस गुलामी से देश को मुक्त करने के लिए पिछले ५० वर्षो मे कांग्रेस ने पूर्ण प्रयत्न किया था।

१८५७ से पहले की स्थिति

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का व्यापारिक और राजनैतिक दौरदौरा भारत मे कोई सौ वर्षो तक रहा। इसी बीच उसने भारत के बडे-बड़े भागो पर अपना कब्जा कर लिया और व्यापारी की जगह वह एक राज-शक्ति बन गई। १७७२ के बाद ब्रिटिश पार्लमेण्ट समय-समय पर उसके कामो की जाच-पडताल करने लगी और उसको नया अधिकार-पत्र दिया जाने लगा। नया अधिकार-पत्र देने के पहले जब-जब जाच-पडताल की गई, तब-तब उसके फलस्वरूप दूरगामी परिणाम लानेवाले कुछ-न-कुछ सिद्धान्तो का निरूपण तो अवश्य किया जाता था, परन्तु वे सिर्फ कागज पर ही लिखे रह जाते थे। कई बार यह नीति निश्चित की गई कि कम्पनी के एजेण्ट अपने-अपने इलाको की सीमा वढाने की कोशिश न करे, परन्तु हर बार कोई-न-कोई ऐसा मौका निकाल लिया जाता था जिससे इस आदेश का पालन न होता था और उनके इलाके की सीमा बढती ही चली जाती थी। इस प्रकार उन्होने अपने छल-कपट से अटूट धन-सम्पत्ति प्राप्त कर ली थी, जिसने आगे चलकर उनके लिए एक वडी पूजी का काम दिया और जिसके वल पर इग्लैण्ड स्टीम-एजिन चलाने तथा १९ वी सदी मे दुनिया मे अपना औद्योगिक प्रभुत्व स्थापित करने मे सफल हो सका।

१७७४ मे रेग्युलेटिग एक्ट पास हुआ और कम्पनी के कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स (सचालक-सभा) के ऊपर वोर्ड ऑफ कण्ट्रोल (नियामक मण्डल) और कौसिल सहित एक गवर्नर जनरल की नियुक्ति हुई। तव गोया ब्रिटिश पार्लमेण्ट ने पहले-पहल भारतीय क्षेत्रो के शासन की कुछ जिम्मेदारी अपने ऊपर ली। धीरे-धीरे यह नियन्त्रण बढता गया और १७८५ मे एक दूसरा कानून पास हुआ। १७९३, १८१३, १८३३ और १८५३ मे जाच करने के वाद नये चार्ट दिए गये। १८३३ मे एक नया कानून बनाया गया। इस कानून के द्वारा कम्पनी का भारत में व्यापार करने का अधिकार उठा दिया गया और इसके वाद से वह एक पूरी शासक-सत्ता के रूप मे सामने आ गई।

इसी समय भारत मे अग्रेजी शिक्षा का प्रवेश करने या न करने के विषय मे एक चर्चा उठ खडी हुई। भारतीयो में राजा राममोहन राय और अग्रेजो मे मेकाले अग्रेजी शिक्षा देने के जबर्दस्त समर्थक थे। अन्त मे भारतीय भाषाओ और उनके साहित्य के स्थान पर अग्रेजी भाषा के पक्ष मे निर्णय हुआ और उस शिक्षा-पद्धति की नीव पडी जो भारत मे आजतक प्रचलित है।

उन दिनो अग्रेजो-द्वारा चलाये समाचार-पत्रो के अतिरिक्त देशी समाचार-पत्र न थे। इनमे भी वाज-वाज पत्रकारो को देश-निकाला तक भुगतना पड़ा था। गवर्नर जनरल लॉर्ड विलियम वेण्टिक की नीति समाचार-पत्रो के प्रति नरम थी। उनके उत्तराधिकारी सर चार्ल्स मेटकॉफ ने भी समाचार-पत्रो पर से पावन्दिया उठा ली थी। फिर, १८५७ के पश्चात् लॉर्ड लिटन के वाइसराय होने तक समाचार-पत्र इसी खतरे मे रहे।

१८३३ और ५३ के वीच पजाव और सिंध जीत लिए गये। लॉर्ड डलहौजी की नीति ने कम्पनी का इलाका वहुत वढा दिया। लॉर्ड डलहौजी ने कई लावारिस राजाओ की रियासते भी जब्त कर ली। इसके सिवा आर्थिक शोपण भी जारी था, जिससे लोग कगाल होते जा रहे थे। यह वात लोगो को चुभ रही थी और वे मन-ही-मन कुढ रहे थे। नतीजा यह हुआ कि १८५७ मे उन्होने विदेशी शासन के जुए को फेक देने का आखिरी सशस्त्र प्रयत्न किया। इससे यह प्रतीत होता है कि यह आन्दोलन १७५७ के पलासी-युद्ध के वाद सौ वर्षो तक भारत मे जो कुछ घटनाए घटती रही, उनके परिणाम का द्योतक था। यही नही, वल्कि वह प्रत्येक देश और जाति के मानव-हृदय की इस प्राकृतिक अभिलाषा को भी सूचित करता था कि हम अपने ही लोगो-द्वारा शासित हो, दूसरो-द्वारा हर्गिज नही। इसमे सन्देह नही कि आन्दोलन बेकार गया, परन्तु उसके साथ ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी भी तिरोहित हो गई और भारत सरकार का शासन-सूत्र सीधा ब्रिटिश पार्लमेंट के हाथो में आगया। इस अवसर पर महारानी विक्टोरिया ने एक घोषणा प्रकाशित

की, जिनसे शांति और विश्वास का वातावरण पैदा हुआ और लोग यह समझने लग गये कि भारत में अंग्रेजी राज्य ईश्वर की एक देन है।

अशान्ति और मि० ह्यूम की चिन्ता

ब्रिटिश पार्लमेंट के हाथ में शासन-सूत्र चले जाने के बाद भी भारत-सरकार की गति-विधि पहले ही की तरह जारी रही। १८३३ के कानून के अनुसार, भारतवासी उन तमाम जगहो पर लेने के योग्य करार दिए गये जिनके लिए वे उपयुक्त समझे जाते थे। १८५३ मे, जब चार्टर विचाराधीन था, पार्लमेंट मे यह बात गई आम कही जाती थी कि १८३३ के कानून ने यद्यपि भारतवासियो को नौकरिया देने का रास्ता खोल दिया है, फिर भी उनको अभी तक वे जगहें नही दी गई हैं जो उस कानून के पहले उन्हें दी जा सकती थी। जब १८५३ मे सिविल सर्विस के लिए प्रतिस्पर्द्धा परीक्षा जारी की गई थी तब इस बात की ओर ध्यान दिलाया गया था कि इससे भारतीयो के रास्ते मे बडी रुकावटे पेश आएगी, क्योकि उनके लिए इंग्लैंड जाकर अंग्रेज लडको के साथ अंग्रेजी भाषा और साहित्य की परीक्षाओ मे बाजी मार ले जाना असंभव होगा और वह भी उन नौकरियो के लिए जो आम तौर पर बहुत दुर्लभ थी। परन्तु इस बाधा के रहते हुए भी कुछ भारतीय समुद्र पार गये और उन्होंने सफलता प्राप्त की। इसी बीच लॉर्ड सेल्सबरी ने परीक्षा मे बैठने की उम्र कम कर दी। इससे भारतीयो को लेने के देने पड गये। क्योकि इधर वह अंग्रेजो की सहायता से भारत और इंग्लैंड के साथ-साथ परीक्षा ली जाने

मे कोई क्रान्तिकारी विस्फोट होने ही वाला था कि मि० ह्यूम को ठीक मौके पर सूझी और उन्होने इस काम मे हाथ डाला।"

मि० ह्यूम के पास राजनैतिक अशान्ति का अकाट्य प्रमाण था। उनके हाथ ऐसी रिपोर्टो की ७ जिल्दे लगी थी, जिनमे भिन्न-भिन्न जिलो के अन्दर बगावत के भाव फैलने का वर्णन था। ये रिपोर्टे जिला, तहसील और सब-डिवीजन के अनुसार तैयार की गई थी और शहर, कस्बे और गाव भी उनमे शामिल थे। इसका यह अर्थ नही कि कोई सुसगठित विद्रोह जल्दी होनेवाला था, बल्कि यह कि लोगो मे निराशा छाई हुई थी, वे कुछ-न-कुछ कर गुजरना चाहते थे।

कांग्रेस का जन्म

उक्त परिस्थियो पर विचार करने के पश्चात् ह्यूम साहब ने इस अशान्ति को प्रकट करने का एक सरल उपाय ढूढ़ निकाला। उनके दिमाग मे यह ख्याल आया कि भारतीयो की एक राष्ट्रीय सभा कायम की जाय। इस विचार से उन्होने १ मार्च १८८३ ई० को कलकत्ता-विश्वविद्यालय के ग्रेजुएटो के नाम एक ऐसा पत्र लिखा, जो अत्यन्त मार्मिक था। उसमे उन्होने ५० ऐसे आदमियो की माग की जो भले, सच्चे, नि स्वार्थ, आत्म-सयमी तथा नैतिक साहस रखनेवाले और दूसरो का हित करने की तीव्र भावना रखनेवाले हो। उनका अनुमान था कि यदि सिर्फ ५० भले और सच्चे आदमी सस्थापक के रूप मे मिल जाय तो सभा स्थापित हो सकती है और आगे का काम आसान हो सकता है। इन लोगो के आदर्श के सबध मे उनका विचार था कि सभा का विधान जनसत्तात्मक हो, सभा के लोग व्यक्तिगत महत्वाकाक्षा से परे हो और उनका यह सिद्धान्त हो, कि जो सबसे बडा हो वही सेवक हो। अपने पत्र मे उन्होने गोल-मोल बाते नही की; बल्कि साफ शब्दो मे कह दिया कि यदि आप अपना सुख-चैन नही छोड सकते तो कम-से-कम फिलहाल हमारी प्रगति की सारी आशा व्यर्थ है और यह कहना होग। कि भारत सचमुच वर्तमान सरकार से बेहतर शासन न तो चाहता है और न उसके योग्य ही है। इस स्मरणीय पत्र का अन्तिम भाग इस प्रकार था—

"जो मनुष्य होते है वे जानते है कि काम कैसे करना चाहिये, इसलिए अब से आप इस बात की शिकायत न कीजिएगा कि बडे-बडे ओहदो पर आपकी बनिस्बत अग्रेजो को क्यो तरजीह दी जाती है, क्योकि आप मे वह सार्वजनिक सेवा का भाव नही है, वह उच्च प्रकार की परोपकार-भावना नही है, जो सार्वजनिक हित के सामने व्यक्तिगत ऐशोआराम को छोटा बना देती है, वह देशभक्ति का भाव नही है जिसने अग्रेजो को वैसा बना दिया है जैसे कि वे आज है। और मै कहूगा कि वे ठीक ही आपकी जगह तरजीह पाते है और उनका लाजिमी तौर पर आपका शासक बन जाना भी ठीक है, बल्कि वे आगे भी आपके अफसर बने

रहेंगे, और आपके कन्धो पर रक्खा यह जुआ तबतक दुखदायी होगा जबतक कि आप इस चिर-सत्य को अनुभव नही कर लेते और इसके अनुसार चलने की तैयारी नही कर लेते कि आत्म-बलिदान और नि स्वार्थ सेवा ही सुख और स्वातन्त्र्य के अचूक पथ-प्रदर्शक है ।"

पूर्व-प्रयत्न और संस्थाएँ

काग्रेस के जन्म से संबध रखनेवाली ब्योरेवार बातो का वर्णन करने के पहले यदि हम काग्रेस-काल के पहले के उन सस्थाओ का नाम-स्मरण कर ले तो अनुचित नही होगा, जिनके क्रिया-कलाप ने एक तरह से देश मे सार्वजनिक जीवन की बुनियाद डाली है। सबसे पहले बगाल के **ब्रिटिश इण्डियन एसोशियेशन** का नाम आता है। १८५१ मे उसकी स्थापना की गई थी और यह वह सस्था थी जिसके नाम की छाया मे डा० राजेन्द्रलाल मित्र और रामगोपाल घोप जैसे व्यक्ति बीसो साल तक काम करते रहे थे। यह एसोशियेशन खुद भी कोई पचास साल तक देश मे एक सजीव शक्ति बना रहा। इसके पश्चात् बम्बई मे सार्वजनिक कार्य की सस्था **बाम्बे एसोशियेशन** थी। बगाल के एसोशियेशन के मुकाबिले मे उसने थोड़े समय तक ही जोर-शोर से कार्य किया। उसके नेता सर मंगलदास नाथूभाई और श्री नौरोजी फरूदजी थे। दादा भाई नौरोजी और जगन्नाथ शकर शेठ ने उसकी स्थापना की थी; परन्तु बाद मे **ईस्ट इण्डिया एसोशियेशन** ने उसका स्थान ग्रहण कर लिया था। मद्रास मे सार्वजनिक सेवा की वास्तविक शुरुआत **हिन्दू** के द्वारा हुई, जिसके सस्थापको मे एम० वीर राघवाचार्य, माननीय रगैया नायडू, जी० सुब्रह्मण्य ऐयर और एन० सुब्बाराव पन्तुलु जैसे गण्य-मान पुरुष थे। महाराष्ट्र मे पूना की सार्वजनिक सभा का जन्म प्राय उसी समय हुआ जब कि **हिन्दू** का हुआ था और उसके द्वारा रायबहादुर नुकलर और श्री चिपलूणकर जैसे प्रसिद्ध पुरुष सार्वजनिक कार्य करते थे।

बगाल मे, १८७६ मे **इण्डियन एसोशियेशन** की स्थापना हुई, जिसके जीवन-प्राण सुरेन्द्र नाथ बनर्जी थे और जिसके पहले मत्री थे आनन्दमोहन बसु। यह ध्यान मे रखना होगा कि इस काग्रेस-पूर्व-काल मे भी यद्यपि सार्वजनिक जीवन सुसंगठित नही हो पाया था तथापि उसका असर अधिकारियो पर होने लगा था। समाचार-पत्र उस जीवन का एक प्रभावशाली अग था। १८५७ मे लग-भग ४७५ समाचार-पत्र थे, जिनमे से ३धिकाश प्रान्तीय भाषाओ मे निकलते थे। इन्ही दिनो देश के सुदैव से सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने सिविल सर्विस से मुक्त होकर उत्तरी भारत के पजाब और उत्तर प्रदेश मे राजनैतिक यात्रा की। वह १८७७ के प्रसिद्ध दिल्ली-दरबार मे भी सम्मिलित हुए थे और वहा देश के राजा-महाराजाओ और अग्रगण्य लोगों से मिले थे। यह माना जाता है कि उसी

दरबार मे देश के राजा-महाराजाओ और गण्य-मान्य लोगो को एक जगह एकत्र देखकर ही पहले-पहल सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के मन मे यह प्रेरणा उठी थी कि एक देश-व्यापी राजनैतिक सगठन बनाया जाय। १८७८ मे सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने बम्बई और मद्रास प्रान्त की यात्रा की जिसका उद्देश्य यह था कि लॉर्ड सेल्सबरी ने सिविल सर्विस की परीक्षा की उम्र घटाकर जो १६ साल कर दी थी, उसके खिलाफ लोकमत जाग्रत किया जाय और इस विषय पर कामन-सभा मे पेश करने के लिए सारे देश की तरफ से एक मेमोरियल तैयार किया जाय।

इसी समय लार्ड लिटन के प्रतिगामी शासन का बीजारोपण हुआ। उनके जमाने मे (१८७८) वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट बना, अफगान-युद्ध हुआ, बडा खर्चीला दरबार किया गया और १८७७ मे ही कपास-आयात-कर उठा दिया गया। लार्ड लिटन के बाद लार्ड रिपन का समय आया। उन्होने अफगानिस्तान के अमीर के साथ सुलह की, वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट को रद्द किया, स्थानीय स्वराज्य का आरभ किया और इलबर्ट बिल उपस्थित करके एक नये युग का श्रीगणेश किया। यह आखिरी बिल भारत सरकार के तत्कालीन लॉ मेम्बर मि० इलबर्ट ने १८८३ मे उपस्थित किया था। इसका उद्देश्य यह था कि हिन्दुस्तानी मजिस्ट्रेटो पर से वह रुकावट उठा ली जाय जिसके द्वारा वे यूरोपियन और अमेरिकन अपराधियो के मुकदमे फैसल नही कर सकते थे। इस पर गोरे लोग इतने बिगडे कि कुछ लोगो ने तो गवर्नमेंट हाउस के मत्रियो को मिलाकर वाइसराय को जहाज-द्वारा इग्लैड भेजने की एक साजिश ही कर डाली। नतीजा यह हुआ कि असली बिल उसी साल करीब-करीब हटा लिया गया और उसकी जगह यह सिद्धान्त भर मान लिया गया कि सिर्फ जिला-मजिस्ट्रेट और दौरा जज को ही ऐसा अधिकार रहेगा। इस बिल के सबध मे गोरे लोगो को जो सफलता मिल गई उससे भारतीय जाग उठे। उन्होने शीघ्र ही इस बिल के विरोध का आन्तरिक हेतु पहचान लिया। गोरे यह मनवाना चाहते थे कि भारत पर गोरी जातियो का प्रभुत्व है और वह सदा रहेगा। उनके इस विचार ने भारत के तत्कालीन देश-सेवको को सगठन के महत्व का पाठ पढाया और उन्होने तुरन्त ही १८८३ मे कलकत्ता के अलबर्ट-हाल मे एक राजनैतिक परिषद् की आयोजना की, जिसमे सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और आनन्दमोहन वसु दोनो उपस्थित थे। इस सभा मे सुरेद्रनाथ बनर्जी ने अपने भाषण मे खासतौर पर इस बात का जिक्र किया कि किस तरह दिल्ली दरबार ने उनके सामने एक राजनैतिक सस्था, जो भारत के हित-साधन में तत्पर रहे, बनाने का नमूना पेश किया था। इसके दूसरे ही वर्ष कलकत्ते मे अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् हुई जिससे अखिल भारतीय काग्रेस स्थापित करने की प्रेरणा मिली। १८८१ मे **मद्रास-महाजन सभा** की स्थापना हुई और मद्रास प्रातीय परिषद् का अधिवेशन हुआ। पश्चिमी भारत मे ३१ जनवरी, १८८५

को महता, तैलंग और तैयबजी की मशहूर मण्डली ने मिलकर **बाम्बे प्रेसीडेंसी एसोसियेशन** कायम किया।

पूर्वोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि भारतवर्ष मन-ही-मन किसी अखिल-भारतीय सगठन की आवश्यकता का अनुभव कर रहा था। यह तो अभी तक एक रहस्य ही है कि अखिल-भारतीय काग्रेस की कल्पना वास्तव मे किसके मस्तिष्क से निकली? १८७७ के दरबार या कलकत्ते की अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी के अतिरिक्त **थियोसोफिकल कनवेन्शन** का भी नाम इस विषय मे लिया जाता है जो दिसम्बर १८८४ मे मद्रास मे हुआ था। वहा १७ आदमियो की एक खानगी सभा हुई जिसमें यह बात सोची गई। मि० एलेन ऑक्टेवियन ह्यूम ने सिविल सर्विस से अवसर प्राप्त करने के बाद जो **इण्डियन यूनियन** कायम की थी, वह भी काग्रेस के जन्म का एक निमित्त बतलाई जाती है। जो भी हो, मि० ए० ओ० ह्यूम ने इसमे सबसे पहले कदम बढाया और २३ मार्च १८८५ मे इसके सम्बन्ध मे पहला नोटिस जारी किया, जिसमे बताया गया कि अगले दिसम्बर मे, पूना मे इण्डियन नेशनल यूनियन का पहला अधिवेशन किया जायगा। इस तरह अब तक जो एक अस्पष्ट कल्पना वातावरण मे पख फटफटा रही थी और जो उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम, सभी जगह के विचारशील भारतवासियो के विचारो को गति दे रही थी उसने अब एक निश्चित रूप धारण कर लिया और वह एक व्यावहारिक कार्यक्रम के रूप मे देश के सामने आ गया।

कांग्रेस का प्रारंभिक लक्ष्य

काग्रेस के जन्म के कारणो मे केवल उक्त राजनैतिक शक्तियाँ और राजनैतिक गुलामी का भाव ही नही था। इसमे कोई शक नही कि काग्रेस का एक राजनैतिक उद्देश्य था, परन्तु साथ ही वह राष्ट्रीय पुनरुत्थान के आन्दोलन का प्रतिपादन करनेवाली सस्था भी थी। काग्रेस के जन्म से पहले, ५० या इससे भी ज्यादा वर्षो से, भारत मे राष्ट्रीय नवयौवन का खमीर उठ रहा था। सच पूछिए तो राष्ट्रीय जीवन राजा राममोहन राय के समय से विविध रूपो मे परिपक्व हो रहा था। राजा राममोहन राय को हम एक तरह से भारत की राष्ट्रीयता का पैगम्बर और आधुनिक भारत का पिता कह सकते है। उनका जन्म १७७६ मे हुआ और मृत्यु ब्रिस्टल मे १८३३ मे हुई। भारत के दो बडे सुधारो के साथ उनका नाम जुडा है—एक तो सती या सहगमन-प्रथा का मिटाया जाना और दूसरा भारत मे पश्चिमी-शिक्षा का प्रचार। लार्ड विलियम वेण्टिक ने, १८३५ मे पश्चिमी शिक्षा-प्रचार के पक्ष मे जो निर्णय कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स की सिफारिश के खिलाफ दिया था उसका बहुत बडा कारण यह था कि राजा राममोहन राय खुद पश्चिमी शिक्षा के अनुरागी और पक्षपाती थे। अपने जीवन के अन्तिम

समय मे वह इंग्लैड गये थे। उनमे स्वाधीनता-प्रेम इतना प्रवल था कि जब वह 'केप ऑफ गुड होप' पहुँचे तव उन्होने फ्रासीसी जहाज पर जाने का आग्रह किया जिस पर स्वाधीनता का झण्डा फहरा रहा था। वह चाहते थे कि उस झण्डे का अभिवादन करे और ज्यो ही उन्हे उस झडे के दर्शन हुए, उनके मुह से झडे की जय-ध्वनि निकल पडी। यद्यपि वह इग्लैण्ड मे मुख्यत मुगल-सम्राट् के राज-दूत बन कर लन्दन मे उनका काम करने गये थे, तो भी उन्होने कामन-सभा की समिति के सामने भारतवासियो के कुछ जरूरी कष्ट भी पेश किये थे। १८३२ मे जब चार्टर एक्ट पार्लमेट मे पेश था तब उन्होने यह प्रण किया था कि यदि यह बिल पास न हुआ तो मै ब्रिटिश प्रदेश मे रहना छोड दूगा और अमरीका जाकर बस जाऊगा। अपने समय मे ही उन्होने अखबारो पर और छापेखानो पर हुआ बहुत बुरा दमन देख लिया था और सुप्रीम कोर्ट मे इसका घोर विरोध किया था। उन्होने दो वकील अपनी ओर से उसमे खडे किए थे और जब वहा उन्हे कामयाबी नही हुई तव उन्होने इग्लैण्ड के बादशाह के नाम एक सार्वजनिक दरखास्त भेजी थी। इसमे शक नही उस समय उससे भी कुछ मतलब न निकला, लेकिन जो बीज वह बो चुके थे उसका फल १८३५ मे निकला, जब सर० चार्ल्स मेट्कॉफ ने हिन्दुस्तानी पत्रो को आजाद कर दिया।

प्रथम राष्ट्रीय क्रान्ति के बाद १८५८ म, विश्वविद्यालय कायम हुए और १८६१ से १८६३ तक हाईकोर्ट और कौसिले भारत मे बनाई गई। इसके कुछ पहले ही विधवा-विवाह कानून बना था। यह समाज-सुधार की दिशा मे एक कदम था। इसके बाद १८६० से १८७० तक पश्चिमी शिक्षा और साहित्य का सम्पर्क बढता गया। पश्चिमी कानून-सस्थाएँ और पार्लमेटरी तरीके दाखिल हुए जिससे कानून और कौसिलो के क्षेत्र मे एक नये युग का जन्म हुआ। राजा राममोहन राय के समय मे धार्मिक सुधार के जो बीज बोये गये थे वे थोडे ही समय मे अपनी शाखा-प्रशाखाएँ फैलाने लगे। उनके बाद केशवचन्द्र सेन पर उनके काम की जिम्मेदारी आ पडी। उन्होने दूर-दूर तक ब्रह्म-समाज के सिद्धान्तो का प्रचार किया और उसके मतो पर नवीन प्रकाश डाला। उन्होने मद्यपान-निषेध के आन्दोलन को हाथ मे लिया। १८७२ के 'ब्रह्म मैरेज एक्ट-३' को पास कराने मे उनका बहुत हाथ था। इस कानून के द्वारा बाल-विवाह मिट गया, बहु-विवाह को अपराध करार दिया गया और विधवा-विवाह तथा अन्तर्जातीय विवाह की छूट मिल गई। परन्तु कुछ ही समय मे ब्रह्म समाज मे मत-भेद फैल गया। इसका मुख्य कारण था केशवचन्द्र सेन की कन्या का बाल्यावस्था मे कूचविहार के महाराज के साथ विवाह। इसपर उनके साथियो ने बहुत विरोध किया, जिसका फल यह हुआ कि आनन्दमोहन वसु के नेतृत्व मे 'साधारण ब्रह्म समाज' के नाम से ब्रह्म-समाज की एक नई शाखा बन गई।

यहा यह याद रखना चाहिए कि यही आनन्दमोहन वसु आगे चलकर १८९८ मे कांग्रेस के सभापति हुए थे।

बंगाल के ब्रह्म-समाज का प्रभाव सारे भारत पर पडा। पूना मे प्रार्थना-समाज के नाम से महादेव गोविन्द रानडे के नेतृत्व मे यह आन्दोलन शुरू हुआ। यही रानडे समाज-सुधार आन्दोलन के जनक थे, जो वर्षो तक कांग्रेस का एक अग बनकर चलता रहा। इस सुधार-आन्दोलन मे भूतकाल के प्रति एक प्रकार की श्रद्धा और प्राचीन परम्पराओ और विषयो के प्रति बगावत के भाव भरे हुए थे और इसका कारण था पश्चिमी संस्थाओ का जादू एवं उनके साथ चिपकी हुई राजनैतिक प्रतिष्ठा। इसकी प्रतिक्रिया के रूप मे उत्तर-पश्चिम मे आर्य-समाज और मद्रास मे थियोसोफिकल आन्दोलनो ने अपने धर्म, आदर्श और संस्कृति से दूर ले जानेवाली पश्चिमी-शिक्षा-द्वारा उत्पन्न प्रभाव को दवा दिया। यो तो ये दोनो आन्दोलन उत्कट रूप मे राष्ट्रीय थे, फिर भी आर्य-समाज मे देशभक्ति के भाव बहुत प्रवल थे। आर्य-समाज वेदो की अपौरुषेयता और वैदिक-संस्कृति की श्रेष्ठता का जवरदस्त हामी होते हुए भी उदार सामाजिक सुधार का विरोधी न था। इस प्रकार राष्ट्र मे एक तेजस्वी मनुष्यत्व का विकास हुआ, जो हमारी पूर्व परम्परा और आधुनिक वातावरण दोनो के श्रेष्ठत्व का सामंजस्य था। जिस तरह ब्रह्म-समाज ने वहुदेववाद, मूर्ति-पूजा और वहु-विवाह के विरुद्ध लडाई लडी, उसी तरह आर्य-समाज ने भी हिन्दू-समाज की कुछ प्रचलित वुराइयो और हिन्दुओ के धार्मिक अन्धविश्वासो से लडाई ठानी। यहा भी, जैसा कि भय था, आर्य-समाज मे दो दल खडे हुए—एक गुरुकुल-पन्थी और दूसरा कालेज-पन्थी। गुरुकुल-पन्थी ब्रह्मचर्य और धार्मिक सेवा के वैदिक आदर्शो को मानते थे, और कालेज-पंथी आधुनिक ढंग की शिक्षा-संस्थाओ-द्वारा एक हद तक पश्चिमी सभ्यता का संचार करके समाज मे नवजीवन डालना चाहते थे। एक के प्रवर्त्तक थे अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी, और दूसरे के थे देश-वीर लाला लाजपतराय। थियोसोफिकल आन्दोलन मे यद्यपि विश्वव्यापी सहानुभूति और अध्ययन की विशेषता थी तो भी पूर्वीय संस्कृति मे जो कुछ महान् और गौरव-मय है उसके आविष्करण और पुनरुज्जीवन पर उसमे खास जोर दिया जाता था। इसी प्रवल भावना को लेकर श्रीमती वेसण्ट ने भारत के पुण्यधाम काशी मे एक कालेज शुरू किया। इस तरह थियोसोफिकल प्रवृत्तियो के द्वारा एक ओर जहा विश्वबन्धुत्व की भावना बढने लगी वहा दूसरी ओर पश्चिम के वुद्धिवाद की श्रेष्ठता का दौर-दौरा कम हुआ और उसकी जगह संस्कृति का एक नया केन्द्र स्थापित हुआ जहां फिर से इस प्राचीन भूमि मे पश्चिमी

विवेकानन्द उनके पट्ट-शिष्य थे, जिन्होने उनके उपदेशो का प्रचार पूर्व और पश्चिम दोनो जगह किया। रामकृष्ण-मिशन न तो कोरे योग-साधको की और न केवल भौतिक-वादियो की सस्था है, बल्कि एक ऐसा आध्यात्मिक आदर्श रखनेवाली सस्था है जो लोक-सग्रह या समाज-सेवा के महान् कर्त्तव्य की उपेक्षा नही करती। उसने ससार के विभिन्न राष्ट्रो के सामने उपस्थित सामाजिक और राजनैतिक प्रश्नो को सुलझाने के लिए कुजी का भी काम दिया है। ये तमाम हलचले, सच पूछिये तो भारत की राष्ट्रीयता के इस धागे मे लगे भिन्न-भिन्न सूतो के समान है। भारत का यह कर्त्तव्य था कि इनमे एकसा सामजस्य पैदा करे जिससे पूर्व-दूषित विचार और अन्ध-विश्वास दूर होकर प्राचीन वेदान्त-मत की सशुद्धि हो, वह नवीन तेज से लहलहा उठे और नवीन युग के राष्ट्र-धर्म से उसका मेल बैठ सके। काग्रेस का जन्म इसी महान् कार्य की पूर्त्ति के लिए हुआ था।

भारत और इंग्लैण्ड में प्रचार

उक्त परिस्थितियो मे ही काग्रेस की स्थापना हुई। आरंभ मे मि० ह्यूम का यह विचार था कि कलकत्ते के इण्डियन एसोसियेशन, बम्बई के प्रेसीडेन्सी एसो-सियेशन और मद्रास की महाजन-सभा जैसी प्रातीय सस्थाएँ राजनैतिक प्रश्नो को हाथ मे ले और आल इण्डिया नेशनल यूनियन बहुत-कुछ सामाजिक प्रश्नो में ही हाथ डाले। उन्होने लार्ड डफरिन से इस विषय मे सलाह ली, जो कि हाल ही मे वाइसराय बनकर आये थे। वह १८५८ मे लार्ड डफरिन से शिमला मे मिले और उनसे सभापति होने की प्रार्थना की। लार्ड डफरिन ने उनकी बातो को ध्यान से सुना। उन्होने मि० ह्यूम से कहा कि मेरी समझ मे यह तजवीज, उपयोगी न होगी, क्योकि इस देश मे ऐसा कोई सार्वजनिक मण्डल नही है जो इग्लैण्ड की तरह यहा सरकार के विरोध का काम करे। इसलिए ऐसी दशा मे यह अच्छा होगा और इसमे शासक और शासित दोनो का हित है कि यहा के राजनीतिज्ञ प्रति वर्ष अपना सम्मेलन किया करे और सरकार को बताया करें कि शासन मे क्या-क्या त्रुटिया है और उसमे क्या-क्या सुधार किये जाय। उन्होने यह भी कहा कि ऐसे सम्मेलन का सभापति स्थानीय गवर्नर न होना चाहिए, क्योकि उसके सामने सम्भव है, लोग अपने सही विचार प्रकट न करे। मि० ह्यूम को लार्ड डफरिन की यह दलील जची और जब उन्होने कलकत्ता, बम्बई, मद्रास और दूसरी जगहो के राजनीतिज्ञो के सामने उसे रक्खा तब उन्होने भी लार्ड डफरिन की सलाह को एक स्वर से पसन्द कर लिया तथा उसके अनुसार कार्रवाई भी शुरू कर दी। लार्ड डफरिन ने मि० ह्यूम से यह शर्त करा ली थी कि जबतक मै इस देश मे हूँ तबतक इस सलाह के बारे मे मेरा नाम कही न लिया जाय। मि० ह्यूम ने इसका पूरी तरह पालन भी किया।

मार्च १८८५ मे यह तय हुआ कि वडे दिनो की छुट्टियो मे देश के सब भागो के प्रतिनिधियो की एक सभा की जाय। पूना इसके लिए सबसे उपयुक्त जगह समझी गयी। इस बैठक के लिए एक गश्ती पत्र जारी किया गया जिसमे कहा गया कि २५ से ३१ दिसम्वर, १८८५ तक पूना मे इण्डिन नेशनल यूनियन की एक परिपद् की जायगी। इसमे बगाल, बम्वई और मद्रास प्रदेशो के अंगरेजीदा प्रतिनिधि, अर्थात् राजनीतिज्ञ सम्मिलित होगे। इस परिषद के प्रत्यक्ष उद्देश्य होगे (१) राष्ट्र की प्रगति के कार्य मे जी-जान से लगे हुए लोगो का एक-दूसरे से परिचय हो जाना और (२) इस वर्ष कौन-कौन से राजनैतिक कार्य अङ्गीकार किये जाय इसकी चर्चा करके निर्णय करना। अप्रत्यक्ष-रूप से यह परिषद् एक देशी पार्लमेंट का वीज-रूप बनेगी और यदि इसका कार्य सुचारु-रूप से चलता रहा तो थोडे ही दिनो मे इस आक्षेप का मुहतोड जवाव होगा कि हिन्दुस्तान प्रतिनिधि-शासन-सस्थाओ के विल्कुल अयोग्य है।

इस तरह अपने को वाइसराय के आशीर्वाद से सुरक्षित करके ह्यूम साहब इङ्गलैण्ड पहुचे और उन्होने वहा लार्ड रिपन, लार्ड डलहौजी, सर जेम्स कअर्ड, जॉन वाइट, मि० रीड, मि० स्लैग और दूसरे प्रसिद्ध पुरुषो से विचार-विनिमय किया। उनकी सलाह से उन्होने वहा एक सगठन किया जो आगे चलकर इग्लैण्ड मे इण्डियन पार्लमेंटरी कमेटी के रूप मे परिणत हो गया। इसका उद्देश्य था पार्लमेण्ट के उम्मीदवारो से यह प्रतिज्ञा करवाना कि वे भारत के मामलो मे दिलचस्पी लेगे। उन्होने वहा एक इण्डियन टेलीग्राफ यूनियन भी वनाई। इसका उद्देश्य था इग्लैण्ड के प्रधान-प्रधान प्रान्तीय पत्रो को महत्वपूर्ण विषयो पर तार भेजने के लिए धन सग्रह करना।

कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन : १८८५

काग्रेस के प्रथम अधिवेशन का अत्यन्त रोचक वर्णन श्रीमती वेसेण्ट ने अपनी 'हाऊ इण्डिया रॉट फॉर फ्रीडम' नामक पुस्तक मे किया है। वह लिखती है :—"लेकिन पहला अधिवेशन पूना मे नहीं हूआ, क्योकि वडे दिन के पहले ही वहा हैजा शुरू हो गया और यह ठीक समझा गया कि परिपद्, जिसे अव कागेस कहते है, वम्वई मे की जाय। गोकुलदास तेजपाल सस्कृत कालेज और छात्रालय के व्यवस्थापको ने अपने विशाल भवन काग्रेस के हवाले कर दिये और २७ दिसम्वर की सुवह तक भारतीय राष्ट्र के प्रतिनिधियो का स्वागत करने की पूरी तैयारी हो गई। २८ दिसम्वर, १८८५ को दिन के १२ वजे गोकुलदास तेजपाल सस्कृत कालेज के भवन मे काग्रेस का पहला अधिवेशन हुआ। पहली आवाज सुनाई पडी ह्यूम साहव की, माननीय एस० सुब्रह्मण्य ऐयर की और माननीय काशीनाथ त्र्यम्बक तैलग की। ह्यूम साहव ने श्री उमेश बनर्जी के सभापतित्व

का प्रस्ताव उपस्थित किया और शेष दोनो सज्जनो ने उसका समर्थन और अनुमोदन किया। वह एक अत्यन्त गम्भीर और ऐतिहासिक क्षण था, जिसमे मातृभूमि-द्वारा सम्मानित अनेक व्यक्तियो मे से एक व्यक्ति ने प्रथम राष्ट्रीय महासभा के अध्यक्ष का स्थान ग्रहण किया था। काग्रेस की गुरुता की ओर प्रतिनिधियो का ध्यान दिलाते हुए अध्यक्ष महोदय ने काग्रेस का उद्देश्य इस तरह वतलाया —

(क) साम्राज्य के भिन्न-भिन्न भागो मे देश-हित के लिए लगन से काम करनेवालो की आपस मे घनिष्ठता और मित्रता बढाना।

(ख) समस्त देश-प्रेमियो के हृदय से प्रत्यक्ष मैत्री-व्यवहार द्वारा वश, धर्म और प्रान्त सम्बन्धी सम्पूर्ण पूर्व-दूषित सस्कारो को मिटाना और राष्ट्रीय ऐक्य की समस्त भावनाओ का पोषण और परिवर्धन करना।

(ग) महत्वपूर्ण और आवश्यक सामाजिक प्रश्नो पर भारत के शिक्षित लोगो मे अच्छी तरह चर्चा होने के बाद परिपक्व सम्मतिया प्राप्त हो उनका प्रामाणिक सग्रह करना।

(घ) उन तरीको और दिशाओ का निर्णय करना जिनके द्वारा भारत के राजनीतिज्ञ देशहित के कार्य करे।

इस प्रथम अधिवेशन मे नौ प्रस्ताव पास हुए, जिनके द्वारा भारत की मागो के वनने की शुरूआत हुई। पहले प्रस्ताव-द्वारा भारत के शासन-कार्य की जाच के लिए एक रायल-कमीशन वैठाने की माग की गई। दूसरे के द्वारा इण्डिया कौन्सिल को तोड देने की राय दी गई। तीसरे प्रस्ताव-द्वारा धारा-सभा की त्रुटिया दिखाई गई, जिनमे अवतक नामजद सदस्य थे और उनके बजाय चुने हुए रखने की, प्रश्न पूछने का अधिकार देने की, उत्तर प्रदेश और पजाब मे कौसिल कायम की जाने की और कामन-सभा मे स्थायी समिति कायम करने की माग की गई—इस आशय से कि कौसिलो मे वहुमत से जो विरोध हो उनपर उसमे विचार किया जाय। चौथे प्रस्ताव द्वारा यह प्रार्थना की गई कि आई० सी० एस० की परीक्षा इग्लैण्ड और भारत मे एकसाथ हो और परीक्षार्थियो की उम्र वढा दी जाय। पाचवा और छठा फौजी खर्च से सम्बन्ध रखता था और सातवे मे अपर वर्मा को मिला लेने तथा भारत मे उसे सम्मिलित कर लेने की तजवीज का विरोध किया गया था। आठवे प्रस्ताव द्वारा यह आदेश दिया गया कि ये प्रस्ताव राजनैतिक सभाओ को भेज दिये जाय। तदनुसार सारे दश मे तमाम राजनैतिक मण्डलो और सार्वजनिक सभाओ द्वारा उनपर चर्चा की गई और कुछ मामूली सशोधन के वाद वे वडे उत्साह से पास किये गये। अतिम प्रस्ताव मे अगले अधिवेशन का स्थान कलकत्ता तय हुआ और ता०. २८ दिसम्वर नियत हुई।

कांग्रेस का दावा

जिस प्रकार एक वडी नदी का मूल एक छोटे-से सोते मे होता है उसी प्रकार महान् सस्थाओ का आरभ भी वहुत मामूली होता है। जीवन की शुरुआत मे वे वडी तेजी से दौडती है, परन्तु ज्यो-ज्यो वे व्यापक होती जाती है, त्यो-त्यो उनकी गति मन्द किन्तु स्थिर होती जाती है। ज्यो-ज्यो वे आगे वढती है, त्यो-त्यो उनमे सहायक नदिया मिलती जाती है और वे उसको अधिकाधिक सम्पन्न वनाती जाती है। यही उदाहरण हमारी काग्रेस के विकास पर भी लागू होता है। उसे अपना रास्ता वडी-वडी वाधाओ से तय करना था, इसलिए आरम्भ मे उसने अपने सामने छोटे-छोटे आदर्श रक्खे, परन्तु ज्यो ही उसे समस्त भारतवासियो के हार्दिक प्रेम का सहारा मिला, उसने अपना मार्ग विस्तृत कर दिया और अपने उदर मे देश की अनेक सामाजिक-नैतिक हलचलो का भी समावेश कर लिया। प्रारम्भिक अवस्थाओ मे उसके कार्यो मे एक किस्म की हिचकिचाहट और शकाएँ-कुशकाये दिखाई देती थी, परन्तु जैसे-जैसे वह वालिग होती गई, वैसे-वैसे उसे अपने वल और क्षमता का ज्ञान होता गया और उसकी दृष्टि व्यापक वनती गई। अनुनय-विनय की नीति को छोड़कर उसने आत्मतेज और आत्मावलम्वन की नीति ग्रहण की। इधर लोक-मत को शिक्षित करने के लिए जोर-शोर से प्रचार-कार्य होने लगे, जिससे देशव्यापी सगठन वन गया—यहा तक कि सीधे हमले तक का कार्य-क्रम वनाना पडा। शिकायतो और अपने दु ख-दर्दो को दूर कराने के उद्देश्य से शुरुआत करके काग्रेस देश की एक ऐसी मान्य संस्था के रूप मे परिणत हो गई जो वडे स्वाभिमान के साथ अपनी माग भी पेश करने लगी। शीघ्र ही वह भारतवासियो की तमाम राजनैतिक महत्वाकाक्षाओ की एक जवरदस्त और सत्तापूर्ण प्रतिपादक वन गई। उसका दरवाजा सव श्रेणियो और सव जातियो के लोगो के लिए खोल दिया गया। यद्यपि आरम्भ मे वह उन प्रश्नो को हाथ मे लेती हुई सकोच करती थी जो सामाजिक कहे जाते थे, तथापि उचित समय आते ही उसने इस वात को मानने से इन्कार कर दिया कि जीवन अलग-अलग टुकडो मे बटा हुआ है और इस प्राचीन परम्परागत विचार के आगे जाकर, जो जीवन के प्रश्नो को सामाजिक और राजनैतिक सीमाओ मे वाध देता है, उसने एक ऐसा सर्वव्यापी आदर्श अपने सामने प्रस्तुत किया, जिसमे कि सारा जीवन, यहा से वहा तक, एक और अविभाज्य है। इस तरह काग्रेस एक ऐसी राजनैतिक सस्था हो गई जिसमे

दी थी उसमे उन्होने काग्रेस के वारे मे ऐसा ही दावा किया था। उन्होने कहा था —

"यदि मै गलती नही करता हूँ तो काग्रेस भारतवर्ष की सवसे वडी सस्था है। उसकी अवस्था लगभग ५० वर्ष की है, और इस अर्से मे वह विना किसी रुकावट के वरावर अपने वार्षिक अधिवेशन करती रही है। सच्चे अर्थो मे वह राष्ट्रीय है। वह किसी खास जाति, वर्ग या किसी विशेष हित की प्रतिनिधि नही है। वह सर्वमान्य भारतीय हितो और सब वर्गो की प्रतिनिधि होने का दावा करती है। मेरे लिए यह बताना सवसे वडी खुशी की बात हे कि उसकी उपज आरम्भ में एक अग्रेज मस्तिष्क मे हुई। एलेन ओक्टेवियन ह्यूम को काग्रेस के पिता के रूप मे हम जानते है। दो महान पारसियो—फिरोजशाह मेहता और दादाभाई नौरोजी—ने जिन्हे सारा भारत 'वृद्ध पितामह' कहने मे प्रसन्नता का अनुभव करता है, उसका पोषण किया है। आरम्भ से ही काग्रेस मे मुसलमान, ईसाई, गोरे आदि शामिल थे, वल्कि मुझे यो कहना चाहिये कि उसमे सब धर्म, सम्प्रदाय और हितो का थोडी-वहुत पूर्णता के साथ प्रतिनिधित्व होता है। मै जानता हू कि कभी-कभी वह अपने इस दावे को कायम रखने मे असफल भी हुई है, किन्तु मै यह कहने का साहस करता हूँ कि यदि आप काग्रेस का इतिहास देखे तो आपको मालूम होगा कि असफल होने की अपेक्षा वह सफल ही अधिक हुई है और प्रगति के साथ सफल हुई है। सवसे अधिक काग्रेस मूलरूप मे अपने देश के एक कोने से दूसरे कोने तक ७,००,००० गावो मे बिखरे हुए करोडो मूक, अर्द्ध-नग्न और भूखे प्राणियो की प्रतिनिधि है, यह वात गौण है कि वे लोग ब्रिटिश भारत के नाम से पुकारे जानेवाले प्रदेश के हैं अथवा देशी राज्यो के। इसलिए काग्रेस के मत से प्रत्येक हित जो रक्षा के योग्य है, इन लाखो मूक-प्राणियो के हित का माधन होना चाहिए। हा, आप समय-समय पर इन विभिन्न हितो मे प्रत्यक्ष विरोध देखते है। परन्तु यदि वस्तुत- कोई वास्तविक विरोध हो तो काग्रेस की ओर से बिना किसी सकोच के यह वता देना चाहता हू कि इन लाखो मूक-प्राणियो के हित के लिए काग्रेस प्रत्येक हित का वलिदान कर देगी। इसलिए वह आवश्यक-रूप से किसानो की संस्था है और वह अधिकाधिक उनकी बनती जा रही है। आपको, और कदाचित इस समिति के भारतीय सदस्यो को भी, यह जान कर आश्चर्य होगा कि काग्रेस ने आज 'अखिल भारतीय चरखा सघ' नामक अपनी सस्था द्वारा करीब दो हजार गावो की लगभग ५० हजार स्त्रियो को रोजगार मे लगा रखा है, ओर इनमे सम्भवत ५० प्रतिशत मुसलमान स्त्रियाँ है। इनमे हजारो अछूत कहानेवाली जातियो की भी हैं। इस तरह हम इस रचनात्मक कार्य के रूप मे इन गावो मे प्रवेश कर चुके हैं और ७,००,००० गावो में से प्रत्येक गाव मे, प्रवेश करने का यत्न किया जा रहा है। यह काम यद्यपि मनुष्य की शक्ति के बाहर का हे, फिर

भी यदि मनुष्य के प्रयत्न से हो सकता है, तो आप कांग्रेस को इन सब गांवो में फैली हुई और उन्हे चरखे का सन्देश सुनाती हुई देखेंगे।"

: २ :

कांग्रेस के हितैषी और कर्णधार

कांग्रेस का क्रम-बद्ध इतिहास प्रस्तुत करने के पहले हम यहाँ कुछ ऐसे देशी और विदेशी व्यक्तियो की चर्चा करना उपयुक्त समझते है जिन्होंने समय-समय पर कांग्रेस की सहायता की है। सबसे पहले अंग्रेज हितैषियो को लीजिए ––

अंग्रेज-हितैषी

जॉन ब्राइट और फॉसेट साहब––ह्यूम साहब से पहले पार्लमेण्ट के कई सदस्य भारतीय प्रश्नो मे दिलचस्पी लेने लगे थे। पिछली शताब्दी के पचास से सत्तर वर्ष के बीच जॉन ब्राइट साहब ने भारत का खूब पक्ष-समर्थन किया था। उन्होंने १८४७ मे पार्लमेण्ट में प्रवेश किया। उस समय से १८८० तक इस देश के भाग्य मे बहुत उतार-चढाव आये, पर ब्राइट साहब का भारत-प्रेम बराबर बना रहा। उनके बाद फॉसेट साहब की बारी आई। वह १८६५ मे पार्लमेण्ट के सदस्य हुए और १८६८ मे ही उन्होंने प्रस्ताव किया कि भारत की बड़ी-बडी नौकरियो की परीक्षा केवल विलायत मे न होकर भारत और इग्लैंड दोनो में साथ-साथ हो। १८७५ मे इग्लैण्ड मे भारतवर्ष के खर्च से तुर्की के सुलतान के लिए लॉर्ड सेल्सबरी ने जो नाच करवाया था उसकी फॉसेट साहब ने निन्दा की थी। उन्ही के विरोध से अबीसीनिया की लडाई का सारा खर्च भारत के मत्थे न मढा जाकर आधा इग्लैण्ड पर पडा। ड्यूक ऑफ एडिनबरा ने भारतीय नरेशो को जो उपहार दिये थे उनका मूल्य भारतीय कोष से दिये जाने का भी उन्होंने विरोध किया था। इसी प्रकार ब्रिटिश-युवराज की भारत-यात्रा के खर्च के ४,५०,०००) के भार से भी उन्होंने हमारे देश को बचाया था। लॉर्ड लिटन ने कपडे का आयात-कर बन्द कर दिया, दिल्ली में दरबार किया और अफगान-युद्ध मोल ले लिया। इन करतूतो का भी फॉसेट साहब ने विरोध किया था। कृतज्ञ भारत ने भी इन उपकारो का बदला उन्हें तुरन्त दिया। १८७२ मे कलकत्ते की जनता ने उन्हे मान-पत्र दिया और जब १८७४ में फॉसेट साहब पार्लमेण्ट के चुनाव मे हार गये तब आगामी चुनाव के लिए सहायतार्थ उन्हें १०,०००) से अधिक की थैली भेंट की थी।

ह्यूम साहब---ह्यूम साहब ने पार्लमेण्ट की भारत-समिति और कांग्रेस के सगठन मे जो भाग लिया उसका उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है। परन्तु इस स्कॉचमैन ने साठ वर्ष से भी अधिक सरकारी और गैर-सरकारी हैसियत से भारत की भलाई के लिए जो परिश्रम किया उसका हाल जरा विस्तार से जानना हमारा कर्तव्य है। वह भारत की सिविल सर्विस मे अनेक पदो पर रह चुके थे। जब वह जिला-मजिस्ट्रेट थे तब उन्होने साधारण जनता मे शिक्षा-प्रसार, पुलिस-सुधार, मदिरा-निषेध, देशी-भाषाओ के समाचार-पत्रो की उन्नति, बाल-अपराधियो के सुधार एव अन्य घरेलू आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए परिश्रम किया था। उन्हे यदि किसी बात मे रस था तो गाव और खेती मे। उन्हे किसी बात की चिन्ता थी तो जनता की। उन्होने घोषित किया था कि सरकार तलवार के जोर से अपनी सत्ता भले ही कायम कर ले, किन्तु स्वतन्त्र और सभ्य सरकार की पायदारी और स्थायित्व तो इसी मे है कि प्रजा के ज्ञान की वृद्धि की जाय और उसमे सरकार की अच्छाइयो की कदर करने की नैतिक और बौद्धिक योग्यता पैदा की जाय। इस रुख का उत्तर सरकार ने २८ जनवरी, १८५९ के अपने एक गश्ती-पत्र मे ह्यूम साहब को दिया। इस पत्र मे कहा गया था कि शिक्षा-प्रसार के लिए भारतीयो से काम न लिया जाय और कलेक्टर साहब लोगो को पाठशालाओ मे अपने बालको को भेजने की या पाठशालाओ की सहायता करने की प्रेरणा न करे। ह्यूम साहब ने इसका जिस प्रकार विरोध किया वह भी मार्के की बात थी। ह्यूम साहब का दूसरा प्रिय विषय था पुलिस का सुधार। उनकी योजना यह थी कि पुलिस और न्याय-विभाग को बिलकुल अलग-अलग कर दिया जाय। आबकारी के बारे मे भी उनके उग्र विचार थे। १८५९ के अन्त में ह्यूम साहब की सहायता से "पीपुल्स-फ्रेण्ड" (लोक-मित्र) नामक भारतीय पत्र निकाला गया। इसकी छ सौ प्रतिया उत्तर प्रदेश की सरकार खरीदती थी। वाइसराय ने भी इस पत्र को पसन्द किया था। इसका अनुवाद कराकर भारत-मन्त्री द्वारा महारानी विक्टोरिया के पास भेजा जाता था। १८६३ मे ही ह्यूम साहब ने जोर दिया कि बाल-अपराधियो के सुधार-गृह बनाये जाय। चुङ्गी की अफसरी मे उन्होने मुख्य कार्य यह किया कि चुङ्गी की लम्बी-चौडी रुकावटो को धीरे-धीरे दूर करवा दिया। १८७९ मे ह्यूम साहब ने कृषि-सुधार की एक योजना तैयार की। लॉर्ड मेयो की उसके प्रति सहानुभूति भी थी, परन्तु वह योजना यो ही गई। मुकदमेबाजी के बारे मे उनकी राय यह थी कि देहाती इलाको मे किसानो को महाजनो की गुलामी मे जकडने की सीधी जिम्मेदारी दीवानी अदालतो पर है। उन्होने सिफारिश की कि ग्रामवासियो के कर्ज के मुकदमे जल्दी-से-जल्दी और जहा-के-तहा निपटाने चाहिए, उनका अन्तिम निर्णय चुने हुए ईमानदार और समझदार भारतीयो-द्वारा होना चाहिए, उन्हे न्यायाधीश बनाकर गाव-गाव भेजना चाहिए और वे लोग सब प्रकार के लेनदेन के मुकदमे गाव

के बड़े-बूढ़ों की सहायता से तय कर दिया करें। १८७९ में इसी ढंग की एक योजना दक्षिण की कष्ट-पीडित प्रजा की भलाई के लिए बनाई गई थी; परन्तु बम्बई-सरकार ने उसे अस्वीकार कर दिया।

१८७० से १८७९ तक ह्यूम साहब भारत-सरकार के मन्त्री रहे; परन्तु उन्हे वहा से इसी अपराध पर निकाल दिया गया कि वह बहुत ज्यादा ईमानदार और स्वतन्त्र प्रकृति के थे। इसकी भारतीय समाचार-पत्रो ने एक स्वर से निन्दा की, परन्तु कुछ सुनवाई नही हुई। लॉर्ड लिटन ने ह्यूम साहब को लैफ्टिनेण्ट गवर्नर बनाने का प्रस्ताव किया। ह्यूम साहब को यह स्वीकार न हुआ। दूसरा प्रस्ताव यह था कि उन्हे होम-मेम्बर (गृह-सचिव) बना दिया जाय। यह बात इंग्लैंड के प्रधान मन्त्री लॉर्ड सेल्सबरी को पसन्द नही आई। ह्यूम साहब ने १८८२ मे नौकरी से अवकाश प्राप्त किया। उन्होने लगभग तीन लाख रुपया पक्षियो के अजायबघर पर और लगभग ६० हजार रुपया 'भारत के शिकारी पक्षी' नामक ग्रथ की तैयारी में खर्च किया था।

सर विलियम वेडरबर्न—सर विलियम वेडरबर्न की सेवाएँ तो इतनी प्रख्यात है कि उनका वर्णन करने की भी जरूरत नही है। ब्रिटिश काग्रेस-कमेटी को चलाने मे वर्षो तक उन्ही का मुख्य हाथ रहा। काग्रेस इसके लिए दस हजार से पचास हजार तक वार्षिक खर्च करती थी। वेडरबर्न साहब बम्बई मे १८७९ मे, और इलाहाबाद मे १९१० मे, इस प्रकार राष्ट्रीय महासभा के दो अधिवेशनो के सभापति हुए। जार्ज यूल साहब इलाहाबाद के १८८८ वाले काग्रेस के चौथे अधिवेशन के सभापति हुए। इसके बाद तो हर साल पार्लमेंट के सदस्य भारत-यात्रा करने और काग्रेस के अधिवेशनो पर उपस्थित रहने लगे।

रैमजे मैक्डॉनल्ड और चार्ल्स ब्रैडला—रैमजे मैक्डॉनल्ड साहब १९११ मे काग्रेस अधिवेशन का सभापति-पद भी सुशोभित करते, परन्तु उनकी पत्नी का देहात हो जाने से उन्हे वापस लौट जाना पडा। केअर हार्डी, होलफोर्ज, नाइट, मैक्स्टन, कर्नल वैजवुड, वेनस्पूर, चार्ल्स रॉबर्टस्टन और पैथिक लारेंस आदि कामन-सभा के कुछ अन्य सदस्य भी भारतवर्ष मे आकर और काग्रेस अधिवेशनो मे उपस्थित रहकर भारत की समस्याओ का अध्ययन कर गये। परन्तु १८८९ ई० मे चार्लस ब्रैडला साहब का जो स्वागत किया गया वह शान-शौकत में तो राजाओ से कम नही था। ब्रैडला साहब ने १८८९ में कौंसिलो के सुधार के लिए एक कानून का मसविदा (बिल) बनाया और उसे लोकमत-संग्रह के लिए प्रचारित किया। इस मसविदे मे काग्रेस के तत्कालीन विचारो का समावेश था। काग्रेस ने भी ब्रैडला साहब की इच्छानुसार सूचनाएं पेश की जिनसे भारतीय जनता का गम्भीर मत प्रदर्शित होता था। आगे चलकर यह मसविदा वापस ले लिया गया, परन्तु पार्लमेंट में ब्रैडला साहब की स्थिति

इतनी मजबूत थी कि लॉर्ड क्रॉस का पहला मसविदा भी ब्रैडला साहब के विरोध के कारण वापस लेना पडा। उनका दूसरा मसविदा भी तब मजूर हुआ जब उसमे प्रस्तावित सुधारो की पहली किश्त के साथ, अप्रत्यक्ष ही सही, कौसिलो मे निर्वाचन का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया।

ग्लैडस्टन और लार्ड नॉर्थब्रुक—विलियम राबर्ट ग्लैडस्टन का नाम भी कम प्रेम के साथ नही लिया जा सकता। भारत मे ग्लैडस्टन साहब बडे लोकप्रिय हो गये थे। इसका असली कारण था उनकी कांग्रेस-आन्दोलन के साथ प्रत्यक्ष सहमति। उन्होने १८८८ मे कहा था—"इस महान राष्ट्र की उठती हुई आकाक्षाओ के प्रति तिरस्कार या उपेक्षा का व्यवहार करने से हमारा काम नही चलेगा।" लगातार कई वर्ष तक ग्लैडस्टन साहब की वर्षगाठ पर कांग्रेस की ओर से बधाई के प्रस्ताव होते रहे। उनकी ८२वी जयती को कांग्रेस ने विधिपूर्वक मनाया। लॉर्ड नॉर्थब्रुक के प्रति भी कांग्रेस ने १८९३ के अपने नवे अधिवेशन मे कृतज्ञता प्रकट की। उन्होने पार्लमेट मे इस बात पर जोर दिया था कि भारत के खजाने से 'होम चार्जेज' के नाम पर जो विशाल-धन-राशि खीची जाती है उसकी मात्रा कम की जाय।

लार्ड स्टैनले, जनरलबूथ और हेनरी काटन—ऐसे ही हितैषियो मे एक थे एल्डले के लार्ड स्टैनले। उन्होने अपने जीवन का उत्तम भाग भारत मे ही व्यतीत किया था और भारत के अभ्युत्थान के लिए परिश्रम किया था। १८९४ मे उन्होने भारत-मत्री की कौसिल के उठा दिये जाने का प्रस्ताव पेश करते हुए कहा था—"यदि भारत-मत्री पर कौसिल का नियन्त्रण रहे तो भारत-मत्री का पद उठा दो। यदि कौसिल पर भारत-मन्त्री का नियन्त्रण रहे तो कौसिल को मिटा दो। यह द्विविध-शासन व्यर्थ है, भयावह है, अपव्यय है और बाधक है।" उन्होने भारत-मन्त्री और उसकी कौसिल की व्यापारिक अयोग्यता के प्रमाण भी दिये थे। जनरल बूथ भी हमारे हितैषी थे। उन्होने १८९१ की नागपुर कांग्रेस मे एक योजना भेजी थी कि हजारो निर्धन और अपग लोगो को देश की बजर भूमि पर किस प्रकार बसाया जा सकता है। उन्हे तार द्वारा उचित उत्तर दिया गया था। यहाँ सर हेनरी कॉटन और उनकी अमर सेवाओ का उल्लेख किये बिना भी नही रहा जा सकता। कॉटन-परिवार का भारतवर्ष से पुराना सबध था। ज्यो ही आसाम के इन चीफ कमिश्नर साहब ने पेंशन ली त्योही कांग्रेस ने अपने १९०४ वाले बम्बई के अधिवेशन का सभापति-पद ग्रहण करने के लिए उन्हे आमन्त्रित किया। उन्होने पहले-पहल भारत के सयुक्त राज्य की कल्पना की थी।

भारतीय कर्णधार

दादा भाई नौरोजी—कांग्रेस के बडे-बूढो की सूची मे सबसे पहला नाम दादा

भाई नौरोजी का आता है, जो काग्रेस के आरंभ से अपने जीवन-पर्यन्त काग्रेस की सेवा करते रहे। १८८६, १८९३ और १९०६ मे तीन वार वह काग्रेस के सभापति हुए और बराबर काग्रेस के साथ रहते हुए इगलैंड और हिन्दुस्तान मे उन्होंने काग्रेस के झंडे को ऊँचा रखा। ब्रिटिश-राज्य की न्याय-परायणता मे दादा भाई का बहुत विश्वास था और वह अन्त तक कायम रहा। १९०६ मे दादाभाई कलकत्ते के अधिवेशन के सभापति हुए। उस समय भारत मानो एक खौलते हुए कढाव मे था। १६ अक्टूबर, १९०५ को जो वग-भग किया गया था, उससे देश भर मे एक नई लहर पैदा हो गई थी। काग्रेस के सारे वायु-मण्डल मे उस समय बहिष्कार की भावना छाई हुई थी। बाबू विपिनचन्द्रपाल ने बहिष्कार शब्द को और भी व्यापक-रूप दिया और सरकार से सब तरह का संबध विच्छेद करने के लिए कहा। प्रस्ताव का प्रत्यक्ष रूप स्वदेशी था, जिसका अर्थ भिन्न-भिन्न व्यक्तियो ने जुदा-जुदा किया। मालवीयजी ने उसका अर्थ देशी उद्योग-धधो का सरक्षण किया; लोकमान्य तिलक ने मध्य-श्रेणी के व्यक्तियो-द्वारा इस्तेमाल किये जानेवाले विदेशी कपडे के दु खद दृश्य का अन्त करने के लिए राष्ट्र की ओर से किये जाने वाले दृढ निश्चय, बलिदान और स्वावलम्बन को स्वदेशी कहा; लालाजी ने इसका अर्थ देश की पूजी को बचाना और सुरक्षित रखना बतलाया और स्वय दादाभाई के लिए यह आर्थिक और शिक्षा-सबधी सुधार तथा शिक्षा-प्रचार की पुकार थी, क्योकि शिक्षा-प्रचार के ही कारण लोगो मे स्वराज्य की भूख पैदा हुई थी। इस अस्सी वर्ष के बूढे ने ६,००० मील दूर इंग्लैंड से यहा आकर स्वदेशी, बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा के साथ स्वराज्य की एक नई पुकार और पैदा करदी। यह देखकर 'इगलिशमैन' उन पर उबल पडा। इस प्रकार दादाभाई के सभापतित्व मे होनेवाला कलकत्ता-अधिवेशन अत्यन्त सफल रहा।

फिर भी अपनी विशिष्ट तीखी वक्तृत्व-शक्ति के साथ उनका एक विशेष व्यक्तित्व था।

दीनशा एदलजी वाचा—वाचा महोदय का खास विषय कौन-सा था, यह कहना कठिन है, क्योकि प्राय सभी विषयो मे उनका एक-समान अबाध प्रवेश था। उनके उज्ज्वल गुण तो पहले ही अधिवेशन में झलकने लगे थे, जबकि उन्होने सैनिक परिस्थिति का योग्यतापूर्वक विस्तृत सिहावलोकन किया था। दूसरे अधिवेशन मे उन्होने भारतवासियो की गरीबी को लिया और भारत से हर साल ब्रिटेन को जानेवाले उस खराज की ओर सर्व-साधारण का ध्यान आकृष्ट किया जिससे ब्रिटेन तो समृद्ध हो रहा था, पर भारत कगाल बनता चला जा रहा था। बम्बई मे होनेवाले काग्रेस के पाचवे अधिवेशन मे उन्होने आबकारी नीति को लिया और बताया कि कामन-सभा ने एक प्रस्ताव-द्वारा सर्व-साधारण की इच्छानुसार आबकारी-नीति मे सुधार करने का आदेश भारत-सरकार को दिया था, लेकिन उसके नौ महीने बाद भी सरकार ने कुछ भी नही किया। छठी काग्रेस में उन्होने फिर इस ओर ध्यान दिया और इसके साथ ही नमक-कर का प्रश्न भी उठाया था। इलाहाबाद मे होनेवाली काग्रेस के ९ वे अधिवेशन मे उन्होने चादी के सिक्के ढालना बन्द करने के विरुद्ध प्रस्ताव पेश किया। वह इतने चतुर थे कि अब से बहुत पहले, १८८५ मे ही उन्होने लकाशायर का प्रश्न उठाया। १८९४ मे उन्होने फिर भारतीय मिलो के (सूती) माल पर उत्पत्ति-कर लगाने का और १८९७ मे उन्होने अमरावती मे होने वाले अधिवेशन मे, सरकार की सरहद्दी नीति का विरोध किया। काग्रेस के १५ वे अधिवेशन मे भी उन्होने मुद्रा-नीति पर अपना हमला जारी रखा और भारत मे सुवर्ण-मान जारी करने की निन्दा की। १९०१मे होनेवाले कलकत्ता-अधिवशन मे राष्ट्र ने उनको काग्रेस का सभापति बनाने के लिए आमन्त्रित किया। १८९६ से १९१३ तक वह काग्रेस के सयुक्त प्रधान-मत्री रहे। इसके बाद उसके काम-काज मे गौण-रूप से योग देते रहे। सर्वतो-मुखी प्रतिभा, घटनाओ का जबरदस्त ज्ञान और सैनिक समस्या जैसे दुरूह विषयो एव सर्व-साधारण की गरीबी जैसी अस्पष्ट और विस्तृत समस्याओ की भलीभाति जानकारी मे उनकी जोड के उस समय थोडे ही आदमी थे।

गोपालकृष्ण गोखले—गोखले पहले-पहल १८८९ मे काग्रेस मे तिलक के साथ आये। नमक-कर पर हमला करते हुए उन्होने बहुतेरे तथ्य के आकडे पेश किये। उन्होने बताया कि कैसे एक पैसे की नमक की टोकरी की क़ीमत पाच आने हो जाती है। फिर भी उनमे कडी-से-कडी बात को बहुत ही मधुर भाषा मे कहने का बडा गुण था। अपनी आलोचना मे गोखले यद्यपि मधुर और मजुल थे तथापि वह कहते थे बात खरी, गोलमाल बाते करना उन्हे पसन्द नही था। १९०५ मे बनारस-काग्रेस के सभापति की हैसियत से उन्होने राजनैतिक शस्त्र के रूप मे बहिष्कार

का समर्थन किया था और कहा था कि इसका इस्तेमाल तभी करना चाहिए जब कोई चारा न रह गया हो और जबकि प्रबल लोक-भावनाएँ इसके अनुकूल हो। गोखले सामनेवाले के साथ बडी शिष्टता दिखाया करते थे, परन्तु इससे उनकी भाषा की स्पष्टता और उनके आक्रमण का जोर कम नही हो जाता था। १९०५ और १९०६ दो साल तक गोखले भारत के प्रतिनिधि बनाकर इग्लैण्ड भेजे गये थे। जनता और सरकार दोनो के बीच उनकी स्थिति विषम रहती थी। इधर लोग उनकी नरमी की निन्दा करते थे, उधर सरकार उनकी उग्रता को बुरा बताती थी। इसका मुख्य कारण यह था कि वह दोनो मे मध्यस्थ बनकर रहते थ। वह जनता की आकाक्षाएँ वाइसराय तक पहुँचाते थे और सरकार की कठिनाइया काग्रेस तक।

गोखले का बहुत बड़ा रचनात्मक काम है भारत-सेवक-समिति। यह ऐसे राजनैतिक कार्यकर्त्ताओ की एक संस्था है, जिन्होने नाम-मात्र के वेतन पर मातृ-भूमि की सेवा करने का प्रण लिया। उनके बाद श्रीमती ऐनी बेसेण्ट ने 'भारत के पुत्र' नाम की संस्था खडी की। इसके बाद गाधीजी के आश्रमवासियो का नम्बर आता है। १९१६ मे गाधीजी ने अहमदाबाद मे सत्याग्रह-आश्रम खोला और इसके बाद १९२० से उसी नमूने पर दूसरे कई आश्रम खोले गये। ये सब आश्रम जीवन की कठोरता और साधना मे 'भारत-सेवक-समिति' और 'भारत के पुत्र' से कही बढ़े-चढे थे।

सूरत के झगड़े के बाद गोखले ने कांग्रेस के कार्य का प्रमुख भाग लिया। वह दक्षिण अफ्रीका भी गये और वहा उन्होने गाधीजी के सत्याग्रह-सग्राम मे उनकी अपूर्व सहायता की। १९०९ की काग्रेस मे उन्होने सत्याग्रह-धर्म की बडी प्रशसा की और उसके तत्त्व को बडी खूबी के साथ समझाया। इसके बाद उनकी प्रवृत्तियां मुख्यत बडी कौंसिलो के अखाड़े के प्रति ही रही। १९१४ में जब काग्रेस के दोनो दलो को मिलाने की कोशिश की गई तब पहले तो उन्होने इसे पसन्द किया परन्तु बाद को अपना विचार बदल दिया। इस तरह उत्कृष्ट देश-भक्ति, देश के लिए कठोर परिश्रम, महान् स्वार्थत्याग और देश-सेवामय जीवन व्यतीत करते हुए गोखले १९ फरवरी १९१५ को इस लोक से प्रयाण कर गये।

जी० सुब्रह्मण्य ऐयर—काग्रेस के सर्व प्रथम अधिवेशन में सबसे पहला प्रस्ताव पेश करनेवाले 'हिन्दू' के सम्पादक श्री जी० सुब्रह्मण्य ऐयर थे। उनका प्रस्ताव था, कि भारतीय शासन की प्रस्तावित जांच एक ऐसे शाही कमीशन द्वारा होनी चाहिए जिसमे भारतीयो का भी काफी प्रतिनिधित्व रहे। इसके पश्चात् मद्रास में होनेवाली १०वी काग्रेस तक हम सुब्रह्मण्य ऐयर के बारे में कुछ नहीं सुनते। पर मद्रास-काग्रेस में भारतीय राजस्व के प्रश्न पर वह बोले और तत्सम्बन्धी जाच करने की आवश्यकता बतलाई। इस अधिवेशन में दिलचस्पी का दूसरा विषय था

—देशी-राज्यो मे अखबारो की स्वतन्त्रता का अपहरण, जिसका सुब्रह्मण्य ने कसकर विरोध किया। १२ वे अधिवेशन मे उन्होने प्रतिस्पर्धी-परीक्षाएँ इग्लैण्ड और हिन्दुस्तान मे एक साथ ली जाने की आवाज उठाई और साथ ही लगान के मियादी बन्दोबस्त का प्रश्न भी हाथ मे लिया। अगले साल अमरावती-काग्रेस मे उन्होने सरकार की सरहदी-नीति का विरोध किया। १८९८ मे जब तीसरी बार मद्रास मे काग्रेस का अधिवेशन हुआ तब श्री सुब्रह्मण्य ऐयर ने सरहदी-नीति का प्रश्न फिर से उठाया और उसकी निन्दा की तथा युद्ध-नीति का भी घोर विरोध किया। श्री सुब्रह्मण्य का प्रिय विषय था भारत की आर्थिक स्थिति। लाहौर मे होनेवाले १६वे अधिवेशन मे उन्होने बार-बार पडनेवाले अकालो को रोकने के उपाय मालूम करके उन पर अमल करने के अभिप्राय से भारतीयो की आर्थिक अवस्था की पूरी और स्वतन्त्र जाच कराने क लिए कहा। साथ ही सरकारी नौकरियो के प्रश्न पर भी विचार किया, जिसमे हिन्दुस्तानियो को उनसे महरूम रखने की शिकायत की। १७वे अधिवेशन मे जनता की दुर्दशा और गरीबी पर ध्यान दिया। उनका ज्ञान जितना गम्भीर था उतना ही विशाल उनका दृष्टि-कोण था। अहमदाबाद मे होनेवाले १८वे अधिवेशन मे एक बार उन्होने सर्व-साधारण की गरीबी पर प्रकाश डाला। अपने लेखो की बदौलत उन्हे जेलखाने की हवा खानी पडी, जहा से बीमार हो जाने पर ही उन्हे रिहाई मिली।

बदरुद्दीन तैयबजी—बदरुद्दीन तैयबजी एक पक्के काग्रेसी थे, जो बढते-वढते काग्रेस के तीसरे अधिवेशन के सभापति हुए थे। सभापति-पद से दिए हुए अपने भाषण मे उन्होने काग्रेस के प्रतिनिधि-रूप पर जोर दिया। बाद मे वह बम्बई-हाईकोर्ट के जज हो गये। १९०४ मे सरकारी जगहो पर हिन्दुस्तानियो की नियुक्ति-सम्बन्धी प्रस्ताव की बहस मे उन्होने भाग लिया था। १९०६ के प्रारम्भ मे उनका स्वर्गवास हो गया। काग्रेस के पहले अधिवेशन का सभापतित्व उमेशचन्द्र बनर्जी ने किया था, दूसरे के सभापति पारसी दादाभाई नौरोजी हुए थे। इसके बाद तीसरे अधिवेशन का सभापति तैयबजी को बनाना अत्यन्त उचित था, क्योकि वह मुसलमान थे।

उमेशचन्द्र बनर्जी—यदि प्रामाणिक रूप से जानना हो कि काग्रेस का प्रारम्भिक उद्देश्य क्या था, तो उसके प्रथम अधिवेशन के सभापति उमेशचन्द्र बनर्जी के भाषण की ही ओर निगाह दौडानी पडेगी। उसमे उन्होने स्पष्ट रूप से उसका वर्णन किया है। इलाहाबाद के आठवे अधिवेशन मे वह दुबारा काग्रेस के सभापति हुए थे। यह याद रहे कि १८९१ मे सहवास-बिल के सम्बन्ध मे बहुत आन्दोलन उठ खडा हुआ था और लोकमान्य तिलक ने उसका विरोध किया था। उमेशचन्द्र बनर्जी ने अपने इलाहाबाद वाले भाषण मे वे कारण बताये थे जिनसे काग्रेस ने अपने को सामाजिक प्रश्न से अलहदा रक्खा था।

लोकमान्य तिलक—लोकमान्य तिलक भारत के बिना ताज के बादशाह थे। शिवाजी महाराज की स्मृति को फिर से ताजा करने का श्रेय उन्ही को है। इस सिलसिले मे १४ सितम्बर १८९७ को कुछ पद्य तथा अपना भाषण छापने के अपराध मे उन्हे १८ महीने की कडी कैद की सजा दी गई थी, पर वह ६ सितम्बर १९९८ को ही छोड दिए गये। १८९६ से ही वह काग्रेस के समर्थक थे। १८९९ मे जब वह लॉर्ड सेण्ढर्स्ट की निन्दा का प्रस्ताव पेश करना चाहते थे तब एक विरोध का तूफान खडा हो गया था। उनकी नीति उग्र थी। सूरत मे काग्रेस के दो टुकडो का हो जाना उस समय बडी चर्चा का विषय हो गया था। लोकमान्य तिलक उसमे सबसे बडे अपराधी गिने जाते थे और कहा जाता था कि उन्होने २५ वर्ष की जमी-जमाई काग्रेस को मिट्टी मे मिला दिया। दोनो तरफ के लोग अपने-अपने पक्ष की बाते कहते थे। वास्तव मे इस प्रकार के मतभेद की नीव कलकत्ते मे ही पड चुकी थी। लेकिन दादाभाई नौरोजी के प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण किसी तरह वह हट-सा गया था। वही १९०७ मे जाकर प्रबल हो गया। गरम दल के लोग चाहते थे कि लोकमान्य तिलक सभापति हो, परन्तु नरम दल के लोग इसके विरोधी थे। उन्होने अपने विधान के अनुसार डॉ० रासबिहारी घोष को चुन लिया। इसपर गरम दलवालो ने लाला लाजपतराय का नाम पेश किया, परन्तु लाला लाजपतराय ने इन्कार कर दिया।

काग्रेस २७ दिसम्बर को २।। बजे आरभ हुई। १६०० से ऊपर प्रतिनिधि मौजूद थे। जब स्वागताध्यक्ष अपना काम खतम कर चुके तब स्वागत-समिति के नियमानुसार मनोनीत सभापति डॉ० रासबिहारी घोप का नाम उपस्थित किया गया। इस पर गुलगपाडा मचा और कार्रवाई दूसरे दिन के लिए मुल्तवी करनी पड़ी। नये सिरे से फिर निपटारे की कोशिश की गई; मगर कोई फल नही निकला। २८ को फिर काग्रस शुरू हुई। जब सभापति का जुलूस निकल रहा था, तब लोकमान्य तिलक ने एक चिट श्री मालवीयजी के पास भेजी, जिसमे लिखा था—"जब सभापति के चुनाव के प्रस्तावो का समर्थन हो चुके तब मै प्रतिनिधियो से कुछ कहना चाहता हूँ।" लेकिन अधिवेशन आरभ होने पर लोकमान्य की चिट पर, याद दिहानी के बाद भी, ध्यान नही दिया गया। तब लोकमान्य तिलक बोलने के अपने अधिकार का पालन करने के लिए मंच की ओर बढ़े। स्वागताध्यक्ष और डॉ० घोष दोनो ने तिलक को बोलने की इजाजत नही दी। बस क्या था, गुलगपाडा और गोलमाल शुरू हुआ। इतने ही मे प्रतिनिधियो मे से किसी ने एक जूता उठाकर फेका, जो सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को छूता हुआ सर फिरोजशाह मेहता को लगा। तब मानो एक लडाई शुरू हो गई —कुर्सिया फेकी गई और डण्डे चलने लगे, जिससे काग्रेस उस दिन के लिए खतम हो गई। अब नरम दल के नेता जमा हुए और

उन्होने 'कनवेन्शन' बनाया और ऐसा विधान तैयार किया जिससे गरम दल के लोग आ ही न सके।

लोकमान्य तिलक राष्ट्र-धर्म के जबरदस्त उपासक थे। अपने समय की मर्यादा को वह जानते थे। उस पुराने युग मे एक वही थे जिन्हे लगातार जेलो मे तथा अन्यत्र कष्ट-ही-कष्ट भोगना पडा था। १९०८ में जब जज ने उनको सजा दी और उनके बारे मे खरी-खोटी बाते कहकर पूछा कि आपको कुछ कहना है, तब उन्होंने उसका जो उत्तर दिया वह सदा याद रखने और प्रत्येक घर मे स्वर्णाक्षरो मे लिखकर रखने योग्य है। "जूरी के इस फैसले के बावजूद मै कहता हूँ कि मै निरपराध हूँ। ससार मे ऐसी बडी शक्तिया भी है जो सारे जगत का व्यवहार चलाती है और सम्भव है ईश्वरीय इच्छा यही हो कि जो कार्य मुझे प्रिय है वह मेरे आजाद रहने की अपेक्षा मेरे कष्ट-सहन से अधिक फूले-फले।" ऐसी ही तेजस्विता उन्होने १८९७ मे दिखाई थी जब कि उन पर राजद्रोहात्मक लेखो के लिए मुकदमा चल रहा था और उनसे सिर्फ यह कहा गया कि वे अदालत मे कह दे कि ये लेख मेरे लिखे नही है, परन्तु उन्होने कतई इन्कार कर दिया। उन्होने बडी शान्ति और अनासक्ति के साथ इन सजाओ को भुगता और जेल में बैठे-बैठे बडे भव्य-ग्रन्थो की रचना की। यदि उन्हे जेल न मिली होती तो 'आर्क-टिक होम ऑफ दी वेदाज' और 'गीता-रहस्य' की रचना न हो पाती।

जब १८९६ मे गाधीजी पूना गये तब वह लोकमान्य से मिले और उनकी सलाह के मुताबिक गोखले से भी। गाधीजी पर दोनो की जैसी छाप पडी वह याद रखने लायक है। तिलक उन्हे हिमालय की तरह महान् उच्च, परन्तु अगम्य दिखाई पडे, लेकिन गोखले गगा की पवित्र धारा की तरह जिसमे वह आसानी से गोता लगा सकते थे। तिलक और गोखले दोनो महाराष्ट्रीय थे, दोनो ब्राह्मण थे, दोनो चितपावन थे, दोनो प्रथम श्रेणी के देश-भक्त थे, दोनो ने अपने-अपने जीवन मे भारी त्याग किया था, परन्तु दोनो की प्रकृति एक-दूसरे से भिन्न थी। यदि हम स्थूल भाषा का प्रयोग करे तो कह सकते है कि गोखले 'नरम' थे और तिलक 'गरम'। गोखले चाहते थे कि मौजूदा विधान मे सुधार कर दिया जाय, परन्तु तिलक उसे बनाना चाहते थे। गोखले को नौकरशाही के साथ काम करना पडता था, तो तिलक को नौकरशाही से भिडत करनी पडती थी। गोखले कहते थे—जहा सम्भव हो सहयोग करो, जहा आवश्यक हो विरोध करो। तिलक का झुकाव अडगा-नीति की ओर था। गोखले शासन और उसके सुधार की ओर मुख्य ध्यान देते थे, तिलक राष्ट्र और उसके निर्णय को सब से मुख्य समझते थे। गोखले का आदर्श था प्रेम और सेवा, तिलक का आदर्श था सेवा और कष्ट सहना। गोखले विदेशियो को जीतने का उपाय करते थे, तिलक उनको हटाना चाहते थे। गोखले दूसरे की सहायता पर आधार रखते थे, तिलक स्वावलम्बन पर। गोखले उच्च वर्ग और

बुद्धि-वादियो की तरफ देखते थे और तिलक सर्वसाधारण और करोडो की ओर। गोखले का अखाडा था कौसिल-भवन, तिलक की अदालत थी गाँव की चौपाल। गोखले अग्रेजी मे लिखते थे, तिलक मराठी मे। गोखले का उद्देश्य था स्वशासन, जिसके योग्य लोग अपने को अंग्रेजो की कसौटियो पर कसकर बनाए, तिलक का उद्देश्य था 'स्वराज्य', जो कि प्रत्येक भारतवासी का जन्म-सिद्ध अधिकार है और जिसे वह विदेशियो की सहायता या बाधा की परवाह न करते हुए प्राप्त करना चाहते थे। ऐसा था उनका व्यक्तित्व जो १ अगस्त १९२० को उठ गया।

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी—भारत के स्वर्गीय राजनीतिज्ञो के दरबार मे सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की आत्मा का एक प्रमुख स्थान है। काग्रेस के साथ ४० साल से अधिक उनका सम्बन्ध रहा। भारत मे काग्रेस के मच से उठी उनकी बुलन्द आवाज सभ्य ससार के दूर-दूर के कोने तक पहुचती थी। भाषा-प्रभुत्व, रचना-नैपुण्य, कल्पना-प्रवणता, उच्च-भावुकता, वीरोचित-हुकार, इन गुणो मे उनकी वक्तृत्व-कला को पराजित करना कठिन था। उनके भाषणो का मसाला होता था अपनी राजभक्ति की दुहाई। उन्होने इसे एक कला की सीमा तक पहुंचा दिया था। उन्होने दो बार काग्रेस के सभापति-पद को सुशोभित किया था—पहली बार १८९५ मे पूना मे और दूसरी बार १९०२ मे अहमदाबाद मे। काग्रेस मे प्रति वर्ष जो भिन्न-भिन्न विषयो पर विविध प्रस्ताव लाए जाते थे उनमे शायद ही कोई उनकी पहुच के बाहर रहता हो। उनका आदर्श था ब्रिटिश-सम्बन्ध के प्रति अटल श्रद्धा रखकर काम करना। एक-दूसरे मौके पर उन्होने कहा था—"अग्रेजी सभ्यता संसार मे सर्वोच्च है, इग्लैण्ड और भारत की अखण्डता एकता का चिह्न है। यह सभ्यता भारत-वासियो के प्रति अपूर्व आशीर्वादो और प्रसादो से परिपूर्ण है और अग्रेजो के सुनाम को अपूर्व ख्याति दिलानेवाली है।" उनके इन तमाम विश्वासो और मान्यताओ के रहते हुए भी लॉर्ड मिण्टो के वाइसराय-काल मे वरीसाल में उन पर लाठी चलाई गई थी, किन्तु उन्हे आगे चलकर बगाल का मत्री बनना था, इसलिए बच गये।

मदनमोहन मालवीय—प० मदनमोहन मालवीय का काग्रेस-मच पर सबसे पहली वार काग्रेस के कलकत्ता-अधिवेशन मे व्याख्यान हुआ था। तब से वह वरावर अथक उत्साह और लगन के साथ इस राष्ट्रीय सस्था की सेवा करते रहे; कभी तो एक विनम्र-सेवक के रूप मे पीछे रहकर और कभी नेता के रूप मे आगे आकर, कभी पूरे कर्त्ता-धर्ता बनकर, कभी कुछ थोड़ा-सा विरोध प्रदर्शित करनेवाले के रूप मे प्रकट होकर, कभी असहयोग और सत्याग्रह-आन्दोलन के विरोधी होकर और कभी सत्याग्रही वनने के कारण सरकारी जेलो मे जाकर। उन्होने काग्रेस की विविध रूपो में सेवा की थी।

सन् १९१८ के अप्रैल मास मे, २७, २८ और २९ तारीख को वाइसराय ने गत महायुद्ध के सहायतार्थ जन, धन तथा अन्य सामग्री एकत्र करने के लिए

भारतीय नेताओ की जो सभा बुलाई थी उसमे मालवीयजी भी आमत्रित किए गए थे। देश मे जब असहयोग आन्दोलन चला तब मालवीयजी उससे तो दूर रहे, परन्तु काग्रेस से नही। नरम दल वालो ने अपने जमाने मे काग्रेस को हर प्रकार चलाया, लेकिन जब उनका प्रभाव कम हुआ तब वह उससे अलग हो गये। श्रीमती वेसेण्ट ने काग्रेस पर एक बार अधिकार प्राप्त कर लिया था, पर बाद मे उन्होने भी, अपने से प्रबल दलवालो के हाथो मे उसे सौप दिया। लेकिन मालवीयजी तमाम उतार-चढावो मे प्रशसा और बदनामी सहते एव किसी की परवा न करते हुए सदैव काग्रेस का पल्ला पकडे रहे। मालवीयजी ही अकेले एक ऐसे व्यक्ति थे जिनमे इतना साहस था कि जिस बात को वह ठीक समझते थे उसमे चाहे कोई भी उनका साथ न दे, पर वे अकले ही मैदान मे खम ठोककर डटे रहते थे। १९३० मे जब सारे काग्रेसी सदस्यो ने असेम्बली की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया था तब मालवीयजी वही डटे रहे। उन्हे ऐसा करने का अधिकार भी था, क्योकि वह काग्रेस के टिकट पर असेम्बली मे नही गये थे। लेकिन इसके चार मास बाद ही दूसरा समय आया। मालवीयजी ने उस समय की आवश्यकता को देखकर असेम्बली की मेम्बरी से इस्तीफा दे दिया। सन् १९२१ मे उन्होने असहयोग-आन्दोलन का विरोध किया था, लेकिन १९३० मे हमे वह पूरे सत्याग्रही दिखाई दिये। वह स्वय एक सस्था थे। पहले-पहल सन् १९०९ मे वह लाहौर-काग्रेस के सभापति हुए थे। काग्रेस के २४ वे अधिवेशन के सभापति चुने तो सर फिरोजशाह मेहता गये थे, परन्तु किन्ही अज्ञात कारणो से उन्होने अधिवेशन से केवल ६ दिन पूर्व इस मान को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया था। अत उनके स्थान की पूर्ति मालवीयजी ने ही की थी। १० वर्ष बाद सन् १९१८ मे काग्रेस के दिल्ली वाले ३३ वे अधिवेशन के सभापतित्व के लिए राष्ट्र ने उनको फिर मनोनीत किया था। काशी-विश्व-विद्यालय तो उनकी कीर्ति का अमर स्तभ ही है।

लाला लाजपतराय—काग्रेस के पुराने पूज्य पुरुषो मे लाला लाजपतराय का सार्वजनिक व्यक्तित्व भी महान था। वह जितने बडे काग्रेस-भक्त थे उतने ही बडे परोपकारी और समाज-सुधारक भी थे। सन् १८८८ मे होनेवाले इलाहाबाद काग्रेस के चौथे अधिवेशन मे वह सबसे पहली बार सम्मिलित हुए थे। राजनैतिक क्षेत्र मे उनकी लगातार दिलचस्पी और समाज-सेवा ने सारे देश मे उनका सबसे ऊचा स्थान बना दिया था। बनारस-काग्रेस ने उन्हे एक प्रमुख वक्ता और राष्ट्र-वादी के रूप मे प्रतिष्ठापित किया था। सन् १९०७ मे उन्हे सरदार अजीतसिह के साथ निर्वासन का दण्ड दिया गया था। सन् १९०७ की काग्रेस के सभापति-पद के लिए राष्ट्रीय-विचार के लोगो ने उनका नाम पेश किया, परन्तु उन्होने स्वीकार नही किया। सन् १९०६ मे गोखले के साथ वह भी शिष्ट-मण्डल मे इग्लैण्ड भेजे गये थे। बाद मे खुफिया-पुलिस ने उन्हे इतना तग किया कि उन्होने विदेशो मे ही

ठहरना ठीक समझा। प्रथम महायुद्ध के दिनो मे तो वह अमरीका ही मे रहे। काग्रेस के सभापति बनने का लालजी का नम्बर जरा देर से आया। सन् १९२० के सितम्बर मास मे कलकत्ते मे काग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ था। उस समय उनकी अवस्था ऐसी थी जैसे जल से बाहर मछली की होती है। असहयोग-आन्दोलन के जन्मदाता और समर्थको से उनके विचार कभी नही मिले। इतना ही नही, अपने अन्तिम भाषण मे तो उन्होने यह भविष्यवाणी भी कर दी थी कि यह आन्दोलन चल नही सकेगा। वह वीर और युद्ध-प्रिय थे, मगर सत्याग्रही नही। उनके लिए सत्याग्रह या सविनय भग का अर्थ कानून-भग के अतिरिक्त और कुछ नही था। उनका समय बड़ी कठिनाइयो और सघर्षो मे बीता। उनके अपने ही प्रान्त मे नौजवानो का एक दल ऐसा था जो उनके खिलाफ था। कौसिल मे जाने पर उनका जौहर फिर से खिल उठा। लेकिन अफसोस कि पुलिस-अफसर की लाठी के कायरतापूर्ण वार ने अन्त मे उनकी जीवन-यात्रा को घटा दिया और वह हमारे बीच से असमय मे ही चले गये!

फिरोजशाह मेहता—सर फिरोजशाह मेहता उन व्यक्तियो में थे जिनका सम्पर्क काग्रेस के साथ उसके आरम्भ से ही था। काग्रेस की नीति और कार्यक्रम के निर्माण मे उनका बहुत प्रमुख भाग था। कलकत्ता मे होनेवाले छठे अधिवेशन के वह सभापति थे। कई वर्ष तक वह काग्रेस के पीछे एक वास्तविक शक्ति के रूप मे थे। उन्होने जो कुछ भी कार्य किया वह अधिकतर उन समितियो, शिष्ट मण्डलों और प्रतिनिधि-मण्डलो द्वारा ही किया जिनके वह सदस्य चुने गये थे। १९०७ मे उन्होने नरम-दल की ओर से सूरत-काग्रेस के अवसर पर काग्रेस-कार्य मे कुछ क्रियात्मक भाग लिया था। इसके बाद वह दृष्टि से बिलकुल ही ओझल हो गये। लाहौर-काग्रेस के २४वे अधिवेशन के जब वह सभापति चुने गये तब यकायक उन्होने काग्रेस के सभापति का आसन ग्रहण करने से ५ दिन पहले इस्तीफा दे दिया। अत. उनके स्थान पर पं० मदनमोहन मालवीय काग्रेस के सभापति चुने गये।

आनन्दमोहन वसु—आनन्दमोहन वसु एक प्रसिद्ध सामाजिक और धार्मिक सुधारक थे। ब्रह्म-समाज की प्रगति मे उनका हाथ था। १८७६ मे स्थापित कलकत्ता के इण्डियन-एसोशियेशन के वह सर्व-प्रथम मन्त्री और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के उत्साही सहकारी थे। काग्रेस-आदोलन के साथ १८९६ से पहले तक उनका कोई घनिष्ठ सम्बन्ध रहा या नही, यह तो ज्ञात नही होता, पर १८९६ के १२वे अधिवेशन मे उन्होने शिक्षा-विभाग की नौकरियो के पुनस्संघटन की योजना से होनेवाले नये अन्याय का विरोध किया था और कहा था कि यह योजना तो भारतीयो को शिक्षा विभाग के ऊचे पदो से अलग रखने के लिए ही बनाई गई है। इसके बाद शीघ्र ही १८९८ के मद्रास-अधिवेशन मे वह काग्रेस के सभापति हुए। सभापति-पद से दिया हुआ उनका भाषण अकाटच युक्तियो तथा प्रेम एवं राष्ट्र-सेवा के उपदेशो से परिपूर्ण था। उन्होंने पार्लमेण्ट मे भारत के चुने हुए प्रतिनिधि रखे जाने की बात सुझाई

थी। यह देश का दुर्भाग्य था कि जब उसे उनकी सेवाओ की सब से अधिक आवश्यकता थी तब, १६०६ मे, ईश्वर ने उनको हमसे छीन लिया।

चक्रवर्ती विजयराघवाचार्य—सेलम के श्री चक्रवर्ती विजयराघवाचार्य सब से पुराने काग्रसियो में से थे। काग्रेस के तीसरे अधिवेशन मे काग्रेस का विधान बनाने के लिए जो समिति बनाई गई थी उसमे उनका नाम था। इसके बाद लखनऊ मे होनेवाले १५वें अधिवेशन मे और उसके अगले साल लाहौर मे होनेवाले १६वे अधिवेशन मे वह इण्डियन काग्रेस समिति के सदस्य बनाये गये। २२वे अधिवेशन मे उन्होने दायमी बन्दोबस्त का प्रस्ताव पेश किया और इस विचार को गलत बताया कि भूमि-कर बतौर किराया है। इस सम्बन्ध मे अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होने कहा कि हिन्दुस्तान मे जमीन पर राजा का अधिकार कभी भी नही रहा। ऋषि-मुनियो ने कहा है कि दुनिया उन्ही की है जो उसमे पैदा हुए है, जमीन को जो जोतता-बोता है उसीकी वह सम्पत्ति होती है। राजा, जो उसकी रक्षा के लिए है, अपनी सेवाओ के बदल मे किसानो से पैदावार का एक हिस्सा लेता है। यह विचार कि जमीन राजा की है, भारतीय नही बल्कि पश्चिमी है।

सूरत-काण्ड के बाद से, वस्तुत वह काग्रेस से अलग ही रहने लगे। नरम दल की काग्रेस से उन्हे सन्तोष नही हुआ। लेकिन जब १६१६ मे लखनऊ मे किये गये सशोधन से गरम दलवालो के लिए काग्रेस का दरवाजा खुल गया, तब वह फिर उसमे आ गये और १६१८ मे होनेवाले विशेषाधिवेशन बम्बई तथा १६१६ मे होनेवाले अमृतसर-अधिवेशन मे उन्होने क्रियात्मक-रूप से भाग लिया। अमृतसर अधिवेशन मे उन्होने जन-साधारण के मौलिक अधिकारो पर विस्तार से प्रकाश डाला। इसके बाद ही उन्हे नागपुर-अधिवेशन का सभापति चुना गया, जहा बडी योग्यता और कुशलता के साथ उन्होने कार्य सम्पादित किया।

कालीचरण बनर्जी—काग्रेसी हलचल के पहले पच्चीस वर्षो मे आमतौर पर यह प्रथा थी कि जो आवश्यक प्रस्ताव एक साल से पुराने हो जाते थे वे सब एक बडे प्रस्ताव मे इकट्ठे कर दिये जाते थे और साल-दर-साल ऐसे व्यक्तियो को उसे पेश करने के लिए चुना जाता था जिनकी प्रतिभा उस सयुक्त या व्यापक प्रस्ताव के विभिन्न विषयो का भली-भाति स्पष्टीकरण कर सकती थी। १८८६ मे ऐसा प्रस्ताव पेश करने के लिए कालीचरण बनर्जी चुने गये थे, जो एक भारतीय ईसाई थे। कई वर्षो तक उन्होने काग्रेस के काम-काज मे बडी दिलचस्पी ली थी। १८६० मे ब्रिटिश जनता के सामने काग्रेस के विचार रखने के लिए जो शिष्ट-मण्डल इग्लैण्ड गया था उसके वह भी एक सदस्य बनाये गये थे। ६वी काग्रेस मे उन्होने न्याय और शासन-कार्य को एक-दूसरे से पृथक् करने का प्रस्ताव पेश किया था। समय की प्रगति के साथ जैसे-जैसे सर्वसाधारण मे राजनैतिक जागृति बढती गई, वैसे-वैसे उसकी स्वतत्रता पर अधिकाधिक प्रतिबन्ध लगने लगे। सरकारी सहायता-प्राप्त

संस्थाओ के व्यवस्थापको और अध्यापको पर यह पाबन्दी लगा दी गई कि जब तक शिक्षा-विभाग के प्रधान अधिकारी की स्वीकृति न ले ली जाय तब तक वे न तो राजनैतिक हलचलो मे कोई हिस्सा लें और न राजनैतिक सभाओ मे ही उपस्थित हो। नागरिको के मौलिक अधिकारो पर किये गये इस प्रहार का, १५वी काग्रेस मे श्री कालीचरण ने जोरो के साथ विरोध किया। दुःख की बात है कि वह अधिक दिनो तक जीवित न रह सके।

नवाब सय्यद मुहम्मद बहादुर—काग्रेस के मन्त्रियो मे हिन्दू के साथ एक मुसलमान को भी रखने की प्रथा १९१४ की मद्रास-काग्रेस से शुरू हुई थी, जिसमे नवाब सय्यद मुहम्मद बहादुर और श्री एन० सुब्बाराव मंत्री चुन गय थे। लेकिन नवाब साहब तो इससे पहले, १९१३ की कराची-काग्रेस मे, सभापति-पद को भी सुशोभित कर चुके थे। वह पहले काग्रेसी थे, इसके बाद मुसलमान। १९०३ मे होनेवाली मद्रास-काग्रेस के १९वें अधिवेशन के वह स्वागताध्यक्ष थे और १९०४ की काग्रेस (२० वा अधिवेशन बम्बई) मे काग्रेस का विधान बनाने के लिए जो समिति बनी थी उसमे उन्हे भी रखा गया था। वह ऐसे देश-भक्त थे जिनमे मजहबी संकीर्णता बिलकुल नही थी। कराची-कांग्रेस के सभापति-पद से उन्होने राष्ट्रीयता की बुलन्द आवाज उठाई थी और इस बात पर जोर दिया था कि भारत की भिन्न-भिन्न जातियो को अलग-अलग टुकडो मे बटने के बजाय सयुक्त-रूप से आगे बढना चाहिए।

दाजी आबाजी खरे—काग्रेस के प्रारम्भिक वर्षो मे दायमी बन्दोबस्त और जमीन के पट्टे की मियाद स्थिर कर देने का विषय काग्रेस मे जोरो के साथ उठता रहा। लाहौर मे होनेवाले ९ वे अधिवेशन मे श्री दाजी आबाजी खरे ने इस सम्बन्ध मे प्रस्ताव पेश किया था। काग्रेस का जो विधान उनके प्रस्ताव पर १९०६ मे स्वीकृत हुआ था और जिसका बहुत-कुछ भाग १९०८ मे बननेवाले विधान मे भी मिला लिया गया था, उसके निर्माण मे उन्होने बहुत भाग लिया था। १९०९ से १९१३ तक, श्री दीनशा वाचा के साथ वह काग्रेस के मत्री रहे और १९११ मे उन्होने भारतीय सूती माल पर लगाया गया वह उत्पत्ति-कर उठा लेने का प्रस्ताव पेश किया जिससे भारत के सूती वस्त्र-व्यवसाय के प्रसार मे रुकावट पडती थी। १९१३ मे जब मुस्लिम लीग ने भारत के लिए स्व-शासन के आदर्श को स्वीकार कर लिया तब श्री खरे ने उसके स्वागत-सम्बन्धी प्रस्ताव का समर्थन किया और कहा था कि स्व-शासन हिन्दू-मुसलमानो के भाई-चारे से ही प्राप्त होगा।

सी० शंकरन नायर—सर सी० शकरन् नायर अपने वक्त के एक समर्थ पुरुष थे। काग्रेस की सेवाओ के पुरस्कार-स्वरूप काग्रेस ने उन्हे बहुत जल्दी, १८९७ मे, अमरावती-अधिवेशन का सभापति चुना था। बम्बई के चन्दावरकर और तैयबजी

की तरह शकरन् नायर को भी पीछे मद्रास के हाईकोर्ट-बेंच का सदस्य बना लिया गया और वहा से १९१५ मे वह भारत-सरकार की कार्यकारिणी मे ले लिये गये। १९१९ मे मार्शल लॉ लागू करने के प्रश्न पर इस्तीफा देने के कारण वह बहुत लोकप्रिय हो गये। लेकिन 'गाधी एण्ड अनार्की' नामक पुस्तक मे गाधीजी पर उन्होंने निराधार आक्षेप किया। इसी पुस्तक के कारण पजाव के लेफ्टिनैण्ट गवर्नर सर माइकेल ओड्वायर ने उन पर मुकदमा चलाया जिसके फलस्वरूप सर शकरन् को मानहानि तथा खर्चे के लिए तीन लाख रुपये देने पडे।

विपिनचन्द्र पाल—विपिन बाबू का काग्रेस से सम्बन्ध बहुत पहले शुरू हुआ। वह प्रसिद्ध वक्ता थे। बहिष्कार, स्वदेशी और राष्ट्रीय-शिक्षा के नये सिद्धान्त का प्रचार करते हुए उन्होंने सारे देश मे अपनी वक्तृत्व-शक्ति का सिक्का जमा दिया था। उन्होंने १९०७ मे मद्रास मे जो भाषण दिये थे, एडवोकेट-जनरल (सर) वी० भाष्यम आयगर ने उन्हे भडकाने वाले—राजद्रोहपूर्ण नही—समझा था और वह मद्रास अहाते से निकाल दिये गये। लार्ड मिण्टो के समय मे उन्हे एक बार देश-निकाला भी मिला था। एक दूसरे अवसर पर, जब 'वन्देमातरम्' के सपादक की हैसियत से श्री अरविन्द घोष पर मुकदमा चल रहा था, तब उन्होंने यह जानकर गवाही देने से इन्कार कर दिया था कि उनकी गवाही अरविन्द बाबू के बहुत खिलाफ पडेगी। इस कारण ६ मास की सख्त कैद की सजा उन्होंने बडी खुशी से भुगत ली। उन्होंने इग्लैंड मे 'हिन्दू रिव्यू' नामक पुस्तक प्रकाशित की थी, जिसमे 'बम के कारणो' पर विचार किया गया था। भारत लौटने के बाद उनपर मुकदमा चलाया गया, लेकिन उन्होंने माफी माग ली। उनका आखिरी इतिहास राष्ट्रीय राजनीति मे उनके उत्साह की निरन्तर घटती का इतिहास था। यह हमे स्वीकार करना होगा कि वह उन थोडे से लोगो मे थे, जिन्होंने अपने भाषणो और 'न्यू इण्डिया' तथा 'वन्देमातरम्' के लेखो-द्वारा उस समय के युवको पर बहुत जादू कर दिया था।

मौ० मजहरुल हक—मौ० मजहरुल हक काग्रेस के, शारीरिक और बौद्धिक दोनो दृष्टियो से, एक महारथी थे। वह पक्के राष्ट्रवादी थे और बिहार मे काग्रेस के भारी समर्थक थे। साम्प्रदायिकता से उन्हे चिढ थी। काग्रेस के २५ वे अधिवेशन मे जो इलाहाबाद मे हुआ था, श्री जिन्ना ने साम्प्रदायिक-निर्वाचन के विरुद्ध प्रस्ताव पेश किया था, इस प्रस्ताव का उन्होंने समर्थन किया था। इस अवसर पर उन्होंने एक योग्यतापूर्ण भाषण दिया जिसमे हिन्दुओ और मुसलमानो को आपस मे मिल जाने की प्रेरणा थी। यह याद रखने की बात है कि मिण्टो-मार्ले-शासन-सुधार उस समय अमल मे आये ही थे, जिनमे पहले-पहल कौंसिलो के लिए साम्प्रदायिक-प्रतिनिधित्व की योजना का समावेश किया गया था। मुसलमान अपनी इस सफलता पर फूलकर कुप्पा हो रहे थे। मौ० मजहरुल हक ने उस समय

उनसे कहा था कि उन्हे जो सफलता मिली है दरअसल वह दोनो महान जातियो की सम्मिलित भलाई के लिए बड़ी घातक है। देश को जरूरत इस बात की है कि दोनो एक-दूसरे से अलग-अलग बन्द दायरो मे न रहकर एक-दूसरे के साथ मिल-कर काम करे। १९१४ मे जब काग्रेस का शिष्ट-मण्डल इग्लैण्ड गया तब मौ० मजहरुल हक भी उसके सदस्य बनाये गय। इसके बाद उन्होंने काग्रेसी मामलो मे कोई क्रियात्मक रस नही लिया, लेकिन रहे अन्त समय तक वह पक्के राष्ट्रवादी। जीवन के आखिरी दिनो मे उनका झुकाव आध्यात्मिकता की ओर हुआ और शुद्ध राष्ट्रीयता मे साधुता ने मिलकर सोने मे सुगन्ध उत्पन्न कर दिया। वस्तुत' उनका आखिरी जीवन एक फकीर का जीवन था।

महादेव गोविन्द रानडे--महादेव गोविन्द रानडे, काग्रेस मे एक उच्च शिखर के समान थे। यदि बहुत बारीकी मे उतरे तो उन्हे काग्रेसी नही कहा जा सकता, क्योकि वह बम्बई सरकार के न्याय-विभाग के उच्चाधिकारी थे, लेकिन बरसो तक वह पीछे से काग्रेस का सूत्र-सचालन करनेवाली शक्ति बने रहे। काग्रेस आन्दोलन को उन्होने स्फूर्ति प्रदान की थी। उनका ऊचा कद, चेहरे का मूर्तिवत् बनाव और उनका अपना रग-ढग भिन्न-भिन्न अधिवेशनो मे उन्हे स्पष्ट रूप से पहचानने मे सहायक थे। अर्थशास्त्री और इतिहासज्ञ के रूप मे वह स्मरणीय थे। 'महाराष्ट्र सत्ता का उत्थान' एव 'भारतीय अर्थशास्त्र पर निबन्ध' के रूप मे वह राप्ट्र को अपने पाण्डित्य एव विद्वत्ता की विरासत छोड़ गये है। समाज-सुधार मे उनकी खास तौर पर गति थी और वर्षो तक समाजसुधार-सम्मेलन, जो काग्रेस की एक सहायक-सस्था के रूप मे बना था, उनके पोष्य-पुत्र के समान रहे। १८९५ मे, पूना अधिवेशन के समय, जब इस बात पर मतभेद पैदा हुआ कि काग्रेस समाज-सुधार के मामलो और समाज-सुधार-सम्मेलन से सम्बन्ध रख सकती है या नही, तब जैसा कि बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने बताया है, जस्टिस रानडे ने सहिष्णुता और बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से मामला सुलझा दिया था। प्लेग की महामारी के समय जस्टिस रानडे ने राष्ट्र की जो सेवा की उसका अनुमान नही किया जा सकता। इस प्रकार पन्द्रह वर्ष तक अथक रूप से समाज-सुधार और काग्रेस का काम करते हुए, १९०१ मे, अपनी ऐसी स्मृतिया छोडकर रानडे हम से बिदा हो गये जो सदैव हमारी सहा-यता करती रहती है और जिनके कारण उनके प्रति सदा हमारी श्रद्धा बनी रहेगी।

रमेशचन्द्र दत्त--गत शताब्दी के अन्त मे काग्रेस की राजनीति मे श्री रमेश-चन्द्र दत्त एक महत्वपूर्ण व्यक्ति थे। वह अपने जीवन-क्रम मे कमिश्नर के ऊचे पद तक चढ चुके थे, फिर भी उन्होने काग्रेस का साथ दिया था। आई० सी० एस० के अफसर रहते हुए लम्बे अरसे तक उन्होने सार्वजनिक प्रश्नो पर जो अमित अनुभव और ज्ञान प्राप्त किया था उसका लाभ उन्होने काग्रेस को पहुंचाया था। उनका कहना था कि भूमि पर भारी मालगुजारी और ब्रिटिश कारखानो की खुली प्रतिस्पर्धा

के कारण ग्रामीण धधो का विनाश ही दुर्भिक्ष के कारण है। उन्होने बहुत खेद प्रकट करते हुए कहा था कि जिस देश ने ३,००० साल पहले ग्राम-शासन (पचायतो) का सगठन किया था आज उसी पर पुलिस, जिला अफसरो तथा जनता के बीच की घृणित-शृंखला द्वारा शासन हो रहा है। मालगुजारी, दुर्भिक्ष तथा अन्य आर्थिक प्रश्नो पर वह एक प्रमाण समझे जाते थे। १८९० मे लखनऊ-काग्रेस के अधिवेशन के वह सभापति बने थे।

एन० सुब्बाराव पन्तुलु—श्री एन० सुब्बाराव पन्तुलु भी काग्रेस के भक्त थे। काग्रेस से उनका सम्बन्ध उसके जन्म के साथ ही हो गया था। वह काग्रेस के चौथे अधिवेशन मे सम्मिलित हुए थे और वोले भी थे। तव से वह काग्रेस-मच पर नमक-कर, न्याय और शासन कार्य, भारतीयो का कार्यकारिणी में लिया जाना, जूरी द्वारा मुकदमो का फैसला और वकीलो की स्थिति आदि विभिन्न प्रस्तावो को पेश करते, अनुमोदन और समर्थन करते हुए मशहूर हो गये थे। जब उनके समकालीन काग्रेसियो को सरकारी खिताब या पद मिल रहे थे, तव उन्होने उसे लेने की कभी परवाह नही की। दूसरी ओर उनके प्रान्त ने १८९८ मे उन्हें काग्रेस का स्वागताध्यक्ष चुना और १९१४, १५, १६ तथा १७ मे काग्रेस उन्हे प्रधानमन्त्री चुनती रही। उन्होने अपने कार्य-काल मे अपने खर्च पर हिन्दुस्तान का दौरा करने और काग्रेसी मामलो में लोगो की दिलचस्पी बढ़ाने का एक आदर्श रखा था।

सच्चिदानन्द सिंह—सच्चिदानन्द सिंह को सबसे पहले १८९९ की लखनऊ काग्रेस मे लागो ने देखा। उसीमे उन्होने न्याय और शासन-विभाग के पृथक्करण के प्रस्ताव पर भाषण भी दिया। लाहौर-अधिवेशन में भी इस प्रश्न पर वह बोले थे। १७ वे अधिवेशन मे भी 'पुलिस-सुधार' पर वह बोले थे। २० वें अधिवेशन मे उन्होने इस बात का समर्थन किया था कि १९०५ मे आम चुनाव होने से पहले इगलैण्ड मे एक शिष्ट-मण्डल भेजा जाय। उसी अधिवेशन मे उन्होने दादाभाई नौरोजी, सर हेनरी कॉटन और मि० जोन जार्डिन को पार्लमेण्ट का सदस्य चुनने के अनुरोध का प्रस्ताव पेश किया था। १९०८ की पहली 'नरम' काग्रेस मे श्री सिह क्रियाशील सदस्य के रूप मे उपस्थित थे। कलकत्ता-काग्रेस मे श्री सिह ने उत्तर प्रदेश के लिए एक गवर्नर और कार्यकारिणी की माग पेश की। वह फिर मद्रास में १९१४ मे शामिल हुए। इस काग्रेस मे उन्हे लन्दन मे गये हुए कमीशन के सदस्य के नाते अच्छा काम करने पर धन्यवाद दिया गया था। इस शिष्ट-मण्डल में उनके अतिरिक्त सर्वश्री भूपेन्द्र वसु, जिन्ना, समर्थ, मजहरुल हक, माननीय शर्मा और लाला लाजपतराय थे।

काग्रेस के उक्त कर्णधारो के अतिरिक्त काशीनाथ त्र्यम्बक तैलग, प० अयोध्यानाथ, मनमोहन घोष, लाल मोहन घोष, राजा रामपाल सिंह, मुशी गगा प्रसाद

वर्मा, रघुनाथ नृसिह मुधोलकर, पी० केसव पिल्ले, अंबिकाचरण मजुमदार, भूपेन्द्रनाथ वसु, प० विशन नारायण दर, लाला मुरलीधर आदि ने भी अपनी अमर सेवाओ-द्वारा उसे गौरवान्वित किया था। आगे आनेवाली पीढी इन सेवकों के प्रति सदा ऋणी रहेगी।

: ३ :

कांग्रेस की प्रारंभिक नीति : १८८५-१९१५

काग्रेस के प्रत्येक वार्षिक अधिवेशन पर अलग-अलग विचार करने का हमारा इरादा नही है। एक-के-बाद-एक होनेवाले अधिवेशनो मे जिन महत्वपूर्ण विषयों पर विचार होकर प्रस्ताव पास हुए उन्हे लेकर एक नजर यह देखना ही काफी होगा कि १८८५ से १९१५ तक काग्रेस की नीति और उसके कार्यक्रम का रुख क्या रहा। इसके लिए प्रस्ताव के महत्वपूर्ण विषयो को भिन्न-भिन्न भागो मे बाट कर क्रमश: विचार करना उत्तम होगा।

इण्डिया कौंसिल

कांग्रेस ने अपने प्रथम अधिवेशन मे ही इस बात पर जोर दिया था कि भारत-मंत्री की कौसिल (इण्डिया कौसिल) तोड़ दी जाय। बाद के दो अधिवेशनो में भी उस प्रस्ताव को दोहराया गया। दसवे अधिवेशन मे उसकी जगह भारत-मत्री को परामर्श देने के लिए कामन-सभा की स्थायी समिति बनाने का प्रस्ताव पास किया गया और १९१३ मे कराची-काग्रेस ने जो प्रस्ताव पास किया उसमे तो उसने उन सशोधनो का भी उल्लेख कर दिया जिन्हे वह चाहती थी। इसके बाद के कुछ अधिवेशनो मे सशोधित प्रस्ताव पेश हुए। इसका कारण यह नही था कि कौसिल को तोडने की इच्छा उतनी प्रबल नही थी, बल्कि यह भावना कि जबकि इसके जल्दी तोडे जाने की कोई सभावना नही है तब इसका कुछ सशोधन ही हो जाय। वह कौसिल निरुपयोगी है, यह विश्वास तो बना ही रहा। इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि १९१७ मे शासन-सुधारो की जो योजना बनाई गई उसमे इसे तोड़ने के लिए कहा गया था।

वैधानिक परिवर्तन

आरंभ से ही काग्रेस का रवैया ऐसा रहा है कि उस पर शायद ही

कोई 'गरम' या 'अविनयी' होने का आरोप लगा सके। काग्रेस के पहले अधिवेशन मे जो कुछ मागा गया वह यही कि "बडी और मौजूदा प्रातीय कौसिलो का सुधार और उनके आकार मे वृद्धि होनी चाहिये। दूसरे अधिवेशन मे काग्रेस ने कौसिलो के सुधार की एक व्यापक योजना पेश की। इसमे कौसिलो के आधे सदस्य निर्वाचित रखने के लिए कहा गया, पर अप्रत्यक्ष चुनाव का सिद्धात मान लिया गया। कहा गया कि प्रातीय कौसिलो के सदस्यो का चुनाव तो म्युनिस्पल और लोकल बोर्डो, व्यापार-सघो तथा विश्वविद्यालयो द्वारा हो और बडी कौसिल का चुनाव प्रातीय कौसिलो-द्वारा हो। इतना ही नही, बल्कि सरकार को कौसिलो के निर्णय अस्वीकृत करने का अधिकार देने की बात भी इसमे मान ली गई, बशर्ते कि प्रातीय कौसिलो की अपील भारत-सरकार से और बडी कौसिल की अपील कामन सभा की स्थायी समिति से करने का अधिकार रहे। १८८७, १८८८ और १८८९ मे भी यह प्रस्ताव दोहराया गया। १८९० मे काग्रेस ने 'इडिया कौसिल एक्ट' मे सशोधन करने वाले श्री चार्ल्स ब्रैडला के उस बिल का समर्थन किया जो उन्होने पार्लमेट मे पेश किया था और काग्रेस की राय मे जिसमे काफी मात्रा मे भारत के चाहे हुए सुधार मिलते थे। लेकिन यह बिल बाद मे छोड दिया गया। १८९१ मे काग्रेस ने अपने इस निश्चय का समर्थन किया कि जब तक हमारे देश की कौसिलो मे हमारी जोरदार आवाज नही होगी और हमारे प्रतिनिधि भी निर्वाचित न होगे तबतक भारत का शासन सुचारु-रूप से और न्यायपूर्वक कदापि नही चल सकता। १८९२ मे सुधार सवधी लार्ड क्रॉस का 'इडियन कौसिल एक्ट' पास हो गया। तब और बातो को छोडकर भारत-सरकार के नियमो और प्रातीय सरकारो द्वारा अपनाई हुई प्रथाओ पर, जिनमे बहुत सुधार की जरूरत थी, काग्रेस ने अपना हमला शुरू किया।

यहा इस बात का उल्लेख आवश्यक है कि १८९२ के सुधारो मे कौसिलो के प्रतिनिधि चुनने का कोई विधान नही था। म्युनिस्पल और लोकल बोर्ड आदि स्थानीय सस्थाओ और अन्य निर्वाचन-मण्डलो को कौसिल के लिए चुनाव का जो कहने भर को अधिकार प्राप्त था वह सिर्फ नामजद करने के ही रूप मे था। यही नही, बल्कि ऐसे नामजद व्यक्तियो को भी स्वीकार करना-न-करना सरकार पर ही निर्भर था, परन्तु अमली तौर पर सरकार सदा उन्हे स्वीकार कर ही लिया करती थी।

१८९२ मे काग्रेस ने 'इण्डियन कौसिल एक्ट' को राजभक्ति के भाव से तो स्वीकार किया, परन्तु साथ ही इस बात पर खेद भी प्रकट किया कि स्वत उस एक्ट के द्वारा उन लोगो को कौसिलो के लिए अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार नही दिया गया है। १८९३ मे एक्ट को कार्य-रूप मे परिणत करने की उदार-भावना के लिए सरकार को धन्यवाद दिया गया, परन्तु साथ ही यह भी बतलाया गया कि यदि वास्तविक रूप मे उस पर अमल करना हो तो उसमे क्या-क्या परिवर्त्तन करने

आवश्यक है। साथ ही पंजाब मे कौसिल स्थापित करने की मांग की भी ताईद की गई। १८९४ और १८९७ मे भी इन प्रार्थनाओ को दोहराया गया। १८९२ के सशोधन से १८९३ मे कौसिलो के गैरसरकारी सदस्यों को प्रश्न पूछने का अधिकार मिल गया था, इसलिए १८९७ मे काग्रेस ने प्रश्नकर्त्ताओ को प्रश्नो के आरंभ में प्रश्न पूछने का कारण बताने का अधिकार भी देने के लिए कहा गया ; लेकिन उन्हे वह प्राप्त नही हुआ।

इसके बाद १९०४ तक काग्रेस ने इस विषय मे कुछ नही किया। १९०४ मे प्रत्येक प्रात से दो सदस्य प्रत्यक्ष चुनाव-द्वारा कामन-सभा मे भेजने और भारतवर्ष मे कौसिलो का और विस्तार करने एवं आर्थिक मामलो मे उन्हे भिन्न मत देने के अधिकार की भी माग की गई। साथ ही भारत-मन्त्री की कौसिल तथा भारत के प्राती की कार्यकारिणी सभा मे भारतीयो की नियुक्ति पर भी जोर दिया गया। १९०५ मे काग्रेस ने शासन-सुधारो पर पुन जोर दिया और १९०६ मे राय जाहिर की कि ब्रिटिश उपनिवेशो मे जो शासन-प्रणाली है वही भारतवर्ष मे भी जारी की जाय। १९०८ मे समय से पहले ही काग्रेस ने भविष्य मे होनेवाले शासन-सुधारो पर प्रसन्न होना शुरू कर दिया, लेकिन देश के भाग्य मे तो निराशा ही बदी थी। प्रतिनिधित्व की बात तो एक ओर, वस्तु-स्थिति यह हुई कि १९०९ के शासन-कानून के अन्तर्गत जो नियम स्वीकृत हुए उनमे तो उतनी भी उदारता नही थी जितनी कि जॉन मार्ले ने इससे पहले अपने खरीते में प्रदर्शित की थी।

यहा यह भी जान लेना आवश्यक है कि मॉर्ले-मिण्टो के नाम पर दस साल तक जिन शासन-सुधारो का दौर-दौरा रहा, वे थे क्या ? इन सुधारो के अनुसार बनने वाली बडी (सुप्रीम) कौसिल मे ६० अतिरिक्त सदस्य थे, जिनमे से केवल २७ निर्वाचित प्रतिनिधि थे। शेष ३३ सदस्यो मे से ज्यादा से ज्यादा २८ सरकारी अफसर थे, बाकी मे ५ मे से ३ गैर-सरकारी सदस्य विभिन्न उल्लिखित जातियो की ओर से गवर्नर-जनरल नामजद करता था और दो अन्य सदस्य भी उसी के द्वारा नामजद होते थे जो प्रदेश विशेष के बजाय स्वार्थ-विशेष के ही प्रतिनिधि होते थे। निर्वाचित सदस्यो मे भी बहुत-कुछ विशेष निर्वाचन क्षेत्रो से चुने जाते थे, जैसे सात प्रातो मे जमीदार, पाच प्रातो मे मुसलमान, एक प्रान्त मे (सिर्फ बारी-बारी से) मुसलमान जमीदार और दो व्यापार-संघ के प्रतिनिधि, इनके बाद जो स्थान बचते थे उनका चुनाव नौ प्रान्तीय कौसिलो के गैर-सरकारी सदस्यो-द्वारा होता था।

मॉर्ले-मिण्टो शासन-सुधारो के अनुसार दो भारतवासी (आगे बढाकर तीन कर दिये गये) १९०७ मे इण्डिया-कौसिल के सदस्य नियुक्त किये गये; एक को १९०९ मे गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी सभा में स्थान मिला और एक-एक भारतवासी १९१० में मद्रास तथा बम्बई के गवर्नरों की कार्यकारिणियो मे नियुक्त किया गया। इसी साल बगाल मे भी कार्यकारिणी बनाई गई और एक हिन्दुस्तानी

सदस्य उसमे भी रखा गया। बाद को वह प्रात प्रेसीडेन्सी (अहाते) की श्रेणी में रखा गया और स-कौसिल गवर्नर के मातहत हो गया। बिहार-उडीसा को मिलाकर १६१२ में स-कौसिल लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के मातहत एक पृथक् प्रान्त बना दिया गया और एक भारतवासी वहा की कार्यकारिणी का सदस्य बनाया गया।

१६०६ मे काग्रेस ने शासन-सुधारो के सम्बन्ध मे चार प्रस्ताव पास किये। पहले प्रस्ताव मे मजहब के आधार पर अलग-अलग निर्वाचन रखने पर नापसन्दी जाहिर की गई, दूसरे प्रस्ताव-द्वारा उत्तर प्रदेश, पजाब, पूर्वी बगाल, आसाम और ब्रह्मदेश मे लेफ्टिनेन्ट-गवर्नरो के सहायतार्थ कार्यकारिणिया बनाने की प्रार्थना की गई, तीसरे प्रस्ताव मे पजाब पर लागू किये जाने वाले शासन-सुधारो को असन्तोष-प्रद बताया गया और चौथे प्रस्ताव मे मध्यप्रान्त और बरार मे कौसिल स्थापित न करने तथा मध्यप्रात के जमीदारो और जिला तथा म्युनिसिपल बोर्डो की ओर से बडी कौसिल के लिए चुने जानेवाले दो सदस्यो के निर्वाचन से बरार को महरूम रखने पर असन्तोप प्रकट किया गया। १६१० और १६११ मे अमली तौर पर काग्रेस ने शासन-सुधार-सम्बन्धी अपनी १६०६ की आपत्तियो एव सूचनाओ का ही समर्थन किया और पृथक् निर्वाचन के सिद्धान्तो को म्युनिस्पल तथा जिला-बोर्डो पर भी लागू कर देने का विरोध किया।

१६१२ मे काग्रेस ने अपने पिछले प्रस्तावो मे उल्लिखित कमिया दूर न की जाने पर निराशा प्रकट की और अन्य सुधारो के साथ यह भी प्रार्थना की कि बडी तथा समस्त प्रान्तीय कौसिलो मे निर्वाचित सदस्यो का बहुमत रहे, प्रतिनिधियो द्वारा मत लेने की प्रथा उठा दी जाय, उन अपराधो (राजनैतिक) के लिए सत्ता पानेवालो को जिनमे नैतिक दोष न हो, चुने जाने के अयोग्य ठहराने की बाधा हटा दी जाय और अतिरिक्त प्रश्न पूछने का अधिकार कौसिलो के सभी सदस्यो को दे दिया जाय। पजाब मे कार्यकारिणी की स्थापना और स्थानीय सस्थाओ के लिए भी पृथक् निर्वाचन लागू कर देने के प्रस्तावो की ताईद की गई। आश्चर्य की बात है कि काग्रेस के शासन-सुधार-सम्बन्धी प्रस्ताव मे एक टुकडा यह भी था कि 'जो व्यक्ति अंग्रेजी न जानता हो उसे सदस्यता के अयोग्य समझा जाय।'

१६१५ मे बम्बई मे काग्रेस का अधिवेशन हुआ। भारत-सरकार के सर्वप्रथम भारतीय लॉ-मेम्बर सर सत्येन्द्रप्रसन्न सिह इसके सभापति थे। इसमे एक प्रस्ताव द्वारा महासमिति को आदेश दिया गया कि शासन-सुधारो के सम्बन्ध मे वह आल इण्डिया मुसलिम लीग की कमेटी से सलाह-मशविरा करे। इसके फलस्वरूप सयुक्त भारत की आकाक्षाओ की द्योतक एक सम्मिलित योजना बनाई गई और १६१६ की लखनऊ-काग्रेस ने उसपर स्वीकृति की मुहर लगा दी। इसके अनुसार काग्रेस ने स्वराज्य की ओर एक निश्चित कदम बढाने की माग की और कहा कि भारतवर्ष

का दर्जा बढाकर उसे पराधीन देश के बजाय साम्राज्य के स्व-शासित उपनिवेशो के समान भागीदार बना दिया जाय।

इस योजना को प्रस्ताव-द्वारा स्वीकार करके ही काग्रेस सन्तुष्ट नही हो गई, बल्कि सर्व-साधारण को इसे समझाने एव इसका प्रचार करने के लिए उसने अपनी एक कार्य-समिति भी बनाई। प्रधान मन्त्रियो ने श्री० एस० वरदाचार्य जैसे प्रसिद्ध वकील के पास, इसे भेजा और इसपर से भारतीय शासन-विधान का एक ऐसा सशोधक-बिल तैयार करने के लिए कहा जिससे 'गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया एक्ट' मे काग्रेस-लीग-योजना के अनुसार सशोधन हो जाय।

१९१७ की कलकत्ता-काग्रेस मे इस घोषणा पर कृतज्ञतापूर्वक सन्तोष प्रकट किया गया कि भारतवर्ष में उत्तरदायी शासन स्थापित करना सरकार का उद्देश्य है, पर साथ ही इस बात पर जोर दिया गया कि स्वय विधान मे इसके लिए समय की कोई अवधि नियत कर दी जाय, जिसके अन्दर-अन्दर सम्पूर्ण रूप से यह प्राप्त हो जाय और शासन-सुधारो की पहली किश्त के रूप मे सुधारो-सम्बन्धी काग्रेस लीग-योजना को असली रूप दे दिया जाय।

मि० माण्टेगु नवम्बर १९१७ मे भारत आये और माण्ट-फोर्ड-शासन-सुधार की रिपोर्ट जून १९१८ मे प्रकाशित हो गई। सितम्बर १९१८ के बम्बई के विशेष अधिवेशन में उसपर विचार हुआ। इसके सभापति श्री हसन इमाम थे। माण्ट-फोर्ड रिपोर्ट मे प्रस्तावित शासन-सुधारो की योजना के आगे, जिसका मुख्य भाग द्वैध-शासन था, काग्रेस-लीग-योजना दब गई। नई (माण्ट-फोर्ड) योजना के अन्तर्गत केन्द्रीय व्यवस्थापक-मण्डल मे राज्यपरिषद् (कौंसिल आफ स्टेट) के नाम से एक परिषद् का आयोजन किया गया, गवर्नर जनरल के सहायतार्थ प्रातो मे बडी-बडी समितिया बनाई गईं और कौंसिलो-द्वारा समर्थन न पानेवाली बातो के लिए गवर्नरो को अधिक अधिकार दिये गये। बम्बई के विशेष अधिवेशन ने निश्चय किया कि राज्य-परिषद् न रखी जाय, किन्तु यदि राज्य परिषद् बनाई ही जाय तो भारतीय-सरकार के लिए भी प्रान्तो की तरह रक्षित और हस्तान्तरित विभागो की तजवीज की जाय, उसके कम-से-कम आधे सदस्य निर्वाचित हो और सर्टिफिकेट देने का नियम केवल रक्षित विषयो के लिए हो। साथ ही द्वैध-शासन स्वीकार किया गया और केन्द्र मे द्वितीय परिषद् को भी इस शर्त पर स्वीकृति दी गई कि केन्द्र मे भी द्वैध-शासन जारी कर दिया जाय, यद्यपि माण्ट-फोर्ड योजना मे यह बात नही थी।

इस प्रकार सरकार ने जो-कुछ दिया उसे, अर्थात् राज्य-परिषद् को, बेकार कर दिया, क्योंकि केन्द्र में द्वैध-शासन की जो माग की गई थी उसे उसने मजूर नही किया। बम्बई के विशेषाधिवेशन ने माण्ट-फोर्ड (शासन-सुधारो के) प्रस्तावो को कुल मिलाकर निराशाजनक और असन्तोषप्रद बतलाया और पहले के दो

अधिवेशनो की मागो की ताईद करते हुए उसने कानून के सामने सब प्रजा की समानता, स्वतन्त्रता, जानमाल की सुरक्षा और लिखने-बोलने तथा सभाओ मे सम्मिलित होने की आजादी, शस्त्र रखने का अधिकार एव शारीरिक सजा सब प्रजाजनो पर एक-समान लागू करने के मौलिक अधिकारो-सम्वन्धी एक धारा जोडी, फिर भी सच पूछिये तो उसमे मि० माण्टेगु की ही पूरी जीत हुई। १९१८ का दिल्ली-अधिवेशन प० मदनमोहन मालवीय के सभापतित्व मे हुआ और उसने भी इन्ही वातो की ताईद की, परन्तु उसने सब प्रातो के लिए द्वैध-शासन की नही, वल्कि पूर्ण उत्तरदायी शासन की माग की। दिल्ली-अधिवेशन मे केन्द्रीय शासन मे द्वैध-शासन-प्रणाली जारी करने के लिए कहा गया, पर परराष्ट्र-विभाग और जल-थल-सेना के विपय रक्षित भानकर उससे पृथक् रखे गये। द्वितीय परिषद् के बारे मे बम्बई के विशेष अधिवेशन का प्रस्ताव ही दोहराया गया और उसके आधे सदस्य निर्वाचित रखने के लिए कहा गया।

११ नवम्बर १९१८ को सुलह की घोपणा के साथ यूरोपीय महायुद्ध का खात्मा हुआ। इस सम्बन्ध मे हुई राष्ट्रपति विलसन, प्रधान मन्त्री लायड जार्ज तथा अन्य ब्रिटिश राजनीतिज्ञो की घोषणाओ को उद्धृत कर, आत्म-निर्णय के सिद्धात को समस्त प्रगतिशील राष्ट्रो पर लागू करने की बात पर जोर देते हुए, काग्रेस ने निश्चय किया कि भारत पर भी इसे लागू किया जाय और समस्त दमनकारी कानून रद्द कर दिये जाय, परन्तु इन बातो का कोई प्रभाव नही पडा।

सरकारी नौकरियाँ

सरकारी नौकरियो मे खासकर उच्च पदो पर, भारतीयो की नियुक्ति के प्रश्न को काग्रेस ने विशेष महत्व दिया था। १८३३ मे कानून-द्वारा भारतीयो को सव पदो पर नियुक्त करने की बात स्वीकार की गई थी और १८५३ मे जब प्रतिस्पर्द्धी परीक्षाओ का आरभ हुआ तब कहा गया था कि उसमे भारतीयो के लिए बडी रुकावट है। लार्ड सेल्सबरी के शासन-काल मे सिविल-सर्विस की प्रतिस्पर्द्धी परीक्षाओ के उम्मीदवारो के उम्र मे कमी की गई। इसे काग्रेस ने उन कठिनाइयो मे और भी वृद्धि करना समझा, जो कि इसके लिए पहले से भारतीयो के सामने उपस्थित थी। भारतवासियो ने हमेशा यह माग की कि ये परीक्षाएँ इगलैड और भारतवर्ष दोनो जगह साथ-साथ होनी चाहिये जिससे भारतीयो की कठिनाई दूर हो जाय। जून १८९३ मे कामन-सभा ने दोनो देशो मे साथ-साथ परीक्षाएँ होने के समर्थन मे प्रस्ताव पास किया, जिसका काग्रेस तथा देश भर ने स्वागत किया, परन्तु दूसरे ही साल सरकार ने घोषणा कर दी कि उस प्रस्ताव पर अमल नही किया जायगा। इससे सारा उत्साह नष्ट होकर गहरी निराशा छा गई। भारत की सरकारी नौकरियो के सवध मे नियुक्त शाही कमीशन के सामने भारतीयो की जो गवाहिया हुईं उनसे

यह बात स्पप्ट हो गई कि जबतक यह सुधार न हो जाय तब तक भारतीय मागो के साथ कदापि न्याय नही हो सकता।

दूसरे अधिवेशन मे काग्रेस की ओर से इस काम के लिए नियुक्त उप-समिति ने इस सबध मे विस्तृत व्यौरा तैयार किया और माग की कि प्रतिस्पर्द्धी परीक्षाएँ भारतवर्प और इगलैड मे साथ-साथ हो जिससे सम्राट के सब प्रजाजन बिना किसी भेद-भाव के उसमे भाग ले सके तथा योग्यता के अनुसार नियुक्तियो की क्रमागत सूची तैयार की जाय। चौथे अधिवेशन तक जाकर कही इस आन्दोलन मे थोडी सफलता मिली। सरकारी नौकरियो (पवलिक सर्विसेज) के कमीशन ने अपनी रिर्पोट मे इस संवध मे जिन सुविधाओ की सिफारिश की उनकी काग्रेस ने तारीफ की, परन्तु उन्हे अपर्याप्त वताया। इसमे सन्देह नही कि काग्रेस के इच्छानुसार इण्डियन-सिविल-सर्विस की परीक्षा के लिए वय-मर्यादा १९ से २३ कर दी गई थी, लेकिन दूसरी तरह से कमीशन की सिफारिशो पर जारी की गई सरकारी आज्ञा से स्थिति और भी खराब हो गई थी। क्योकि उससे भारतीय उच्चाधिकारियो के लिए दो ही उपाय रह गये थे—या तो जिस स्थिति मे स्टेच्युटरी सर्विस के मातहत वे उस समय थे उसी मे बने रहे, या प्रान्तीय सर्विस मे सम्मिलित हो जाय, जिनके सदस्यो के लिए शासन के सब उच्च पदो पर ताला डाल दिया गया था। स्थिति उस समय यह थी कि प्रथम तो सर्व-भारतीय नौकरियो के लिए प्रतिस्पर्द्धी परीक्षाएँ होती थी, दूसरे स्टेच्युटरी सनदी नौकरिया थी जिनकी 1/6 नौकरिया १८६१ के कानून के अनुसार भारतीयो के लिए रक्षित थी, तीसरे सनदी नौकरिया थी जिनमें भारतीय ही भारतीय थे। १८९२ मे काग्रेस ने पब्लिक सर्विस कमीशन की रिपोर्ट पर किये गये भारत सरकार के प्रस्ताव पर असतोप प्रकट किया और उसके वारे मे कामन-सभा को एक प्रार्थना-पत्र भेजा। वात यह थी कि दूसरी श्रेणी की ९४१ नौकरियो में 1/6 पद १५८ भारतीयो के लिए रखे गये थे, परन्तु पब्लिक-सर्विस-कमीशन ने कहा कि इनमे से १०८ पद उन्हे देने चाहिए। भारत-मत्री ने उस 'चाहिए' शब्द को भी वदल कर 'दिये जा सकते है' कर दिया। इससे १५८ मे से, जो १०८ पद सरकार के हाथ मे थे उममे से सिर्फ ९३ पद ही १८९२ मे भारतीयों को दिये गये। इसके वाद तो स्थिति और भी खराव हो गई। भारत-सरकार के तत्सवधी प्रस्ताव की भारत-मत्री ने अपने खरीते-द्वारा पुष्टि कर दी। फलत. १८९४ में जाति-भेद के आधार पर भारतीयो के खिलाफ अयोग्यता की निश्चित मुहर लग गई, क्योकि उस खरीते मे यह स्पष्ट कर दिया गया कि सनदी नौकरियो (द्वितीय श्रेणी के उच्च पदो) मे कम से कम इतने अग्रेज अफसर तो रहने ही चाहिए। २ जून १८९३ को कामन-सभा ने इस आशय का जो प्रस्ताव पास किया था, कि भारतीय जनता के साथ न्याय करने के लिए दोनो देशो में साथ-साथ परीक्षाएँ होने का क्रम शीघ्र अमल मे ले आना चाहिए, उसका इससे खात्मा

हो गया। इस प्रकार जबकि भारतवर्ष 'इण्डियन सिविल, मेडिकल, पुलिस, इजिनियरिंग, टेलीग्राफ, फारेस्ट और एकाउण्ट्स सर्विसेज' (नौकरियो) मे प्रवेश करने के लिए दोनो देश मे साथ-साथ प्रतिस्पर्द्धी परीक्षाएँ होने की सुविधा माग रहा था, सरकार ने १८९५ मे उनसे उलटा रुख अख्तियार किया। शिक्षा विभाग की ऊची नौकरियो को दो भागो मे वाट दिया गया—बडी अर्थात् आई० ई० अस० (सर्वभारतीय) और छोटी अर्थात् पी० ई० एस० (प्रान्तीय), बडी नौकरियो की नियुक्ति इग्लैण्ड मे और छोटी नौकरियो की नियुक्ति भारतवर्ष मे होने का नियम रखा गया। १८८० से पहले ऐसा नही था। उस समय बगाल मे उच्चपदस्थ भारतीयो और अग्रेजो को एक समान वेतन मिलता था। दोनो का प्रारंभिक वेतन ५०० रुपये होता था, पर १८८० में भारतवासियो का वेतन घटा कर ३३३) कर दिया गया और १८८९ मे २५० रु० ही रह गया, यद्यपि भारतवासी इग्लैण्ड के विश्वविद्यालयो के ही ग्रेजुएट होते थे। भारतवासियो के लिये अधिक-से-अधिक वेतन १८९६ मे ७०० रु० था, चाहे कितने ही समय की उनकी नौकरी क्यो न हो जाय, परन्तु अग्रेजो को अपनी नौकरी के दस वर्प पूरे होते ही १,००० रु० मिलने लगते थे। नयी योजना ने भारतवासियो को ऐसे कुछ कालेजो के प्रिन्सिपल होने से भी महरूम कर दिया जो अग्रेजो की पढाई के लिए रक्षित थे।

सैनिक समस्या

सैनिक समस्या पर भी काग्रेस ने ध्यान दिया। अपने पहले अधिवेशन में ही काग्रेस ने सैनिक खर्च की प्रस्तावित वृद्धि का विरोध किया। अगले वर्ष इस बिना पर भारतीयो को सैनिक स्वयसेवक बनाने की प्रथा जारी करने पर जोर दिया गया, कि यूरोप की इस समय जो अस्त-व्यस्त हालत है उसमे यदि कोई खतरनाक वक्त आ जाय तो वे (ब्रिटेन की) सरकार के लिये बडे सहायक सिद्ध होगे। तीसरे साल भारत की राजभक्ति और १८५८ की घोषणा मे महारानी विक्टोरिया-द्वारा दिये गये वचन के आधार पर सेना-विभाग की ऊँची नौकरियो का दरवाजा भारतवासियो के लिए भी खोलने का मतालबा किया गया। इसके लिए काग्रेस ने देश मे सैनिक कालेज की स्थापना करने के लिए कहा। चौथे और पाचवे अधिवेशनो मे पहले के प्रस्तावो की पुष्टि की गई। छठे मे कोई विचार नही हुआ, पर सातवे मे इस पर चर्चा हुई और सरकार से आग्रह करते हुए यह मतालबा किया गया कि वह शस्त्र-विधान के नियमो मे ऐसा सशोधन करे कि वे धर्म, जाति या वर्ण के भेद-भाव वगैर सब पर एक-समान लागू हो, साम्राज्य के जिस-जिस भाग मे अधिक सैनिक प्रवृत्ति के लोग हो वहा-वहा अनिवार्य सैनिक-सेवा की पद्धति प्रचलित करके उनका सगठन किया जाय और भारत मे सैनिक-विद्यालयो की स्थापना एव सैनिक-स्वयसेवको की भर्त्ती की प्रथा आरम्भ की जाय। इन प्रार्थनाओ

और विरोधों के होते हुए भी सैनिक व्यय में उलटे असाधारण वृद्धि हुई। तब आठवें अधिवेशन में कांग्रेस को यह मांग पेश करनी पड़ी कि इस व्यय का एक हिस्सा इंग्लैण्ड को भी बरदाश्त करना चाहिए। नवें अधिवेशन ने इस विषय के सामाजिक पहलू अर्थात् भारत की फौजी छावनियों में होनेवाली वेश्यावृत्ति एवं कुत्सित बीमारियों पर विचार किया और दसवें अधिवेशन ने उसी प्रस्ताव की फिर पुष्टि की। १८९४ में वेल्बी-कमीशन नियुक्त हुआ जो कि सैनिक व्यय को इंग्लैण्ड और भारतवर्ष के बीच विभक्त करने वाला था। ग्यारहवें और बारहवें अधिवेशनों में इस सम्बन्ध में कोई विचार नहीं हुआ, परन्तु सीमाप्रान्त में सरकार ने जो नीति ग्रहण की थी उसके फलस्वरूप तेरहवें अधिवेशन में इस पर विचार हुआ और सरकार से कहा गया कि इस व्यय में इंग्लैण्ड को भी हिस्सा बटाना चाहिए। चौदहवें अधिवेशन ने भी ऐसा ही निश्चय किया, परन्तु पन्द्रहवें अधिवेशन ने इसके एक नये पहलू को स्पर्श किया। सीमाप्रान्त की लड़ाई खत्म हो जाने पर सोलहवें अधिवेशन में कांग्रेस फिर सैनिक विद्यालय के प्रश्न पर जा पहुंची। इस अधिवेशन के साथ उन्नीसवीं सदी समाप्त हो गई। १९०१ में महारानी विक्टोरिया भी

मे राष्ट्रीय नव-चेतना के समय भी साल-दर-साल सामने आनेवाले इस दुस्साध्य विषय को भुलाया नही गया।

१६०८ मे काग्रेस ने जोरो के साथ ३,००,००० पौण्ड के उस नये भार का विरोध किया जो रोमर-कमेटी की सिफारिश पर ब्रिटिश युद्ध-विभाग ने भारतीय कोष पर लाद दिया था। १६०६ और १६१० मे साल-दर-साल बढते जानेवाले सैनिक व्यय की आलोचना की गई। १६१२ और १६१३ के अधिवेशनो मे सेना विभाग के उच्च पद भारतीयो को न देने के अन्याय की ओर पूर्ण ध्यान आकृष्ट किया गया। १६१४ मे काग्रेस ने अपनी इस माग को फिर दोहराया कि सेना-विभाग की ऊची नौकरिया भारतवासियो को भी दी जाय, सैनिक स्कूल खोले जाय और भारतीयो को सैनिक-स्वयसेवक बनाया जाय। ड्यूक आफ कनाट ने इनमे पहली दो बातो का समर्थन किया। १६१७ मे भारतवासियो पर से सेना की 'कमीशन्ड' जगहे मिलने की बाधा हटा ली गई और नौ भारतवासियो को ऐसी जगहे भी दी गईं। इससे उस अन्याय की आशिक पूर्ति हुई। फलत कलकत्ता मे होनेवाली १६१७ की काग्रेस ने इस विषय मे अपना सन्तोष प्रकट किया और १६ से १८ वर्ष तक की उम्र के युवको की 'केडेट कोर' प्रत्येक प्रान्त मे सगठित करने पर जोर दिया।

कानून और न्याय

ब्रिटिश-भारत मे कानूनी सुधार के लिए आन्दोलन राजा राममोहन राय के समय से आरभ हुआ। उन्होने अन्य विषयो के साथ इस विषय मे जिन सुधारो का प्रतिपादन किया उनमे से एक यह भी था कि शासन और न्याय कार्यो को एक दूसरे से सर्वथा पृथक् किया जाय, लेकिन नतीजा कुछ भी नही हुआ। राजा राममोहन राय के बाद उत्साही कार्यकर्ताओ के एक दल ने जिसमे श्री दादाभाई नौरोजी सबसे प्रमुख थे, इस प्रश्न को हाथ मे लिया। इसके लिए बगाल, बम्बई तथा मद्रास मे सघ बनाये गये, जिनमे बगीय राष्ट्रीय-सघ खास तौर पर उल्लेखनीय था। शिक्षा-प्रचार के साथ-साथ इस आन्दोलन का प्रसार और जोर-शोर के साथ बढा और १८८५ मे काग्रेस ने इस प्रश्न को अपने हाथ मे ले लिया। दूसरे अधिवेशन मे काग्रेस ने अपनी यह राय जाहिर की कि शासन और न्याय-कार्यो का शीघ्र एक-दूसरे से पृथक् होना आवश्यक है। तीसरे अधिवेशन मे इसका प्रतिपादन करते हुए कहा गया कि ऐसा करने मे खर्च बढाना पडता हो तो भी इसमे देरी न की जाय। अगले साल यह विषय और जूरी-प्रथा का प्रश्न, दोनो एक-साथ कर दिये गये और प्रतीत होने लगा कि मूल प्रस्ताव मे ही अब उसका भी प्रवेश हो जायगा, लेकिन ऐसा हुआ नही। प्रति वर्ष काग्रेस इस प्रस्ताव को दोहराती रही और १८६३ मे तो यहा तक कह दिया गया कि न्याय और शासन-कार्यो का सम्मिश्रण भारत

के ब्रिटिश-शासन के लिए एक बडा कलक है, जिससे
और समाज वाले लोगो को बेहद तकलीफ उठानी पडती
दो भूतपूर्व भारत-मन्त्रियो (लार्ड किम्बरली तथा ल
धृत किय वे भी उसके समर्थक ही थे। और यह वस्
कि वे मत जिम्मेदार अधिकारियो के थे, किसी एेरे-गैरे व्यक्ति
हुआ कुछ भी नही और आन्दोलन बराबर जारी रहा। मदनमोहन
इसमे खास तौर पर दिलचस्पी ली और इसे अपने अध्ययन का मुख्य विषय बनाया। १८९६ मे उनकी मृत्यु होजाने पर, बारहवे अधिवेशन मे, काग्रेस ने उनकी मृत्यु पर शोक मनाते हुए इस बात पर सन्तोष प्रकट किया कि 'न्यायालयो को शासन-कार्य से अलग रखने के विचार का इग्लैण्ड और भारतवर्ष की जनता ने समर्थन किया है। १८९९ मे इस अत्यन्त आवश्यक सुधार को कार्यान्वित करने के लिए कई प्रसिद्ध अग्रेज न्यायाधीश और सार्वजनिक सेवको ने सपरिषद् भारत-मन्त्री को प्रार्थना-पत्र भेजा। इससे काग्रेस को और बल मिला। १९०१ मे, काग्रेस ने देखा कि मामला आगे बढ गया है और भारत सरकार इस पर गौर कर रही है। परन्तु १९०८ तक कोई अमली तरक्की नही दिखाई दी, क्योकि उसी साल काग्रेस ने इस बात पर सन्तोप प्रकट किया कि बगाल प्रान्त के लिए सरकार ने कुछ निश्चित रूप मे इस बात को स्वीकार कर लिया है, लेकिन बारह महीने पूरे भी नही हो पाये थे कि काग्रेस को अपनी निराशा का पता लग गया। इसके बाद लगातार दो अधिवेशनो मे इसी निराशा का राग अलापा गया।

जूरी के अधिकार कम करने और न्याय तथा शासन-कार्य सम्मिलित रखने के पुराने घाव अभी हरे ही थे और उनमे सुधार होने के कोई आसार नजर नही आ रहे थे, कि १८९७ मे एक नया घाव और कर दिया गया। १८१८ का तीसरा रेग्युलेशन (बगाल), १८१९ का दूसरा रेग्युलेशन (मद्रास) और १८२७ का पच्चीसवा रेग्युलेशन (बम्बई) ये तीन पुराने कानून प्रकाश मे आये, जिनके मातहत हर किसी को मुकदमा चलाये बगैर ही जलावतन किया जा सकता था। सरदार नातू-बन्धुओ पर इस शस्त्र का प्रयोग किया गया, जो १८९७ के काग्रेस अधिवेशन होने के वक्त ५ महीने से अधिक समय से जेल मे थे। कांग्रेस यह देखकर दग रह गई, क्योकि गिरफ्तारी से पहले उनको वैसा नोटिस भी नही दिया गया था जिसे इन रेग्युलेशनो के अन्तर्गत देना जरूरी था।

१८९७ का साल हर तरह प्रतिक्रिया का साल था। लोकमान्य तिलक को राजद्रोह के अपराध मे ऐसे लेख प्रकाशित करने पर सजा दी गई जो खुद उनके लिखे हुए नही थे। पूना मे ताजीरी पुलिस तैनात की गई और कानून की राजद्रोह (दफा १२४ ए) तथा खतरे की झूठी अफवाहे फैलाने-सम्बन्धी (दफा ५०५) धाराओं मे ऐसा संशोधन किया गया जिससे वे और भी कठोर हो गईं। काग्रेस ने

मे साधारण के अधिकारो पर किये जाने वाले इस आक्रमण का विधिवत् विरोध किया ।

दायमी बन्दोबस्त और अकाल

कांग्रेस ने सबसे पहले नही तो भी आरभ मे ही थोडे-थोडे समय के लिए होनेवाले जमीन के बन्दोबस्त पर भी ध्यान दिया । इलाहाबाद मे होनेवाले कांग्रेस के चौथे अधिवेशन ने अपनी स्थायी समिति को यह काम सौंपा कि वह इस सम्बन्ध मे विचार करके १८८९ के अधिवेशन मे अपनी रिपोर्ट पेश करे। १८८९ मे बाबू वैकुण्ठनाथ सेन ने इसका उल्लेख करते हुए बताया कि १८६० मे दुर्भिक्ष के कारणो की जाच के लिए जो कमीशन नियुक्त हुआ था उसने दायमी बन्दोबस्त की सिफारिश की थी, जिसे भारत-मन्त्री ने भी १८६२ के अपने खरीते मे मजूर कर लिया था। साथ ही उन्होने यह भी बताया कि कभी-कभी तो लगान मे बढाई हुई रकम गाव में पैदा होनेवाली फसल स भी बढ जाती है ।

१८९२ मे कांग्रेस ने लगान को निश्चित और स्थायी करने के लिए कहा, और कृषि-सम्बन्धी बैंको की स्थापना के लिए प्रार्थना की । अगले साल भारत-मत्री द्वारा दिये गये उन वचनो की पूर्ति करने के लिये कहा गया, जो उन्होने अपने १८६२ और १८६५ के खरीतो मे दायमी बन्दोबस्त के लिए दिये थे। १८९६ मे कांग्रेस ने अपने रुख को और भी नरम किया और प्रार्थना की कि एक के बाद दूसरा बन्दो-बस्त करने मे कम-से-कम ६० साल की अवधि रखी जाय । १९०३ मे कांग्रेस इससे भी आगे बढी और 'लगान अधिक न लगाया जाय' इसके लिए कानूनी तथा अदालती रुकावटे लगाने के लिए कहा । १९०६ मे कांग्रेस ने लॉर्ड कैनिंग और लार्ड रिपन की नीति से, जो उन्होने क्रमश १८६२ और १८८२ मे लगान पर नियन्त्रण रखने के सबध मे प्रतिपादित की थी, १९०२ मे एक प्रस्ताव-द्वारा घोषित लॉर्ड कर्जन की नीति की तुलना करके दोनो को परस्पर विरोधी बताया और इस विचार का विरोध किया कि भारतवर्ष मे जमीन का लगान 'कर' नही बल्कि 'किराया' है। १९०८ मे भी इसी तरह का एक प्रस्ताव पास हुआ। इसके बाद निराश होकर अपने आप कांग्रेस ने इस विषय को छोड़ दिया ।

सिचाई-कर के प्रश्न पर कांग्रेस ने केवल एक बार विचार किया और वह १८९४ मे हुए मद्रास के अधिवेशन मे, जिस साल कि एक हुक्म निकालकर आब-पाशी का कर ४) से बढाकर ५) प्रति एकड कर दिया गया था । इन दिनो लगातार जो दुर्भिक्ष हुए उनका आंशिक कारण इन करो और महसूलो की लगातार वृद्धि होते जाना ही था । १८९६ के दुर्भिक्ष की परिस्थिति के कारण कांग्रेस को सरकार की आर्थिक नीति का सिंहावलोकन करना पडा। सरकार से कहा गया कि वह अकाल-रक्षक-कोष बनाकर अपनी की हुई प्रतिज्ञा पूर्ण करे। दायमी बन्दोबस्त

और कृषि-सम्बन्धी बैंकों तथा कला-कौशल सम्बन्धी स्कूलो की स्थापना को गरीबी दूर करने का असली उपाय बतलाया गया। इसके बाद ही एक अकाल-कमीशन बैठाया गया। इसी बीच अकाल-पीडितो की सहायता के लिए ब्रिटेन और अमरीका से आई हुई उदारतापूर्ण रकमो के लिए धन्यवाद प्रकट करते हुए कांग्रेस ने १,००० पौण्ड की रकम लन्दन के लार्ड मेयर के पास भेजने का निश्चय किया ताकि लन्दन के किसी प्रमुख स्थान मे वह प्राप्त-सहायता के लिए भारतीयो की कृतज्ञता का सूचक एक स्मारक बना दे। यह १८९८ की बात है। लेकिन ऐसा करते हुए कांग्रेस ने उन असली उपायो की उपेक्षा नही की जिनका वह प्रतिपादन करती आ रही थी। १८९९ मे एक बार फिर उसने सरकार पर जोर डाला कि सरकारी खर्च मे कमी की जाय, स्थानीय और देशी उद्योग-धन्धो की उन्नति की जाय और जमीन का लगान तथा दूसरे करो मे कमी की जाय। अगले साल सारे प्रश्न पर और भी व्यापक रूप से विचार किया गया और इस बात की माग पेश की गई कि भारतवासियो की आर्थिक अवस्था की जाच कराई जाय। इसके बाद क अधिवेशनो में हम इस विषय पर और कुछ नही पाते, जिसका कारण शायद यह है कि बाद के वर्षो मे कांग्रेस का दृष्टिकोण पहले से काफी बदल गया था।

कानून जंगलात

जगलात के कानूनो से हुए नुकसान को कांग्रेस ने अच्छी तरह नही समझा। उनका मुकाबला तो लगान और नमक के कर से ही हो सकता था, जिन्होंने लोगो पर असह्य बोझ डाल दिया था। १८९२-९३ मे बडी नम्रता के साथ भारत-सरकार से प्रार्थना की गई कि जगलात के कानूनो से जो कठिनाइया उत्पन्न हुई है, खासकर दक्षिण-भारत और पजाब के पहाडी इलाको मे, उनकी जाच कराई जाय। पजाब-सरकार ने इस सम्बन्ध मे जो नियम बनाये वे इतने कठोर और अन्यायपूर्ण थे कि नवे अधिवेशन मे प० मेघनराम ने उन्हे अत्यन्त स्वेच्छाचारी और किसी भी सभ्य-सरकार के लिए कलक-रूप बताया था। इनके अनुसार अगर कही आग लग जाती, फिर चाहे वह आकस्मिक हो या किसी दूसरे ने लगाई हो, तो उसके लिए वही व्यक्ति जिम्मेदार माना जाता जो उस जमीन का मालिक होता या उस समय उसपर काबिज होता, और उसके साथ उसी तरह का व्यवहार होता, मानो उसने जान-बूझकर कानून की परवाह न की हो। जिन पहाडी लोगो के लिए पहाड़ो पर पैदा होनेवाली घास या लकडी ही सब कुछ थी और जिसपर उनकी और उनके पशुओं की जिन्दगी का दारोमदार था, उनके लिए उसे लेने की मनाही कर दी गई। यहा तक कि जगल में तापने के लिए वे आग भी नही जला सकते थे। इसके विरुद्ध हुए आन्दोलन के फलस्वरूप २० अक्तूबर १८९४ को भारत-सरकार ने न० २२ एफ० का एक गश्ती प्रस्ताव प्रकाशित किया, जिसमें जङ्गलो के प्रबन्ध

मे रैयतो की कृषि-सम्बन्धी आवश्यकता के सामने आर्थिक प्रश्नो को कम महत्व देने का सिद्धान्त स्वीकार किया गया था।

इस पर काग्रेस ने अपने दसवे अधिवेशन मे, आग्रह किया कि तीसरे और चौथे वर्ग के जगलो मे जलाने की लकडी, पशु चराने के अधिकार, पशुओ के खाने की चीजे, मकान और खेती के औजार वनाने के लिए सागौन और खाने की जङ्गली चीजे आदि, उचित प्रतिबन्धो के साथ, हर हालत मे मुफ्त दी जाय और जगलो की सीमाये इस तरह निश्चित की जाय जिससे किसानो को इस महकमे के कर्मचारियो से तग हुए विना अपने जातीय (सामूहिक) अधिकारो का उपभोग करने की छूट रहे। ग्यारहवे और चौदहवे अधिवेशनो मे इस वात पर जोर दिया गया कि जगलात के कानूनो का उद्देश्य जङ्गलो की आमदनी का जरिया वनाना नही, बल्कि किसानो और उनके पशुओ के लिए उन्हे रक्षित रखना है। साथ ही इस बात की शिकायत भी की गई कि भिन्न-भिन्न प्रातीय सरकारो ने जो नियम वनाये है उनके अनुसार महकमे जङ्गलात के कामो से देहाती लोगो पर वुरा असर पडता है और वे उस महकमे के छोटे कर्मचारियो के दवाव और तकलीफ मे पड जाते है। लेकिन १८९९ के वाद के अधिवेशनो मे, जगल-सम्बन्धी कोई प्रस्ताव पास नही हुआ। सिर्फ एक वडा प्रस्ताव वनाया जाता था जिसके एक अंश के रूप मे इसका उल्लेख रहता था।

व्यापार और उद्योग

ब्रिटिश-शासन मे भारतवासियो की जो-जो समस्याएँ थी, उनके खास-खास पहलुओ को काग्रेस के प्रारम्भिक राजनीतिज्ञो ने भली-भाति समझ तो लिया था, परन्तु ये समस्याएँ ऐसी थी कि उनको हल करने का रास्ता उन्हे हमेशा दिखाई न पडता था। यह वात वे जान गये थे कि लकाशायर के मुकावले मे भारतीय हित छोटे और गौण है, साथ ही यह बात भी उन्होने वखूवी जान ली थी कि ग्रामीण दस्तकारियो और कला-कौशल को चाहे निश्चित रूप से नष्ट न किया जाता हो, मगर उनके प्रति लापरवाही जरूर की जाती है।

१८९४ मे काग्रेस ने ब्रिटिश-भारत मे तैयार होनेवाले सूती माल पर कर लगाये जाने का विरोध किया और अपना यह निश्चित विश्वास प्रकट किया कि इस कर का निश्चय करते वक्त लंकाशायर के हितो के सामने भारतीय-हितो का वलिदान किया गया है। ग्यारहवे अधिवेशन मे घोषणा की गई कि २० नवम्बर से नीचे के भारतीय सूती माल को कर से मुक्त रखने पर लकाशायर वालो ने जो आपत्ति की है वह वे-वुनियादी है। १९०६ मे, दादाभाई नौरोजी के सभापतित्व मे, कलकत्ता-काग्रेस का जो प्रसिद्ध अधिवेशन हुआ उसमे प० मदनमोहन मालवीय ने इस रहस्य का उद्घाटन किया कि हमारे उद्योग-धन्धो के वारे मे हमे सफलता क्यो नही

मिलती। उन्होने कहा कि हमारे देश का कच्चा माल देश से बाहर चला जाता है और विदेशो से तैयार होकर उसका माल हमारे पास आता है। अगर हम स्वतन्त्र होते तो ऐसा न होने देते। उस हालत मे हम भी उसी प्रकार अपने उद्योगो का सरक्षण करते, जिस प्रकार कि सब देश अपने उद्योगो की शैशवावस्था मे करते है।

लो० तिलक ने इस बात पर अफसोस जाहिर किया कि विदेशी माल की सबसे ज्यादा खपत मध्य-श्रेणी वालो मे ही है। उन्होने कहा कि हमारे अन्दर स्वावलम्बन, दृढ-निश्चय और त्याग की भावना होनी चाहिए। स्वदेशी की भावना उत्पन्न होने पर और १९०६ तथा इसके बाद के वर्षो मे बहिष्कार-आन्दोलन से उसको प्रोत्साहन मिलने के फलस्वरूप भारतवर्ष का ध्यान भारतीय उद्योग-धन्धो के पुनर्जीवन की ओर खिच गया। गाव और उनके उद्योग-धन्धो एवं खेती की बरबादी की ओर भी भारतीय राजनीतिज्ञो का ध्यान गया। १८९८ मे ही पं० मदनमोहन मालवीय ने यह प्रस्ताव रखा कि सरकार को देशी उद्योग-धन्धो एवं कला-कौशल की उन्नती करनी चाहिए। १८९१ की नागपुर-काग्रेस मे, उर्दू मे भाषण करते हुए, ला० मुरलीधर ने इस सम्बन्ध मे श्रोताओ से बडी जोरदार अपील की थी। काग्रेस के नवे अधिवेशन मे पण्डित मदनमोहन मालवीय ने पुन अपना प्रभावशाली मत प्रकट किया। आगे चलकर सर एस० सुब्रह्मण्य ऐयर ने हाईकोर्ट की जजी से अवकाश ग्रहण करने के बाद १९१४ मे गांवो के पुनर्जीवन और कर्जा-संस्थाओं की आवश्यकता पर बहुत जोर दिया। १८९९ मे ला० लाजपतराय की प्रेरणा पर काग्रेस ने आधा दिन शिक्षा एवं उद्योग-धधो के विचार मे लगाया और इसके लिए एक उपसमिति कायम की। इन सब कार्रवाइयो के फलस्वरूप औद्योगिक प्रदर्शनी की शुरुआत हुई, जो सबसे पहले कलकत्ता काग्रेस के साथ १९०१ मे हुई। इसके बाद क्रमश. इसमे उन्नति होती गई। उद्योग-धन्धो की ओर काग्रेस का ध्यान १८९४ मे भारतीय सूती माल पर कर लगाये जाने के कारण ही आकृष्ट हुआ। इसका उसी समय उसने विरोध किया, लेकिन स्वयं गवर्नर-जनरल-द्वारा उसका विरोध किये जाने पर भी वह उठाया नही गया। उसे उठाना तो दूर, उलटे लार्ड सेल्सबरी ने यह निर्देश किया कि भारतीय माल की प्रतिस्पर्द्धा से ब्रिटिश माल को बचाने के लिए उपाय किये जायं। लगान का यह हाल था कि एक छोटे से जिले मे १८९१ मे ६६ फीसदी बढा, दूसरे मे ९९ फी सदी और तीसरे मे १६६ फी सदी हो गया और कुछ गावो मे तो ३०० से १५०० फी सदी तक बढा, जबकि इसके साथ-साथ फौजी खर्च भी बेशुमार बढता रहा।

उस समय जर्मनी मे फी सैनिक १४५ रु०, फ्रांस मे १८५ रु० और इंग्लैण्ड में २८५ रु० वार्षिक व्यय होता था, परन्तु हिन्दुस्तान मे प्रत्येक अंग्रेज सैनिक पर ७७५ रु० सालाना खर्च किया जाता था, और यह उस हालत में जबकि फी

आदमी की औसत आमदनी इग्लैण्ड में ४२ पौण्ड, फ्रास मे २३ पौण्ड और जर्मनी मे १८ पौण्ड थी और हिन्दुस्तान मे सिर्फ १ ही पौड थी। ये अक १८६१ के है।
अकालो के बारे मे बार-बार प्रस्ताव पास हुए और मजदूरी के सिलसिले मे सजा देने के कानून को उठा देने के लिए १८८७ मे ही प्रस्ताव किया गया।

बहिष्कार और स्वराज्य

१६०६ के बाद जो नवीन जागृति और नया तेज देश मे इस छोर से उस छोर तक फैल गया, उसका मूल-कारण वग-भग था। पुण्य-नगरी काशी मे जब कांग्रेस का २१वा अधिवेशन १६०५ मे हुआ तब उसमें वग-भग पर विधिवत् विरोध प्रदर्शित किया गया और कहा गया कि वह रद्द कर दिया जाय। कम-से-कम उसमे ऐसा सशोधन जरूर कर दिया जाय जिससे सारा बगाली-समाज एक शासन मे रह सके। परन्तु वग-भग आन्दोलन को दबाने के लिए जो दमनकारी उपाय काम मे लाये गये उनके विषय मे इस काग्रेस मे जो प्रस्ताव पास किया गया वह कुछ गोल-मोल था। १६०५ मे जिस साहस का अभाव था वह १६०६ मे आ गया। वग-भग पर एक प्रस्ताव करने के बाद काग्रेस ने बहिष्कार-आन्दोलन का भी समर्थन किया। इसके बाद काग्रेस ने कुछ नुकसान सहकर भी देशी उद्योग-धन्धो को प्रोत्साहन देने का प्रस्ताव पास किया। बस, गाडी यही रुक गई। दूसरे साल सूरत मे काग्रेस के दो टुकडे हो गये और नरम-दल-वाली काग्रेस ने तो आगे के सालो मे बहिष्कार को कतई छोड दिया, सिर्फ स्वदेशी को कायम रखा और स्व-शासन-सम्बन्धी प्रस्ताव उतरते-उतरते सिर्फ मिण्टो-मॉर्ले सुधार-योजना' के परीक्षण तक मर्यादित रह गया। १६१० मे नये वाइसराय लॉर्ड हार्डिङ्ग आये। उसी वर्ष काग्रेस ने उनसे राजनैतिक कैदियो को छोडने की अपील की। दूसरे साल फिर ऐसी अपील की गई। परन्तु १६१४ मे जब मद्रास मे काग्रेस का अधिवेशन हुआ तब उसने साहस करके सरकार से यह मतालबा किया, कि तारीख २५ अगस्त सन् १६११ के खरीते मे प्रान्तीय पूर्णाधिकार के सम्बन्ध मे जो वचन दिया गया है उसे वह पूरा करे और भारतवर्ष को सघ-साम्राज्य का एक अग बनाने और उस हैसियत के सम्पूर्ण अधिकार देने के लिए जो कार्य आवश्यक हो वे सब किये जाय।

साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व

सभवत लोगो का अनुमान होगा कि यह साम्प्रदायिक या जातिगत प्रतिनिधित्व का प्रश्न आजकल ही खडा हो गया है, परन्तु ऐसा नही है। सर ऑकलैण्ड कॉलविन (१८८८) जब उत्तर प्रदेश के लेफ्टिनेण्ट-गवर्नर थे तब इसकी बुनियाद पड़ चुकी थी। उस समय यह दिखाने की कोशिश की गई थी कि मुसलमान काग्रेस के विरोधी है। यहा तक कि ह्यूम साहब ने भी इसे महत्वपूर्ण

समझा और इसके विषय मे एक लम्बा जवाब उन्होने सर ऑकलैण्ड को भेजा। मुसलमानो पर भी इस विचार का तुरन्त प्रभाव पडा। काग्रेस का चौथा अधिवेशन इलाहाबाद मे यूरोपियन लोगो का विरोध होते हुए भी हुआ। उसमे शेख रजाहुसेन खा ने धडल्ले के साथ कहा कि मुसलमान नही, बल्कि उनके मालिक, सरकारी हुक्काम है, जो काग्रेस के मुखालिफ है।

लॉर्ड मिण्टो के जमाने मे साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के विचार ने मूर्त-रूप धारण किया। मिण्टो की शासन-सुधार-योजना मे मुसलमानो के लिए अलग निर्वाचन-संघ की तजवीज की गई थी, परन्तु साथ ही सयुक्त-निर्वाचन मे भी राय देने का उनका हक ज्यो-का-त्यो कायम रखा गया था। इस सबध मे जो बडी अजीब बात थी वह यह कि भिन्न-भिन्न जातियो के लिए भिन्न-भिन्न मताधिकार रखा गया था। एक मुसलमान तीन हजार रुपये साल की आमदनी वाला जहा मतदाता हो सकता था वहा एक गैर-मुसलिम तीन लाख सालाना आमदनी वाला हो सकता था। मुसलमान ग्रेजुएट को मतदाता बनने के लिए इतना काफी था कि उसे ग्रेजुएट हुए तीन साल हो जाय; परन्तु गैर-मुस्लिम के लिए तीस साल हो जाना जरूरी था। जरा गौर तो कीजिए, एक तरफ तीन हजार रुपये और दूसरी तरफ तीन लाख रुपये! एक तरफ तीन साल और दूसरी तरफ तीस साल! १९१० मे हालत बहुत नाजुक हो गई। सर डब्ल्यू० एम०.वेडरबर्न काग्रेस के सभापति हुए। उन्होने यह चाहा था कि हिन्दू और मुसलमानो की एक परिषद् की जाय, जिससे इस जातिगत प्रश्न पर मेल हो जाय। उस समय म्युनिसिपैलिटियो और लोकल-बोर्डो मे पृथक् निर्वाचन तरीके के जारी होने की बात चल रही थी। उत्तर प्रदेश मे, जहा कि पृथक् निर्वाचन नही था, यह पाया गया कि सयुक्त निर्वाचन मे मुसलमानो की सख्या कुल आबादी की $\frac{१}{६}$ होते हुए भी जिला-बोर्डो मे मुसलमान १८९ और हिन्दू ४४५ चुने गये और म्युनिस्पैलिटियो मे मुसलमान ३१० और हिन्दू ५६२। यहा तक कि सर जॉन हयूवेट जैसा प्रतिगामी उत्तर प्रदेश का लेफ्टिनेण्ट गवर्नर भी उस प्रान्त मे दोनो जातियो के मेल-मिलाप मे खलल डालने के पक्ष मे नही था। एक 'बर्न'सरक्यूलर अवश्य निकला था जोकि स्थानीय सस्थाओ मे जातिगत प्रतिनिधित्व के पक्ष मे था। उसमे यह प्रतिपादित किया गया था कि मुसलमानो को पृथक् निर्वाचन के अलावा सयुक्त निर्वाचन मे भी राय देने की सुविधा होनी चाहिए; क्योकि इससे दोनो जातियो मे अच्छे ताल्लुकात कायम रखने मे मदद मिलेगी। इस पर १९११ मे कलकत्ता-काग्रेस के सभापति प० बिशन नारायण दर ने कहा था कि मै इतना ही कहूंगा कि हमारी एकता बढाने की यह उत्कण्ठा हमारे भोलेपन से, बहुत भारी हुण्डी लिखवा लेना है।

परन्तु इसके थोडे ही दिनो बाद दुनिया की हालतो मे एक भारी परिवर्तन हो गया। बालकन-राज्य जो एक या दो सदी से यूरोप के मुर्गो के लडने का अखाड़ा बना

हुआ था, फिर एक बार नई लडाइयो का मैदान बन गया। तब १९१३ में नवाब सय्यद मुहम्मद बहादुर ने, जो कराची-कांग्रेस के सभापति थे,यूरोप मे तुर्क-साम्राज्य की नीव उखाडने और ईरान के दम घोटने के प्रयत्नो की ओर ध्यान दिलाया। तुर्की साम्राज्य को लगे उस धक्के को जिस दु ख के साथ मुसलमानो ने महसूस किया उसी को उन्होने वहा प्रदर्शित किया। अन्त मे उन्होने हिन्दुओ और मुसलमानो को अपनी मातृभूमि के लिए कन्धे-से-कन्धा मिलाकर काम करने पर बहुत जोर दिया। ऐसी परिस्थितिया थी जिनमे १९१३ की कराची-कांग्रेस मे हिन्दू और मुसलमानो ने अपने भेद-भाव मिटा दिये और मुस्लिम-लीग के इस विचार को, कि ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत भारतवासियो को स्वशासन दिया जाय, पसन्द किया और हिन्दू मुसलमानो के बीच मेल एव सहयोग का भाव बढाने वाले मुस्लिम लीग के कथन को पसन्द किया। कांग्रेस ने मुस्लिम-लीग द्वारा प्रदर्शित इस आशा का भी स्वागत किया कि भिन्न-भिन्न जातियो के नेता राष्ट्रीय हित के तमाम मसलो पर मिलकर एक साथ काम करने का रास्ता निकालने की हर तरह कोशिश करे और सच्चे दिल से हर जाति तथा तबके के लोगो से प्रार्थना की कि वे इस उद्देश्य की पूर्ति मे हर तरह की सहायता करे।

उस समय कांग्रेसवालो के मनोभाव कैसे ऊचे उठ रहे थे, इसका पता उन वक्ताओ के भाषणो की बढी-चढी भाषा से लगता है जो कराची मे इस विषय के प्रस्ताव पर बोले थे। परन्तु इतना सब होने पर भी जातिगत प्रतिनिधित्व ज्यो-का-त्यो बना रहा। जातिगत प्रतिनिधित्व सम्बन्धी मिण्टो-मार्ले-योजना हिंदुस्तान के मत्थे जबरदस्ती मढ दी गई। लोगो से इस बारे मे कोई सलाह-मशविरा नही लिया गया। इसलिए १९१६ मे जब सुधारो के नये टुकडे देने की तजवीज चली तब देश ने सोचा कि हिन्दू मुसलमानो का हृदय परस्पर मिल जाना चाहिए। इसके लिए कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनो के प्रतिनिधि (नवम्बर १९१६) कलकत्ते मे इण्डियन एसोशियेशन के स्थान पर इस उद्देश्य से मिले कि १९१५ मे कांग्रेस ने जो आदेश दिया था उसके अनुसार आपसी समझौते और रजामन्दी से प्रतिनिधित्व की योजना बनाई जाय। वातावरण भी इसके अनुकूल था। परन्तु कांग्रेस के हल्के मे जो बडे-बूढे लोग थे वे अपनी तरफ से कुछ करने मे आगापीछा करते थे। फलत यह काम युवको पर आ पडा। शायद उम्र मे सबसे छोटे लोगो ने, जो उस समय मौजूद थे, आगे कदम बढ़ाया। लेकिन पृथक् जातिगत निर्वाचन अटल ही रहा।

प्रवासी भारतवासी

जहा भारत मे भारतीयो की स्थिति काफी खराब थी, वहां दक्षिण-अफ्रीका स्थित भारतीयो की हालत बद से बदतर हो रही थी। अखिल भारतीय कांग्रेस के सामने पहले श्री मदनजीत ने दक्षिण का प्रश्न उपस्थित किया था। इसमे

सन्देह नही कि और भी अनेक ऐसे भारतीय मित्र थे जो समय-समय पर अफ्रीका जाते थे और वहा के पूरे समाचार यहा की जनता तक पहुँचाते थे, लेकिन श्री मदनजीत प्रति वर्ष इसी उद्देश्य से जाते थे। अपने नारगी कपडो, ठिगने कद तथा लम्बी लाठी के कारण वह काग्रेस मे कभी छिपे न रह सकते थे। दक्षिण अफ्रीका-सम्बन्धी अयोग्यताओ का वस्तुत पहला विरोध १८९४ मे हुआ, जब कि अध्यक्ष ने इस आशय का प्रस्ताव पेश किया कि औपनिवेशिक-सरकार का वह बिल रद्द कर दिया जाय जिसमे भारतीयो को मताधिकार नही दिया गया था। इसके बाद हर काग्रेस में दक्षिण अफ्रीका का प्रश्न अधिकाधिक महत्व ग्रहण करता गया। १८९८ मे भारतीयो ने अयोग्यता-सम्बन्धी तीन और कानून पास किये। उसी समय गाधीजी ने अपना प्रसिद्ध आन्दोलन शुरू किया। इसमें भी सबसे अधिक अफसोस की बात यह थी कि तत्कालीन वाइसराय लार्ड एलगिन ने इस कानून के पास होने पर सहमति दी थी और उस समय के भारत-मन्त्री लार्ड जार्ज हैमिल्टन हमें 'जगलियो की जाति' कहकर सतुष्ट हुए थे। १९०० में भूतपूर्व बोअर-जनतन्त्र ब्रिटिश-उपनिवेश मे मिला लिये गये थे। १६वें अधिवेशन (१९००) मे इसका निर्देश करते हुए कहा गया था कि स्वतन्त्र बोअरो पर नियत्रण करने मे सरकार को जो कठिनाई होती थी वह दूर हो गई है, इसलिए अब नेटाल मे प्रवेश-सम्बन्धी पाबन्दिया और डीलर्स लाइसैन्स-कानून उठा देने चाहिए। १९०१ की १७वी काग्रेस (कलकत्ता) मे गाधीजी ने दक्षिण-अफ्रीका-प्रवासी लाखो भारतीयो की ओर से प्रार्थी के रूप मे दक्षिण अफ्रीका के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पेश किया था। १९०२ मे भारत-मन्त्री से इस प्रश्न पर एक शिष्ट-मण्डल भी मिला, लेकिन कोई नतीजा न निकला। काग्रेस ने १९०३ और १९०४ मे अपने प्रस्तावो को दोहराया। ब्रिटिश-सरकार के जिम्मेदार हलको मे बोअर-युद्ध के जितने कारण घोषित किये गये थे, उनमे से एक यह भी था कि ब्रिटिश-सम्राट की भारतीय प्रजा

होनेवाले कठोर, अपमानजनक और क्रूर व्यवहार पर रोष प्रकट किया गया और यह चेतावनी दी गई कि इसके फल-स्वरूप ब्रिटिश-साम्राज्य के हितो को भारी हानि पहुचेगी।

१९०९ से काग्रेस ने यह अनुभव किया कि उसके सारे अनुरोध, विनय आदि का कोई परिणाम नही निकला। इस वर्ष की काग्रेस मे श्री गोखले ने प्रस्ताव पेश करते हुए अधिकारियो के विश्वासघात और गाधीजी के नेतृत्व मे भारतीयो के लम्बे और शान्त-सग्राम का वर्णन किया। अब प्रभावकारी आन्दोलन का समय आ चुका था और निष्क्रिय प्रतिरोध (सत्याग्रह) का महान् सग्राम शुरू हुआ। इसके लिए १८,०००) का चन्दा भी जमा हो गया। इसके अलावा सर जमशेद जी ताता के दूसरे पुत्र श्री रतन ताता ने प्रवासी भारतीयो के कष्ट-निवारण के लिए २५,०००) दिया। काग्रेस के आगामी अधिवेशन (इलाहाबाद १९१०) तक निष्क्रिय प्रतिरोध का सग्राम अपनी चरम सीमा पर पहुच गया था। काग्रेस ने ट्रान्सवाल के उन सब भारतीयो के उत्कट देश-प्रेम, साहस और त्याग की प्रशसा की, जो अपने देश के लिए वीरतापूर्वक कैद भोगते हुए, और अनेक कठिनाइयो के रहते हुए भी, अपने प्रारम्भिक नागरिक अधिकारो के लिए शान्तिपूर्वक और स्वार्थहीन लडाई लड रहे थे।

काग्रेस का २७ वा अधिवेशन (१९११) अधिक आशामय वातावरण मे सम्पन्न हुआ, इसमे रजिस्ट्रेशन और गिरमिट-सम्बन्धी एशिया-विरोधी कानूनो को रद कराने पर ट्रासवाल के भारतीय समाज तथा गाधीजी को हार्दिक धन्यवाद दिया गया। अगले साल (१९१२) भी गिरमिट-कानून की अनेक धाराओ का विरोध करने की आवश्यकता प्रतीत हुई, क्योकि दक्षिण अफ्रीका की यूनियन ने अपने वचनो को तोड दिया था। ब्रिटिश-सम्राट से काग्रेस ने इस कानून को रद कर देने का अनुरोध भी किया। उन दिनो लॉर्ड हार्डिञ्ज वाइसराय थे। उन्होने इस मामले मे कडाई का रुख लिया और उन्हे अधिक बलशाली बनाने के लिए कराची-काग्रेस ने १९१३ मे शर्तबन्दी कुली-प्रथा को नष्ट करने का अपना प्रस्ताव दोहराया। इसके बाद शीघ्र ही यह प्रथा तोड दी गई। काग्रेस ने दक्षिण अफ्रीका के आशिक समझौते के लिए लॉर्ड हार्डिञ्ज के प्रति कृतज्ञता प्रकट की, यद्यपि १९१६ और १९१७ मे इस प्रश्न पर फिर से विचार करना पडा। कराची-अधिवेशन मे गाधीजी तथा उनके अनुयायियो के वीरतापूर्ण प्रयत्नो तथा भारत के आत्म-सम्मान की रक्षा और भारतीयो के कष्ट-निवारण की लड़ाई मे किये गये अपूर्व आत्मत्याग की प्रशसा मे एक प्रस्ताव पास किया गया।

कनाडा की प्रिवी कौसिल ने 'लगातार यात्रा-धारा' के नाम से प्रसिद्ध आज्ञा देकर भारतीयो के प्रवेश की मनाही कर दी थी। इस सबध मे भी कराची-काग्रेस ने १९१३ के २८ वे अधिवेशन मे इस आधार पर इसका विरोध किया। कनाडा

की इस धारा को तोड़ने के लिए बाबा गुरुदत्तसिंह नामक एक सिख सज्जन ने 'कोमागाटामारू' जहाज किराये पर लिया और हागकाग या टोकियो बिना ठहराये ही उस जहाज पर ६०० सिखो को कनाडा ले गये। कोमागाटामारू जहाज के यात्रियो को कनाडा मे उतरने नही दिया गया। इससे जहाज को भारत लौटना पडा। वापसी पर यात्रियो को बजबज से, जहा वे उतरे थे, सीधा पजाब जाने की आज्ञा दी गई और दूसरी किसी जगह जाने की मनाही कर दी गई। यात्रियो ने सीधे पजाब जाना पसन्द नही किया। उन्होने कहा, पहले सरकार हमारी बात तो सुन ले, हमारे साथ इस हुक्म से अन्याय होता है और इसमे आर्थिक हानि भी बहुत होगी। सीधे पजाब जाने के बजाय, उन्होने गिरफ्तार हो जाना अधिक अच्छा समझा। फलस्वरूप दगा हुआ, कुछ आदमी मारे गये, कुछ गिरफ्तार हुए, बाबा गुरुदत्तसिह ७-८ साल तक गुम रहे और उडीसा, दक्षिण भारत, ग्वालियर, राजपूताना, काठियावाड और सिन्ध मे १९१८ तक घूमते रहे। इसके बाद बम्बई जाकर महाल बन्दर मे बल्दराज के नाम से एक जहाजी-कम्पनी के मैनेजर हो गये। अपने निर्वासित-काल (नवम्बर १९२१) मे वह गाधीजी से मिले। गाधीजीने उन्हे गिरफ्तार हो जाने की सलाह दी। बाबाजी ने इस परामर्श को कार्यान्वित किया और २८ फरवरी १९२२ को वह लाहौर-जेल से उस आर्डिनेन्स की अवधि समाप्त होने पर छोडे गये जिसके अनुसार वह गिरफ्तार किये गये थे।

नमक-कर का विरोध

१९३० के नमक-सत्याग्रह के कारण, नमक-कर का प्रश्न भारतीय राजनीति मे विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हो उठा था। जो लोग नमक-कर की उत्पत्ति और १८३६ के नमक-कमीशन की सिफारिशे जानते है उन्हे यह जान कर बहुत आश्चर्य होगा कि १८८८ मे काग्रेस ने इस कर का विरोध इस आधार पर नही किया कि यह कर अन्यायपूर्ण था और इसका उद्देश्य ब्रिटेन के जहाजी व्यवसाय और निर्यात व्यापार को बढाना था; बल्कि इस आधार पर किया कि "नमक-कर मे हाल ही मे की गई वृद्धि से गरीब लोगो पर भार और भी बढ गया है, और इसके द्वारा सरकार ने शान्ति और सुख के समय मे ही ऐसे कोप मे से खर्च करना शुरु कर दिया है जो खास मौको के लिए साम्राज्य की एक मात्र निधि है।" १८९० मे काग्रेस ने नमक-कर मे की गई वृद्धि को वापस लेने की—न कि नमक-कर को हटाने की—माग की। दूसरे अवसरो पर काग्रेस ने केवल इसी प्रार्थना को दुहराया और एक बार १८६८ की दर को और दूसरी बार १८८८ की दर को कायम रखने की माग की। १९०२ मे इन प्रश्न पर अन्तिम बार विचार करते हुए काग्रेस ने यह भी कहा कि इस समय जो बहुत-सी बीमारिया फैल रही है उनका एक खास कारण (नमक-

कर के कारण) नमक का कम इस्तेमाल किया जाना भी है। इसके बाद 'नमक' काग्रेस से उठकर कौसिलो मे पहुच गया और वहा श्री गोखले खास तौर पर इसमे दिलचस्पी लेते रहे।

शराब और वेश्यावृत्ति

नैतिक पवित्रता इतनी आवश्यक वस्तु है कि काग्रेस उस पर ध्यान दिये बिना न रह सकी। शराब की बढती हुई खपत को देखकर सयम और मद्य-निवारण की माग की गई। मि० केन और स्मिथ ने कामन-सभा में इस प्रश्न को उपस्थित किया और १८८९ में इस सम्बन्ध में एक प्रस्ताव भी पास हुआ। काग्रेस ने भी कामन-सभा वाले प्रस्ताव को कार्य-रूप मे परिणत करने का अनुरोध किया। १८९० मे काग्रेस ने शराब पर आयात-कर की वृद्धि, हिन्दुस्तानी शराब पर कर लगाने, बङ्गाल-सरकार के ठेके पर शराब बनाने की पद्धति को दूर करने के निश्चय तथा मद्रास-सरकार द्वारा ७,००० शराब की दूकानें बन्द करने पर हर्ष प्रकट किया। इसके बाद दस साल तक काग्रेस ने इस प्रश्न पर कोई विचार नही किया। १९०० मे काग्रेस ने सस्ती बिकने के परिणाम-स्वरूप शराब की बढती हुई खपत को देखकर सरकार से प्रार्थना की कि वह अमेरिका के 'मेन लिकर लॉ' के समान कोई कानून बनाए और सर विलफीड लॉसन के 'परमिसिव बिल', या 'लोकल आप्शन एक्ट' के समान कोई बिल पेश करे और दवा के सिवा दूसरे कामो के लिए आनेवाली नशीली वस्तुओ पर अधिक कर लगाए।

राज्य-नियत्रित वेश्या-वृत्ति का लोप समाज-सुधार से सम्बन्धित एक विषय था। यह सब जानते है कि सरकार अपने सैनिको के लिए छावनियो तथा युद्ध-यात्राओ मे स्त्रियो को एकत्र करती थी। जब ऐसी बाते पहले-पहल अमल मे लाई गई तब बहुत भीषण मालूम हुई, लेकिन ज्यो-ज्यो उनका सहवास बढने लगा त्यो-त्यो क्षोभ कम होता गया। काग्रेस के चौथे अधिवेशन (१८८८) ने मि० यूल की अध्यक्षता मे उन भारत-हितैषियो के साथ सहयोग की इच्छा प्रकट की, जो भारत मे राज्य की ओर से बननेवाले कानूनो और नियमो को पूर्णतया रद कराने के लिए इग्लैण्ड मे कोशिश कर रहे थे। कैप्टेन बैनन ने अपने एक ओजस्वी भाषण मे कहा था कि २,००० से अधिक भारतीय स्त्रियो को सरकार ने वेश्यावृत्ति के कुत्सित उद्देश्य से इकट्ठा किया था। इससे युवक सिपाही असयत जीवन विताने को प्रोत्साहित हुए थे। इलाहाबाद मे होनेवाले आठवे अधिवेशन (१८९२) मे एक बार फिर सरकार द्वारा नियमित अनैतिक कार्यो का विरोध किया गया था। अगले साल इण्डिया-आफिस-कमिटी के पार्लमेण्ट के सदस्यो ने छावनियो की वेश्यावृत्ति तथा छूत-रोगो-सम्बन्धी नियमो, आज्ञाओ और प्रथाओ के विषय मे एक रिपोर्ट तैयार की। काग्रेस

ने इन तरीकों और बुरी प्रथाओ को बन्द करने के लिए स्पष्ट कानून बनाने की मांग की।

स्त्रियां और दलित जातियां

मि० माण्टेगु की भारत-यात्रा के साथ ही नागरिक अधिकारो के सम्बन्ध मे स्त्रियो का दावा भी देश के सामने आया। वस्तुत. यह बहुत आश्चर्यजनक है कि भारत मे शीघ्र ही पुरुषो के समान स्त्रियो के अधिकार मान लिये गये। कलकत्ता-काग्रेस ने १९१७ मे यह सम्मति प्रकट की थी कि शिक्षा तथा स्थानीय सरकार से सम्बन्ध रखनेवाली निर्वाचित सस्थाओ मे मत देने तथा उम्मीदवार खडे होने की, स्त्रियो के लिए भी, वही शर्ते रखी जायं जो पुरुषो के लिए है। इसीसे मिलते-जुलते दलित जातियो के प्रश्न पर भी, इसी काग्रेस ने एक उदार प्रस्ताव स्वीकार किया।

अन्य विषय

इस अवधि मे काग्रेस ने समय-समय पर और भी अनेक विषयो की ओर ध्यान दिया। शिक्षा के विविध पहलुओ—प्राथमिक, विद्यापीठ, पुरातत्व और कला-कौशल-सम्बन्धी शिक्षा में काग्रेस ने बहुत दिलचस्पी ली। प्रान्तीय और केन्द्रीय राजस्व, चादी-कर, आय-कर और विनिमय-दर के मुआवजे आदि आर्थिक विषयो पर भी काग्रेस प्राय. ध्यान देती रही। स्थानीय स्वराज्य-सस्थाओ और विशेषत: मद्रास और कलकत्ता के कारपोरेशनो के सम्बन्ध मे प्रतिगामी कानूनो से काग्रेसी बहुत रुष्ट हुए। स्वास्थ्य और विशेषत प्लेग और क्वारण्टीन तथा बेगार वगैरा पर भी कभी-कभी विचार हो जाता था। राज-भक्ति की शपथ भी कई बार ली गई। १९०१ मे महारानी विक्टोरिया की मृत्यु और १९१० मे सम्राट् एडवर्ड की मृत्यु पर काग्रेस को अपनी राजभक्ति फिर प्रकट करने का अवसर मिला। एडवर्ड और जार्ज पचम के स्वागत-सम्बन्धी प्रस्ताव भी पास किये गये।

कांग्रेस का विधान

काग्रेस के इन ५० सालो के जीवन में विधान-सम्बन्धी इतने क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए है कि विधान का इतिहास भी बहुत रोचक हो गया है। यह सब जानते है कि कांग्रेस की स्थापना किसी जॉइण्ट स्टॉक कम्पनी की तरह 'आर्टिकल्स' या 'मेमोरेण्डम आफ एसोशियेशन' बनाकर या १८६० के २१ वे कानून के अनुसार 'रजिस्टर्ड सोसाइटी' की तरह पहले मे ही नियमादि बनाकर नही हुई थी। इसकी शुरुआत तो कुछ प्रसिद्ध पुरुषो के सम्मेलनो से हुई थी। शुरू में १८८६ मे काग्रेस के सचालन के लिए एक विधान तथा नियम बनाने पर गम्भीरता से विचार हुआ।

एक प्रस्ताव-द्वारा नियम बनाने के लिए कमिटी तो बना दी गई, लेकिन विधान बनाने का काम पीछे के लिए छोड दिया गया। फिर भी पूरे साल भर काग्रेस के काम को चलाने की आवश्यकता साफ-साफ अनुभव होने लगी। १८८९ मे काग्रेस के प्रतिनिधि इतनी बडी सख्या मे आये कि काग्रेस को प्रति दस लाख जन-सख्या के पीछे पाच प्रतिनिधियो की सख्या सीमित कर देनी पडी। भारत मे काग्रेस का एक सहायक-मत्री नियुक्त हुआ और इग्लैण्ड की समिति को भी एक वैतनिक मन्त्री दिया गया। इस पद पर पहले-पहल सुप्रसिद्ध मि० डब्ल्यू० डिग्बी सी० आई० ई० नियुक्त हुए।

काग्रस के चौथे अधिवेशन (१८८८) मे जब यह निश्चय किया गया कि जिस प्रस्ताव के उपस्थित किये जाने मे हिन्दू या मुसलमान अपने सम्प्रदाय के नाम पर सर्वसम्मति से या लगभग सर्वसम्मति से आपत्ति करेगे, वह विषय-समिति मे विचार के लिए पेश नही किया जा सकेगा। यह याद रखना चाहिए कि यही नियम उस विधान मे भी स्वीकृत हुआ, जो सूरत के झगडे के बाद १९०८ मे बनाया गया था, फर्क सिर्फ अनुपात का रहा, जो अब सर्वसम्मति के बजाय ¾ कर दिया गया। प्रतिनिधियो की सख्या घटाकर १००० कर देने का प्रस्ताव १८८९ मे पास हुआ, लेकिन अमल मे वह दूसरे वर्ष ही लाया गया।

इग्लैण्ड मे किये जानेवाले काम को कितना महत्वपूर्ण समझा जाता था, यह इसीसे मालूम होता है कि १८९२ मे ६०,०००) की भारी रकम ब्रिटिश-समिति और काग्रेस के पत्र 'इण्डिया' के खर्च के लिए पास की गई। १२ वें अधिवेशन (१८९६) मे भी इतनी ही रकम पास की गई थी। १८९८ मे काग्रेस के विधान को बनाने का नया प्रयत्न किया गया। मद्रास-काग्रेस ने विधान का एक मसविदा जगह-जगह भेजा और उस पर विचार करने तथा अगले अधिवेशन तक उसकी एक निश्चित योजना बनाने के लिए एक समिति भी बनाई। अगले साल (१८९९) लखनऊ मे एक सम्पूर्ण विधान स्वीकृत हुआ। उस समय तथा १९०८, १९२० और १९२९ मे काग्रस ने अपने जो-जो ध्येय निश्चित किये, उनकी तुलना बडी मनोरजक होगी। लखनऊ मे काग्रेस का ध्येय इस प्रकार निश्चित हुआ "वैध उपाय से भारतीय साम्राज्य के निवासियो के स्वार्थो और हितो को बढाना अखिल-भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस का ध्येय होगा।" लखनऊ-विधान के अनुसार कार्य-सचालन के लिए काग्रेस द्वारा निश्चित ४५ सदस्यो की एक समिति बनाई गई। इन ४५ मे से ४० सदस्य ऐसे चुने गए थे जिनकी विभिन्न प्रान्तीय काग्रेस कमिटियो ने सिफारिश की थी। समिति के एक अवैतनिक मन्त्री और एक वैतनिक सहायक मन्त्री रखे गये। साल के खर्च के लिए ५०००) स्वीकृत किए गये। इसमे से २५००) तो गत अधिवेशन की स्वागत-समिति पर और २५००) आगामी अधिवेशन की स्वागत समिति पर डाले गये।

स्थायी काग्रेस कमिटियो की स्थापना तथा प्रान्तीय सम्मेलनो के आयोजन-द्वारा कांग्रेस का काम पूरे साल-भर चालू रखने की व्यवस्था की गई। अध्यक्ष का चुनाव तथा प्रस्तावो के मसविदे बनाने का काम इण्डियन काग्रेस-समिति करती थी। सात ट्रस्टियो के नाम पर कांग्रेस के लिए एक स्थायी कोष भी स्थापित किया गया। प्रत्येक प्रान्त से एक-एक ट्रस्टी काग्रेस नियुक्त करती थी। १९०० मे ४५ सदस्यो वाली इण्डियन कांग्रेस समिति और बडी कर दी गई। पद की हैसियत से इतने व्यक्ति और सदस्य मान लिये गये—सभापति, मनोनीत सभापति, जिस दिन से नामजद किया जाय, पिछली काग्रेसो के सभापति; काग्रेस के मन्त्री और सहायक मन्त्री तथा स्वागत-समिति-द्वारा मनोनीत उसके अध्यक्ष और मन्त्री।

लन्दन मे कार्य का संगठन १९०१ मे शुरू किया गया। 'इण्डिया' पत्र को और सुचारु-रूप से चलाने के लिए उसकी ४००० कापिया बिकने का इस तरह प्रबन्ध किया गया कि प्रत्येक प्रान्त एक नियत सख्या मे 'इडिया' खरीदे। 'इण्डिया' और ब्रिटिश-समिति का खर्च पूरा करने के लिए १९०२ से प्रत्येक प्रतिनिधि से फीस के अलावा १०) और लेने का भी निश्चय किया गया। यह स्पष्ट है कि उन दिनो काग्रेस भारत और इगलैण्ड मे अपने कार्य के लिए खर्च करने मे कोताही नही करती थी। बम्बई के २० वे अधिवेशन (१९०४) मे यह निश्चय किया गया कि पार्लमेण्ट के चुनाव से पहले इग्लैण्ड मे एक शिष्ट-मण्डल भेजा जाय और इस कार्य के लिए ३०,०००) इकट्ठे किये जाय। काशी मे (१९०५) काग्रेस के उद्देश्यों को पूरा करने और उसके प्रस्तावो के अनुसार कार्य करने के लिए १५ सदस्यो की एक स्थायी समिति बनाई गई। १९०६ मे दादाभाई नौरोजी ने काग्रेस का उद्देश्य एक शब्द मे रख दिया—"हमारा सारा आशय केवल एक शब्द स्व-शासन या स्वराज्य में आ जाता है। इगलैण्ड या उपनिवेशो में जो शासन-प्रणाली है, वही भारत मे भी जारी की जाय" और इसके लिए अनेक सुधारो की मांग की गई।

कलकत्ता-काग्रेस का वातावरण राष्ट्रीयता की भावना से लबालब था। इसलिए राष्ट्र को संगठित करने की दिशा मे एक और कदम बढाया गया और निश्चय किया गया कि प्रत्येक प्रान्त अपनी राजधानी मे उस तरह प्रान्तीय काग्रेस समिति का सगठन करे, जिस तरह कि प्रान्तीय सम्मेलन में निश्चय किया जाय। काग्रेस के तमाम विषयो मे प्रान्तीय काग्रेस कमिटी प्रान्त की ओर से कार्य

विषय-निर्वाचिनी-समिति के निर्णय का भी नया तरीका जारी किया गया। यह माना गया कि समिति के ८५ सदस्य प्रतिनिधि रहेंगे और उस प्रान्त के १० और प्रतिनिधि लिये जायगे जिसमे काग्रेस होगी। उस वर्ष के सभापति, स्वागत समिति के अध्यक्ष, पिछले अधिवेशनो के सभापति और स्वागत-समिति के अध्यक्ष, काग्रेस के प्रधान मन्त्रीगण और काग्रेस के उस वर्ष के स्थानीय मत्री भी अपने पद के अधिकार से विषय-निर्वाचिनी समिति के सदस्य माने जायगे।

काग्रेस-विधान में जो नया परिवर्तन हुआ वह वस्तुत युग प्रवर्तक था। सूरत के झगड के कारण जिन नेताओ ने इलाहाबाद मे 'कन्वेशन' खडा किया उन्होने बहुत ही सख्त विधान बनाया। सबसे पहले यह घोषणा की गई कि बाकायदा निर्वाचित सभापति बदला नही जा सकेगा, क्योकि सूरत में डा० रासबिहारी घोष के चुनाव पर ही बडा झगडा हुआ था। इसके बाद लोगो के विचार का वास्तविक विषय था,, काग्रेस का 'क्रीड' यानी ध्येय। सूरत-काग्रेस के भङ्ग के एक दिन बाद २८ दिसम्बर (१९०७) को वैसे ही विचार रखनेवाले लोगो ने मिलकर यह प्रस्ताव पास किया—"काग्रेस का उद्देश्य है ब्रिटिश-साम्राज्य के अन्य स्वशासित राष्ट्रो मे प्रचलित शासन-प्रणाली भारत के लोगो के लिए भी प्राप्त करना और उन राष्ट्रो के साथ बराबरी के नाते साम्राज्य के अधिकारो और जिम्मेदारियो मे सम्मिलित होना"।

१९०८ के विधान के अनुसार महासमिति के विभिन्न प्रान्तो से सदस्य चुने गये, यह भी तय हुआ कि यथासम्भव कुल सख्या का ५ वा भाग मुसलमान सदस्य चुने जाय। इसके अलावा भारत मे उपस्थित या भारत में रहनेवाले काग्रेस के सभापति और प्रधान मत्री भी महासमिति के सदस्य माने जाय। काग्रेस का प्रधान मत्री इसका भी प्रधान मत्री समझा जाय। इसी तरह विषय-निर्वाचिनी समिति भी बहुत बढ गई। महासमिति के सभी सदस्य और कुछ निर्वाचित व्यक्ति उसके सदस्य माने गये। प्रत्येक प्रान्त से आये हुए प्रतिनिधि ही इनका चुनाव करते थे।

सयुक्त बङ्गाल-प्रान्तीय काग्रेस-कमिटी ने काग्रेस के विधान मे कुछ परिवर्तन सुझाये, जो इलाहाबाद (१९१०) मे एक उप-समिति को सौपे गये। १९११ के कलकत्ता-अधिवेशन मे इस समिति की सिफारिशे स्वीकार कर ली गई और अगले सशोधनो के लिए विधान महासमिति के सुपुर्द किया गया। इसके बाद ५ सालो तक कोई परिवर्तन नही हुआ। १९१४ मे जब यूरोप का महासमर छिड गया, तब श्रीमती एनी बेसेन्ट ने अपना महान राजनैतिक आन्दोलन अ० भा० होमरूल-लीग की छत्रछाया मे आरम्भ किया। इमी समय लोकमान्य तिलक ने महाराष्ट्र मे २३ अप्रैल १९१६ को एक पृथक् होमरूल-लीग स्थापित की। इसके बाद १९२० में काग्रेस के विधान मे परिवर्तन हुआ। कलकत्ता-काग्रेस अपने विशेष अधिवेशन मे असहयोग को

स्वीकार कर चुकी थी। नागपुर के अधिवेशन ने काग्रेस के विधान मे अनेक संशोधन किये। काग्रेस का १९०८ वाला ध्येय 'समस्त शान्तिमय और उचित उपायो से भारतीयो द्वारा स्वराज्य प्राप्त करना' मे बदल दिया गया। सम्पूर्ण काग्रेस-कार्य नये सिरे से सगठित किया गया। भाषा-क्रम के आधार पर प्रान्तो का पुनर्विभाजन किया गया। आन्ध्र को पृथक् बनाने का प्रश्न १९१५ और १९१६ मे उठाया गया था और १९१७ मे सभापति डॉ० एनी बेसेण्ट तथा मद्रास के अनेक प्रतिनिधियों के तीव्र विरोध करने पर भी स्वीकार कर लिया गया। १९१७ मे तो गाधीजी की भी यही सम्मति थी कि यह प्रश्न सुधारो तक स्थगित कर दिया जाय, परन्तु यह लोकमान्य तिलक की दूरदर्शिता थी जिससे आन्ध्र को पृथक् प्रान्त का रूप दे दिया गया। इसीके परिणाम-स्वरूप प्रत्येक प्रान्त के प्रतिनिधित्व पर विचार और संशोधन करके अपनी रिपोर्ट महासमिति मे पेश करने के लिए एक और उपसमिति बनाई गई। इसके बाद ही सिध ने भी अपने पृथक् प्रान्त बनाये जाने की माग की। यह माग भी स्वीकृत हो गई, लेकिन कर्नाटक और केरल की मागो का तब फैसला हुआ, जब १९२० के नागपुर-अधिवेशन के बाद प्रान्तों का पुनर्विभाजन हुआ।

: ४ :

दमन-नीति और नई जागृति : १८८५-१९१५

पिछली सदी के अन्त के प्रारम्भिक पन्द्रह सालों के लडाई-झगडो मे जो काग्रेस नेता थे वे ज्यादातर वकील-बैरिस्टर और कुछ व्यापारी एव डॉक्टर थे, जिनका सच्चे दिल से यह विश्वास था कि भारत सिर्फ इतना ही चाहता है कि अंग्रेजो और पार्लमेण्ट के सामने उसका पक्ष बहुत सुन्दर और नपी-तुली भाषा मे रख दिया जाय। इस प्रयोजन के लिए उन्हे एक राजनैतिक संगठन की I ऊच पदं देकैर इसके लिए उन्होने राष्ट्रीय काग्रेस की स्थापना की थी। उसके द्वाराग का क्षेत्र ही और उच्च अकाक्षाओ को प्रदर्शित करते थे। उस युग की परिस्थियर तो काग्रेस कि अपने दुख-दर्द दूर करने के लिए हाकिमो के सामने सिवा दली ऐयर १९०८ करने तथा नई रिआयतो और विशेपाधिकारो के लिए मामूली मागत्र कर्त्ता-धर्त्ता कुछ नही हो सकता था। फिर यह मनोदशा आगे जाकर शीघ्र होतए तत्कालीन रूप मे परिणत हो गई। एक ओर कानून-प्रवीण-बुद्धि और दूसरी आदियो और शील और भावना-प्रधान वक्तृत्व-कला, दोनो ने उस काम को अपने ऊर ही थे कि जो भारतीय राजनीतिज्ञो के सामने थे। काग्रेस के प्रस्तावो के स सर गंकरन्

व्याख्यान होते थे और काग्रेस के अध्यक्ष जो भाषण दिया करते थे उनमे दो बाते हुआ करती थी—एक तो प्रभावकारी तथ्य और आकडे, दूसरे अकाटच दलीलें। उस समय जब भारतीय राजनैतिक क्षेत्र मे कोई पथ-प्रदर्शक नही था, उन लोगो ने जो रुख अख्तयार किया था,उसके लिए हम उन्हे बुरा नही कह सकते। किसी भी आधुनिक इमारत की नीव मे छ फीट नीचे जो ईंट, चूना और पत्थर गडे हुए है क्या उन पर कोई दोष लगाया जा सकता है ? क्योकि वही तो है जिनके ऊपर भारी इमारत खडी हो सकी है। पहले उपनिवेशो के ढङ्ग का स्वशासन, फिर साम्राज्य के अन्तर्गत होमरूल, इसके बाद स्वराज्य और सबसे ऊपर जाकर पूर्ण स्वाधीनता की मजिले एक-के-बाद-एक बन सकी है। उन्हे अपनी स्पष्ट बात के समर्थन मे अग्रेजो के प्रमाण देने पडते थे। अपनी समझ और अपनी क्षमता के अनुसार, उन्होने बहुत परिश्रम और भारी कुर्बानिया की थी। आज अगर हमारा रास्ता साफ है तो यह सब हमारे उन्ही पुरखाओ की बदौलत है जिन्होने जगल-झाडियो को साफ करने का कठिन काम किया है।

काग्रेसियो के दिलो मे कभी-कभी कुछ उत्तेजना और रोब के भाव आ गये हो, पर इसमे कोई शक नही कि १८८५ से १९०५ तक काग्रेस की जो प्रगति हुई उसकी बुनियाद थी वैध-आन्दोलन के प्रति उनका दृढ और अग्रेजो की न्याय-प्रियता पर अटल विश्वास। इसी भाव को लेकर १८९३ मे स्वागताध्यक्ष सरदार दयालसिह मजीठिया ने काग्रेस के विषय मे कहा था कि भारत मे ब्रिटिश-शासन की कीर्ति का यह कलश है। आगे चलकर उन्होने यह भी कहा कि हम उस विधान के मातहत सुख से रह रहे है जिसका विरुद है आजादी, और जिसका दावा है सहिष्णुता। काग्रेस के चौथे अधिवेशन (इलाहाबाद १८८८) के प्रतिनिधि ने लार्ड रिपन का यह विचार उद्धृत किया था "महारानी का घोषणा-पत्र कोई सुलहनामा नही है, न वह कोई राजनैतिक लेख ही है, बल्कि वह तो सरकार के सिद्धान्तो का घोषणा-पत्र है।" लार्ड सेल्सबरी के इस वचन पर कि "प्रतिनिधियो के द्वारा शासन की प्रथा पूर्वी लोगो की परम्परा के मुआफिक नही है," जोर के साथ नाराजगी प्रकट की सयुक्त बेङ्ग १८९० मे सर फिरोजशाह मेहता ने तो यहा तक कह दिया था सुझाये, जो इलाह्न का कोई अन्देशा नही है कि ब्रिटिश-राजनीतिज्ञ अन्त मे जाकर कत्ता-अधिवेशनर अवश्य ध्यान देगे।" बारहवे अधिवेशन (१८९६) के अध्यक्ष-पद धनो के लिए बितुल्ला सयानी ने तो और भी असदिग्ध रूप मे कहा था कि "अग्रेजो परिवर्तन नही ह ईमानदार और मजबूत कौम इस सूरज के तले कही नही है।" एनी बेसेन्ट नेउस कौम ने हिन्दुस्तानियो के अनुनय-विनय और विरोध का जवाब छत्रछाया मे से दिया, तब भी मद्रास काग्रेस (१८९८) के अध्यक्ष आनन्दमोहन १९१६ को देकर कहा था कि "शिक्षित-वर्ग इगलैण्ड के दोस्त है, दुश्मन नही। विधान मे पाामने जो महान कार्य है उसमें वे उसके स्वाभाविक तथा आवश्यक

मित्र और सहायक है।" हमारे इन पूर्व-पुरुषो ने अंग्रेजो और इंग्लैण्ड के प्रति जो विश्वास रखा वह कभी-कभी दयाजनक और हेय मालूम होता है; परन्तु हमारा कर्तव्य तो यही है कि हम उनकी मर्यादाओ को समझे।

काग्रेस के इतिहास मे जो पहला जबरदस्त आन्दोलन हुआ वह पाच वर्षों (१९०६ से १९११) तक रहा। उसे उस समय ऐसे दमनकारी उपायो का सामना करना पडा जो जगली समझे गये। हालाकि उसमे इधर-उधर मारकाट भी हो गई, मगर अन्त मे उसमे पूरी सफलता मिली। आखिर १९११ मे शाही घोषणा कर दी गई कि वग-भग रद कर दिया गया। किन्तु यह ब्रिटिश-सरकार की भारी प्रशसा का विषय बन गया। इससे ब्रिटिश-न्याय के प्रति लोगो के मन मे नया विश्वास पैदा हो गया और धुआधार वक्तृताओ द्वारा कृतज्ञता-प्रकाश होने लगा। परन्तु इसी के साथ काग्रेसियो ने उन दु खदायी कानूनो की तरफ से अपना ध्यान नही हटाया, जो १९११ और उससे भी आगे तक जारी रहे। काग्रेस के बडे-बूढो ने, अपनी सारी शक्ति शासन-विषयक सुधारो और दमनकारी कानूनो को हटवाने मे लगाई, परन्तु इससे यह अन्दाज करना गलत होगा कि वे सिर्फ भारतीय-प्रश्न के अशो का ही खयाल करते थे, पूरे प्रश्न का नही। १८८६ के कलकत्ता-अधिवेशन मे सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने स्व-शासन का समर्थन किया था। २० वे अधिवेशन के सभापति-पद से सर हेनरी काटन ने 'भारत के संयुक्त राज्य' अथवा 'भारत के स्वतन्त्र और पृथक् राज्यो के सघ' की कल्पना की थी। दादाभाई ने यूनाइटेड किगडम या उपनिवेशो-जैसे स्व-शासन या स्वराज्य का जिक्र किया था।

सरकारी प्रलोभन

काग्रेस के पहले पच्चीस सालो मे जिनके ऊपर काग्रेस की राजनीति का दारोमदार रहा, वे सरकार के दुश्मन नही थे। यह बात न केवल उन घोषणाओ से ही सिद्ध होती है जो समय-समय पर उनके द्वारा की जाती थी, बल्कि स्वय सरकार भी उनके साथ रिआयते करके और हिन्दुस्तानियो को ऊचे पद देकर यही सिद्ध करती थी। ऐसे उच्च पदो के लिए न्याय-विभाग का क्षेत्र ही स्वभावत सबसे उपयुक्त था। मद्रास के सर एस० सुब्रह्मण्य ऐयर तो काग्रेस के पहले ही अधिवेशन मे सामने आये और श्री बी० कृष्णस्वामी ऐयर १९०८ मे होनेवाली मद्रास की पहली कनवेशन-काग्रेस के एक मात्र कर्त्ता-धर्त्ता थे। वह बहुत कडे विधान के मातहत हुई थी और इसके लिए तत्कालीन मद्रास गवर्नर ने अपना तम्बू देने की कृपा की थी। राष्ट्रवादियो और काग्रेस का उल्लेख करते हुए यह कहनेवाले श्री कृष्णस्वामी ऐयर ही थे कि जो अग सड-गलकर बेकाम हो गये है उन्हे काट डालना चाहिए। सर शंकरन्

नायर अमरावती मे हुए अधिवेशन (१८९७) के सभापति हुए थे। और तो और श्री रमेशन् (सर वेपा सिनो) १८९८ से काग्रेसवादी ही थे। इसके बाद जिनका नम्बर आता है वे है (१) श्री टी० बी० शेषगिरि ऐयर, जो १९१० की काग्रेस मे सामने आये, और (२) श्री पी० आर० सुन्दरम् ऐयर जो १९०८ में श्री कृष्णस्वामी ऐयर के एक उत्साही सहकारी थे। ये छहो मद्रास हाईकोर्ट के जज बनाये गये और इनमे से दो कार्यकारिणी कौंसिल के सदस्य भी हो गये—एक मद्रास मे और दूसरा दिल्ली मे। इनमें से पहले (सर सुब्रह्मण्य) १९०९ मे काग्रेस के सभापति होनेवाले थे, परन्तु हाईकोर्ट के जज बना दिये जाने के कारण रह गये थे। श्रीमती बेसेण्ट द्वारा चलाये होमरूल-आन्दोलन के समय, १९१४ में, वह फिर काग्रेस के क्षेत्र मे आ गये। इतना ही नही, उन्होने अपनी नाइटहुड (सर की उपाधि) का भी परित्याग कर दिया। उससे मि० माण्टेगु और लॉर्ड चेम्सफोर्ड दोनो ही उनसे नाराज हो गये। कहते है कि भूतपूर्व जज की हैसियत से जो पेन्शन उन्हे मिलती थी उसे बन्द कर देने की भी बात उस समय उठी थी, परन्तु बाद मे कुछ सोच कर फिर ऐसा नही किया गया। और आगे चले तो सर पी० एस० शिवस्वामी ऐयर और सर सी० पी० रामस्वामी ऐयर भी काग्रेसी थे, जो बाद मे कार्यकारिणी के सदस्य बना दिये गये। यही हाल सर मुहम्मद हबीबुल्ला का हुआ; वह पहले मद्रास और फिर भारत-सरकार की कार्यकारिणी के सदस्य बनाये गये। मद्रास-सरकार के लॉ-मेम्बर होनेवाले सर एन० कृष्ण नैयर १९०४ की काग्रेस मे बोले थे, और उनके उत्तराधिकारी सर के० वी० रेड्डी तो १९१७ मे जस्टिस-पार्टी का जन्म होने तक भी एक उत्साही एव सुप्रसिद्ध काग्रेसी थे। सर एम० रामचन्द्रराव बहुत समय तक काग्रेस मे रह चुके थे।

कलकत्ता मे श्री ए० चौधरी जिन्होने बग-भग के विरुद्ध होनेवाले आन्दोलन मे प्रमुख भाग लिया था, लगभग उसी समय वहा की हाईकोर्ट के जज बना दिये गये। १९०८ मे जब लार्ड मिण्टो ने भारत-सरकार की लॉ-मेम्बरी के लिए व्यक्तियो का चुनाव किया तब दो नाम उनके सामने थे, एक तो श्री आशुतोष मुकर्जी का और दूसरा श्री सत्येन्द्रप्रसन्न सिह का। सत्येन्द्रप्रसन्न सिह १८९६ की कलकत्ता-काग्रेस में, देशी-नरेश को बिना मुकदमा चलाये निर्वासित कर देने के प्रश्न पर बोले थे। और, यह हम सब जानते हैं कि, अन्त में (लॉ-मेम्बरी के लिए) तरजीह काग्रेसमैन को ही दी गई। इसी प्रकार १९२० में गवर्नर-जनरल की कार्य-कारिणी मे जब जगह हुई तब भी लॉर्ड चम्सफोर्ड (१९२०) ने तो महाराजा बर्दवान को रखना चाहा, पर मि० माण्टेगु ने बडी कौंसिल के किसी चुने हुए सदस्य को ही रखना ज्यादा पसन्द किया। मि० माण्टेगु ने श्री श्रीनिवास शास्त्री का नाम इसके लिए सुझाया, लेकिन चूकि ऐन मौके पर उन्होने साथ नही दिया था इसलिए चेम्सफोर्ड ने उन्हें रखना पसन्द नही किया और श्री बी० एन० शर्मा को रखा,

जो अमृतसर-काण्ड के समय भी सरकार के पृष्ठ-पोषक थे। बंगाल में काग्रेस से सम्वन्ध रखनेवाले अन्य जिन व्यक्तियो को ऊंचे सरकारी ओहदे मिले उनमें श्री एस० के० दास और सर प्रभासचन्द्र मित्र मुख्य है। इनमे श्री दास १९०५ की काग्रस-कार्यकारिणी मे भारतीयो की नियुक्ति के प्रश्न पर बोले थे, बाद मे भारत-सरकार के लॉ-मेम्बर हुए और मित्र महोदय बगाल की कार्यकारिणी के सदस्य।

उत्तर प्रदश मे सर तेजबहादुर सप्रू-जैसे जबरदस्त व्यक्ति को भारत-सरकार का लॉ-मेम्बर बनाया गया। बिहार के सय्यद हसनइमाम १९१२ की काग्रेस को पटना मे आमंत्रित करने के बाद हाईकोर्ट के जज बन गये और श्री सच्चिदानन्दसिह को बिहार की कार्यकारिणी का सदस्य बना दिया गया। यहा यह भी बतला देना चाहिए कि सरकारी पुरस्कार का रूप सदा बड़े सरकारी ओहदो का देना ही नही रहा। फिरोजशाह मेहता को १९०५ मे 'सर' की उपाधि दी गई और वह भी लॉर्ड कर्जन-द्वारा जो बडे प्रतिगामी वाइसराय थे। तात्पर्य यह कि सरकार को भी अगर योग्य भारतीयो की जरूरत हुई तो इसके लिए उसे भी काग्रेसियो पर ही निगाह डालनी पडी और उनके राजनीतिक विचारो को उसने ऐसा नही समझा जो वह उन्हे सरकारी विश्वास एवं बड़ी-से-बड़ी जिम्मेदारी के ओहदो के लिए नाकाबिल मान लेती।

दमन-नीति का सूत्रपात

काग्रेस का इतना महत्व स्वीकार करते हुए भी सरकार उसके प्रति सदैव सतर्क रहती थी और उसकी जड खोदने के लिए दमन नीति से काम लेती थी। जब-जब जनता मे कोई आन्दोलन आरभ होता था तब-तब जोरो का दमन किया जाता था और उसमे यह नीति रखी जाती थी कि जबतक लोग आन्दोलन करते-करते बिलकुल थक न जाय तबतक उनकी मागो पर कोई ध्यान न दिया जाय। लॉर्ड लिटन का १८७० का प्रेस-ऐक्ट जो जल्द ही वापस ले लिया गया, सरकार की इस नीति की पूर्व सूचना थी। राष्ट्र के बढते हुए आत्मचैतन्य का दूसरा उत्तर शस्त्र-विधान के रूप मे मिला, जिसने राष्ट्र के दु ख-रूपी फोडे को और भी पका दिया। १८८६ में इन्कम टैक्स ऐक्ट वना। उसका भी तीव्र विरोध उसी समय किया गया। जैसे-जैसे काग्रेस हर साल बढती गई, सरकारी अधिकारी भी उसे सन्देह की दृष्टि से देखते गये। लॉर्ड डफरिन ने ह्यम साहव को यह सलाह दी थी कि वह काग्रेस का क्षेत्र केवल सामाजिक न रखकर राजनैतिक भी बनायें। किन्तु वही लॉर्ड डफरिन फिर काग्रेस के शत्रु हो गये और उसे राजद्रोही कहने लगे। १८८६ मे वाइसराय ने कलकत्ता में और १८८७ मे मद्रास के गवर्नर ने काग्रेस का स्वागत किया, परन्तु वाद मे उत्तर प्रदेश के सर ऑकलैण्ड जैसे प्रान्तीय शासक उसके विरोधी हो गये। इन महाशय ने काग्रेस को समाज-सुधार तक ही मर्यादित रहने की सलाह

दी। शायद उन्हे यह पता न था कि ह्यूम साहब ने भी आरभ मे यही सोचा था, परन्तु लॉर्ड डफरिन के कहने से ही उन्होंने इसे राजनैतिक सगठन का रूप दिया था। सर ऑकलैण्ड की सम्मति मे यह आन्दोलन समय से पूर्व, और मद्रास के अधिवेशन से उग्र रूप धारण करने के कारण खतरनाक भी था। उन्होने कहा कि काग्रेस का सरकार की निन्दा करने का रवैया सर्व-साधारण मे सरकार क प्रति घृणा पैदा करेगा और देश मे राज-भक्त और देश-भक्त ऐसे दो भेद खडे हो जायगे। साथ ही उन्होने यह भी कहा कि काग्रेस भारतीय जनता की प्रतिनिधि बनने का जो दावा करती है, वह ठीक नही है। ह्यूम साहब ने इसका मुहतोड जवाब दिया।

इलाहाबाद के चौथे अधिवेशन मे कांग्रेस को अकथनीय कठिनाइया का सामना करना पडा। उसे पण्डाल तक के लिए जमीन नही मिली। श्रीमती एनी बेसेण्ट ने अपनी काग्रेस-सम्बन्धी पुस्तक मे एक ऐसे सज्जन का उदाहरण दिया है, जो अपने जिला-अफसर की इच्छा के विरुद्ध मद्रास (१८८७) के अधिवेशन मे शामिल हुए थे और उनसे शान्ति-रक्षा के नाम पर २०,०००) की जमानत मागी गई थी। हालत तेजी से खराब होती गई और १८९० मे सरकार का विरोध बहुत बढ गया। बगाल-सरकार ने सब मत्रियो और सब विभागो के प्रमुख अफसरो के पास एक गश्ती-पत्र भेजा, जिसमे उन्हे यह हिदायत दी गई थी कि भारत-सरकार की आज्ञा के अनुसार ऐसी सभाओ मे दर्शक-रूप मे भी सरकारी अफसरो का जाना ठीक नही है और ऐसी सभाओ की कार्रवाई मे भाग लने की भी मनाही की जाती है। इसी प्रकार २५ जून १८९१ को भारत-सरकार ने देशी रियासतो के प्रेसो पर अनेक पाबन्दिया लगाने के लिए एक गश्ती-पत्र जारी कया था।

१८९३ मे कौसिले और बडी कर दी गई और जनता के थोडे से प्रतिनिधि उनमे ले लिये गये। इस तरह लोक-प्रतिनिधियो की सख्या बढ जाने पर सरकार ने आवश्यक समझा कि भारतवासियो को सरकारी नौकरियो मे जो-कुछ विशेषाधिकार मिले है वे कम कर दिये जाय। पहले शिक्षा-विभाग मे यह नियम बनाया गया था कि उसमे भारतीयो और यूरोपियनो के लेने मे कोई भेद-भाव न रखा जाय, परन्तु उनकी योग्यता मे जहा समानता कायम रखी गई वहा दरजे मे विषमता ला दी गई। इसके बाद हिन्दुस्तानी कुछ जगहो पर लिये ही नही गये, उनका दरजा और वेतन भी कम कर दिया गया। होमचार्जेज का प्रवाह भी ३० सालो मे ७० लाख पौण्ड से बढकर १३० लाख पौण्ड हो गया। २०वी सदी के पहले पाच साल लॉर्ड कर्जन के दमनपूर्ण शासन के थे। कलकत्ता-कारपोरेशन के अधिकारो मे कमी, सरकारी गुप्त-समितियो का कानून, विश्व-विद्यालयो को सरकारी नियन्त्रण मे लाना जिससे शिक्षा महगी हो गई, भारतीयो के चरित्र को 'असत्यमय' बताना, बारह सुधारो का बजट, तिब्बत-आक्रमण (जिसे पीछे से तिब्बत-मिशन का नाम दिया गया) और अन्त मे बग-विच्छेद—ये सब लॉर्ड

कर्जन के ऐसे कार्य थे, जिनसे राज-भक्त भारत की कमर टूट गई और सारे देश में एक नई जागृति पैदा हो गई।

बग-भग ने बगाली भाषाभाषी जनता को उनकी इच्छाओ के विरुद्ध दो प्रातो में बाट दिया था। इसके परिणाम-स्वरूप जहा जनता मे एक व्यापक और जबरदस्त आन्दोलन उत्पन्न हुआ, वहा सरकार ने भी उग्रता से दमन शुरू कर दिया। जलूस, सभा तथा अन्य प्रदर्शन किये जाते थे, और उधर सरकार उन्हे रोक देती थी। हडताले होती थी और विद्यार्थी तथा नागरिक एक-सी सजा पाते थे। शिक्षणालयो के नियम और भी सख्त कर दिये गये तथा विद्यार्थियो को राजनीति मे भाग लेने से रोक दिया गया। पूर्वी बगाल के लैफ्टिनैण्ट गवर्नर सर बैम्फील्ड फुलर ने बड़े-बडे प्रतिष्ठित नागरिको को बुलाकर रक्तपात की धमकी दी। इसके साथ ही पूर्वी बगाल मे गुरखा पलटन के आने की घोषणा भी की गई। यह सब तब हुआ, जब पण्डित मालवीयजी के कथनानुसार जनता मे हिसा की भावना का चिह्न तक नही पाया जाता था। ऐसी दशा मे सरकार की दमन-नीति का उलटा प्रभाव पडता था। प्रत्येक प्रान्त ने बगाल के प्रश्न के साथ अपनी समस्याओ को जोडकर आन्दोलन को और भी अधिक गहरा रग दे दिया था। 'कैनल कालोनाइजेशन बिल' ने पजाब के सैनिक प्रदेश मे एक नया उत्साह भर दिया था। इस सबध मे लाला लाजपतराय और सरदार अजितसिह को देश-निकाले की सजा दी गई थी।

राजनैतिक सभाओ तथा प्रदर्शनो मे विद्यार्थियो को सम्मिलित होने से रोकने के फल-स्वरूप स्कूलो और कालेजो का बहिष्कार तथा राष्ट्रीय-शिक्षा का आन्दोलन शुरू हुआ। केवल पूर्वी बंगाल मे २४ राष्ट्रीय हाई स्कूल खुल गये और भूतपूर्व जस्टिस सर गुरुदास बनर्जी के नेतृत्व मे राष्ट्रीय शिक्षा के प्रसार के लिए बग जातीय विद्या-परिषद् की स्थापना की गई। बाबू विपिनचन्द्र पाल सम्पूर्ण देश मे घूम-घूमकर राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय-शिक्षा और नव-चैतन्य का जोर-शोर से प्रचार करने लगे। १९०७ मे आन्ध्र-देश मे उनका दौरा बहुत ही शानदार और सफल रहा। राजमहेन्द्री के निवासियो ने उनके आने पर एक राष्ट्रीय हाई स्कूल खोलने का निश्चय किया। ट्रैनिग कालेज के विद्यार्थियो ने उन्हे मानपत्र दिया। इस कारण कुछ विद्यार्थियो को सरकारी अधिकारियो ने कालेज से निकाल दिया। वे विद्यार्थी राष्ट्रीय-सग्राम के सिपाही हो गये। इस तरह सरकार की बेरोक दमन-नीति ने देशभक्तो और वीर सिपाहियो को पैदा किया।

१९०७ मे राष्ट्र ने केवल प्रस्ताव पास करना छोड़कर स्वदेशी, बहिष्कार और राष्ट्रीय-शिक्षा के ठोस क्रियात्मक प्रस्तावो पर जोरो से अमल किया। जहा बगाल, महाराष्ट्र, मध्यप्रान्त, पजाब तथा आन्ध्र मे राष्ट्रीय स्कूलो और विश्व विद्यालयो का जन्म बड़े वेग से हो रहा था, वहा स्वदेशी का आ[illegible] सम्पूर्ण देश मे व्याप्त हो गया। हाथ के कपडे का उद्योग एक बार [illegible]

गया। इस बार करघे मे 'फटका शाल' भी इस्तेमाल किया गया। इस उद्योग को उत्तेजना देने के लिए विदेशी वस्तुओ का बहिष्कार का आन्दोलन भी किया गया।

बगाल से नौ नेता निर्वासित किए गये—कृष्णकुमार मित्र, पुलिनविहारी दास, श्यामसुन्दर चक्रवर्ती, अश्वनीकुमार दत्त, मनोरजन गुह, सुबोधचन्द्र मल्लिक, शचीन्द्रप्रसाद वसु, सतीशचन्द्र चटर्जी और भूपेशचन्द्र नाग। य नेता बगाल को और विशेषकर युवक बगाल को सगठित कर रहे थे। पराक्रम और शौर्य उस समय आदर्श थे। दूसरी तरफ सर बैम्फील्ड फुलर के आदर्श 'गुरखा सेना' तथा 'यदि आवश्यक हो तो खून-खराबी' थे। १९०८ मे स्थिति चरम-सीमा को पहुच गई थी। अखबारो पर मुकदमे चलाना एक आम बात हो गई। 'युगान्तर', 'सध्या', 'वन्देमातरम' नई जाग्रति के प्रचारक पत्र थे, वे सब बन्द कर दिये गये। 'सध्या' के सम्पादक देशभक्त ब्रह्मबाधव उपाध्याय अस्पताल मे मर गये। अनेक कठिनाइयो और तीन मुकदमो से गुजरने के बाद श्री अरविन्द ब्रिटिश-भारत ही छोडकर पाडेचरी चले गये और वहा आश्रम बनाकर रहने लगे।

३० अप्रैल १९०८ को मुजफ्फरपुर मे दो स्त्रियो, श्रीमती और कुमारी कैनाडी, पर दो बम गिरे। ये बम स्थानीय जिला जज किग्सफोर्ड को मारने के लिये बनाये गये थे। इस अपराध के लिए १८ वर्षीय युवक श्री खुदीराम बोस को फासी की सजा मिली। उसकी तसवीरे सारे देश मे घर-घर फैल गई। स्वामी विवेकानन्द के भाई युवक भूपेन्द्रनाथ दत्त के सम्पादकत्व मे निकलनेवाले 'युगान्तर' के कालमो मे हिसावाद का खुल्लम-खुल्ला प्रचार किया जाने लगा। जब उस युवक को लम्बी सजा मिली, तब उसकी बूढी माता ने अपने पुत्र की इस देश-सेवा पर हर्ष प्रकट किया और बगाल की ५०० स्त्रिया उसे बधाई देने उसके घर गई। 'वन्देमातरम्' मे राजविद्रोहात्मक लेखो के लिए श्री अरविन्द पर जो मुकदमा चलाया गया, वह भी इस संग्राम मे अपवाद न था। महाराष्ट्र मे १३ जुलाई १९०८ को लोकमान्य तिलक गिरफ्तार किये गये और उसी दिन आन्ध्र मे श्री हरि सर्वोत्तमराव तथा दो अन्य सज्जन पकडे गये। पाच दिनो की सुनवाई के बाद लोकमान्य तिलक को छ साल देश-निकाले की सजा मिली। १८९७ मे छुटी हुई छ मास की कैद भी इसके साथ जोड दी गई। आन्ध्र के श्री हरिसर्वोत्तमराव को नौ महीने की सजा मिली। सरकार ने इतनी थोडी सजा के खिलाफ अपील की और हाईकोर्ट ने उनकी सजा बढाकर तीन साल कर दी। राजद्रोह के लिए पाच साल सजा देना तो उन दिनो मामूली बात थी। इसके बाद जल्दी ही राजद्रोह देश से गायब हो गया। वास्तव मे वह अन्दर-ही-अन्दर अपना काम करने लगा और उसकी जगह बम तथा पिस्तौल ने ले ली। १९०८ मे राजद्रोही सभाबन्दी-कानून तथा 'प्रेस-एक्ट' नाम के दो कानून जनता के पूर्ण विरोध करने पर भी सरकार ने पास कर दिये और दो साल बाद क्रिमिनल लॉ एमेण्डमेन्ट एक्ट भी बन गया। सभाबन्दी

विल पर वहस करते हुए श्री गोखले ने सरकार को चेतावनी दी कि "युवक हाथ से निकले जा रहे है और यदि हम उन्हें वश मे न रख सके तो हमे दोष मत देना।"

कभी-कभी इक्के-दुक्के राजनैतिक खून भी होने लगे जिनमे सव से साहसपूर्ण खून १९०७ मे लन्दन की एक सभा मे सर कर्जन वाइली का हुआ। यह खून मदनलाल धिंगडा ने किया था, जिसे वाद मे फासी दी गई। अभियुक्त को वचाने की कोशिश करने वाले डॉ० लालकाका नामक एक पारसी सज्जन को भी फासी की सजा दी गई। लाहौर (१९०९) मे होनेवाले काग्रेस के २४वे अधिवेशन मे सभापति पं० मदनमोहन मालवीय ने इन घटनाओ तथा नासिक के कलक्टर मि० जैक्सन की हत्या पर दु ख प्रकट किया। लन्दन मे रहनेवाले कुछ विद्यार्थी भी इसके समर्थक थे। मिण्टो-मॉर्ले सुधारो, अथवा भारत-सरकार और मद्रास एव वम्बई की सरकारो की कौसिल मे भारतीयो के लेने से भी यह वढा-चढा वैमनस्य शान्त न हुआ। जव तक वग-विच्छेद उठा न लिया जाय, तव तक शान्ति की कोई सम्भावना न थी। लेकिन ऐसा करने से नौकरशाही का रोव जाता था। तव वंग-भग के कारण जो साप-छछूंदर की-सी हालत हो गई थी उसमे से छूटने के लिए एक रास्ता ढूँढा गया। जव लॉर्ड मिण्टो ने अपनी जगह लॉर्ड हार्डिङ्ग को दी और लॉर्ड मिडलटन की जगह लॉर्ड क्रू भारत-मत्री वने, तव भारत मे ब्रिटिश-नरेश जार्ज पचम के राज्याभिषेक-महोत्सव का लाभ उठाकर वंग-भग रद कर दिया गया और भारत की राजधानी कलकत्ते से उठाकर दिल्ली ले आये।

जव यह कहा जाता है कि वग-भग रद कर दिया गया, तव यह समझना चाहिए कि स्थिति यथापूर्व कर दी गई। पहले पश्चिमी वगाल और आसाम-सहित पूर्वी वगाल के रूप मे वग-भग किया गया था। अव उसका रूप वदल दिया गया। पहले विहार को पश्चिमी वगाल मे मिला लिया था, लेकिन अव उसे छोटा नागपुर और उडीसा के साथ मिलाकर एक प्रान्त वना दिया, अर्थात् आसाम के साथ पूर्वी और पश्चिमी वगाल के दो प्रान्तो के वजाय अव तीन प्रान्त हो गये—वगाल एक प्रान्त, विहार छोटा नागपुर और उडीसा दूसरा प्रान्त और आसाम तीसरा प्रान्त। राज्याभिषेक के उत्सव मे जिस एक अन्याय को दूर नही किया गया था, वह अव उडीसा को पृथक् प्रान्त स्वीकार करके दूर किया गया।

इन सव सफलताओ के वाद काग्रेस का वार्षिक अधिवेशन (कलकत्ता, १९११) वहुत खुशी के साथ मनाया गया। श्री सुरेन्द्रनाथ वनर्जी ने, वगाल को सारे भारत से मिलनेवाली मदद के प्रति कृतज्ञता प्रकाश करते हुए यह उच्च आशा प्रकट की थी कि भारत भी स्वशासन-प्राप्त राष्ट्रो के स्वतन्त्र सघ-साम्राज्य का एक अभिन्न अग वनेगा। लेकिन इन सव आशाओ और खुशियो मे लोग राजद्रोह, सभावन्दी-कानून (१९०८), प्रेस-एक्ट (१९०८) और क्रिमिनल लॉ एमेण्डमेण्ट ऐक्ट (१९१०) को भूले नही थे। इन्ही के द्वारा तो जनता की आजादी की

जड पर कुल्हाडा चलाया गया था। इन सबसे बढकर १८१८ का रेग्युलेशन ३ तथा अन्य प्रान्तो के रेगुलेशन अब तक मौजूद थे, जिनके अनुसार १९०६-८ के देश निकाले की सजा जगह-जगह दी गई थी। भारत मे बननेवाले कपडे पर 'उत्पत्ति-कर' भी अब तक मौजूद था। इनकी बदौलत जान-माल की स्वतन्त्रता, राष्ट्रीयता तथा उद्योग-धन्धो के हित खतरे मे थे।

१९१२ मे राजनैतिक खिचाव कुछ-कुछ कम हो गया था। लेकिन इसी वर्ष एक भारी दुर्घटना हो गई। लॉर्ड हार्डिञ्ज जब जलूस के साथ हाथी पर नई राजधानी दिल्ली मे प्रवेश कर रहे थे, किसी ने उन पर बम फेका और वह मरते-मरते बचे। इस घटना के बाद प्रेस का और कठोरता से नियन्त्रण होने लगा, जिससे प्रेस-एक्ट को रद करने की लगातार आवाज ने भी १९१३ में जोर पकड़ लिया। कांग्रेस कई सालो तक इसका विरोध करती रही। १९०८ का प्रेस-एक्ट सबसे अधिक खराब था, जिसे १९१० मे स्थायी कानून बना दिया गया।

माण्टफोर्ड-सुधारो के बाद क्रिमिनल लॉ एमेण्डमेण्ट एक्ट को छोडकर बाकी सब दमनकारी कानून रद कर दिये गये। बग-भग के रद किये जाने और अहिंसा-वाद के शान्त हो जाने के बाद भी प्रेस-एक्ट से लोगो को सख्त तकलीफे झेलनी पडती थी। इधर राजनैतिक वातावरण मे जो एक स्तब्धता और शान्ति आ गई थी, उसकी जगह १९१४-१८ के महासमर की हलचल ने ले ली और इस भीषण विश्व-क्रान्ति के प्रारम्भ मे ही एक सन्तोष-जनक घटना हो गई। बग-भग के दिनो से ही मुसलमानो ने राष्ट्रीय आदर्शो से अलग रहकर नौकरशाही पर अपना विश्वास जमा रखा था। १९१३ मे उन्होने भी ब्रिटिश-साम्राज्य के अन्तर्गत स्वशासन के ध्येय को स्वीकार कर लिया। मुस्लिम लीग ने अपने गत अधिवेशन मे बडे जोर के साथ यह विश्वास भी प्रकट कर दिया कि "देश का राजनैतिक भविष्य दो महान् जातियो (हिन्दू और मुसलमानो) के मेल, सहयोग और सहकार्य पर निर्भर है।" काग्रस ने १९१३ मे मुस्लिम लीग के इस प्रस्ताव की बहुत तारीफ की।

जुलाई १९१४ मे महासमर छिड गया और नवम्बर मे जब जर्मनी फ्रास का दरवाजा खटखटा रहा था, लार्ड हार्डिञ्ज ने भारतवर्ष से फौज बाहर भेज दी। इग्लैण्ड बडी आफत मे था। भारत मे फौज इसलिए रखी गई थी कि वह इग्लैण्ड के लिए भारत की हिफाजत कर सके, लेकिन यदि इग्लैण्ड खुद खतरे मे हो, तब भारत मे ठहरी हुई सेना से लाभ ही क्या? मार्सेल्स मे एक दिन भी आराम किये बगैर भारतीय फौज फ्लाडर्स-रणक्षेत्र मे, जहा अग्नि वर्षा हो रही थी, भेज दी गई। उस फौज ने मित्रराष्ट्रो को उस भारी विपत्ति से बचा दिया, जो उसके न पहुचने पर १९१५ के फरवरी-मार्च मे उनपर आ जाती। १९१४ की काग्रस मे स्वशासन की माग फिर की गई। श्रीमती बेसेण्ट ने लॉर्ड पेण्टलैण्ड

के समय मे होमरूल का महान् आन्दोलन उठाया। वही पुराना कार्यक्रम—स्वदेशी, वहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा तथा होमरूल—पुनर्जीवित किया गया। उन्होने मदनल्ली-स्थित अपनी थियोसोफिकल शिक्षण-सस्थाओ का सरकारी विश्व-विद्यालय से सम्वन्ध तोड दिया और अड्यार मे एक राष्ट्रीय हाईस्कूल खोल दिया। सिन्ध तथा अन्य प्रान्तो मे भी उन्होन एक स्कूल खोला और राष्ट्रीय शिक्षा की उन्नति के लिए डॉ० अरण्डेल के सभापतित्व मे एक शिक्षा-समिति संगठित की। श्री बी० पी० वाडिया और श्री सी० पी० रामस्वामी ऐयर ने होमरूल-लीग का जोरो से सगठन किया। दोनो पहले ही से काग्रेस मे काम करने लग गये थे। 'न्यू-इण्डिया' (दैनिक) के कालमो-द्वारा होमरूल-लीग का खूव प्रचार तथा कार्य होता था। विद्यार्थी भी आन्दोलन मे वडी शक्ति वन गये थे, पर लॉर्ड पेण्टलैण्ड ने उन्हे राजनीति से अलग रहने का हुक्म निकाल दिया था। फलस्वरूप आन्दोलन के वाद दमन-नीति का दौर शुरू हुआ और श्रीमती वेसेण्ट तथा मि० अरण्डल तथा वाडिया १६ जून १९१७ को उटकमण्ड मे नजरवन्द कर दिये गये।

: ५ :

मत-भेद का अन्त : १९१५-१६

आत्म-विश्वास की झलक

सन् १९१५ से भारतीय राजनीति मे एक नये युग का श्रीगणेश हुआ। इसका मुख्य कारण तत्कालीन परिस्थितियाँ थी। जापान ने रूस पर जो विजय प्राप्त की थी उनसे, एशिया की जातियो मे अपनी वीरता और क्षमता के कारण आत्मविश्वास की एक नवीन भावना जाग्रत हो गई थी। इसी प्रकार गत महायुद्ध के अवसर पर, १९१४ की कडाके की सर्दी मे, फ्लैण्डर्स और फ्रास के मैदानो मे, जर्मन-सेनाओ के आक्रमणो का भारतीय फौजो ने जिस अद्भुत वीरता, धैर्य और सहनशीलता के साथ सफलतापूर्वक मुकावला किया था उसमे एशिया और यूरोपीय देशो पर भारतवासियो की खासी धाक वैठ गई थी। पश्चिमी देशो की दृष्टि मे तो वे इतने ऊंचे उठ गये थे जितने अभी तक कभी नही थे। भारतीय फौजो द्वारा युद्ध मे की गई सेवाओ के फलस्वरूप कुछ भारतवासियो के हृदय मे तो पुरस्कार की और कुछ के हृदय मे अपने अधिकारो की भावना जाग्रत हो गई थी। सर सुरेन्द्रनाथ वनर्जी पहले दल के लोगो मे थे और श्रीमती वेसेण्ट दूसरे दल के लोगो मे थी।

नेतृत्व का अभाव

वैसे तो मि० ब्रैडला के समय से ही श्रीमती बेसेण्ट का सारा जीवन गरीबो और भारतवासियो की सेवा मे ही व्यतीत हुआ था, लेकिन काग्रेस मे वह १९१४ मे ही सम्मिलित हुई। उन्होने अपने साथ नये विचार, नई योग्यता, नवीन साधन, नया दृष्टिकोण और सगठन का एक बिलकुल ही नूतन ढग लेकर काग्रेस-क्षेत्र मे पदार्पण किया। इस समय काग्रेस मे दो दल थे—एक नरम दल और दूसरा राष्ट्रीय दल। दोनो दलो मे पर्याप्त मतभेद था। इसके साथ ही काग्रेस का कोई मार्ग-प्रदर्शक भी नही था। इस कारण १९१५ के आरभ मे देश की वास्तविक अवस्था अच्छी नही थी। १९ फरवरी १९१५ को गोखले का स्वर्गवास हो चुका था। सर फिरोजशाह मेहता भी हमारी दृष्टि से ओझल हो चुके थे। दीनशा वाचा पर वृद्धावस्था-जन्य निर्बलताएँ अपना अधिकार जमाती चली जा रही थी। लोकमान्य तिलक जून १९१४ मे मण्डाले से लगभग अपनी पूरी सजा काट लेने के बाद रिहा हुए थे। श्रीनिवास शास्त्री ने, 'भारत-सेवक समिति' के प्रथम सदस्य होने के कारण, गोखले का स्थान तो अवश्य ले लिया था, लेकिन वह सदैव फिसड्डी ही रहे। पडित मदनमोहन मालवीय की ऐसी स्थिति नही थी कि वह नरम मार्ग पर काग्रेस का नेतृत्व करते। उनमे न वह शक्ति एव मानसिक दृढता ही थी जिससे वह अपने मार्ग पर अग्रसर होते। गाधीजी तो उस समय देश मे आये ही थे। उन्होने इस समय तक देश मे सार्वजनिक जीवन का निश्चित ढग पर श्रीगणेश भी नही किया था। वह अपने राजनैतिक गुरु गोखले की नसीहत के अनुसार चल रहे थे। वे इस समय चुपचाप देश की अवस्था का अध्ययन कर रहे थे, क्योकि एक मुद्दत से वह बाहर विदेशो मे रहे थे। लाला लाजपतराय अमरीका मे देश-निकाले का जीवन व्यतीत कर रहे थे। सत्येन्द्रप्रसन्न सिह (बाद मे लार्ड) जिन्होने १९१५ की बम्बई की काग्रेस का सभापतित्व किया था, इस समय नई धारा के साथ बिलकुल मेल नही खा रहे थे। इसलिए बम्बई-कागेस के बाद उन्होने देश की राजनीति मे कोई दिलचस्पी नही ली। इस प्रकार देश का नेतृत्व प्राय राष्ट्र के हाथ से निकल कर नौकरशाही के हाथो मे जा रहा था। नरम दल-वालो के हाथ से शक्ति निकल चुकी थी। राष्ट्रीय दल अभी तक अपने को सम्हाल न पाया था। श्रीमती बेसेण्ट का १९१४ तथा १५ का दोनो दलो (नरम दल और राष्ट्रीय दल) को एक करने का उद्योग असफल हो चुका था। असफलता की इस कहानी का यहा सक्षेप मे अवलोकन करना अनुचित न होगा।

समझौते का प्रयत्न

लोकमान्य तिलक जून १९१४ मे जेल से छूट कर आये थे। वह राष्ट्रीय दल के नेता थे। आते ही उन्होने अपने कार्य-क्रम मे तीन बातो को स्थान दिया

(१) कांग्रेस में मेल पैदा करना, (२) राष्ट्रीय दल का पुन.संगठन करना और (३) एक दृढ तथा सुसगठित विराट् होमरूल-आन्दोलन चलाना। इन तीनो बातो मे से पहली के लिए लोकमान्य तथा राष्ट्रीय-दल के लोग यह चाहते थे कि कांग्रेस के प्रतिनिधियो के चुनाव का क्षेत्र विस्तृत कर दिया जाय। अबतक कांग्रेस के विधान के अनुसार कांग्रेस के प्रतिनिधियो के चुनाव का अधिकार केवल कुछ सस्थाओ को ही था। इस कार्य की सिद्धि के लिए श्रीमती बेसेण्ट और कांग्रेस के तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री सुब्बाराव पन्तुलु दिसम्बर १९१४ के प्रथम सप्ताह मे पूना गये। उन्होने लोकमान्य तिलक, गोखले तथा अन्य नेताओ से परामर्श किया। एक संशोधन पर सब राजी हो गये। फिर श्री सुब्बाराव, सर फिरोजशाह से परामर्श करने के लिए बम्बई गये, परन्तु वह बिलकुल निराश होकर लौटे। फिर वह तिलक तथा गोखले से मिले। गोखले का यह विश्वास था कि लोकमान्य तिलक का कांग्रेस मे पुन प्रवेश कांग्रेस के पुराने झगडे के लिए एक सिगनल का कार्य करेगा। इसलिए उस सशोधन के प्रति अपने समर्थन को उन्होने वापस ले लिया और इसके सम्बन्ध मे उन्होने श्रीमती बेसेण्ट की जबानी कहला दिया। उन्नीसवी कांग्रेस के मनोनीत सभापति को एक खानगी पत्र मे उन्होने अपने विचार बदलने के कारणो का उल्लेख भी किया। कुछ ही समय मे वह पत्र सारी जनता पर प्रकट हो गया। उसमे यह लिखा था कि तिलक ने खुल्लमखुल्ला अपने यह विचार प्रकट किये है कि वह 'सरकार का बहिष्कार करेगे' और यदि वह कांग्रेस मे घुस गये तो आयरलैड वालो की भाति अडंगा-नीति का अवलम्बन करेगे। इस सम्बन्ध मे श्रीमती बेसेण्ट ने जब जांच-पड़ताल की तब तिलक ने इस बात का खडन किया। इसपर उनसे क्षमा-याचना भी की गई। लेकिन फिर भी मेल-मिलाप की बात स्थगित ही रही। इसी बीच गोखले की मृत्यु हो गई।

१९१५ और १६ मे तिलक ने अपने दल को सगठित करने के लिए घनघोर प्रयत्न किया। उनका विचार था कि एक सुदृढ दल के लिए (१) आकर्षक नेता, (२) एक विशेष लक्ष्य और (३) एक युद्ध-घोष जरूरी है। जोसेफ बप्टिस्टा के रूप मे लोकमान्य को एक बहुत ही योग्य सहयोगी मिल गये। उन्ही के सभापतित्व मे पूना मे राष्ट्रीय दल के लोगो की एक परिषद् हुई, जिसमे एक हजार व्यक्ति सम्मिलित हुए। इस परिषद् मे और बाद को जो नरम दलवालो का एक सम्मेलन हुआ उसमे जमीन-आसमान का अन्तर था। नरम-दल की परिषद में बहुत थोडी उपस्थिति थी और लॉर्ड विलिंगडन ने पधार कर उसकी शोभा बढाई थी। पूना-परिषद् से लोगो को 'होमरूल' के रूप मे एक 'युद्धघोष' मिल गया। अब लोकमान्य के पास एकमात्र कार्य यह रह गया था कि किस प्रकार भा॰ लक्ष्य तक ले जाय। उनकी इच्छा थी कि मजदूर-दल के नेताओ-द्वा

मे पार्लमेण्ट मे एक बिल पेश कराया जाय और स्वय अपनी सारी शक्तियो को एक विराट् आन्दोलन मे केन्द्रीभूत कर दिया जाय।

१९१५ की काग्रेस का अधिवशन बम्बई मे होने जा रहा था। चूकि मेल-मिलाप के सारे प्रयत्न विफल हो चुके थे, इसलिए यह काग्रेस नरम दल वालो की ही थी। काग्रेस के ऐन मौके पर, अर्थात् नवम्बर मास मे, सर फिरोज-शाह मेहता का स्वर्गवास हो गया। सर सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह, जिनकी योग्यता और रुतबे की सर्वत्र धाक थी, इस काग्रेस के सभापति चुने गये थे। वैसे काग्रेस के साथ उनका सम्पर्क तो बहुत ही थोडा था, लेकिन उनके सभापतित्व से बबई काग्रेस को वह सारी प्रतिष्ठा अवश्य प्राप्त हुई जो सरकार के भूतपूर्व लॉ-मेम्बर के नाम के साथ जुडी रहती थी। राष्ट्रीय दृष्टिकोण से उनका भाषण अत्यन्त प्रतिगामी था। उनके विचार से भारत के भविष्य के लिए एक ऐसे आदर्श की आवश्यकता थी जिससे एक ओर तो उठती हुई पीढी की महत्वाकाक्षाओ की पूर्ति हो और दूसरी ओर वे लोग भी उसे मजूर कर ले जिनके हाथ मे भारत का भाग्य सौपा हुआ है। इसी विचार से वह ऐसी नीति की घोषणा चाहते थे।

लेकिन बम्बई की सन् १९१५ वाली काग्रेस के प्रति जनता के उस अनुराग के चिह्न फिर से दिखाई पडने लगे जो सूरत-काण्ड के बाद विलीन हो गये थे। लखनऊ-काग्रेस और उसके बाद तो जनता की दिलचस्पी इतनी बढ गई कि उसका प्रभाव स्पष्ट रूप से प्रतीत होने लगा। बम्बई की काग्रेस मे २२५९ प्रतिनिधि आये थे, और विभिन्न विषयो पर अनेक प्रस्ताव पास हुए थे। वे प्रस्ताव उन प्रस्तावो के सार मात्र थे जो काग्रेस के जन्म से लेकर समय-समय पर काग्रेस मे पास होते रहे थे। १९१५ की एक बडी दिलचस्प घटना यह हुई कि गाधीजी विषय-समिति के सदस्य नही चुने जा सके। इसलिए सभापति ने उनको अपने अधिकार से इस समिति मे नामजद किया। बम्बई-काग्रेस की एक सफलता यह भी थी कि उसने काग्रेस के विधान मे ऐसा महत्वपूर्ण सशोधन कर दिया था, जिसके द्वारा राष्ट्रीय दल के लोग भी काग्रेस के प्रतिनिधि चुने जा सकते थे, क्योकि यह तय हो गया था कि उन सस्थाओ द्वारा बुलाई गई सार्वजनिक सभाएँ काग्रेस के लिए प्रति-निधि चुन सकेगी जिनकी स्थापना १९१५ से दो वर्ष पूर्व हो चुकी हो और जिनका उद्देश्य वैध-उपायो से ब्रिटिश-साम्राज्यान्तर्गत स्वराज्य प्राप्त करना हो। लोक-मान्य तिलक ने इसका हृदय से स्वागत किया। उन्होने तुरन्त ही इस बात की सार्वजनिक रूप से घोषणा कर दी कि वह और उनका दल इस आशिक रूप मे खुले द्वार से काग्रेस मे प्रवेश करने को सहर्ष तैयार है।

दो होमरूल लीगों की स्थापना

सन १९१६ का श्रीगणेश, पिछले वर्ष की अपेक्षा, काग्रेस-कार्य के लिए और

भी शुभ हुआ। इधर देश वडे-वड़े धक्को के कारण और भी असहाय हो गया था, क्योकि १९१५ मे ही गोखले और मेहता जैसे महारथी स्वर्गारोहण कर चुके थे। लोकमान्य के लिए तो अभी तक कोई स्थान ही नही था, क्योकि वम्वई मे जो समझौता हुआ था उसके अनुसार उन्हे पूरे साल भर तक इन्तजार करना था। इसी के वाद वह काग्रस मे आ सकते थे और उसे प्रभावित कर अपने ढग से चला सकते थे। अत उन्होने अपने होमरूल-लीग के विचार को कार्य-रूप देने का निश्चय किया। इस नाजुक समय मे वह अपनी शिक्षा-दीक्षा, योग्यता, सेवाओ और त्याग के कारण नेतृत्व करने के लिए पूर्णत योग्य थे। उन्होने काग्रेस को एक शिष्ट-मण्डल इग्लैण्ड भेजने के लिए राजी करने की काफी कोशिश की, लेकिन ऐसा हुआ नही। तव उन्होने २३ अप्रैल १९१६ को अपनी होमरूल लीग की स्थापना की। इसके ६ मास वाद श्रीमती वेसेण्ट ने भी अपनी होमरूल-लीग खडी की। नौकरशाही तिलक के विरुद्ध थी। तिलक भी ६० वर्ष के हो चुके थे और वह प्राय. अस्वस्थ रहते थे। होमरूल-लीग की स्थापना तो उन्होने कर ली थी, पर उसके सवंध मे प्रचार करना उनके वस और वूते की वात नही थी।

श्रीमती वेसेंट की नीति

यह थी दशा १९१६ में भारत की, जिसकी पुकार पर कोई ध्यान नही देता था और जिसे अपने लिए एक नेता ढूढ निकालने की आवश्यकता थी। ठीक ऐसे ही नाजुक समय मे श्रीमती वेसेण्ट धार्मिक क्षेत्र से एकदम राजनैतिक क्षेत्र मे कूद पडी। थियोसोफी को छोडकर उन्होने होमरूल को अपनाया। उन्होने 'न्यू इण्डिया' नामक एक दैनिक और इसके वाद "कामन-वील" नाम का एक साप्ताहिक पत्र निकाला। होमरूल की आवाज को लोक-प्रिय वनाने मे उनका प्रथम स्थान था। इसके लिए उन्होने एक छोर से दूसरे छोर तक एक तूफान मचा दिया। वैसे १९१५ मे ही "होमरूल फार इण्डिया लीग" की स्थापना पर विचार-विनिमय हो चुका था, लेकिन उसी समय इसकी स्थापना नही की गई थी, क्योकि सोचा यह गया था कि अगर स्वराज्य के कार्य को स्पष्ट रूप से उस वर्ष की काग्रेस अपने हाथ मे ले ले तो ठीक होगा।

वम्वई-काग्रेस ने काग्रेस और मुस्लिम-लीग के प्रतिनिधियो का एक सम्मेलन करने का जो आदेश दिया था वह यथा-विधि किया गया। उसका परिणाम हुआ भारतवर्ष की दो महान् जातियो मे पूर्ण एकमत हो जाना। एक सम्मिलित समिति भी वनाई गई जिसके सुपुर्द यह कार्य किया गया कि वह एक योजना तैयार करे और साम्राज्य के अन्तर्गत स्वराज्य पाने के उद्देश्य को शीघ्र ही फलीभूत करने के लिए अन्य सारे आवश्यक प्रवन्ध करे। यह तय हुआ कि इस सम्मिलित समिति द्वारा तैयार किया गया स्वराज्य का मसविदा लखनऊ में (१९१६) कांग्रेस और

मुस्लिम-लीग दोनो मिलकर पास करे। इसी सम्बन्ध मे २२, २३ और २४ अप्रैल १९१६ को, इलाहाबाद मे, प० मोतीलाल नेहरू के निवास-स्थान पर, महा-समिति की बैठक मे खूब वाद-विवाद हुआ। महा-समिति की इस बैठक मे जो प्रस्ताव कच्चे तौर पर पास हुए थे उन पर मुस्लिम-लीग की कौसिल और महासमिति की सम्मिलित बैठक ने, जो अक्तूबर १९१६ को कलकत्ते मे हुई थी, विचार किया गया और हिन्दू-मुस्लिम-एकता सम्बन्धी समझौता तय हो गया। केवल वगाल और पजाब के प्रतिनिधियो की सख्या की समस्या हल नही हुई। इसका अन्तिम निर्णय लखनऊ-अधिवेशन पर छोड दिया गया। सम्मिलित समिति ने कलकत्ते मे जो प्रस्ताव पास किये थे, उन्हे लखनऊ काग्रेस ने स्वीकार कर लिया।

श्रीमती बेसेण्ट, काग्रेस का कार्य जिस मन्द गति से चल रहा था, उसमे सन्तुष्ट नही थी। काग्रेस की ब्रिटिश-समिति निस्सन्देह इग्लैण्ड मे अपना काम कर रही थी। लेकिन वह वस्तुत एक प्रकार से, सिर्फ निगरानी रखती थी। श्रीमती बेसेण्ट एक तेजतर्रार और जीती-जागती सस्था चाहती थी। इसलिए उन्होने १९१४ की मद्रास-काग्रेस के स्व-शासन-सम्बन्धी प्रस्ताव के अनुसार १२ जून १९१६ को लन्दन मे एक सहायक-होमरूल-लीग की स्थापना की। भारतवर्ष मे तो निश्चित रूप से, पहली सितम्बर १९१६ ई० को, मद्रास के गोखले-हाल मे उनकी होमरूल लीग की स्थापना हो चुकी थी। इस सस्था ने १९१७ भर धडाके से श्रीमती बेसेण्ट-द्वारा निर्धारित प्रणाली पर काम किया। वह इस सस्था की तीन वर्ष के लिए अध्यक्षा चुनी गई थी। लेकिन सबसे पहले होमरूल-लीग की स्थापना तो, जैसा कि पहले हम बता चुके है, २३ अप्रैल १९१६ को लोकमान्य तिलक ने की थी, जिसका प्रधान कार्यालय पूना मे था। दोनो के नाम में गडबड न हो इसलिए श्रीमती बेसेण्ट ने अपनी होमरूल-लीग का नाम १९१७ मे 'ऑल इडिया होम-रूल-लीग' रख दिया था।

मतभेद का अन्त, लखनऊ कांग्रेस : १९१६

लोकमान्य तिलक अपनी जनवरी की घोषणा के अनुसार १९१६ की लखनऊ-काग्रेस मे सम्मिलित हुए। उन्हे बम्बई प्रात से राष्ट्रीय विचार के लोगो की एक अच्छी खासी सख्या को लखनऊ के अधिवेशन के लिए प्रतिनिधि बनाने मे पूर्ण सफलता मिली। काग्रेस के तत्कालीन विधान के अनुसार ऐसा नियम था कि विषय समिति मे प्रत्येक प्रात के महासमिति के सदस्यो के अलावा उन्ही की सख्या के बराबर के सदस्य प्रत्येक प्रात से, अधिवेशन मे सम्मिलित हुए प्रतिनिधियो द्वारा, चुने जाय। लोकमान्य ने नरम-दल वालो के सामने विषय-समिति के चुने जानेवाले सदस्यो के नामो के सम्बन्ध मे जो प्रस्ताव रखा था वह उन लोगो ने जब स्वीकार नही किया तब उन्होने बम्बई के प्रतिनिधियो से, जो सारे-के-सारे राष्ट्रीय विचार

के थे, केवल अपने दल के लोगो को ही चुनवाने का निश्चय किया। अधिवेशन मे विषय-समिति के सदस्यो के लिए दो-दो नाम एक साथ पेश किये गये। अर्थात् एक नरम-दल वाले का तो दूसरा राष्ट्रीय-दल वाले का। परन्तु हर बार राष्ट्रीय दल का ही आदमी चुना गया। जब गाधीजी के नाम के मुकाबले मे एक राष्ट्रीय-दल के आदमी का नाम रख दिया गया तब गाधीजी भी नही चुने जा सके। लेकिन लोकमान्य ने घोषणा कर दी कि गाधीजी चुन लिये गये।

लखनऊ की इस काग्रेस के सभापति श्री अम्बिकाचरण मजुमदार चुने गये थे। यह काग्रेस अपने ढग की अद्वितीय थी। एक तो उसमे हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य हुआ, दूसरे स्वराज्य की योजना पेश हुई और काग्रेस के दोनो दलो मे, जोकि १९०७ से पृथक्-पृथक् थे, एका हो गया। वास्तव मे यह दृश्य देखते बनता था। लोकमान्य तिलक और खापर्डे, रासबिहारी घोष और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, एक साथ एक ही स्थान पर बराबर बैठते थे। श्रीमती बेसेंट भी अपने दो सहयोगी अरण्डेल और वाडिया साहब के साथ, जिनके हाथो मे होमरूल के झण्डे थे, वही बैठी थी। मुसलमानो मे मे राजा महमूदाबाद, मजहरुल हक और जिन्ना साहब भी उपस्थित थे। गाधीजी और मिस्टर पोलक भी वही विराजमान थे। काग्रेस-लीग योजना पर, जिसे कांग्रेस ने पास किया था, तुरन्त ही मुस्लिम-लीग ने भी अपनी मुहर लगा दी।

बम्बई-काग्रेस की भाति लखनऊ-काग्रेस मे भी उपस्थिति अच्छी थी। २,३०१ प्रतिनिधियो के अतिरिक्त दर्शको की एक अच्छी खासी भीड़ थी, जिनके मारे सारा पण्डाल खचाखच भर गया था। इसमे प्राय वह सब प्रस्ताव पास हुए जिन्हे काग्रेस अब तक हर साल पास करती चली आ रही थी। काग्रेस ने दो प्रस्ताव और पास किये थे। एक तो उत्तरी विहार के गोरे जमीदारो और वहा की रैयत के पारस्परिक सम्बन्ध के विपय मे था, जिसमे इस बात की आवश्यकता पर जोर दिया गया था कि सरकार शीघ्र ही सरकारी तथा गैर-सरकारी कुछ सदस्यो की एक ऐसी सम्मिलित समिति नियुक्त करे जो बिहार के किसानो के कष्टो का पता लगाये। दूसरा विश्वविद्यालय-सम्बन्धी विल था जो कि बडी कौंसिल मे पेश किया जा चुका था। उत्तरी बिहार के गोरे जमीदार और वहा की रैयत के सम्बन्ध का प्रस्ताव बड़ा ही महत्वपूर्ण था, क्योकि इसके बाद ही गाधीजी किसानो के असन्तोष के कारणो का पता लगाने बिहार गये थे, जिस पर आगे के अध्यायो मे प्रकाश डाला जायगा।

काग्रेस और लीग दोनो के एक समय मे एक ही स्थान पर अधिवेशन करने की प्रथा का जो श्रीगणेश बम्बई मे हुआ था वही लखनऊ मे भी जारी रखा गया। लखनऊ के अधिवेशन मे स्वशासन-प्रणाली के लिए जो प्रस्ताव पास हुआ था उसके बाद एक प्रस्ताव इस आशय का भी पास हुआ था कि सारे देश की काग्रेस-कमिटिया

तथा अन्य सगठित सस्थाएँ और कमिटिया शीघ्र ही एक देशव्यापी प्रचार का कार्य शुरू कर दे। इस आदेश का देश ने आश्चर्यजनक उत्तर दिया। एक प्रात ने दूसरे प्रात से इस प्रचार-कार्य करने मे प्रतिस्पर्द्धा की। मद्रास ने तो श्रीमती बेसेंट के नेतृत्व मे इस कार्य मे सबसे अधिक बाजी मारी।

कांग्रेस का लखनऊ-अधिवेशन सुगमता से समाप्त नही हो गया। १८९९ मे जब कांग्रेस का इसी स्थान पर १५ वा अधिवेशन होने जा रहा था तब अकथनीय कठिनाइयो का सामना करना पडा था। लेकिन उस समय, तत्कालीन लेफ्टिनेंट-गवर्नर सर एन्थोनी मैक्डोनल्ड ने उन सबका अन्त कर दिया था। इसी तरह की एक घटना १९१६ मे हुई थी। उत्तर-प्रदेशीय सरकार के मन्त्रि-मण्डल ने कांग्रेस की स्वागत-समिति को एक चेतावनी भेजी थी कि भाषणो मे किसी प्रकार के राज-द्रोहात्मक भावो को न आने दिया जाय। कांग्रेस के मनोनीत सभापति के पास भी बगाल-सरकार द्वारा उसी की एक नकल भेज दी गई थी। स्वागत-समिति ने इस अकारण तौहीन का मुह-तोड उत्तर दिया और सभापति ने उस पत्र को कोई महत्व नही दिया। श्रीमती बेसेन्ट ठीक इन्ही दिनो बरार और बम्बई की सरकारो से देश-निकाले की आज्ञा पा ही चुकी थी। इसलिए स्वभावत लखनऊ मे भी कुछ ऐसी ही आशकाएँ थी। लेकिन सर जेम्स मेस्टन की बुद्धिमानी से इस तरह की कोई घटना नही घटी और इसलिए कोई पेचीदगी पैदा नहीं हुई। इतना ही नहीं, अधिकारीवर्ग-सहित सर जैम्स मेस्टन अपनी धर्मपत्नी सहित कांग्रेस मे भी पधारे थे। सभापति महोदय ने उनका जो स्वागत किया था, उसका सर जैम्स ने उपयुक्त उत्तर भी दिया था।

: ६ :

उत्तरदायी शासन की माँग : १९१७

होमरूल आन्दोलन

कांग्रेस के दो दलो के बीच पारस्परिक मत-भेद का अन्त तथा भारत की दो महान जातियो के बीच समझौता हो जाने से सन् १९१७ का वर्ष ठोस कार्यो के लिए अधिक उपयुक्त सिद्ध हुआ। १९१७ मे जो राजनैतिक आन्दोलन चलाया गया था उसकी कल्पना स्पष्ट और भावना शुद्ध थी। १९१७ मे सारे देश मे बडी तेजी के साथ एक राष्ट्रीय-जागृति पैदा हो गई थी। होमरूल के लिए जो विराट् आन्दोलन इस वर्ष हुआ वह भी बहुत ही लोकप्रिय था। होमरूल की

आवाज देश के सुदूर कानो तक फैल गई थी और सर्वत्र होमरूल-लीगो की स्थापना हो गई थी। श्रीमती बेसेण्ट-द्वारा प्रेम की शक्ति मे विशेष उन्नति हुई। परन्तु इसके साथ-साथ दमन-चक्र भी चला। श्रीमती बेसेण्ट से, जिनका 'न्यू इडिया' नामक दैनिक और 'कामन-वील' नामक साप्ताहिक पत्र निकलता था, प्रेस और पत्र के लिए २०,०००) की जमानत मागी गई और वह जब्त भी कर ली गई। एक ओर यह हो रहा था तो दूसरी ओर होमरूल का विचार, दावानल की तरह, सर्वत्र फैल रहा था। होमरूल-आन्दोलन की शक्ति, श्रीमती बेसेण्ट के १९१७ मे कलकत्ता काग्रेस के सभापति-पद से दिये गये भाषण के कारण, दसगुनी अधिक बढ गई थी। इस आन्दोलन की सफलता का एक बडा कारण यह था कि प्रारम्भ से ही भाषा के आधार पर प्रान्त बनाने के सिद्धान्तो को मान लिया गया था और उसी के अनुसार देश का प्रान्तीय-सगठन किया गया था। इस प्रकार इस रूप मे वह काग्रेस से भी आगे निकल गई थी और सच पूछिए तो काग्रेस के लिए उसने पूर्व-सूचक का काम किया था।

१५ जून १९१७ को श्रीमती बेसेण्ट, अरण्डेल और वाडिया साहब को नजरबन्दी का हुक्म मिला। उनको ६ स्थान बताये गये थे जिनमे से एक को उन्हे अपने रहने के लिए पसन्द कर लेना था। उन्होने कोयम्बटूर और उटकमण्ड को पसन्द किया। अपने तीन नेताओ की नजरबन्दी के कारण होमरूल-लीग और भी लोकप्रिय हो गई और श्री जिन्ना भी उसमे सम्मिलित हो गये। सरकारी हुक्म और खुफिया-पुलिस की निगरानी होने पर भी श्रीमती बेसेण्ट स्वतन्त्रता पूर्वक बराबर अपने पत्र 'न्यू-इडिया' के लिए लेख लिखती रही। श्री पढरीनाथ काशीनाथ तैलग 'न्यू इण्डिया' के सम्पादक बनकर मद्रास पहुच गये। देश मे स्थिति बडी विकट हो गई। लेकिन इंग्लैण्ड मे अधिकारी-वर्ग जरा भी झुकने को तैयार न था।

शाही युद्ध-परिषद्

भारतवर्ष मे जब यह राजनैतिक तूफान उमड रहा था, लन्दन मे एक शाही युद्ध-परिषद् हो रही थी, जिसमे सारे उपनिवेशो के प्रतिनिधि उपस्थित थे। भारत का प्रतिनिधित्व करने के लिए महाराज बीकानेर और सर सत्येन्द्रप्रसन्नसिंह इग्लैण्ड भेजे गये थे। इन लोगो ने वहाँ अपनी शान-बान और रङ्ग-ढङ्ग तथा शुद्ध उच्चारण से ऐसा रोब जमाया कि उनका वहाँ खूब ही स्वागत हुआ। भारतवर्ष इस समय होमरूल के सम्बन्ध मे नजरबन्द हुए लोगो को छुडाने के लिए सत्याग्रह करने की योजना तैयार कर रहा था। जुलाई १९१७ मे महासमिति और मुस्लिम लीग की कौसिल की एक सम्मिलित बैठक बुलाई गई। इसमे सर विलियम वेडरबर्न की सलाह के अनुसार एक छोटा-सा शिष्टमंडल इग्लैण्ड भेजने का निश्चय

हुआ। उसके सदस्य थे—सर्वश्री जिन्ना, शास्त्री (यदि वे न जाय तो सी० पी० रामस्वामी ऐयर), सप्रू और वजीर हसन। सत्याग्रह करने के प्रश्न पर यह तय हुआ कि प्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटियो और मुस्लिम-लीग की कौसिल से प्रार्थना की जाय कि वे सत्याग्रह पर सिद्धान्तत राजनैतिक कार्य करने की दृष्टि से विचार करे, कि आया उनकी राय मे सत्याग्रह करना उचित और उपयुक्त है या नही? इस विषय मे उनकी जो राय हो उसे ६ सप्ताह के अन्दर कांग्रेस के प्रधान मन्त्री के पास भेज देने की बात भी प्रस्ताव मे थी।

सत्याग्रह पर विचार

३० जुलाई को भारत-मत्री, प्रधानमत्री तथा सर विलियम वेडरबर्न के पास इस वक्तव्य का मुख्य भाग तार-द्वारा विलायत भेज दिया गया। इसी बीच सत्याग्रह करने के प्रस्ताव पर विभिन्न प्रान्तीय कांग्रेस कमिटियो ने गम्भीरतापूर्वक अगस्त और सितम्बर के महीनो मे विचार किया। बरार की राय मे तो सत्याग्रह करना उचित था, पर बम्बई, बर्मा और बजाब का कहना था कि अभी सत्याग्रह स्थगित रखा जाय, क्योकि मि० माण्टेगु के भारत आने की सभावना है। उत्तर प्रदेश ने वर्तमान अवस्था मे सत्याग्रह करना अनुपयुक्त बताया। बिहार ने कहा कि होम रूल के नजरबन्दो—मौलाना अबुलकलाम आजाद तथा अली-भाइयो को मुक्त कराने के लिए एक तारीख नियत कर देना चाहिए। इस दी गई मियाद के बीच बिहार स्वय स्थान-स्थान पर सभाये करके इस माग का बल बढाने को तैयार था। मद्रास-प्रान्तीय कांग्रेस-कमेटी ने १४ अगस्त १९१७ को सत्याग्रह का समर्थन किया। मद्रास-नगर मे तो एक प्रतिज्ञा-पत्र तैयार किया गया। इस पर सबसे पहले सर एस० सुब्रह्मण्य ऐयर ने हस्ताक्षर किया। वह मद्रास हाईकोर्ट के पेशनयाफ्ता जज, पुरान कांग्रेसी तथा आल इडिया होमरूल-लीग के अध्यक्ष थे। उन्होने अपनी 'सर' की उपाधि को श्रीमती बेसेण्ट तथा उनके सहयोगियो के नजरबन्द किये जाने के विरोध मे त्याग दिया था। प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करनेवाले दूसरे व्यक्ति 'हिन्दू' के सम्पादक श्री कस्तूरी रगा आयगर थे।

माण्टेगु की घोषणा

जिस समय भारतवर्ष में होम रूल-आन्दोलन बढ रहा था उस समय मि० चेम्बरलेन की जगह मि० माण्टेगु भारत-मत्री हुए। उनके भारत-मत्री होने से, भारतवर्ष ने अपनी एक बहुत बडी विजय समझी। लोगो की आशा के अनुसार मत्री-पद का कार्य सम्हालने के कुछ ही समय बाद २० अगस्त को मत्रि-मडल की ओर से, उन्होने एक घोषणा की, जिसमे ब्रिटिश नीति का अन्तिम ध्येय भारत को उत्तरदायित्वपूर्ण शासन-प्रणाली देना बताया गया। लोगो के प्रति अपने विश्वास-

भाव को प्रकट करने के लिए उन्होने उस जातिगत प्रतिबन्ध को भारतीयो पर से हटा दिया जिसके कारण वे सेना मे उच्च पद नही पा सकते थे। आगे चलकर उन्होने यह भी घोषित किया कि वह भारत आयेंगे और वाइसराय से परामर्श करेंगे, एव भारत को स्वराज्य की ओर बढाने मे जो समुदाय दिलचस्पी रखते होगे उन सबसे भी बाते करेगे। इस नई नीति के अनुसार श्रीमती बेसेण्ट तथा उनके सहयोगी १६ सितम्बर को मुक्त कर दिये गये।

कांग्रेस का आवेदन-पत्र

६ अक्तूबर को इलाहाबाद मे महासमिति और मुस्लिम-लीग की कौसिल की एक सम्मिलित बैठक हुई। इस सम्मिलित बैठक ने सत्याग्रह करने की बात तय करने के स्थान पर वाइसराय तथा भारत-मत्री के पास एक शिष्ट-मण्डल भेजने की बात तय की। इसके अतिरिक्त, इस शिष्ट-मण्डल के साथ काग्रेस-लीग-योजना के समर्थन मे एक युक्ति-सगत आवेदन-पत्र भी भेजने की बात तय हुई। इस कार्य के लिए १२ व्यक्तियो की एक समिति नियुक्त की गई। श्री सी० वाई चिन्तामणि उसके मत्री थे। इसका काम था एक आवेदन-पत्र और एक अभिनन्दन-पत्र तैयार करना। शिष्ट-मण्डल आवेदन-पत्र के साथ लॉर्ड चेम्सफोर्ड और मि० माण्टेगु से नवम्बर १९१७ मे मिला। आवेदन-पत्र मे कहा गया कि "भारत-सरकार की रजामन्दी से सम्राट्-सरकार-द्वारा जो अधिकार-पूर्ण घोषणा की गई है उसके लिए भारतवासी बडे ही कृतज्ञ है, पर इसके साथ ही यदि उनके आवेदन-पत्र के अनुसार कार्रवाई की जाय तो उन्हे और भी अधिक सन्तोष होगा। गत दो वर्षों से एक ऐसी आवश्यकता पैदा हो गई है जिसके कारण यहा के निवासी इस बात पर बलपूर्वक जोर दे रहे है कि उनके देश को साम्राज्य के अन्य उपनिवेशो की श्रेणी मे रख दिया जाय। इस वर्ष के आरम्भ मे जो शाही-युद्ध परिषद् हुई उसमे महाराज बीकानेर, सर जैम्स मेस्टन और सर सत्येन्द्रप्रसन्न सिह भारत की ओर से प्रतिनिधि बनाकर भेजे गये है। युद्ध के मन्त्रि-मण्डल मे भी इन लोगो को भारत-सरकार के प्रतिनिधि होकर सम्मिलित होने का अवसर दिया गया है। इससे हमे बहुत प्रसन्नता है और इसको हम आगे बढाया हुआ कदम मानते है। हम लोग शाही-परिषद-द्वारा पास किये गये उस प्रस्ताव के मूल्य को भी नही भूल सकते है जिसके द्वारा शाही-युद्ध-परिषद् मे भारत को आगे प्रतिनिधित्व देना तय हुआ है। हमारी प्रार्थना तो केवल यही है कि जबतक भारत-सरकार एक मातहत-सरकार है, तबतक वह न प्रतिनिधि ही है और न जनता के प्रति उत्तरदायी ही। उपनिवेशो के साथ उसकी समानता भी नही मानी जा सकती, क्योकि यह प्रतिनिधित्व भारत-सरकार को दिया गया है, न कि भारवासियो को। इसमे शक नही कि शाही-परिपद् के लिए उनकी ओर से सरकार जिनको चुनेगी वे अपनी शक्तिभर अपने देश के प्रति अपने

कर्त्तव्य का पालन अवश्य करेंगे, लेकिन उनके साथ वह प्रारम्भिक असुविधा अवश्य लगी रहेगी जो जनता के प्रति उत्तरदायी न होनेवाले के साथ होती है। यह उनके साथ वास्तव मे एक भारी कठिनाई रहेगी। हमारी यह माग नही है कि चुनाव सीधा जनता किया करे। यह भी नही कि बहुत अधिक मतदाताओ द्वारा हुआ करे। इतना काफी होगा, यदि बडी और प्रान्तीय कौसिलो के चुने हुए सदस्यो को प्रतिनिधि या प्रतिनिधियो के चुनने का अधिकार दे दिया जाय। आशा है सरकार इसे स्वीकार कर लेगी।"

कांग्रेस का संगठन

इस बीच काग्रेसवाले खामोश नही बैठे थे। वे काग्रेस-लीग-योजना के लिए लोगो के हस्ताक्षर करा रहे थे, जैसा कि पहले बताया जा चुका है। अपनी नजर-बन्दी से छुटकारा पाने के बाद श्रीमती बेसेण्ट ने वाइसराय से कितनी ही बार मिलने के लिए समय मागा, लेकिन उन्हे नही दिया गया। लॉर्ड चेम्सफार्ड श्रीमती बेसेण्ट को दूर ही रखना चाहते थे। मि० माण्टेगु ने भी उनके नेतृत्व के लिए कोई आदर-भाव प्रदर्शित नही किया। अपने छुटकारे के बाद ही उन्होने सत्याग्रह से अपनी अलहदगी दिखलाई। इसका कारण आजतक अगम्य ही है।

१९१७ के अन्त के महीनो मे भारत के राजनैतिक वातावरण मे माण्टफोर्ड ही माण्टफोर्ड हो रहे थे। मि० माण्टेगु और लॉर्ड चेम्सफोर्ड का सर्वत्र दौरा हो रहा था। उनसे विभिन्न स्थानो पर शिष्ट-मण्डल मिलते थे। मि० माण्टेगु श्रीमती बेसेन्ट, लोकमान्य तिलक और गाधीजी जैसे व्यक्तियो से भी मिले और उनकी बाते सुनी। उनकी भारत-यात्रा का उद्देश्य यह जान लेना था कि भावी-शासन मे मत्री, कार्य-कारिणी के सदस्य और एडवोकेट जनरल कौन-कौन बनाने लायक है। वह उन आदमियो के सम्बन्ध मे निश्चित होना चाहते थे जो उनकी योजना को कार्य-रूप मे परिणत कर सके। इस समय गाधीजी अपने कुछ चुने हुए सहयोगियो के साथ—जैसे राजेन्द्र बाबू, बृजकिशोर बाबू, गोरख बाबू, अनुग्रह बाबू और अध्यापक कृपलानी तथा भारत-सेवक-समिति के डा० देव को लेकर बिहार मे निलहे गोरो के प्रति वहा के किसानो की जो शिकायते थी, उनकी जाच कर रहे थे। वह पूरे ६ मास तक आन्दोलन से कतई अलग रहे और अपने सब साथियो को भी अलग रखा। उन्होंने यह प्रस्ताव अवश्य रखा कि काग्रेस-लीग योजना देश की भाषाओ मे अनुवादित कर दी जाय, लोगो को उसे समझाया जाय और उसमे शासन-सुधारो की जो योजना है, उसके पक्ष मे लोगो के हस्ताक्षर कराये जाय। इस प्रस्ताव को ज्योही कार्य रूप मे लाया गया त्योही देश ने काग्रेस की शासन-सुधार-योजना का स्वागत किया। यहा तक कि १९१७ के अत तक दस लाख से ऊपर लोगो ने हस्ताक्षर कर दिये। यह देश-व्यापी सगठन, काग्रेस की ओर से सम्भवत पहला ही प्रयत्न था।

कलकत्ता-कांग्रेस : १९१७

इस वर्ष काग्रेस कलकत्ते मे होने वाली थी। कलकत्ता नरम-दल वालो का एक गढ था। उनमे और नये होमरूल वालो तथा राष्ट्रीय दल वालो मे तीव्र मत-भेद था। राष्ट्रीय दल वालो तथा नये होमरूल वालो ने भी कलकत्ते को ही अपना सुदृढ गढ बना लिया था। पुराने दल के नेता थे राय बैकुण्ठ नाथ सेन, अम्बिका-चरण मजुमदार, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा भूपेन्द्रनाथ वसु। चित्तरजनदास भी काग्रेस-कार्य मे दिलचस्पी लेने लगे थे। उन्होने नये दल के साथ अपना भाग्य जोड लिया था जिसमे बी०के० लाहिडी, आई० वी० सेन और जितेन्द्रनाथ बनर्जी प्रमुख थे।

यद्यपि अधिकाश प्र न्तीय-काग्रेस कमिटियो ने श्रीमती बेसेण्ट को आगामी काग्रेस का अध्यक्ष बनाने की सिफारिश की थी, नो भी स्वागत-समिति मे इस बात पर तीव्र मत-भेद था। तत्कालीन विधान के अनुसार उन दिनो प्रान्तीय काग्रेस कमिटियो के अधिकाश मत को ही मानना पड़ता था। स्वागत-समिति की ३० अगस्त १९१७ की बैठक तो इस विषय पर विकट मत-भेद और विरोध का एक दृश्य बन गई थी। अन्त मे श्रीमती बेसेन्ट सभानेत्री चुन ली गई।

श्रीमती बेसेण्ट का काग्रेस के सभानेत्री-पद से दिया गया भाषण, भारत के स्वशासन पर, परिश्रमपूर्वक लिखा गया एक सुन्दर निबन्ध था। सेना और भारत की व्यापारिक समस्या पर विस्तार के साथ उसमे पूर्णत प्रकाश डाला गया था। उसमे जानकारी प्राप्त करने के इच्छुक-विद्यार्थियो के लिए बहुत-सी सामग्री थी। उन्होने वस्तुत. १९१८ मे पेश करने के लिए एक ऐसे बिल की माग पेश की थी जिसके अनुसार भारत को ब्रिटिश उपनिवेशो के समान स्वराज्य दे दिया जाय, वह भी १९२३ तक, या अधिक-से-अधिक १९२८ तक। बीच के पाच या दस वर्ष अंग्रेजो के हाथो से भारतीय सरकार के हाथो मे आने मे लगे और अग्रेजो से भारत का वही सम्बन्ध बना रहे जो अन्य उपनिवेशो के साथ है।

इस अधिवेशन मे जो प्रस्ताव पास हुए वे भी कुछ को छोडकर पहले-के-से साचे मे ढले हुए ही थे। वृद्ध पितामह दादाभाई नौरोजी और कलकत्ते के ए० रसूल की मृत्यु पर शोक-प्रस्ताव और सम्राट् के प्रति भारत की राजभक्ति के प्रस्ताव [illegible] होने के बाद मि० माण्टेगु के स्वागत का प्रस्ताव पास हुआ। मौलाना [illegible]-अली और शौकतअली को, जो कि अक्तूबर १९१४ से नजरबन्द थे, [illegible] का भी प्रस्ताव पास हुआ। काग्रेस ने एक प्रस्ताव द्वारा, भारतीयों [illegible] सैनिक शिक्षा देने की आवश्यकता पर सदा की भाति जोर देते [illegible] उनके साथ न्याय किये जाने की माग की। दूसरे प्रस्ताव-द्वारा [illegible] एक्ट द्वारा शासकों को बहुत विस्तृत और निरंकुश-सत्ता [illegible]

एक्ट, उपनिवेशो मे भारतीयो के साथ किये जाने वाले दुर्व्यवहार और उनकी असुविधाओ के प्रति अपने विरोध को दोहराया। उसने कुली प्रथा को पूर्ण रूप से उठा देने के लिए भी माग पेश की। एक पार्लमेण्टरी कमीशन की नियुक्ति पर जोर दिया गया जो कि लिखने, व्याख्यान देने, सभा करने आदि की स्वतन्त्रता के दमन के लिए विशेष प्रकार के कानूनो तथा इसी प्रकार के कार्यो के दमन के लिए भारत-रक्षा-कानून के प्रयोग के सम्बन्ध मे जाच करे। काग्रेस ने एक प्रस्ताव-द्वारा रौलट कमीशन की निन्दा की और बताया कि इस कमीशन का उद्देश्य दमन के लिए नये कानूनो की व्यवस्था करना था, लोगो का कष्ट दूर करना नही। मुख्य प्रस्ताव स्वराज्य के सम्बन्ध मे था, जो इस प्रकार है —

"सम्राट् के भारत-मन्त्री ने साम्राज्य-सरकार की ओर से यह घोषित किया है कि उसका उद्देश्य भारत मे उत्तरदायी शासन स्थापित करना है—इस पर यह काग्रेस कृतज्ञतापूर्वक सन्तोष प्रकट करती है।

"यह काग्रेस इस बात की आवश्यकता पर जोर देती है कि भारतवर्ष मे स्व-शासन की स्थापना का विधान करने वाला एक पार्लमेण्टरी कानून बने और उसमे बताये हुए समय तक पूरा स्वराज्य मिल जाय।

"इस काग्रेस की यह दृढ राय है कि शासन-सुधार की काग्रेस-लीग-योजना कानून-द्वारा सुधार की पहली किस्त के रूप मे प्रारम्भ की जानी चाहिए।"

श्रीमती बेसेण्ट के सभापतित्व मे, होमरूल-लीग और काग्रेस एक-दूसरे के बहुत ही निकट आ गई। यह काग्रेस इसलिए भी स्मरणीय है कि इसमे पहली बार राष्ट्रीय झण्डे का सवाल बाजाब्ता उठाया गया। इस कार्य के लिए एक कमिटी नियुक्त की गई जिसके सुपुर्द यह काम किया गया कि वह झण्डे का नमूना निश्चित करे। लेकिन इस कमिटी की बैठक कभी नही हुई। अन्त मे होम-रूल का झण्डा ही काग्रेस का झण्डा बन गया।

७

माण्टेगु-चेम्सफोर्ड-योजना : १९१८

महासमिति की बैठक

१९१७ की काग्रेस के अधिवेशन के बाद तुरन्त ही ३० दिसम्बर को महा-समिति की पहली बैठक मे, काग्रेस के लिए स्थायी-कोष जमा करने के प्रश्न पर विचार किया गया, और प्रान्तीय काग्रेस कमिटियो से अनुरोध किया गया कि वे भारत मे शिक्षा और इग्लैण्ड मे प्रचार-कार्य आरम्भ करने के लिए एक कार्य-समिति

बना दे। इसके बाद के महीने अनवरत रुप से कार्य करने मे ही व्यतीत हुए।

महासमिति की दूसरी बैठक दिल्ली मे १३ फरवरी १९१८ को हुई। उसमे वाइसराय के पास एक शिष्ट-मण्डल भेजने का प्रस्ताव पास हुआ जो उनसे जाकर यह प्रार्थना करे कि लोकमान्य तिलक और विपिनचन्द्र पाल के दिल्ली और पंजाब मे प्रवेश करने पर जो प्रतिबन्ध लगाया गया है, उसे मसूख कर दे। शिष्ट-मडल वाइसराय से मिला, लेकिन निरर्थक। लॉर्ड चेम्सफोर्ड और मि० माण्टेगु शासन-सुधारो सम्बन्धी अपनी रिपोर्ट निकालने ही वाले थे। इसलिए महासमिति ने यह निश्चय किया कि रिपोर्ट के प्रकाशित होते ही लखनऊ या इलाहाबाद मे काग्रेस का विशेष अधिवेशन बुलाया जाय। उसने इग्लैण्ड को एक शिष्ट-मडल भेजना भी तय किया।

३ मई १९१८ को महासमिति की तीसरी बैठक हुई। उसमे सीलोन (लका) और जिब्राल्टर से दोनो होमरूल-लीग के शिष्ट-मण्डलो को, जो इग्लैण्ड जा रहे थे, वापस लौटा देने पर सरकार का खूब विरोध किया गया। कमिटी ने इस बात पर जोर दिया कि यह अधिकारपूर्ण घोषणा कर दी जाय कि लडाई खतम होने पर भारत को उत्तरदायी-शासन दिया जायगा। इससे कम के लिए भारतीय नौजवान कभी युद्ध की सफलता के लिए काफी तादाद मे आगे नही बढेगे।

माण्टेगु-चेम्सफोर्ड-योजना का प्रभाव

जून १९१८ मे माण्टेगु-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट प्रकाशित हुई। साहित्यिक-दृष्टि मे यह ऊचे दरजे की चीज थी। यह ब्रिटिश राजनीतिज्ञो द्वारा तैयार किये गये राजनैतिक लेखो के समान, भारत को स्वशासन देने के सम्बन्ध मे एक निष्पक्ष बयान था। उसमे सुधारो के मार्गो की रुकावटो का बडी स्पष्टता के साथ वर्णन किया गया था और फिर भी जोर दिया गया था कि सुधार अवश्य मिलना चाहिए। रिपोर्ट के पक्ष मे एक और भी बात थी। देश की दो महान् सस्थाओ ने मिलकर जिस योजना को तैयार किया था उसमे अपरिवर्तनीय कार्यकारिणी की तजवीज थी। परन्तु उसमे उत्तरदायी शासन की एक बडी ही आकर्षक योजना थी, जिसमे मन्त्रि-मडल बदला जा सकता था। मत्रिमण्डल की जिम्मेदारी सामूहिक थी और वह कौसिल के मतो पर निर्भर करती थी। यह ठीक ब्रिटिश नमूने के स्वराज्य से मिलती हुई थी। भारतवर्ष के लोगो को और चाहिए ही क्या था? इसके अनुसार, भारतीयो की राय मे, कौसिले भारतीय राजनीतिज्ञो के लिए तालीमगाह न रह कर सार्वजनिक न्यायालय हो जाती थी, जहा कि मत्रीगण को मतदाताओ के सामने अपनी स्थिति साफ करनी पडती और अपने साथी सदस्यो की राय पर उनका भाग्य अवलम्बित रहता। इसलिए कितने ही भारतीय इसके भुलावे मे

आ गये और इसकी तारीफो के पुल बाधने लगे। पलडा काग्रेस-योजना की ओर से माण्ट-फोर्ड-योजना की ओर झुक गया।

कांग्रेस का विशेष अधिवेशन

ऐसी स्थिति मे इस बात पर भिन्न-भिन्न नेताओ मे तेजी से चर्चा होने लगी कि इसके विषय मे हमे क्या करना चाहिए। महासमिति ने काग्रेस के विशेष अधिवेशन को बुलाने का जो निश्चय किया था उसके अनुसार उसका बुलाया जाना लाजिमी था। लेकिन यह बात अनुभव की जाने लगी कि लखनऊ और इलाहाबाद इसके लिए उपयुक्त स्थान न रहेग। अतः बम्बई मे काग्रेस का विशेष अधिवेशन करना तय हुआ और थोडे ही समय मे सारी तैयारी की गई। काग्रेसवालो में रिपोर्ट के सबध मे तीव्र मतभेद था। वैस कोई भी दल योजना से सन्तुष्ट नही था, लेकिन उनके आलोचना करने के ढग मे अन्तर अवश्य था। ऐसा जान पडता था कि एक दल तो, उसे बिलकुल अस्वीकार कर देने पर जोर देगा और दूसरा उसमें सुधार चाहेगा। काग्रेस से कुछ ही दिन पूर्व ऐसा प्रयत्न किया गया था कि किसी जगह एक बार मिले और दोनो दलो मे समझौता हो जाय। लेकिन इसमे सफलता नही मिली।

काग्रेस का अधिवेशन २९ अगस्त १९१८ को हुआ। श्री हसन इमाम सभापति थे। काग्रेस मे उपस्थिति खूब थी। उसमे ३,८४५ प्रतिनिधियो ने भाग लिया था। श्री विट्ठलभाई पटेल स्वागत-समिति के सभापति थे। चार दिन के वादविवाद के पश्चात् काग्रेस ने अपनी पुरानी योजना के आधारभूत सिद्धान्तो का ही समर्थन किया और इस बात की घोषणा कर दी कि भारतीय आकाक्षा साम्राज्य के अन्तर्गत स्व-शासन से कम मे सन्तुष्ट नही हो सकती। माटेगु-योजना की उसने विस्तारपूर्वक आलोचना की। उसने यह घोषणा की कि भारत अवश्य ही उत्तरदायी शासन के योग्य है। माटेगु-रिपोर्ट मे इसके विरुद्ध जो बात कही गई थी उसका प्रतिवाद किया गया। काग्रेस ने प्रान्तीय तथा केन्द्रीय, दोनो शासनो मे एक-साथ ही सुधार जारी करने पर जोर दिया और इस बात से सहमति प्रकट की कि प्रान्त ही वह स्थान है जहा उत्तरदायी शासन के क्रमिक विकास के लिए पहले कार्य प्रारम्भ होना चाहिए और जब तक इस बात का अनुभव न हो जाय कि इन प्रान्तो की शासन-प्रणाली मे जो परिवर्तन करने का विचार है उनका क्या असर होता है तब तक आवश्यक बातो मे भारत-सरकार का अधिकार अक्षुण्ण रहे।

आगे चलकर प्रस्ताव मे ऐसी बाते भी सुझाई गई जिनका होना उत्तरदायी शासन की ओर बढने के लिए पूर्णतया आवश्यक था—जैसे भारत-सरकार से सम्बन्धित बातो के लिए काग्रेस ने यह इच्छा प्रकट की कि प्रान्तो के लिए जिस तरह स्वरक्षित और हस्तान्तरित विषय रखे जायं उसी तरह केन्द्रीय सरकार के लिए

४/५ रहे। कौसिले प्रातीय अधिकार के प्रत्येक विषय पर—कानून, न्याय और पुलिस पर भी—कानून बना सकेगी, किन्तु जहा सरकार को कानून, न्याय और पुलिस-सम्बन्धी बातो मे कौसिल के निर्णय से सन्तोष न हो वहा उन्हे भारत-सरकार के सामने पेश कर सकेगी। भारत-सरकार उसे बडी कौसिल के सामने पेश कर देगी और साधारण तरीका बर्ता जायगा। भारत-सरकार और प्रान्तीय सरकारो का उत्तरदायित्व निर्वाचको के प्रति बढाया जाय और पार्लमेट ओर भारत-मन्त्री के अधिकार कम किये जाय। इण्डिया कौसिल तोड दी जाय। भारत मन्त्री को सहायता देने के लिए दो स्थायी सहायक-मन्त्री रहे, जिनमे से एक भारतीय हो।

जातिगत प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध मे काग्रेस ने निश्चय किया कि छोटो और बडी कौसिलो मे मुसलमानो का प्रतिनिधित्व वही रहना चाहिए जो काग्रेस-लीग योजना मे रखा गया है। स्त्रिया मताधिकार के अयोग्य न ठहराई जाय। आर्थिक मामलो मे भारत-सरकार को पूरी स्वतन्त्रता रहनी चाहिए। सेना मे भारतीयो को कमीशन दिये जाने के सबध मे जो माग पेश की गई थी उसे सरकार ने बिलकुल अपूर्ण रूप से स्वीकार किया था। इस पर काग्रेस ने गहरी निराशा प्रकट की और यह राय दी कि भारतीयो को सेना मे कम-से-कम २५ प्रतिशत कमीशण्ड जगहे देने की कार्रवाई होनी चाहिए और यह औसत धीरे-धीरे बढकर १५ साल मे ५० फीसदी तक जाना चाहिए। काग्रेस ने इगलैड मे शिष्ट-मण्डल भेजना तय किया और सदस्यो के चुनाव के लिए एक कमिटी नियुक्त कर दी। इस तरह यह विशेष अधिवेशन ऐसे निर्णयो पर पहुचा जिससे विभिन्न मतो मे मेल हो गया तथा सारे देश के अधिकाश काग्रेसियो ने पूर्णरूप से उनका समर्थन किया। उन्हो दिनो मुस्लिम-लीग की भी बैठक हुई जिसके सभापति थे महमूदाबाद के राजा साहब। उसमे भी काग्रेस से मिलता-जुलता ही प्रस्ताव पास हुआ।

दमन और गिरफ्तारियां

लेकिन भारत के दुःखो का अन्त नही हुआ। भारत-रक्षा-कानून, जो देश के किसी भी व्यक्ति को कुछ भी करने से रोक सकता था, या कुछ भी करने की आज्ञा दे सकता था, जोरो के साथ अपना काम कर रहा था। मौलाना अबुलकलाम आजाद तथा अली-भाइयो की नजरबन्दी हो चुकी थी। अमृतसर काग्रेस के पहले अली-बन्धु काग्रेसी नही थे। १९१९ मे रिहा होते ही वे अमृतसर-काग्रेस मे पहुचे थे। मुहम्मदअली "कामरेड" नाम के तेज और चरपरे साप्ताहिक का सम्पादन करते थे। उनके बडे भाई शौकत अली "हमदर्द" के सम्पादक थे। यह उर्दू का दैनिक पत्र था। महायुद्ध के छिडते ही ब्रिटिश-सरकार की तरफ से लोगो को दिखाने के लिए बडी शान से एक घोषणा की गई, जिसमे यह कहा गया था कि युद्ध निर्बल राष्ट्रो की रक्षा के लिए लडा जा रहा है। मौलाना मुहम्मदअली

ने अपने पत्र मे एक जोरदार लेख लिखा, जिसका नाम था "मिश्र को खाली कर दो।" मौलाना और अली-बन्धु उसी समय नजरबन्द कर दिये गये थे। वे इसी अवस्था मे २५ दिसम्बर १९१९ तक रहे।

महायुद्ध के लिए धन एकत्र करने और सिपाही भरती करने का ढंग अत्यन्त अनुचित था। इनके कारण पजाब और अन्य जगह आगे चलकर भयकर स्थितिया पैदा हो गई थी। देहात मे तो "इडेण्ट" की प्रथा प्रचलित थी, जिसके अनुसार स्थानीय अधिकारियो को यह बताना आवश्यक था कि उनके हलके से युद्ध के लिए कितना धन मिल सकता था और फिर उसी के अनुसार मातहत अधिकारी, अपनी बात को कायम रखने के लिए, "दबाव तथा समझाने" की नीति को काम मे लाकर युद्ध के लिए जितना हो सकता था रुपया वसूल करते थे। इन उपायो से अन्त मे ऐसी स्थिति पैदा हुई कि एक बार लोगो ने क्रोध मे आकर एक तहसीलदार का बगला घेर लिया और उसके बाल-बच्चो को छोडकर उसे मय बगले के जलाकर भस्म कर दिया।

लार्ड चेम्सफोर्ड के शासन-काल मे, जहा तक राजनैतिक क्षेत्र से सम्बन्ध है, दमन-चक्र मुख्यत प्रेस-ऐक्ट के रूप में बडी तेजी से चला था। भारत-रक्षा-कानून के अनुसार लार्ड विलिगडन ने श्रीमती बेसेण्ट को बम्बई-अहाते मे प्रवेश न करने की आज्ञा दे दी थी। बगाल मे नजरबन्द नवयुवको की संख्या तीन हजार तक पहुच गई थी। इसके बाद श्रीमती बेसेन्ट नजरबन्द हुई। दूसरे वर्ष रौलट बिल तथा उसके साथ ही उसके विरुद्ध आन्दोलन दोनो ने पदार्पण किया।

दिल्ली-कांग्रेस : १९१८

कांग्रेस का साधारण वार्षिक अधिवेशन आगामी दिसम्बर मास मे दिल्ली मे होनेवाला था। दिल्ली-अधिवेशन का सभापति प्रांतीय कांग्रेस-कमेटियो और स्वागत-समिति ने लोकमान्य तिलक को चुना था। लेकिन उन्हे वेलेन्टाइन चिरोल पर चलाये गये मुकद्दमे के सम्बन्ध मे इग्लैड जाना था। अत सभापति बनने मे उन्होने असमर्थता प्रकट की। इसपर प० मदनमोहन मालवीय को सभापति बनाया गया। हकीम अजमल खा स्वागताध्यक्ष थे। ११ नवम्बर १९१८ की अस्थायी-सन्धि के बाद महायुद्ध का अन्त हो गया था। मित्र-राष्ट्रो को पूर्ण सफलता मिली थी और राष्ट्रपति विल्सन, लायड जार्ज तथा मित्र राष्ट्रो के अन्य राजनीतिज्ञो ने आत्म-निर्णय के सिद्धातो की घोषणा कर दी थी। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि इन घोषणाणो को तथा आलोचनाओ को, जो माण्टफोर्ड-रिपोर्ट पर विशेष अधिवेशन के बाद हुई थी, सामने रखकर कांग्रेस शासन-सुधार-योजना पर पुन विचार करे।

कांग्रेस ने एक प्रस्ताव-द्वारा सम्राट् के प्रति राज-भक्ति प्रकट की और युद्ध के, जो कि ससार के सब लोगो की स्वाधीनता के लिए लडा गया था, सफलतापूर्वक समाप्त हो जाने पर बधाइया दी। दूसरे प्रस्ताव द्वारा कांग्रेस ने स्वतन्त्रता, न्याय और आत्मनिर्णय के लिए मित्र-राष्ट्रो के सैनिको की वीरता और खासकर भारतीय सेना की सफलताओ की प्रशसा की। तीसरे-प्रस्ताव द्वारा इस बात की प्रार्थना की गई कि शान्ति-सम्मेलन और ब्रिटिश-पार्लमेण्ट भारत को उन उन्नतिशील देशो मे समझे जिनपर स्व-शासन का सिद्धान्त लागू होगा। इसके लिए जो तत्काल कार्रवाई करनी चाहिए वह यह बताई गई कि उन सारे कानूनो, आर्डिनेंसो और रेग्यूलेशनो को, जिनके कारण स्वतत्रतापूर्वक राजनैतिक समस्याओ पर खुलकर वाद-विवाद नही किया जा सकता और जिनके द्वारा अधिकारियो को गिरफ्तार करने, रोकने, देश-निकाला देने, साधारण अदालतो मे बिना मुकदमा चलाये ही सजा करने का अधिकार दे दिया गया है, तुरन्त ही उठा लिया जाय। कांग्रेस ने एक प्रस्ताव द्वारा यह भी माग पेश की कि साम्राज्य-नीति के पुनर्निर्माण में पार्लमेन्ट शीघ्र ही भारत को एसा पूर्ण उत्तरदायी शासन देने का एक कानून पास करे जैसा कि उपनिवेशो मे है। कांग्रेस ने यह भी इच्छा प्रकट की कि शान्ति-सम्मेलन मे भारत का प्रतिनिधित्व भी चुने हुए व्यक्तियो द्वारा हो। इसके लिए लोकमान्य तिलक, गाधीजी और श्री हसनइमाम को प्रतिनिधि भी चुना गया।

शासन-सुधारो के लिए कांग्रेस ने उसी विशेष अधिवेशन वाले कांग्रेस-लीग योजना के प्रस्ताव को ही दोहराया। साथ ही यह बात भी कही गई कि भारतवर्ष स्वराज्य के योग्य है और शान्ति एव देशरक्षा-सम्बन्धी सब अधिकार कुछ अपवादो

को छोड़कर, भारत-सरकार को है। इसके सम्बन्ध मे भी बम्बई के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए यह बात कही गई कि इसमे शासन-सुधारो को सफलतापूर्वक व्याहवारिक रूप देने मे बाधा पड़ेगी। कांग्रेस ने इस बात पर भी जोर दिया कि तुरन्त ही भारत-रक्षा कानून, प्रेस एक्ट, राज-द्रोह, सभाबन्दी-कानून, क्रिमिनल लॉ अमेण्डमेंट ऐक्ट, रेग्यूलेशन्स तथा इसी प्रकार के अन्य दमनकारी कानूनो को उठा लिया जाय और सारे नजरबन्दो तथा राजनैतिक कैदियो को मुक्त कर दिया जाय।

औद्योगिक कमीशन की रिपोर्ट पर भी विचार हुआ। उसकी सिफारिशो का और इस नीति का स्वागत करते हुए कि भविष्य मे सरकार को इस देश की औद्योगिक उन्नति के लिए अधिक काम करना चाहिए, कांग्रेस ने आशा की कि इस सिद्धांत को कार्यान्वित करने मे यह उद्देश्य सामने रखा जायगा कि भारतीय पूजी और व्यापार को प्रोत्साहन दिया जाय और विदेशो की लूट मे भारत को बचाया जाय। एक और प्रस्ताव द्वारा कांग्रेस ने सरकार मे अली-बन्धुओ को मुक्त कर देने की प्रार्थना की गई। युद्ध के बन्द हो जाने और अभूतपूर्व आर्थिक संकट के कारण कांग्रेस ने सरकार से अनुरोध किया कि युद्ध के कार्यो के लिए ४ करोड ५ लाख रुपया देने के भार से भारत को मुक्त कर दिया जाय। आयुर्वेद और यूनानी दवाइयो के सम्बन्ध मे भी एक बडा ही मनोरंजक प्रस्ताव कांग्रेस ने पास किया। उसमे सरकार से सिफारिश की गई कि विदेशी चिकित्सा-प्रणाली के लिए जो सुविधाये प्राप्त है उन्हींकी व्यवस्था आयुर्वेदिक और यूनानी प्रणालियो के लिए भी कर दी जाय। इस प्रकार एक ओर जहा इस कांग्रेस ने बम्बई-कांग्रेस के प्रस्तावो को प्राय दोहराया वहा कुछ आगे भी कदम बढाया।

: ८ :

सत्याग्रह और पंजाब-हत्याकांड : १९१९

रौलट बिल का मन्तव्य

दिल्ली-कांग्रेस से देश मे कोई शान्ति स्थापित नही हुई। १९१९ के फरवरी मे रौलट-बिल ने देश को अपना दर्शन दिया। वे दो बिल थे। एक अस्थायी था जिसका उद्देश्य था भारत-रक्षा-कानून के समाप्त हो जाने से जो स्थिति पैदा होती उसका मुकाबला करना और वह भी युद्ध के समाप्त होने पर शान्ति स्थापित होने के ६ मास बाद। उसमे यह विधान था कि क्रान्तिकारियो के मुकदमे हाईकोर्ट के तीन जजो की अदालत मे पेश हो और वे शीघ्र उनका फैसला कर दे एवं जिन स्थानो मे क्रान्तिकारी अपराध बहुत हो वहा अपील भी न हो सके। इस कानून-द्वारा यह

अधिकार भी दे दिया गया था कि राज्य के विरुद्ध अपराध करने का जिस व्यक्ति पर सदेह हो उससे जमानत ले ली जाया करे तथा उसे किसी स्थान-विशेष मे रहने और किसी खास काम को करने से रोका जा सके। किसी व्यक्ति को ऐसा हुक्म देने से पहले उसके विरुद्ध जो आरोप होगे उनकी जाच एक जज और गैर-सरकारी आदमी किया करेगा। तीसरे प्रान्तीय सरकारो को यह अधिकार दे दिया गया था कि वे किसी भी ऐसे व्यक्ति को, जिस पर उचित रूप से यह सदेह हो कि वह कुछ ऐसे अपराध करने जा रहा है जिससे सार्वजनिक शान्ति भग होने की आशका हो, गिरफ्तार करके उल्लिखित स्थानो मे बन्द कर दे और यह बता दे कि इन अवस्थाओ या स्थिति मे रहना पडेगा। दूसरा बिल साधारण फौजदारी-कानून मे एक स्थायी परिवर्तन चाहता था। किसी राजद्रोही सामग्री का प्रकाशन या वितरण करने के उद्देश्य से पास रखना ऐसा अपराध करार दे दिया गया था जिसमे जेल की सजा हो सकती थी। यदि कोई व्यक्ति सरकारी गवाह बनने को राजी हो तो उसकी रक्षा का भार अधिकारियो पर रखा गया था। उन अपराधो के लिए, जिनके लिए, सरकार की आज्ञा पहले से प्राप्त किये बिना मुकदमा नही चल सकता था, जिला-मजिस्ट्रेटो को यह अधिकार दिया गया था कि वे पुलिस-द्वारा उस मामले की प्रारम्भिक जाच करवा ले। किसी भी ऐसे आदमी से, जिसे राज्य के विरुद्ध कोई अपराध करने मे सजा मिल चुकी हो उसकी सजा के बाद दो वर्ष तक की नेकचलनी की जमानत ली जा सकती थी।

सत्याग्रह का सूत्रपात

रौलट-रिपोर्ट के बाद, ६ फरवरी १९१९ को, विलियम विन्सेण्ट ने बडी कौंसिल मे, रौलट-बिलो को पेश किया। पहला बिल मार्च के तीसरे सप्ताह मे पास हो गया और दूसरा वापस ले लिया गया। गाधीजी ने यह घोषणा की कि यदि रौलट-कमीशन की सिफारिशो को बिल का रूप दिया गया तो वह सत्याग्रह-युद्ध छेड देगे। इसके लिए गाधीजी ने देश मे सर्वत्र दौरा किया। उनका सब जगह धूमधाम से स्वागत हुआ। गाधीजी तो देश के लिए, अन्य नेताओ की अपेक्षा, अपरिचित व्यक्ति के समान थे। लेकिन फिर भी देश ने उनका और उनके कार्यक्रम का इतना स्वागत क्यो किया? सरकार इसका उत्तर अपनी १९१९ की रिपोर्ट मे इस प्रकार देता है —

"मि० गाधी अपनी नि स्वार्थ भावना और ऊँचे आदर्शों के कारण आम तौर पर टाल्स्टाय के अनुयायी समझे जाते है। भारतीयो के लिए दक्षिण अफ्रीका मे उन्होने जो लडाई लडी उसके कारण उन्हे यह सब मान-गौरव प्राप्त है जो पूर्वी देशो मे एक तपस्वी और त्यागी-नेता को प्राप्त होता है। जबसे वह अहमदाबाद मे रहने लगे है, तब से वह बराबर विभिन्न प्रकार की सामाजिक सेवा मे लगे हुए है। दलितो

और पीडितो की सेवा के लिए तैयार रहने के कारण, वह अपने देशवासियो को और भो प्रिय हो गये है। बम्बई अहाते के क्या देहात और क्या नगर, सब जगह उनका अत्यधिक प्रभाव है और उनको सब पर धाक है। उन्हे लोग जिस आदर-भाव से देखते हैं उसके लिए 'पूजा' शब्द का प्रयोग करना अत्युक्ति नही कहा जा सकता। भौतिक-बल से उनका विश्वास आत्मबल मे अधिक है। इसलिए गाधाजी का यह विश्वास हो गया है कि उन्हे इस शक्ति का प्रयोग सत्याग्रह के रूप मे रौलट ऐक्ट के खिलाफ करना चाहिए, जिसे कि उन्होने दक्षिण अफ्रोका मे सफलता पूर्वक आजमाया था।"

सरकार के इस रुख के बावजूद भी गाधीजी ने अपने निश्चय के अनुसार २४ फरवरी को सत्याग्रह करने की घोषणा कर दी। सरकार तथा बहुत-से भारतीय राजनीतिज्ञो ने इस घोषणा को बहुत चिता की दृष्टि से देखा। बडी कौसिल के कुछ नरम-दलवाले सदस्यो ने तो सार्वजनिक रूप से ऐसे कार्य के अनिष्ट परिणामो को ओर सकेत किया। श्रीमती बेसेन्ट ने तो, गाधीजी को अत्यन्त गभीरतापूर्वक यह चेतावनी दी कि यदि उन्होने कोई भी ऐसा आन्दोलन चलाया तो उससे ऐसी शक्तिया उभड उठेगो जिनसे न जाने क्या-क्या भयकर बुराइया हो सकती हैं। यहा यह बात स्पष्ट रूप से बता देना चाहिए कि गाधीजी के रुख या घोषणा मे कोई भी ऐसी बात नही थी जिससे कि उनके आन्दोलन का श्रीगणेश होने से पहले सरकार उनके विरुद्ध कोई कार्रवाई कर सकती। सत्याग्रह तो आक्रमणकारी नही, रक्षात्मक पद्धति है। गाधोजी तो शुरू से हो पशुबल को निन्दा करते थे। उन्हे यह विश्वास था कि वे सविनय-भग के रूप मे सत्याग्रह करके सरकार को इस बात के लिए मजबूर कर देगे कि वह रौलट-ऐक्ट का परित्याग कर दे। १८ मार्च को उन्होने रौलट बिल के सम्बन्ध मे एक प्रतिज्ञा-पत्र प्रकाशित कराया, जो इस प्रकार है :——

"सच्चे हृदय से मेरा यह मत है कि इडियन क्रिमिनल ला अमेण्डमेट बिल न० १ और क्रिमिनल इमरजेसी पावर बिल न० २ अन्यायपूर्ण है और अन्याय और स्वाधीनता के सिद्धातो के घातक हैं। उनसे व्यक्ति के उन मौलिक अधिकारो का हनन होता है जिन पर भारत को और स्वय राज्य की रक्षा निर्भर है। अत. हम शपथपूर्वक प्रतिज्ञा करते है कि यदि इन बिलो को कानून का रूप दिया गया तो जबतक इन्हे वापस न ले लिया जायगा तब तक हम उन अन्य कानूनो को भी जिन्हे कि इसके बाद नियुक्त की जाने वाली कमिटी उचित समझेगी, मानने से नम्रता-पूर्वक इन्कार कर देगे। हम इस बात की प्रतिज्ञा करते है कि इस युद्ध मे हम ईमानदारी के साथ सत्य का अनुसरण करेगे और किसी के जान-माल को किसी तरह नुकसान न पहुँचायेगे।"

देश ने चारो तरफ से इस आन्दोलन का खूब साथ दिया। प्रारभ मे बगाल खामोश रहा। दक्षिण ने उसमें आशातीत साथ दिया। गाधीजी ने उपवास के

साथ आन्दोलन का श्रीगणेश किया। ३० मार्च १९१९ का दिन हडताल के लिए नियत किया गया था। इस दिन लोगो से उपवास रखने, ईश्वर-प्रार्थना करने, प्रायश्चित्त करने तथा देश-भर मे सार्वजनिक सभाएँ करने के लिए कहा गया था। बाद को यह तारीख बदल कर ६ अप्रैल नियत की गई, परन्तु इस परिवर्त्तन की सूचना ठीक समय पर दिल्ली नही पहुँची। इसलिए वहा ३० मार्च को ही जलूस निकला और हडताल हुई। गोली भी चली। इस दिन के जलूस का नेतृत्व स्वामी श्रद्धानन्दजी कर रहे थे। उन्हे कुछ गोरे सिपाहियो ने गोली मारने को धमकी दी। इसपर उन्होने अपनी छाता खोल दी और कहा—'लो, मारो गोली।' बस, गोरो को धमको हवा मे उड गई। लेकिन दिल्ली के रेलवे स्टेशन पर कुछ झगडा हो गया, जिसमे गोली चली और ५ मरे तथा अनेक घायल हुए। ६ अप्रैल को देशव्यापी प्रदर्शन हुआ। सब लोग वडे ही उत्तेजित थे। उस समय एक बात मार्के की दिखाई पडती थी और वह था हिन्दू-मुस्लिम-भ्रातृ-भाव। इस जोश-खरोश के जमाने मे छोटो जातियो ने भी अपने मतभेद भुला दिये। वह भ्रातृ-भाव का एक अद्भुत दृश्य था। हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे के हाथ से खुल्लम-खुल्ला पानी लेते-देते थे, जलूसो के झण्डो और नारो, दोनो से हिन्दू-मुसलमानो का मेल ही प्रकट होता था। एक जगह तो एक मसजिद के इमाम पर खडे होकर हिन्दू नेताओ को बोलने भी दिया गया था। इस प्रकार के मेल का एक तात्कालिक कारण था। युद्ध के पश्चात् टर्की की अस्तव्यस्त अवस्था हो गई थी। इसपर मुसलमान स्वभावत बहुत खिन्न थे। साथ ही खिलाफत के लिए जो खतरा था उससे तो उनमे और भी उत्तेजना फैली हुई थी। हिन्दुओ ने मुसलमानो की इन भावनाओ के साथ पूरी सहानुभूति प्रकट की। १९१९ के अप्रैल मास से भारतोय इतिहास का नया अध्याय प्रारम्भ हुआ।

आन्दोलन की तीव्रता

भारतवर्ष के कष्ट-सहन और सघर्ष का दृश्य अव पजाव मे दिखाई देने लगा जो कि विदेशी उद्योग-धन्धे और व्यापारिक आक्रमण के लिए भारत का द्वार बना हुआ था। पजाव सिक्खो तथा भारत की अन्य सैनिक जातियो का निवास-स्थान भी था। इसलिए पजाव का निरकुश शासक सर माइकेल ओडायर इस बात पर तुला हुआ था कि वह अपने प्रान्त मे काग्रेस-आन्दोलन की छूत की बीमारी को न फैलने दे। और वास्तव मे काग्रेस और उसमे इस बात पर रस्साकशी थी कि आया १९१९ मे अमृतसर मे होनेवाली काग्रेस पजाव मे हो या नही। १० अप्रैल १९१९ के दिन प्रात काल ही अमृतसर के जिला-मजिस्ट्रेट ने डाक्टर किचलू और डाक्टर सत्यपाल को, जो काग्रेस का सगठन कर रहे थे, अपने बगले पर बुला भेजा और वहा से चुपचाप किसी अज्ञात स्थान को भेज दिया। इस घटना से एक

सनसनी फैल गई। खबर फौरन ही दूर-दूर तक पहुच गई। लोगों का एक झुण्ड जिला-मजिस्ट्रेट के यहा उनका पता पूछने के लिए चला, परन्तु उस चौराहे पर, जो शहर से सिविल-लाइन की ओर जाते हुए सिविल-लाइन और शहर के बीच मे है, फौजी सिपाहियो ने भीड को रोक लिया। और, अब वह ईटो के फेंकने की कहानी आती है, जो सरकार को मदद के लिए हर वक्त तैयार रहती है। भीड़ पर गोली चलाई गई, जिसके फल-स्वरूप एक या दो की मृत्यु के साथ-साथ अनेक लोग घायल हुए। लोगो की भीड अब शहर को वापस लौटी और मरे हुए और घायलो का शहर मे होकर जलूस निकला। रास्ते मे नेशनल-बैंक की इमारत मे आग लगा दी गई और उसके यूरोपियन मैनेजर को मार डाला गया। स्वभावत. अधिकारी इन घटनाओ से आगबबूला हो गये। स्थानीय अधिकारियो ने अपने ही आप १० अप्रैल को शहर फौज के अधिकार मे दे दिया।

गुजरानवाला और कसूर मे बहुत अधिक खून-खराबी हुई। कसूर मे तो १२ अप्रैल को भीड ने रेलवे-स्टेशन को बहुत नुकसान पहुँचाया। गुजरानवाले मे १४ अप्रैल को भीड़ ने एक ट्रेन को घेर लिया और उस पर पत्थर बरसाये। लाहौर मे भी लूटमार हुई और गोली चली। कलकत्ते-जैसे सुदूर स्थान से भी बुरे समाचार प्राप्त हुए। पजाब का दुर्घटनाओ की बात सुनकर तथा स्वामी श्रद्धानन्द और डा० सत्यपाल के बुलाने पर गाधीजी ८ अप्रैल को दिल्ली के लिए रवाना हुए। रास्ते मे ही उन्हे हुक्म मिला कि पजाब और दिल्ली के भीतर प्रवेश न करा। उन्होने इस हुक्म को मानने से इन्कार कर दिया। इस पर उन्हे गिरफ्तार कर लिया गया और दिल्ली से कुछ दूर पलवल नामक स्टेशन से एक स्पेशल ट्रेन मे उन्हे बिठा कर १० अप्रैल को बम्बई भेज दिया गया।

गाधीजी को गिरफ्तारी के समाचार से अहमदाबाद मे कई उपद्रव हो गये, जिनमे कुछ अग्रेज और कुछ हिन्दुस्तानी अफसर जान से मारे गये। १२ अप्रैल को वीरमगाव और नडियाद मे भी कुछ उत्पात हुए। कलकत्ते मे भी उपद्रव हुआ। वहा गोली चली जिससे ५ या ६ आदमी जान से मारे गये और १२ बुरी तरह घायल हुए। बम्बई पहुचकर गाधीजी ने स्थिति को शान्त करने मे मदद की और फिर वहा से वह अहमदाबाद गये। उनकी उपस्थिति ने शान्ति स्थापित करने मे बहुत काम किया। इन उपद्रवो के कारण उन्होने सत्याग्रह को स्थगित कर दिया और उसके सम्बन्ध मे एक वक्तव्य निकाला।

एक ओर यह स्थिति थी, दूसरी ओर अमृतसर मे दुर्घटनाएँ विकट रूप धारण करती जा रही थी। यह स्मरण रखना चाहिए कि १३ अप्रैल तक फौजी-कानून जारी करने की कोई घोषणा नही की गई थी। वैसे सरकार यह बात स्वीकार करती है कि १० अप्रैल से ही व्यावहारिक रूप मे फौजी-कानून जारी था। सच पूछिए तो लाहौर और अमृतसर मे १५ अप्रैल को ही फौजी कानून जारी करने की

घोषणा की गई थी। इसके बाद ही पजाब के दो-तीन जिलो मे वह और जारी कर दिया गया था।

जलियांवाला-हत्याकांड

१३ अप्रैल को, अमृतसर मे एक सार्वजनिक सभा करने की घोषणा की गई और जलियांवालाबाग मे एक बडी भारी सभा हुई। यह खुला हुआ स्थान शहर के मध्य मे है। शहर के मकान ही इसकी चहारदीवारी बनाये हुए है। इसका दरवाजा बहुत ही सकरा है, इतना कि एक गाडी उसमे होकर नही निकल सकती। बाग मे जब बीस हजार आदमी इकट्ठे हो गये, जिनमे पुरुष, स्त्रिया और बच्चे भी थे, जनरल डायर ने उसमे प्रवेश किया। उसके पीछे सशस्त्र सौ हिन्दुस्तानी सिपाही और पचास गोरे सैनिक थे। जिस समय ये लोग घुसे उस समय हसराज नाम का एक व्यक्ति व्याख्यान दे रहा था। इसी समय जनरल डायर ने घुसते ही गोली चलाने का हुक्म दे दिया। गोली तब तक चलती रही जब तक कि सारे कारतूस खतम नही हो गये। कुल सोलह सौ फैर किये गये थे। सरकार के स्वय अपने बयान के मुताबिक चार सौ मरे और घायलो की सख्या एक और दो हजार के बीच थी। गोली हिन्दुस्तानी फौजो से चलवाई गई थी, जिनके पीछे गोरे सिपाहियो को लगा दिया गया था। ये सब-के-सब बाग मे एक ऊचे स्थान पर खडे हुए थे। सबसे बडी दुखद बात यह थी कि गोली चलाने के बाद मृतको और उन लोगो को जो सख्त घायल हो गये थे, सारी रात वहीं पडा रहने दिया गया। वहा उन्हे रात भर न तो पानी ही पीने को मिला और न डाक्टरी या कोई अन्य सहायता ही मिली।

जनरल डायर के राज्य मे कुछ ऐसी भी सजाये देखने को मिली जिनका स्वप्न मे भी खयाल नही हो सकता था। उदाहरण के लिए अमृतसर मे नलो मे पानी बन्द कर दिया गया था, और बिजली का सिलसिला काट दिया गया था। सबके सामने बेत लगाना आम तौर पर चालू था। लेकिन 'पेट के बल रेगने के हुक्म' ने इन सब को मात कर दिया था। रेलवे-स्टेशनो पर तीसरे दर्जे का टिकट बेचने की मनाही कर दी गई थी। इससे लोगो का सफर करना आमतौर पर बन्द हो गया था। दो आदमियो से अधिक एक-साथ पटरियो पर नही चल सकते थे। साइकिले सब-की-सब फौज ने अपने कब्जे मे ले ली थी। जिन लोगो ने अपनी दूकाने बन्द कर दी थी उन्हे खोलने के लिए बाध्य किया गया था। न खोलनेवाले के लिए कठोर दण्ड की आज्ञा थी। किले के नीचे नगा करके सबके सामने बेत लगवाने के लिए एक चबूतरा बनवाया गया था और शहर के अनेक भागो मे बेत लगवाने के लिए टिकटिया लगवा दी गई थी।

अमृतसर मे खास अदालत द्वारा जिन मुकदमो का फैसला किया गया था,

उनके अनुसार सगीन जुर्मों के अभियोग मे २९८ आदमियो पर मार्शल-ला-कमीशन के सामने मुकदमे चले। मुकदमा चलाने मे कानून, सफाई तथा जाव्ते के साधारण नियमो के पालन करने का भी कोई ध्यान नही रक्खा गया। इनमे से २१८ आदमियो को सजाये दी गई। ५१ को फासी की सजा, ४६ को आजन्म कालापानी, २ को १०-१० वरस की सजा, ७९ को ७-७ वरस की सजा, १० को ५-५ की, १३ को ३-३ की और ११ को बहुत थोडी मियाद की सजाये दी गई। इसमे वे मुकदमे शामिल नही हे जिनका फैसला सरसरी मे फौजी अफसरो ने किया था। इनकी सख्या ६० थी, जिनमे से ५० को सजा हुई थी, और १० आदमियो को मार्शल-ला के अनुसार मुल्की मजिस्ट्रेटो ने सजा दी थी।

हन्टर-कमिटी के सदस्य जस्टिस रैकिन के प्रश्न के उत्तर मे जनरल डायर ने जो उत्तर दिया था उसे भी हम यहा देते है —

जस्टिस रैकिन—जनरल, मुझे इस प्रकार प्रश्न करने के लिए जरा क्षमा कीजिए कि, आपने जो कुछ किया वह क्या एक प्रकार का भय-प्रदर्शन नही था ?

जनरल डायर—नही, वह भय-प्रदर्शन नही था। वह एक भयानक कर्तव्य था, जिसका मुझे पालन करना पडा। मेरा खयाल है, वह एक दयापूर्ण कार्य था। मैंने सोचा कि मै खूव अच्छी तरह गोली चलाऊं और इतने जोर के साथ चलाऊ कि मुझे या अन्य किसी को फिर कभी गोली न चलानी पडे। मेरा खयाल है कि विना गोली चलाये हुए भी मै भीड को तितर-वितर कर सकता था। लेकिन लोग फिर वापस आ जाते, मेरी हसी उडाते और मै वेवकूफ वना होता।

उपर्युक्त वाते वे हैं जिन्हे हन्टर कमीशन के सामने १९२० के आरम्भ मे जनरल डायर ने स्वय स्वीकार किया था। अमृतसर की दुर्घटना के वाद, पजाव से आने और जाने वाले लोगो पर इतनी कडी निगरानी थी कि दुर्घटना का विस्तार-पूर्वक समाचार काग्रेस-कमिटी को भी जुलाई १९१९ से पहले नही ज्ञात हो सका और मालूम भी हुआ तो खुल्लमखुल्ला नही। कलकत्ते के लॉ-एसोसियेशन के भवन में जव काग्रेस-कमिटी की वैठक हो रही थी,तव यह समाचार कानो-कान डरते-डरते कहा गया, फिर भी यह सावधानी रखी गई कि यह समाचार औरो से न कहा जाय। पजाव की दुर्घटना अमृतसर तक ही सीमित न रही, वल्कि लाहौर, गुजरानवाला और कसूर आदि स्थानो को भी अत्याचार और वर्वरतापूर्ण कृत्यो का शिकार होना पडा।

सरकारी रिपोर्ट के अनुसार, अन्य स्थानो की अपेक्षा, लाहौर मे फौजी-कानून का वहुत जोर था। करफ्यू-आर्डर तो तुरन्त ही जारी कर दिया गया था। यदि कोई व्यक्ति शाम के ८ वजे के वाद वाहर निकलता तो वह गोली से मार दिया जा सकता था, वेत लगाये जा सकते थे, जुर्माना हो सकता था, कैद हो सकती थी, या और कोई दण्ड दिया जा सकता था। जिनकी दुकाने वन्द थी उन्हे खोलने की

आज्ञा दे दी गई थी। जो न खोले उसे या तो गोली से उडाया जा सकता था या उसकी दुकान खोलकर सारा सामान लोगो मे मुफ्त बाट दिया जा सकता था। वकील तथा दलालो को यह आज्ञा दे दी गई थी कि वे शहर से बाहर कही न जायँ। जिनके मकानो की दीवारो पर फौजी कानून के नोटिस चिपकाये गये थे उन्हे यह हुक्म दे दिया गया था कि वे उनकी हिफाजत करे और यदि किसी ने उन्हे बिगाड दिया या फाड दिया तो वे सजा के मुस्तहक होगे, हालाकि रात्रि के समय उन्हे बाहर रहने की इजाजत नही थी। भारतीयो को मोटर-साइकिलो तथा मोटरो को फौज मे जमा कर देने का हुक्म जारी कर दिया गया था। इतना ही नही, अधिकारियो को वे इस्तेमाल के लिए दे दी गई थी। तागेवालो ने भी हडताल मे भाग लिया था। इन लोगो को सबक सिखाने के लिए ३०० तागे जमा कर लिये गये थे, और यह हुक्म दे दिया गया था कि वे नगर की घनी आबादी से बाहर, नियत समय और जगहो पर, अपनी हाजिरी दिया करे। १६ से २० वर्ष की उम्र के लडको तथा विद्यार्थियो पर विशेष रूप से कडी नजर थी। लाहौर जैसे शहर मे, जहाँ कई कॉलेज है, विद्यार्थियो को दिन मे चार बार हाजिरी देने का हुक्म था। जहाँ जहाँ हाजिरी ली जाती थी उनमे से एक हाजिरी का स्थान कॉलेज से ४ मील की दूरी पर था। अप्रैल मास की कडी धूप मे, जोकि पजाब मे वर्ष का सबसे अधिक गर्म महीना होता है और जबकि गर्मी १०८ डिग्री से ऊपर होती है, इन नौजवानो को रोजाना १६ मील पैदल चलना पडता था। इनमे से कुछ तो रास्ते मे बेहोश होकर गिर भी जाते थे। इतना होने पर भी कर्नल जॉनसन, बहुत ही प्रसन्न थे। लाहौर के यूरोपियनो ने तो उन्हे बिदाई देते समय एक दावत दी थी और "गरीबो का रक्षक" की उपाधि से अलकृत करके उनकी भूरि-भूरि प्रशसा की थी। गुजरानवाला मे कर्नल ओब्रायन ने, कसूर मे कैप्टिन डोवटन ने और शेखूपुरा मे मिस्टर बॉसवर्थ स्मिथ ने खास तौर पर अत्याचार करने मे खूब ही नाम कमाया था। कर्नल ओब्रायन ने कमिटी के सामने अपनी गवाही मे कहा था कि भीड जहा कही पाई गई वही उस पर गोली चला दी गई। यह बात उन्होने हवाई जहाजो के सम्बन्ध मे कही थी। एक बार एक हवाई जहाज ने, जो कि लेफ्टिनेण्ट डॉडकिन्स के चार्ज मे था, एक खेत मे २० किसानो को एकत्र देखा। उन्होने उन पर मशीनगन से तब तक गोली चलाई जब तक कि वे भाग नही गये। उन्होने एक मकान के सामने आदमियो के एक झुण्ड को देखा। वहा एक आदमी व्याख्यान दे रहा था। इसलिए वहा उन्होने उन पर एक बम गिरा दिया, क्योकि उनके दिल मे इस तरह का कोई शक नही था कि वे लोग किसी शादी या मुर्दनी के लिए एकत्र नही हुए थे। मेजर कार्बी वह सज्जन है जिन्होने लोगो के एक दल पर इसलिए बम बरसाये कि वे बलवाई है, जो शहर से आ-जा रहे है। उन्ही के शब्दो मे सुनिए—

"लोगो की भीड दौडी जा रही थी और मैने उनको तितर-बितर करने के लिए

गोली चला दी। ज्योंही भीड़ तितर-बितर हो गई, मैंने गांव पर भी मशीनगन लगा दी। मेरा ख्याल है कि कुछ मकानों में गोलियां लगी थीं। मैं निर्दोष और अपराधी में कोई पहचान नहीं कर सकता था। मैं दो सौ फीट की ऊंचाई पर था और यह भले प्रकार देख सकता था कि मैं क्या कर रहा हूं। मेरे उद्देश्य की पूर्ति केवल बम बरसाने से नहीं हुई। गोली केवल नुकसान पहुंचाने के लिए ही नहीं चलाई गई थी, वह स्वयं गांववालों के हित के लिए चलाई गई थी। कुछ को मार कर मैं समझता था, मैं गांववालों को फिर एकत्र होने से रोक दूंगा। मेरे इस कार्य का असर भी पड़ा था। इसके बाद शहर की तरफ मुड़ा। वहां बम बरसाये और उन लोगों पर गोलियां चलाईं जो भाग जाने की कोशिश कर रहे थे।"

कर्नल ओब्रायन ने एक यह हुक्म जारी किया था कि जब कोई हिन्दुस्तानी किसी अफसर से मिले तो वह उनको सलाम करे, अगर सवारी में जा रहा हो या घोड़े पर सवार हो तो उतर जाय, अगर छाता लगाये हुए हो तो उसे नीचे झुका दे। कर्नल ओब्रायन ने कमिटी के सामने कहा था कि "यह हुक्म इसलिए अच्छा था कि लोगों को यह मालूम हो जाय कि उनके नये मालिक आये हैं।" लोगों के कोड़े लगवाये गये, जुर्माना किया गया और पूर्वोक्त राक्षसी हुक्म न मानने

मौको पर लडको से यह कहलाया जाता था, "मैने कोई अपराध नही किया है, मै कोई अपराध नही करूगा, मुझे अफसोस है, मुझे अफसोस है, मुझे अफसोस है !"

दुर्घटनाओं के बाद

घटनाओ के ऐसा अकल्पित रुप धारण कर लेने से गाधीजी के हृदय को बहुत बडा धक्का लगा। उन्होने इस बात को स्वीकार किया कि मैने महान् भूल की है। अत उन्होने एक ओर तो सत्याग्रह को स्थगित कर दिया और दूसरी ओर यह घोषणा की कि मै शान्ति स्थापित करने मे हर प्रकार से सहायता करने को तैयार हू। लॉर्ड चेम्सफोर्ड ने १४ अप्रैल १९१९ को एक हुक्म निकाला, जिसमे स्पष्ट शब्दो मे सरकार की यह इच्छा घोषित की गई कि वह उत्पातो का शीघ्र ही अन्त कर देने के लिए जितनी शक्ति उसके पास है सबको लगा देगी। इसी बीच तीसरे अफगान-युद्ध ने पञ्जाब की स्थिति को और भी पेचीदा बना दिया। ४ मई को सारी फौज युद्ध के लिए तैयार कर ली गई। इधर फौजी-कानून अपने खूनी कारनामो को ११ जून तक बराबर चलाता रहा। फौजी-कानून को आवश्यक रूप से एक मुद्दत तक जारी रखने के विरोध मे सर शकरन् नायर ने १९ जुलाई को वाइसराय की कार्यकारिणी से इस्तीफा दे दिया। इस सारे समय मे पञ्जाब पर एक कठोर सेसर बिठा दिया गया। एण्डरूज साहब को पञ्जाब की भूमि पर कदम रखने की मनाही करदी गई। बाद मे उन्हे गिरफ्तार करके अमृतसर भेज दिया गया। यह मई मास के प्रारम्भ की बात है। मिस्टर ई० नार्टन बैरिस्टर को जो कि पञ्जाब इसलिए जाना चाहते थे कि वहा कैदियो की पैरवी करे, पञ्जाब मे घुसने की मनाही कर दी गई। चारो ओर से पञ्जाब मे हुए अत्याचारो की जाच के लिए एक कमीशन बैठाने की पुकार मच रही थी। खास फौजी-अदालतो-द्वारा लोगो को जो घातक और जङ्गली सजाये दी गई थी उन्हे भी कम करने के लिए एक देश-व्यापी माग थी। लाला हरकिशनलाल को, जो एक प्रतिष्ठित काग्रेसी और बहुत बडे धनिक व्यक्ति थे, आजन्म कालेपानी की सजा दी गई थी। लगभग ४० लाख रुपये की उनकी सम्पत्ति भी जब्त करने का हुक्म दिया गया था।

सितम्बर १९१९ मे वाइसराय ने इस उद्देश्य से हन्टर-कमीशन की नियुक्ति की घोषणा की, कि वह पञ्जाब के उपद्रवो की जाच करेगा। परन्तु इसके साथ ही, १८ सितम्बर को, इनडेम्निटी-बिल आया, जो आम तौर पर फौजी-कानून के साथ आया करता है। पण्डित मदनमोहन मालवीय ने इसे मुल्तवी कराने के लिए बहुत जोर लगाया, परन्तु इसका फल कुछ भी नही हुआ।

२० और २१ अप्रैल को महासमिति की बैठक हुई। उसमे सरकार ने गाधीजी को दिल्ली और पञ्जाब से देश-निकाले का जो हुक्म दिया था उसका विरोध

किया गया और पञ्जाब मे किये गये अत्याचारो की जाच करने पर जोर दिया गया। देश मे जो गम्भीर राजनैतिक परिस्थिति पैदा हो गई थी उसको मद्देनजर रखते हुए श्री विट्ठलभाई पटेल और श्री नृसिह चिन्तामणि केलकर का एक शिष्ट-मण्डल इग्लैण्ड भेजने का भी निश्चय हुआ। ये लोग २९ अप्रैल १९१९ को इग्लैण्ड के लिए रवाना हो गये। ८ जून को महासमिति की दूसरी बैठक इलाहाबाद मे हुई। इधर गवर्नर-जनरल ने २१ अप्रैल को ही एक आर्डिनेन्स जारी कर दिया था, जिसमे पञ्जाब की सरकार को यह अधिकार दे दिया था कि ३० मार्च तक जितने जुर्म हुए हो उनका मुकदमा वह खास फौजी अदालत-द्वारा करा सके। गिरफ्तार शुदा लोगो को अपनी इच्छानुसार वकील चुनने की इजाजत नही थी। देश के सारे प्रमुख-पत्रो के सम्पादको, श्रीमती बेसेण्ट और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने एण्डरूज साहब से अनुरोध किया कि वह पञ्जाब जाकर दुर्घटना और उपद्रव के सम्बन्ध मे स्वतन्त्र रूप से जाच करे। पर वहा वह गिरफ्तार कर लिये गये। ८ जून की बैठक मे यह बात सुझाई गई कि तहकीकात के लिए जो कमिटी नियत हो वह पञ्जाब जाकर इस बात की भी जाच करे कि सर माइकेल ओडायर के शासन मे फौज के लिए रगरूट भरती करने मे किन हथकण्डो और ढगो को काम मे लाया गया था, किस प्रकार 'लेबर कोर' मे आदमियो को भरती किया गया था, किस प्रकार लडाई के लिए कर्ज लिया गया था और फौजी-कानूनो द्वारा किस प्रकार शासन किया गया था। मि० हार्निमैन को इसलिए देश-निकाला कर दिया गया था, कि उन्होने 'बाम्बे क्रानिकल' मे सरकार की पजाब-सम्बन्धी नीति की कडे शब्दो मे निन्दा की थी। महासमिति ने इस सम्बन्ध मे भी एक प्रस्ताव पास किया कि सरकार हार्निमैन साहब को दिये गये देश-निकाले के हुक्म को मसूख कर दे।

महासमिति ने एक कमिटी इसलिए नियुक्त की कि वह पजाब की दुर्घटनाओ की जाच करे, इस सम्बन्ध मे इग्लैण्ड तथा दोनो स्थानो मे आवश्यक कानूनी कार्र-वाई करे और इस कार्य के लिए धन एकत्र करे। इस कमिटी मे बाद को, यानी १९ अक्तूबर को गाधीजी, एण्डरूज, स्वामी श्रद्धानन्द तथा अन्य लोगो को भी शामिल कर लिया गया। नवम्बर के प्रारम्भ मे मि० एण्डरूज दक्षिण-अफ्रीका चले गये। उन्होने गवाहियो के रूप मे जितनी सामग्री एकत्र की थी वह सब काग्रेस-कमिटी को देते गये। १९ और २० जुलाई को कलकत्ते मे महासमिति की फिर बैठक हुई, जिसमे विचारणीय मुख्य बात यह थी कि काग्रेस का आगामी अधिवेशन कहा किया जाय। अन्त मे उसे अमृतसर मे ही करने का निश्चय हुआ। एक प्रस्ताव द्वारा उस माग को फिर दोहराया गया जिसमे सम्राट की सरकार-द्वारा जाच करने के लिए एक समिति नियुक्त करने की प्रार्थना की गई। १० हजार रुपये की एक रकम पञ्जाब समिति के लिए जमा की गई। २१ जुलाई को गाधीजी का वक्तव्य

प्रकाशित हुआ, जिसमे सत्याग्रह को कुछ समय के लिए स्थगित करने का जिक्र था। वह इस प्रकार है—

गांधीजी का वक्तव्य

"बम्बई के गवर्नर-द्वारा भारत-सरकार ने मुझे एक बहुत ही गम्भीर चेतावनी दी है, कि सत्याग्रह के फिर से आरम्भ करने से जनता के लिए बहुत ही बुरा परिणाम निकल सकता है। बम्बई के गवर्नर ने जब मुझे मिलने के लिए बुलाया था, तब यह चेतावनी उन्होने और भी जोर के साथ दोहराई थी। इन चेतावनियो को ध्यान मे रखकर, मैने बहुत सोच-विचार करने के बाद यह निश्चय किया है कि फिलहाल सत्याग्रह आरम्भ न करूँ। मै यहा इतना और बता देना चाहता हू कि उन कुछ मित्रो ने भी, जो गरम-दल के माने जाते है, मुझे यही सलाह दी है। उनका कहना सिर्फ इतना ही था कि इससे सम्भव है वे लाग, जिन्होने सत्याग्रह के सिद्धान्त को भले प्रकार नही समझा है, फिर मार-काट कर बैठे। जब दूसरे सत्याग्रहियो के साथ मै इस नतीजे पर पहुचा कि सविनय-भग के रूप मे सत्याग्रह शुरू कर दिया जाय, तब मैने वाइसराय को एक पत्र भेजकर उन पर अपना यह इरादा प्रकट कर दिया था और उनसे यह अनुरोध किया था कि वे रौलट बिल को वापस ले ले और एक जोरदार तथा निष्पक्ष कमिटी शीघ्र नियुक्त करने की घोषणा करे जिसे यह भी अधिकार रहे कि पञ्जाब की दुर्घटनाओ के सम्बन्ध में दी गई सजाओ को फिर से निगरानी कर सके। मुझे इस बात का विश्वास दिलाया गया है कि जिस जाच-कमिटी के लिए मैने जोर दिया था वह नियुक्त की जा रही है। सद्भावना के इन प्रमाणो के मिलते हुए मेरी ओर से यह बडो ही नासमझी होगी, यदि मै सरकार की चेतावनो पर ध्यान न दू। वास्तव मे मेरा सरकार की सलाह मान लेना लोगो को सत्याग्रह का पाठ पढाना है। एक सत्याग्रही कभी सरकार को विषम स्थिति मे डालना नही चाहता। मै अनुभव करता हू कि मै देश की, सरकार की और उन पञ्जाबी नेताओ की, जिन्हे कि मेरी राय मे अन्यायपूर्वक सजा दी गई है, और वह भी बडी ही निर्दयतापूर्वक, और भी अधिक सेवा करूँगा, यदि मै इस समय सत्याग्रह को स्थगित कर दू। मेरे ऊपर यह इल्जाम लगाया गया है कि आग तो मैने ही लगाई थी। मेरा कभी-कभी सत्याग्रह करना यदि आग लगाना है, तो रौलट-कानून और उसे कानून की किताब मे ज्यो-का-त्यो बनाये रखने का हठ देश के हजार स्थानो मे आग लगाना है। सत्याग्रह फिर से न होने देने का एक-मात्र उपाय यही है कि उस कानून को वापस ले लिया जाय।"

शिष्ट मंडल का कार्य

गाधीजी ने जिस समय यह वक्तव्य दिया उस समय इग्लैण्ड मे लॉर्ड सेलबार्न की अध्यक्षता मे सयुक्त पार्लमेण्टरी कमिटी की बैठक हो रही थी। ऐसे अवसर पर

काग्रेसी शिष्ट-मडल वहाँ पहुंचा। उसके सामने श्री विट्ठलभाई पटेल और वी० पी० माधवराव ने बडी योग्यता से भारतवर्ष का पक्ष उपस्थित किया। उनके साथ लोकमान्य तिलक, विपिनचन्द्र पाल, गणेश श्रीकृष्ण खापर्डे, डाक्टर प्राणजीवन मेहता, ए० रङ्गस्वामी आयगर, नृसिह चिन्तामणि केलकर, सय्यद हसनइमाम, डा० साठये, मि० हार्निमैन आदि भी थे। श्री वी० पी० माधवराव मैसूर-राज्य के भूतपूर्व दीवान थे। उनकी शिष्टता और सौजन्य तथा स्पष्टवादिता और स्वतन्त्रता-प्रिय स्वभाव ने काग्रेस को इग्लैण्ड की जनता की नजरो मे बहुत ही ऊचा उठा दिया और मि० बेन स्पूर (एम० पी०) जैसो ने उनकी भूरि-भूरि प्रशसा की।

श्री विठ्ठलभाई पटेल और काग्रेसी शिष्ट-मण्डल का लन्दन मे दुहरा मुकाबला था। एक ओर तो उसे काग्रेस की ब्रिटिश-कमिटी से उलझना था, दूसरी ओर श्रीमती बेसेण्ट से जो अपनी अथक शक्ति के साथ काग्रेस का विरोध कर रही थी। काग्रेसी शिष्ट-मण्डल आत्म-निर्णय और पूर्ण उत्तरदायी शासन की माग के साथ दिल्लीवाले प्रस्ताव पर जोर दे रहा था। २५ अक्तूबर १९१९ को अलबर्ट-हाल मे जो सभा हुई, उसमे दोनो दलो के मतभेद इतने खुले तौर पर सामने आये कि सभापति मि० लान्सबरी बडी दुविधा मे पड गये। यह सभा भारतीय होमरूल-लीग की लन्दन-शाखा की ओर से की गई थी, जिसकी स्थापना श्रीमती बेसेण्ट ने की थी। अन्त मे एक ऐसा प्रस्ताव पास हुआ, जिस पर किसी को आपत्ति नही हो सकती थी। प्रस्ताव मे कहा गया कि 'ब्रिटिश राष्ट्र समूह की यह विशाल सभा जो इस बात पर जोर देती है कि राष्ट्र-समूह के अन्तर्गत सब राष्ट्रो को स्व-शासन का अधिकार मिलना चाहिए, इस बात का ऐलान करती है कि भारतीय जनता भी शीघ्र-से-शीघ्र आत्म-निर्णय का सम्पूर्ण स्वत्व पाने की हकदार है।' मि० लान्सबरी इस सभा के चुने हुए सभापति थे। उनके बीच मे पड़ने से ही प्रस्ताव को यह रूप प्राप्त हुआ, नही तो पहले जो मसविदा बनाया गया था उसमे तो मि० माटेगु के बिल का समर्थन किया गया था। लेकिन इतने पर भी श्रीमती बेसेण्ट ने स्पष्ट रूप से मि० माटेगु के बिल का समर्थन किया, जिस पर श्री विठ्ठलभाई पटेल को उनका प्रतिवाद करना पडा।

जांच-समिति की नियुक्ति

महासमिति के प्रस्तावानुसार, जून के अन्तिम सप्ताह मे स्वामी श्रद्धानन्द, पं० मोतीलाल नेहरू और मदनमोहन मालवीय पजाब मे हुई दुर्घटनाओ की जाच के लिए पजाब गये। कुछ ही समय बाद दीनबन्धु एण्डरूज भी वहा पहुँच गये। इसके बाद पं० मोतीलाल और मालवीयजी लौट आये, लेकिन मोतीलालजी दुबारा फिर वहा गये। पं० जवाहरलाल नेहरू और पुरुषोत्तमदास टण्डन एण्डरूज

साहब के साथ हुए। गाधीजी भी, जैसे ही उन पर से प्रवेश-निषेध का हुक्म उठाया गया, १७ अक्तूबर को सबके साथ जा मिले। पजाब के लोग भयभीत हो रहे थे, लेकिन ज्यो हो गाधोजी उनके पास पहुचे त्यो ही उनमे फिर से आत्म-विश्वास आ गया। लाहौर और अमृतसर में, दोनो जगह, उनके आगमन को विजय से कम नही समझा गया। इसो बीच सरकारी जाच की घोषणा हुई। जिन बातो की जाच सरकारी जाच-कमिटी करनेवाली थी उनकी मर्यादा काग्रेस की जाच से बहुत कम थो। फिर भी सरकारी कमिटी से सहयोग करना ठीक समझा गया। चित्तरजन दास तुरन्त कलकत्ता से पजाब आये और काग्रेस की ओर से हण्टर-कमोशन के सामने हाजिर हुए। लेकिन काग्रेस-उप-समिति को ऐसी कठिनाइयो का सामना करना पडा जिनकी पहले कल्पना भी न थी, इसलिए दुर्घटनाओ की जाच करने वाली कमिटी (हटर-कमिटी) से उसको अपना सहयाग हटा लेना पड़ा। काग्रेस उप-समिति चाहती थी कि मार्शल लॉ के कुछ कैदियो को पहरे के अन्दर जाच के समय हाजिर रहने तथा जाच मे मदद करने के लिए बुलाया जाय, लेकिन इस बात को इजाजत नहीं दी गई। उप-समिति ने इस पर पजाब-सरकार के खिलाफ भारत-सरकार और भारत-मन्त्री से अपील की, लेकिन उन्होने हस्तक्षेप करने से इन्कार किया। ऐसी हालत मे उन लोगो ने भो, जो कि फौजी-कानून के मातहत जेलो में थे, सहयोग न करने के निश्चय की ही ताईद की——और बाद के अनुभव ने भी इस निश्चय को उचित ही सिद्ध किया। अतएव काग्रेस ने एक समिति द्वारा अपनी जाच अलग शुरू की। गाधीजी, मोतीलाल नेहरू, चित्तरजन दास, फजलुल हक और अब्बास तैयबजी इस कमिटी के सदस्य थे और के० सन्तानम् मन्त्री। लेकिन इसके बाद शीघ्र ही प० मोतीलाल नेहरू अमृतसर-काग्रेस के सभापति निर्वाचित हुए, इसलिए उन्होने पद त्याग दिया और श्री मुकुन्दराव जयकर उनकी जगह सदस्य बनाये गये। लन्दन के सालिसिटर मि० नेवलो भो, जिनके सुपुर्द प्रिवी-कौंसिल मे की जानेवाली अपीलो का काम था, कमिटी के साथ थे। साथ ही यह भी निश्चय हुआ कि जलियावाला-बाग को प्राप्त करके वहा शहीदो का एक स्मारक बनाया जाय, और इसके लिए मालवीयजी की अध्यक्षता मे एक कमिटी बना दी गई।

अमृतसर-कांग्रेस : १९१९

अमृतसर-काग्रेस मे श्री चित्तरजन दास प्रमुख रूप से सामने आये। उस अधिवेशन मे उपस्थित करने के लिए प्रस्ताव का मसविदा दास बाबू बना कर लाये थे और सशोधन के बाद विषय-समिति ने उसे मजूर किया था। वह इस प्रकार है——

"(क) यह काग्रेस अपने पिछले वर्ष की इस घोषणा को दोहराती है कि

भारतवर्ष उत्तरादायित्वपूर्ण शासन के योग्य है और इसके खिलाफ जो वात समझी या कही जाती है उनको यह काग्रेस अस्वीकार करती है।

(ख) वैध सुधारो के सम्बन्ध मे दिल्ली की काग्रेस-द्वारा पास किये गये प्रस्तावो पर ही काग्रेस दृढ है और इसकी राय है कि सुधार-कानून अपूर्ण, असन्तोष-जनक और निराशापूर्ण है।

(ग) आगे यह काग्रेस अनुरोध करती है कि आत्म-निर्णय के सिद्धान्त के अनुसार भारतवर्ष मे पूर्ण उत्तरदायी सरकार कायम करने के लिए पार्लमेंट को शीघ्र कार्रवाई करनी चाहिए।"

अमृतसर-काग्रेस मे ५० प्रस्ताव पास हुए, जिनमें लॉर्ड चेम्सफोर्ड को वापस बुलाने से लेकर कानून मालगुजारी, मजदूरो की हीनावस्था और तीसरे दर्जे के मुसाफिरो के दु खो की जाच की माग तक के प्रस्ताव थे। इस काग्रेस में ३६ हजार लोग आये थे, जिनमे ६ हजार मामूली प्रतिनिधि और कोई १२०० किसान-प्रतिनिधि थे। काग्रेस के सारे वातावरण में मानो बिजली फैली हुई थी। पंजाब और उसपर हुए अत्याचारो पर स्वभावत ही सबसे अधिक ध्यान दिया गया था। गाधीजी उत्सुक थे कि पजाब और गुजरात मे जो मारकाट लोगो की तरफ से हो गई थी उसकी निन्दा की जाय, लेकिन विषय-समिति में उनका प्रस्ताव गिर गया। गाधीजी को इससे निराशा हुई। रात बहुत हो चुकी थी। उन्होने, यदि काग्रेस उनके दृष्टि-विन्दु को न अपना सके तो दृढता परन्तु साथ ही शिष्टता और अदब के साथ काग्रेस मे रहने की अपनी असमर्थता प्रकट की। दूसरे ही दिन सुबह प्रस्ताव मजूर हुआ। इस विषय पर गाधीजी ने जो व्याख्यान दिया वह अत्यन्त उच्चकोटि का और प्रभावशाली था। उन्होने बहुत सक्षेप मे अपने सग्राम की योजना और भावी नीति का दिग्दर्शन कराया था। उन्होंने कहा कि "हमारी भावी सफलता की सारी कुंजी इसी बात में है कि हम उसके मूलभूत सत्य को समझ लें, उसे हृदय से स्वीकार कर ले और उसके अनुसार आचरण भी रखे। जिस अश तक हम उसके मूल शाश्वत सत्य को मानने मे असमर्थ होगे उसी हद तक हमारी असफलता भी निश्चित है। मै कहता हू कि यदि हम लोगो ने मारकाट न की होती—तो यह बखेड़ा न खड़ा होता, लेकिन उस समय सरकार भी पागल हो गई थी और हम भी पागल हो गये थे। मै कहता हू, पागलपन का जवाब पागलपन से मत दो, बल्कि पागलपन के मुकाबले मे समझदारी से काम लो और देखो कि सारी बाजी आपके हाथ मे है।" आत्मा को जगानेवाले कैसे शब्द है ये, जो अबतक कानो मे गूजते है! परन्तु प्रश्न यह है कि क्या लोगो ने उस समय उनके पूरे रहस्य को समझा होगा? उस समय तक गाधीजी सरकार से सहयोग तोडने के लिए न तो राजी थे और न तैयार ही थे। इसीलिए युवराज के स्वागत करने का प्रस्ताव यहा पास किया गया; गोया दिल्ली में जो बात छूट गई थी उसकी पूर्त्ति यहा की गई। यही कारण

है कि अमृतसर मे सहयोग के आश्वासन वाले प्रस्ताव मे जोडा गया टुकडा पास हो गया, हालाकि समझौते के कारण वह बहुत-कुछ कमजोर हो गया था।

पजाब मे किये गये अत्याचारो के प्रश्न पर विचार करते हुए काग्रेस ने उस हर्जाना लेने को व्यवस्था को, जो कुछ लोगो पर कही-कही लागू की गई थी, रद्द करने की प्रार्थना की। मौलिक अधिकारो-सम्बन्धी भी एक प्रस्ताव पास हुआ, जिससे शासन-सुधार-सम्बन्धी प्रस्ताव का बल और बढ गया। इसके बाद काग्रेस ने प्रेस-ऐक्ट और रौलट-ऐक्ट को उठा देने और सम्राट् की ओर से मुक्ति की घोषणा होने पर जो कैदी तब तक जेल मे पडे हुए थे, उनकी रिहाई के लिए जोर दिया।

: ९ :

असहयोग का जन्म : १९२०

खिलाफत-सम्बन्धी अन्याय

१९२० का आरम्भ भारतीय राजनैतिक क्षेत्र मे दलवन्दियो से हुआ। उदार अर्थात् नरम दल वाले काग्रेस से अलग हो गये थे और १९१९ के दिसम्बर मे कलकत्ते मे एकत्र हुए थे। बाकी बचे काग्रेसियो मे भी फूट के लक्षण दिखाई पड रहे थे। अमृतसर मे मुख्य प्रश्न था, असहयोग या अडगा। नये साल का आरम्भ होने के कुछ महीने बाद अमृतसर मे बने दलो की स्थिति उलट गई। गाधीजी ने असहयोग का बीडा उठा लिया था और जो लोग अमृतसर मे उनके सहयोग के विरुद्ध थे वे अब एक बार फिर उनके खिलाफ एकत्र हो गये थे। बात यह थी कि पजाब के अत्याचार और खिलाफत के प्रश्न पर जनता मे खलबली बढ रही थी। १९२० की घटना खिलाफत के महान् आन्दोलन को लेकर आरभ हुई थी। महायुद्ध के समय प्रधान मत्री मि० लायड जार्ज ने भारत के मुसलमानो को कुछ वचन दिये थे, जिनके कारण भारतीय मुसलमान देश के बाहर गये और अपने तुर्की सहधर्मियो से लडे। परन्तु जब युद्ध समाप्त हो गया तब दिये गये वचनो को बुरी तरह भग किया गया। ब्रिटिश प्रधान-मत्री के विश्वासघात से भारत के मुसलमानो मे क्रोध का लहर फैल गई। अमृतसर मे प्रमुख काग्रेसी और खिलाफती नेता एकत्र हुए और उन्होने लायड जार्ज की करतूत से उत्पन्न हुई देश की स्थिति के सम्बन्ध मे चर्चा की और अन्त मे गाधीजी के नेतृत्व मे खिलाफत आन्दोलन करने का निश्चय किया।

१९ जनवरी १९२० को डा० अन्सारी की अध्यक्षता मे एक शिष्ट-मण्डल वाइसराय से मिला। उसने उन्हे बताया कि तुर्की-साम्राज्य का और सुलतान को खलीफा बनाये रखना आवश्यक है। वाइसराय का उत्तर बहुत कुछ निराशा-जनक था। इस पर मुसलमान नेताओ ने एक वक्तव्य प्रकाशित किया, जिसमे

उन्होने यह दृढ सकल्प प्रकट किया कि यदि संधि की शर्ते मुसलमानो के धर्म और भावो के विरुद्ध गई तो इससे मुसलमानो की वफादारी को धक्का लगेगा।

फरवरी और मार्च के महीनो मे खिलाफत का प्रश्न भारत के राजनैतिक क्षेत्र मे बराबर प्रमुख स्थान पाता रहा। १९२० के मार्च मे एक मुस्लिम शिष्ट-मण्डल मौलाना मुहम्मदअली के नेतृत्व मे इग्लैण्ड गया। इस शिष्ट-मण्डल से भारत-सचिव की ओर से मि० फिशर मिले। शिष्ट-मण्डल प्रधानमन्त्री से भी मिला। उसने अपने विचार शान्ति-परिषद् की बड़ी कौसिल के आगे रखने की अनुमति चाही, पर वह न मिली।

१७ मार्च को लायड जार्ज ने मुस्लिम शिष्ट-मण्डल को उत्तर दिया, जिसके दौरान मे उन्होने इस बात पर जोर दिया कि ईसाई राष्ट्रो के साथ जिस नीति का व्यवहार किया जा रहा है, तुर्की के साथ उससे भिन्न नीति का व्यवहार नही किया जा सकता। परन्तु साथ ही इस बात पर जोर दिया कि वैसे तुर्की तुर्की-भूमि पर अधिकार रख सकेगा, पर जो प्रदेश तुर्की नही है उसपर कोई अधिकार न रख सकेगा। इसने भारत के खिलाफत-सम्बन्धी सारे प्रश्न की ही जड काट दी। इसलिए १९ मार्च राष्ट्रीय शोक-दिवस नियत हुआ। उस दिन उपवास, प्रार्थनाए और हडताले की गई।

गाधीजी फिर मैदान मे आये। उन्होने फिर घोषणा की कि यदि तुर्की के साथ संधि की शर्ते भारत के मुसलमानो के भावो के अनुकूल न हुई तो मै असहयोग-आन्दोलन शुरू करूगा। उन्होने अपने विचार अपने १० मार्च के घोषणा-पत्र मे प्रकट कर दिये जिसमे उन्होने कहा कि "यदि हमारी मागे स्वीकार न हुई तो हमे क्या करना चाहिए, इसपर विचार कर लेना आवश्यक है। एक जगली मार्ग खुल्लम-खुल्ला या छिपे हुए युद्ध का है। इस मार्ग को छोडिए, क्योकि वह अव्यवहार्य है। यदि मै सबको समझा सकू कि यह उपाय हमेशा बुरा है, तो हमारे सब उद्देश्य शीघ्र सिद्ध हो जाय। कोई व्यक्ति या कोई राष्ट्र हिंसा के त्याग-द्वारा जो शक्ति उत्पन्न कर सकता है उसका मुकाबला कोई नही कर सकता। अतएव हमारे लिए असहयोग ही एक-मात्र औषधि है। यदि यह सब तरह की हिंसा से मुक्त रखी जाय तो यही सबसे अच्छी और रामबाण औषधि है। यदि सहयोग-द्वारा हमारा पतन होता हो और हमारे धार्मिक भाव को आघात पहुचता हो, तो असहयोग हमारे लिए कर्तव्य हो जाता है। इग्लैण्ड हमसे यह आशा नही रख सकता कि हम उन अधिकारो का हनन चुपचाप सह लेगे जो मुसलमानो के जीवन-मृत्यु के प्रश्न है। इसलिए हमे जड और चोटी दोनो ओर से काम आरम्भ करना चाहिए। जिन लोगो को सरकारी उपाधिया और सम्मान प्राप्त है उन्हे त्याग देना चाहिए। जो नीचे दर्जे की सरकारी नौकरियो पर है उन्हे भी नौकरिया छोड़ देनी चाहिए। असहयोग का खानगी नौकरियो से कोई वास्ता नही है। पर मै उन लोगो से, जो

असहयोग की औषधि को नही अपनाते, सामाजिक बहिष्कार की धमकी देने
वात को पसन्द नही कर सकता। सत्याग्रही होकर नौकरी छोड देना ही जनता
भावो और असतोष की कसौटी है। सैनिको से सेना मे काम करने से इन्कार क
को कहने का समय अभी नही आया है। यह उपाय अन्तिम है, पहला नही
जब वाइसराय, भारत-मत्री और प्रधान मत्री हमे दाद न दे तब हमे इस उपाय
अवलम्बन करना चाहिए। इसके अलावा सहयोग तोडने मे एक-एक कदम ब
समझ-बूझकर रखना होगा। हमे धीरे-धीरे बढना होगा, जिससे बड़े-से-बड़े उत्ते
पर भी हम अपना आत्म-सयम बनाये रख सके।"

लोकमान्य तिलक के विचार

अशान्ति के इस वातावरण मे २५ मार्च १९२० को पजाब के अत्याचारो
गैर सरकारी रिपोर्ट प्रकाशित हुई। उसने सर माइकेल ओडायर को ही अ
कटाक्षो का लक्ष्य बनाया। १९१९ की घटनाये ६ अप्रैल से आरम्भ हुई थी अ
उनका अन्त १३ तारीख को जलियावाला-बाग-हत्या-काण्ड के रूप मे हुआ थ
अत वह सप्ताह १९२० मे राष्ट्रीय सप्ताह मनाया गया। १४ मई १९२०
तुर्किस्तान के साथ सधि की शर्तें प्रकाशित हुईं, जिससे खिलाफत आन्दोलन
और भी जोर पकडा। इसके वाद ही गाधोजी ने अपने एक सकल्प का घोष
की। लाकमान्य तिलक ने इस आन्दोलन का समर्थन हृदय से नही किया, पर स
ही इसका विरोध भी नही किया। इन दोनो महान् नेताओ ने अप्रैल के ती
हफ्ते मे महत्वपूर्ण वक्तव्य प्रकाशित कराये। इसी अवसर पर गाधोजी ने होमरू
लीग का सभापतित्व ग्रहण किया। अपने वक्तव्य मे उन्होने कहा कि "मुझे आ
है कि सारे दल काग्रेस को एक ऐसी राष्ट्रीय सस्था बनाना चाहेगे जिसके द्वारा
काग्रेस की नीति निर्धारित करने के लिए राष्ट्र से अपील कर सके। मै ली
की नोति को ऐसी बनाना चाहता हूँ जिससे काग्रेस दल-वन्दियो से ऊपर
कर अपना राष्ट्रीय पद कायम रख सके। मेरा विश्वास है कि देश के राजनैति
जीवन मे कठोर सत्य और ईमानदारी का वातावरण उत्पन्न करना सम्भव है
मै लीग से यह आशा नही रखता कि वह सत्याग्रह के मामले मे मेरा साथ देगी,
मै शक्ति भर चेष्टा करूगा कि हमारे सारे राष्ट्रीय कामो में सत्य और अहिंसा
काम लिया जाय। तब हम सरकार और उसके उपायो से न भयभीत होगे,
उनके प्रति अविश्वास रखेगे। फिलहाल मेरा उद्देश्य अपने काम के औचित्य
उसमे समाविष्ट नोति की सत्यता का प्रदर्शन करना नही है, बल्कि लीग के सदस
पर विश्वास करके अपने कार्यक्रम पर उनकी आलोचना-सूचनाओ को आमन्त्रि
करना है।"

लोकमान्य तिलक ने अपने वक्तव्य मे नये सुधारो के प्रति अपनी नीति प्रक

करते हुए कहा कि कांग्रेस-प्रजातंत्र दल मे कांग्रेस के प्रति अगाध भक्ति और प्रजातंत्र के प्रति आस्था काम कर रही है। यह दल चाहता है कि जाति या रिवाज के कारण जो नागरिक, राजनैतिक अथवा सामाजिक बधन लगा दिये गये है उन्हे उठा दिया जाय। इस दल का धार्मिक सहिष्णुता और अपने लिए अपने धर्म की पवित्रता मे विश्वास है और उस पवित्रता को खतरे से रक्षा करना सरकार का अधिकार और कर्तव्य है। यह दल मुसलमानो के उस दावे का समर्थन करता है जो खिलाफत-सबधी प्रश्नो का हल इस्लाम धर्म के सिद्धान्तो के अनुसार चाहता है। यह दल जोर के साथ प्रतिपादन करता है कि भारत प्रतिनिधि उत्तरदायी शासन के सर्वथा योग्य है और अन्तिम-निर्णय के सिद्धान्त पर भारत की जनता के लिए अपनी सरकार का ढाचा स्वय तैयार करने का और यह निर्णय करने का कि कौन-सी शासन-प्रणाली भारत के लिए सबसे अच्छी रहेगी, पूर्ण अधिकार चाहता है। यह दल माण्टेगु-सुधार-विधान को अपर्याप्त, असन्तोष-पूर्ण और निराशाजनक समझता है और इस दोष को दूर करने की चेष्टा करने के निमित्त मजदूरदल के सदस्यो और ब्रिटिश-पार्लमेण्ट के अन्य भारत-हितैषियो की सहायता से शीघ्र-से-शीघ्र एक नवीन सुधार-बिल पास कराना चाहता है। जिसका उद्देश्य भारत मे पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित करना हो और जो सेना पर पूरा अधिकार और अर्थ-सम्बन्धी नीति मे पूरी स्वतत्रता प्रदान करे और वैधानिक-गारण्टियो-सहित अधिकारो की विस्तृत घोषणा करे।"

सत्याग्रह का निश्चय

अभी मुसलमानो का शिष्ट-मण्डल यूरोप मे ही था कि तुर्किस्तान के साथ सधि की प्रस्तावित शर्ते प्रकाशित हो गई और भारत मे उनके साथ-ही साथ वाइसराय का सदेश भी प्रकाशित हुआ, जिसमे भारतीय मुसलमानो को वे शर्तें समझाई गई थी। हण्टर-कमिटी की रिपोर्ट भी इसी समय प्रकाशित हुई। बस, सारे देश मे आग लग गई। खिलाफत-कमिटी की बैठक बम्बई मे हुई जिसमे गाधीजी के असहयोग-कार्यक्रम पर विचार किया गया और १९२० की २८ मई को असहयोग भारतीय मुसलमानो का एकमात्र शस्त्र समझ कर अपना लिया गया। ३० मई को महासमिति की बैठक बनारस मे हुई, जिसमे हण्टर-कमिटी की रिपोर्ट और तुर्किस्तान के साथ संधि की शर्तों पर विचार किया गया। लम्बे-चौडे वाद-विवाद के बाद असहयोग पर विचार करने के लिए कांग्रेस का विशेष अधिवेशन करने का निश्चय किया गया।

इस समय तक गाधीजी चम्पारन, खेडा और अहमदाबाद मे सत्याग्रह करके देश को स्थायी लाभ पहुंचाने का श्रेय प्राप्त कर चुके थे। उन्होने चम्पारन मे १९१७-१८ मे सत्याग्रह किया और नील की खेती का अन्त करने मे सफल हुए।

गाधीजी ने १९१८ मे खेडा जिले के किसानो के कष्ट दूर करने का काम अपने हाथ मे लिया। उन्होने किसानो को सलाह दी कि जबतक समझौता न हो जाय, तबतक लगान अदा न किया जाय। अन्त मे खेडा के किसानो को आशिक छूट मिल गई। तीसरी घटना अहमदाबाद मिल-हडताल थी, जो १९१८ के मार्च मे आरम्भ हुई। अन्त मे मजदूरो और मालिको के बीच एक समझौता ठहराया गया, पर इसी बीच कुछ मजदूरो ने दुर्बलता और विह्वलता का परिचय दिया और मजदूरो का सगठन टूटता-सा दिखाई देने लगा। इस नाजुक अवसर पर गाधीजी ने उपवास करने की प्रतिज्ञा की। इस प्रकार की भीषण प्रतिज्ञा करने का गाधीजी का यह पहला अवसर था, पर इसके सिवा और कोई चारा न था। इससे सपूर्ण देश पर चिन्ता छा गई। अन्त में समझौता हो गया। इन सत्याग्रह-आन्दोलनो में सफल होने से उनके प्रति जनता का विश्वास जम गया।

कुली प्रथा का अन्त

भारत के राजनैतिक क्षेत्र मे १९२० की घटनाओ का जिक्र करने से पहले हमे १९२० की १ जनवरी के उत्सव की चर्चा करनी है। इस दिन तक उपनिवेशो मे शर्तबन्दी कुली-प्रथा एक शताब्दी से जारी था। जब भारत सरकार ने और अधिक मजदूर भर्ती करने की अनुमति देने से इन्कार कर दिया तब नेटाल मे इस प्रथा का अन्त हो गया। मारिशस मे कुली-प्रथा का अन्त स्वत ही हो गया, क्योकि वहा मजदूरो की और अधिक जरूरत न रही। परन्तु पृथ्वी के अन्य भागो के उपनिवेशो मे शर्तबन्दी कुली-प्रथा उसी प्रकार जारी था। गाधीजी ने उत्तर और पश्चिम भारत मे कुली-प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ कर दिया। श्रीमती बेसेण्ट ने मद्रास मे श्रीगणेश किया। १९१७ के मार्च-अप्रैल मे आन्दोलन पूरे जोर पर था। गाधीजी ने ३१ मई १९१७ का दिन नियत कर दिया कि उस दिन तक यह प्रथा बन्द होनी चाहिए, नही तो भरती रोकने के लिए सत्याग्रह आरम्भ होगा। लॉर्ड चेम्सफोर्ड ने १२ अप्रैल १९१७ को घोषणा की कि भारत-रक्षा-विधान के अन्तर्गत युद्ध-कालीन कार्रवाई के रूप मे मजदूरो की भरती बन्द की जाती है, पर यह स्पष्ट था कि युद्ध समाप्त होते ही वे सारे उपनिवेश इस प्रश्न को फिर उठायेगे जिनका उसमे बहुत बडा आर्थिक-हित था। इसलिए एडरूज साहब गाधीजी की सलाह और श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की हार्दिक सहानुभूति प्राप्त कर ताजा मसाला इकट्ठा करने के लिए एक बार फिर फिजी गये। वह एक साल तक फिजी मे रहे और पहली बार से भी अधिक भयकर झाकिया जमा कर लाये। १९१८ के मार्च मे उन्होने मि० माण्टेगु से दिल्ली मे भेंट की और उनके सामने सारा मामला पेश कर दिया कि शर्तबन्दी कुली-प्रथा घोर अनैतिक है। फलत यह प्रथा उठा दी गई। पहली जनवरी १९२० को फिजी, ब्रिटिश गायना, ट्रिनडाड, सुरीनाम

और जमैका के प्रवासी-भारतीयो मे हर्ष का वारापार न रहा; क्योकि वहा अभी तक यह प्रथा जारी थी। यह प्रथा १८३५ में आरंभ की गई थी जिससे उपनिवेशो मे शक्कर की खेती के लिए कुली मिल सकें।

हण्टर रिपोर्ट का प्रभाव

३० मई को महासमिति की बैठक बनारस मे हुई, जिसमे हण्टर कमिटी की रिपोर्ट पर भारत की ओर से क्रोध प्रकट किया गया और उस मामले पर विचार करने के लिए विशेष कांग्रेस अधिवेशन का निश्चय किया गया। लोकमान्य तिलक इस अवसर पर बनारस से होकर गुजरे, पर उन्होने महासमिति मे भाग न लिया, क्योकि खिलाफत-आन्दोलन उन्हे कुछ रुचा न था। फिर भी उन्होने देशभक्ति और सौजन्य का परिचय देते हुए यह अवश्य कह दिया कि वह महासमिति के आदेश का पालन करेंगे। इसी अवसर पर गाधीजी ने नेताओ का एक सम्मेलन बुलाकर असहयोग-आन्दोलन का, उसके सामने रखने का निश्चय किया। अबतक असहयोग-आन्दोलन खिलाफत के प्रश्न से ही सम्बन्ध रखता था। सारे दलो के नेता २ जून १९२० को इलाहाबाद मे एकत्र हुए। इस सम्मेलन मे असहयोग की नीति अपनाने का निश्चय किया गया और कार्यक्रम तैयार करने के लिए गाधीजी और कुछ मुसलमान नेताओ की एक समिति बनाई गई। इस समिति ने रिपोर्ट प्रकाशित करके स्कूलो, कालेजो और अदालतो के बहिष्कार की सिफारिश की। वास्तव मे नवम्बर १९१९ मे दिल्ली अ० भा० खिलाफत-परिषद् ने गांधीजी की सलाह के अनुसार सरकार से असहयोग करने का निश्चय कर लिया था। इस निश्चय की पुष्टि कलकत्ता और अन्य स्थानो के मुसलमानो ने, और १७ अप्रैल १९२० को मद्रास की खिलाफत-परिषद् ने, कर दी थी। मद्रास की खिलाफत-परिषद् ने असहयोग की योजना की जो परिभाषा की थी उसके अनुसार उपाधियो और सरकारी नौकरियो का परित्याग, आनरेरी पदो और कौंसिलो की मेम्बरी तथा पुलिस और फौज की नौकरी का त्याग और कर अदा करने से इन्कार करना भी आवश्यक था। इस प्रकार खिलाफत पंजाब के अत्याचारो और अपर्याप्त सुधारो ने उबलती हुई त्रिवेणी का रूप धारण कर लिया था। इसी बीच मुसलमानो ने अफगानिस्तान को हिजरत करने का निश्चय किया, क्योकि अब तुर्किस्तान के साथ ब्रिटेन की सधि के बाद भारत मे अंग्रेजो के शासन में रहना उन्होने ठीक नही समझा। यह आन्दोलन सिन्ध मे आरम्भ हुआ और सीमान्त प्रदेश मे जा फैला। कचगढी में मुहाजिरीन और सैनिको मे जोर की मुठ-भेड हो गई, जिससे जनता मे और भी आग लग गई और अगस्त के भीतर-भीतर अनुमानत १८,००० मुसलमान अफगानिस्तान के लिए चल पड़े। पर अफगान-सरकार ने शीघ्र ही इन मुहाजिरीन का दाखिला बन्द कर दिया। इनसे मुसलमानो के विचार बदल गये।

असहयोग का प्रस्ताव

उक्त परिस्थितियो मे असहयोग की योजना का नियमानुसार आरम्भ १ अगस्त को हुआ। गाधीजी और अली-भाइयो ने देश का दौरा किया। गाधीजी ने जनता को अनुशासन का पाठ पढाया और उसके उछलते हुए उत्साह को सयम मे रखा। इस नवीन आन्दोलन के लिए काग्रेस के विशेष अधिवेशन की आवश्यकता थी। इस अधिवेशन का निश्चय मई मे ही हो चुका था। अत यह १९२० के ४ से ९ सितम्बर तक कलकत्ते मे हुआ। यह अधिवेशन बडा ही महत्वपूर्ण था। बगाल गाधीजी से पूरी तरह सहमत नही था। देशबन्धुदास गाधीजी के असहयोग-कार्यक्रम के सोलह आने विरुद्ध थे। उनके या अधिकाश प्रतिनिधियो के हृदयो मे कौसिलो और अदालतो के बहिष्कार की योजना के प्रति बिलकुल सहानुभूति नही थी। पर तो भी ७ मत के सकीर्ण निश्चयात्मक बहुमत से कार्य-समिति ने गाधीजी का प्रस्ताव पास कर दिया, जिसमे उन्होने शनैः-शनैः बहिष्कार करने की सलाह दी थी। काग्रेस का यह विशेष अधिवेशन कलकत्ते मे बडे उत्साह के बीच हुआ। श्री व्योमकेश चक्रवर्ती स्वागत-समिति के प्रधान थे और लाला लाजपतराय, जो हाल ही में अमराका से लौटे थे, सभापति थे। पहले प्रस्ताव मे लोकमान्य बाल गगाधर तिलक की मृत्यु (३१ जुलाई १९२०) पर दुख प्रकट किया गया। अधिवेशन का मुख्य प्रस्ताव असहयोग से सम्बन्ध रखने वाला था, जिसे गाधीजी ने पेश किया। प्रस्ताव का सार इस प्रकार है —

"चूकि खिलाफत के प्रश्न पर भारत तथा ब्रिटेन दोनो देशो की सरकार भारत के मुसलमानो के प्रति अपना फर्ज अदा करने मे खास तौर से असफल रही है और ब्रिटिश प्रधान मन्त्री ने जान-बूझ कर उन्हे दिये हुए वादे को तोडा है और चूकि प्रत्येक गैर-मुस्लिम भारतीय का यह फर्ज है कि अपने मुसलमान भाई पर आई हुई धार्मिक-विपत्ति को दूर करने मे प्रत्येक उचित उपाय से सहायता करे,

"और चूकि अप्रैल १९१९ की घटनाओ के मामले मे उक्त दोनो सरकारो ने पजाब की बेकसूर जनता की रक्षा करने मे और उन अफसरो को सजा देने मे, जो पजाब की जनता के प्रति असभ्य तथा सैनिक-धर्म-विरुद्ध आचरण करने के दोषी ठहरे है, घोर लापरवाही की है, इसलिए जबतक उक्त भूलो का सुधार न हो जाय और स्वराज्य की स्थापना न हो जाय, भारतवासियो के लिए इसके सिवा और कोई मार्ग नही है कि वे गाधीजी-द्वारा सचालित क्रमिक अहिसात्मक असहयोग की नीति को स्वीकार करे और अपनाये।

"और चूकि आन्दोलन को चलाने मे यह वाञ्छनीय है कि कम-से-कम खतरा रहे और वाञ्छित उद्देश्य की सिद्धि के लिए आवश्यक कम-से-कम त्याग का आह्वान किया जाय, यह काग्रेस सब के साथ सलाह देती है कि.—

(क) सरकारी उपाधियो तथा अवैतनिक पदो को छोड दिया जाय और

म्युनिसिपल वोर्ड तथा अन्य संस्थाओं मे जो लोग नामजद हुए हों, वे इस्तीफा दे दें;

(ख) सरकारी दरबारो आदि द्वारा किये जाने वाले सरकारी और अर्द्ध-सरकारी उत्सवो मे भाग लेने से इनकार किया जाय;

(ग) राजकीय तथा अर्द्ध राजकीय स्कूलो तथा कालेजो से छात्रो को धीरे-धीरे निकाल लिया जाय,

(घ) वकोलो तथा मुवक्किलो द्वारा ब्रिटिश अदालतों का धीरे-धीरे बहिष्कार किया जाय और खानगी झगड़ो को तय करने के लिए पचायती अदालतों की स्थापना की जाय;

(ङ) फौजी, क्लर्की तथा मजदूरी करने वाले लोग मेसोपोटामिया मे नौकरी करने के लिए भरती होने से इनकार करे,

(च) नई कौसिलो के चुनाव के लिए खड़े हुए उम्मीदवार अपने नाम उम्मीदवारी से वापस ले ले, और

(छ) विदेशो माल का बहिष्कार किया जाय ।

"और चूकि असहयोग को अनुशासन तथा आत्म-त्याग के एक साधन के रूप मे पेश किया गया है जिसके विना कोई भी सच्ची उन्नति नही कर सकता, और चूकि असहयोग के सवसे पहले युग मे हो हर स्त्री-पुरुष व वालक को इस प्रकार के अनुशासन एव आत्म-त्याग का अवसर मिलना चाहिए, यह काग्रेस सलाह देता है कि एक वडे पैमाने पर स्वदेशी वस्त्रो को अपनाया जाय; और हरेक घर मे हाथ की कताई तथा हाथ की बुनाई को पुनरुज्जीवित करके वड़े पैमाने पर वस्त्रो की उत्पत्ति तुरन्त ही वढाई जाय ।"

इस प्रस्ताव पर गरमागरम वहस हुई । वावू विपिनचन्द्र पाल ने एक संशोधन पेश किया, जिसका देशवन्धु चित्तरञ्जनदास ने समर्थन किया । इस सशोधन के अनुसार ब्रिटेन के प्रधान-मत्री को भारत के एक शिष्ट-मडल से मिलने के लिए कहा गया । वहुत देर के विवाद के वाद अन्त मे गाधीजी का प्रस्ताव पास हो गया ।

२ अक्टूबर १९२० को महासमिति ने अपनी वैठक मे 'अखिल-भारतीय तिलक-स्मारक-कोष' तथा 'स्वराज्य-कोष' नाम के दो कोष इकट्ठे करने का निश्चय किया, लेकिन उसका यह प्रस्ताव दिसम्वर १९२० तक रद्दी की टोकरी मे ही पड़ा रहा ।

नागपुर कांग्रेस : १९२०

नागपुर-काग्रेस मे असहयोग के कार्य-क्रम पर अन्तिम रूप से विचार होकर निश्चय होना था । काग्रेस के सभापति दक्षिण के अनुभवी नेता चक्रवर्ती विजय राघवाचार्य थे । कर्नल वेजवुड, मि० हालफोर्ड नाइट तथा मि० वेन स्पूर ने कांग्रेस मे इग्लैण्ड के मजदूर-दल के मित्र-प्रतिनिधि की हैसियत से भाग लिया था ।

श्री चित्तरंजनदास पूर्वी बगाल तथा आसाम से लगभग २५० प्रतिनिधियो का एक दल लाये थे। उन्होने उनका दोनो ओर का व्यय दिया था और अपनी जेब से लगभग ३६०००) इसलिए खर्च किया था कि कलकत्ते के निर्णय पर पानी फेरा जा सके। श्री दास के आदमियो और उनके विरोधी श्री जितेन्द्रलाल बनर्जी के आदमियो के बीच एक मामूली-सी तकरार भी हो गई थी। महाराष्ट्र का विरोध भी कुछ कम तगडा न था। कर्नल वेजवुड, मि० वेन स्पूर तथा मि० हालफोर्ड नाइट ने विषय-समिति की बैठक मे भी भाग लिया था। कर्नल वेजवुड ने तो असहयोग के विरोध मे दलीले पेश करने मे अपनी सारी शक्ति लगा दी थी, परन्तु नतीजा कुछ भी न हुआ। खादी-सम्बन्धी धारा और भी कड़ी कर दी गई। असहयोग का प्रस्ताव फिर दोहराया गया। अधिवेशन में गाधीजी के व्यक्तित्व की विजय हुई।

नागपुर-काग्रेस मे असहयोग-सम्बन्धी प्रस्ताव का पास हो जाना स्वय एक बडी भारी बात थी, लेकिन उसके बारे मे सबसे बडी बात यह थी कि उसे श्री चित्तरजनदास ने पेश किया और उसका लाला लाजपतराय ने समर्थन किया। नागपुर मे गाधीजी को निस्सदेह कलकत्ते से अधिक समर्थन प्राप्त हुआ। कलकत्ते मे केवल एक ही परले सिरे के राजनीतिज्ञ प० मोतीलाल नेहरू ने गाधीजी का साथ दिया था, और सो भी अधिवेशन की समाप्ति के करीब जबकि गाधीजी ने नेहरूजी का यह सशोधन स्वीकार कर लिया कि अदालतो तथा कालेजो का बहिष्कार धीरे-धीरे हो।

नागपुर के असहयोग-सम्बन्धी प्रस्ताव ने करीब-करीब कलकत्तावाले प्रस्ताव को ही दोहराया। एक ओर उपाधियाँ छोड देने की बात तो दूसरी ओर करो के न देने तक की बात उसमे शामिल कर ली गई। व्यापारियो से अनुरोध किया गया कि वे धीरे-धीरे विदेशी व्यापारिक सम्बन्धो को छोडे और हाथ की कताई बुनाई को प्रोत्साहन दे। देश से अनुरोध किया गया कि वह राष्ट्रीय आन्दोलन मे अधिक-से-अधिक त्याग करे। राष्ट्रीय सेवक दल को सगठित करने और 'अखिल-भारतीय तिलक-स्मारक-कोष' को बढाने के लिए काग्रेस पर जोर दिया गया। कौसिलो के लिए चुने गये सदस्यो से इस्तीफा देने की और मतदाताओ से उन सदस्यो से किसी भी प्रकार की राजनैतिक सेवा न लेने की प्रार्थना की गई। पुलिस तथा पलटन और जनता मे मित्रता के जो भाव बढ रहे थे उनको स्वीकार किया गया। सरकारी कर्मचारियो से अपील की गई कि वे जनता से बर्ताव करते समय अधिक नरमी तथा ईमानदारी का परिचय देकर राष्ट्र-कार्य मे सहायता करे और सब सार्वजनिक सभाओ मे बिना डर के खुले तौर पर भाग ले। इस बात पर भी जोर दिया गया कि अहिसा असहयोग-आन्दोलन का अविच्छिन्न अग है। वचन और कर्म दोनो मे अहिसा का होना आवश्यक माना गया और उस पर जोर

दिया गया, विनिमय की दर मे वृद्धि होने और उसके फल-स्वरूप स्वर्ण-विनिमय मान-कोष तथा कागजी-मुद्रा कोष मे 'लूट' मचने के कारण नागपुर मे जोरों से इस बात की माग पेश की गई कि ब्रिटिश-सरकार इस घाटे को पूरा करे। पाचवे प्रस्ताव मे तो यह भी कहा गया कि ब्रिटिश माल की तिजारत करनेवाले व्यापारी विनिमय को वर्तमान दरो पर अपना वादा पूरा करने से इन्कार करने के हकदार है। ड्यूक ऑफ कनाट के सम्मान मे किसी उत्सव तथा समारोह मे भाग न लेने के लिए देश से अनुरोध किया गया। मजदूरो को प्रोत्साहित किया गया और ट्रेड-यूनियनो के जरिये जारी किये गये उनके सग्राम के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की गई। पंजाब, दिल्ली तथा अन्य स्थानो में पुनः प्रारम्भ हुए दमन को ध्यान मे रखा गया और जनता से कहा गया कि वह सब कुछ धैर्य से सहे। काग्रेस ने सब देशी नरेशो से भी प्रार्थना की कि वे अपनी-अपनी रियासतो मे पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित करने के लिए शीघ्र-से-शीघ्र प्रयत्न करे।

काग्रेस का ध्येय बदल दिया गया। काग्रेस का ध्येय "शान्तिमय तथा उचित उपायो मे स्वराज्य प्राप्त करना" घोषित किया गया। काग्रेस का प्रातीय संगठन प्रान्तो की भाषा के अनुसार किया गया। विषय-समिति की बैठको का काग्रेस के खुले अधिवेशन से दो-तीन दिन पहले करना तथा उसकी सदस्यता केवल महा-समिति के सदस्यो तक सीमित रखना—ये मार्के के परिवर्तन थे; लेकिन विषय-समिति के सदस्यो की संख्या बढाकर ३५० तक कर दी गई। सभापति, मन्त्री तथा कोषाध्यक्ष समेत १५ सदस्यो की एक कार्य-समिति का नियुक्त होना नये विधान का एक ऐसा अंग था जिसने काग्रेस के रोजमर्रा के कार्य मे एक क्रांति ही कर दी।

इस अध्याय को समाप्त करने से पहले उन तीन प्रमुख सत्याग्रहियो का उल्लेख कर देना आवश्यक है जिन्होने तत्कालीन राजनीति को विशेषरूप मे प्रभावित किया था।

१. चम्पारन-सत्याग्रह

उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे गोरे खेतिहरो ने चम्पारन मे नील की खेती करना प्रारम्भ किया था। आगे चलकर इन लोगो ने वहा के जमीदारो से, अस्थायी और स्थायी जैसे भी सौदा पटा, भूमि के बड़े-बडे भागो को अपने हाथ में कर लिया तथा शीघ्र ही वहा के गावो के किसानो से अपने लिए नील की खेती कराना प्रारम्भ कर दिया। आगे चलकर यह अनिवार्य हो गया कि किसान अपनी ३/२० या ३/१० भूमि पर नील अवश्य बोवे। कुछ ही दिनो मे इन लोगो ने बगाल टेनेन्सी एक्ट मे इस बात को कानून का रूप दिलवा दिया। नील पैदा करने की यह प्रथा आगे चलकर 'तीन कठिया' के नाम से मशहूर हुई, जिसके मानी थे एक बीघे का

३।२० भाग। किसानो की यह शिकायत थी कि नील की खेती से उन्हे कोई फायदा नही है। लेकिन फिर भी उसे करने के लिए उन्हे मजबूर किया जाता था। इससे उनको अन्य खेती को नुकसान पहुचता था और इसके लिए उन्हे जो मजदूरी मिलती थी वह नाममात्र थी। कई बार उनकी शिकायतो ने जोर मारा, परन्तु कडाई के साथ उन्हे वही-का-वही दबा दिया गया।

१९१७ मे गाधीजी मोतीहारी पहुचे। यह जिले का मुख्य स्थान था। गावो को देखने के लिए वह रवाना होने वाले ही थे कि दफा १४४ का नोटिस मिला कि तुरन्त ही जिले से बाहर चले जाओ। गाधीजी भला इस हुक्म को कब माननेवाले थे! उन्होने अपना 'कैसरेहिन्द' का स्वर्ण-पदक, जो कि सरकार ने उन्हे उनके लोकोपयोगी कार्यों के लिए पुरस्कार मे दिया था, सरकार को लौटा दिया। मजिस्ट्रेट की अदालत मे उन पर दफा १४४ भग करने का मुकदमा चला। उन्होने अपने को अपराधी स्वीकार करते हुए एक विलक्षण बयान अदालत के सम्मुख दिया। अन्त मे सरकार ने मुकदमा वापस ले लिया और उन्हे अपनी जाच करने दी। इस जाच मे उन्होने अपने मित्रो की सहायता से कोई २० हजार किसानो के बयान कलमबन्द किये। इन्ही बयानो के आधार पर गाधीजी ने किसानो की मागे पेश की। आखिरकार सरकार को एक कमीशन नियुक्त करना पडा जिसमे जमीदार, सरकार और निलहे गोरो के प्रतिनिधि थे। गाधीजी को किसानो की ओर से प्रतिनिधि रखा गया था। इस कमीशन ने जाच के बाद एकमत होकर अपनी रिपोर्ट लिखी, जिसमे किसानो की लगभग सभी शिकायतो को जायज माना गया। इस रिपोर्ट मे एक समझौता भी लिखा गया, जिसमे किसानो पर बढाये गये लगान को कम कर दिया गया और जो रुपया गोरो ने नकद वसूल किया था, उसका एक भाग लौटा देना तय हुआ। इनकी सिफारिश को बाद मे कानून का रूप दे दिया गया, जिसके अनुसार नील पैदा करना या 'तीन कठिया' लेना मना कर दिया गया।

२. खेडा-सत्याग्रह

चम्पारन-सत्याग्रह के समान ही महत्त्वपूर्ण खेडा का (१९१८) भी सत्याग्रह था। गाधीजी के भारत के सार्वजनिक क्षेत्र मे प्रवेश करने से पहले, भारतीय किसान यह नही जानते थे कि घोर-से-घोर अकाल के दिनो मे भी वे सरकार के लगान लेने के अधिकार के सम्बन्ध मे कुछ एतराज कर सकते है। उनके प्रतिनिधि सरकार के पास आवेदन एव प्रार्थनापत्र भेजते थे, स्थानीय कौसिल मे प्रस्ताव करते थे। बस यहा तक उनका विरोध समाप्त हो जाता था। १९१८ मे गाधीजी ने एक नये युग का श्रीगणेश किया। गुजरात के खेडा जिले मे इस वर्ष ऐसा बुरा समय आया कि जिले भर की सारी फसल खराब हो गई। अवस्था अकाल के समान हो गई।

किसान यह महसूस करने लगे कि अवस्था को देखते हुए लगान स्थगित होना चाहिए। आमतौर पर ऐसे मौको पर जो उपाय काम मे लाये जाते थे, उन सबको आजमाया जा चुका था। सारे उपाय बेकार हो चुके थे। अत. गाधीजी के पास किसानो को सत्याग्रह की सलाह देने के अलावा कोई चारा ही नही था। उन्होने लोगो से स्वय-सेवक और कार्यकर्त्ता बनने की अपील की और कहा कि वे किसानो मे जाकर उन्हे अपने अधिकारो आदि का ज्ञान करायें। गाधीजी की अपील का असर तुरन्त ही हुआ। सबसे पहले स्वय-सेवक बनने को आगे बढने वाले सरदार वल्लभ-भाई पटेल थे। आपने अपनी खासी और बढती हुई वकालत पर लात मार दी, और सब कुछ छोडकर गाधीजी के साथ फकीरी ले ली। खेडा का सत्याग्रह ही इन दो महान् पुरुषो को मिलाने का कारण बना। सरदार वल्लभभाई के सार्वजनिक जीवन मे प्रवेश करने का यह श्रीगणेश था। उन्होने अन्तिम निश्चय करके अपने आपको गाधीजी के अर्पण कर दिया। सत्याग्रह की खूब धूम रही। गिरफ्तारियाँ हुईं, मुकदमे चले और सजायें हुई। आखिरकार इस झगडे का यकायक ही अन्त हो गया। अधिकारियो ने गरीब किसानो के लगान को मुल्तवी कर दिया। लेकिन उन्होने यह कार्य किया बिना किसी प्रकार की सार्वजनिक घोषणा किये हुए। उन्होने किसानो को यह भी न अनुभव होने दिया कि यह उनके साथ किसी प्रकार का समझौता करके हुआ है।

३. अहमदाबाद-सत्याग्रह

गाधीजी द्वारा अहमदाबाद के मिल-मजदूरो के सगठन की कहानी उपन्यास की भाति ऐसी रोमाचकारी है कि उससे किसी भी जाति की स्वतन्त्रता के इतिहास की शोभा बढ सकती है। उस समय तक महात्माजी ने काग्रेस का नेतृत्व ग्रहण नही किया था। औद्योगिक झगडो को सुलझाने के लिए इतिहास मे सबसे पहली बार अहमदाबाद मे ही उन उपायो को काम मे लाया गया जिसका आधार सत्य और अहिंसा था। १९१६ से श्रीमती अनसूया बेन साराभाई मजदूरो मे शिक्षा-सम्बन्धी कार्य कर रही थी। १९१८ मे बुनकरो और मिल-मालिको मे जो झगड़ा उठ खडा हुआ था उसके सम्बन्ध मे परामर्श लेने के लिये उन्हे गाधीजी के पास जाना पडा। उन्होने मिल-मालिको को जवरदस्ती मनवाने की कोशिश करने की अपेक्षा उनसे पचायत के सिद्धात को स्वीकार करा लिया। यह मजदूर-आदोलन के लिए एक महत्वपूर्ण बात थी। गाधीजी और सरदार वल्लभभाई पटेल ने मजदूरो की ओर से पच होना स्वीकार कर लिया। लेकिन पच-फैसले की बात बीच मे ही टूट गई, क्योकि थोडी मिलो के कुछ मजदूरों ने बीच ही मे हडताल कर दी। गाधीजी ने स्वय इसके लिए खेद प्रकाशित करके मजदूरो को वापस काम पर भेज दिया। यद्यपि समझौता-भग दोनो ओर से हुआ था, तो भी मिल मालिक कुछ सहमे ही

न थे। गाधीजी ने मजदूरो को कुछ निश्चित कार्य करने की सलाह देने से पहले खुद इस समस्या का गहराई के साथ अध्ययन किया। व्यापारिक अवस्था, उससे मिलो को होने वाले लाभ, जीवन की आवश्यक वस्तुओ की महगाई और दूसरी ओर मिलो मे उत्पत्ति-खर्च-वृद्धि—ये उनकी जाच के मुख्य विषय थे। इस जाच के पश्चात् जिस परिणाम पर गाधीजी पहुचे वह यह था कि मजदूरो की मजदूरी मे कम-से-कम ३५ फी सदी की वृद्धि की जाय। इस प्रकार जो माग तैयार की गई थी उसे मिल-मालिको के सामने रखा गया। उन्होने २० फी सदी से अधिक देने से कतई इन्कार कर दिया और कह दिया कि २२ फरवरी १९१८ से मिलो मे ताले डाल दिये जायगे। इस पर गाधीजी ने सारे मजदूरो की एक सभा बुलाई और एक पेड के नीचे, उनसे प्रतिज्ञा कराई, कि वे तबतक काम पर नही लौटेंगे, जबतक कि उनकी पूरी माग स्वीकार नही हो जाती। प्रतिज्ञा मे यह बात भी थी कि वे लोग जबतक मिलो मे ताले पडे रहेगे तबतक किसी हालत मे शाति-भग न करेगे। लेकिन अजदूर लोग इस बात के आदी नही थे। इसलिए उनमे कम-जोरी के लक्षण प्रतीत होने लगे। यह देखकर गाधीजी ने शाम की सभा मे यह घोषित कर दिया कि जबतक मजदूर लोग अपनी प्रतिज्ञा पर डटे रहने की शक्ति नही पा जाते तबतक वह न तो किसी सवारी मे हो चलेगे और न भोजन ही करेगे। यह समाचार विद्युत्-गति से सारे भारतवर्ष मे फैल गया। यह आमरण-अनशन था। मजदूरो ने उन्हे बहुतेरा समझाया, पर उनका निर्णय अटल था। इस पर गाधीजी ने उनसे अपील की कि वे अपना समय व्यर्थ नष्ट न करे, और उन्हे जो कोई भी काम मिल जाय उस पर ईमानदारी के साथ अपनी रोटी पैदा करे। गाधीजी के लिए यह बहुत आसान था कि वे इन मजदूरो की आर्थिक सहायता के लिए धन की अपील करते, जिससे काफी धन अवश्य आ जाता, लेकिन इस तरह भिक्षान्न देना उन्हे पसन्द न था। सत्याग्रहाश्रम साबरमती की भूमि पर सैकडो मजदूरो को काम मिल भी गया। वहा इमारते बन रही थी। वे आश्रम के सदस्यो के साथ बडे आनन्द से काम करने लगे। इनमे सबसे आगे श्रीमती अनसूया बेन थी, जो मिट्टी, ईंट और चूना ढो रही थी। इसका बडा ही नैतिक प्रभाव पडा। इससे मजदूर अपनी प्रतिज्ञा पर और भी दृढ हो गए, और मिल-मालिको के भी दिल दहल गए। देश के विभिन्न भागो से नेताओ ने उनसे अपीले की। उपवास के चौथे दिन एक ऐसा रास्ता हाथ आया जिससे मजदूरो की भी प्रतिज्ञा-भग नही होती थी और इधर मिल-मालिक भी अपनी प्रतिष्ठा कायम रखते हुए उनके साथ न्याय कर सकते थे। दोनो ने पच-फैसला मानना स्वीकार कर लिया। पचो ने मजदूरो की माग के अनुसार ही ३५ फी सदी बढोतरी कर देने का निर्णय किया। मजदूरो की समस्या के शान्ति-पूर्ण ढग से सुलझ जाने के कारण काग्रेसी नेताओ और मजदूरो मे एक सुदृढ सम्बन्ध स्थापित

हो गया। इसीके फलस्वरूप मजदूरो का 'मजूर महाजन' नामक एक स्थायी सगठन हो गया।

: १० :

असहयोग का वेग : १९२१-२२

नागपुर-कांग्रेस का प्रभाव

नागपुर-कांग्रेस से भारत के इतिहास मे एक नये युग का सूत्रपात हुआ। निर्बल, क्रोधपूर्ण और आग्रहपूर्वक प्रार्थनाओ के स्थान पर दायित्व और स्वावलम्बन की नयी भावना जाग्रत हो उठी।

नागपुर-कांग्रेस के आदेश का उत्तर लोगो ने काफी दिया। कौसिलो के बहिष्कार मे सराहनीय सफलता मिली। देश भर मे कितने ही वकीलो ने वकालत छोड दी और उन्होने दिलो-जान से अपने को आन्दोलन मे झोक दिया। राष्ट्रीय-शिक्षा के क्षेत्र मे भी आशातीत सफलता दिखाई पडी। जनवरी के मध्य तक देशबन्धुदास की अपील पर हजारो विद्यार्थियो ने अपने कॉलेजो और परीक्षाओ को ठोकर मार दी। गाधीजी कलकत्ता गये और उन्होने ४ फरवरी को वहा एक राष्ट्रीय-कॉलेज का उद्‌घाटन किया। इसी तरह वह पटना भी गये और वहा एक राष्ट्रीय कॉलेज खोलकर बिहार-विद्यापीठ की स्थापना की। इस तरह चार महीने के भीतर-ही-भीतर राष्ट्रीय-मुस्लिम विद्यापीठ अलीगढ, गुजरात-विद्यापीठ, बिहार-विद्यापीठ, बङ्गाल-राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, तिलक-महाराष्ट्र-विद्यापीठ और एक बडी तादाद मे राष्ट्रीय-स्कूल देश मे चारो ओर खुल गये।

नागपुर के प्रस्तावो को कार्यान्वित करने के लिए कार्य-समिति की बैठक १९२१ के प्राय हर महीने मे विभिन्न स्थानो मे हुई। महासमिति की पहली बैठक (नागपुर) ने कार्य-समिति का चुनाव किया और २१ प्रान्तो मे महासमिति के सदस्यो की सख्या का बटवारा किया। जनवरी १९२१ मे नागपुर कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष सेठ जमनालाल बजाज ने अपनी रायबहादुरी की पदवी छोड़ दी और असहयोगी वकीलो की सहायता के लिए तिलक स्वराज्य-कोष मे एक लाख रुपया दिया। इस कोष से किसी वकील को १००) और किसी राष्ट्र-सेवक को ५०) मासिक से अधिक नही मिल सकते थे।

रचनात्मक कार्य और दमन-नीति का आरंभ

यद्यपि लोग सुधार और सङ्गठन के निर्दोष कार्यो का प्रचार करते थे, तो भी सरकार ने पहले ही से दफा १४४ और १०८ का दौर आरभ कर दिया था।

देशबन्धुदास मैमनसिह जाने से रोक दिये गये थे और बाबू राजेन्द्रप्रसाद तथा मौ० मज़हरुल हक को आरा जाने की मनाही कर दी गई थी। श्री याकूबहुसेन कलकत्ता जाने से और लाला लाजपतराय पेशावर जाने से रोके गये थे। लाहौर मे सभाबन्दी कानून जारी कर दिया गया था। परन्तु ननकाना-काण्ड के मुकाबले मे ये कुछ भी नही थे। मार्च के पहले सप्ताह मे गुरुद्वारा मे कुछ सिक्ख इकट्ठे हुए। वह शान्तिमय समुदाय था। एकाएक उनपर धावा बोला गया और गोलियाँ चलाई गई, जिसमें लोगो के कथनानुसार १९५ और सरकार के अनुसार ७० मौते हुईं। ननकाना जैसा भीषण-काण्ड पहले कही नही हुआ था।

२८, २९ और ३० जुलाई १९२१ को बम्बई मे महासमिति की एक महत्वपूर्ण बैठक हुई। बेजवाडा-कार्यक्रम को देश मे जो सफलता मिली थी उससे चारो ओर प्रसन्नता छाईहुई थी। तिलक-स्वराज्य-कोष मे निश्चित धन से १५ लाख रुपये अधिक आ गये थे। काग्रेस-सदस्यो की सख्या आधे के ऊपर पहुच गई थी, चर्खे करीब-करीब २० लाख चलने लगे थे। इसके बाद बुनने तथा खादी सम्बन्धी विविध क्रियाओ की ओर देश का ध्यान गया। इस उद्देश्य को सिद्धि के लिए विदेशी कपडे के बहिष्कार और खादी की उत्पत्ति मे सारी शक्ति लगाने का प्रश्न देश के सामने था। महासमिति ने यह भी सलाह दी कि तमाम काग्रेसी आगामी १ अगस्त से विदेशी कपडो का उपयोग छोड दे। बम्बई और अहमदाबाद के मिल-मालिको से अनुरोध किया कि वे अपने कपडो की कीमत मजदूरो की मजदूरी के अनुपात से रखे और वह ऐसी हो जिससे गरीब भी उस कपड को खरीद सके और मौजूदा दरो से तो दाम हर्गिज न बढाये जाय। विदेशी कपडे मगानेवालो से कहा गया कि वे विदेशी कपडो के आर्डर न भेजे और अपने पास के माल को हिन्दुस्तान के बाहर खपाने का उद्योग करे।

यहा यह स्मरण रखना चाहिए कि इस समय तक काग्रेस मे पिकेटिंग के बारे मे कोई प्रस्ताव पेश नही हुआ था और इस समय भी उसे सार्वजनिक-सस्थाओ तक ही सीमित रखा गया था। व्यापारियो से प्रार्थना की गई थी कि वे नशाली चीजो का व्यापार बन्द कर दे। पूर्ण अहिसा बनाये रखने के राष्ट्र के कर्तव्य के प्रति काग्रेस सतर्क थी, फिर भी दमन-चक्र बड भयावह और विस्तृत-रूप मे जारी था। उत्तर प्रदेश मे उसका बहुत जोरशोर था। कई जगह तो गोली-काण्ड भी हुए थे। बहुत से लोग, बिना मुकदमा लडे, जेलो मे पडे हुए थे। परिस्थिति यह थी कि देश के वभिन्न भागो ने प्रान्तीय सरकारो द्वारा किये गये दमन के उत्तर मे सविनय अवज्ञा शुरू करने की माग की थी। इतने पर भी, यह प्रस्ताव पास किया गया कि सविनय अवज्ञा को उस समय तक स्थगित कर देना चाहिए जबतक कि स्वदेशी-सम्बन्धी प्रस्ताव मे उल्लिखित कार्यक्रम पूरा न हो जाय। युवराज के आगमन के सबध में महासमिति ने निश्चय किया, कि उनके आगमन के सिलसिले मे सरकारी तौर पर

अथवा अन्य किसी प्रकार के जो भी समारोह हों, उनमे कोई शरीक न हो और न किसी प्रकार को कोई सहायता दे।

१६ अगस्त को जब पटना मे कार्य-समिति की बैठक हुई तब उसमे हरदोई जिले (उत्तर प्रदेश) का वह पत्र पेश हुआ, जिसमे वहा लगाई गई दफा १४४ के विरुद्ध सविनय अवज्ञा शुरू करने को इजाजत मागी गई थी, लेकिन उसका विचार अगली बैठक के लिए स्थगित कर दिया गया। कार्य-समिति की अगली बैठक भी जल्दी ही ६,७,८,९ सितम्बर को कलकत्ता मे हुई। यह बैठक महत्त्वपूर्ण थी। धारवाड-गोली-काण्ड और मोपला-उत्पात की जाच की रिपोर्ट उसमे पेश हुई और प्रस्ताव पास हुए। इसके पश्चात ही मौलाना मुहम्मदअली को, जो कि आसाम से मद्रास जा रहे थे, १४ सितम्बर को वाल्टेयर मे गिरफ्तार किया गया। उन्हे कुछ दिनो तक एक छोटी-सी जेल मे रखा गया, फिर उन्हे रिहाई की आज्ञा सुनाई गई और दुबारा गिरफ्तार करके कराची ले जाया गया। मुहम्मदअली की गिरफ्तारी के बाद ही फौरन बम्बई मे शौकतअली पकडे गये। जब यह पता चला कि ८ जुलाई को कराची मे होनेवाली अखिल भारतीय परिषद के अवसर पर दिए गए भाषण को लेकर मामला चलाया जायगा तब गाधोजी ने, जो इस अवसर पर त्रिचनापल्ली मे थे, भाषण को स्वयं दोहराया। उन्होंने इस गिरफ्तारी को इतना महसूस किया कि सारे राष्ट्र को कार्य-समिति के इस विषय पर पास किये गये प्रस्ताव को दोहराने को आज्ञा दो। दिल्ली की ५ नवम्बर १९२१ की महासमिति की बैठक ने प्रातोय काग्रेस-कमिटियो को अपनी जिम्मेदारी पर सत्याग्रह आरम्भ करने का अधिकार दे दिया। सत्याग्रह मे कर-बन्दी भी शामिल थी। सत्याग्रह किस प्रकार आरम्भ किया जाय, इसके निर्णय का भार प्रातोय काग्रेस-कमिटियो पर छोड़ दिया गया। शर्त यह थी कि प्रत्येक सत्याग्रही ने असहयोग के कार्य-क्रम के उस अश को जो उस पर लागू होता हो, पूर्ति कर लो हो, वह चर्खा चलाना जानता हो, विदेशो कपडा त्याग चुका हो, खद्दर पहनता हो, हिन्दू-मुस्लिम एकता मे विश्वास रखता हो, खिलाफत और पजाब के अन्यायो को दूर करने और स्वराज्य प्राप्त करने के लिए अहिसा मे विश्वास रखता हो, और यदि हिन्दू हो तो अस्पृश्यता को राष्ट्रीयता के लिए कलक समझता हो।

मोपला-उत्पात

यहा उन परिस्थितियो का जिक्र करना भी आवश्यक है जिनसे मलाबार मे मोपला-उत्पात उत्पन्न हुआ था। मोपले वे मुसलमान है जिनके पूर्वज अरब थे। वे मलाबार के सुन्दर स्थान पर आ बसे थे और वही शादी-ब्याह करके रहने लगे थे। साधारणतया वे छोटा-मोटा व्यापार या खेती-बारी करते है। पर धार्मिक उन्माद की धुन मे वे इतने असहिष्णु हो जाते है कि प्राणो की या शारीरिक सुख

तक की बिलकुल चिन्ता नही करते। मोपलो के आये दिन के दगो ने 'मोपला दगा-विधान' नामक एक विशेष कानून को भी जन्म दिया था। सरकार आरम्भ से इस वात के लिए चिन्तित थी कि 'भडक जाने वाले' मोपलो मे असहयोग की चिनगारी न लगने पाये। पर आन्दोलन और सब जगहो की भाति केरल मे भी पहुचा। फरवरी मे चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य और मौ० याकूबहसन जैसे प्रमुख नेता अहिंसा का प्रचार करने के लिए उस प्रान्त मे गये। याकूबहसन ने खासतौर से कह दिया था कि असहयोग पर व्याख्यान न दूगा, परन्तु इतने पर भी उनके खिलाफ निषेधात्मक आज्ञा जारी की गई और १६ फरवरी १९२१ को चार नेता गिरफ्तार कर लिये गये। मोपले मुख्यत बाल्वनद और एरण्ड ताल्लुको मे रहते है। सरकार ने इन ताल्लुको मे दफा १४४ लगा दी। अगस्त आते-आते रग-ढग ही बदल गया और मोपलो ने मार-काट आरम्भ कर दी। शीघ्र ही उनकी हिसा ने सैनिक रूप धारण कर लिया। उन्होने बन्दूको और तलवारो से लुक-छिपकर छापे मारने आरम्भ कर दिये। अक्तूवर के मध्य मे पहले की अपेक्षा अधिक कठोर फौजी-कानून जारी किया गया। मोपले सरकारी अफसरो को लूटने और बरवाद करने के अलावा हिन्दुओ को बलपूर्वक मुसलमान बनाने, लूटने, आग लगाने और हत्या करने के भागी बने। महासमिति ने अपनी नवम्बर की बैठक मे उनके अत्याचारो का विरोध किया।

युवराज का बहिष्कार

१७ नवम्बर को युवराज भारत मे आये। नई वडी कौसिल को वही खोलने वाले थे, पर १९२० के अगस्त के वातावरण को देखकर भारत-सरकार ने ड्यूक ऑफ कनाट को बुलाया। १९२१ के नवम्बर मे युवराज को ब्रिटिश सरकार की आन बनाये रखने के लिए भेजा गया। काग्रेस ने पहले ही निश्चय कर लिया था कि युवराज की अगवानी से सम्वन्ध रखने वाले सारे उत्सव का बहिष्कार किया जाय। यही किया गया। जगह-जगह विदेशी कपडो की होली जलाई गई। युवराज के बम्बई-पदार्पण के दिन शहर मे केवल मुठभेड ही नही हुई, बल्कि चार दिनो तक दगे और खून-खच्चर होते रहे, जिनके फलस्वरूप ५३ आदमी मरे और लगभग ४०० आदमी घायल हुए। ये दगे सरोजिनी देवी और गाधीजी के रोके भी न रुके। गाधीजी ने जब तक शाति स्थापित न हो जाय, जनता को ज्यादतियो का प्रायश्चित्त करने के निमित्त ५ दिन का व्रत किया। युवराज के आगमन के फलस्वरूप देशभर मे स्वयसेवको के दल सगठित हुए। युवराज २५ दिसम्बर को कलकत्ता जाने वाले थ। बगाल-सरकार ने पहले से ही क्रिमिनल लॉ-अमेण्डमेण्ट-एक्ट के अनुसार स्वयसेवक भरती करना गैर-कानूनी करार दे दिया था। बहुत से आदमी गिरफ्तार हुए जिनमे देशबन्धुदास, उनकी धर्मपत्नी और पुत्र भी थे।

इसके बाद ही उत्तर प्रदेश और पंजाब की बारी आई। अहमदाबाद-कांग्रेस होते-होते लालाजी, पण्डित मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू और सपरिवार देशबन्धु दास जेलमे बन्द कर दिए गये।

समझौते का प्रयत्न

इसी अवसर पर कांग्रेस और सरकार मे समझौते की बातचीत चल पड़ी। भारत की राजधानी को कलकत्ते से दिल्ली ले जाते समय यह प्रबन्ध किया गया था कि वाइसराय हर साल बड़े दिनो मे तीन-चार सप्ताह कलकत्ते मे व्यतीत करेगे। युवराज के बड़े दिन भी कलकत्ते मे ही बिताने का निश्चय किया गया। पण्डित मदनमोहन मालवीय जैसे मध्यस्थ सज्जनो ने कलकत्ते मे लॉर्ड रीडिंग की उपस्थिति का उपयोग करके सरकार और जनता मे समझौता कराने की चेष्टा की। लॉर्ड रीडिंग भी राजी हो गये। २१ दिसम्बर को पण्डित मदनमोहन मालवीय के नेतृत्व मे एक शिष्ट-मण्डल वाइसराय से मिला। देशबन्धुदास कलकत्ते की अलीपुर-जेल में थे। उनसे मध्यस्थो की टेलीफोन-द्वारा बात हुई। शीघ्र ही गांधीजी से तार-द्वारा बातचीत करना आवश्यक समझा गया। वह अहमदाबाद मे थे। सरकार इस बात पर राजी हो गई कि सत्याग्रह के कैदियो को छोड दिया जाय और मार्च १९२२ मे गोलमेज-परिषद् बुलाई जाय, जिसमे कांग्रेस की ओर से २२ प्रतिनिधि हो। इस परिषद् मे सुधार-योजना पर विचार किया जाय। देशबन्धुदास की मांग यह थी कि नये कानून के अनुसार सजा पाये हुए सारे कैदियो को छोड दिया जाय। समझौते के निश्चय का फल यह होता कि लालाजी जैसे कैदी और फतवे के कैदी जिनमे मौलाना मुहम्मदअली, मौलाना शौकतअली, डॉ० किचलू और अन्य नेता शामिल थे, जेल मे ही रह जाते। परन्तु गांधीजी कराची के कैदियो का छुटकारा चाहते थे। सरकार ने आंशिक रूप मे इसे भी स्वीकार कर लिया। उन्होंने मांग पेश की कि फतवे के कैदियों को भी छोड़ा जाय और पिकेटिंग जारी रखने का अधिकार माना जाय। ये मांगे नामंजूर कर दी गईं।

अहमदाबाद-कांग्रेस : १६२१

१६२१ के दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह मे अहमदाबाद-काग्रेस हुई। अहमदाबाद का अधिवेशन कई सुधारो के लिए प्रसिद्ध है। इस बार प्रतिनिधियो के बैठने के लिए कुरसियो और बेचो का प्रबन्ध नही था। स्वागताध्यक्ष बल्लभभाई पटेल का भाषण छोटे-से-छोटा था। कम-से-कम कुल ६ प्रस्ताव पास हुए। काग्रेस की मुख्य भाषा हिन्दी थी। काग्रेस-कार्य के लिए जो तम्बू और डेरे लगे थे, उनके लिए २ लाख से ऊपर की खादी मोल ली गई थी।

गाधीजी ने एण्डरूज साहब को अहमदाबाद-अधिवेशन मे आने और एक धार्मिक संदेश देने का निमत्रण दिया था। उन्होने आना निश्चित किया,लेकिन यह भी स्पष्ट कह दिया कि मै विदेशी कपडे की होली के खिलाफ हू, क्योकि मुझे डर है कि वह हिंसा के भाव जाग्रत करेगी। अपनी मामूली पोशाक को छोडकर वह यूरोपियन लिबास मे आये, जिससे कि वह विदेशी कपडे की होली-नीति पर अपना विरोध स्पष्ट कर सके। अपने व्याख्यान मे उन्होने इसे स्पष्ट भी किया। लोगो ने उनकी बातो को बहुत आदर और प्रेम से सुना, यद्यपि वे उनके विचार से सहमत नही थे।

अधिवेशन के सभापति हकीम अजमल खॉ थे। वह हिन्दू-मुस्लिम एकता की प्रतिमूर्त्ति थे। उनके सभापतित्व मे असहयोग और उसके प्रति देश के कर्तव्य के सम्बन्ध मे मुख्य प्रस्ताव पास हुआ जिसमे कहा गया कि चूकि काग्रेस के पिछले अधिवेशन के समय से अहिसात्मक असहयोग आन्दोलन के फलस्वरूप भारतीय जनता ने निर्भयता, आत्म-बलिदान और आत्म-सम्मान के मार्ग पर पर्याप्त प्रगति करने के साथ-साथ सरकार के सम्मान को बहुत बडा धक्का पहुचाया है और चूंकि देश की प्रगति स्वराज्य की ओर तीव्र गति से हो रही है, इसलिए यह काग्रेस कलकत्ता के विशेष अधिवेशन-द्वारा स्वीकृत और नागपुर मे दोहराये गए प्रस्ताव को स्वीकार करती है और दृढ निश्चय प्रकट करती है कि जबतक स्वराज्य की स्थापना नही हो जायगी तबतक अहिसात्मक असहयोग का कार्यक्रम इस समय की अपेक्षा अधिक उत्साह से उस प्रकार चलता रहेगा जिस प्रकार प्रत्येक प्रात निश्चय करेगा। इस प्रस्ताव के अगले अशो मे लोगो को स्वयसेवक बनने के लिए प्रोत्साहित किया गया। स्वय-सेवक के लिए कुछ प्रतिज्ञाएँ भी निश्चित की गई। प्रतिज्ञाएँ इस प्रकार थी —

ईश्वर को साक्षी करके मै प्रतिज्ञा करता हूँ कि —

(१) मै राष्ट्रीय स्वयसेवक-सघ का सदस्य होना चाहता हू।

(२) जबतक मै सघ का सदस्य रहूगा तबतक वचन और कर्म मे अहिसात्मक रहूगा।

(३) मुझे साम्प्रदायिक एकता पर विश्वास है और उसकी उन्नति के लिए मै सदैव प्रयत्न करता रहूगा।

(४) मेरा विश्वास है कि भारतवर्ष के आर्थिक, राजनैतिक और नैतिक उद्धार के लिए स्वदेशी का प्रयोग आवश्यक है और मैं दूसरी तरह के सब कपड़ो को छोड़कर केवल हाथ के कते और बुने खद्दर का ही इस्तेमाल करूगा।

(५) हिन्दू होने की हैसियत से मैं अस्पृश्यता को दूर करने की न्यायपरता और आवश्यकता पर विश्वास करता हू।

(६) मैं अपने धर्म और अपने देश के लिए बिना विरोध किये जेल जाने, आघात सहने और मरने तक के लिए तैयार हू।

(७) अगर मैं जेल जाऊगा तो अपने कुटुम्बियो या जो लोग मुझ पर निर्भर है, उनकी सहायता के लिए काग्रेस से कुछ नही मागूगा।

सर्वदल-सम्मेलन : १९२२

अहमदाबाद काग्रेस के समाप्त होते ही काग्रेस के मित्रों ने, जो उसका नया कार्यक्रम स्वीकार नही कर सकते थे, काग्रेस और सरकार मे समझौता कराने की उत्सुकता प्रकट की। अभी अहमदाबाद के प्रस्तावो की स्याही सूखने भी न पाई थी कि १४, १५ और १६ फरवरी को बम्बई मे एक सर्व-दल-सम्मेलन बुलाया गया, जिसमे भिन्न-भिन्न दलो के लगभग ३०० सज्जनो ने भाग लिया। सम्मेलन के आयोजको ने एक ऐसा प्रस्ताव तैयार करने की बात सोची जिसके आधार पर अस्थायी-सधि की बात चलाई जा सके। गाधीजी ने असहयोगियो की स्थिति साफ करते हुए कहा कि मैं वैधानिक रूप से सम्मेलन मे भाग न ले सकूगा, पर मैं सम्मेलन की सहायता अवश्य करुगा। इसका कारण उन्होंने बताया कि सरकार की तरफ से दमन बराबर जारी है और जबतक सरकार के मन मे उसके प्रति पश्चात्ताप नही है तबतक ऐसे सर्वदल-सम्मेलन करने से कोई लाभ नही। सम्मेलन के बीस सज्जनो की एक विषय-समिति ने जो प्रस्ताव तैयार किया था वह सम्मेलन के इजलास मे रखा गया। गाधीजी ने फिर असहयोगियो की स्थिति स्पष्ट की। सर शकरन् नायर इस सम्मेलन के सभापति थे। उन्होने इस प्रस्ताव को ना-पसद किया और सम्मेलन छोड़कर चले गये। उनका स्थान सर एम० विश्वेश्वरय्या ने लिया। सम्मेलन ने एक ऐसा प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास किया जिसमे सरकार की दमन-नीति को धिक्कारा गया था और साथ ही यह भी सलाह दी गई थी कि जबतक समझौते की बात-चीत चलती रहे, अहमदाबाद के प्रस्ताव के अनुसार सत्याग्रह शुरू न किया जाय। इस प्रस्ताव के द्वारा एक ऐसी गोलमेज-परिषद् शीघ्र ही बुलाने की पुष्टि की गई जिसे खिलाफत, पजाब और स्वराज्य-सम्बन्धी मामलो पर समझौता करने का अधिकार हो, और साथ ही जो देश मे अनुकूल वातावरण तैयार करने के लिए क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ट-एक्ट के अतर्गत सस्थाओं

को गैर-कानूनी करार देनेवाले सारे आदेशो तथा राजद्रोहात्मक सभाबन्दी-कानून आदि को रद करने के लिए सरकार से अनुरोध करे। कमेटो के जिम्मे उन मुकदमो की जाच का भी काम सुपुर्द किया गया जिनके मातहत आन्दोलन मे भाग लेनेवालो को साधारण कानून के अनुसार सजा दी गई थी। काग्रेस की कार्य-समिति ने अपनी ७ जनवरी को बैठक मे इन प्रस्तावो को पुष्टि कर दी और सत्याग्रह उस महीने के अन्त तक के लिए मुल्तवी कर दिया, परन्तु वाइसराय ने सम्मेलन की शर्तो को मजूर करने से इकार कर दिया। इससे यह स्पष्ट हो गया कि कलकत्ते मे लॉर्ड रीडिंग ने जो आश्वासन दिया था वह कितना खोखला था।

अन्तिम चेतावनी

३१ जनवरी १९२२ को कार्य-समिति की बैठक मे बारडोली ताल्लुका-परिषद का प्रस्ताव पेश हुआ, जिस पर विचार करने के बाद ताल्लुका के लोगो को सामूहिक सत्याग्रह-द्वारा आत्म-बलिदान करने के निश्चय पर बधाई दी गई। कार्य-समिति ने भारतवर्ष के अन्य सारे भागो को सलाह दी कि वे बारडोली के साथ सहयोग करे और उस समय तक किसी प्रकार का सामूहिक सत्याग्रह न करे जबतक उन्हे महात्मा गाधी की अनुमति पहले से प्राप्त न हो जाय। इस प्रस्ताव के फलस्वरूप १ फरवरी को गाधीजो ने वाइसराय के नाम एक पत्र लिखा जिसमे कहा गया कि 'पेश्तर इसके कि बारडोली को जनता सचमुच सत्याग्रह आरम्भ करे, आपके सरकार के प्रधान अफसर होने की हैसियत से, मै आपसे एक बार फिर अनुरोध करता हू कि आप अपनी नीति मे परिवर्तन करे और उन सारे असहयोगी कैदियो को मुक्त कर दे जो अहिंसात्मक-कार्यो के लिए जेल गये है या जिनका मामला अभी विचाराधीन है। मै आपसे यह भी अनुरोध करता हू कि आप साफ-साफ शब्दो मे देश की सारी अहिसात्मक हलचल मे— चाहे वह खिलाफत के सम्बन्ध मे हो, चाहे पजाब या स्वराज्य के सम्बन्ध मे, अथवा चाहे और किसी विषय मे हो, यहा तक कि वह ताजीरात हिद या जाब्ता फौजदारी को दमनकारी धाराओ के या दूसरे दमनकारी कानूनो के भीतर क्यो न आतो हो—सरकार की तटस्थता की घोषणा कर दे। हा, अहिंसा की शर्त अवश्य हमेशा लागू रहे। मै आपसे यह भी अनुरोध करूगा कि आप प्रेस पर से कडाई उठा ले और हाल मे जो जुर्माने किये गये है उन्हें वापस करा दे। मै आपसे जो यह करने का अनुरोध कर रहा हू, सो ससार के उन सभी देशो मे किया जा रहा है, जहा को सरकारे सभ्य है। यदि आप सात दिन के भीतर इस प्रकार की घोषणा कर दे तो मै उस समय तक के लिए उग्र सत्याग्रह मुल्तवी करने की सलाह दूगा जब तक सारे कैदी छूटकर नये सिरे से अवस्था पर विचार न कर ले। यदि सरकार उक्त प्रकार की घोषणा कर दे तो मै उसे सरकार की ओर से लोकमत के अनुकूल कार्य करने की इच्छा का सबूत समझूगा और फिर

नि संकोच भाव से सलाह दूगा कि दूसरे पर हिंसात्मक दवाव न डालते हुए देश अपनी निश्चित मागो की पूर्ति के लिए और भी ठोस लोकमत तैयार करे। ऐसी अवस्था मे उग्र सत्याग्रह तभी किया जायगा जब सरकार विलकुल तटस्थ रहने की नीति का परित्याग करेगी, अथवा जब वह भारत के अधिकाश जन-समुदाय की स्पष्ट मागो को मानने से इकार कर देगी।' भारत-सरकार ने तुरन्त ही गाधीजी के इस वक्तव्य का उत्तर छपवाया, जिसमे दमन-नीति का यह कहकर समर्थन किया गया कि यह नीति बम्बई के दगो, अनेक स्थानो पर खतरनाक और गैर-कानूनी प्रदर्शनो और स्वयसेवक-दलो द्वारा हिंसा, डराने-धमकाने और दूसरे के काम-काज मे बाधा डालने के फल-स्वरूप है।

हिंसात्मक प्रवृत्ति का प्रभाव

पर काग्रेस के सिर पर एक अशुभ मंडरा रहा था। ५ फरवरी को उत्तर प्रदेश मे गोरखपुर के निकट चौरी-चौरा मे एक काग्रेस-जलूस निकाला गया। इस अवसर पर २१ सिपाहियो और एक थानेदार को भीड़ ने एक थाने मे खदेड़ दिया और आग लगादी। वे सब आग मे जल मरे। उधर ऐसे ही हत्याकाड १३ जनवरी को मद्रास मे तथा १७ नवम्बर को बम्बई मे हो चुके थे। यह देखकर १२ फरवरी को वारडोली मे कार्य-समिति की एक बैठक हुई, जिसमे इन घटनाओ के कारण सामूहिक सत्याग्रह आरम्भ करने का विचार छोड़ दिया गया। काग्रेसियो से अनुरोध किया गया कि गिरफ्तार होने और सजा पाने के लिए कोई काम न किया जाय और स्वयंसेवको का सगठन और सभाये केवल सरकार की आज्ञा को तोडने के लिए न की जाय। एक रचनात्मक-कार्यक्रम तैयार किया गया जिसमे काग्रेस के लिए एक करोड़ सदस्य भरती करना, चर्खे का प्रचार, राष्ट्रीय विद्यालयो को खोलना और मादक द्रव्य-निषेध का प्रचार और पचायत सगठित करना आदि शामिल था। २४ और २५ फरवरी को दिल्ली मे महासमिति की बैठक हुई। उसमे कार्यसमिति के वारडोली-सम्बन्धी लगभग सारे प्रस्तावो का समर्थन हुआ। हां, व्यक्तिगत रूप से किसी खास कानून के खिलाफ सत्याग्रह करने की अनुमति अवश्य दे दी गई। महासमिति ने व्यक्तिगत-सत्याग्रह की यह परिभाषा की कि व्यक्तिगत सत्याग्रह वह है जिसके अनुसार एक व्यक्ति या व्यक्ति-समूह के द्वारा किसी सरकारी आज्ञा या कानून का उल्लघन किया जाय। इस प्रस्ताव से मध्यस्थ लोगो मे हलचल मच गई। पण्डित मोतीलाल नेहरू और लाला लाजपतराय ने जेल के भीतर से लम्बे-लम्बे पत्र लिखे। उन्होने गाधीजी को किसी एक स्थान के पाप के कारण सारे देश को दण्ड देने के लिए आडे हाथो लिया। बंगाल और महाराष्ट्र तो गांधीजी पर टूट पडे। बाबू हरदयाल नाग जैसे गाधी-भक्त ने बगावत का झण्डा खड़ा किया। वारडोली के प्रस्तावो की एक-एक सतर की कड़ी आलोचना

की गई। महासमिति की बैठक मे डॉ० मुजे ने गाधीजी के विरुद्ध निंदा का प्रस्ताव पेश किया और कुछ सज्जनो ने भाषणो द्वारा उनका समर्थन भी किया। पर राय लेने के वक्त केवल उन्ही सज्जनो ने प्रस्ताव के लिए मत दिय जो गाधीजी के विरुद्ध बोले थे। गाधीजी ने इस प्रस्ताव के विरोध मे किसी को बोलने की अनुमति न दी। तूफान आया और निकल गया और गाधीजी उसी प्रकार पर्वत की भाति अचल रहे।

गांधीजी की गिरफ्तारी

पासा पड़ चुका था। अब गाधीजी को धर दबोचने की सरकार की बारी थी। कोई भी सरकार देश मे किसी नेता पर उस समय हमला नही करती जब उसकी लोक-प्रियता बढी हुई हो। वह सब्र के साथ अपना अवसर देखती रहती है और जब सेना पीछे हटने लगती है तब दुश्मन अपने पूरे वेग के साथ आ टूटता है। १३ मार्च को गाधीजी गिरफ्तार कर लिये गये, यद्यपि उनकी गिरफ्तारी का निश्चय फरवरी के अन्तिम सप्ताह मे ही कर लिया गया था। गाधीजी को राजद्रोह के अपराध मे सेशन सुपुर्द कर दिया गया। यह 'ऐतिहासिक मुकदमा' १८ मार्च को अहमदाबाद मे आरम्भ हुआ। सरोजिनी देवी ने एक छोटी-सी पुस्तक की भूमिका मे लिखा है, "जिस समय गाधीजी के कृश, शान्त और अजेय-देह ने अपने भक्त, शिष्य और सहबन्दी-शकरलाल बैंकर के साथ अदालत मे प्रवेश किया उस समय कानून की निगाह मे इस कैदी और अपराधी के सम्मान के लिए सब एक साथ उठ खडे हुए।" कानूनी अहलकारो ने तीन लेख छाटे जिनके लिए गाधीजी पर मुकदमा चलाया गया था (१) 'राजभक्ति मे दखल', (२) 'समस्या और उसका हल', (३) 'गर्जन-तर्जन'। ज्यो ही अभियोग पढकर सुनाये गये, गाधीजी ने अपना अपराध स्वीकार किया। श्री बैंकर ने भी अपने को अपराधी कबूल किया। इसके बाद गाधीजी ने अपना लिखित बयान पढा, जो निम्न प्रकार है :—

गांधीजी का वक्तव्य

"यह जो मुकदमा चलाया जा रहा है वह इग्लैण्ड की जनता को सन्तुष्ट करने के लिए है। इसलिए मेरा कर्तव्य है कि मै इग्लैण्ड और भारत की जनता को यह बता दू कि मै कट्टर सहयोगी से पक्का राजद्रोही और असहयोगी कैसे बन गया। मै अदालत को भी बताऊगा कि मै इस सरकार के प्रति, जो देश मे कानूनन कायम हुई है, राजद्रोहपूर्ण आचरण करने के लिये अपने आपको दोषी क्यो मानता हू।

"मेरे सार्वजनिक जीवन का आरम्भ १८९३ मे दक्षिण-अफ्रीका की विषम परिस्थिति मे हुआ। उस देश के ब्रिटिश अधिकारियो के साथ मेरा पहला समागम कुछ अच्छा न रहा। मुझे पता लगा कि एक मनुष्य और एक हिन्दुस्तानी के नाते

वहां मेरा कोई अधिकार नही है। मैंने यह भी पता लगा लिया कि मनुष्य के नाते मेरा कोई अधिकार इसलिए नही है, क्योकि मै हिन्दुस्तानी हूँ।

"पर मैंने हिम्मत न हारी। मैंने समझा था कि भारतीयो के साथ जो दुर्व्यवहार किया जा रहा है वह दोष एक अच्छी-खासी शासन-व्यवस्था मे यो ही आकर घुस गया है। मैंने खुद ही दिल से सरकार के साथ सहयोग किया। जब कभी मैंने सरकार में कोई दोष पाया तब मैंने उसकी खूब आलोचना की, पर मैंने उसके विनाश की इच्छा कभी नही की।

"जब १८९० मे बोअरो की चुनौती ने सारे ब्रिटिश-साम्राज्य को महान विपद में डाल दिया, उस अवसर पर मैंने उसे अपनी सेवाये भेट की—घायलो के लिए एक स्वयसेवक-दल बनाया और लेडी स्मिथ की रक्षा के लिए जो कुछ लडाइयां लड़ी गईं, उनमे काम किया। इसी प्रकार जब १९०६ मे जूलू लोगो ने विद्रोह किया तब मैंने स्ट्रेचर पर घायलो को ले जानेवाला दल सगठित किया और जबतक 'विद्रोह' दब न गया, बराबर काम करता रहा। इन दोनो अवसरो पर मुझे पदक मिले और खरीतो तक मे मेरा जिक्र किया गया। दक्षिण अफ्रीका मे मैंने जो काम किया उसके लिए लार्ड हार्डिंग ने मुझे कैसर-ए-हिन्द पदक दिया। जब १९१४ में इंग्लैंड और जर्मनी मे युद्ध छिड़ गया तब मैंने लन्दन मे हिन्दुस्तानियो का एक स्वयं-सेवक दल बनाया। इस दल में मुख्यत: विद्यार्थी थे। अधिकारियो ने इस दल के काम की सराहना की। जब १९१७ मे लार्ड चेम्सफोर्ड ने दिल्ली की युद्ध-परिषद् मे खास तौर से अपील की तब मैंने खेड़ा मे रंगरूट भर्ती करते हुए अपने स्वास्थ्य तक को जोखिम मे डाल दिया। मुझे इसमे सफलता मिल ही रही थी कि युद्ध बन्द हो गया और आज्ञा हुई कि अब और रंगरूट नही चाहिए। इन सारे सेवा-कार्यों में मेरा एक मात्र यही विश्वास रहा कि इस प्रकार मैं साम्राज्य मे अपने देशवासियो के लिए बराबरी का दर्जा हासिल कर सकूगा।

"पहला धक्का मुझे रौलट-ऐक्ट ने दिया। यह कानून जनता की वास्तविक स्वतन्त्रता का अपहरण करने के लिए बनाया गया था। मुझे ऐसा महसूस हुआ कि इस कानून के खिलाफ मुझे जोर का आन्दोलन करना चाहिए। इसके बाद पंजाब के भीषण काण्ड का नम्बर आया। इसका आरम्भ जलियावाला बाग के कत्ले-आम से और अन्त मे पेट के बल रेंगाने, खुले आम बेत लगाने और दूसरे बयान से बाहर अपमानजनक कारनामो के साथ हुआ। मुझे यह भी पता लग गया कि प्रधान-मन्त्री ने भारत के मुसलमानो को जो आश्वासन दिया कि तुर्की और इस्लाम के तीर्थ-स्थानों की पवित्रता बदस्तूर रखी जायगी, वह कोरा आश्वासन ही रहेगा।

"मैंने १९१९ की अमृतसर-कांग्रेस में अनेक मित्रों ने मुझे सावधान किया और मेरी नीति की सार्थकता मे सदेह प्रकट किया, पर फिर भी मै इस विश्वास पर अड़ा रहा कि भारतीय मुसलमानो के साथ प्रधान-मंत्री ने जो वादा किया है उसका पालन

किया जायगा, पजाब के जख्मो को भरा जायगा और नाकाफी और असन्तोष जनक होने पर भी सुधार भारत के जीवन मे एक नई आशा को जन्म देगे। फलत मै सहयोग और माटेगु-चेम्सफोर्ड-सुधारो को सफल बनाने की बात पर अडा रहा ।

"पर मेरी सारी आशाये धूल मे मिल गई । खिलाफत-सम्बन्धी वचन पूरा किया जानेवाला नही था । पजाब-सम्बन्धी अपराध पर लोपापोती कर दी गई थी। इधर अधपेट भूखे रहनेवाले भारतवासी धीरे-धीरे निर्जीव होते जा रहे है। वे यह नही समझते कि उन्हे जो थोडा-सा सुख-ऐश्वर्य मिल जाता है वह विदेशी शोषक की दलाली करने के कारण है और सारा नफा और सारी दलाली जनता के खून से निकाली जाती है । वे यह नही जानते कि ब्रिटिश-भारत मे जो सरकार कानूनन कायम है वह इसी जनता के धन-शोषण के लिए चलाई जाती है । चाहे जितने झूठे-सच्चे तर्क से काम लिया जाय, हिन्दुस्तान के साथ चाहे जैसी चालाकी की जाय असख्य गावो मे जो नर-ककाल दिखाई पड रहे है उनकी प्रत्यक्ष गवाही को किसी तरह नही झुठलाया जा सकता । यदि हमारा कोई ईश्वर है, तो मुझे इसमे तनिक भी सन्देह नही है कि इतिहास मे जो यह अपने ढग का निराला अपराध किया जा रहा है उसकी जवाबदेही इग्लैड की जनता और हिन्दुस्तान के नागरवासियो को करनी होगी । इस देश मे कानून का उपयोग विदेशी धन-शोषको के सुभीते के लिए किया गया है । पजाब के फौजी कानून के सम्बन्ध मे मैने जो निष्पक्ष जाच की है, उससे मै इस नतीजे पर पहुचता हू कि १०० पीछे ९५ मामलो मे सजा के फैसले बिलकुल खराब रहे । हिन्दुस्तान के राजनैतिक मुकदमो का तजर्बा मुझे बताता है कि दस पीछे नौ दण्डित आदमी सोलह आने निर्दोष थे । इन आदमियो का केवल इतना ही अपराध था कि वे अपने देश से प्रेम करते थे । १०० पीछे ९९ मामलो मे देखा गया है कि हिन्दुस्तान की अदालतो मे हिन्दुस्तानी को यूरोपियन के मुकाबले मे न्याय नही मिलता । मै अतिशयोक्ति से काम नही ले रहा हू । जिस-जिस भारतवासी को इस तरह के मामलो से काम पड़ा है उसका यही अनुभव है ।

"सबसे बडे दुर्भाग्य की बात यह है कि जिन अग्रेजो और उनके हिन्दुस्तानी सहयोगियो के जिम्मे इस देश का शासन-भार है वे खुद यह नही जानते कि मैने जिस अपराध का वर्णन किया है उसमे उनका हाथ है । मै अच्छी तरह जानता हू कि बहुत-से अग्रेज और हिन्दुस्तानी अधिकारी हृदय से इस बात मे विश्वास रखते है कि वे जिस शासन-व्यवस्था को अमल मे ला रहे है वह ससार की बढिया-से-बढिया शासन-व्यवस्थाओ मे से है और हिन्दुस्तान धीरे-धीरे परन्तु निश्चित रूप से उन्नति कर रहा है । वे यह नहीं जानते कि कैसे सूक्ष्म परन्तु कारामद ढग से आतक का सिक्का बैठाया गया है और किस तरह एक ओर शक्ति का

असेसरो के सामने सिर्फ दो ही मार्ग है। यदि आप लोग हृदय से समझते है कि जिस कानून का प्रयोग करने के लिए आपसे कहा गया है, वह बुरा है और मैं निर्दोष हूँ, तो आप लोग अपने-अपने पदो से इस्तीफा दे दे और बुराई से अपना सम्बन्ध अलग कर ले, अथवा यदि आपका विश्वास हो कि जिस कानून का प्रयोग करने मे आप सहायता दे रहे है वह वास्तव मे इस देश की जनता के मगल के लिए है और मेरा आचरण लोगो के अहित के लिए है, तो मुझे बडे-से-बडा दण्ड दे।"

जज ने फैसले मे लोकमान्य तिलक का दृष्टान्त देते हुए गाधीजी को छ वर्ष की सजा दी और श्री शकरलाल बैंकर को एक वर्ष की सजा और १०००) जुर्माने का दण्ड हुआ। जुर्माना न देने पर छ मास और। गाधीजी ने गिने-चुने शब्दो मे उत्तर दिया, जिसमे उन्होने कहा कि यह मेरे लिए परम-सौभाग्य की बात है कि मेरा नाम लोकमान्य तिलक के नाम के साथ जोडा गया है। उन्होने जज को सजा देने के मामले मे विचारशीलता से काम लेने के लिए और उसकी शिष्टता के लिए धन्यवाद दिया। अदालत मे उपस्थित लोगो ने गाधीजी को बिदा किया। बहुतो की आखो मे आसू भी भरे हुए थे।

गिरफ्तारी के बाद

गाधीजी की सजा के बाद तीन महीने तक कार्य-समिति काम-काज को ठीक-ठाक करती रही। खद्दर-विभाग सेठ जमनालाल बजाज के जिम्मे कर दिया गया और ५ लाख रुपये उनके हाथ मे रखने का निश्चय किया गया। मालाबार के कष्ट-निवारण के लिए कमिटी ने ८४,०००) की मजूरी दी। सेठ जमनालाल बजाज ने वकीलो के भरण-पोषण के लिए उदारतापूर्वक एक लाख रुपया और भी दिया। खद्दर के अनिवार्य 'उपयोग' का अर्थ 'पहनना' लगाया गया। असहयोगी वकीलो को एक बार फिर चेतावनी दी गई कि वे मुकदमे हाथ मे न ले, और असहयोगियो को आदेश दिया गया कि वे अपनी पैरवी न करे। एक कमिटी बनाई गई, जिसके जिम्मे मोपला-विद्रोह की जाच करने तथा हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य स्थापित कराने का काम दिया गया। अस्पृश्यता-निवारण-सबधी योजना बनाने के लिए एक कमिटी नियुक्त की गयी। ७, ८ और ९ जून १९२२ को लखनऊ मे महासमिति की बैठक हुई, जिसमे ऊपर लिखी और अन्य सिफारिशो पर विचार किया गया। वास्तव मे महासमिति का काम था असहयोग, सविनय-भग और सत्याग्रह के सिद्धान्त और व्यवहार का मूल्य फिर से निश्चित करना और उनके विज्ञान और कला का सिहावलोकन करना। देशबन्धुदास और विट्ठलभाई पटेल-जैसे चोटी के नेता, ऐसा असहयोग चाहते थे जिसका प्रवेश खास नौकरशाही के गढ मे हो सके। महासमिति ने इस बात पर विचार किया। वाद-विवाद के पश्चात् इस बात को अगस्त के लिए स्थगित कर दिया गया। साथ ही सभापति से अनुरोध किया गया

कि कुछ सज्जनो को देश का दौरा करके वर्तमान हालत की रिपोर्ट आगामी कमिटी मे पेश करने के लिए नियुक्त किया जाय। तदनुसार सभापति ने पण्डित मोतीलाल नेहरू, डा० अन्सारी, श्रीयुत विट्ठलभाई पटेल, सेठ जमनालाल बजाज, चक्रवर्ती-राजगोपालाचार्य और सेठ छोटानी को नियुक्त किया। हकीम अजमलखा को कमिटी का अध्यक्ष बनाया गया। सेठ जमनालाल ने नियुक्ति स्वीकार न की। इसलिए उनके स्थान पर श्री एस० कस्तूरी रगा आयगर को नियुक्त किया गया। सेठ छोटानी शरीक न हो सके।

बोरसद-सत्याग्रह

इसी बीच एक ऐसी घटना हो गई जिसके साथ बोरसद का नाम जुड़ा हुआ है। यह सत्याग्रह १९२२ मे बोरसद मे हुआ। कुछ दिनो से बोरसद-ताल्लुका मे देवर बाबा नाम का एक छटा हुआ डाकू उपद्रव कर रहा था। उधर एक मुसलमान डाकू उठ खड़ा हुआ और देवर बाबा के मुकाबले मे छापे मारने लगा। पुलिस लाचार थी। सरकार ने अपना सबसे बढ़िया अफसर इस काम पर नियुक्त किया, पर उसे भी सफलता न हुई। बड़ौदा-पुलिस भी उपद्रवियो का पता लगाना चाहती थी, क्योकि बड़ौदा रियासत बोरसद के बगल मे ही है। अन्त मे ताल्लुके और रियासत के पुलिस तथा रेवेन्यू अफसरो ने मिलकर अपराधियो का पता लगाने की एक तरकीब सोच निकाली। उन्होने देवर बाबा को पकड़ने के लिए मुसलमान डाकू को मिला लिया। मुसलमान डाकू इस शर्त पर राजी हुआ कि उसके पास हथियार रहे और ४-५ सशस्त्र सिपाही दिये जाय। अधिकारी राजी हो गये। चोर को पकडने के लिए चोर नियुक्त किया गया। पर पुलिस के इस नये साथी ने अपने आदमियो और हथियारो का उपयोग तहसील मे और भी धूम-धड़ाके के साथ लूटमार करने मे किया।

अपराधो की सख्या बढ़ी। अन्त मे सरकार ने सोचा कि इन अपराधो मे गाववालो की भी साजिश है। तहसील मे दण्ड-स्वरूप अतिरिक्त-पुलिस बैठाई गई और एक भारी ताजीरी-कर भी लोगो पर लगा दिया। यह कर बेरहमी के साथ वसूल किया जाने लगा। इसी बीच गुजरात के नेताओ को पुलिस और मुसलमान डाकू के समझौते का पता चल गया। श्री वल्लभभाई पटेल ने इस मामले मे सरकार को चुनौती दी। वह बोरसद गये और लोगो से कर न देने को कहा। जिन लोगो को डाकुओ ने घायल किया था उनके शरीर से गोलिया निकाली गई इससे साबित हुआ कि गोलिया सरकारी है। अब कोई सन्देह न रहा कि डाकुओ ने सरकारी गोलिया और सरकारी रायफलो का उपयोग किया है। श्री वल्लभभाई पटेल ने २०० स्वयसेवक रात दिन चौकी-पहरा देने के लिए तैनात किये। लोग कई हफ्तो से शाम से ही घरो के दरवाजे बन्द कर लेते थे। श्री पटेल ने उन्हे

दरवाजे खुले रखने को राजी किया। गाववालो ने फोटो की तसवीरो द्वारा प्रमाणित कर दिया कि ताल्लुके मे जो ताजीरी पुलिस नियुक्त की गई है उसके आदमी भीतर से स्वय दरबाजे बन्द कर देते है और बाहर से भी ताले लगा देते है, जिससे डाकुओ को भ्रम हो जाय कि घर खाली है। बाहर जहाँ जरा-सा शोर हुआ कि पुलिसवाले अपनी चारपाइयो के नीचे घुस जाते थे। फोटो की तसवीरो के द्वारा ये सारी बाते बिलकुल सच्ची साबित हुई। अब सरकार के आगे दो मार्ग थे या तो वह इस प्रकार के अभियोग लगानेवालो पर मुकदमा चलाती, या चुप्पी साधकर अपने-आपको कसूरवार साबित करती। जब इस प्रकार के अभियोग लगाये गये, तब बड़ौदा-पुलिस गावो से झटपट रियासत मे हटा ली गई। पर ब्रिटिश पुलिस उसी प्रकार बनी रही और ताजीरी-कर के लिए सामान कुर्क करती रही। इसी समय बम्बई के गवर्नर लॉर्ड लायड भारत से चले गये और उनका स्थान सर लेसली विल्सन ने लिया। जब उन्होने बोरसद की कथा सुनी तब वहा तत्काल होम-मेम्बर को भेजा जिसने सारी बातो की तसदीक कराई और उसी समय पुलिस हटा ली गई। देवर बाबा वल्लभभाई और स्वयसेवको के पहुचते ही वहा से गायब हो गया।

सत्याग्रह-समिति की रिपोर्ट

इसके बाद सत्याग्रह-कमिटी ने देश-भर का दौरा किया। लोगो का उत्साह भग न हुआ था। कमिटी के सदस्य जहा कही गये, उनका जोरदार स्वागत हुआ। कमिटी ने अपना काम समाप्त करके रिपोर्ट पेश की। आरम्भ मे महासमिति इसकी चर्चा १५ अगस्त की बैठक मे करना चाहती थी, पर ऐसा न हो सका। सत्याग्रह-कमिटी की रिपोर्ट तैयार करने मे जो-जो शक्तियाँ काम कर रही थी उनके सम्बन्ध मे विशेष सिफारिशे सक्षेप मे यहाँ दी जाती है—

१. **सत्याग्रह**—देश फिलहाल छोटे पैमाने पर या सामूहिक-सत्याग्रह के लिए तैयार नही है, जैसे किसी खास कानून का भग अथवा किसी खास कर की गैर-अदायगी। हम सिफारिश करते है कि प्रान्तीय काग्रेस-कमिटियो को अधिकार दे दिया जाय कि यदि महासमिति की सत्याग्रह-सम्बन्धी शर्ते पूरी होती हो तो वे अपनी जिम्मेदारी पर छोटे पैमाने पर सामूहिक-सत्याग्रह की मजूरी दे सकते है।

२. **कौंसिल-प्रवेश**—कौसिल प्रवेश के सबध मे डा० एम० ए० अनसारी, राजगोपालाचार्य तथा एस० कस्तूरी रगाअयगर की सिफारिश थी कि काग्रेस की नीति मे तत्सबधी किसी प्रकार का परिवर्तन न किया जाय। इसके विरुद्ध हकीम अजमल खा, प० मोतीलाल नेहरू और वल्लभ भाई पटेल का मत था कि :—

(१) असहयोगियो को उम्मीदवारी के लिए पजाब और खिलाफत की

दादरसी और तत्काल स्वराज्य-प्राप्ति के उद्देश्य से खडा होना चाहिए और अधिक-से-अधिक संख्या में पहुंचने की कोशिश करनी चाहिए।

(२) यदि असहयोगी इतनी अधिक सख्या मे पहुंच जाय कि उनके वगैर कोरम पूरा न हो सके तो उन्हे कौसिल-भवन मे जाकर बैठने के बजाय एक साथ वहा से चले आना चाहिए और फिर किसी बैठक मे शरीक न होना चाहिए। बीच-बीच मे वे कौसिल मे केवल इसलिए जायँ कि उनके रिक्त स्थान पूरे न हो सके।

(३) यदि असहयोगी इतनी सख्या मे पहुचे कि अधिक होने पर भी उनके बिना कोरम पूरा हो सकता हो, तो उन्हे हरेक सरकारी कार्रवाई का जिसमे बजट भी शामिल है, विरोध करना चाहिए और केवल पंजाब, खिलाफत और स्वराज्य-सम्बन्धी प्रस्ताव पेश करने चाहिए।

(४) यदि असहयोगी अल्पसख्या मे पहुचे तो उन्हे वही करना चाहिए जो न० २ मे बताया गया है, और इस प्रकार कौसिल के बल को घटाना चाहिए।

(५) कौसिलो के बहिष्कार के सम्बन्ध मे काग्रेस की नीति मे किसी प्रकार का परिवर्तन न होना चाहिए।

३. स्थानीय संस्थाएँ—हमारी सिफारिश है कि असहयोगी रचनात्मक कार्यक्रम को अमली शक्ल मे देने के लिए म्युनिसिपैलिटियो, जिला और लोकल बोर्डों की उम्मीदवारी के लिए खडे हो, परन्तु असहयोगी सदस्यो के वहा आचरण के सम्बन्ध मे अभी किसी खास ढग के नियम-उपनियम न बनाये जायँ।

४. स्कूल-कालेजो का बहिष्कार—स्कूल-कालेजो के सम्बन्ध मे हमारी सिफारिश है कि मौजूदा जोरदार प्रचार बन्द करके विद्यार्थियो को स्कूलो और कालेजो का बहिष्कार करने की सलाह न देनी चाहिए।

५. अदालतो का बहिष्कार—पचायते स्थापित करने की कोशिश करनी चाहिए और इस ओर लोक-प्रवृत्ति जाग्रत करनी चाहिए। हमारी यह भी सिफारिश है कि इस समय वकीलो पर जो प्रतिबध लगे हुए है, उन्हे उठा लेना चाहिए।

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य का मत था कि विशेषज्ञो की सारी बातो के सग्रह करने और उनकी जाच-पडताल करने मे कोई हानि नही है, परन्तु महासमिति द्वारा सिद्धात-रूप मे स्वीकृति होने से देश को गलतफहमी होगी और आदोलन को हानि पहुचेगी।

उक्त रिपोर्ट से स्पष्ट है कि असहयोग के पुराने और नवीन दल समान-रूप से बटे हुए थे। पर दोनो थे असहयोग के ही दल और सरकार से सहयोग करने को दोनो मे से कोई दल तैयार न था। अन्तर केवल इतना ही था कि नवीन दल असहयोग की कमान मे एक दूसरी डोरी चढाकर उससे नौकरशाही के गढ कौसिल के भीतर से ही तीर छोडने का समर्थक था। स्थानीय बोर्डों के निर्वाचन के सम्बन्ध मे जो सिफारिशे की गई थी उनकी कल्पना तो पहले ही से की जा सकती थी। काग्रेसियो और असहयोगियो ने म्युनिसिपैलिटियो और स्थानीय बोर्डों के लिए खडा होना आरम्भ कर दिया था। सफल होने पर वे अस्पतालो मे खद्दर और नौकरो के लिए खादी की वर्दियो के व्यवहार पर जोर देते थे, आफिसो पर राष्ट्रीय-झण्डा फहराने का आग्रह करते थे, म्युनिसिपल स्कूलो मे चर्खा और हिन्दी के प्रचार को सिफारिश करते थे और यदा-कदा गवर्नरो और मिनिस्टरो के आगमन का बहिष्कार करने पर बल देते थे। इस प्रकार उन्होने सरकार की नाक मे दम करना आरम्भ कर दिया था। पर इन सारी कार्रवाइयो से केवल उनके रुख का पता लगता था, कोई ठोस काम होता नजर नहीं आता था।

महासमिति की जो बैठक १५ अगस्त को होनेवाली थी, वह नवम्बर तक के लिए रुक गई। उस महीने की २०, २१, २२, २३ और २४ तारीख को कमिटी की ऐतिहासिक बैठके हुई। काग्रेस-कमिटी की चर्चा क्या थी, एक प्रकार का टूर्नामेण्ट था, जिसमे अपने-अपने पक्ष के योद्धाओ का ध्यानपूर्वक छाटा गया था। पहले दिन की बैठक इण्डियन एसोसियेशन के कमरो मे हुई, पर वहा खुली हवा न मिलती दिखाई दी, इसलिए बाकी चार दिन की बैठक १४८, रसा रोड पर देशबन्धु चित्तरजन दास के भव्य-भवन मे शामियाने के नीचे हुई। पाच दिन की उधेडबुन, नुकताचीनी, तानाजनी और वाक्-प्रहारो के बाद कमिटी ने निर्णय किया कि देश सामूहिक सत्याग्रह के लिए तैयार नही है। पर कमिटी ने प्रान्तीय काग्रेस-कमिटियो को अधिकार दे दिया कि यदि कोई मौका आ पडे तो वे अपनी जिम्मेदारी पर सीमित रूप से सत्याग्रह की मजूरी दे सकती है, बशर्ते कि उस सम्बन्ध मे लगाई गई सारी शर्ते पूरी हो। कौसिल-प्रवेश का अधिक जटिल प्रश्न गया-काग्रेस के लिए मुल्तवी कर दिया गया। इसी प्रकार अग्रेजी माल के बहिष्कार का प्रश्न, स्थानीय बोर्डो आदि मे प्रवेश करने का प्रश्न, स्कूलो-कालेजो और अदालतो के बहिष्कार का प्रश्न, आत्म-रक्षा करने के अधिकार का प्रश्न—ये सब भी मुल्तवी कर दिये

गये। बोर्डो मे प्रवेश के प्रश्न को इसलिए स्थगित किया गया कि रचनात्मक कार्य मे बाधा न पड़े। इस कार्य मे काग्रेस के १६,०००) खर्च हुए।

गया-कांग्रेस : १९२२

१९२२ की गया-काग्रेस हर प्रकार से अपने ढग की निराली थी। प्रतिनिधियो मे जिस बात को लेकर सबसे ज्यादा हो-हल्ला मचा और सबसे अधिक मत-भेद उपस्थित हुआ वह कौसिल-प्रवेश-सम्बन्धी-समस्या थी। कुछ लोगो का विचार था कि यदि कौसिल-प्रवेश की इजाजत दे दी गई तो असहयोग की योजना भग हो जायगी, इसलिए वे इस बात पर जोर देते थे कि कौसिल-प्रवेश-सम्बन्धी प्रतिबन्ध न उठाया जाय। कुछ ऐसे बुद्धिशाली व्यक्ति थे, जो कहते थे कि हम कौसिलो मे जाकर न शपथ लेगे, न स्थान ग्रहण करेगे और इस ढग से शत्रु को पराजित कर देगे। इसके बाद उन जोशीले राजनीतिज्ञो की बारी थी, जो कहते थे कि हम शेर को उसकी माद मे जाकर पराजित करेगे, रुपये की मजूरी न देगे, धिक्कार का प्रस्ताव पास करेगे और सरकारी यत्र का चलना असम्भव कर देगे। इस प्रकार यद्यपि असहयोग की नाव को दूसरी ओर ले जाने के विरुद्ध अनेक शक्तिया जुट गई थी, तो भी एस० श्रीनिवास आयगर और पण्डित मोतीलाल नेहरू की प्रतिभा के रहते हुए वह नाव अपने रास्ते चलती रही। एस० श्रीनिवास आयगर ने सशोधन पेश किया कि काग्रेसी उम्मीदवारी के लिए खडे हो, परन्तु कौसिलो मे स्थान ग्रहण न करे। पण्डित मोतीलाल नेहरू कुछ शर्तो के साथ इस पर रजामन्द हो गये।

जिस समय देशबन्धु दास ने गया-काग्रेस का सभापतित्व ग्रहण किया था उस समय उनकी जेब मे वास्तव मे दो महत्त्वपूर्ण कागज थे. एक था सभापति का भाषण और दूसरा था सभापति-पद से त्याग-पत्र, जिसके साथ उनकी स्वराज्य-पार्टी के नियम-उपनियम भी थे। किसी को आशा न थी कि दास-जैसे व्यक्तित्व का पुरुष, पण्डित मोतीलाल नेहरू और श्री विट्ठलभाई पटेल-जैसे चोटी के आदमियो का सहारा पाकर भी जनता के आगे चुपचाप सिर झुका देगा और कौसिल बहिष्कार के लिए राजी हो जायगा। फलत. एक पार्टी बनाई गई और कार्यक्रम तैयार किया गया। श्री दास के जिम्मे बगाल की प्रान्तीय कौसिल पर कब्जा करने का काम रहा और प० मोतीलाल नेहरू को दिल्ली और शिमला पर धावा बोलने का काम दिया गया।

बम्बई में समझौता

गया मे अपरिवर्त्तनवादियो की जो विजय हुई थी वह स्थायी साबित नही हुई। १ जनवरी १९२३ को महासमिति ने निश्चय किया कि ३० अप्रैल १९२३ तक २५ लाख रुपया एकत्र किया जाय और ५०,००० स्वयसेवक भरती किये

जाय। कार्य-समिति के जिम्मे यह सारा काम सौंपा गया। परन्तु सबसे अधिक जरूरी बात सभापति देशबन्धुदास का त्याग-पत्र था। उन्होने पहले ही विषय-समिति को अपनी स्वराज्य-पार्टी वाली योजना बता दी थी, इसलिए पद-त्याग आवश्यक ही था। पर त्याग-पत्र पर विचार महासमिति की २७ फरवरी १९२३ को इलाहाबाद मे होनेवाली बैठक के लिए स्थगित कर दिया गया। इस बैठक मे आपस मे समझौता करके दोनो दलो ने निश्चय किया कि ३० अप्रैल तक किसी ओर से कौंसिल-सम्बन्धी प्रचार-कार्य न हो और इस बीच अपने-अपने कार्यक्रम का शेष भाग दोनो दल पूरा करने को स्वतन्त्र रहे। कोई किसी के काम मे दखल न दे। ३० अप्रैल के बाद जैसा तय हो उसके अनुसार दोनो दल अपना रवैया रखे। इस समय तक मौलाना अबुलकलाम आजाद और पण्डित जवाहरलाल नेहरू जेल से छूट चुके थे। महासमिति ने यह समझौता करने के लिए दोनो को धन्यवाद दिया।

रचनात्मक कार्यक्रम

इधर कांग्रेस का रचनात्मक कार्यक्रम जोर-शोर से फैलाया गया। इस काम के लिए जो शिष्ट-मडल नियुक्त किया गया था उसमें बाबू राजेन्द्रप्रसाद, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, सेठ जमनालाल बजाज और श्री देवदास गाधी थे। इस शिष्ट-मडल ने देशभर का दौरा किया और तिलक स्वराज्य-कोष के लिए काफी चन्दा जमा किया। मई १९२३ को बम्बई मे हुई कार्य-समिति की बैठक मे इसने अपने कार्य की रिपोर्ट पेश की। १९२३ की २५, २६ और २७ मई को कार्य-समिति की बैठक के साथ महासमिति की एक बैठक हुई, जिसमे तय किया गया कि गया-कांग्रेस के अवसर पर मतदाताओ मे कौंसिल-प्रवेश-प्रचार करने का जो प्रस्ताव पास किया गया था उस पर अमल न किया जाय। इस बैठक मे मध्यप्रांत के स्वयसेवको को नागपुर मे झण्डा-सत्याग्रह जारी रखने के लिए बधाई दी गई और साथ ही देश के स्वयसेवको को आवश्यकता पडने पर नागपुर-सत्याग्रह मे भाग लेने के लिए तैयार रहने का आदेश दिया गया।

बम्बई के उक्त समझौते से कई प्रातीय कांग्रेस-कमिटिया स्वभावत ही क्षुब्ध हुई। बाद को नागपुर मे महासमिति की बैठक हुई, जिसमे २६ मई के समझौते वाले प्रस्ताव को जायज और उपयुक्त समझा गया और इस बात की जोरदार शब्दो मे घोषणा की गई। पर इसी कमिटी मे अचानक एक ऐसा प्रस्ताव पेश किया गया और पास हुआ जिसका नोटिस पहले से नही दिया गया था। इस प्रस्ताव के अनुसार सितम्बर मे बम्बई मे कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन करने का निश्चय किया गया, जिसमे कौंसिल-बहिष्कार के प्रश्न पर विचार किया जाय। मौलाना अबुलकलाम आजाद को इसका सभापति चुना गया और कार्य-समिति को इस सम्बन्ध मे जरूरी कार्रवाई करने का अधिकार सौंपा गया।

नागपुर का झंडा-सत्याग्रह

इसी बीच नागपुर-सत्याग्रह ने भीषण रूप धारण कर लिया। नागपुर की पुलिस ने १ मई १९२३ को १४४ धारा के अनुसार सिविल लाइन्स मे राष्ट्रीय झण्डे समेत जलूस ले जाने का निषेध कर दिया। स्वयसेवको ने कहा—'हमे अधिकार है, जहा चाहे झण्डा ले जायेगे।' बस, गिरफ्तारियाँ और सजाएँ आरम्भ हो गई। बात-की-बात मे इस घटना ने आन्दोलन का रूप धारण कर लिया। महासमिति ने आन्दोलन को सफल बनाने के लिए उसकी सहायता करने का निश्चय किया और साथ ही देश को आह्वान किया कि आगामी १८ तारीख को गाधी-दिवस मनाए जाने के बदले उसे 'झण्डा-दिवस' कहकर मनाया जाय। प्रान्तीय काग्रेस-कमिटियो को आज्ञा हुई कि उस दिन जलूस निकालकर जनता-द्वारा झडा फहराएँ। इस समय तक इस सत्याग्रह के सिलसिले मे सेठ जमनालाल बजाज भी गिरफ्तार हो चुके थे। कमिटी ने सेठजी को उनकी सजा पर बधाई दी। सेठजी की मोटर ३,०००) जुर्माना न देने के कारण कुर्क कर ली गई। पर नागपुर मे उसके लिए कोई बोली लगानेवाला न निकला और अन्त मे उसे काठियावाड ले जाया गया। नागपुर के इस आन्दोलन मे भाग लेने के लिए कार्य-समिति और महासमिति ने देश का जो आह्वान किया था उसके उत्तर मे देश के कोने-कोने से सत्याग्रही आकर गिरफ्तार होने लगे। इस प्रकार नागपुर-झडा-सत्याग्रह शीघ्र ही एक अखिल-भारतीय आन्दोलन हो गया। ऐसी स्थिति मे श्री वल्लभभाई पटेल से १० जुलाई से उसकी जिम्मेदारी लेने का अनुरोध किया गया। वल्लभभाई पटेल ने १८ तारीख के लिए जलूस का मार्ग निश्चित कर दिया। दफा १४४ अभी वदस्तूर लगी हुई थी। पर इतने पर भी १८ तारीख को जलूस को जाने दिया गया। बाद को इस विषय को लेकर खूब हो-हल्ला मचा।

प्रवासी भारतीयों की समस्या

जुलाई, अगस्त और सितम्बर मे प्रवासी भारतीयो के सम्बन्ध में कुछ महत्त्वपूर्ण हल-चल हुई जिसकी ओर काग्रेस का ध्यान गया। केनिया मे अवस्था दिन-पर-दिन बुरी होती जा रही थी। वहा के प्रवासी भारतीयो की अवस्था बहुत दिनो से असन्तोषजनक थी। इस उपनिवेश को उपजाऊ बनाने का श्रेय भारतीय मजदूरो और भारतीय पूजी को था। कई मामलो मे भारतीयो ने ही सबसे पहले कदम आगे बढाया था। परन्तु भारतवासियो को इस उपनिवेश के हाइलेड्स (ऊंची भूमि) की खेती योग्य जमीने देने की मुमानियत कर दी गई थी। इससे भारतीयो मे अधिक असन्तोष फैला। तत्कालीन औपनिवेशिक मन्त्री ने १९२३ के आरम्भ मे केनिया के गवर्नर को बुला भेजा। गवर्नर के साथ अन्तिम समझौते की शर्तो पर चर्चा करने के लिए यूरोपियन और भारतीय प्रतिनिधि भी गये।

भारतीय (वडी) कौंसिल ने भी एक प्रतिनिधि मण्डल भेजा, जिसके सदस्य माननीय श्रीनिवास शास्त्री थे। केनिया के प्रतिनिधि-मण्डल ने एण्डरूज साहब से अपने साथ चलने का आग्रह किया। अगस्त १९२३ मे काग्रेस ने इस मामले मे निश्चयात्मक कार्रवाई आरम्भ की। इस विषय पर महासमिति ने एक प्रस्ताव पास किया और कहा कि २६ अगस्त को देश भर मे हड़ताल की जाय और जगह-जगह सभाएँ की जाय।

दिल्ली मे विशेष अधिवेशन

उक्त दोनो घटनाओ के वाद ही काग्रेस का विशेष अधिवेशन सितम्बर के तीसरे सप्ताह मे वम्बई मे न होकर दिल्ली मे हुआ। इसके सभापति मौलाना अबुलकलाम आजाद थे। कौंसिल-प्रवेश का समर्थन करनेवाले दल ने बिना कठिनाई के काग्रेस से यह अनुमति-सूचक प्रस्ताव पास करा लिया कि जिन काग्रेसवादियो को कौंसिल प्रवेश के विरुद्ध धार्मिक या और किसी प्रकार की आपत्ति न हो उन्हे अगले निर्वाचनो मे खडे होने और अपनी राय देने के अधिकार का उपयोग करने का आजादी है, इसलिए कौंसिल-प्रवेश के विरुद्ध सारा प्रचार वन्द किया जाता है। साथ हा यह भी कहा गया कि रचनात्मक कार्य-क्रम को पूरा करने मे दूनी शक्ति से काम लेना चाहिए। रामभजदत्त चौधरी के स्वर्गवास, जापान के भूकम्प, महाराजा नाभा के जबर्दस्ती गद्दी छोडने और विहार, कनाड, और बर्मा मे वाढ आने के सम्वन्ध मे सहानुभूति और समवेदना-सूचक प्रस्ताव पास किये गये। एक कमिटी नियुक्त की गई जिसके सुपुर्द सत्याग्रह-सम्वन्धी आन्दोलन सगठित करने ओर विभिन्न प्रान्तो की तत्सम्वन्धी हलचल को व्यवस्थित करने का काम हुआ। एक और कमिटी नियुक्त हुई जिसके जिम्मे काग्रेस के विधान मे परिवर्तन-परिवर्द्धन करने का काम हुआ। एक दूसरी कमिटी राष्ट्रीय-पैक्ट तैयार करने के लिए नियुक्त की गई। समाचार-पत्रो को चेतावनी दी गई कि साम्प्रदायिक मामलो मे वडे सयम से काम लिया जाय। अकाली लोग दमन का जिस साहस और अहिंसा के साथ सामना कर रहे थे, उसके लिए उन्हे एक वार फिर वधाई दी गई। खद्दर प्रचार के द्वारा विदेशी कपडे का वहिष्कार करने पर जोर दिया गया और एक कमिटी देशी माल वनाने वालो को प्रोत्साहन और अग्रेजी माल का वहिष्कार करने के लिए सर्वोत्तम उपाय निश्चित करने के उद्देश्य से नियुक्त की गई। झण्डा-सत्याग्रह-आन्दोलन को उसकी सफलता के लिए वधाई दी गई और जेल से छूटे नेताओ का, खास कर लालाजी और मौलाना मुहम्मदअली का, स्वागत किया गया।

केनिया के सम्वन्ध मे क्रोध और तुर्की के सम्वन्ध मे हर्ष प्रकट किया गया। दो कमिटिया और भी नियुक्त की गई जिनमे से एक के सुपुर्द हिन्दू-मुस्लिम-कलह

को रोकने का काम, और दूसरी के सुपुर्द शुद्धि और शुद्धि-विरुद्ध आन्दोलन में बल का प्रयोग करने की सत्यता की जांच करने का काम हुआ। शान्ति और सुव्यवस्था कायम रखने के लिए रक्षक दल बनाने और शारीरिक बल की वृद्धि करने के सम्बन्ध में जोर दिया गया।

कोकनडा-कांग्रेस : १९२३

कांग्रेस का आगामी अधिवेशन कोकनाडा में होना निश्चित हुआ। कुछ अपरिवर्त्तनवादियों को अब भी थोड़ी-बहुत आशा थी कि दिल्ली ने जो कुछ कर डाला है, कोकनडा उसे चाहे बिलकुल मिटा न सके, क्योंकि उस समय तक चुनाव समाप्त हो जायगा, फिर भी वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर उसी पुराने असहयोग का झण्डा खड़ा रखा जायगा। मौलाना मुहम्मदअली को सभापति चुना गया। कोकनडा-कांग्रेस में खूब कश-म-कश रही। अपरिवर्त्तनवादी-दल के कुछ प्रसिद्ध नेता शरीक नहीं हुए। राजेन्द्र बाबू अस्वस्थता के कारण कोकनडा-कांग्रेस में न जा सके और चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने दिल्ली के प्रस्ताव पर अपना प्रभाव डाला। श्री वल्लभभाई उपस्थित थे, परन्तु दिल्ली के प्रस्ताव के समझौते के सम्बन्ध में दिल्ली-अधिवेशन के अवसर पर उनकी स्वीकृति बंगाल के वृद्ध जर्जर बाबू श्यामसुन्दर चक्रवर्ती ने हासिल कर ली थी। उन्हें देश-निर्वासन और कारावास, निर्धनता और दरिद्रता में अनेक वर्ष बिताने पड़े थे। उन्होंने कोकनडा-कांग्रेस के प्रबल समुदाय को अपने कौंसिल-प्रवेश-विरोधी भाषण से थर्रा दिया। परन्तु पासा पड़ चुका था। कौंसिल-बहिष्कार के भाग्य का निपटारा हो चुका था।

गये, जो पास हुए। सरकार ने शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबधक-कमिटी के अकाली-दल पर आक्रमण करके भारतीयो के अहिंसात्मक उद्देश्य से एकत्र होने के अधिकार को जो चुनौती दी थी उसे काग्रेस ने स्वीकार कर लिया और उनके वर्तमान सघर्ष मे उनका साथ देने और उन्हे आदमी तथा रुपये और हर प्रकार की सहायता देने का निश्चय किया।

गुरुद्वारा-आन्दोलन

इसी वर्ष एक और महत्त्वपूर्ण घटना हो गयी। यह गुरुद्वारा-आन्दोलन था। अग्रेजो ने पजाब को, १८४६ मे ब्रिटिश-भारत में मिला लिया था। इस रद्दोबदल के अवसर पर सिक्ख-धर्म के केन्द्र और गढ-स्वरूप अमृतसर के दरबार साहब के बदोवस्त मे गडबड़ मची हुई थी। अमृत छके हुए सिक्खो की एक कमिटी को ट्रस्टी बनाया गया था और सरकार द्वारा नियुक्त व्यक्ति सरबराह या अभिभावक बना था। एक मैनेजर नियुक्त किया गया था जिसके हाथो से हर साल लाखो रुपये निकलते थे। परन्तु १८८१ मे यह कमिटी भग हो गई और मैनेजर के हाथ मे ही सारे अधिकार आ गये। नियत्रण के अभाव मे गैर-जिम्मेदारी और आचार हीनता का जन्म हुआ। एक ओर मैनेजर और ग्रन्थियो और दूसरी ओर सिक्ख-जनता मे आये दिन मुठभेड होने लगी। सरकार परेशान थी कि क्या करे। १९२० के अन्त मे एक कमिटी बनाई गई जो बाद को शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबन्धक कमिटी हुई। इस कमिटी के पहले सभापति सरदार सुन्दरसिंह मजीठिया हुए जो कुछ दिनो के बाद ही पजाब सरकार की कार्य-समिति के सदस्य नियुक्त किये गये। सुधारक सिक्ख 'अकाली' कहलाते थे। उन्होने अपेक्षा-कृत अधिक ऐतिहासिक गुरुद्वारो को अपने हाथ मे कर लिया। तरन-तारन मे फसाद हो गया, कई सिक्ख घायल हुए और दो मरे। १९२१ के आरम्भ मे ननकानासाहब मे निर्दोष यात्रियो की हत्या हो ही चुकी थी। पुलिस की निगाह मे यह आन्दोलन गुरुद्वारो के साथ प्राप्त होनेवाली शक्ति और सामर्थ्य को अपने कब्जे मे करने के लिए था। इस दृष्टिकोण से महन्तो को बढावा मिला। इन महन्तो मे वे लोग भी थे जिन्होने अकालियो से समझौता कर लिया था। अब वे इस समझौते से हट गये। सरकार सुधारक सिक्खो के अन्धा-धुन्ध दमन पर उतारू थी। १९२१ के मई मास मे सैकडो सिक्ख जेलो मे ठूस दिये गये और प्रतिष्ठा-हीन महन्तो को फिर अधिकार दिया गया। फलत जहा तक इस सुधार का सम्बन्ध था, शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रवन्धक-कमिटी ने १९२१ की मई मे सरकार से असहयोग करने का प्रस्ताव पास कर दिया।

सरकार जो गुरुद्वारा-बिल पास कराना चाहती थी, वह सिक्खो मे नरम-दल-वालो और सहयोगियो तक को मजूर न हुआ। फलत उसका विचार छोड दिया गया। सिक्खो पर एक निश्चित लम्बाई से अधिक बडी कृपाणे पहनने के लिए

मुकदमे चलाये गये। पजाब-प्रान्तीय-काग्रेस-कमिटी ने १० जुलाई १९२१ को इसका विरोध किया, और महीने के अन्त मे सिक्खो को जेल से छोड दिया गया। झब्बा के भाई करतारसिंह और भूचड के भाई राजासिंह को १८ और ७ वर्ष का वर्बरतापूर्ण कारावास-दण्ड दिया गया। २८ अगस्त १९२१ को कौसिलो के सिक्ख सदस्यो से इस्तीफा देने के लिए कहा गया। सरदारबहादुर सरदार महतावसिंह बैरिस्टर ने गुरुद्वारा-आन्दोलन के सम्बन्ध मे सरकार की नीति के विरोध मे सरकारी वकालत और पजाब-कौसिल के उपाध्यक्ष के पद से इस्तीफा दे दिया। १९२१ के सितम्बर के आरम्भ मे उपर्युक्त लम्बी सजा पाये हुए दोनो सिक्खो तथा अन्य कई को छोड दिया गया। परन्तु पजाब प्रान्तीय काग्रेस-कमिटी के प्रधान-मत्री सरदार शार्दूलसिंह कवीश्वर को, जिन्हे १९२१ के जून मे १२४ ए धारा के अनुसार पाच वर्ष का सपरिश्रम कारावास हुआ था, और गुरुद्वारे के अन्य कर्यकर्त्ताओ को न छोड़ा गया। अचानक १९२१ की ७ नवम्बर को सरकार ने अमृतसर के दरबार-साहब की चाबिया छीन ली, जिसके फल-स्वरूप गुरु नानक के जन्म-दिवस पर सजावट न हो सकी। सरकार की ओर से एक मैनेजर नियुक्त किया गया, पर उसे शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबधक-कमिटी ने चार्ज न लेने दिया और उसे इस्तीफा देना पड़ा। बस, इसके बाद से चाबिया ही सारे झगडे की जड़ बन गई और जन-सभाओ-द्वारा उसका विरोध किया जाने लगा। सरकार ने राजद्रोही सभाबन्दी-कानून जारी किया और सरदार खड्गसिह और सरदार महताबसिंह को कडी कैद की सजा दी गई। गुरु गोविन्दसिंह का जन्म-दिवस ५ जनवरी १९२२ को था। सरकार ने चाबिया उस समय तक के लिए सौपने की तैयारी दिखाई जबतक कि उसके द्वारा दीवानी अदालत मे दायर किये गये मुकदमे का फैसला न हो। शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबन्धक-कमिटी ने चाबिया लेने से इन्कार कर दिया। जब २०० सिक्ख-कार्यकर्ता गिरफ्तार हो चुके तब सरकार ने हाथ रोक लिया और सारे कैदियो को बिना किसी शर्त के छोड़ दिया। १९२२ की ११ जनवरी को चाबिया भी सौप दी गई; पर पण्डित दीनानाथ को न छोड़ा गया। फलतः राजद्रोही सभाबन्दी-कानून के विरुद्ध फिर सत्याग्रह जारी हुआ और १९२२ की ८ फरवरी को शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबन्धक-कमिटी की प्रबध-समिति के सारे सदस्य एक सभा मे बोले। अन्त मे पण्डित दीनानाथ को भी रिहा कर दिया गया और कोमागाटामारू (१९१४) वाले बाबा गुरुदत्तसिह को भी छोड दिया गया।

अकाली काली पगड़ी पहनते थे। १९२२ के मार्च मास के दूसरे सप्ताह से, पहले से ही निश्चित किये गये कार्यक्रम के अनुसार, पंजाब के १३ चुने हुए जिलो मे और पटियाला और कपूरथला की रियासतो में अकाली सिक्खो को एक-साथ पकडना आरम्भ कर दिया गया। १५ दिन के भीतर-भीतर १७०० काली पगड़ी वाले सिक्ख गिरफ्तार कर लिये गये। शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबन्धक-कमिटी और

पजाब-प्रान्तीय काग्रेस-कमिटी के सभापति सरदार खडगसिह को ५ वर्ष का कठिन कारावास-दण्ड दिया गया। मार्च १९२२ के आरम्भ मे सरकार ने कहा—'कृपाण तलवारे है जिनके बनाने के लिए लाइसेन्स की जरूरत है।' लोगो को निर्देश किया गया कि सरकार-द्वारा बताये गये नये ढग से कृपाण पहनी जाय। फौजी सिक्खो का कृपाण धारण करना भी जुर्म माना गया। कुछ को गिरफ्तार करके ४ वर्ष से लेकर १८ वर्ष तक की कडी सजा दी गई। कोमागाटामारूवाले बाबा गुरुदत्त-सिह को फिर गिरफ्तार कर लिया गया और १९२२ मे उन्हे ५ वर्ष का निर्वासन-दण्ड मिला। रौलट-कानून के विरुद्ध आन्दोलन मे प्रसिद्धि पाये हुए मास्टर मोतासिह को ८ साल की सजा मिली।

चारो ओर क्रिमिनल लॉ-अमेण्डमेण्ट-ऐक्ट का दौर-दौरा था और जमानत सम्बन्धी धाराएँ उसकी सहायिका थी। पण्डित मदनमोहन मालवीय पजाब गये और राजा नरेन्द्रनाथ की अध्यक्षता मे कमिटी नियुक्त कराई, जिसके जिम्मे सरकारी ज्यादतियो, गैर-कानूनी कार्रवाइयो और निर्दयता के सम्बन्ध मे जाच करना था। १९२२ की चौदह मई को पजाब-सरकार ने एक विज्ञप्ति निकाल कर धार्मिक सुधारको को चेतावनी दी कि वे उन लोगो के, जिनका सुधार से कोई वास्तविक सम्बन्ध नही है, बदअमनी फैलानेवाले और गैर-कानूनी कामो से अलग रहे। १५ जून १९२१ तक १९०० से २००० तक सिक्ख गिरफ्तार किये जा चुके थे।

इसी अवसर पर गुरु-का-बाग-काण्ड (१९२२) हुआ। इस काण्ड के सिल-सिले मे जो ज्यादतिया की गई उनकी जाच पजाब-सरकार के एक यूरोपियन सदस्य ने की। एण्डरूज साहब जैसे व्यक्तियो ने इन ज्यादतियो के गम्भीर स्वरूप की पुष्टि की। उन्होने कहा, "अब तक मैने जितने हृदय-विदारक और करुणाजनक दृश्य देखे है, यह उनमे सबसे बढकर है। अहिसा की पूरी विजय हुई है। ये लोग सचमुच शहीद हो रहे है।" पण्डित मोतीलाल नेहरू ने कहा —"एक घेरा डाल दिया गया था और कई दिन तक काटेदार लोहे के तारो को भेदकर कोई अन्न का दाना भीतर न ले जा सका। जो ले गये, उन्हे बुरी तरह पीटा गया। जब मेरी मोटरकार की गुरुद्वारे के द्वार पर तलाशी ले ली गई, तब कही उस घेरे के एक छोटे-से प्रवेश-द्वार मे जाने की इजाजत मिली।"

इस सिलसिले मे २१० गिरफ्तारिया हुई। एक ही आनरेरी मजिस्ट्रेट ने ५ इजलासो मे १,२७,०००) के जुर्माने किये। स्वामी श्रद्धानन्द को १८ महीने की सजा मिली। २२ अक्टूबर को एक जत्था अमृतसर से गुरु-का-बाग को रवाना हुआ। इस जत्थे मे १०१ फौजी पेन्शनयाफ्ता लोग थे, जिनमे से ५५ नान-कमिशण्ड अफसर थे और बाकी सिपाही थे। ये लोग मारू बाजा बजाते रवाना हुए। इनके साथ ५०,००० आदमी दर्शक-रूप मे थे। पजा साहब के स्टेशन से होकर एक रेलगाडी गुजरनेवाली थी, जिसमे फौजी कैदी थे। स्टेशन पर कुछ लोग उनके

लिए भोजन की सामग्री लिये बैठे थे। जब उन्हे मालूम हुआ कि गाड़ी स्टेशन पर न रुकेगी तव वे पटरियो पर लेट गये। रेलगाड़ी तब भी न रोकी गई। फलतः २ आदमी मरे और ११ घायल हुए। कुछ दिनो बाद पीटना बन्द कर दिया गया और गिरफ्तारियाँ आरम्भ हुई। जत्थो के मुखियो को कड़ी सजाये मिली। पर अभी इससे भी बुरी घटनाये आने को थीं। जनता के दबाव और ८ मार्च १९२३ के कौंसिल के प्रस्ताव के उत्तर मे अकालियो को धीरे-धीरे छोडा जाने लगा। १७० अकालियो को रावलपिण्डी मे छोडा गया, पर उन्हे बुरी तरह मारा-पीटा गया। कसूर यह बताया गया कि वे रेलवे-स्टेशन से बताये रास्ते से होकर नही गये थे। फौजी सिपाही और घुडसवार—सबने एक साथ मिलकर उन्हे तितर-बितर किया। १२८ व्यक्तियो को सगीन चोटे आई। ३ मई से रावलपिण्डी ने पूर्ण हडताल मनानी आरम्भ की। जब पजाब-कौसिल मे इस मामले की जाच करने के लिए एक कमिटी नियुक्त करने का सवाल उठाया गया तब सरकार के चीफ सेक्रेटरी ने बडी शान्ति से सलाह दी कि हटर-कमिटी की भाति पुराने जख्मो को दुबारा खोलने का नतीजा ठीक न होगा। गुरु-का-बाग-काण्ड की दुखदायी घटनाओं की स्मृति को जितनी जल्दी भुला दिया जाय, अच्छा है। परन्तु अकालियो के दुर्दिन अभी पूरे न हुए थे। १९२३ के मध्य मे महाराजा नाभा ने गद्दी त्याग दी, पर शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबधक-कमिटी ने इसे महाराजा को गद्दी से उतारा जाना समझा और उन्हे दुबारा गद्दी पर बिठाने के लिए नाभा रियासत के जैतो नामक स्थान पर और दूसरी जगहो पर सभाये आदि करके एक आन्दोलन खड़ा कर दिया। जो भाषण दिये गये उन्हे राजद्रोहात्मक समझा गया और वक्ताओ को अखण्ड पाठ पढते-पढते गिरफ्तार कर लिया गया।

इस प्रकार नाभा-रियासत के जैतो नामक स्थान पर अखण्ड पाठ के ऊपर झगड़ा शुरू हो गया और कुछ समय तक २५-२५ सिक्खो के जत्थे रोज जैतो भेजे जाने लगे। बाद को फरवरी मे ५०० आदमियो का शहीदी जत्था भेजा गया। डा० किचलू और आचार्य गिडवानी इस जत्थे के साथ दर्शक की हैसियत से गये। जैतो के निकट इस जत्थे पर गोली चलाई गई और कुछ आदमी मरे। किचलू और गिडवानी दोनो को नाभा के अधिकारियो ने गिरफ्तार कर लिया, क्योकि वे घायलो की सुश्रूषा कर रहे थे! कुछ दिनों बाद किचलू को तो छोड दिया गया, पर गिडवानी उस वर्ष के अन्त तक नाभा जेल मे ही रहे। शहीदी जत्थे बराबर जाते रहे और गिरफ्तारिया भी होती रही। इस प्रकार अकाली हजारो की संख्या मे जेल में पहुंच गये। उनके साथ जो व्यवहार किया गया उसकी खराब रिपोर्ट आई। अकाली-सहायक ब्यूरो मे आचार्य गिडवानी का स्थान श्री पणिक्कर ने लिया। काग्रेस की कार्य-समिति ने जेल में अकालियों के साथ किये गये दुर्व्यवहार की जांच के लिए जाच-कमिटी भेजी और साथ ही अकाली-परिवारों को काफी आर्थिक सहायता भी दी।

बाद को जब गुरुद्वारो के प्रबन्ध के सम्बन्ध मे कानून बना दिया गया तब यह प्रश्न भी तय हो गया।

: ११ :

कांग्रेस और कौंसिल-प्रवेश: १९२४-२६

गांधीजी की रिहाई

१२ जनवरी १९२४ को महात्मा गाधी के 'अपेंडिसाइटिस' रोग से भयकर रूप मे बीमार पडने और आधी रात मे कर्नल मैडॉक-द्वारा भारी आपरेशन किये जाने के समाचार से देशभर मे चिन्ता उत्पन्न हो गई। पर गाधीजी के स्वस्थ होने और अन्त मे ५ फरवरी को उन्हे समय से पहले ही विना किसी शर्त के छोड़ दिये जाने से वह चिन्ता दूर हो गई।

जेल से छूटकर भी गान्धीजी को न तो शान्ति मिली, और न विश्रान्ति। कोकनडा-काग्रेस मे जा फूट पैदा हो गई थी वह दिन-पर-दिन वढती जा रही थी। एक ओर अ-परिवर्त्तनवादी आशा कर रहे थे कि काग्रेस का इजन फिर सत्याग्रह के पुराने मार्ग पर लौट पडेगा, दूसरी ओर परिवर्त्तन-वादियो को चिन्ता थी कि दिल्ली और कोकनडा मे प्राप्त हुई विजयो को पक्का करके अपने ऊपर जो कुछ धब्बा बाकी रह गया है उसे धो लिया जायगा। परिवर्त्तनवादियो की 'स्वराज्य पार्टी' बन चुकी थी और उसने देश की विभिन्न कौसिलो के निर्वाचनो मे भाग लिया था। बडी कौसिल मे ४५ स्वराजी पहुचे जिनमे खूब अनुशासन था और जो अपना कार्यक्रम पूरा करने का व्रत लिए हुए थे। वे राष्ट्रीय-दल का सहयोग और सहानुभूति प्राप्त करके कौसिल मे आसानी से बहुमत प्राप्त कर सके थे। उनकी पहली विजय तब हुई जब श्री टी० रगाचारी ने शासन-व्यवस्था मे तत्काल परिवर्तन करने के सम्बन्ध मे एक प्रस्ताव पेश किया और पण्डित मोतीलाल नेहरू ने यह सशोधन पेश किया कि भारत मे पूर्ण उत्तरदायी सरकार की सिफारिश करने के लिए एक गोलमेज-परिषद् बुलाई जाय।

सरकार को यो तो कई बार हार खानी पडी, पर कुछ राजनैतिक कैदियो को छोडने, दक्षिण-अफ्रीका से भारत मे आनेवाले कोयले पर कर लगाने तथा सिक्ख-आन्दोलन की व्यवस्था के सम्बन्ध मे जाच करने के बारे मे पूरी हार हुई। सरकार की पराजय स्वराज्य-पार्टी की विजय थी, जिसका बल स्वतत्र, राष्ट्रीय तथा कभी-कभी नरम-दल तक का सहयोग प्राप्त होने के कारण भी बढ गया था। स्वराज्य-पार्टी ने दूसरा काम यह किया कि सरकारी मागो की चार मदो को नामजूर कर दिया। ऐसा पहले कभी नही हुआ था।

गांधीजी का वक्तव्य

१९२४ की गर्मियों मे जो कुछ हो रहा था उसका चित्र पाठको के आगे पेश करने के लिए हम अव गाधीजी, दास वाबू और नेहरूजी के वक्तव्य देते है जो शुरू की वार्तालाप के वाद प्रकाशित किये गये। गाधीजी ने अपने वक्तव्य मे कहा . "अपने स्वराजी मित्रो के साथ काग्रेसवादियो के द्वारा कौसिल-प्रवेश के जटिल प्रश्न पर वातचीत करने के वाद मुझे दु ख के साथ कहना पडता है कि मै उनसे सहमत न हो सका। ××× मेरी अव भी यही सम्मति है कि असहयोग के सम्वन्ध मे जैसी मेरी धारणा है उसके अनुसार कौसिल-प्रवेश असगत है। हमारा मतभेद 'असहयोग' शव्द की भिन्न-भिन्न परिभाषा तक ही सीमित हो सो वात भी नही है; यह मतभेद तो चित्तवृत्ति से सम्वन्ध रखता है, जिसके कारण महत्वपूर्ण समस्याओं के सुलझाने मे मतभेद अनिवार्य हो जाता है। उस मनोवृत्ति के पैमाने से ही वहिष्कार-त्रयी की सफलता या विफलता को जाचना होगा, फल-सिद्धि के पैमाने से नही। मै इसी दृष्टि-कोण से कह रहा हूँ कि देश के लिए कौसिल से वाहर रहना उनके भीतर रहने की अपेक्षा कही अधिक लाभदायक होगा।

"दिल्ली और कोकनडा-काग्रेस ने उन काग्रेसवादियों को कौसिलो और असेम्वली मे जाने की इजाजत दे दी है जिनकी आत्मा उन्हे न रोकती हो। इसलिए मेरी राय मे स्वराजी कौसिलो मे जाने का और अपरिवर्त्तन-वादियो से तटस्थ रहने की आशा रखने का अधिकार रखते है। उनको वहां जाकर अड़गा-नीति धारण करने का भी हक है; क्योकि उनकी नीति ही यह थी और काग्रेस ने उनके कौसिल-प्रवेश के सम्वन्ध मे किसी प्रकार की शर्त नही लगाई थी। यदि स्वराजियो को सफलता हुई और देश को लाभ पहुँचा, तो मेरे जैसे सशयशील व्यक्तियो को अपनी भूल अवश्य मालूम हो जायगी और यदि अनुभव के द्वारा स्वराजियों का मोह दूर हो गया, तो मै जानता हूं कि वे देश-भक्त है और अवश्य अपना कदम पीछे हटा लेगे। इसलिए मै उनके मार्ग मे वाधा डालने के काम मे शरीक न होऊंगा और न स्वराजियो के कौसिल-प्रवेश के विरुद्ध प्रचार करने मे ही भाग लूंगा। हा, मै ऐसे कार्य मे स्वयं कोई ऐसी सहायता नहीं दे सकता जिसमें मेरा विश्वास नही है . . . ।

"कौसिलो मे क्या ढंग अपनाना चाहिए, इसके सम्वन्ध मे मेरा कहना यही है कि मै कौसिलों मे तभी घुसूगा जव मुझे मालूम हो जाय कि मै उसके उपयोग से लाभ उठा सकूंगा। अतएव यदि मै कौसिलो मे जाऊगा तो मै सोलह आने अडगा नीति का अवलम्वन न करके काग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम को सफल वनाने की चेष्टा करूगा। मै उस हालत मे प्रस्ताव पेश करके केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकारो से चाहूंगा कि

(१) वे सारे कपडे हाथ के कते और हाथ के वुने खद्दर के खरीदें।

(२) विदेशी कपडो पर बहुत भारी चुगी लगा दे ।

(३) शराब आदि की आय को ही रद कर दे, और सेना-विभाग के व्यय मे, अपेक्षाकृत ही सही, कमी कर दे ।

"यदि सरकार कौसिलो मे पास होने के वाद भी इन प्रस्तावो पर अमल करने से इन्कार कर दे, तो मै सरकार से कौसिलो को भग करने के लिए कहूगा ओर उन्ही खास-खास वातो पर फिर निर्वाचको के वोट हासिल करूगा । यदि सरकार कौसिल भग करने से इकार कर दे तो मै अपनी जगह से इस्तीफा दे दूगा और देश को सत्याग्रह के लिए तैयार करूगा । जव यह अवस्था आ पहुचे तव स्वराजी मुझे फिर अपने साथ और अपने नेतृत्व मे पायेगे । सत्याग्रह-सम्बन्धी योग्यता के सम्बन्ध में मेरी कसौटी वही पुरानी है ।"

स्वराजी-वक्तव्य

देशबन्धु चित्तरंजन दास और पण्डित मोतीलाल नेहरू ने अपने वक्तव्य मे कहा :—

"हमे अफसोस है कि हम गाधीजी को कौसिल-प्रवेश के सम्बन्ध में स्वराजियो की स्थिति के औचित्य का कायल न कर सके । हमारी समझ मे यह नही आता कि कौसिल-प्रवेश नागपुर-काग्रेस के असहयोग-सम्बन्धी प्रस्ताव के अनुकूल क्यो नहीं है । परन्तु यदि असहयोग मनोवृत्ति से ही सम्बन्ध रखता हो और हमारे राष्ट्रीय जीवन की वास्तविक अवस्था से उसका कोई विशेष सम्बन्ध न हो, तो हम देश के वास्तविक हित के लिए असहयोग तक का वलिदान करना अपना कर्तव्य समझते हैं ।

"हम यह भी स्पष्ट कर देना चाहते है कि हमने अपने कार्यक्रम मे 'अडगा' शब्द का जो व्यवहार किया है वह ब्रिटेन की पार्लमेण्ट के इतिहास के वैधानिक अर्थ मे नही है । मातहत और सीमित अधिकारो वाली कौसिलो मे उस अर्थ मे अडगा डालना असम्भव है, क्योकि सुधार-कानून के अन्तर्गत असेम्बली और कौसिल के अधिकार गिने-चुने है, पर हम यह कह सकते है कि हमारा विचार अडगा डालने की अपेक्षा स्वराज्य के मार्ग मे नौकरशाही-द्वारा डाली गई रुकावटो का मुकाबला करने का अधिक है । 'अडगा' शब्द का व्यवहार करते समय हमारा मतलब इसी मुकाबले से है । हमने स्वराज्य-पार्टी के विधि-विधान की भूमिका में असहयोग की परिभाषा करते हुए इस बात को अच्छी तरह स्पष्ट कर दिया है ।

"पर यहा भी हम इस बात के व्यर्थ वाद-विवाद का अन्त करना चाहते है कि इस नीति को "सतत और लगातार अडगे की नीति" कहा जा सकता है या नही । हम तो अपनी नीति को विस्तार के साथ बताकर ही सन्तुष्ट हो जाते है । हमारे मित्र यदि चाहे तो इसे अधिक उपयुक्त नाम प्रदान कर सकते है ।" इसी सिद्धान्त और नीति के अनुसार वक्तव्य में एक भावी कार्यक्रम भी सम्मिलित था ।

महासमिति की बैठक

अहमदाबाद मे २७, २८ आर २९ जून को महासमिति की बैठक हुई। निर्वाचित कांग्रेस-सस्थाओ के सारे सदस्यो के लिए हर महीने २,०० गज अच्छी तरह ऐंठा और कता हुआ सूत भेजना अनिवार्य कर दिया गया। न भेजने पर उस सदस्य का स्थान खाली समझने को कहा गया। जिस समय इस विषय पर चर्चा हो रही थी, कुछ सदस्य इस जुर्मानेवाली बात के विरुद्ध रोष प्रकट करने के लिए बैठक से उठकर चले गये। यह प्रस्ताव पास हो गया। ६७ अनुकूल और ३७ प्रतिकूल रहे। पर यह सोचकर कि जो लोग उठकर चले गये थे यदि वे खिलाफ राय देते तो सम्भव था कि यह गिर जाता, गाधीजी ने जुर्मानेवाली बात हटा ली और महासमिति ने नागा करनेवालो के खिलाफ जाब्ता कार्रवाई करने की सिफारिश की।

विदेशी कपड़े, अदालतो, स्कूलो-कालेजो, उपाधियों और कौसिलो के पाचो प्रकार के (कोकनडा के प्रस्ताव को ध्यान मे रखते हुए) बहिष्कार पर जोर दिया गया और कांग्रेस के मतदाताओ को खास तौर से हिदायत कर दी गई कि उन लोगों को कांग्रेस की मातहत-सस्थाओ में न चुना जाय जो पाचो प्रकार के बहिष्कार के सिद्धान्त मे विश्वास न रखते हो और स्वय भी उस पर अमल न करते हो। सरकार की अफीम-सम्बन्धी नीति की निन्दा की गई और एण्डरूज साहब से अनुरोध किया गया कि वह आस मवालो के अफीम-व्यसन के सम्बन्ध मे जाच करे। सिक्खो ने जैतो के अनावश्यक और निर्दयता-पूर्ण गोली-काण्ड के अवसर पर जो शातिपूर्ण साहस दिखाया था उसके लिए उन्हे बधाई दी गई।

इस बैठक मे जिस प्रस्ताव ने काफी जोश पैदा किया वह गोपीनाथ साहा-द्वारा आर्नेस्ट डे की हत्या के धिक्कार और मृत व्यक्ति के परिवार के प्रति समवेदना-प्रकाशन के सम्बन्ध मे था। प्रस्ताव मे गोपीनाथ साहा के देश-प्रेम की बात को, जिससे प्रेरित होकर उसने हत्या की, हृदय के साथ स्वीकार किया गया, पर साथ ही उसे पथ-भ्रष्ट बताया गया। महासमिति ने इस और इसी प्रकार की सारी राजनैतिक हत्याओ को जोरदार शब्दो मे धिक्कारा और अपनी स्पष्ट राय प्रकट की कि इस प्रकार के कृत्य कांग्रेस की अहिंसा की नीति के विरुद्ध है, स्वराज्य के मार्ग मे रुकावट डालते है और सत्याग्रह की तैयारी मे बाधक बनते है। इस प्रस्ताव पर खूब वाग्युद्ध हुआ।

स्वराजी इस बैठक में अपनी इच्छानुसार सब-कुछ प्राप्त न कर सके और उन्हे अपनी कठोर परिश्रम से प्राप्त की हुई सफलता को मजबूत बनाने के लिए नवम्बर तक रुकना पडा। जहांतक अपरिवर्त्तनवादियो का सम्बन्ध था, सूतवाली शर्त को उन्होंने आश्चर्यजनक रीति से पूरा किया। अगस्त में २७८० सदस्य थे, सितम्बर में ६३०१ हुए, अक्तूबर में ७७४१ और नवम्बर मे ७९०५ हो गये।

साम्प्रदायिक दंगे

परन्तु उस वर्ष की सबसे बुरी बात थी जगह-जगह साम्प्रदायिक दंगो का होना, खासकर दिल्ली, गुलबर्गा, नागपुर, लखनऊ, शाहजहापुर, इलाहाबाद और जबलपुर मे। सबसे अधिक भयकर दगा कोहाट मे हुआ। कोहाट के दगे ने तो भारतवर्ष की कमर तोड दी। दगो के कारणो और परिस्थितियो के सम्बन्ध मे गाधीजी और मौ० शौकतअली की एक कमिटी नियुक्त की गई। दोनो ने रिपोर्ट पेश की, पर दुर्भाग्य से दोनो का इस विषय मे मत-भेद था कि दगो की जिम्मेदारी किस पर है। १९२४ की ९ और १० सितम्बर की घटनाओ को बीते आज बत्तीस वर्ष से भी अधिक हुए, पर दगे के फौरन बाद ही कोहाट के भ्रातृस्कूल के हेडमास्टर लाला नन्दलाल ने जो रिपोर्ट लिखी और जिसे कोहाट-दगा-पीडित-सहायक समिति ने प्रकाशित किया, उसे पढने पर तो अब भी शरीर मे रोमाच हो आता है। हम इससे अधिक और कुछ नही कह सकते कि ९ और १० सितम्बर के गोलीकाण्ड और कत्लेआम के बाद एक स्पेशल ट्रेन ४००० हिन्दुओ को सवार कराकर ले गई। इनमे से २६०० दो महीने बाद तक रावलपिण्डी की जनता की और १४०० अन्य स्थानो की जनता की दान-शीलता पर जीते रहे।

गांधीजी का उपवास

ऐसी दशा मे यह कोई आश्चर्य की बात नही जो गाधीजी ने २१ दिन के उपवास का व्रत लिया। इस क्रोधोन्माद और हत्या-प्रवृत्ति का जिम्मेदार उन्होने अपने-आपको ठहराया और उपवास के द्वारा प्रायश्चित करने का निश्चय किया। अभी अपेण्डिसाइटिस के भयकर और लगभग साघातिक प्रकोप से उठे उन्हे अधिक दिन नही हुए थे। अत यह उनके लिए अग्नि-परीक्षा थी। गाधीजी ने व्रत मौलाना मुहम्मदअली के मकान पर आरम्भ किया, पर बाद को उन्हे शहर के बाहर एक मकान मे ले जाया गया। इस अवसर से लाभ उठाकर सारी जातियो के नेताओ को एकत्र किया गया। कलकत्ते के बडे पादरी भी शरीक हुए। यह एकता-परिषद् २६ सितम्बर से २ अक्तूबर सन् १९२४ तक होती रही। परिषद् के सदस्यो ने प्रतिज्ञा की कि वे धर्म और मत की स्वतन्त्रता के सिद्धात का पालन कराने का अधिक-से-अधिक प्रयत्न करेगे और उत्तेजन मिलने पर भी इनके विरुद्ध किये गये आचरण की निन्दा करने मे कोई कसर न रक्खेगे। एक केन्द्रीय राष्ट्रीय पचायत बनाई गई, जिसके सयोजक और अध्यक्ष गाधीजी हुए और हकीम अजमलखा, लाला लाजपतराय, के० एफ० नरीमान, डा० एस० के० दत्त और लायलपुर के मास्टर सुन्दरसिह सदस्य हुए। परिषद् ने धार्मिक सिद्धातो को मानने, धार्मिक विचारो को प्रकट करने और धार्मिक रीति-रिवाजो का पालन करने, धर्म-स्थानो की पवित्रता का ध्यान रखने और गोवध और मस्जिद के आगे बाजा बजाने के सम्बन्ध

में सबका एक-समान अधिकार माना, पर साथ ही उनकी मर्यादाओ का भी निदर्शन किया। अखबारो को चेतावनी दी कि वे साप्रदायिक मामलो मे समझबूझ कर लिखा करे और जनता से अनुरोध किया गया कि गाधीजी के उपवास के अतिम सप्ताह मे देशभर में प्रार्थना को जाय। ८ अक्तूबर जन-सभाओ द्वारा ईश्वर को धन्यवाद देने के लिए नियत किया गया।

सर्वदल-सम्मेलन

अभी गाधीजी ने अपना उपवास समाप्त ही किया था कि उन्हे बम्बई में २१ और २२ नवम्बर को सर्वदल-सम्मेलन मे और उसके वाद ही और उसी के सिलसिले में २३, २४ को महा-समिति की बैठक मे शरीक होना पडा। सर्वदल-सम्मेलन करने का उद्देश्य यह था कि वगाल मे सरकार का दमन जोर पकडता जा रहा था। यह दमन-नीति स्वराज्य-पार्टी और तारकेश्वर मे सत्याग्रह करनेवाले कार्यकर्त्ताओ के विरुद्ध आरम्भ की गई थी। लोकमत को इसके विरुद्ध तैयार करना था। परिषद् ने वगाल-सरकार द्वारा जारी किये गये क्रिमिनल-ला-अमेण्डमेण्ट-आर्डिनेन्स के विरुद्ध,निन्दा का प्रस्ताव पास किया और उसके साथ ही १८१८ के रेगूलेशन ३ को रद करने पर जोर दिया। सर्वदल-सम्मेलन ने वंगाल की अशान्ति का कारण स्वराज्य न मिलना ठहराया और एक कमिटो नियुक्त की, जिसके सुपुर्द स्वराज्य की योजना और साम्प्रदायिक समझौता तैयार करने का काम किया गया। इस कमिटी मे देश के सारे राजनैतिक दलो के प्रमुख व्यक्तियो को रक्खा गया। ३१ मार्च १९२५ तक रिपोर्ट मागी गई। परिषद् के द्वारा कुछ विशेष काम होने की आशा न थी। पर इससे सम्भवत देशवन्धु चित्तरजन दास की गिरफ्तारी टल गई।

वेलगांव-कांग्रेस : १९२४

असहयोग के इतिहास मे वेलगाव-काग्रेस खास महत्व रखती है। गाधीवाद के विरुद्ध जो विद्रोह उठा था वह करीव-करीव अन्तिम सीमा तक पहुच चुका था। काग्रेस अव ऐसे स्थान पर खडी थी जहा से दो मार्ग दो ओर को जाते थे। काग्रेस-वादियो को अव दो परस्पर विरुद्ध दलो में वट जाना चाहिए या समझौता करके अपने भेद-भाव को मिटा लेना चाहिए, और यदि समझौते की वात ठीक हो तो इस जटिल काम को गाधीजी के सिवा और कौन हाथ में ले ? केवल गाधीजी ही ऐसे थे जो सत्याग्रह का कार्य-क्रम वापस लेकर भी अपरिवर्तन-वादियो को शांत कर सकते थे और कौंसिल-प्रवेश का सामना करके भी स्वराजियो को सन्तुष्ट रख सकते थे। यदि किसी महती योजना के आरम्भ करने के लिए महान् व्यक्ति की आवश्यकता है, तो उसे वन्द करने में भी महान् व्यक्ति ही समर्थ हो सकता है। इसलिए यह समय के अनुकूल ही हुआ कि १९२४ की काग्रेस के सभापति गाधीजी हुए। उन्होंने अपना अद्भुत भाषण पेश किया; पर कांग्रेस में उसका संक्षेप ही

सुनाया गया। इस भाषण मे उन्होने १९२० से उस समय तक की घटनाओ पर प्रकाश डाला और बताया कि किस प्रकार काग्रेस मुख्यत एक ऐसी सस्था रही है जिसके द्वारा भीतर से शक्ति का विकास होता रहा है। सब तरह के बहिष्कारो को भिन्न-भिन्न दलो ने अपनाया। वैसे कोई भी बहिष्कार पूरा न हो सका, फिर भी जिन-जिन सस्थाओ का बहिष्कार किया गया उनका रौब बहुत-कुछ कम हो गया। सबसे बडा बहिष्कार हिंसा का बहिष्कार था। पर अहिंसा ने असहायावस्था की निष्क्रियता को छोडकर अभी साधन-सम्पन्न और परिष्कृत रूप धारण नहीं किया था। जिन्होने असहयोग में साथ नहीं दिया उनके विरुद्ध एक प्रकार की छिपी हुई हिंसा से काम लिया गया। पर अहिंसा जैसी कुछ भी थी, उसने हिंसा को दबाये रखा। फलत सब प्रकार के बहिष्कार उठा लिये गये, केवल एक बहिष्कार——विदेशी कपडो का रह गया। इस प्रकार बहिष्कार करने का जनता का न केवल अधिकार ही था, बल्कि कर्त्तव्य भी था। अहिंसा के सम्बन्ध मे भी उनका यही रुख था। परन्तु अकेले घरेलू-धन्धे ने ही जिन हजारो आदमियो के दरवाजे से सुख-चैन को दूर कर रक्खा था उनके विनाश से उनका जी बहुत दुखी था। उनके और स्वराजियो के मतभेदो मे समझौता हो गया था। स्वराजी सूत कात कर देने को राजी हो गये और गाधीजी ने उनके कौसिलो में काम करने पर आपत्ति नही की। उन्होने कोहाट के दगे पर सन्ताप प्रकट किया, अकालियो के साथ सहानुभूति प्रकट की, अस्पृश्यता के सम्बन्ध मे अपने विचार प्रकट किये और स्वराज्य-योजना का जिक्र किया। इस प्रकार भूमिका बाधने के बाद गाधीजी ने स्वराज्य की योजना के सम्बन्ध में कुछ बाते बताईं।

मताधिकार के लिए शारीरिक परिश्रम की शर्त, सैनिक व्यय में कमी, सस्ता न्याय, मादक-द्रव्य और उससे आने वाली चुङ्गी का अन्त, सिविल और सैनिक नौकरियो के वेतनो मे कमी, प्रातो का भाषा की दृष्टि से पुनर्निर्माण, इस देश मे विदेशियो के इजारो (मोनोपली) की नये सिरे से जाच-पडताल, भारतीय नरेशो को उनकी पद-मर्यादा की गारण्टी और केन्द्रीय सरकार-द्वारा खलल न पहुँचने का आश्वासन, तानाशाही का अन्त, नौकरियो में जाति-भेद का अन्त, भिन्न-भिन्न सस्थाओ को धार्मिक-स्वतन्त्रता, देशी-भाषाओ द्वारा सरकारी काम-काज, और हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा मानना उपयुक्त समझा गया।

पूर्ण स्वराज्य के प्रश्न की ओर भी गाधीजी का ध्यान आकृष्ट हुआ। अहमदाबाद के बाद से उनके विचार सौम्य हो गये थे, क्योकि उस समय वे आशा से भरे हुए थे, किन्तु अब जहा तक सरकार के रग-ढग और स्थिति का सम्बन्ध था, गाधीजी की आशाओ पर पानी पड गया था। उन्होने कहा——"मै साम्राज्य के भीतर ही स्वराज्य पाने की चेष्टा करूगा, पर यदि स्वय ब्रिटेन के दोष से ही उससे सारे नाते तोड़ना आवश्यक हुआ तो मै ऐसा करने मे सकोच नही करूगा।" इसके बाद उन्होने

स्वराज्य-पार्टी और रचनात्मक कार्य-क्रम का जिक्र किया और बंगाल की ... के सम्बन्ध मे अपने विचार प्रकट करने के बाद अहिंसा मे अपनी आस्था प्रकट करके भाषण समाप्त किया।

इस अधिवेशन मे कांग्रेस-मताधिकार मे परिवर्तन किया गया। हिन्दुओं के कोहाट-त्याग पर खेद प्रकट किया गया। कोहाट के मुसलमानो को सलाह दी गई कि वे हिन्दुओ को उनके जान-माल के सम्बन्ध मे आश्वासन दे, साथ ही हिन्दू मुहाजरीन को सलाह दी गई कि जबतक कोहाट के मुसलमान उन्हे सम्मानपूर्वक न बुलावें तबतक वे वापस न जाय। इसी तरह गुलबर्गा के पीडितो के प्रति भी सहानुभूति दिखाई गई। वैतनिक राष्ट्र-सेवा को पूर्ण सम्मानप्रद बताया गया। अकाली-दल, मदिरा और अफीम के सम्बन्ध मे भी विचार हुआ और कांग्रेस के विधान मे कुछ जरुरी तब्दीलिया की गईं।

अड़ंगा-नीति

१९२५ की राजनीति मुख्यत कौसिलो मे किये गये काम तक सीमित रही। स्वराजियो को अपरिवर्त्तनवादियो की ओर से परेशानी नही थी, क्योकि गाधीजी दोनो दलो को एक तराजू पर रखने को मौजूद थे। मध्यप्रदेश और बगाल मे द्वैध-शासन का अन्त हो गया था। लॉर्ड लिटन के निमत्रण पर देशबन्धु दास ने बगाल मे मत्रिमण्डल बनाने से इन्कार कर दिया था। जब लॉर्ड रीडिंग का १९२४ का न० १ आर्डिनेन्स समाप्त हुआ तब बगाल-कौसिल मे एक बिल पेश किया गया, जिसे स्वराजियो ने और स्वराजियो के प्रभाव ने १९२५ की जनवरी मे रद कर दिया। लॉर्ड लिटन ने उसे सही कर दिया और लन्दन सम्राट्-सरकार की मजूरी के लिए भेजा। १७ फरवरी को बगाल-कौसिल ने प्रस्ताव पास करके बजट मे मत्रियो के वेतन की गुजाइश रखने की सिफारिश की। स्वराजियो को हारना पड़ा, पर उन्होने शीघ्र ही इस क्षति को पूरा कर लिया। इधर बगाल असहयोग के इस निश्चित मार्ग पर चल रहा था, उधर मध्यप्रान्त में इस बात की चर्चा की जा रही थी कि स्वराज्य-पार्टी को मत्रित्व ग्रहण क्यो नही करना चाहिए, जिससे वह भीतर से विध्वंस कर सके? बडी कौसिल मे स्वराज्य-पार्टी १९२४ और १९२५ मे विरोधी दल का काम करती रही। स्वराजियो ने सिलेक्ट कमिटियो मे भाग लिया और लाभदायक कानून पास करने मे सहयोग दिया। कभी किसी पार्टी का साथ दिया, कभी किसी का और यदाकदा सरकार का भी।

देशबन्धु की मृत्यु

इस समय तक देशबन्धुदास ने कांग्रेस मे अपने लिए गौरवपूर्ण स्थान तैयार कर लिया था। इसी बीच बेलगाव-कांग्रेस के अवसर पर एक समाचार प्रकाशित हुआ कि देशबन्धु दास ने अपनी सारी सम्पत्ति देश को अर्पण कर दी है,

जिसका उपयोग परोपकार मे किया जायगा। इस बात से देशबन्धुदास जनता की दृष्टि मे और भी ऊचे उठ गये थे। १९२५ के मार्च और अप्रैल में गाधीजी ने दक्षिण-भारत और केरल मे दौरा किया। दक्षिण से गाधीजी बगाल जानेवाले थे। उस समय तक दास बाबू अस्वस्थ हो चुके थे। उन्हे शाम को ज्वर रहने लगा था जो चिन्ता का कारण हो रहा था। इसके लिए उनके यूरोप जाने का प्रबन्ध किया गया था। फरीदपुर की बगाल-प्रान्तीय-परिषद के अवसर पर यही स्थिति थी। देशबन्धु ने पण्डित मोतीलाल नेहरू को जो अन्तिम पत्र लिखा था, उसमे उन्होने कहा "हमारे इतिहास की सबसे अधिक नाजुक घडी आ रही है। इस वर्ष के अन्त मे ठोस काम होना चाहिए और दूसरे साल के आरम्भ मे हमारी सारी शक्तिया काम मे लग जायगी। इधर हम दोनो बीमार पडे है। ईश्वर ही जाने, क्या होने वाला है।" इसके कुछ ही दिनो बाद ईश्वर की ऐसी इच्छा हुई कि उसने देशबन्धु को स्वर्ग मे बुला लिया। १६ जून १९२५ को दार्जिलिंग मे उनका परलोकवास हुआ। दास बाबू का जीवन स्वय ही भारत के इतिहास का एक परिच्छेद था। उनके देहान्त के सम्बन्ध मे खुलना मे गाधीजी ने दुखी होकर कहा था—"उनकी स्मृति को अमर बनाने के लिए हमे क्या करना चाहिए। आसू बहाना बडा आसान है। परन्तु आसुओ से हमे या उनके निकटस्थ और प्रिय व्यक्तियो को कोई लाभ न होगा। यदि हम लाग हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, ये सब जो अपने-आपको भारतीय कहते है, सकल्प कर ले कि जिस काम के लिए देशबन्धु जिये और जिस काम मे वह निमग्न रहे उसे पूरा करेगे, तो हम सचमुच उनके स्मारक के रूप मे कुछ कर सकेगे। हम सबमे उनकी जैसी बुद्धि नही है, पर वे जिस उत्साह के साथ अपनी मातृभूमि से प्रेम करते थे, हम उनका अनुकरण अवश्य कर सकते है।"

गाधीजी देशबन्धु दास से अत्यन्त स्नेह रखते थे। वह बगाल ही मे रुक गये। उन्होने उनकी स्मृति मे एक महान् स्मारक बनाया। उन्होने दस लाख रुपया एकत्र किया। देशबन्धु दास का भवन १४८ रसा-रोड, देश के अर्पण हुआ। इस भवन को दास बाबू की उस ट्रस्ट-योजना के अनुसार, जो उन्होने बेलगाव-काग्रेस से पहले प्रकट की थी, स्त्रियो और बच्चो का अस्पताल बना दिया गया। गाधीजी ने स्वराजियो के हाथ मे सारी शक्ति देने और बगाल मे स्वराज्य-पार्टी की जड मजबूत जमाने मे कोई कसर न उठा रखी। इस प्रकार श्री जे० एम० सेनगुप्त को कौसिल मे स्वराज्य-पार्टी का नेता, कलकत्ता-कारपोरेशन का मेयर और बगाल प्रान्तीय काग्रेस-कमिटी का सभापति बनाने का काम उन्ही का था। यह तिहरा राजमुकुट जो दास बाबू धारण किये हुए थे सेनगुप्त के सिर पर रख दिया गया।

स्वराज्य पार्टी से मत-भेद

इधर गाधीजी स्वराजियो को निश्चित करने की भरसक चेष्टा कर रहे थे,

उधर गाधीजी की इस उदारता का उत्तर स्वराज्य-पार्टी दूसरे ढंग से दे रही थी। स्वराज्य-पार्टी की जनरल कौंसिल का विरोध सूत देने की उस शर्त के खिलाफ हुआ था, जो बेलगाव मे तय हो चुकी थी। यह विरोध वढता ही गया, और अन्त में इस शर्त को उडा देने का फैसला महासमिति के हाथ मे सौप दिया गया। महासमिति में स्वराज्य-पार्टी का बहुमत था। १५ जुलाई को महासमिति की कलकत्ते की बैठक के बाद सम्भवत गाधीजी ने पण्डित मोतीलाल नेहरू के पास एक पर्ची लिखकर भेजी कि चूकि काग्रेस मे स्वराजियो की बहुलता है, और चूकि आप स्वराज्य-पार्टी के सभापति है, इसलिए आपको कार्य-समिति के सभापतित्व का भार भी अपने ऊपर लेना चाहिए। गाधीजी ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि मै इसका सभापति और अधिक रहना नही चाहता। इस पर्ची से स्वराजियो मे हलचल मच गई। पर अन्त मे यह तय हुआ कि कम-से-कम उस साल के अन्त तक गाधीजी ही महासमिति के सभापति बने रहेगे, पर यदि अगली बैठक मे सूत कातने की शर्त उठा दी जायगी तो वह इस्तीफा दे देगे और एक अलग चर्खा-संघ स्थापित करेगे। कार्य-समिति ने सूत कातने की शर्त मे परिवर्तन करने के प्रश्न पर विस्तार के साथ विचार किया और अन्त मे सारे प्रश्न पर दुबारा विचार करने के लिए १ अक्तूबर को बैठक करने का निश्चय किया। इस बीच गाधीजी ने स्वराज्य पार्टी का समर्थन करने मे कुछ उठा न रखा। अगस्त मे गाधीजी ने लिखा था— "मुझे काग्रेस के मार्ग मे और अधिक खडा न होना चाहिए। काग्रेस का पथ-प्रदर्शन मुझ-जैसे आदमी के द्वारा, जिसने अपने आपको अपढ जनता मे मिला दिया है और जिसका भारत के शिक्षित-समाज की मनोवृत्ति से मौलिक अन्तर है, होने की अपेक्षा शिक्षित भारतीयो के द्वारा होने के मार्ग मे मै बाधक बनना नही चाहता। मै अब भी उन पर अपना असर डालना चाहता हूं, परन्तु काग्रेस को छोड़ कर नही। यह काम तभी अच्छी तरह हो सकता है, जब मै रास्ते मे से हट जाऊ और काग्रेस की सहायता से, उसके नाम पर, अपना सारा ध्यान रचनात्मक कार्य मे लगा दू। मै काग्रेस की सहायता और उसके नाम का उपयोग उसी हद तक करूगा जिस हद तक शिक्षित भारतीय मुझे अनुमति देंगे।" असली बात यह थी कि एक ओर तो स्वराजी लोग गाधीजी के सिद्धातो का खण्डन करते थे और दूसरी ओर उनका नेतृत्व भी चाहते थे। वे उनका सहयोग अपनी शर्तों पर चाहते थे।

पटना-महासमिति

२१सितम्बर १९२५ को पटना मे महासमिति की बैठक हुई। इस बैठक मे काग्रेस की स्थिति में तीन महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। खद्दर का राजनैतिक महत्व छिन गया। हाथ-कता सूत देने की शर्त केवल चार आना न देने की हालत मे ही लागू रही। राजनैतिक काम का भार स्वराज्य-पार्टी को सौंप दिया

गया। अब स्वराज्य-पार्टी काग्रेस का एक अङ्ग-मात्र न रही। वह स्वयं काग्रेस हो गई। इसके बाद से निर्वाचन का काम स्वराज्य-पार्टी नही, स्वय काग्रेस करेगी। कौसिल-प्रवेश मे विश्वास रखने वाली बडी कौसिल के सदस्य अब "स्वराजिस्ट" नही कहलायेगे, बल्कि कौसिलो मे काग्रेस-सदस्य कहलायेगे। सूत कातने की शर्त अब एकमात्र शर्त नहीं रही। इसका कारण यह न था कि उस शर्त को मानने वाले कम थे—१०,००० सदस्य मौजूद थे—परन्तु यह था कि स्वराजियो को यह शर्त पसन्द न थी। इस प्रकार खद्दर के समर्थको और कौसिल के समर्थको मे काग्रेस का बटवारा हो गया। एकता ऊपर-ही-ऊपर थी। वास्तव मे खद्दर के समर्थको मे असतोष फैला हुआ है, यह बात छिपाई न जा सकती थी। फलत पटना में जो कुछ निश्चित हुआ, कानपुर में हमे उसपर सही करनी पडी।

कानपुर-कांग्रेस : १९२५

१९२५ की कानपुर-काग्रेस के दिन आ लगे थे। जनता ज्यो-की-त्यो थी——उसमे पहले की भाति प्रबल शक्ति उत्पन्न हो सकती थी। पर वह तभी जब 'शिक्षित' समुदाय उसके पास कोई जीता-जागता आदर्श, कोई फकडता हुआ कार्यक्रम ले जाय। परन्तु उन्होने ऐसा नहीं किया। फलत मसाला मौजूद था, पर उसकी शक्ति गायब हो गई थी। जिस प्रकार किसी मोटरकार के साधारण उपायो से न चलने पर उसे पीछे से ढकेलने का उपाय अपनाया जाता है, और इस प्रकार ढकेले जाने के दो चार कदम बाद मोटर के इजन में गति उत्पन्न हो जाती है और वह दुबारा रोके जाने तक काम करता रहता है, उसी प्रकार सत्याग्रह की सारी शक्तियाँ उस समय के लिए रुकी हुई थी और उसमें गति उत्पन्न करने के लिए हर तरह का उपाय किया जा रहा था। ऐसे ही वातावरण में २६ दिसम्बर को कानपुर की काग्रेस हुई।

कानपुर-काग्रेस को पटना के निर्णय पर सही करनी थी। पटना मे भी यह बात सदिग्ध समझी जा रही थी कि बेलगाव के आदेश के विरुद्ध सूत कातने के मिल्कियत का बटवारा करने के और कार्य-विभाग करने के सम्बन्ध मे जो निश्चय किया गया है, वह महासमिति भी स्वीकार करेगी अथवा नही। कानपुर-काग्रेस के अधिवेशन के सामने, जिसकी सभानेत्री भारत की कवयित्री श्रीमती सरोजिनी नायडू थीं, इसी प्रकार के जटिल प्रश्न मौजूद थे। गाधीजी केवल ५ मिनट बोले। उन्होने कहा कि "अपने ५ वर्ष के काम का पर्यालोचन करने के बाद मै अपनी ऐसी एक भी बात नही पाता जिसे रद करू, न अपना ऐसा कोई वक्तव्य ही पाता हूँ जिसे वापस लू। यदि मुझे विश्वास हो जाय कि लोगो में जोश और उत्साह है तो मै आज सत्याग्रह आरम्भ कर दू। पर अफसोस! हालत ऐसी नही है।" सरोजिनी देवी ने सभानेत्री की हैसियत से जो भाषण दिया वह काग्रेस-मच से दिया

गया शायद सबसे छोटा भाषण था और साथ ही वह मधुरता मे अपना सानी न रखता था। उन्होने राष्ट्रीय एकता पर जोर दिया।

कानपुर-कांग्रेस का अधिवेशन स्वभावत. ही देशबन्धु दास, सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, डा० सर रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर और अन्य नेताओ की मृत्यु पर शोक-प्रकाश के साथ प्रारम्भ हुआ। उस समय देश मे दक्षिण अफ्रीका से एक शिष्ट-मण्डल आया हुआ था। कांग्रेस ने उसका स्वागत किया। बगाल आर्डिनेन्स और गुरुद्वारा-आन्दोलन के कैदियो के सम्बन्ध मे भी उपयुक्त प्रस्ताव पास हुए। बर्मा के गैर-बर्मन अपराधियो को निर्वासित करने और समुद्र-यात्रा करने वालो पर कर लगाने के सम्बन्ध मे पेश किये गये बिलो को नागरिको की स्वतंत्रता पर नया आक्रमण समझा गया। कांग्रेस ने सत्याग्रह अर्थात् सविनय-भग में अपनी आस्था प्रकट की और इस बात पर जोर दिया कि सारे राजनैतिक कामों मे आत्मनिर्भरता ही एक पथ-प्रदर्शक समझी जाय। इसके बाद कांग्रेस ने जो निश्चय किए उनमें मुख्यत. इन बातो पर बल दिया गया :—

(१) देश के भीतर कांग्रेस का काम यह होगा कि देश-वासियो को उनके राजनैतिक अधिकारो के सम्बन्ध मे शिक्षा दी जाय। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए रचनात्मक कार्यक्रम मे विशेषकर चर्खे और खद्दर के प्रचार, साम्प्रदायिक ऐक्य की वृद्धि, अस्पृश्यता-निवारण, दलित जतियो का उद्धार और नशे की चीजो का सेवन न करने पर जोर दिया जाय, साथ ही स्थानीय सस्थाओ पर अधिकार करना, ग्राम-सगठन करना, राष्ट्रीय ढग से शिक्षा का प्रचार करना, मिल-मजदूरो और खेती का काम करने वाले मजदूरो का सगठन करना, मजदूरो और मालिकों, तथा जमीदारो और किसानो मे सौहार्द्र स्थापित करना और देश के राष्ट्रीय, आर्थिक, उद्योग-सम्बन्धी एवं व्यापारिक हितो की वृद्धि करना भी शामिल रहेगा।

(२) देश से बाहर कांग्रेस का काम विदेशी राष्ट्रों मे वस्तुस्थिति का प्रचार करना होगा।

(३) कांग्रेस ने देश की ओर से समझौते की उन शर्तों को मजूर किया जिन्हे बडी कौंसिल की इण्डिपेण्डेण्ट और स्वराज्य-पार्टियो ने अपने १८ फरवरी १९२४ के प्रस्ताव-द्वारा सरकार के आगे रखा था, और यह देखते हुए कि सरकार ने अभी तक उनका कोई उत्तर नही दिया है, निश्चय किया कि स्वराज-पार्टी जल्दी-से-जल्दी बडी कौंसिल में सरकार से उन शर्तो पर अपना आखिरी निर्णय सुनाने का अनुरोध करे। यदि फरवरी के अन्त तक कुछ निर्णय सरकार न दे सके या जो निर्णय सुनाया जाय उसे कांग्रेस की कार्य-समिति-द्वारा नियुक्त विशेष समिति अथवा महासमिति-द्वारा नियुक्त सदस्य, सतोषजनक न समझे, तो स्वराज्य-पार्टी उचित कार्रवाई-द्वारा बड़ी कौंसिल में सरकार को सूचित कर दे

कि अब वह पहले की तरह वर्तमान कौसिलो मे काम न करेगी। इसके बाद स्वराज्य-पार्टी का कोई सदस्य—चाहे वह राज्य परिषद् मे हो, चाहे बडी कौसिलो मे, चाहे छोटी कौसिलो मे—उनकी किसी बैठक मे, या उनके द्वारा नियुक्त की गई किसी कमेटी मे शरीक न हो। अपनी जगह को खाली घोषित करने से रोकने, प्रान्तीय बजटो को नामजूर करने अथवा कोई नया कर लगानेवाले बिल को रद करने के लिए कौसिलो मे जाया जा सकता है।

(४) यह काग्रेस विभिन्न प्रान्तीय काग्रेस-कमिटियो की कार्य-समितियो को अधिकार देती है कि वे अगले वर्ष के कौसिलो और बडी कौसिलो के निर्वाचन के लिए अपने प्रान्तो मे उम्मेदवार शीघ्र-से-शीघ्र चुनना आरम्भ कर दे।

अन्त मे काग्रेस और महासमिति की कार्रवाई के लिए हिन्दुस्तानी भाषा अपनाई गई। महासमिति को प्रवासी भारतवासियो के हितो की देख-भाल रखने के लिए अपने अन्तर्गत एक वैदेशिक विभाग खोलने का अधिकार दिया गया। अगला अधिवेशन आसाम मे करना तय हुआ। डॉ० मुख्तारअहमद अन्सारी, श्री ए० रगस्वामी आयगर और श्री के० सन्तानम प्रधान मन्त्री नियत हुए।

साम्प्रदायिक दंगे

इस वर्ष को समाप्त करने से पहले हमे उन हिन्दू-मुस्लिम दंगो का जिक्र करना है जो १९२५ मे कई स्थानो मे होते रहे। हिन्दू-मुस्लिम-दगो का जिक्र करते हुए १९२५ की पहली मई को गाधीजी ने कलकत्ते के मिर्जापुर-पार्क में कहा—"मैंने अपनी अयोग्यता स्वीकार कर ली है। मैंने स्वीकार कर लिया है कि इस रोग की औषधि बतानेवाले वैद्य की विशेषता मुझमें नही है। मै तो नही देखता कि हिन्दू अथवा मुसलमान मेरी औषधि को स्वीकार करने के लिए तैयार है। इसलिए आजकल मैने इस समस्या की यो ही उडती-सी चर्चा करके सन्तोष करना आरम्भ कर लिया है। मै यह कहकर सन्तोष कर लेता हूँ कि यदि हम अपने देश का उद्धार करना चाहते है तो एक-न-एक दिन हम हिन्दू और मुसलमानो को एक होना पडेगा और यदि हमारे भाग्य मे यही बदा है कि एक होने से पहले हमें एक-दूसरे का खून बहाना चाहिए, तो मेरा कहना यह है कि जितनी जल्दी हम यह कर डाले हमारे लिए उतना ही अच्छा है। यदि हम एक-दूसरे का सिर तोडने पर उतारू है तो हमे ऐसा मर्दानगी के साथ करना चाहिए, हमे झूठ-मूठ के आसू न बहाने चाहिए, और यदि हम एक दूसरे के साथ दया नही करना चाहते तो हमें किसी दूसरे से सहानुभूति की याचना नही करनी चाहिए।"

१९२५ की जुलाई मे सारे महीने-भर दगे होते रहे। इनमे प्रमुख स्थान दिल्ली, कलकत्ता और इलाहाबाद थे। बकर-ईद के अवसर पर निजाम की रियासत मे हुस्नबाद नामक स्थान पर भी दगा हो गया। १९२५ का साल समाप्त करने से

पहले सिक्खो की समस्या का भी जिक्र करना आवश्यक है। १९२५ मे सिक्खो की समस्या ने शान्ति धारण कर ली थी। पजाब-कौसिल मे गुरुद्वारा-बिल पेश किया गया और पास हो गया। साथ ही सर मालकम हेली ने कहा कि यदि गुरु-द्वारा-आन्दोलन के कैदी शर्तनामे पर दस्तखत करके नये कानून को मजूर कर लेगे और पहले को भाति आन्दोलन न करने का जिम्मा लेगे तो उन्हे छोड दिया जायगा। बहुतो ने इसपर क्रोध प्रकट किया, पर धीरे-धीरे क्रोध शान्त हो गया। बहुत-से कैदियो ने कानून न मानने का जिम्मा लिया। शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबन्धक कमिटी मे इस बात को लेकर फूट पड गई। अधिकाश कैदी छोड दिये गये, पर कुछ पूरी सजा भुगतने के लिए जेलो मे ही रहे।

सहयोग की ओर

१९२६ का आरम्भ कौसिलो के कार्यक्रम के लिए कुछ विशेष शुभ न रहा। १९२३ की नवीनता का आकर्षण इस समय तक फीका पड चुका था। केवल 'युद्ध' की खातिर लगातार 'युद्ध' किये जाना कुछ थकाने वाली बात सिद्ध हुई और नये वर्ष के आरम्भ मे ही थकावट और प्रतिक्रिया के लक्षण दिखाई देने लगे।

६ और ७ मार्च को महासमिति की बैठक रायसीना (दिल्ली) मे हुई जिसमें कानपुर के निश्चय की पुष्टि की गई। एक बार फिर दिल्ली ने प्रकट किया कि स्वराज्य के मार्ग मे रोडे अटकानेवाले किसी भी कार्य का, चाहे वह सरकारी हो या और किसी प्रकार का, पूरे संकल्प के साथ मुकाबला किया जायगा और विशेष रूप से उस समय तक कौसिलो मे गये हुए काग्रेसी सरकार द्वारा प्रदान किये जाने वाले पदो को स्वीकार न करेगे जब तक कि सरकार की ओर से सन्तोष-जनक उत्तर न मिलेगा।

बड़ी कौसिल मे जब बजट की चर्चा आरम्भ हुई तब पण्डित मोतीलाल नेहरू ने जाहिर किया कि मै और मेरे समर्थक मत देने मे कोई भाग न लेगे। कौसिल-भवन की गैलरिया खचाखच भरी हुई थी, क्योकि स्वराजियो के बडी कौसिल से 'वाक्-आउट' करने की बात पहले से ही लोगो को अच्छी तरह मालूम थी। पण्डित मोतीलाल नेहरू ने बताया कि सरकार ने देशबन्धु की सम्पूर्ण समझौते की बात का किस प्रकार तिरस्कार किया और सरकार को चेतावनी दी कि यदि उसने सावधानी से काम न लिया तो देश भर में गुप्त-समितियां कायम हो जायगी। इतना कहकर नेहरू जी अपनी पार्टी के सदस्यो के साथ कौसिल-भवन से बाहर चले गये।

इस 'वाक्-आउट' के कारण एक और घटना भी हुई। अध्यक्ष श्री विट्ठलभाई पटेल ने इस 'वाक्-आउट' का जिक्र करते हुए कहा कि चूकि कौसिल की सबसे जबर्दस्त पार्टी कौसिल-भवन छोड़कर चली गई है, इसलिए अब भारत-सरकार

कानून के अनुसार आवश्यक प्रतिनिधित्व रूप इस कौंसिल का नही रह जाता। अब यह बात भारत-सरकार ही निश्चित करे कि बड़ी कौंसिल को बैठक जारी रहे या नही ? उन्होने सरकार से अनुरोध किया कि वह कोई विवादग्रस्त कानून पेश न करे, नही तो मुझे विवश होकर उन विशेष अधिकारो का उपयोग करके जो भारत-सरकार-कानून ने मुझे प्रदान किये है, बैठक को अनिश्चित समय तक के लिए स्थगित करना पडेगा। दूसरे दिन उन्होने बडी सज्जनता के साथ अपने शब्द वापस लिये और कहा—"मै यह भी कहना चाहता हूँ कि अच्छी तरह विचार करने के बाद मै इस नतीजे पर पहुचा हू कि अध्यक्ष को अपने अधिकारो का जिक्र न करना चाहिए था, और न ऐसी भाषा का ही व्यवहार करना चाहिए था, जिसका अर्थ सरकार को धमकी देने के रूप मे किया जा सके, बल्कि कोई कार्रवाई करने से पहले मुझे देखना चाहिए था कि आगे क्या होता है।" इससे सरकार की चिन्ता मिट गई।

राष्ट्रीय दल का जन्म

असहयोग का जो पत्थर गया मे ऊचाई से ढलकना शुरू हुआ था वह १९२६ के आरम्भ मे साबरमती मे करीब-करीब नीचे आ गिरा। हम यह देख चुके है कि प्रतिसहयोगी, स्वतन्त्र और राष्ट्रीय-दलवालो के कितना निकट पहुच गये थे। तदनुसार उन्होने ३ अप्रैल को बम्बई में अन्य दलो के नेताओ के साथ एक बैठक की, जिसके फल-स्वरूप "इंडियन नेशनल पार्टी" (राष्ट्रीय दल) का जन्म हुआ। इस पार्टी का कार्यक्रम था शान्तिपूर्ण और वैध उपायो से (सामूहिक सत्याग्रह और करबन्दी को छोडकर) शीघ्र औपनिवेशिक स्वराज्य स्थापित करने की तैयारी करना। पण्डित मोतीलाल नेहरू ने इस पार्टी के सगठन को स्वराज्य-पार्टी के विरुद्ध चुनौती समझा। कुछ समझौते की बात-चीत के बाद स्वराज्य-पार्टी के दोनो दलो की एक बैठक २१ अप्रैल को साबरमती मे बुलाई गई। इस बैठक मे अन्य नेताओ के अलावा सरोजिनीदेवी, लाला लाजपतराय, श्री केलकर, श्री जयकर, श्री अणे और डा० मुजे भी थे। यहा महासमिति द्वारा पुष्टि मिलने की शर्तं रखते हुए समझौते पर हस्ताक्षर करनेवाले नेताओ के बीच यह तय हुआ कि १९२४ की फरवरी में स्वराजियो ने जो माग पेश की थी उसके सरकार-द्वारा दिये गये उत्तर को सतोष-जनक समझा जाय, यदि मन्त्रियो को प्रातो मे अपने कर्तव्य का पालन करने के लिए आवश्यक अधिकार, उत्तरदायित्व और स्वेच्छा-पूर्वक कार्य करने की सुविधा कर दी जाय। भिन्न-भिन्न प्रान्तो की कौंसिलो के काग्रेसी सदस्यो के ऊपर इस बात का निर्णय छोडा गया कि इस प्रकार दिये गये अधिकार पर्याप्त है या नही, पर साथ ही उनके निर्णय पर एक कमिटी की, जिसमे पण्डित मोतीलाल नेहरू और श्री मुकुन्दराव जयकर हो, पुष्टि मिल जाना

आवश्यक रखा गया। पर अभी इस समझौते की स्याही सूखने भी न पाई थी कि आन्ध्र प्रान्तीय काग्रेस-अमिटी के सभापति श्री प्रकाशम् ने अपनी असहमति प्रकट की। अन्य अनेक प्रमुख काग्रेसवादियो ने भी इसी प्रकार का असतोष प्रकट किया। साधारणतया यह समझा जाने लगा कि चाहे कुछ ही दिनो के लिए सही, स्वराजी शीघ्र ही फिर कौसिलो मे चले जायँगे और मत्रि-मण्डल कायम करेगे। परन्तु प० मोतीलाल नेहरू ने यह प्रकट करके कि पद-ग्रहण करने से पहले तीन शर्तो क पूरा होना जरूरी है, वातावरण को स्वच्छ कर दिया। वे तीन शर्ते थी.—

(१) मन्त्री कौसिलो के प्रति पूर्ण-रूप से उत्तरदायी समझे जायँ और उनपर सरकार का कोई शासन न रहे, (२) आय का उचित भाग "राष्ट्र-निर्माण" विभाग के लिये नियत किया जाय और (३) मत्रियो को हस्तान्तरित विभागों की नौकरियो पर पूरा अधिकार हो।

परन्तु सारी बाते फिर खटाई मे पड गई। श्री जयकर ने उस मसविदे को, जो कमिटी के सामने रखा गया, समझौते के बिलकुल विरुद्ध बताया। साबरमती के समझौते का निपटारा करने के लिए ५ मई को महासमिति की बैठक हुई। इस बैठक मे पण्डित मोतीलाल नेहरू ने कहा कि "चूकि शर्तों के ठीक-ठीक अर्थ के संबध में समझौते पर हस्ताक्षर करनेवालो मे इतना मतभेद है कि उसका दूर होना असम्भव है, इसलिए मै पिछले कुछ दिनो से समझौते की जो बातचीत चला रहा था उसे रद समझा जाय।" वह इग्लैण्ड जाना चाहते थे। इसलिए उन्होंने दो महीने की छुट्टी ली और श्रीनिवास आयगर ने उनका स्थान ग्रहण किया।

साम्प्रदायिक दंगे

१९२६ के मध्य मे देश की राजनैतिक स्थिति भयंकर हो गयी। ६ अप्रैल १९२६ को लॉर्ड इर्विन भारत मे आये। लगभग उसी समय कलकत्ते मे बड़ा ही भयानक साम्प्रदायिक दगा हो गया। छ सप्ताह तक कलकत्ते की सडके हत्या-काण्ड और अव्यवस्था का अखाडा बनी रही। जगह-जगह सड़को पर दगे हुए, ११० जगह आग लगाई गई, मन्दिरो और मस्जिदो पर हमला किया गया। सरकारी बयान के अनुसार पहली मुठभेड मे ४४ आदमी मरे और ५८४ घायल हुए और दूसरी मुठभेड मे ६६ आदमी मरे और ३९१ घायल हुए। ६ सप्ताह के विध्वस और हत्या-काण्ड के वाद दगा शान्त हुआ। लॉर्ड इर्विन इन दगो से बडे बेचैन हुए। उन्होने इस विषय पर जो भाषण दिये उनमे उन्होने अपनी सारी आस्था और विह्वलता, सारी धर्म-भावना और सहृदयता रख दी। उन्होने जनता को समझाया कि भारत के राष्ट्रीय जीवन और धर्मके नाम पर भारत की उस सुकृति को बचाओ जिसे वर्तमान वैमनस्य मिटा रहा है।

निर्वाचन में कांग्रेस की विजय

सितम्बर मे लाला लाजपतराय और पण्डित मोतीलाल नेहरू के बीच बडी कौसिल के काम के सबध मे फिर मतभेद उठ खडा हुआ। लालाजी का ख्याल था कि स्वराजियो की 'वाक्-आउट' की नीति हिन्दू-हितो के लिए स्पष्टतया हानिकर है। वह पद-ग्रहण करने के सम्बन्ध मे साबरमती के समझौते की पुष्टि के पक्ष मे भी थे। इसलिए उन्होने बडी कौसिल मे कांग्रेस-पार्टी से इस्तीफा दे दिया। बडी कौसिल की अवधि भी शीघ्र ही समाप्त होने वाली थी। नये निर्वाचन सर पर मौजूद थे।

१९२६ के नवम्बर मे निर्वाचन हुआ। मद्रास के काग्रेसी उम्मीदवार—अब वह स्वराजी न कहलाते थे—पूर्ण रूप से विजयी हुए। लॉर्ड बर्कनहेड प्रतीक्षा कर रहे थे कि देखे, गोहाटी मे काग्रेस के सहयोग करने का कोई लक्षण दिखाई देता है या नही। श्री एस० श्रीनिवास आयगर गोहाटी-काग्रेस के सभापति चुने गये।

गोहाटी कांग्रेस : १९२६

गोहाटी-काग्रेस स्वभावत ही तनातनी के वातावरण मे हुई। तनातनी का कारण सहयोग और असहयोग का पारस्परिक सघर्ष था। यह याद रखने की बात है कि आरम्भ मे असहयोग का अर्थ लगातार और एक-सी रुकावट डालना था,उसके बाद इस नीति का अनुसरण उस अवस्था मे, जब कौसिलो मे स्वराजियो का मताधिक्य हो, करने की बात कही गई। धीरे-धीरे यह सहयोग लगभग असहयोग के निकट आ लगा, क्या कौसिलो की कमिटियो के निर्वाचन-द्वारा प्राप्त होने वाली जगहो के सम्बन्ध मे और क्या भारत-सरकार की कमिटियो की नामजद जगहो के सम्बन्ध मे। अन्त मे यह असहयोग साबरमती मे सहयोग के आस-पास घूमने लगा, पर झिझक के साथ। कौसिल-पार्टी इस सम्बन्ध मे बात-चीत चलाने को तो तैयार थी, पर स्वीकार करने मे सकोच करती थी। इसके अलावा स्वराज्य-पार्टी मे भी असहयोग करने की प्रवृत्ति मौजूद थी। पर वह राष्ट्रीय-दल, स्वतन्त्र-दल या उदार-दलवालो की स्थिति अपनाने को तैयार न थी। सहयोग के विचार को तो वह खिलवाड मे उडाती थी, परन्तु स्वराजी खुद प्रतिसहयोग की, सम्मान-सहयोग की, सम्भव होने पर सहयोग और आवश्यक होने पर अडगा डालने की, और सुधारो के मामले मे सहयोग करने की बात करते जरूर थे। इन्ही सूक्ष्म पर पूर्ण रूप से व्यावहारिक प्रश्नो ने प्राग्ज्योतिषपुर (गोहाटी) मे आपस मे खिंचाव पैदा कर दिया था। साथ ही सरकार भी खुल्लम-खुल्ला प्रशसा करके, और अप्रत्यक्ष रूप से उसे आमन्त्रित करके, प्रलोभन दे रही थी और उन सारे हथकण्डो

से काम ले रही थी, जिनके द्वारा अनिश्चित मस्तिष्क और भीरू-हृदय काबू मे आते है।

यह खिचाव काफी सताने और तपानेवाला था, पर दु खान्त न था। किन्तु जब अकस्मात गोहाटी मे यह समाचार पहुचा कि एक मुसलमान ने स्वामी श्रद्धानन्द को रोग-शय्या पर उनसे मुलाकात करने के बहाने, गोली मार दी तब यह और भी बढ गया। जिस दिन यह समाचार मिला उस दिन गोहाटी मे काग्रेस के सभापति का हाथी पर जलूस निकाला जानेवाला था। आसाम हाथियो का देश ठहरा, इसलिए वह काग्रेस के सभापति का सम्मान अद्भुत और अपूर्व ढग से करना चाहता था। पर जलूस का विचार छोड़ देना पड़ा। हिन्दू-मुसलमान दोनो मे इस दुखद सवाद से शोक छा गया।

जब श्रीनिवास ने अपना भाषण समाप्त किया तब उसमे कोई बात दिखाई न पडी। उनके सारे विचार पहले से ही जाने-बूझे थे। उन्होने निर्वाचनो का जिक्र किया और कहा कि स्वराज्य-पार्टी ने कौसिलो मे जिस नीति का अवलम्बन किया, परिणामो ने उसको उचित सिद्ध कर दिया है। फिर देशबन्धु की समझौते की कोशिश, भारत का दर्जा, सेना और जल-सेना के सम्बन्ध मे कहकर कौसिल के कार्यक्रम की चर्चा की। इसके बाद उन्होने तत्कालीन समस्याओ, मुद्रा और साम्प्रदायिक झगडो और साथ ही खद्दर, अस्पृश्यता और मादक-द्रव्यनिषेध की चर्चा की और सहिष्णुता और एकता पर जोर दिया।

गोहाटी के प्रस्ताव हस्ब मामूल थे। स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द के सम्बन्ध मे प्रस्ताव गाधीजी ने पेश किया और अनुमोदन मौलाना मुहम्मदअली ने। गाधीजी ने समझाया कि मजहब की असलियत क्या है, और हत्या के कारणो को बताया— "शायद अब आप लोग समझ जायगे कि मैने अब्दुल रशीद को भाई क्यो कहा। मै तो उसे स्वामीजी की हत्या का दोषी तक नही ठहराता। दोषी तो असल में वे है जिन्होने एक-दूसरे के विरुद्ध घृणा को उत्तेजित किया ह।" केनिया का नम्बर प्रस्तावो मे दूसरा था। केनिया मे प्रवासी भारतीयो के विरुद्ध कानून और भी कठोर होता जा रहा था। आरम्भ मे कर २० शिलिग था। फिर वह मुद्रा-व्यवस्था की उलट-फेर के द्वारा बढाकर ३० शिलिग कर दिया गया और उसके बाद कानून के द्वारा ५० शिलिग कर दिया गया। इस प्रकार वहा यूरोपियन हितो की रक्षा भारतीय हितो के, उनकी स्वतन्त्रता के और उनकी आकाक्षाओ के विरुद्ध की जा रही थी। कौसिलो के कार्यक्रम के सम्बन्ध मे यह स्पष्ट कर दिया गया कि—

(१) जबतक सरकार राष्ट्रीय माग का ऐसा उत्तर न दे देगी जो काग्रेस की या महासमिति की राय मे सन्तोषजनक हो, तबतक काग्रेसवादी मन्त्रित्व के

पद को या सरकार-द्वारा प्रदान किये जानेवाले और किसी पद को स्वय ग्रहण न करेगे, और अन्य पार्टियो-द्वारा मन्त्रि-मण्डल की रचना का विरोध करेगे।

(२) काग्रेसवादी ऐसे प्रस्ताव पेश करेगे और ऐसे प्रस्तावो और बिलो का समर्थन करेगे जो राष्ट्रीय जीवन की उचित वृद्धि के लिए आर्थिक, कृषि-सम्बन्धी, उद्योग और व्यापार-सम्बन्धी हितो की उन्नति के लिए, और व्यक्तिगत तथा भाषण देने, सभा सगठन करने और समाचार पत्रो की आजादी और फलत नौकरशाही को स्थान-च्युत करने के लिए आवश्यक हो।

इस जमाने मे काग्रेस का काम वार्षिक अधिवेशनो मे लम्बे-चौडे प्रस्ताव पास करना और कौसिलो मे मुठभेड करते रहना मात्र रह गया था। पर एक वात ऐसी भी थी जिसने उन दिनो मे विशेषता धारण कर ली थी। जबसे अखिल-भारतीय चर्खा-सघ बना, खद्दर, ग्रामोन्नति और मितव्ययिता के पवित्र वातावरण में पनपने लगा। जिन स्त्री-पुरुषो ने खद्दर का व्रत ले लिया था वे पृथक् रूप से इसके प्रचार मे लगे हुए थे। वार्षिक प्रदर्शिनियो के द्वारा सिद्ध हुआ कि कताई ने कितनी उन्नति कर दिखाई है। बिहार ने गोहाटी के अवसर पर खद्दर तैयार करने में अपनी छ सात साल की जो उन्नति दिखाई वह सारे देश के लिए दृष्टात-स्वरूप थी।

: १२ :

साइमन कमीशन का बहिष्कार : १९२७-२८

महासमिति की बैठक

बम्बई की महासमिति की बैठक मे साम्राज्यवाद-विरोधी परिषद् के प्रश्नपर विचार हुआ। प० जवाहरलाल इस समय यूरोप में थे। उन्होने परिषद् मे भारत का प्रतिनिधित्व किया और ब्रूसेल्स से, जहा परिषद् की बैठक हुई थी, काग्रेस को उसकी एक रिपोर्ट भी भेजी। महासमिति ने जवाहरलाल की सेवाओ की मुक्तकठ से प्रशसा की और साम्राज्यवाद-विरोधी सघ के प्रयत्न को भी सराहा। महासमिति ने काग्रेस से यह सिफारिश करने का भी निश्चय किया कि वह सघ को अपनी एक सहायक-सस्था मानकर उसके उद्देश्य तथा कार्यो का समर्थन करे।

दूसरे प्रस्ताव-द्वारा चीन की आजादी की लडाई के साथ भारतीयो की सहानुभूति प्रकट की गई और चीन को फौजे भेजने की भारत-सरकार की कार्रवाई की निन्दा की गई, साथ ही फौजो की वापसी की भी माग की गई। हिन्दुस्तानी-सेवा-दल ने चीन को एम्बुलेन्स कोर भेजने का जो इरादा किया था उसकी

महासमिति ने प्रशंसा की। ब्रिटेन का प्रस्तावित ट्रेड-यूनियन-कानून, बगाल-काग्रेस का झगडा, मजदूरो का संगठन, नागपुर का सत्याग्रह तथा ब्रिटिश माल का बहिष्कार—ये अन्य विषय थे जिन पर महासमिति ने उपयुक्त प्रस्ताव पास किये। इस समय मई के चौथे सप्ताह मे बड़ा आनन्ददायक समाचार प्राप्त हुआ। चार साल के जेल-जीवन के बाद सुभाष बाबू छोड दिये गये। लॉर्ड लिटन इस विषय मे जरा घबराते रहते थे।

दंगों की बाढ़

सन् १९२७ की गर्मियों मे अन्य सालो को भाति कोई मार्के का कानून पास नही हुआ, लेकिन देश मे हिन्दू-मुस्लिम दगो की बाढ-सी आ गई। सबसे भीषण दगा लाहौर मे हुआ, जो ३ मई से ७ मई तक होता रहा और जिसमे २७ व्यक्ति मारे गये तथा २७२ घायल हुए। बिहार, मुलतान, बरेली तथा नागपुर मे भी इसी प्रकार के दगे हुए। लाहौर के बाद नागपुर का दगा इन सबमे भीषण था, जिसमे १९ व्यक्ति मारे गये और १२३ घायल हुए। इन दगो के पहले क्या-क्या घटनाएँ घटी, जो इन दगो मे कुछ का कारण बनी, इसके बारे मे कुछ कहना आवश्यक है। तीन साल पहले एक किताब छपी थी, जिसका नाम था 'रंगीला रसूल'। किताब के नाम से पता चलता है कि वह कितनी आपत्तिजनक होगी। सरकार ने उसके लेखक पर मुकदमा चलाया, जो दो साल तक चलता रहा। अदालत ने दो साल की सजा का हुक्म सुनाया जो अपील मे भी बहाल रहा, लेकिन हाईकोर्ट ने सजा रद कर दी और लेखक को बरी कर दिया। 'रिसाला वर्त्तमान केस' नाम का एक केस और भी हुआ, जिसमे अभियुक्त को सजा हो गई। इन दो मुकदमो का यह फल हुआ कि सरकार ने कानून मे अनिश्चितता देखकर अगस्त १९२७ को एक बिल पेश कर दिया, जिसका मुख्य भाग इस प्रकार था—

"जो कोई व्यक्ति सम्राट् की प्रजा के किसी वर्ग की धार्मिक भावनाओं पर जान-बूझकर और बुरे इरादे से चोट पहुचाने के लिए मौखिक या लिखित शब्दों से या दृश्य सकेतो से उस वर्ग के धर्म या धार्मिक भावनाओ का अपमान करेगा या अपमान करने का प्रयत्न करेगा, उसे दो साल की सजा मिलेगी या जुर्माना होगा या उस पर सजा व जुर्माना दोनो होगे।"

एकता सम्मेलन

दो दिन बहस होकर ही बिल पास हो गया। अभीतक २६ दंगे हो चुके थे जिनमे से १० उत्तर प्रदेश मे, ६ बम्बई मे और २-२ पंजाब, मध्य-देश, बगाल, बिहार तथा दिल्ली मे हुए थे। २९ अगस्त सन् १९२७ को भारतीय धारा-सभा मे भाषण देते हुए वाइसराय लार्ड इर्विन ने बताया कि १८ महीने से भी कम समय मे दंगो के कारण २५० व्यक्ति मौत के घाट उतर गये और २५०० से अधिक

घायल हुए। वायसराय ने एकता की आवश्यकता पर भी जोर दिया। इसके बाद एक एकता-सम्मेलन भी किया गया, लेकिन उसे कुछ अधिक कामयावी न मिली। महासमिति ने भी २७ अक्तूबर १९२७ को इसी प्रकार के एक एकता-सम्मेलन का आयोजन किया। सम्मेलन का उद्घाटन श्री श्रीनिवास आयगर ने किया। बहुत लम्बी बहस के बाद सम्मेलन ने एक प्रस्ताव पास किया। सम्मेलन ने उन्ही दिनो के कुछ कातिलाना हमलो की भी निन्दा की और हिन्दू तथा मुसलमान नेताओ से अपील की कि वे देश मे अहिंसा का वातावरण उत्पन्न करे। सम्मेलन ने काग्रेस की महासमिति को भी यह अधिकार दिया कि वह हिन्दूमुस्लिम एकता का प्रचार करने के लिए हर प्रात मे एक-एक कमिटी नियुक्त करे।

महासमिति की बैठक

एकता-सम्मेलन के खत्म होते ही २८, २९ व ३० अक्तूबर १९२७ को कलकत्ता मे महासमिति की बैठक हुई। साम्प्रदायिक प्रश्न पर एकता-सम्मेलन के प्रस्ताव ज्यो-के-त्यो पास कर दिये गये। इसके पश्चात् बगाल के नजरबन्दो का सवाल सामने आया। इन नजरबन्दो मे कुछ तो चार-चार साल से जेलो मे पडे हुए थे। इसलिए उनकी शीघ्र-से-शीघ्र रिहाई कराने का प्रयत्न करने के लिए एक कमिटी नियुक्त की गई।

साइमन कमीशन का उद्देश्य

नवम्बर के पहले हफ्ते मे कुछ सनसनीदार बाते हुई। वाइसराय अपने दौरे का कार्यक्रम रद करके दिल्ली वापस आ गये। भारत के मुख्य-मुख्य नेताओ को ५ नवम्बर तथा उसके बाद की तारीखो मे सुविधानुसार वाइसराय से मिलने का निमन्त्रण दिया गया। गाधीजी इस समय दिल्ली से बहुत दूर बगलौर मे थे। उन्हे भी वाइसराय से मिलने का निमन्त्रण मिला। उन्होने अपना कार्यक्रम रद कर दिया और दिल्ली आ पहुचे। जब वह वाइसराय से मिले तब कोई ऐसी विशेष बात न निकली। लार्ड इर्विन ने गाधीजी के हाथ मे साइमन-कमीशन के सम्बन्ध मे भारत-मन्त्री की घोषणा रख दी। जब गाधीजी ने वाइसराय से पूछा कि क्या बस यही काम है, तो लार्ड इर्विन ने कहा, "बस, यही।" गाधीजी ने सोचा कि यह सन्देश तो एक आने के लिफाफे के जरिये भी उनके पास पहुच सकता था। पर बात यह थी कि साइमन-कमीशन की घोषणा भारत मे ८ नवम्बर सन् १९२७ को की गई। वाइसराय उसके प्रति सद्भावनापूर्ण सहयोग प्राप्त करने के प्रयत्न मे थे। काग्रेस के सिवा भी भारत की सब पार्टिया साइमन-कमीशन की नियुक्ति से इसलिए नाराज हुई कि उसमे एक भी भारतीय नही रखा गया था। श्री दिनशा वाचा जैसे अखिल-भारतीय नरम नेताओ ने कमीशन के विरुद्ध एक

घोषणा-पत्र निकाला। काग्रेस के सिवा भारत के सब राजनैतिक दलो के प्रतिनिधियों ने घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर किये।

और आखिरकार यह कमीशन, जिसे हर जगह धिक्कारा जा रहा था, किस काम के लिए नियुक्त किया गया था? सरकारी शब्दो मे कमीशन को यह काम सौपा गया था कि वह ब्रिटिश-भारत के शासन-कार्य की शिक्षा-वृद्धि की, प्रातिनिधिक सस्थाओ के विकास की एवं तत्सम्बन्धी विषयो की जाच करे और इस बात की रिपोर्ट पेश करे कि उत्तरदायी शासन का सिद्धान्त लागू करना ठीक है या नही? यदि है तो किस दरजे तक? और अभीतक उत्तरदायी शासन जिस मात्रा मे स्थापित किया गया है उसे बढाया जाय, या कम किया जाय या उसमे और किसी प्रकार कोई हेर-फेर किया जाय? इन प्रश्नो के साथ इस बात की रिपोर्ट भी पेश की जाय कि प्रान्तो मे दो-दो कौसिलो का स्थापित करना वाछनीय है या नही?

जब कमीशन अपनी रिपोर्ट दे दे और उसपर भारत-सरकार तथा सम्राट् की सरकार विचार कर ले तब सम्राट्-सरकार का यह फर्ज होगा कि वह पार्लमेण्ट के सामने अपने निर्णय पेश करे। लेकिन समाट्-सरकार का पार्लमेण्ट से यह कहने का इरादा नही है कि जबतक उक्त निर्णयो पर भारत के भिन्न-भिन्न विचारवालो की राये जाहिर न हो जाय उससे पहले ही वह उन निर्णयो को स्वीकृत कर ले। इसलिए सम्राट्-सरकार ने निश्चय किया है कि वह पार्लमेण्ट से यह कहे कि ये निर्णय विचारार्थ दोनो हाउसो की एक ज्वाइण्ट (संयुक्त) कमिटी के सुपुर्द किये जायं और इस बात का प्रबन्ध किया जाय कि भारत की केन्द्रीय धारा सभाये उक्त कमिटी के सामने अपने विचार पेश करने के लिए प्रतिनिधि-मण्डल भेजे जो ज्वाइण्ट कमिटी की बैठको मे भाग ले और उनके साथ विचार-विमर्श करे। ज्वाइन्ट-कमिटी जिन-जिन सस्थाओ के विचार जानना चाहे उसके प्रतिनिधियो से विचार-विमर्श करने का भी उसे अधिकार हो।

मद्रास-कांग्रेस : १९२७

ऐसे वातवरणों मे १९२७ की काग्रेस मद्रास नगर मे हुई। कमीशन के सम्बन्ध मे काग्रेस को क्या करना होगा, यह ठीक-ठीक किसी को पता नही था। प्रश्न यह था कि इस अधिवेशन का सभापति कौन हो? १९२७ मे हिन्दू-मुस्लिम दङ्गे हो रहे थे। दो एकता-सम्मेलन हो चुके थे और महासमिति ने एक सम्मेलन के प्रस्ताव भी स्वीकार कर लिये थे। ऐसे वर्ष मे काग्रेस का सभापतित्व एक मुसलमान से बढकर और कौन कर सकता था? और मुसलमानो मे भी डॉ० असारी से बढकर? वही मद्रास-काग्रस के सभापति चुने गये। उन्होने अपने भाषण मे साम्प्रदायिक मेल-जोल के प्रश्न को खूब जगह दी। काग्रेस की नीति का सक्षेप मे वर्णन करते हुए उन्होने बताया कि काग्रेस की नीति ३५ साल तक तो

सहयोग की रही, फिर डेढ साल तक असहयोग की, और फिर चार साल कौसिलो मे अडगेबाजी करने और कौसिलो का काम ही रोक देने की। "असहयोग असफल सिद्ध नही हुआ" डॉ० अन्सारी ने कहा, "हम ही असहयोग के लिए विफल सिद्ध हुए। शोक-प्रस्ताव, साम्राज्यवाद-विरोधी-सघ, चीन, पासपोर्टों का न मिलना आदि ऐसे विषय थे जिन पर हर साल ही प्रस्ताव पास होते रहते थे। चूकि स्वराज्य का मसविदा तैयार करने की माग की गई थी और काग्रेस के सामने कई मसविदे पेश थे, अत काग्रेस ने कार्य-समिति को अधिकार दिया कि वह अन्य सस्थाओ से मशविरा करके स्वराज्य का मसविदा तैयार करे और उसे एक विशेष कन्वेन्शन (पचायत) के सामने स्वीकृति के लिए रक्खे। इस कार्य के लिए कार्य-समिति को और सदस्य बढाने का भी अधिकार दिया गया। काग्रेस के विधान मे कुछ परिवर्तन किया गया। लेकिन इस वर्ष का सबसे मुख्य प्रस्ताव शाही कमीशन के सम्बन्ध मे था, जिसका प्रारम्भिक अश इस प्रकार था—"चूकि ब्रिटिश-सरकार ने भारत के स्वभाग्य-निर्णय के अधिकार की पूर्ण उपेक्षा करके एक शाही कमीशन नियुक्त किया है, यह काग्रेस निश्चय करती है कि भारत के लिए आत्मसम्मान-पूर्ण एकमात्र मार्ग यही है कि वह कमीशन का हर हालत मे और हर तरह से बहिष्कार करे।"

काकोरी-केस के अभियुक्तो को बर्बरतापूर्ण सजाये दी जाने पर और उससे जनता मे रोष की प्रबल भावना फैलने पर भी सरकार ने उनकी सजाये न घटाईं। उस पर भी एक विशेष प्रस्ताव-द्वारा दु ख प्रकट किया गया और काग्रेस ने उनके परिवारो के साथ अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट की।

अन्त मे काग्रेस के ध्यय की भी एक पृथक् प्रस्ताव-द्वारा परिभाषा की गई। इसके अनुसार यह कहा गया—"यह काग्रेस घोषित करती है कि भारतीय जनता का लक्ष्य पूर्ण राष्ट्रीय स्वतन्त्रता है।" यह प्रस्ताव कुछ साल तक काग्रेस के हरेक अधिवेशन मे पेश होता चला आ रहा था। यूरोप से जवाहरलालजी के लौट आने के कारण इस प्रस्ताव को और भी बल प्राप्त हुआ। स्वय श्रीमती बेसेण्ट ने भी इस प्रस्ताव पर कोई आपत्ति न की। आपने विषय-समिति की बैठक में कहा कि भारत के लक्ष्य का यह बडा ही शानदार व स्पष्ट वक्तव्य है। गाधीजी उस समय समिति की बैठक मे मौजूद नही थे और उन्हे इस प्रस्ताव का पता तभी चला जब कि वह पास हो गया।

कमीशन का बहिष्कार

जब १९२८ का साल प्रारम्भ हुआ तब देश कमीशन के बहिष्कार मे जी-जान से जुटा हुआ था। कमीशन की घोषणा करते समय लॉर्ड इर्विन ने कहा था कि भारतीयसम्मान तथा भारतीय गौरव को जान-बूझ कर अपमानित करने का सम्राट्-

सरकार का कोई इरादा नही है। साथ ही उन्होने इस बात की भी धमकी दे दी थी कि यदि कमीशन के कार्य मे भारतीयो को सहायता न प्राप्त हुई तब भी कमीशन अपना कार्य बदस्तूर चलाता रहेगा और अपनी रिपोर्ट पार्लमेण्ट मे पेश कर देगा। रिपोर्ट पेश हो जाने के बाद पार्लमेण्ट उस पर अपनी मर्जी के अनुसार जो निर्णय करना चाहेगी, करेगी।

३ फरवरी को कमीशन बम्बई मे आकर उतरा। उस दिन भारत-भर मे हड़ताल मनाई गई और कमीशन के बहिष्कार का श्रीगणेश कर दिया गया। मद्रास मे हाईकोर्ट के पास पुलिस ने भीड़ पर गोली चला दी। पुलिस की गोली से कई व्यक्ति घायल हुए, जिनमे से एक तो जहा-का-तही मर गया और दो बाद मे जाकर मरे। कलकत्ते मे भी छात्रो और पुलिस की मुठभेड हुई।

कमीशन बम्बई से चलकर सबसे पहले दिल्ली आया। दिल्ली मे कमीशन को "गो बैक, साइमन!" "साइमन वापस लौट जाओ" के झण्डे तथा तख्ते दिखाये गये। दक्षिण भारत लिबरल फेडरेशन (जो आम तौर पर जस्टिस-पार्टी के नाम से प्रसिद्ध था) तथा कुछ मुस्लिम सस्थाओ को छोडकर यह कहा जा सकता है कि भारत ने कमीशन का पूर्ण बहिष्कार किया।

कमीशन के बहिष्कार की इतनी भारी सफलता देखकर सरकार के मन मे यह बात आई कि अब आतक तथा दबाव से काम लेना चाहिए। लाहौर मे कमीशन के विरोध मे प्रदर्शन करने के लिए लाला लाजपतराय के नेतृत्व मे एक बडा भारी जन-समूह एकत्र हुआ। पुलिस वालो ने भीड पर हमला किया और कई प्रतिष्ठित नेताओ को डण्डो और लाठियो से ठोका-पीटा। लालाजी के कई जगह गहरी चोटे आईं। यह एक आम ख्याल है कि उनकी मृत्यु इस बुजदिलाना हमले के कारण ही हुई थी। यद्यपि लालाजी की मृत्यु के सम्बन्ध मे खुले तौर पर यह अभियोग लगाया गया, तो भी सरकार ने निष्पक्ष जाच करने से साफ इन्कार कर दिया।

लखनऊ मे भी कमीशन के आने के दिन निःशस्त्र तथा शान्त भीड पर पुलिस ने कई बार जानबूझ कर व अकारण डण्डे बरसाये। उत्तरप्रदेश की पुलिस ने तो जवाहरलालजी तक को न छोडा। लखनऊ तो पैदल तथा घुडसवार पुलिस के कारण एक विशाल फौजी पडाव-सा ही बन गया। चार दिन तक पुलिस के बर्बरतापूर्ण हमले होते रहे। पुलिस वाले लोगों के घरों तक मे घुस गये और "साइमन, वापस चले जाओ।" के नारे लगाने पर ही उन्होने कई प्रतिष्ठित राष्ट्रीय कार्यकर्ताओ को गिरफ्तार कर लिया और बुरी तरह पीटा। लेकिन लखनऊ के जोशीले नागरिक इन बर्बरता-पूर्ण हमलो से तनिक भी न घबराए। अधिकारी-वर्ग को तो उन्होने एक बार इतना छकाया कि वह देखता का-देखता रह गया और सारा शहर हँसी के मारे लोट-पोट हो गया। मामला इस प्रकार था: कुछ ताल्लुकेदारो ने कैसरबाग मे साइमन कमीशन

को एक पार्टी दी। पुलिस ने कैसरबाग को चारो ओर से घेर लिया। इतनी एहतियात रखने पर भी जब आसमान से सैकडो काली-काली पतंगे तथा गुब्बारे, जिन पर 'साइमन चले जाओ', 'भारत भारतवासियो के लिए है' आदि शब्द लिखे हुए थे, आ-आकर बाग मे गिरने लगे तब सारी पार्टी का मजा किरकिरा हो गया।

जब कमीशन पटना पहुचा तब उसके विरोध मे प्रदर्शन करने के लिए ५० हजार आदमियो की एक भारी भीड जमा हुई। कमीशन का स्वागत करने के लिए भी कुछ सरकारी चपरासी और मुट्ठीभर सरकारी कर्मचारी मौजूद थे। सरकार ने आस-पास के गावो से लारियो मे भर-भर कर किसान बुलवाये, लेकिन स्वागत-कैम्पो मे घुसने के बजाय वे बहिष्कार कैम्पो मे जा डटे और स्टेशन पर विराट् जन-समूह ने कमीशन के विरोध मे जो अहिंसा-पूर्ण प्रदर्शन किया उसे और स्वागत तथा बहिष्कार-पार्टियो के बल को देखकर तो सरकार की आखे ही खुल गईं।

कमीशन के भारत आते ही सर जान साइमन ने वाइसराय को एक पत्र लिखा, जिसमे उन्होने कहा कि कमीशन एक सयुक्त स्वतन्त्र सम्मेलन का रूप लेगा जिसमे एक ओर कमीशन के सातो अग्रेज सदस्य होगे और दूसरी ओर बडी कौंसल-द्वारा चुने गये सातो भारतीय। सम्मेलन के सब सदस्यो को सब कागजात देखने का अधिकार होगा और भारतीय-सदस्य उसमे बराबरी के दर्जे पर माने जायगे। प्रान्तीय कौसिलो से भी इसी प्रकार की प्रान्तीय सिलेक्ट कमिटिया चुनने की सिफारिश करने को कहा गया था। यह निश्चय हुआ कि जब केन्द्रीय विषयो पर कमीशन के सामने विचार होगा तब उसके साथ बडी कौंसल-द्वारा निर्वाचित संयुक्त-सिलेक्ट-कमिटी काम करेगी और जब प्रान्तीय विषयो पर विचार होगा तब उस प्रान्तीय कौसिल की सिलेक्ट-कमिटी काम करेगी, जिसका उन विषयो से सम्बन्ध है। कमीशन अपनी रिपोर्ट अलग ब्रिटिश-सरकार को देगा और सयुक्त-सिलेक्ट-कमिटी अपनी रिपोर्ट अलग बडी कौंसिल को। इस घोषणा का भी भारत पर कुछ असर न हुआ। घोषणा के निकलने के दो-तीन घन्टे के भीतर ही राजनैतिक नेतागण दिल्ली मे एकत्र हुए और यह घोषणा की कि कमीशन के खिलाफ उनकी जो आपत्तिया थी वे ज्यो-की-त्यो बनी हुई है और वे किसी भी हालत मे कमीशन से सरोकार नही रखना चाहते। असेम्बली ने तो केन्द्रीय सयुक्त सिलेक्ट-कमिटी के लिए अपने सदस्य तक चुनने से इन्कार कर दिया। इस सम्बन्ध में लाला लाजपतराय ने १६ फरवरी को असेम्बली में यह प्रस्ताव पेश किया कि चूकि कमीशन की सदस्यता तथा उसके कार्य की सारी योजना असेम्बली को अस्त्रीकार्य है, अतः वह उससे किसी भी हालत मे और किसी भी तरह कोई सरोकार नही रखना चाहती। पण्डित मोतीलाल नेहरू ने कहा कि "कमीशन के साथ भारतीय

उसी हालत में सहयोग कर सकेंगे जब कि उसमे भारतीय भी इतनी ही संख्या मे नियुक्त किये जायं।" प्रस्ताव ६२ के विरुद्ध ६८ रायो से पास हो गया। सरकार को लाचार होकर स्वय केन्द्रीय कमिटी के लिए असेम्बली के सदस्य नामजद करने पडे। यहा यह जानकर आश्चर्य होगा कि जब कमीशन बम्बई मे घूम रहा था तब 'सर' की पदवी धारण करनेवाले २२ नाइटो मे से एक ने भी कमीशन से मिलने की तकलीफ गवारा न की। देश में बहिष्कार की जो लहर फैली हुई थी उसका इससे ज्वलन्त प्रमाण और क्या मिल सकता है?

सर्वदल सम्मेलन

साइमन कमीशन के भ्रमण के बाद काग्रस के प्रस्ताव के अनुसार दिल्ली मे फरवरी-मार्च १९२८ मे सर्वदल-सम्मेलन की बैठक की गई। सम्मेलन मे उपस्थित संस्थाएँ और काग्रेस इस बात पर एक मत हो गये कि भारत की वैधानिक समस्या पर 'पूर्ण उत्तरदायी शासन' को आधार मानकर विचार होना चाहिए। दो महीनो में सम्मेलन की कुल मिलाकर २५ बैठके हुई और लगभग ¾ समस्याएँ शातिपूर्वक तय हो गईं। १९ मई को डा० अन्सारी के सभापतित्व मे फिर सम्मेलन की बैठक हुई, जिसमे यह निश्चय हुआ कि भारतीय विधान के सिद्धातो का मसविदा तैयार करने के लिए प० मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता मे एक कमिटी नियुक्त की जाय, जो १ जुलाई १९२८ तक अपनी रिपोर्ट दे दे और मसविदा देश की भिन्न-भिन्न सस्थाओ के पास भेजा जाय। २९ राजनैतिक संस्थाओ ने कमिटी नियुक्त करने के प्रस्ताव के पक्ष मे राय दी।

बारडोली सत्याग्रह की बैठक

१९२८ की घटनाओ मे बारडोली का सत्याग्रह भी प्रमुख था। बारडोली वह तहसील है जहा गाधीजी 'सामूहिक-सविनय-अवज्ञा' का प्रयोग करना चाहते थे, लेकिन दो तीन बार इरादा करके उन्होंने फरवरी १९२२ मे उसे छोड दिया था। वारडोली में बन्दोबस्त होनेवाला था। बन्दोबस्त का और कोई परिणाम होता हो या न होता हो, यह एक परिणाम अवश्य होता है कि मालगुजारी लगभग २५ प्रतिशत बढ जाती है। बारडोली के आदमियो का कहना था कि उनपर माल गुजारी बढने का कोई कारण नही होना चाहिए, क्योकि जमीन से जो कुछ भी उनकी फसल बढी है या अच्छी है उसके लिए उनको बहुत परिश्रम और समय खर्च करना पड़ा है। फिर भी बारडोली मे सरकार ने २५ प्रतिशत मालगुजारी बढा दी। जाच कराने के सभी उपाय व्यर्थ हो गये। अन्त मे चुनौती दे दी गई और करबन्दी आन्दोलन शुरू हो गया। काग्रेस ने पहले कोई दखल नही दिया। किसानो ने कर न देने का निश्चय पहले ही अपनी ताल्लुका-परिषद् मे कर लिया था और सरदार वल्लभभाई पटेल को आमन्त्रित किया था कि उनका नेतृत्व

करे। ऐसी हालत मे सरदार पटेल ने आन्दोलन को सगठित किया। सरकार ने जानवरो की कुर्की कराना शुरू किया। लोगो ने कुर्किया होने के मार्ग मे कोई रुकावट नही डाली। इसके बाद जल्द ही, बम्बई-कौसिल के कुछ निर्वाचित सदस्यो ने विरोध मे कौसिल की सदस्यता से त्याग पत्र दे दिया और आन्दोलन मे दिलचस्पी लेने लगे। असेम्बली के अध्यक्ष विट्ठलभाई पटेल ने भी वाइसराय को एक पत्र लिखा, जिसमे उन्होने इस बात की धमकी दी कि यदि सरकार न झुकेगो तो वह इस्तीफा देकर इस काम मे जुट जायगे। आखिरकार एक मार्ग निकल ही आया, जिसके अनुसार एक तीसरे आदमी ने बढाई गई मालगुजारी जमा कर दी, कैदियो की रिहाई की शर्त मान ली गई, जायदाद का लौटाया जाना तय हो गया और आन्दोलन वापस लेने का निश्चय हुआ। सरकार ने एक अदालत विठा दी, जिसमे न्याय-विभाग के और शासन-विभाग के प्रतिनिधि थे। अदालत ने मामले की जाच की और यह निश्चय किया कि मालगुजारी केवल ६¼ प्रतिशत बढाई जाय। वास्तव मे देखा जाय तो न तो कानून मे ही और न मालगुजारी के नियमो मे ही ऐसा कोई विधान था कि कोई अदालत जाच के लिए बिठाई जाय। इस बात को भी ध्यान मे रखना चाहिए कि यद्यपि अदालत ने यह सिफारिश की थी कि केवल ६¼ मालगुजारी बढाई जाय, तो भी वास्तव मे बारडोली तहसील मे मालगुजारी बिलकुल बढी ही नही और फैसले के बाद भी अपनी पहली हद तक ही रही। समझौते की वास्तविक सफलता तो इस बात मे थी कि मालिको को बेची हुई जमीने और पटेल तथा तलाटियो को अपनी जगहे फिर मिल गई।

सर्वदल सम्मेलन की बैठक

नेहरू-कमिटी की रिपोर्ट पर विचार करने के लिए सर्वदल-सम्मेलन की बैठके लखनऊ में २८, २९ तथा ३० अगस्त १९२८ को हुई। नेहरू-कमिटी को उसके परिश्रम के लिए बधाई दी गई। सम्मेलन ने उसे औपनिवेशिक स्वराज्य के पक्ष मे घोषित किया, यद्यपि उन राजनैतिक दलो को अपने विचारो के अनुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता दी गई, जिनका ध्येय 'पूर्ण स्वतन्त्रता' था। उन पूर्ण स्वतन्त्रतावादियो ने, जो औपनिवेशिक स्वराज्य के पक्ष मे न थे, सम्मेलन मे एक वक्तव्य पढकर सुनाया, जिसमे बात स्पष्ट की गई कि भारत का विधान पूर्ण-स्वतन्त्रता के आधार पर ही बनाया जाना चाहिए। उनका उद्देश्य था कि वे उक्त प्रस्ताव से, जिसके द्वारा उन्हे कार्य-स्वतन्त्रता दी गई थी, खूब फायदा उठाएँ। इसलिए जहा उन्होने प्रस्ताव का समर्थन न करने का निश्चय किया, वहा उन्होने सम्मेलन के कार्य मे कोई बाधा न डाली। उन्होने कहा कि इस प्रस्ताव से उनका कोई सम्बन्ध नही है और इसलिए वे न तो उस पर होनेवाली बहस मे भाग लेगे और न उसमे कोई सशोधन पेश करेगे। सम्मेलन मे जिन अन्य विषयो पर विचार

हुआ वे सिन्ध, प्रान्तो का बटवारा तथा सयुक्त-निर्वाचिन से सम्बन्ध रखते थे। सम्मेलन की रिपोर्ट पर महासमिति ने दिल्ली मे ४ तथा ५ नवम्बर को विचार किया। महासमिति ने पूर्ण-स्वतन्त्रता के ध्येय को दोहराया, नेहरू-कमिटी के साम्प्रदायिक फैसले को स्वीकार किया और यह राय जाहिर करते हुए कि नेहरू-कमिटी के प्रस्ताव राजनैतिक प्रगति की ओर ले जाने मे सहायक है उन्हे आमतौर पर स्वीकार किया।

कलकत्ता-कांग्रेस : १९२८

कलकत्ता-काग्रेस राष्ट्रीय सम्मेलनो मे एक बड़े महत्व का सम्मेलन था, क्योकि उसे काग्रेस का भावी मार्ग निर्दिष्ट करना था। इस महत्त्व के कारण पडित मोतीलाल नेहरू उसके सभापति चुने गये। इसके साथ सर्वदल-सम्मेलन भी लागू हुआ था, जिसका पूरा इजलास कलकत्ते मे हुआ। इस समय भारत मे साइमन-कमीशन का दूसरा दौरा शुरू हो चुका था और जिस समय काग्रेस का अधिवेशन कलकत्ता मे हो रहा था उस समय भी कमीशन देश का दौरा कर रहा था। पडितजी ने अपने अभिभाषण मे बताया कि कमीशन का देश मे, कितने जोर के साथ बहिष्कार हुआ और उस बहिष्कार ने एग्लो-इण्डियनो के दिमाग पर क्या असर किया। उन्होने कहा कि हमारा लक्ष्य स्वाधीनता है, जिसका स्वरूप इस बात पर निर्भर है कि वह किस समय और किस परिस्थिति मे हमे प्राप्त होती है। आगे पंडितजी ने इस बात पर जोर दिया कि "सर्वदल-सम्मेलन जिस स्थल तक पहुच गया है वहीं से सरकार को उसका कार्य शुरू कर देना चाहिए और जहा तक हम जा सके वहाँ तक उसे हमारा साथ देना चाहिए।"

कलकत्ता-काग्रेस की एक भारी विशेपता यह थी कि विदेशो से व्यक्तियो तथा संस्थाओ की सहानुभूति के सैकडो सन्देश प्राप्त हुए जिनमे न्यूयार्क से श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्रीमती सनयात सेन, मोशिये रोम्या रोला और फारस के समाजवादी दल तथा न्यूजीलैड के कम्यूनिस्ट दल प्रमुख थे। विदेशो से आये सन्देशो तथा बधाइयो के उत्तर मे विदेशो मित्रो को भी उसी प्रकार के सन्देश तथा बधाइया दी गई और महासमिति को आदेश दिया गया कि वह एक वैदेशिक विभाग खोलकर विदेशी मित्रो से सम्पर्क स्थापित करे। अखिल-एशिया-सम्मेलन का आयोजन भारत मे करने के लिए भी एक प्रस्ताव पास किया गया। चीन के पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त कर लेने पर उसे बधाई दी गई और मिश्र, सीरिया, फिलस्तीन तथा ईराक के स्वातन्त्र्य-युद्ध के प्रति सहानुभूति प्रकट की गई। साम्राज्य-विरोधी-सघ के द्वितीय विश्व-सम्मेलन के आयोजन का स्वागत किया गया। ब्रिटिश माल के बहिष्कार के आदोलन पर भी जोर दिया गया। बारडोली की शानदार विजय पर सरदार वल्लभभाई पटेल को बधाई दी गई। सरकारी उत्सवो, दरबारो तथा

सरकारी अधिकारियो-द्वारा आयोजित अथवा उनके सम्मान मे किये जाने वाले अन्य सब सरकारी तथा गैर-सरकारी उत्सवो मे भाग लेने की काग्रेसवादियो को मनाही की गई। देशी-राज्यो मे उत्तरदायी-शासन स्थापित करने की भी एक प्रस्ताव द्वारा माग की गई। सरकार को अन्तिम चेतावनी देने का जो प्रस्ताव पास हुआ था वह इस प्रकार था—

"सर्व-दल-समिति (नेहरू-कमिटी) की रिपोर्ट मे शासन-विधान की जो तजवीज पेश की गई है उसपर विचार करके काग्रेस उसका स्वागत करती है और उसे भारत की राजनैतिक तथा साम्प्रदायिक समस्याओ को हल करने में बहुत अधिक सहायता देनेवाली मानती है। साथ ही सब सिफारिशो को प्राय सर्व-सम्मति से ही करने के लिए कमिटी को बधाई देती है। यद्यपि यह काग्रेस मद्रास-काग्रेस के पूर्ण-स्वाधीनता के निश्चय पर कायम है, फिर भी यह कमिटी-द्वारा तैयार किये गये विधान को राजनैतिक प्रगति की दिशा मे एक बडा पग मानकर उसे मजूर करती है।

"अगर ब्रिटिश-पार्लमेण्ट इस विधान को ज्यो-का-त्यो ३१ सितम्बर १९२९ तक या उसके पहले स्वीकार करले तो यह काग्रेस इस विधान को अपना लेगी, बशर्ते कि राजनैतिक स्थिति मे कोई विशेष परिवर्तन न हो। लेकिन यदि उस तारीख तक पार्लमेण्ट उसे मजूर न करे या इसके पहले ही उसे नामजूर कर दे तो काग्रेस देश को यह सलाह देकर कि वह करो का देना बन्द कर देगी और उन अन्य तरीको-द्वारा, जिनका बाद में निश्चय हो, अहिसात्मक असहयोग का आन्दोलन सगठित करेगी।"

कलकता-काग्रस ने अपना अगला कार्य-क्रम भी निर्धारित किया जिसकी मुख्य बाते इस प्रकार थी —

(१) सब नशीली चीजो का व्यवहार बन्द कराने के लिए कौसिलो के भीतर और बाहर देश मे हर तरह से कोशिश की जायगी।

(२) हाथ की कती और बुनी खादी की उत्पत्ति बढाकर तुरन्त उपयुक्त उपाय काम मे लाये जायगे।

(३) जहा कही लोगो को कोई खास तकलीफ हो और यदि वे लोग तैयार हो तो उस शिकायत को दूर कराने के लिए अहिसात्मक अस्त्र का उपयोग किया जायगा।

(४) काग्रेस की ओर से कौसिलो के लिए जो सदस्य जायगे उन्हे अपना अधिक समय काग्रेस-कमिटी-द्वारा समय-समय पर नियत किये गये रचनात्मक कार्य क्रम मे लगाना होगा।

(५) प्रत्येक हिन्दू-काग्रेसवादी का यह कर्तव्य होगा कि वह सामाजिक

कुरीतियो तथा अस्पृश्यता को दूर करने के लिए पूरी चेष्टा करेगा और अछूत कहे जाने वालो को उनकी अयोग्यताएँ दूर करने मे यथासंभव सहायता देगा।

कलकत्ता-काग्रेस मे लगभग ५०,००० से अधिक मजदूरो-द्वारा किया गया प्रदर्शन सदा स्मरण रहेगा। आस-पास के मिल-क्षेत्रो के रहनेवाले मजदूर सुव्यवस्थित रूप से एक जलूस बना कर काग्रेस-नगर मे घुस आये और राष्ट्रीय-झण्डे की सलामी करके पंडाल मे आकर दो घण्टे तक अपनी सभा करते रहे। इसके पश्चात 'भारत के लिए स्वतन्त्रता' का प्रस्ताव पास करके वे पंडाल छोड़कर चले गये।

देश मे युवक-आन्दोलन का प्रादुर्भाव होना इस वर्ष की एक विशेषता थी। देश मे जगह-जगह युवक-सघ तथा छात्र-सघ बन गये। बम्बई और बगाल मे तो उनका बडा जोर था। युवको ने साइमन-कमीशन के सम्बन्ध मे किये गये बहिष्कार-प्रदर्शनो मे भी खूब भाग लिया था। लखनऊ मे पुलिस की लाठियो और डडो की मार तो खास तौर पर उन्होने ही खाई थी।

गांधीजी की ओर

अब हमे पाठकों को संक्षेप मे यह बताना है कि गांधीजी अपने एकान्त-जीवन से कलकत्ता काग्रेस मे कैसे आ फंसे। याद रहे कि उन्हे अहमदाबाद काग्रेस के बाद मार्च १९२२ मे ही गिरफ्तार कर लिया गया था। इसलिए वह १९२२ की गया-काग्रेस, सितम्बर १९२३ के दिल्ली के विशेष अधिवेशन और १९२३ के कोकनडा के वार्षिक अधिवेशन मे उपस्थित न हो सके थे। ५ फरवरी १९२४ को वह छूटे और बेलगाव-काग्रेस के सभापति बने। कानपुर-काग्रेस मे स्वराज्य-पार्टी से साझेदारी के मामले मे पटना के निर्णयो पर काग्रेस की छाप लगवाने के लिए ही वह आये थे। इसके बाद उन्होने राजनीति मे चुप्पी साधने की एक साल की शपथ ले ली और गोहाटी मे उसे पूरा कर दिया। गोहाटी मे उन्होने काग्रेस के बहस-मुबाहसो मे सक्रिय-भाग लिया, लेकिन मद्रास मे तो वह बिलकुल उदासीन रहे। यह बात सन्देहजनक ही थी कि वह कलकत्ता-काग्रेस के अधिविशेनो मे भाग लेंगे या नही। कुछ वर्षों से वह काग्रेस के सालाना अधिवेशनो के पहले एक मास वर्धा-आश्रम में बिताया करते थे। इस साल भी जब काग्रेस का अधिवेशन कलकत्ते मे दिसम्बर १९२८ मे होने वाला था, वह वर्धा मे थे। पंडित मोतीलाल नेहरू जिन्हे स्वागतार्थ ३६ घोडो की गाड़ी मे बिठाकर शहर मे जलूस में निकाला गया था, अपने आपको बडी विकट परिस्थिति मे पाने लगे। लखनऊ-सर्वदल-सम्मेलन मे जिन विरोधियो ने सभापति के नाम एक पत्र पर हस्ताक्षर करके औपनिवेशिक स्वराज्य के विरोध मे और स्वतन्त्रता के पक्ष मे घोषणा की थी, वे भी वहा मौजूद थे और उन्होने अपना स्वाधीनता-संघ भी बना लिया था। इनमे जवाहरलाल भी शामिल

थे। बगाल ने अपना संघ अलग बनाया था और श्री सुभाषचन्द्र बसु उसके मुखिया थे।

सर्वदल-सम्मेलन के बारे मे भी एक शब्द इस समय कहना उचित होगा। सम्मेलन बुरी तरह असफल हुआ। मुसलमानो के अतिरिक्त अन्य अल्प-सख्यक जातियो ने एक-एक करके साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व को धिक्कारा। उधर श्री जिन्ना भी, जो अभी इग्लैण्ड से वापस आये थे और जिन्होने आते ही नेहरू-रिपोर्ट को कोसना शुरू कर दिया था, उसका विरोध करने लगे। कुछ मुसलमान पहले ही उसकी मुखालफत जाहिर कर चुके थे। कोरम पूरा न होने के कारण श्री जिन्ना ने लीग की बैठक स्थगित कर दी। ऐसी दशा मे कलकत्ते मे सर्वदल-सम्मेलन मृत्यु-शय्या पर पहुच चुका था। अत उसे स्वर्ग मे पहुँचाने की आवश्यकता थी। गाधी-जी के अलावा उसे स्वर्ग-द्वार तक कौन पहुचा सकता था? अत उन्होने प्रस्ताव किया कि सम्मेलन की कार्रवाई अनिश्चित काल के लिए स्थगित की जाय। प्रस्ताव पास हो गया। अब काग्रेस निश्चित रूप से गाधीजी की ओर झुक रही थी, लेकिन वह अपने खुद के कई बोझो से लदी हुई थी। राजनैतिक वातावरण इस समय बहुत अन्धकारमय था। स्वतन्त्रता के हामियो पर मुकदमे चलने की अफवाहें, वाइसराय का कलकत्ता मे उत्तेजनापूर्ण भाषण, "फारवर्ड" के सम्पादक को सजा होना, मद्रास मे मुकदमो का दौर-दौरा—ऐसी घटनाये थी जिन्होने गाधीजी के ऊपर बहुत भारी प्रभाव डाला। वह कलकत्ते की घटनाओ से और भी अधिक बेचैन थे। इन बातो के अलावा गाधीजी के पास यूरोप आने का भी निमत्रण था। लेकिन अच्छी तरह विचार करके और मित्रो से परामर्श करने के बाद गाधी जी इस नतीजे पर पहुँचे कि कम-से-कम इस एक वर्ष के लिए तो उन्हे अपना दौरा स्थगित रखना चाहिए। यह फरवरी १९२९ के प्रथम सप्ताह की बात है। हमें अब देखना है कि फरवरी १९३० के लिए देश के भाग्य मे क्या-क्या बदा था।

: १३ :

कांग्रेस का उग्र रूप : १९२९-३०

मज़दूर-दल की विजय

१९२९ के आरम्भ मे भारत की परिस्थिति वस्तुत बडी विकट थी। इस समय साइमन-कमीशन के साथ-साथ सेण्ट्रल कमिटी भी देश मे दौरा कर रही थी। इस कमिटी मे चार सदस्य तो राज्य-परिषद् से चुने गये थे और पाच सरकार ने

असेम्बली मे से मनोनीत कर दिये थे। साइमन कमीशन ने भी १४ अप्रैल १९२९ को अपना भारतीय कार्य समाप्त कर दिया था। कमीशनवाले विलायत मे पहुंचे ही थे कि मई १९२९ मे अनुदार-दल की सरकार साधारण चुनाव मे हार गई। मजदूर-दल का मन्त्रिमण्डल बना। मैकडानाल्ड प्रधानमंत्री बने और वेजवुड बने भारत-मत्री। लार्ड अर्विन चार मास की छुट्टी लेकर जून मे इंग्लैण्ड पहुचे। इस यात्रा का उद्देश्य यह था कि साइमन-कमीशन के परणाम-स्वरूप भारत के लिए जो सुधार-योजना पार्लमेण्ट के समक्ष रखी जाय उससे पहले ऐसा उपाय किया जाय जिससे विधान-सम्बन्धी स्थिति स्पष्ट हो जाय और भारत के भिन्न-भिन्न राजनैतिक दलो का अधिक सहयोग प्राप्त किया जा सके।

उपसमितियों का कार्य

काग्रेस के कलकत्ता-अधिवेशन के बाद तुरन्त ही कार्य-समिति ने अनेक उप-समितिया बनाईं। विदेशी वस्त्र के बहिष्कार, मादक-द्रव्यो के निषेध, अस्पृश्यता-निवारण, महासभा के संगठन तथा स्वयसेवको और स्त्रियो की बाधाओ को दूर करने के लिए कमिटिया नियुक्त की गई। इधर यह हो रहा था, उधर काग्रेस अपने निश्चयो के अनुसार रचनात्मक कार्यो मे लगी थी।

विदेशो-वस्त्र-बहिष्कार समिति के अध्यक्ष थे गाधीजी और मंत्री थे श्री जय-रामदास दौलतराम। यह समिति वर्ष-भर काम करती रही। बहिष्कार के काम मे अपना सारा समय लगाने के लिए श्री जयरामदास ने बम्बई-कौंसिल का सदस्य-पद छोड दिया और अपनी समिति का केन्द्र बम्बई मे बनाकर बैठ गये। मादक-द्रव्य-निषेध-समिति का काम चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य के हाथ मे था। उन्होने इस कार्य को अपना खास विषय बना लिया। यह कार्य अधिकतर दक्षिण भारत और गुजरात मे हुआ। सफलता भी अच्छी मिली। इस आन्दोलन की ओर विदेशों तक का ध्यान आकृष्ट हुआ। नशे के विरुद्ध सरकारी तौर पर प्रचार करने के लिए मद्रास-सरकार चार लाख रुपया खर्च करने के लिए राजी हो गई। उत्तर प्रदेश की सरकार से भी इसी प्रकार की कार्रवाई की आशा हुई। श्री राजगोपालाचार्य भारतीय-मद्यपान-निषेध-सघ के मंत्री हुए और उसके अंग्रेजी त्रैमासिक मुख-पत्र 'प्रॉहीबिशन' का सम्पादन करते रहे। अस्पृश्यता-निवारण-आदोलन का काम श्री जमनालाल बजाज के सुपुर्द किया गया। उन्होने भी काफी परिश्रम किया। जो लोग दीर्घकाल से दलित रखे गये थे उनकी बाधाये दूर करने के लिए सर्वत्र लोकमत जाग्रत किया गया। जहा दलित जातियो को मनाही थी, ऐसे अनेक प्रसिद्ध मन्दिरों के द्वार उनके लिए खोल दिये गये। समिति को बहुत से कुएँ और पाठ-शालाये भी खुलवाने मे सफलता मिली। कई म्युनिसिपैलिटियों ने इस काम में सहयोग दिया। श्री जमनालाल बजाज ने मद्रास, मध्यप्रांत, **राजस्थान**,

पजाब और सीमाप्रान्त मे लम्बे प्रवास किये। काग्रेस के पुनस्सगठन के लिए जो समिति बनाई गई थी उसने साल के शुरू मे ही अपनी रिपोर्ट पेश कर दी।

गाधीजी उस समय भारत का दौरा कर रहे थे और बर्मा जाते हुए कलकत्ते से गुजरे। वहा विदेशी कपडे की होली जलाई गई। इस सम्बन्ध मे मार्च १९२९ के दूसरे सप्ताह मे उनपर यह अभियोग लगाया गया कि उन्होने आज्ञा-भग की है या आज्ञा-भग मे सहायता दी है। आज्ञा यह थी कि सार्वजनिक स्थानो पर घास-फूस आदि न जलाया जाय। गाधीजी पर मुकदमा चला और एक रुपया जुर्माना हुआ। इसके बाद उन्होने आन्ध्रदेश की स्मरणीय यात्रा की और डेढ मास मे खद्दर के लिए दो लाख सत्तर हजार रुपये जमा किये।

इन कार्यो के अतिरिक्त कार्य-समिति ने १० पौण्ड मासिक की रकम इस-लिए मजूर की कि बर्लिन मे भारतीय छात्रो को सलाह और सहायता देने वाली एक समिति स्थापित की जाय। थोडे समय पश्चात् यह समिति श्री० ए० सी० ए१० नम्बियर की देख-रेख मे कायम हुई। इससे बहुसख्यक भारतीय छात्रो एव यात्रियो को जो मदद मिली उससे इसकी उपयोगिता पूर्णत सिद्ध हो गई। श्री शिवप्रसाद गुप्त ने अपनी यूरोप-यात्रा मे इस समिति का निरीक्षण किया और इसके कार्य की भूरि भूरि प्रशसा की। उनकी सिफारिश पर कार्य-समिति ने एक वाचनालय के निमित्त सहायता मे दो पौण्ड मासिक की वृद्धि कर दी। यह सस्था अच्छे ढग से चली। इसकी रिपोर्ट प्रति मास आती रही।

कलकत्ता-काग्रेस ने महासमिति को वैदेशिक विभाग खोलने का आदेश दिया था। कार्य-समिति ने इस मामले मे आवश्यक कारंवाई करने का अधिकार प्रधान-मन्त्री को दे दिया। वह स्वयं इस विभाग की देख-भाल रखने लगे। उन्होने अन्य देशो के व्यक्तियो और सस्थाओ से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया।

महासमिति के निर्णयानुसार समिति के कार्यालय की शाखा के रूप मे ही मजदूरो-सम्बन्धी प्रश्न के लिए एक अनुसधान-विभाग भी खोला गया। हिन्दुस्तानी सेवादल ने स्वयसेवक तैयार करने का कार्य देश के भिन्न-भिन्न भागो मे किया। अधिकतर कार्य तो कर्नाटक मे ही हुआ। वही दल का दफ्तर और व्यायाम-मन्दिर भी था। काग्रेस के सदस्य बनाने और विदेशी वस्त्र-बहिष्कार के काम में दल ने बड़ी मदद दी। मासिक झण्डाभिवादन के कार्यक्रम का सगठन करने मे हिन्दु-स्तानी-सेवा-दल को आशातीत सफलता मिली। बहुत-सी म्युनिसिपैलिटियो ने भी अपनी इमारतो पर विधि-पूर्वक राष्ट्रीय झण्डे लगाये। हिन्दुस्तानी-सेवा-दल की पुनर्रचना की गई। थोडे दिनो बाद मई १९२९ मे महासमिति की बम्बई मे बैठक हुई।

बम्बई में महासमिति की बैठक

बम्बई की यह बैठक महत्वपूर्ण थी। सरकार घोषणा कर चुकी थी कि असेम्बली का कार्य-काल बढ़ाया जायगा। इस बात पर भी काग्रेस को कार्रवाई करने की जरूरत थी। इधर देश-भर मे गिरफ्तारियो का ताता बध गया था। कार्य-समिति के सदस्य श्री साम्बमूर्ति पकड़ लिये गये थे और पजाब मे घोर दमन- चक्र चल रहा था। इससे यह सन्देह होता था कि शायद और बातो के साथ-साथ इसका उद्देश्य लाहौर के काग्रेस-अधिवेशन की तैयारियो मे बाधा डालना भी हो। इन सब कारणो से प्रत्येक प्रात मे काग्रेस की शाखाओं के लिए जोरदार कार्रवाई करना आवश्यक हो गया था। अत' बम्बई मे यह तय हुआ कि प्रातीय-काग्रेस-कमेटियो मे प्रात की समस्त जनसख्या के १/४ फीसदी से कम चार आनेवाले सदस्य नही होने चाहिए और प्रातीय-कमिटी मे कम-से-कम आधे जिलो के प्रतिनिधि होने चाहिए। जिला और तहसील कमिटी मे आबादी से कम-से-कम ३/४ फीसदी चार आनेवाले सदस्य होने चाहिए और ग्राम-समिति मे कम-से-कम एक फीसदी। कार्य-समिति को अधिकार दिया गया कि जो शाखा इन आदेशो का पालन न करे उसका सम्बन्ध-विच्छेद किया जाय। कार्य-समिति को यह भी सत्ता दी गई कि देश के हित के लिए वह जो उपाय उचित समझे उसका पालन असेम्बली और प्रातीय-कौंसिलो के काग्रेस-सदस्यो से भी करा ले। धारा-सभाओ मे काग्रेसी दल के बारे मे कार्य-समिति ने यह प्रस्ताव किया कि बंगाल और आसाम के सिवा बडी अथवा अन्य प्रातीय कौसिलो के सारे काग्रेसी सदस्य इन कौंसिलो की भी बैठक मे अथवा उनके द्वारा अथवा सरकार द्वारा नियुक्त किसी भी समिति की किसी भी बैठक मे तबतक शामिल न हो जबतक कि महासमिति अथवा कार्य-समिति दूसरा निर्णय न करे। यह भी निश्चय हुआ कि काग्रेसी सदस्य अब से अपना सारा समय काग्रेस के कार्यक्रम को पूरा करने मे ही लगाये। मेरठ के अभियुक्तो के सहायतार्थ भी १५००) मजूर हुए।

सभापति का चुनाव

भविष्य के गर्भ मे बड़ी-बडी घटनाये छिपी थी। अन्य अधिवेशनो की भाति लाहौर-काग्रेस के लिए भी सभापति की जरूरत थी। दस प्रान्तो ने गाधीजी के लिए पाच ने श्री वल्लभ भाई पटेल के लिए और तीन ने पण्डित जवाहरलाल नेहरू के लिए राय दी। गाधीजी का चुनाव विधिपूर्वक घोषित हो गया, परन्तु उन्होंने त्याग-पत्र दे दिया। अत. २८ सितम्बर १९२९ को लखनऊ में महासमिति की बैठक हुई। सबकी दृष्टि गाधीजी पर लगी हुई थी। अत उन पर फिर जोर

डाला गया। परन्तु उनकी दूरदर्शिता ने कांग्रेस की गद्दी पर ऐसे किसी युवक को ही बिठाने की सलाह दी जिस पर देश के युवक-हृदयो की श्रद्धा हो। गाधी जी ने इसके लिए युवक जवाहरलाल को सभापति बनाना उचित समझा। उपस्थित मित्रो ने बहुमत से प० जवाहरलाल को चुन लिया।

लार्ड अर्विन की घोषणा

अक्तूबर का महीना घटनापूर्ण था। लॉर्ड अर्विन विलायत जाकर २५ अक्तूबर को लौट आये थे और उन्होने एक घोषणा भी की थी। पण्डित मोतीलाल नेहरू ने पहली नवम्बर को दिल्ली मे कार्य-समिति की जरूरी बैठक बुलाई। समिति के सदस्यो के अतिरिक्त राजधानी मे अन्य दलो के नेता भी उक्त घोषणा को सुनने और उस पर सम्मिलित कार्रवाई करने के लिए मौजूद थे। जून १९२९ के अन्त मे इग्लैण्ड को रवाना होते समय लॉर्ड अर्विन ने कहा था, "विलायत पहुचकर मैं ब्रिटिश-सरकार से इन गम्भीर मामलो पर चर्चा करने के लिए अवसर ढूढूगा। जैसा मै अन्यत्र कह चुका हूँ, जो लोग भारतीय राजनैतिक लोकमत के प्रतिनिधि है उनकी भिन्न-भिन्न दृष्टियो को ब्रिटिश-सरकार के सम्मुख रखना मेरा कर्तव्य होगा।" इसके बाद उन्होने अगस्त १९१७ की घोषणा और सम्राट्-द्वारा दिये गये उनके नाम के आदेश-पत्र का हवाला दिया। इस आदेश-पत्र मे सम्राट् ने कहा था— "हमारी सर्वोपरि इच्छा और प्रसन्नता इसी मे है कि हमारे साम्राज्य का अगभूत रहते हुए ब्रिटिश-भारत को क्रमश उत्तरदायी शासन-प्राप्ति के लिए पार्लमेण्ट ने जो योजना बनाई है वह इस प्रकार सफल हो कि हमारे उपनिवेशो मे ब्रिटिश-भारत को भी अपने योग्य स्थान मिले।"

लॉर्ड अर्विन ने अपनी ३१ अक्तूबर की घोषणा के अन्त मे कहा कि ब्रिटिश-सरकार ने मुझे यह स्पष्ट घोषित कर देने का अधिकार दिया है कि १९१७ की घोषणा मे यह अभिप्राय असदिग्ध रूप से है कि भारत को अन्त मे उपनिवेश का दर्जा मिले।

घोषणा का प्रभाव

यह घोषणा हुई ३१ अक्तूबर को और २४ घण्टे के भीतर पण्डित मालवीय, सर तेजबहादुर सप्रू और डॉ० बेसेण्ट आदि बडे बडे लोग दिल्ली आ पहुँचे। कांग्रेस की कार्य-समिति तो वहा थी ही, गम्भीर विचार के पश्चात इस सम्मिलित सभा ने कुछ निर्णय किये। इन्ही निर्णयो के प्रकाश मे एक वक्तव्य तैयार किया गया। इस वक्तव्य मे कहा गया कि "हमे आशा है, भारतीय आवश्यकताओ के अनुकूल औपनिवेशिक विधान तैयार करने के सरकार के प्रयत्न मे हम सहयोग दे सकेंगे, परन्तु हमारी राय मे देश की मुख्य-मुख्य राजनैतिक सस्थाओ मे विश्वास उत्पन्न करने

और उनका सहयोग प्राप्त करने के हेतु कुछ कार्यों का किया जाना और कुछ का साफ होना जरूरी है।

प्रस्तावित परिषद् की सफलता के लिए हम अत्यन्त जरूरी समझते है कि—

(क) वातावरण को अधिक शान्त करने के लिए समझौते की नीति अख्तियार की जाय।

(ख) राजनैतिक कैदी छोड दिये जायं।

(ग) प्रगतिशील राजनैतिक संस्थाओ को काफी प्रतिनिधित्व दिया जाय और सवसे वडी सस्था होने के कारण काग्रेस के प्रतिनिधि सवसे अधिक लिये जायं।

(घ) औपनिवेशिक दर्जे के सम्वन्ध मे वाइसराय की घोषणा मे सरकार की ओर से जो कुछ कहा गया है उसके अर्थ क्या है, इस विषय मे लोगो ने सन्देह प्रकट किया है। हमारी सम्मति मे जनता को यह अनुभव कराना आवश्यक है कि आज ही से नवीन युग आरम्भ हो गया है और नया विधान इस भावना पर केवल मुहर लगायेगा।

निस्संदेह इस नये रवैये का कारण मजदूर-सरकार का अधिक उदार दृष्टिकोण था। इस बीच में अग्रेज मित्र तार-पर-तार भेजकर गाधीजी पर जोर डाल रहे थे कि वह भारत की सहायता करने के प्रयत्न मे मजदूर-सरकार का साथ दे।

गांधीजी का उत्तर

उत्तर मे गाधीजी ने कहा, "मै तो सहयोग देने को मर रहा हूँ। इसी हेतु से पहला मौका आते ही मैंने हाथ आगे वढ़ा दिया है। परन्तु जैसे मैं कलकत्ता-काग्रेस के प्रस्ताव के प्रत्येक शव्द पर कायम हू, वैसे नेताओ के इस सम्मिलित वक्तव्य के प्रत्येक शव्द पर भी अटल हू। इन दोनो मे कोई विरोध नही है। किसी भी दस्तावेज के शव्दो मे क्या धरा है, यदि व्यवहार मे उसकी भावना की रक्षा हो जाय। यदि मुझे व्यवहार मे सच्चा औपनिवेशिक स्वराज्य मिल जाय तो उसके विधान के लिए मै ठहरा भी रह सकता हूँ। अर्थात् आवश्यकता इस वात की हे कि हृदय-परिवर्तन सच्चा हो, अंग्रेज भारतवर्ष को एक स्वतत्र और स्वाभिमानी राष्ट्र के रूप मे वस्तुत. देखें और भारत मे अधिकारी मण्डल की भावना सेवापूर्ण हो जाय। इसका अर्थ है सगीनो के वजाय जनता के सद्भाव की स्थापना। क्या अंग्रेज स्त्री-पुरुष अपने जान-माल की रक्षा के लिए अपने किलो और तोप-वन्दूको के स्थान पर प्रजा के सद्भाव पर विश्वास रखने को तैयार हैं? यदि उनकी यह तैयारी अभी नही है, तो मुझे कोई औपनिवेशिक स्वराज्य सतुष्ट नही कर सकता। औपनिवेशिक स्वराज्य की मेरी कल्पना यह है कि यदि मैं चाहूँ तो आज ही ब्रिटिश-सम्वन्ध विच्छेद कर सकू। ब्रिटेन और भारत के पारस्परिक सम्वन्धो का निर्णय करने में जवरदस्ती-जैसी कोई वात नही चल सकती।"

सर्वदल सम्मेलन

१६ नवम्बर को प्रयाग मे सर्वदल-सम्मेलन का अधिवेशन फिर बुलाया गया और साथ ही कार्य-समिति की बैठक हुई। ऐक्य-भाव बनाए रखने के सब प्रयत्न किए गये। कार्य-समिति ने अपना कोई निश्चित निर्णय दिया भी नही था कि पडित जवाहरलाल और सुभाष बाबू ने समिति की सदस्यता को पहले ही छोड दिया। पडित मोतीलाल नेहरू अपने नौजवान साथियो से भी वढकर थे। उन्हे कामन-सभा की छल-कपट-पूर्ण कार्रवाई और कैप्टिन वेन के दुमुहेपन पर बडा क्रोध आ रहा था। उन्हे ऐसा लगा कि ब्रिटिश-मन्त्रि-मण्डल जो चित्र खीच रहा था वह ऐसा था कि भारतवासियो को उसमे स्वराज्य दीखे और विलायतवालो को ब्रिटिश-राज्य।

नेताओ से भेंट

इधर 'पायोनियर' के भूतपूर्व सम्पादक विलसन साहब समाचार पत्रो मे चिट्ठी-पर-चिट्ठिया छपवा रहे थे और लॉर्ड अर्विन पर जोर डाल रहे थे कि लाहौर काग्रेस से पहले सरकार की ओर से कोई ऐसी बात होनी चाहिये जिससे भारत के राजनैतिक नेताओ को खाली हाथ लाहौर न पहुचना पडे। लॉर्ड अर्विन, डॉ० सप्रू के मार्फत, १५ तारीख को मिलने का निमन्त्रण पण्डित मोतीलाल नेहरू को भेज चुके थे। परन्तु १५ ता० तक पण्डितजी लखनऊ मे अपने वकालत के काम से मुक्त न हो सके। विलसन साहब ने अखबारो मे लिखा कि वाइसराय गाधीजी, पडित मोतीलालजी और मालवीयजी से शीघ्र ही मुलाकात करनेवाले है। इधर वाइसराय साहब १५ ता० को दक्षिण-भारत के लिए रवाना हो रहे थे, इसलिए उन्होने डॉ० सप्रू को लिखा कि अगर पहले हैदराबाद (दक्षिण) मे न मिल सका तो २३ दिसम्बर को दिल्ली मे गाधीजी और नेहरूजी से मुलाकात होगी। लॉर्ड अर्विन समय पर, अर्थात् २३ दिसम्बर को, दिल्ली लौट आये। उसी दिन नई दिल्ली से १ मील दूर पुराने किले के स्थान पर उनकी गाडी के नीचे बम फटा। लार्ड अर्विन तो बाल-बाल वच गये, परन्तु उनकी खाने की गाडी को नुकसान पहुचा और उनका एक नौकर घायल हुआ। उसी दिन गाधीजी और मोतीलाल जी काग्रेस की ओर से वाइसराय से नये भवन मे मिले। दूसरे विचार वालो की बात कहनेवालो मे श्री जिन्ना, सप्रू और विट्ठलभाई पटेल थे। लार्ड अर्विन ने हसते-हसते बात-चीत की। उनके दिल पर प्रात कालीन दुर्घटना का कोई असर न था। पौन घण्टे तक तो बम की घटना और उसके परिणामो पर ही चर्चा होती रही। फिर लॉर्ड अर्विन ने प्रस्तुत विषय को हाथ मे लिया। उन्हें राज-नैतिक कैदियो से अच्छी शुरुआत करनी थी, परन्तु गाधीजी तो वाइसराय से औप-

निवेशिक स्वराज्य के मामले पर निपट लेना चाहते थे। वह यह आश्वासन चाहते थे कि गोलमेज-परिषद् की कार्रवाई पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य को आधार मानकर होगी। वाइसराय साहब ने उत्तर दिया, "सरकार ने अपने विचार अपने वक्तव्य मे स्पष्ट कर दिये है। इससे आगे मै कोई वचन नही दे सकता। मेरी ऐसी स्थिति नही है कि औपनिवेशिक स्वराज्य देने का वादा करके गोलमेज परिषद् मे आप लोगो को बुला सकू।"

लाहौर-कांग्रेस : १९२९

उत्तर-भारत के निर्दय हेमन्त मे लाहौर का काग्रेस अधिवेशन अन्तिम था। तम्बुओ मे रहना प्रतिनिधियो के लिए वडा कष्टप्रद सिद्ध हुआ। परन्तु भीतर भावना और जोश की गर्मी भी कम न थी। सरकार से समझौता न होने पर रोष था और युद्ध के बाजे सुन-सुनकर लोगो की बाहे फडक रही थी। पंडित जवाहरलाल नेहरू जितने कम उम्र के थे उतने ही बडे राजनीतिज्ञ और लोकप्रिय नेता थे। उनका अभिभाषण क्या था, मानो उन्होने अपने हृदय को उडेलकर देशवासियो के सामने रख दिया था। उसमे भारत के अपमान पर क्रोध भरा था। उसमे उन्होने भारत को स्वतन्त्र करने की अपनी योजना, अपने स्पष्ट साम्यवादी आदर्शो और सफल होने के अपने दृढ निश्चय को व्यक्त किया था।

पडित जवाहरलाल नेहरू ने अपने अभिभाषण मे बताया कि वाइसराय की घोषणा दीखने मे समझौते का प्रस्ताव है। वाइसराय का इरादा नेक और उनकी भाषा मेल-मिलाप की भाषा है। परन्तु हमारे सामने जो कठोर वस्तुस्थिति है उसमें इन मीठी-मीठी बातो से कोई अतर नही पडता। हम अपनी ओर से कोई घोर राष्ट्रीय सग्राम आरम्भ करने की जल्दी नही कर रहे है। समझौते का द्वार अभी खुला है। परन्तु कैप्टिन वेजवुड वेन का व्यावहारिक औपनिवेशिक स्वराज्य हमारे लिए जाल-मात्र है। हम तो कलकत्ते के प्रस्ताव पर कायम है। हमारे सामने एक ही ध्येय है और वह है पूर्ण स्वाधीनता का। इसके पश्चात् उन्होने अल्पसख्यक जातियो, देशी राज्यो और किसानो तथा मजदूरो के तीन बडे प्रश्नो को लिया। फिर उन्होने अहिंसा के प्रश्न का विवेचन किया और कहा कि—हिंसा के परिणाम बहुधा विपरीत और भ्रष्ट करनेवाले होते है। खासकर हमारे देश में तो इससे सत्यानाश हो सकता है। मै समझता हू, हममे से अधिक लोग नैतिक दृष्टि से नही, प्रत्युत व्यावहारिक दृष्टि से विचार करते है। यदि हमने हिंसा के मार्ग का परित्याग किया है तो इसलिए किया है कि हमे इससे कोई सार निकलता नहीं दिखाई देता। स्वतन्त्रता के किसी भी आंदोलन में जनता का शामिल होना जरूरी है और जनता के आदोलन तो शात ही हो सकते है। हा, सगठित विद्रोह की बात अलग है। अत में उन्होने कहा कि वह कोई नही कह सकता कि

सफलता कब और कितनी मिलेगी। सफलता हमारे कावू की चीज नही है, परन्तु विजय का सेहरा प्राय उन्ही के सिर बँधता है जो साहस करके कार्य-क्षेत्र में बढते है। जो सदा परिणाम से भयभीत रहते है, ऐसे कायरो के भाग मे सफलता क्वचित् ही होती है। इन विचारो से भारत के नेता गाधीजी और राष्ट्रपति जवाहरलाल नेहरू दोनो सहमत थे। इस कारण लाहौर-काग्रेस का कार्य-सचालन करने मे कोई कठिनाई नही हुई। श्री यतीन्द्रदास और श्री फुङ्गी विजय के महान् आत्मोत्सर्ग की प्रशसा की गई और पडित गोकर्णनाथ मिश्र, प्रोफेसर पराञ्जपे, श्री भक्तवत्सल नायड् आदि के देहावसान पर शोक प्रदर्शित करने के वाद वम-दुर्घटना पर एक प्रस्ताव पास हुआ।

इस काग्रेस का मुख्य प्रस्ताव पूर्ण-स्वाधीनता के सम्वन्ध में था, जो इस प्रकार है —

"औपनिवेशिक स्वराज्य के सम्बन्ध मे ३१ अक्तूवर को वाइसराय ने जो घोषणा की थी और जिसपर काग्रेस एव अन्य दलो के नेताओ ने सम्मिलित वक्तव्य प्रकाशित किया था उस सम्वन्ध मे की गई कार्य-समिति की कारंवाई का यह काग्रेस समर्थन करती है और स्वराज्य के राष्ट्रीय आदोलन को निपटाने के लिए वाइसराय की कोशिशो की कद्र करती है, किन्तु उसके बाद जो घटनाये हुई है और वाइसराय के साथ महात्मा गाधी, पडित मोतीलाल नेहरू और दूसरे नेताओ की मुलाकात का जो नतीजा निकला है उसपर विचार करने पर काग्रेस की यह राय है कि सम्प्रति प्रस्तावित गोलमेज परिषद् मे काग्रेस के शामिल होने से कोई लाभ नहीं। इसलिए गत वर्ष कलकत्ते के अधिवेशन मे किये हुए अपने निश्चय के अनुसार यह काग्रेस घोषणा करती है कि काग्रेम-विधान की पहली कलम मे 'स्वराज्य' शब्द का अर्थ पूर्ण स्वाधीनता होगा। काग्रेस यह भी घोषणा करती है कि नेहरू-कमिटी की रिपोर्ट मे वर्णित सारी योजना को समाप्त समझा जाय। काग्रेस आशा करती है कि अब समस्त काग्रेसवादी अपना सारा ध्यान भारतवर्ष की पूर्ण स्वाधीनता को प्राप्त करने मे ही लगायेगे। चूकि स्वाधीनता का आन्दोलन संगठित करना और काग्रेस की नीति को उसके नये ध्येय के अधिक-से-अधिक अनुकूल बनाना आवश्यक है, इसलिए यह काग्रेस निश्चय करती है कि काग्रेसवादी और राष्ट्रीय आन्दोलन मे भाग लेनेवाले दूसरे लोग भावी निर्वाचनो मे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कोई भाग न ले और कौंसिलो और कमिटियो के वर्तमान काग्रेसी सदस्यो को त्याग-पत्र देने की आज्ञा देती है। यह काग्रेस अपने रचनात्मक कार्यक्रम को उत्साह-पूर्वक पूरा करने के लिए राष्ट्र से अनुरोध करती है और महासमिति को अधिकार देती है कि वह जब और जहा चाहे, आवश्यक प्रतिवन्धो के साथ सविनय अवज्ञा और करबन्दी तक का कार्य-क्रम आरम्भ कर दे।"

दूसरी वात इस काग्रेस ने यह की कि वार्षिक अधिवेशन का समय दिसम्बर से वदलकर फरवरी अथवा मार्च कर दिया।

काग्रेस ने इन प्रस्तावो के परिणाम-स्वरूप विधान मे आवश्यक परिवर्तन करने का अधिकार कार्य-समिति को दे दिया। सदा की भाति पूर्व-अफ्रीका पर भी प्रस्ताव हुआ। देशी-राज्यो का विषय महत्वपूर्ण था ही। काग्रेस ने सोचा, अव समय आ गया है कि भारतीय नरेश अपनी प्रजा को दायित्वपूर्ण शासन प्रदान करे और उनके आवागमन, भाषण, सम्मेलन आदि अधिकारो और व्यक्ति एव सम्पत्ति की रक्षा के नागरिक हको के वारे मे घोषणाये करे और कानून वनाएँ।

नेहरू-रिपोर्ट के रद हो जाने से साम्प्रदायिक समस्या पर फिर से विचार करना पडा। इस सम्बन्ध मे अपनी नीति घोषित करना आवश्यक समझा गया। काग्रेस ने अपना यह विश्वास व्यक्त किया कि स्वाधीन-भारत मे तो साम्प्रदायिक प्रश्नो का निपटारा सर्वथा राष्ट्रीय ढग से ही होगा। परन्तु चूकि सिक्खो ने विशेषत. और मुसलमानो और दूसरी अल्प-संख्यक जातियो ने साधारणत नेहरू-रिपोर्ट के प्रस्तावो पर असन्तोष प्रकट किया है, इसलिए काग्रेस इन जातियो को विश्वास दिलाती है कि किसी भी भावी-विधान मे काग्रेस ऐसा कोई साम्प्रदायिक निर्णय स्वीकार नही करेगी जिससे सव पक्षो को पूर्ण सन्तोष न हो। कलकत्ता-काग्रेस के वाद जो भिन्न-भिन्न समितिया फरवरी १९२९ मे वनी थी उनका काम विशेषज्ञो को सौंपा गया। स्वंयसेवको का सगठन जवाहरलालजी और सुभाष वावू के हवाले किया गया। काग्रेस का कार्य पहली ही वार विभागो मे वाटा और कार्य-समिति के अलग-अलग सदस्यो के सुपुर्द किया गया। कलकत्ते मे राष्ट्रीय माग को स्वीकार करने के लिये सरकार को वारह मास का समय दिया गया था। तदनुसार ३१ दिसम्बर को ठीक आधी रात के समय पूर्ण स्वतत्रता के प्रस्ताव के रायो की गिनती खतम हुई। उस समय सारी काग्रेस ने मिलकर पूर्ण स्वाधीनता का झडा फहराया।

कार्य-समिति की वैठक

प्रतीक्षा का वर्ष समाप्त होकर कार्य का वर्ष आरम्भ हुआ। नई कार्य-समिति की बैठक २ जनवरी १९३० को हुई। पहला काम उसने कौंसिल-बहिष्कार के निश्चय पर अमल करवाने का किया। इसके लिए उसने मत-दाताओ से अनुरोध किया कि जो सदस्य काग्रेस की अपील पर ध्यान न दे उन्हे मत-दाता मजबूर करे कि वे इस्तीफा दे और नये चुनाव मे शामिल न हो। इसके परिणाम-स्वरूप असेम्बली के २७ सदस्यो ने इस्तीफा दे दिया। दूसरा निश्चय कार्य-समिति ने देश-भर में पूर्ण-स्वराज्य-दिवस मनाने का किया और इसके लिए २६ जनवरी १९३० का दिन नियत हुआ। देश-भर के नगर-नगर और गाव-गांव में एक घोषणा-पत्र तैयार करके जनता के

सम्मुख पढकर सुनाना और उस पर हाथ उठवाकर श्रोताओ की सम्मति लेना तय हुआ। उस दिन सुनाया जानेवाला घोषणा-पत्र सक्षेप मे यह था —

स्वाधीनता का घोषणा-पत्र

"हम भारतीय प्रजाजन भी अन्य राष्ट्रो की भाति अपना जन्म-सिद्ध अधिकार मानते है कि हम स्वतत्र होकर रहे, अपने परिश्रम का फल हम स्वय भोगे और हमे जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक सुविधाये प्राप्त हो जिससे हमे भी विकास का पूरा मौका मिले। अग्रेजी सरकार ने भारतवासियो की स्वतत्रता का ही अपहरण नही किया है बल्कि उसका आधार भी गरीबो के रक्तशोषण पर है और उसने आर्थिक, राजनैतिक, सास्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से भारतवर्ष का नाश कर दिया है। अत हमारा विश्वास है कि भारतवर्ष को अग्रेजो से सम्बन्ध-विच्छेद करके पूर्ण स्वराज्य या स्वाधीनता प्राप्त कर लेनी चाहिए।

"भारत की आर्थिक बरबादी हो चुकी है। हाथ-कताई आदि ग्राम-उद्योग नष्ट कर दिये गये है। इससे साल मे कम-से-कम चार महीने किसान बेकार रहते है। विनिमय की दर भी ऐसे स्वेच्छाचारी ढग से निश्चित की गई है जिससे देश का करोडो रुपया बाहर चला जाता है। राजनैतिक दृष्टि से भारत का दर्जा जितना अग्रेजो के जमाने मे घटा है उतना पहले कभी नही घटा था। किसी भी सुधार-योजना से जनता के हाथ मे वास्तविक राजनैतिक सत्ता नही आई है। सस्कृति के लिहाज से, शिक्षा-प्रणाली ने हमारी जड ही काट दी है और हमे जो तालीम दी जाती है उससे हम अपनी गुलामी की जजीरो को ही प्यार करने लगे है। आध्यात्मिक दृष्टि से, हमारे हथियार जबरदस्ती छीनकर हमे नामर्द बना दिया गया है। विदेशी सेना हमारी छाती पर सदा मौजूद रहती है। उसने हमारी मुकाबले की भावना को बडी बुरी तरह कुचल दिया है। उसने हमारे दिल मे यह बात बिठा दी है कि हम न अपना घर सम्हाल सकते है और न विदेशी आक्रमण से देश की रक्षा कर सकते है। इसलिए हम ब्रिटिश-सरकार से यथा सम्भव स्वेच्छा-पूर्वक किसी भी प्रकार का सहयोग न करने की तयारी करेंगे और सविनय-अवज्ञा एव करबन्दी तक के साज सजायेगे। हमारा दृढ विश्वास है कि यदि हम राजी-राजी सहायता देना और उत्तेजना मिलने पर भी हिंसा किये बगैर कर देना बन्द कर सके तो इस अमानुषी-राज्य का नाश निश्चित है। अत हम शपथ-पूर्वक सकल्प करते है कि पूर्ण स्वराज्य की स्थापना के हेतु कांग्रेस समय-समय पर जो आज्ञाये देगी उनका हम पालन करते रहेगे।"

गांधीजी की ग्यारह शर्तें

स्वाधीनता-दिवस जिस ढग से मनाया गया उससे प्रकट हुआ कि स्वदेश-भक्ति और आत्म-बलिदान के अगारे राज-भक्ति या कानून और व्यवस्था की

गुलामी की राख से केवल ढके हुए थे। जरूरत इतनी ही थी कि भावना एवं उत्साह के लाल अगारो पर जमी हुई राख को फूक मार कर हटा दिया जाय। स्वाधीनता-दिवस का समारोह खत्म ही हुआ था कि २५ जनवरी को असेम्बली मे दिया गया वाइसराय का भाषण भी प्रकाशित हो गया। इसने भारत के आशावादी और विश्वासशील राजनीतिज्ञो की रही-सही आशाओ पर पानी फेर दिया। आगे चलकर गाधीजी ने 'यग इंडिया' मे लॉर्ड अर्विन के सामने नीचे लिखी शर्तें रक्खी—

(१) सम्पूर्ण मदिरा-निषेध।

(२) विनिमय की दर घटा कर एक शिलिग चार पेस रख दी जाय।

(३) जमीन का लगान आधा कर दिया जाय और उस पर कौसिलो का नियन्त्रण रहे।

(४) नमक-कर उठा दिया जाय।

(५) सैनिक-व्यय मे आरम्भ मे ही कम-से-कम ५० फीसदी कमी कर दी जाय।

(६) लगान की कमी को देखते हुए बड़ी-बडी नौकरियो के वेतन कम-से-कम आधे कर दिये जायं।

(७) विदेशी कपड़े के आयात पर निषेध-कर लगा दिया जाय।

(८) भारतीय समुद्र-तट केवल भारतीय जहाजो के लिए सुरक्षित रखने का प्रस्तावित कानून पास कर दिया जाय।

(९) हत्या या हत्या के प्रयत्नो मे साधारण ट्रिब्यूनलो-द्वारा सजा पाये हुओं के सिवा, समस्त राजनैतिक कैदी छोड़ दिये जाय, सारे राजनैतिक मुकदमे वापस ले लिये जाय, १२४ अ धारा और १८१८ का तीसरा रेग्यूलेशन उठा दिया जाय और सारे निर्वासित भारतीयो को देश मे वापस आ जाने दिया जाय।

(१०) खुफिया पुलिस उठा दी जाय, अथवा उस पर जनता का नियंत्रण कर दिया जाय।

(११) आत्म-रक्षार्थ हथियार रखने के परवाने दिये जायं और उन पर जनता का नियन्त्रण रहे।

गाधीजी ने यह भी कहा—"अन्य देशो के लिए स्वतंत्रता-प्राप्ति के दूसरे उपाय भले ही हो, परन्तु भारतवर्ष के लिए अहिसात्मक असहयोग के सिवा दूसरा मार्ग नहीं है। परमात्मा करे, आप लोग स्वराज्य के इस मत्र को सिद्ध और प्रकट करें और स्वाधीनता की जो लडाई निकट आ रही है उसके लिए अपना सर्वस्व अर्पण करने का वह आपको बल और साहस प्रदान करे।"

असेम्वली तथा कौंसिलों से त्याग पत्र

जब असेम्वली में वाइसराय साहव ने अपना भाषण दिया, तव वसन्त ऋतु थी। उस समय वातावरण सरकार के अनुकूल नही था, क्योंकि वस्त्र-उद्योग-रक्षण कानून उसी समय वना था। इसके वहुत-से विरोधी समझते थे कि इसके द्वारा सरकार ने आर्थिक-परिषद् की भावना के विपरीत हिन्दुस्तान के माथे पर साम्राज्य के साथ रिआयत करने की नीति लाद दी है। इस कारण पण्डित मदन-मोहन मालवीय और उनके राष्ट्रीय दल के कुछ सदस्यो ने इस्तीफा दे दिया। काग्रेस के आदेश पर कौंसिलो के १७२ सदस्यो ने फरवरी १९३० तक इस्तीफे दे दिये। इनमे से २१ असेम्बली के और ९ राज्य-परिषद् के सदस्य थे। प्रान्तीय कौंसिलो मे वगाल से ३४, विहार-उडीसा से ३१, मध्यप्रान्त से २०, मद्रास से २०, उत्तर-प्रदेश से १६, आसाम से १२, वम्वई से ६, पंजाव से २ और वर्मा से १ ने इस्तीफा दिया।

सविनय अवज्ञा का श्रीगणेश

१४,१५ और १६ फरवरी को कार्य-समिति की सावरमती मे बैठक हुई। कौसिलो के जिन मेम्वरो ने इस्तीफा नही दिया था या देकर चुनाव मे फिर खडे हो गए थे उनसे कहा गया कि या तो वे काग्रेस की निर्वाचित समितियो की सदस्यता छोड दे, अन्यथा उनपर जाव्ते की कार्रवाई की जायगी। सरकार ने राजनैतिक कैदियो के साथ सद्व्यवहार करने का आश्वाशन दिया था, परन्तु सरकार ने इस वचन का पालन नही किया। इस पर सावरमती मे कार्य-समिति ने खेद प्रकट किया, किन्तु इस वैठक का मुख्य प्रस्ताव तो सविनय-अवज्ञा के सम्वन्ध मे था। इस प्रस्ताव ने गाधीजी और उनके विश्वस्त साथियो को सविनय-अवज्ञा करने का अधिकार दिया। कुछ समय वाद अहमदावाद मे महा-समिति की वैठक हुई, उसने इस अधिकार का और भी विस्तार करके सविनय-अवज्ञा आदोलन चलाने की सत्ता भी उन्हे दे दी।

नमक-कानून का विरोध

परन्तु सविनय-अवज्ञा शुरू करे तो कैसे? गाधीजी के इरादे पहले ही जाहिर हो गए थे। वम्वई मे ये समाचार पहुच चुके थे और कार्य-समिति को सावरमती की बैठक से पहले ही पहुच चुके थे कि नमक के ढेरो पर धावा वोला जायगा। १४ फरवरी से पहले ही वम्बई मे प्रचार-कार्य भी शुरू हो गया था। नमक-कर का इतिहास खोज निकाला गया। मालूम हुआ कि १८३६ मे एक नमक-कमीशन वैठा था और उसने भारत मे अग्रेजी नमक की बिक्री के खातिर भारतीय नमक

पर कर लगाने की सिफारिश की थी। लिवरपूल बन्दर मे माल के बिना जहाज खाली पडे थे और अशात समुद्र पर वे तबतक चल नही सकते थे जबतक कि आवश्यक भार को पूरा करने के लिए भी कोई माल उनपर लदा न हो। इसलिए कुछ माल, कुछ भार, कुछ वजन तो उन्हे लाना ही पडता था। इसके लिए चेशायर के नमक से अच्छी चोज और क्या हो सकती थी। ऐसी नीति का विरोध आवश्यक था। साबरमती की बैठक के बाद थोडे दिनो मे वातावरण नमक-ही-नमक से व्याप्त हो गया। लोग पूछने लगे, क्या बनाया हुआ नमक पडता खायगा ? सरकारी कर्मचारी और भी आगे बढे। उन्होने समुद्र के पानी से नमक बनाने मे ईंधन और मजदूरी का हिसाब लगाकर बताया कि नमक-कर से तिगुना खर्च नमक बनाने मे लगता है। ये बेचारे यह न समझ सके कि यह संग्राम भौतिक नही, नैतिक था।

गाधीजी नमक-सत्याग्रह का आरभ करने वाले थे। उनकी योजना थी कि वह किसी नमक के क्षेत्र मे जाकर नमक उठाएँगे, दूसरे नही उठाएँगे। उस समय अगर कोई उनसे पूछता था 'क्या हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहे ?' तो यही उत्तर मिलता था—'अवश्य। परन्तु मैदान मे उतरने के लिए तैयार रहो।' उन्हे तो आशा थी कि परिणाम तत्काल होगा। वह वल्लभभाई तक को कूच मे साथ न ले गये। केवल साबरमती-आश्रम के निवासियो को ही उन्होने अपने साथ लिया। वर्धा-आश्रमवालो को भी तैयारी करने और गाधीजी की गिरफ्तारी तक ठहरे रहने का आदेश मिला। फिर तो एक साथ भारत-भर मे लडाई शुरू होनेवाली ही थी। गाधीजी की गिरफ्तारी के बाद लोग जो चाहते वह करने को स्वतत्र थे। उन्हे दीख गया था कि उनके बाद भारत मे सर्वत्र यह आन्दोलन फैल जायगा और खूब जोर पकड़ लेगा। या तो जीत ही होगी या मर मिटेगे।

सरकार को अंतिम चेतावनी

गाधीजी की योजना सदा उनकी अन्त प्रेरणा से बनी है। मस्तिष्क के भावना हीन, हानि लाभ-दर्शक तर्क से नही बनी है। उनका गुरु और मित्र उनका अन्त -करण ही रहा है। इसीको लायड जार्ज साहब ने 'सदियो की प्रगति का निचोड़ एक युग मे निकालना' बताया है। इसी को भारतीय शब्दो मे कहा जाय तो, उन्होने हजारो वर्ष का काम बारह महीने मे कर दिखाया। गाधीजी की दिव्य-दृष्टि और शुद्ध विचार का लोहा सभी ने माना। नरम-दलवालो तक ने नमक-सत्याग्रह को भले ही बेहूदा और खतरनाक बताया हो, गाधीजी के हेतु की पवित्रता से वे भी इन्कार नही कर सके। गाधीजी ने वाइसराय को बहुत देर तक अधेरे मे नही रक्खा। सदा की भाति इस बार भी (२ मार्च १९३० को) उन्होने लार्ड

अर्विन को चिट्ठी भेजी जिसमे उन्होने 'सविनय अवज्ञा' का उद्देश्य स्पष्ट किया। उन्होने लिखा —

"सविनय-अवज्ञा शुरू करने से और जिस जोखिम को उठाने के लिए मैं इतने सालो से सदा हिचकिचाता रहा हूँ उसे उठाने से पहले, मुझे आप तक पहुँचकर कोई मार्ग निकालने का प्रयत्न करने मे प्रसन्नता है। अनेक देश-बन्धुओ की भाति मुझे भी यह सुख-स्वप्न दीखने लगा था कि प्रस्तावित गोलमेज-परिषद् शायद समस्या हल कर सके। परन्तु जब आपने स्पष्ट कह दिया कि आप या ब्रिटिश मत्रि-मडल पूर्ण-औपनिवेशिक स्वराज्य की योजना का समर्थन करने का आश्वासन नही दे सकते, तब गोलमेज-परिषद् वह चीज नही दे सकती जिसके लिए शिक्षित भारत ज्ञानपूर्वक और अशिक्षित जनता दिल-ही-दिल मे छटपटा रही है। राष्ट्र के नाम पर काम करनेवालो को खुद भी समझ लेना चाहिए और दूसरो को समझाते रहना चाहिए कि स्वाधीनता की इस तडप के पीछे हेतु क्या है। इस हेतु को न समझने से स्वाधीनता इतने विकृत रूप मे आ सकती है कि जिन करोडो मूक किसानो और मजदूरो के लिए स्वाधीनता की प्राप्ति का प्रयत्न किया जा रहा है और किया जाना चाहिए उनके लिए यह स्वाधीनता कदाचित् निकम्मी सिद्ध हो। इसी कारण मै कुछ अरसे से जनता को वाछित स्वाधीनता का सच्चा अर्थ समझा रहा हूँ।

"सरकारी आय का मुख्य भाग जमीन का लगान है। इसका बोझ इतना भारी है कि स्वाधीन भारत को इसमे काफी कमी करनी पडेगी। स्थायी बन्दोबस्त अच्छी चीज है, परन्तु इसमे भी मुट्ठी-भर अमीर जमीदारो को लाभ है, गरीब किसानो को कोई लाभ नही। वे तो सदा से बेबसी मे रहे है। उन्हे जब चाहे बेदखल किया जा सकता है। भूमि-कर को घटा देने से काम नही चलेगा, सारी कर-व्यवस्था ही फिर से इस प्रकार बदलनी पडेगी कि रैयत की भलाई ही उसका मुख्य हेतु रहे। परन्तु मालूम होता है कि सरकार ने जो तरीका जारी किया है वह रैयत की जान निकाल लेने के लिए ही किया है। नमक तो उसके जीवन के लिए भी आवश्यक है। परन्तु उस पर भी कर इस तरह लगाया गया है कि यो दीखने मे तो वह सब पर बराबर पडता है, परन्तु इस हृदय-हीन निष्पक्षता का भार सबसे अधिक गरीबो पर ही पडता है। याद रहे कि नमक ही ऐसा पदार्थ है जो अलग-अलग भी और मिलकर भी अमीरो की अपेक्षा गरीब लोग अधिक मात्रा मे खाते है। इस कारण नमक-कर का बोझ गरीबो पर और भी ज्यादा पडता है। अत कर का भार बहुत अधिक उसी हालत मे कम किया जा सकता है जब शासन-व्यय भी उतना ही घटा दिया जाय। इसका अर्थ है शासन-योजना की काया-पलट कर देना। मेरी राय मे २६ जनवरी के स्वाभाविक प्रदर्शन मे लाखो ग्रामीणो ने स्वेच्छा से जो भाग लिया उसका भी यही

अर्थ है। उन्हें लगता है कि इस नाशकारी भार से स्वाधीनता ही छुटकारा दिलायेगी ।

"यह सभी को मालूम है कि भले ही हिसक-दल कितना ही असगठित या सम्प्रति महत्वहीन हो, फिर भी उसका जोर बढता जा रहा है। उसका और मेरा ध्येय एक ही है। परन्तु मेरा दृढ विश्वास है कि वह मूक-जनता का कष्ट-निवारण नही कर सकता। मेरा यह विश्वास भी दिन-दिन दृढतर होता जा रहा है कि ब्रिटिश-सरकार की सगठित हिसा को शुद्ध अहिसा ही रोक सकती है। यह अहिंसा सविनय-अवज्ञा के रूप मे प्रकट होगी। आरम्भ मे आश्रम-निवासी ही इसमे भाग लेगे, परन्तु बाद मे इसकी मर्यादाओ को समझकर जो चाहेगे वे सभी इसमे शामिल हो जायेंगे। मै जानता हूँ कि अहिसात्मक संग्राम का प्रारम्भ करने मे जोखिम है। लोग इस तरह से ठीक ही कहेगे कि यह पागलपन है। परन्तु सत्य की विजय बहुधा बडी-से-बडी जोखिमो के उठाये बिना नही हुई है। जिस राष्ट्र ने जान या अनजान मे अपने से अधिक जन-सख्यावाले, अधिक प्राचीन और अपने समान सभ्य दूसरे राष्ट्र को शिकार बनाया उसको ठीक रास्ते पर लाने के लिए कोई भी जोखिम बडी नही है। मैने 'ठीक रास्ते पर लाने' के शब्द जान-बूझकर प्रयोग किये है। कारण, मेरी यह महत्वाकाक्षा है कि मै अहिसा द्वारा ब्रिटिश जाति का हृदय पलट दू और उसे भारत के प्रति किये गये अपने अन्याय का अनुभव करा दू। मै आपकी जाति को हानि पहुंचाना नही चाहता। मै उसकी भी वैसी ही सेवा करना चाहता हू, जैसी अपनी जाति की। अगर यह बात सच है तो यह ज्यादा देर तक छिपी न रहेगी। बरसो तक मेरे प्रेम की परीक्षा लेने के बाद मेरे कुनबे वालो ने मेरे प्रेम के दावे को कबूल किया है, वैसे ही अग्रेज भी किसी दिन करेगे। यदि मेरी आशाओ के अनुकूल जनता ने मेरा साथ दिया तो या तो पहले ही ब्रिटिश-जाति अपना कदम पीछे हटा लेगी, अन्यथा जनता ऐसे-ऐसे कष्ट-सहन करेगी जिन्हे देखकर पत्थर का दिल भी पिघले बिना नही रह सकता।

"इस पत्र का हेतु धमकी देना नही है। यह तो सत्याग्रही का साधारण और पवित्र कर्तव्य-मात्र है। इसलिए मैं इसे भेज भी खास तौर पर एक ऐसे युवक अग्रेज मित्र के हाथ रहा हू जो भारतीय पक्ष का हिमायती है, जिसका अहिसा पर पूर्ण विश्वास है और जिसे शायद विधाता ने इसी काम के लिए मेरे पास भेजा है।"

इस चिट्ठी को रेजिनाल्ड रेनाल्ड नामक अंग्रेज युवक दिल्ली ले गये। रेजि-नाल्ड रेनाल्ड कुछ समय तक आश्रम मे रह चुके थे। गाधीजी के इस पत्र को जनता और अखबारो ने अन्तिम चेतावनी का नाम दिया। लॉर्ड अर्विन का उत्तर भी तुरन्त और साफ-साफ मिला। वाइसराय ने खेद प्रकट किया कि गाधीजी ऐसा काम करने

वाले है जिससे निश्चित रूप से कानून और सार्वजनिक शान्ति-भग होगी। गाधीजी का प्रत्युतर भी उनके योग्य ही था। वह सच्चे सत्याग्रही के एकमात्र कवच, विनय और साहस की भावना से कूट-कूट कर भरा था। उन्होने लिखा—"मैंने दस्तबस्ता रोटी का सवाल किया था और मिला पत्थर। अग्रेज जाति सिर्फ शक्ति का ही लोहा मानती है। इसलिए मुझे वाइसराय के उत्तर पर कोई आश्चर्य नहीं है। हमारे राष्ट्र के भाग्य मे तो जेलखाने की शान्ति ही एकमात्र शान्ति है।"

दण्डी-यात्रा की तैयारी

इस प्रकार गाधीजी का कूच अनिवार्य हो गया था। सब तैयारी पहले से ही हो चुकी थी। लम्बी-चौडी तैयारी की तो जरूरत भी न थी। दण्डी समुद्र-तट पर एक गाव है। गाधीजो को वही पहुँचना था। उन्होने मार्ग के ग्रामवासियो को मना कर दिया था कि यात्रियो को वढिया भोजन न दे। इधर गाधीजी शुद्ध नैतिक ढग की ये तैयारिया कर रहे थे, उधर वल्लभभाई अपने 'गुरु' के पहले ही आनेवाली तपस्या और सकटो के लिए तैयार होने की प्रेरणा करने के लिए गावो मे पहुँच चुके थे। सरकार ने प्रथम प्रहार करने मे विलम्ब नही किया। जब वल्लभ-भाई इस प्रकार गाधीजी के आगे-आगे चल रहे थे, सरकार ने समझा, "यह तो १९०० वर्ष पहले ईसामसीह का दूत जॉन बैपटिस्ट है।" उसने तुरत मार्च के प्रथम सप्ताह मे वल्लभभाई को रास गाव मे गिरफ्तार कर लिया और उन्हे चार मास की सादी सजा दे दी। इस घटना के साथ-साथ गुजरात का बच्चा-बच्चा सरकार के खिलाफ खडा हो गया। इस समाचार से प्रभावित होकर सावरमती के रेतीले तट पर ७५ हजार स्त्री-पुरुषो ने एकत्र होकर यह निश्चय किया—

"हम अहमदाबाद के नागरिक सकल्प करते है कि जिस रास्ते वल्लभभाई गये है उसी रास्ते हम जायगे और ऐसा करते हुए स्वाधीनता को प्राप्त करके छोडेगे। देश को आजाद किये बिना न हम चैन लेगे, न सरकार को लेने देगे। हम शपथपूर्वक घोषणा करते है कि भारतवर्ष का उद्धार सत्य और अहिसा से ही होगा।"

गाधीजी ने कहा, 'जो यह प्रतिज्ञा लेना चाहे, अपने हाथ ऊचे कर दे।' सारे जन-समूह ने हाथ उठा दिये। उधर वल्लभभाई ने गुजरात मे अपने भाषणो से जीवन फूँक दिया था। इस प्रकार यात्रा की पूरी तैयारी हो चुकी थी।

दण्डी-यात्रा का आरंभ

गाधीजी अपने ७९ साथियो को लेकर १२ मार्च १९३० को दण्डी-यात्रा पर निकल पडे। यह एक ऐतिहासिक भव्य-दृश्य था और प्राचीनकाल की राम एव पाण्डवो के वन-गमन की घटनाओ की स्मृति ताजा करता था। यह विद्रो-

हियो की यात्रा थी। इधर कूच जारी थी, उधर ग्राम-कर्मचारियो के धडाधड़ त्याग-पत्र आ रहे थे। ३०० ने नौकरी छोड दी। अहमदाबाद की खानगी बात-चीत मे गाधीजी ने कहा था, "मै आरभ करू तबतक ठहरना। जब मै कूच पर निकलूगा तब विचार अपने-आप फैल जायगे। फिर आप लोगो को भी मालूम हो जायगा कि क्या करना चाहिए।" यह बात एक तरह से दिमागी-अटकल लगाने के विरुद्ध चेतावनी के रूप मे कही गई थी। यह विरोध की ऐसी योजना थी कि उस समय इसके पूरे-पूरे स्वरूप की कल्पना इसके योग्य-से-योग्य अनुगामी भी नही कर सकते थे। शायद गाधीजी को भी भावी योजना की पूरी कल्पना नही थी। ऐसा लगता है, मानो उनपर आन्तरिक ज्योति की एक किरण पडती थी और उसी के प्रकाश मे वह अपना व्यवहार निश्चित करते थे। कूच आरम्भ होते ही जनता उनके झण्डे के नीचे आ खडी हुई। विचार फैल गया और अलग-अलग रूप मे प्रकट होने लगा। ज्योही विचारो और भावनाओ को छुट्टी मिली, लोगो की क्रिया-शक्ति के बन्द भी खुल गये। कूच का आरम्भ मे तो उपहास किया गया, बाद मे उसे ध्यान से देखा जाने लगा, और अन्त मे उसी की प्रशंसा की गई। नगर तो डरते रहे, पर गाव पीछे हो लिये। सीधे-सादे लोगो का गाधीजी के अचूक निर्णय पर विश्वास था। उनका नमक-सत्याग्रह किसी सुरक्षित भण्डार या अनन्त महासागर की लूट का धावा नही था। यह अग्रेजो की सत्ता के खिलाफ ३३ करोड भारतीयो के विद्रोह का परिचायक-मात्र था।

कूच के बीच मे ही २१ मार्च १९३० को अहमदाबाद मे महासमिति की बैठक हुई। इसमे कार्य-समिति के पूर्व-कथित प्रस्ताव का समर्थन और नमक-कानून पर ही शक्ति केन्द्रित रखने का अनुरोध किया गया। साथ ही यह चेतावनी दी गई कि गाधीजी के दण्डी पहुचकर नमक-कानून तोड़ने से पहले देश में और कही सविनय-अवज्ञा शुरू न की जाय। सरदार वल्लभभाई और श्रीसेनगुप्त की गिर-फ्तारियो पर और सरकारी नौकरिया छोडनेवाले ग्राम-कर्मचारियो को बधाई दी गई। सत्याग्रहियो के लिए एक ही तरह की प्रतिज्ञा निश्चित करना वाञ्छनीय समझा गया और गाधीजी की अनुमति से प्रतिज्ञा-पत्र बनाया गया जिसमे सत्याग्रह करनेवालो के लिए कर्त्तव्यो का विधान था।

गाधीजी के गिरफ्तार होने पर जनता क्या करे और कैसा व्यवहार रखे, इस विषय मे भी गाधीजी ने अपनी सूचनाएँ दे दी। इसी समय के आस-पास पडित मोतीलाल नेहरू ने आनन्द-भवन का शाही दान दिया। उस वर्ष काग्रेस के अध्यक्ष प० जवाहरलाल नेहरू थे। उन्होने देश के प्रतिनिधि के रूप मे इस भेट को स्वी-कार किया।

गाधीजी-द्वारा आरम्भ किये गये इस आन्दोलन को संख्या, धन और प्रभाव का बल मिलता ही गया। गाधीजी ने सूत्र रूप से विचार दिया था। उनके

शिष्यो ने भाष्यकार बनकर उसे जनता को समझाया। अनेक कार्यकर्त्ता राष्ट्र-दूत बनकर उसका प्रचार करने दूर-दूर निकल पडे। इस प्रकार यह नवीन धर्म देश के कोने-कोने और घर-घर मे फैल गया। गाधीजी की कूच के समय जो सरकार अविचलित दिखाई देती थी, एक ही सप्ताह मे उसके होश-हवास गुम हो गए। गाधीजी के महाप्रस्थान से पहले ही मार्च के प्रथम सप्ताह मे वह वल्लभभाई को गिरफ्तार करने और उन्हे चार मास की सजा देने की दो गैर-कानूनी कार्रवाईया कर चुकी थी। कूच के बाद उसने यह आज्ञा दी कि लगोटी और दण्डधारी गाधी की पैदल-यात्रा का सिनेमा-चित्र न दिखाया जाय। बम्बई, उत्तर प्रदेश, पजाब और मद्रास आदि सभी प्रातो ने ऐसी ही आज्ञाये निकाल दीं।

गाधीजी सहारे के लिए हाथ मे लम्बी लकडी लिये हुए चलते थे। उनकी सारी सेना बिलकुल करीने से पीछे-पीछे चलती थी। सेना-नायक का कदम फुर्ती से उठता था और सभी को प्रेरणा देता था। असलाली गाव १० मील दूर था, लोग घण्टो पहले से भारत के महान् सेनापति के दर्शनो की उत्सुकता मे खडे थे। इस अवसर पर अहमदाबाद मे जितना बडा जलूस निकला, उतना पहले कभी निकला हुआ याद नही पडता। इसकी लम्बाई दो मील से कम न थी। कूच को देखने और अपने अलोकिक उद्धारक के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करने के लिए भीड सर्वत्र मिलती थी। कूच मे ही गाधीजी ने घोषित कर दिया था कि स्वराज्य नही मिला तो या तो रास्ते मे मर जाऊगा या आश्रम के बाहर रहूँगा। नमक-कर न उठा सका तो आश्रम लौटने का भी इरादा नही है। अग्रेजी राज्य ने भारत का नैतिक, भौतिक, सास्कृतिक और आध्यात्मिक सभी तरह नाश कर दिया है। मै इस राज्य को अभिशाप समझता हू और इसे नष्ट करने का प्रण कर चुका हू।

"मैने स्वय 'गाड सेव दि किंग' के गीत गाये है और दूसरो से गवाये है। मुझे 'भिक्षादेहि' की राजनीति मे विश्वास था। पर वह सब व्यर्थ हुआ। मै जान गया कि इस सरकार को सीधा करने का यह उपाय नही है। अब तो राजद्रोह ही मेरा धर्म हो गया है। पर हमारी लडाई अहिंसा की लडाई है। हम किसी को मारना नही चाहते, किन्तु इस सत्यानाशी शासन को खत्म कर देना हमारा परम-कर्तव्य है।"

गाधीजी की गिरफ्तारी होने ही वाली थी। श्री अब्बास तय्यबजी उनके उत्तराधिकारी मुकर्रर हुए।

गाधीजी को कूच मे २४ दिन लगे। रास्ते भर वह इस बात पर जोर देते रहे कि यह तीर्थ-यात्रा है। इसमे शरीर को कायम रखने मात्र के लिए खाने मे ही पुण्य है, स्वादिष्ट भोजन करने मे नही है। वह बराबर आत्म-निरीक्षण कराते रहे। सूरत मे गाधीजी ने जो भाषण दिया उसका उपस्थित जनता पर जबरदस्त

असर हुआ। नवसारी मे पारसियो को सम्बोधन करके गाधीजी ने उनसे शराब का व्यापार छोडने का अनुरोध किया—"यदि हम नमक-कर और शराब की बिक्री को उठा देने मे भी सफल हो गये, तो अहिंसा की जीत है। फिर पृथ्वी पर कौन शक्ति भारतवासियो को स्वराज्य लेने से रोक सकती है ? यदि ऐसी शक्ति होगी, तो मै उसे देख लूगा। या तो जो चाहिए वह लेकर लौटूगा, या मेरी लाश समुद्र पर तैरती मिलेगी।"

नमक-कानून टूटा

५ अप्रैल को प्रात काल गाधीजी दण्डी पहुँचे। श्रीमती सरोजिनी देवी भी उनसे मिलने आई थी। प्रात काल को प्रार्थना के थोडी देर बाद गाधीजी और उनके साथी समुद्र-तट से नमक बीनकर न ,क-कानून तोड़ने निकले। नमक-कानून तोड़ते ही गाधीजी ने यह वक्तव्य प्रकाशित किया.—

"नमक-कानून विधिवत् भग हो गया है। अब जो कोई सजा भुगतने को तैयार हो वह जहा चाहे और जब सुविधा देखे, नमक बना सकता है। मेरी सलाह यह है कि सर्वत्र कार्यकर्त्ता नमक बनाएँ; जहा उन्हें शुद्ध नमक तैयार करना आता हो वहा उसे काम मे भी लाएँ और ग्राम-वासियो को भी सिखा दे, परन्तु उन्हे यह अवश्य जता दे कि कानून छिपाकर नही, खुल्लम-खुल्ला भंग करना है।"

दूसरे वक्तव्य मे स्त्रियो के विषय मे गाधीजी ने नवसारी मे कहा कि मै इतना विश्वास अब भी रख सकता हू कि सरकार हमारी बहनो से लडाई मोल नही लेगी। इसको उत्तेजना देना हमारे लिए भी अनुचित होगा। जबतक सरकार की कृपा पुरुषो तक ही सीमित रहती है तबतक पुरुषो को ही लडना चाहिए; जब सरकार सीमोल्लघन करे तब भले ही स्त्रिया जी खोलकर लडे। मैंने स्त्रियो के सामने जो कार्यक्रम रक्खा है उसमे उनके बहुत काम हैं। वे जितना सामर्थ्य हो, साहस दिखाएँ और जोखिम उठाएँ।

सरकार का दमन-चक्र

६ अप्रैल से नमक-सत्याग्रह से छुट्टी क्या मिली, देश मे इस छोर से उस छोर तक आग-सी लग गई। सारे बडे-बडे शहरो मे लाखो की उपस्थिति मे विराट सभाएँ हुईं। कराची, पूना, पेशावर, कलकत्ता, मद्रास और शोलापुर की घटनाओ ने नया अनुभव कराया और दिखा दिया कि इस सभ्य सरकार का एकमात्र आधार हिंसा है। पेशावर में सेना की गोलियो से कई आदमी मारे गये। मद्रास में भी गोली चली। २३ अप्रैल को बगाल-आर्डिनेन्स फिर जारी कर दिया गया। २७ अप्रैल को वाइसराय साहब ने भी कुछ सशोधन कर के, १९१० के प्रेस-ऐक्ट को आर्डिनेन्स-रूप में फिर से जीवित कर दिया। गाधीजी का 'यंग इण्डिया' अब

साइक्लोस्टाइल पर निकलने लगा था। थोडे दिन बाद गाधीजी ने अपने 'न
जीवन प्रेस' के व्यवस्थापक को आदेश दे दिया कि सरकार जमानत मागे तो न
जाय और प्रेस को जब्त होने दिया जाय। 'नवजीवन' गया और उसके साथ-सा
नवजीवन-प्रेस द्वारा प्रकाशित अन्य पत्र भी जाते रहे। देश के अधिकाश पत्रका
ने जमानते दाखिल कर दी।

अब गाधीजी ने जनता को गावो मे ताडी के सारे पेड काट डलाने का आदे
दिया। शुरुआत तो उन्होने अपने ही हाथो से की। ४ मई को सूरत मे स्त्रियो व
सभा मे वह बोले—"भविष्य मे तुम्हे तकली के बिना सभाओ मे न आना चाहिए
तकली पर तुम बारीक-से-बारीक सूत कात सकती हो। विदेशी कपडा पहले-पह
सूरत के बन्दर पर उतरा था। सूरत की बहनो को ही इसका प्रायश्चित्त कर
है।" यही पर उन्होने जातीय पचायतो से अपनी मदिरा-त्याग की प्रतिज्ञा पाल
करने का अनुरोध किया। किन्तु नवसारी मे सरकारी कर्मचारियो के सामाजि
बहिष्कार के विरुद्ध उन्हे जनता को चेतावनी देनी पडी। खेडा जिला गुजरा
का रणागण बन गया था।

धारासना पर धावा

इसी समय गाधीजी ने वाइसराय साहब के लिए अपना दूसरा पत्र तैया
किया और सूरत जिले के धारासना और छरसाडा के नमक के कारखानो पर धाव
करने का इरादा जाहिर किया। उन्होने वाइसराय को लिखा —

"ईश्वर ने चाहा तो धारासना पहुच कर नमक के कारखाने पर अधिका
करने का मेरा इरादा है। मेरे साथ मेरे साथी भी रवाना होगे। जनता को य
बताया गया है कि धारासना व्यक्तिगत सम्पत्ति है। यह महज धोखाधडी है
धारासना पर सरकार का उतना ही वास्तविक नियत्रण है जितना वाइसरा
साहब की कोठी पर है। अधिकारियो की स्वीकृति के बिना चुटकी-भर नम
भी कोई वहा से नही ले जा सकता। इस धावे को रोकने के तीन उपाय है —

(१) नमक-कर उठा देना।

(२) मुझे और मेरे साथियो को गिरफ्तार कर लेना, परन्तु जैसी मुझे
आशा है, यदि एक के बाद दूसरे गिरफ्तार होने के लिए आते रहेगे तो यह
उपाय कारगर न होगा।

(३) खालिस गुण्डापन। परन्तु एक का सिर फूटने पर दूसरा सिर फुड
वाने को तैयार रहेगा तो यह वार भी खाली जायगा।

यह निश्चय बिना हिचक के नही कर लिया गया है। मुझे आशा थी कि सत्या
ग्रहियो के साथ सरकार सभ्य तरीके से लडेगी। यदि उनपर साधारण कानून का
प्रयोग करके सरकार सन्तोष कर लेती तो मै कह ही क्या सकता था ? इसके बजाय

जहां प्रसिद्ध नेताओं के साथ सरकार ने थोडा-बहुत जाब्ता बरता भी है, वहा साधारण सैनिको पर पाशविक ही नही, निर्लज्ज प्रहार भी किये गये है। ये घटनाये इक्की-दुक्की होती तो उपेक्षा भी कर ली जाती। परन्तु मेरे पास बंगाल, बिहार, उत्कल, उत्तर प्रदेश, दिल्ली और बम्बई से जो सवाद पहुचे है उनसे गुजरात के अनुभव का समर्थन होता है। गुजरात-सम्बन्धी सामग्री तो मेरे पास ढेरो है। कराची, पेशावर और मद्रास के गोली-काण्ड भी अकारण एवं अनावश्यक प्रतीत होते है। हड्डिया चूर-चूर करके और अण्डकोष दबा-दबा कर स्वयसेवको से वह नमक छीनने का प्रयत्न किया गया है जो सरकार के लिए निकम्मा था। हा, स्वयसेवको के लिए अलबत्ता यह बेशकीमती था। बगाल मे नमक के सम्बन्ध मे मुकदमे और प्रहार तो कम ही हुए दीखते है, परन्तु स्वयसेवको से झण्डा छीनने के काम : निर्दयता का परिचय दिया गया बताते है। समाचार है कि चावल दिये गये और खाद्य-पदार्थ जबरदस्ती लूट लिये गये। कर्मचारिय भाजी न बेचने के अपराध पर गुजरात मे एक सब्जी-मण्डी ही न ये कृत्य जन-समूहो की आखो के सामने हुए है। काग्रेस की आज्ञा ये लोग बदला लिये बिना छोडते? कृपया इन वृत्तान्तो पर वि ये मुझे उन लोगो से मिले है जिन्होने सत्य का व्रत ले रखा है भाति बडे-बडे कर्मचारियो-द्वारा किया गया प्रतिवाद भी झूठा ि खेद है, इन दिनो भी कर्मचारी झूठी बाते प्रकाशित करने अन्त मे उन्होने लिखा—"अत आप नमक-कर उठा न सकें मनाही दूर न करा सके तो मुझे अनिच्छा होते हुए भी इस कार्रवाई करनी पड़ेगी।"

इन विचारो को हम रोक न सके और इस ईश्वर-दूत को हिरासत मे लेने के लिए उषा के प्रकाश मे रेल की पटरी पर खडा रहना हमें अच्छा नही लगा।"

गिरफ्तार होने से पहले गाधीजी ने दण्डी मे अपना अन्तिम सन्देश लिखवा दिया था। वह यह था —

"यदि इस शुभारम्भ को अन्त तक निभा लिया तो पूर्ण-स्वराज्य मिले बिना नही रह सकता। फिर भारतवर्ष समस्त ससार के सम्मुख जो उदाहरण उपस्थित करेगा वह उसके योग्य ही होगा। त्याग के बिना मिला हुआ स्वराज्य टिक नही सकता। अत सम्भव है जनता को असीम बलिदान करना पडे। सच्चे बलिदान मे एक ही पक्ष को कष्ट झेलने पडते हैं, अर्थात् बिना मारे मरना पडता है। परमात्मा करे, भारत इस आदर्श को पूरा कर दिखाए। सम्प्रति भारत का स्वाभाविक स्वाभिमान और सर्वस्व एक मुट्ठी नमक मे निहित है। मुट्ठी भले ही टूट जाय, पर खुलनी हरगिज न चाहिए।

"मेरी गिरफ्तारी के बाद जनता या मेरे साथियो को घबराना न चाहिए। इस आन्दोलन का सचालक मै नही हूँ, परमात्मा है। वह सबके हृदय मे निवास करता है। हममे श्रद्धा होगी तो वह अवश्य रास्ता दिखाएगा। हमारा मार्ग निश्चित है। गाव-गाव को नमक बीनने या बनाने के लिए निकल पडना चाहिए। स्त्रियो को शराब, अफीम और विदेशी कपडे की दूकानो पर धरना देना चाहिए। घर-घर मे आबाल-वृद्ध सबको तकली पर कातना शुरू कर देना चाहिये और रोज़ सूत के ढेर लग जाने चाहिए। विदेशी वस्त्रो की होलिया जलाई जाय। हिन्दू किसी को अछूत न माने। हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई सब हृदय से गले मिले। बडी जातिया छोटी जातियो को देने के बाद बचे हुए भाग से सन्तोष करे। विद्यार्थी सरकारी मदरसे छोड दे और सरकारी नौकर उन पटेलो और तलटियो की भाति नौकरिया छोडकर जनता की सेवा मे जुट जाय। इस प्रकार आसानी से हमें पूर्ण स्वराज्य मिल जायगा।"

गिरफ़्तारी का व्यापक प्रभाव

गाधीजी की गिरफ्तारी पर देश के इस छोर से उस छोर तक सहानुभूति की लहर अपने-आप फैल गई। गिरफ्तारी का समाचार पहुंचना था कि बम्बई, कलकत्ता और अनेक स्थानो पर सम्पूर्ण और स्वेच्छापूर्वक हडताल हो गई। गिरफ्तारी के दूसरे दिन की हडताल और भी व्यापक थी। बम्बई मे विराट् जलूस निकला। शाम को इतनी विशाल सभा हुई कि कई मचो पर से भाषण देने पडे। ८० मे से ४० के लगभग मिले बन्द रही। ५० हजार मजदूर विरोध-स्वरूप निकल आये। जी०आई०पी० और बी० बी० सी० आई० के कारखानो के मजदूर भी काम छोडकर हडताल मे शरीक हो गये। गिरफ्तारी पर अपनी नाराजी जाहिर करने के

लिए कपडे के व्यापारियों ने ६ दिन की हडताल का निश्चय किया। गाधीजी पूना मे नजरबन्द किये गये थे। वहा भी पूरी हडताल हुई। समय-समय पर सरकारी पदो और पदवियो के छोडने की घोषणा होने लगी। इस देश ने प्राय. सर्वत्र महात्माजी के उपदेशो का आश्चर्यजनक रूप मे पालन किया। एक-दो स्थानो पर झगडा भी हो गया। शोलापुर मे ६ पुलिस-चौकिया जला दी गई, जिनके फल-स्वरूप पुलिस ने गोली चलाई, जिसमे २५ व्यक्ति मरे और लगभग १००० घायल हुए। कलकत्ते मे शहर की हडताले तो शान्तिपूर्ण रही, परन्तु हबडा और पचतल्ला मे भीड को तितर-बितर करने के लिए पुलिस ने गोली चला दी। १४४ वी धारा के अनुसार ५ से अधिक मनुष्यो के एकत्र होने की मनाही कर दी गई।

परन्तु गाधीजी की गिरफ्तारी का असर तो विश्व-व्यापी हुआ। पनामा के भारतीय व्यापारियो ने २४ घण्टे की हडताल मनाई। सुमात्रा के पूर्वीय समुद्र-तटवासी हिन्दुस्तानियो ने भी ऐसा ही किया और वाइसराय साहब एव काग्रेस को तार भेज कर गाधीजी की गिरफ्तारी पर खेद प्रकट किया। फ्रास के पत्र गाधीजी और उनकी बातो से भरे थे। बहिष्कार-आन्दोलन का परिणाम जर्मनी पर भी हुआ। वहा के कपडे के व्यापारियो को उनके भारतीय आढतियो ने माल भेजने की मनाही करदी। रूटर ने यह समाचार भेजा कि सैक्सनी की सस्ती छीट के कारखानो को खास तौर पर हानि हो रही है। नैरोबी के भारतीयो ने भी हड़ताल रखी।

इसी बीच अमरीका के भिन्न-भिन्न दलो के १०२ प्रभावशाली पादरियो ने तार-द्वारा रैम्जे मैकडानल्ड साहब की सेवा मे आवेदन-पत्र भेजा और उनसे अनुरोध किया कि गाधीजी और भारतवासियो के साथ शान्तिपूर्ण समझौता किया जाय। इसपर हस्ताक्षर न्यूयॉर्क के डॉक्टर जॉन हेनीज होम्स ने करवाये थे। सन्देश मे प्रधान मन्त्री से अपील की गई थी कि भारत, ब्रिटेन और जगत का हित इसी में है कि इस सघर्ष को बचाया जाय और समस्त मानव-जाति की भयकर विपत्ति से रक्षा की जाय।

भारत-सरकार को स्थिति की गभीरता का अवश्य पूरा खयाल था। वाइसराय ने सर तेज बहादुर सप्रू और सर चिम्मनलाल सीतलवाड जैसे नरम नेताओ से लम्बी-लम्बी मुलाकाते की। नरम-दल-सघ की कौसिल की बम्बई मे बैठक हुई। उसने राजनैतिक परिस्थिति पर विचार किया और नरम-नेताओ ने इस बात की आवश्यकता बताई कि वाइसराय शीघ्र ही दूसरी घोषणा करे और गोलमेज-परिषद् की तारीखें मुकर्रर करे। किन्तु सर्वदल-सम्मेलन और नरम-दल की कौसिल की बैठक के एक दिन पहले ही वाइसराय ने दूसरी महत्वपूर्ण घोषणा कर दी और प्रधान-मन्त्री के साथ का अपना पत्र-व्यवहार भी प्रकाशित कर दिया। नरम-दल की कौसिल ने भी मौजूदा परिस्थिति पर एक वक्तव्य निकाला। इसमें कानून-भग के

आन्दोलन की भरपेट निन्दा की गई और औपनिवेशिक स्वराज्य की चर्चा के लिए गोलमेज-परिषद् की जल्दी तैयारी करने का वाइसराय से अनुरोध किया गया। इस बात पर भी जोर दिया गया कि सरकार परिषद् की शर्तें और मर्यादाये प्रकट कर दे, ताकि उस समय भी जो लोग परिषद् से अलग थे वे नरम-दल वालो के साथ उसमे शामिल हो सके। इस बात पर भी आग्रह किया गया कि कानून-भंग का आन्दोलन और सरकार का दमन-चक्र साथ-साथ वन्द हो, राजनैतिक कैदी छोड दिये जाय और सब राजनैतिक दलो पर सरकार पूर्ण विश्वास करे।

कार्य-समिति की बैठक

महात्माजी के स्थान पर श्री अब्बास तैयबजी नमक-सत्याग्रह के नायक हुए थे। वह भी १२ अप्रैल को गिरफ्तार कर लिये गये। गिरफ्तारियो, लाठी-प्रहारो और दमन का दौर-दौरा जारी रहा। एक के बाद दूसरा स्वयसेवक-दल नमक के गोदामो पर धावा करता रहा। पुलिस उन्हे लाठियो से मारती रही। बहुतो को सख्त चोटे आईं।

गाधीजी की गिरफ्तारी के बाद कार्य-समिति की बैठक प्रयाग मे हुई और उसने कानून-भग का क्षेत्र और भी विस्तृत कर दिया। नमक के धावो के लिए धारसाना अखिल-भारतीय केन्द्र माना गया, सविनय कानून-भग मे शाश्वत विश्वास प्रकट किया गया और महात्माजी के कारावास-काल में लडाई को दुगुने उत्साह से चलाने का निश्चय किया गया। साथ ही विद्यार्थियो, वकीलो, व्यवसायियो, मजदूरो, किसानो, सरकारी नौकरो और समस्त भारतीयो को सफलता के लिए अधिक-से-अधिक कष्ट उठाकर सहायता देने के लिए प्रोत्साहित किया गया।

यह भी निश्चय किया गया कि हाथ-कते हुए तथा बुने हुए कपडे की पैदावार बढाई जाय, रुपये से बेचने के साथ-साथ सूत लेकर खद्दर देने वाली सस्थाये खडी की जाय और सामान्यत हाथ-कताई को प्रोत्साहन दिया जाय।

श्रीमती सरोजनीदेवी कार्य-समिति की बैठक मे प्रयाग गई थी। श्री तैयबजी की गिरफ्तारी का समाचार सुनकर वह शीघ्र ही धारसाना लौट आईं और उन्होंने धावे का संचालन करने का गाधीजी को दिया हुआ अपना वचन पूरा किया। वह और उनका स्वयसेवक-दल जाब्ते से गिरफ्तार तो १६ तारीख को ही कर लिया गया, किन्तु बाद मे पुलिस के घेरे से निकाल कर उन्हे रिहा कर दिया गया। इसके बाद स्वयसेवको के दल नमक के गोदामो पर टूट पडे। उन्हे मार-मार कर हटा दिया गया। उसी दिन शाम को पुलिस ने २२० स्वयसेवको को गैर-कानूनी सस्था के सदस्य करार देकर गिरफ्तार कर लिया और धारसाना की अस्थायी जेल मे नजरबन्द कर दिया।

वड़ाला पर धावा

१९ ता० को प्रात काल ही वडाला के नमक के कारखाने पर स्वयसेवक बडी सख्या मे एकत्र हो गये। पुलिस की तत्परता के कारण धावा न हो सका। उस दिन पुलिस तमचे लेकर आई थी। उसने ४०० सत्याग्रहियो को पकड़ लिया।

वड़ाला के नमक के कारखाने पर कई धावे हुए। २२ ता० को १८८ स्वयं-सेवक पकडे गये और वर्ली भेज दिये गये। २५ ता० को १०० स्वयसेवको के साथ २००० दर्शको की भीड भी गई। पुलिस ने लाठी-प्रहार करके १७ को घायल किया और ११५ को गिरफ्तार। धावा दो घण्टे तक रहा। तीसरे पहर फिर धावा हुआ। इसमे १८ घायल हुए। प्रसिद्ध उडाके श्री कबाड़ी भी इनमे शामिल थे। २६ ता० को ६५ स्वयसेवक मैदान मे गये और ४३ गिरफ्तार हुए। बाकी भीड़ के साथ नमक लेकर भाग गये। उस समय एक सरकारी विज्ञप्ति मे कहा गया कि अबतक जो गडबडियाँ हुई है वे अधिकतर दर्शको ने की है और इनमे सैनिको का-सा अनु-शासन नही है, अत जनता को धावो के समय वडाला से दूर रहना चहिये। किन्तु सबसे चमत्कारी धावा तो १ जून को हुआ। युद्ध-समिति उसके लिए बड़े परिश्रम से तैयारिया कर रही थी। उस दिन सुबह १५००० सैनिको और असैनिको ने वड़ाला के विशाल सामूहिक धावे मे भाग लिया।

पोर्ट-ट्रस्ट के रेलवे चौराहे पर एक के बाद दूसरा दल पहुँचा। थोडी देर मे धावा करने वाले स्त्री और बच्चे तक पुलिस का घेरा तोड कर कीचड पार करके कढाइयो पर पहुँचे। लगभग १५० काग्रेसी सैनिको के मामूली चोटें आई। पुलिस ने धावा करने वालो को खदेड दिया। यह सब खुद होम-मेम्बर साहब की देख-रेख मे हुआ।

३ जून को वर्ली की अस्थायी जेल मे बडा उपद्रव हो गया। स्थिति को सम्हालने के लिए पुलिस को दो बार प्रहार करने पडे और सेना बुलानी पडी। उस दिन वडाला के ४ हजार अभियुक्तो से पुलिस की भिडन्त हो गई। लगभग ९० घायल हुए। २५ को सख्त चोटे आई। किन्तु जिस प्रकार धावा करनेवालो के साथ पुलिस ने बरताव किया उस पर जनता मे बडा रोष फैला। दर्शक उस निर्दय दृश्य को देखकर चकित रह गये।

दमन का दौर-दौरा

परन्तु एक-एक बात को कहा तक गिनाये। घटनाओं का अन्त नही था। लार्ड अरविन ने अपनी सत्ता का पेच कसना शुरू कर दिया। आरम्भ मे तो उन्होने गाधीजी को गिरफ्तार नही करने दिया। परन्तु गाधीजी की कूच का रोग तो सारे राष्ट्र को लग गया था। सर्वत्र कूच के नक्कारे बजने लगे थे। उनकी पुकार पर हजारो

महिलाये मैदान मे निकल आई थी। इस कारण सरकार बडे चक्कर में पड गई। उन्होने आते ही शराब और विदेशी कपडे की दुकानो पर धरना देने का काम अपने हाथ मे ले लिया और जबतक शौर्य पर स्वेच्छाचार ने विजय प्राप्त न की तबतक पुलिस भी उनके आगे कुछ न कर सकी। १४ अप्रैल को जवाहरलालजी को पकड कर सजा दे दी गई। जवाहर क्या बन्दी हुआ, काग्रेस बन्दी हो गई। सारा देश एक विशाल जेलखाना बन गया। धरना, करबन्दी और सामाजिक बहिष्कार सबकी रोक के लिये आर्डिनेन्स निकल गये। राष्ट्रीय झडे पर अनेक मुठभेडे हुई। सजाये दिन-दिन कठोर होने लगी। कैद के साथ-साथ जुर्माने किये जाने लगे। सभा-भग की आज्ञा तो होती थी देश के साधारण कानून के अनुसार और उस पर अमल होता था लाठी के निर्दय प्रहारो से। नमक-कानून के साथ-साथ ताजीरात-हिन्द की धाराये मिलाकर लम्बी-से-लम्बी सजाये दी जाने लगी। फरवरी १६३० के मध्य मे एक सरकारी आज्ञा निकली। उसमे राजनैतिक कैदियो का वर्गीकरण किया गया, पर उसमे 'राजनैतिक' शब्द सावधानी के साथ नही आने दिया गया। 'ए' वर्ग तो नाममात्र को ही था। 'बी' क्लास भी बडी कजूसी से दिया जाता था। विपुल सम्पत्ति के स्वामी और ऊचे रहन-सहन के अभ्यासी सरकार की शर्तों के अनुसार भी उच्च-वर्ग के हकदार थे। पर उन्हे भी 'सी' क्लास मे डाल दिया जाता था और काम भी उन्हे जेलो में पत्थर तोडने, घानी पेरने और पानी निकालने का दिया जाता था। सत्याग्रहियो के साथ किये गये व्यवहार ने इस सरकारी आज्ञा की शीघ्र कलई खोल दी। एक बार कलकत्ते के सार्वजनिक उद्यान मे उपस्थित लोग तो ताले मे बन्द करके बुरी तरह पीटे गये। फाटको पर आड लगाकर पहरे बिठा दिये गये। पाशविक व्यवहार की शुरुआत उत्तर प्रदेश और बगाल से हुई, पर थोडे ही दिनो मे दक्षिण-भारत मे यही हाल होने लगा। आदोलन के उत्तरार्द्ध-काल मे वहा दमन की अमानुषिकता का पार नही रहा। बबई लडाई का मुख्य केन्द्र बन गया। विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार पर सारा जोर आ पडा। इसमे मिल मालिको का स्वार्थ साथ था। सौभाग्य से पडित मोतीलाल नेहरू उस समय जेल के बाहर थे। वह बम्बई गये और उन्होने अहमदाबाद के मिलवालो से समझौते की बात-चीत की। अहमदाबादवालो से निपटना आसान था, पर बम्बई के मिलो मे यूरोपियनो का हिस्सा था। उनसे काग्रेस की मुहर लगवाने की शर्त कबूल कराना बडा मुश्किल काम था। परन्तु मोतीलालजी ने असम्भव को सम्भव कर दिखाया। बात यह थी कि वायुमण्डल ही उस समय बहिष्कार की भावना से परिपूर्ण था। जनता के हृदय मे वह व्याप्त हो चुकी थी। विदेशी कपडे की सैकडो गाठे बन्दर पर पडी थी। व्यापारी उन्हे उठवाते न थे। उन्होने एकत्र होकर निश्चय कर लिया था कि वे माल नहीं लेगे। इस कारण देश मे कपडे की तगी होने लगी थी।

कार्य-समिति-द्वारा प्रोत्साहन

२७ जून आ पहुंची। उस दिन प्रयाग मे कार्य-समिति की बैठक हुई। उसने बहुत-से शहरो और गावो मे विदेशी वस्त्र-बहिष्कार की प्रगति पर सतोष प्रकट किया और समस्त काग्रेस-सस्थाओ तथा देशभर से अनुरोध किया कि ब्रिटिश माल के सम्पूर्ण बहिष्कार का पहले से भी अधिक जोरदार प्रयत्न करें और उसके लिए हिन्दुस्तान मे न बनने वाली चीजो को ब्रिटेन के सिवा अन्य विदेशो से खरीदे। जनता से यह भी अनुरोध किया गया कि जिन सरकारी नौकरो और दूसरे लोगो ने राष्ट्रीय आदोलन का गला घोटने के लिए जनता पर अमानुपिक अत्याचार करने मे भाग लिया है उन सबका सगठित और कठोर-रूप मे सामाजिक बहिष्कार किया जाय। भारत के कालेजो के विद्यार्थियो से भी राष्ट्रीय-स्वतन्त्रता के संग्राम मे पूर्ण भाग लेने की अपील की गयी।

ऐसी समितियो और संस्थाओ से, जो सरकार-द्वारा गैर-कानूनी घोषित कर दी गई थी यह कहा गया कि वे सरकार की घोषणा की पर्वाह न करके पहले की भाति काम करती रहें और काग्रेस-कार्यक्रम को जारी रखें।

उन दिनो विलायती कपडे का बहिष्कार दिन-दिन जोरदार और कारगर होता जा रहा था। खद्दर से किसी भाति कपड़े की मांग पूरी होती दीखती न थी। इसके बाद मिल के सूत का हाथ से बुना हुआ कपड़ा ही देश-भक्त नागरिको के लिए ग्राह्य हो सकता था। इसी कारण राष्ट्रीय कार्य मे सहायक और बाधक होनेवाले कारखानो मे भेद करना पडा। तदनुसार उन्हें सनद देने की प्रथा द्वारा काग्रेस के नियन्त्रण मे लाया गया। मिलो से जो शर्ते करवाई गई उनमे से मुख्य ये थी कि वे अपनी मशीनरी ब्रिटिश कम्पनियो से न खरीदेगी, अपने आदमियो को राष्ट्रीय आन्दोलन मे भाग लेने से न रोकेगी, काग्रेस की दी हुई रिआयत का बेजा फायदा उठाकर अपने माल की कीमत न बढायेगी और ग्राहको को हानि न पहुचायेगी। मिलो ने धडाधड इस प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर कर दिये। इसके पश्चात् महासमिति गैर-कानूनी ठहरा दी गई। पण्डित मोतीलाल नेहरू को ३० जून १९३० के दिन गिरफ्तार करके ६ महीने की सजा दे दी गई। दमन-पुराण मे इतनी वृद्धि और हुई कि बहिष्कार-आदोलन की तीव्रता के साथ-साथ दमन-चक्र की कठोरता भी बढती गई। बम्बई के स्वयंसेवक-सगठन मे कोई कसर बाकी न थी। स्त्रिया आती गईं और जब ये कोमलागिया केसरिया साडी पहन-पहन कर अत्यन्त विनम्रता के साथ धरना देती थी, तब लोगो के हृदय बात-की-बात मे पिघल जाते थे। यदि कोई दूकानदार अपने माल पर मुहर न लगवाता तो उसकी पत्नी धरना देने आ बैठती थी। अन्यत्र की तरह बम्बई में भी सार्वजनिक सभाये वर्जित करार दे दी गईं। पर इन आज्ञाओं को मानता कौन था?

ब्रेलसफोर्ड का वक्तव्य

ब्रेल्सफोर्ड साहब ने आन्दोलन के समय इस देश की यात्रा की थी और जनता के साथ जो पाशविक व्यवहार किया जाता था, उसे अपनी आखो देखा था। १२ जनवरी १९३१ के 'मैचेस्टर गार्जियन' मे उन्होने अपना अनुभव इन शब्दो मे प्रकट किया—"पुलिस के खिलाफ जिम्मेदार भारतीय नेताओ को जगह-जगह इतनी शिकायते है कि उनकी जाच करना बडी टेढी खीर है। इस तरह को बहुत-सी बाते मुझे प्रत्यक्षदर्शी अग्रेजो और घायलो को मरहमपट्टी करनेवाले हिन्दुस्तानी डाक्टरो ने सुनाई। मैने भी दो सभाये देखो। उन्हे नही रोका गया था। भाषण राजद्रोहात्मक थे, पर किये गये थे शान्तिपूर्वक। हिंसा की बराबर निन्दा की गई। लोग जमीन पर बैठे तकलिया चलाते हुए भाषण सुन रहे थे। स्त्रियो की सख्या भी खूब थी। अगर इन सभाओ को रोका न जाता तो कोई उपद्रव न होता और जनता सुनते-सुनते थोडे दिन मे ऊबकर अपने-आप घर बैठ जाती। पर हुआ यह कि खासकर बम्बई मे मारपीट कर तितर-बितर करने की नीति से सारे शहर का जोश उमड आया, लाठी-प्रहार सहन करना सम्मान का प्रश्न बन गया और शहादत के जोश में सैकडो स्वयसेवक मार खाने के लिए निकल आये। उन्होने नियमबद्धता और शान्त साहस का परिचय दिया। इस बात मे तो मुझे कोई शका रही नही कि अग्रेज अफसरो की अधीनता मे भी पुलिस राजद्रोह की सजा अकसर शारीरिक रूप में देना चाहती थी। कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुछ छात्र झरोखो पर खडे थे। शान्त जलूस पर होने वाले लाठी-प्रहार देखकर वे जोर से पुकार उठे—"बुजदिलो!" दो घण्टे बाद एक अग्रेज अफसर पुलिस लेकर पहुच गया, और पढाई के कमरो मे घुस-घुसकर पढते-लिखते हुए विद्यार्थियो की आख मीचकर पिटाई हुई। यहा तक कि दीवारे खून से रग गई। विश्वविद्यालय की ओर से जाब्ते मे शिकायत की गई, पर कौन सुनता था! इस घटना का हाल मुझे ऐसे अध्यापको ने सुनाया जिनकी यूरोप के विज्ञान-जगत मे खूब ख्याति है। हाईकोर्ट के एक भारतीय न्यायाधीश का लडका भी इस पिटाई का शिकार हुआ था। लाहौर मे भी ऐसी घटनाएँ हुई। बगाल के कण्टाई गाव मे निर्दोष भीड को तितर-बितर करते हुए पाच आदमी तालाब मे ढकेल दिये गये। पाचो डूबकर मर गये। मेरठ मे एक बडे वकील से मिला। वहा भी एक सभा भंग की गई थी। वकील महाशय मुख्य वक्ता थे। उन्हे गिरफ्तार करके पीटा गया और उसी हालत मे पास खडे पुलिस के किसी सिपाही ने उन पर गोली चला दी। बेचारो को अपनी बाह कटवानी पडी।"

पेशावर की घटना

२३ अप्रैल १९३० को पेशावर मे जो घटनाएँ हुई उनका भी सार यहा दे

देना ठीक होगा। भारत के अन्य भागो की भाति सीमा प्रान्त मे भी कानून-भंग का आन्दोलन चल रहा था। पेशावर-शहर मे काग्रेस की ओर से घोषणा की गई कि २३ अप्रैल से शराब की दुकानो पर पहरा लगेगा। परन्तु शकुन अच्छे नही हुए। २२ अप्रैल को महासमिति का प्रतिनिधि-मण्डल पेशावर पहुचनेवाला था। इसका उद्देश्य सीमा-प्रान्त के विशेष कानूनो के अमल की जाच करना था। मण्डल अटक मे ही रोक दिया गया और प्रान्त मे उसे घुसने नही दिया गया। इस समाचार पर पेशावर मे जलूस निकला और शाही बाग मे विराट सभा हुई। दूसरे दिन तड़के ६ नेताओ को गिरफ्तार कर लिया गया। ६ बजे दो नेता और पकड लिये गये। परन्तु जिस मोटर-लारी मे पुलिस उन्हे थाने पर ले जा रही थी वह बिगड गई। नेताओ ने थाने पर आ जाने का आश्वासन दिया और वे छोड दिये गये। तदनुसार जनता उक्त नेताओ का जलूस बनाकर ाबुली दरवाजे के थाने पर ले गई। पर थाना बन्द था। इतने मे एक पुलिस अफसर घोडे पर आ पहुचा। उसके आते ही जनता नारे लगाने और राष्ट्रीय गीत गाने लगी। अफसर चला गया और अकस्मात् दो-तीन सशस्त्र मोटरे आ पहुची और भीड के भीतर घुस गईं। इसी समय एक अग्रेज मोटर-साइकिल से तेजी से आ रहा था। उसकी मोटर-साइकिल सशस्त्र मोटर से टकरा गई और चूर-चूर हो गई। मोटर मे से किसी ने गोली चलाई और सयोग से मोटर मे आग भी लग गई। डिप्टी कमिश्नर अपनी सशस्त्र मोटर मे से उतरा और थाने मे जाते हुए जीने पर गिर पडा। वह बेहोश हो गया, किन्तु जल्दी ही होश मे आ गया। इसके बाद सशस्त्र मोटरो से गोलिया चलने लगी। लोगो ने मृत शरीरो को वहा से हटाने का प्रयत्न किया। फौजी दस्ते और मोटरे भी हटा ली गई। दूसरी बार फिर गोलिया चलाई गई और वे करीब ३ घण्टे तक चलती रही। दुर्घटनाओ के सम्बन्ध मे सरकार-द्वारा प्रकाशित वक्तव्य मे मृतको की सख्या ३० और घायलो की सख्या ३३ दी गई है; किन्तु लोग इन सख्याओ को करीब-करीब ७ से १० गुना तक बतलाते थे। सायकाल फौज काग्रेस के बिल्लो और राष्ट्रीय झण्डे को उठा ले गई। २५ तारीख को फौज और सामान्यत वहा रहनेवाली पुलिस दोनो हटा ली गई। २८ तारीख को पुलिस ने फिर आकर काग्रेस और खिलाफत के स्वयसेवको से, जो शहर के दरवाजो पर पहरा दे रहे थे, सब शहर का चार्ज ले लिया। ४ मई को शहर पर फौज ने कब्जा कर लिया।

बम्बई में लाठी-चार्ज

१ अगस्त १९३० को बम्बई मे लोकमान्य तिलक की बरसी मनाई गई और श्रीमती हसा मेहता के नेतृत्व मे, जो उस समय नगर-काग्रेस की डिक्टेटर थीं, एक जलूस निकाला गया। काग्रेस-कार्य-समिति की बैठक नगर मे लगातार

तीन दिन से हो रही थी। वह उस समय वहा गैर-कानूनी घोषित नही हुई थी, क्योकि सरकार उस हुक्म को एक प्रान्त से दूसरे में धीरे-धीरे जारी कर रही थी। कार्य-समिति के कुछ सदस्य सायकाल के जलूस में शामिल हो गये थे। जिस समय वे आगे बढे चले जा रहे थे उस समय उन्हें जलूस निकालने की निषेधाज्ञा का दफा १४४ का नोटिस मिला। उस समय तक जलूस मे हजारो आदमी हो गये थे। जिस समय वह हुक्म मिला उस समय सडक पर एक विशाल जन-समुदाय बैठा था और सारी रात पानी बरसते रहने के बाद भी एक इच हटना नही चाहता था। लोग सचमुच पानी के पोखरो मे ही बैठे थे। यह आशा की जा रही थी कि जलूस को आधी रात के बाद आगे बढने दिया जायगा, जैसा कि एक बार पहले हुआ था। किन्तु यह न हुआ। चीफ प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट ने इस स्थिति की सूचना पूना-स्थित होम-मेम्बर को दी। मि० हॉटसन ने उत्तर दिया कि जब तक मै न आऊगा तब तक कुछ भी नही करना चाहिए। वह सुबह होते-होते वहा पहुचे और भीड़ को विक्टोरिया-टर्मिनस की इमारत की गैलरी की एक छत से देखने लगे। कुछ चुने हुए आदमी सुबह गिरफ्तार कर लिये गये और उनके साथ कोई सौ महिलाये भी, और तब भीड को तितर-बितर करने के लिए लाठी-प्रहार का हुक्म हुआ। कार्य-समिति के जो सदस्य उस समय गिरफ्तार हुए उनमें प० मदनमोहन मालवीय, श्री वल्लभभाई पटेल, जयरामदास दौलतराम और श्रीमती कमला नेहरू थे। श्रीमती मणिबहन (वल्लभभाई की सुपुत्री) जलूस मे थी, इसलिए वह भी गिरफ्तार कर ली गईं। कोई सौ अन्य महिलाये भी गिरफ्तार की गई थी। उनमे डिक्टेटर श्रीमती हंसा मेहता भी थी।

विभिन्न प्रान्तों में दमन

जब वल्लभभाई पटेल अपनी ४ मास की पहली सजा काट कर बाहर आये तब पण्डित मोतीलाल नेहरू ने उन्हे कांग्रेस का स्थानापन्न अध्यक्ष नियुक्त किया। उन्होने बम्बई और गुजरात में कार्य सगठित करना आरभ किया और आन्दोलन को और भी तीव्र कर दिया। इस राष्ट्रीय-आन्दोलन मे भारतवर्ष के हरेक प्रान्त और भाग ने अपने-अपने हिस्से का कष्ट-सहन किया। भिन्न-भिन्न स्थानो पे भिन्न-भिन्न तरह से आन्दोलन और दमन चल रहा था। इसका कारण था—भिन्न भिन्न परिस्थितियाँ, सम्बन्धित अफसरो का स्वभाव, पट्टे की शर्तें आदि। दक्षिण-भारत पर तो बहुत ही बुरी बीती। वहा लाठी-प्रहार, भारी-भारी जुर्मानो और लम्बी-लम्बी सजाओ की शुरुआत आन्दोलन के बढनेपर नही, बल्कि पहले ही से हो गई थी। बगाल-प्रान्त ने देश भर में सब प्रान्तो से अधिक कैदी दिये। अग्रेजी कपडे का बहिष्कार बगाल और बिहार-उडीसा में सबसे अधिक हुआ। वहा नवम्बर १९२९ के मुकाबले मे नवम्बर १९३० में अग्रेजी कपडे का आयात ९५% गिर

गया था। स्वतन्त्रता के युद्ध मे गुजरात की कारगुजारिया अनुपम थीं। कर-बन्दी का आन्दोलन तो केवल उत्तर प्रदेश में ही शुरू किया गया था। वहा अक्तूबर १९३० मे जमीदारो और काश्तकारो दोनो को ही लगान और मालगुजारी रोक लेने के लिए कहा गया था। पजाब भी किसी से पीछे न रहा। अहिंसा-धर्म को हृदय से स्वीकार करके सीमाप्रान्त की जितनी राजनैतिक जीत हुई उतनी ही नैतिक विजय भी हुई। बिहार मे चौकीदारी-टैक्स देना अधिकाश बन्द कर दिया गया। उसके लिए उस प्रान्त ने पूरे-पूरे कष्ट सहे। वहा के लोगो को सजा देने के लिए वहा अतिरिक्त-पुलिस रख दी गई और छोटी-छोटी रकमो के लिए उनकी बडी-बडी जायदादे जब्त कर ली गईं। मध्य-प्रान्त में जगल-सत्याग्रह शुरू किया गया। उसमे सफलता मिली। लोगो ने भारी-भारी जुर्मानो और पुलिस की ज्यादतियो के होने पर भी उसे जारी रखा। तीन लाख ताड और खजूर के पेड काट डाले गये। सिर्सी ताल्लुके के १३० पटेलो मे से ९६ ने, सिद्दापुर ताल्लुके के २५ ने और अकोला ताल्लुके के ६३ पटेलो में से ४३ ने त्याग-पत्र दे दिये थे। अकोला मे करबन्दी-आन्दोलन का हेतु शुरू से ही राजनैतिक था, किन्तु सिर्सी और सिद्दापुर मे वह आर्थिक कारणो से शुरू हुआ था। किसानो की तबाही भी एक कारण थी। केरल, जो कि प्रान्तो मे सबसे छोटा है, सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन का झण्डा अन्त तक फहराता रहा। दूसरे सिरे पर आसाम प्रान्त ने, जिसमे कछार और सिलहट भी शामिल है, राष्ट्रीय महासभा की आवाज का शानदार जवाब दिया। इसी प्रकार अन्य प्रान्तो मे भी दमनकारी घटनाएँ हुईं।

गुजरात मे किसानो की हिजरत वर्णन करते हुए मि० विल्सफोर्ड ने लिखा है कि यहा के देहातियो ने आश्चर्यजनक एकता के साथ एक-एक करके पहले अपना सारा सामान अपनी-अपनी गाडियो मे जमाया और फिर वे उन्हे बड़ौदा की सीमा मे हाक ले गये। उनमे से कुछ ने अपनी कीमती फसलो को ले जाना असम्भव देख जला दिया। उन्होने चटाइयो की दीवारे और टाट पर ताड़ के पत्ते बिछाकर छते बना ली और काम चलाऊ घर बना लिये। मैने उनमे से एक बड़े दल से पूछा कि आप लोगो ने अपने-अपने घर क्यो छोड दिये है ? स्त्रियो ने बहुत जल्दी सीधे सादे उत्तर दिये, 'क्योकि महात्माजी जेल मे है।' पुरुषो को अपने आर्थिक कष्ट का ज्ञान था। उन्होने कहा, 'खेती मे इतना पैदा नही होता और लगान बेजा है।' एक-दो ने कहा, 'स्वराज्य लेने के लिए।' मैने सूरत की कांग्रेस के सभापति के साथ उन परित्यक्त गावो मे भ्रमण करते हुए दो दिन व्यतीत किये, जो मुझे सदा याद रहेगे। घरो की कतार-की-कतार खाली पड़ी थी। उनपर कपडा सिले हुए ताले लगे थे। इन परित्यक्त गावो मे से एक से जब हमारी मोटर रवाना होने लगी तब सगीन चढी हुई रायफल वाले पुलिसमैन ने हमे ठहर जाने का हुक्म दिया। उसने कहा कि 'आप पुलिस की लिखित आज्ञा लेकर ही गाव से जा

सकते है', किन्तु जब उसने मेरी यूरोपियन पोशाक देखी तब वह तुरन्त डर गया। टूटी-फूटी अग्रेजी मे सिटपिटाते हुए बोला—'हुजूर!' किन्तु मजे की बात तो यह थी कि उसकी वर्दी पर नम्बर का कही पता भी न था। जब मैने उससे उसका नम्बर पूछा तब उसने मुझे विश्वास दिलाया कि हम सब लोग गुप्त नम्बर रखते है। वह सिपाही उस दल का आदमी था जो उस विशेष कार्य के लिए तैयार किया गया था, और जो आयर्लैंड के 'ब्लेक एन्ड टान्स' दल से मिलता-जुलता था। इस दल के सगठन-कर्त्ता यह बात न जानते होगे कि उनकी वर्दियो पर उनके नम्बर नही रहते।

इस दु खभरी कहानी को समाप्त करते हुए हमे पेशावर और वहाँ के पठानो के विषय मे कुछ अन्तिम शब्द और कहने है। पठान, जिनका नाम निर्दयता और हिंसा के लिए प्रसिद्ध है, मेमनो के समान सीधे-सादे और अहिंसा की प्रतिमूर्ति बन गये थे। खान अब्दुलगफ्फार खॉ ने अपने 'खुदाई खिदमतगारो' का ऐसे सुनियन्त्रित और सच्चे ढग से सगठन किया था कि भारतवर्ष का जो भाग इस दिशा मे अत्यन्त भयजनक था वह अहिंसात्मक असहयोग-आन्दोलन के प्रयोग के लिए बहुत ही सुरक्षित केन्द्र बन गया था। सीमातप्रान्त में की गई निर्दयताओ को बिलकुल अन्धकार मे रखा गया था और श्री विट्ठलभाई पटेल की रिपोर्ट सरकार ने जब्त कर ली थी। एक महत्वपूर्ण घटना जो सीमाप्रान्त मे हुई थी, वह यहा उल्लेखनीय है। उस प्रान्त में जो दमन हुआ उस सिलसिले मे गढवाली सिपाहियो को, एक सभा मे बैठे हुए लोगो पर, गोली चलाने की आज्ञा दी गई। उन्होने शान्त और नि शस्त्र भीड पर गोली चलाने से इन्कार कर दिया। इस कारण उन सिपाहियो पर फौजी अदालत मे मुकदमा चलाया गया और उन्हे १० से लगाकर १४ साल तक की लम्बी-लम्बी सजाये दी गई। बोरसद मे भी इसी प्रकार की एक रोमाञ्चकारी घटना हुई। वहाँ की महिलाओ ने बडी वीरता दिखाई। पुलिस प्रदर्शन को रोकने का निश्चय कर चुकी थी। स्त्रियो ने जलूसवालो को पानी पिलाने के लिए भिन्न-भिन्न स्थानो पर पानी के बडे-बडे बर्तन रख छोडे थे। पुलिस ने पहले इन बर्तनो को ही तोडा। फिर स्त्रियो को बलपूर्वक तितर-बितर कर दिया। यह भी कहा जाता है कि जब स्त्रियाँ गिर गई तब पुलिसवाले उनके सीनो को बूटो से कुचलते हुए चले गये। पुलिस के गुण्डेपन का कदाचित् यह अन्तिम कार्य था। क्योकि २६ जनवरी को समझौते की बातचीत चलाने योग्य वातावरण उत्पन्न करने के लिए गाधीजी और उनके २६ साथियो को बिना शर्त छोड देने की विज्ञप्ति प्रकाशित हुई थी।

समझौते के असफल प्रयत्न

समझौते की बातचीत पहले से ही चल रही थी। २० जून १९३० को बम्बई मे प० मोतीलालजी से, जब वह बाहर थे, 'डेली हेरल्ड' के संवाददाता मि०

स्लोकोम्ब ने मुलाकात की थी और उनसे 'काग्रेस किन शर्तों पर गोलमेज-परिषद् मे शामिल हो सकती है ?'—इस विषय पर बातचीत की थी। इसके थोडे दिन बाद मि० स्लोकोम्व की सोची हुई शर्तों पर एक सभा मे, जिसमे पण्डितजी, श्री जयकर और मि० स्लोकोम्ब खुद मौजूद थे, विचार हुआ और वे स्वीकार हुई। सर सप्रू और जयकर मध्यस्थ हुए। पडित मोतीलालजी समझौते की तजवीजे लेकर काग्रेस के सभापति प० जवाहरलाल नेहरू और गाधीजी के पास जाने को राजी हो गये। शर्त यह थी कि ब्रिटिश-सरकार और भारत-सरकार दोनो निजी तौर पर यह आश्वासन देने को राजी हो जायँ कि, चाहे गोलमेज-परिषद् की कुछ भी सिफारिशे हो और चाहे पार्लमेन्ट हमारे प्रति कुछ भी रुख रखे वह स्वय भारत-वर्ष को पूर्ण उत्तरदायी-शासन की माग का समर्थन करेगे। शासन-परिवर्तन की खास-खास तर्मीमो और शर्तों की, जिन्हे गोलमेज-परिषद् रखे, उनमे गुजाइश रहे। इस आधार पर मध्यस्थो ने वाइसराय से लिखा-पढी की और गाधीजी, मोतीलालजी और जवाहरलालजी से जेल मे मिलने की इजाजत मागी। यह १३ जुलाई की बात है। तब तक मोतीलाल जी को जेल हो चुकी थी। वाइसराय ने अपने उत्तर मे भारतवासियो को दिये जानेवाले स्वराज्य के प्रकार को और भी नरम कर दिया। उन्होने वादा किया कि 'हम भारतवासियो को उनके गृह-प्रबन्ध का उतना अश दिलाने मे सहायता देगे जितना कि उन विषयो के प्रवन्ध से मेल खाता हुआ दिखाया जायगा, जिनमे जिम्मेदारी लेने की स्थिति मे वे नही है।'

उक्त दो कागजों को लेकर सप्रू और जयकर ने यरवदा जेल में २३ और २४ जुलाई को गाधीजी से मुलाकात की, जिसमे गाँधीजी ने उन्हे नैनी-जेल (इलाहावाद) में पं० मोतीलाल और जवाहरलाल नेहरू को देने के लिए एक नोट और पत्र दिया। गाधीजी चाहते थे कि गोलमेज परिषद् के वाद-विवाद को संरक्षणो-सम्वन्धी विचार तक ही सीमित रखा जाय। सक्रमण-काल के सिलसिले मे स्वाधीनता का प्रश्न विचार-क्षेत्र से निकाल न दिया जाय। गोलमेज-परिषद् की रचना सतोषजनक हो, सविनय-अवज्ञा-आदोलन के रोक लेने की दशा मे भी तवतक विदेशी वस्त्र और शराब का धरना जारी रहे, जबतक कि सरकार स्वय शराव और विदेशी वस्त्र का निषेध कानून न कर दे और नमक का वनाया जाना विना किसी भी तरह की सजा के जारी रखा जाय। इसके वाद उन्होने राजनैतिक वन्दियो के छुटकारे का, जायदादो, जुर्मानो और जमानतो के वापस करने का, जिन अफसरो ने अपने पदो से त्यागपत्र दे दिये थे उनकी पुर्ननियुक्ति का और आर्डि-नेन्सो को वापस लेने का जिक्र किया। उन्होने सन्देशवाहको को सावधान किया और कहा कि मै एक कैदी हूँ, इसलिए मुझे राजनैतिक गति-विधियो पर राय देने का कोई हक नही है। ये मशविरे मेरे अपने है। मै स्वराज्य की हरेक योजना

को अपनी ११ शर्तों से कसने का हक अपने लिए सुरक्षित रखता हूँ। गाधीजी से बाते करने के पश्चात् सन्देश-वाहको ने २७ और २८ जुलाई को पं० मोतीलाल और जवाहरलाल नेहरू से मुलाकात की। खूब बहस भी हुई। मोतीलालजी और जवाहरलालजी ने २८ जुलाई १९३० के पत्र में अपनी यह राय प्रकट की कि जबतक मुख्य-मुख्य विषयो पर एक समझौता न हो जाय तबतक किसी भी परिषद् मे हमे कोई भी चीज न मिल सकेगी। ३१ जुलाई तथा १ और २ अगस्त को श्री जयकर गाधीजी से पुन मिले, तब गाधीजी ने उनसे साफ-साफ कहा कि मुझे ऐसी कोई भी शासन-विधान-सम्बन्धी योजना स्वीकार न होगी जिसमे चाहे जब साम्राज्य से पृथक् होने की इजाजत न हो और जिससे भारतवर्ष को मेरी ग्यारह बातो के अनुसार कार्य करने का अधिकार और शक्ति न मिले।

थोडे दिन बाद ही दोनो नेहरू और डा० सैयद महमूद यरवडा-जेल मे ले जाये गये। वहा १४ अगस्त को एक सम्मेलन हुआ, जिसमे एक तरफ मध्यस्थ थे जयकर तथा सप्रू और दूसरी तरफ गाधीजी, दोनो नेहरू, वल्लभभाई पटेल, डा० सैयद महमूद, श्री जयरामदास दौलतराम और श्रीमती नायडू। इस सम्मेलन का परिणाम १५ अगस्त के एक पत्र में प्रकाशित हुआ जिसमे हस्ताक्षर-कर्ताओ ने, समझौतो की शर्तों को, दोहराया था। उसमे उन्होने भारतवर्ष के पृथक् होने के हक को और अग्रेजो के दावो और उनकी रियायतो की जाच के लिए एक कमिटी की नियुक्ति की माग को भी शामिल कर दिया था। वाइसराय ने अपने २८ अगस्त के एक पत्र में लिखा कि मै तो प्रान्तीय सरकारो से राजनैतिक बन्दियो को बडी सख्या मे छोडने की प्रेरणा कर सकता हूँ, किन्तु मामलो पर उनके प्रकारो और योग्यता के अनुसार विचार करना उन्ही का अधिकार होगा। दोनो नेहरूओ ने, जो नैनी-जेल मे वापस ले आये गये थे, ३१ तारीख को गाधीजी को लिखा कि वाइसराय मुख्य प्रारम्भिक बातो पर विचार करना भी गैर-मुमकिन खयाल करते है। कुछ समय तक और भी पत्र-व्यवहार हुआ, किन्तु अन्त में हुआ यह कि शान्ति की बात-चीत असफल हो गई। सप्रू-जयकर की समझौते की बात-चीत के असफल हो जाने से भारतवर्ष के हितैषियो को निराशा नही हुई। इसके बाद मि० हौरेस जी० अलक्जैण्डर के, जो सैली ओक कॉलेज मे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो के अध्यापक थे, उत्साह-पूर्ण प्रयत्न शुरू हुए। वह वाइसराय से और जेल मे गाधीजी से मिले। गाधीजी की साफ मागो से वह प्रभावित हुए। उनमें कोई शब्दा-डम्बर न था, केवल हिन्दुस्तान की गरीबी की सीधी-सादी समस्याओ का मुकाबला भर करने का प्रयत्न किया गया था। इस समय तक लॉर्ड अर्विन ने एक दर्जन के करीब आर्डिनेन्स निकाल दिये थे। वह आर्डिनेन्सो की बहुत आवश्यकता भी बताते जा रहे थे और भारतीय राष्ट्रीयता की थोडी कद्र भी कर रहे थे।

गोलमेज-परिषद्

१२ नवम्बर १९३० को गोलमेज परिषद् शुरू हुई। अपर-हाउस की शाही गैलरी मे बडी शान के साथ उसका उद्घाटन हुआ था। कुल ८६ प्रतिनिधि थे, जिनमे १६ रियासतो से गये थे, ५७ ब्रिटिश भारत से और बाकी १३ इग्लैड के भिन्न-भिन्न दलो के मुखिया थे। गोलमेज-परिषद् बीच-बीच मे सेण्ट जेम्स महल मे भी हुई। शुरू के भाषणो मे प्राय सभी ने औपनिवेशिक स्वराज्य की चर्चा की। पटियाला, बीकानेर, अलवर और भूपाल के नरेश-प्रतिनिधि संघ-राज्य के पक्ष मे थे। प्रधान-मन्त्री ने शासन-विधान की सफलता के लिए जरूरी दो मुख्य शर्तें रखी। पहली यह कि शासन-विधान पर अमल किया जाय और दूसरी यह कि उसका विकास होता रहे। उन्होने इस पिछली बात की खूबिया दिखलाई। उन्होने कहा कि जो शासन-व्यवस्था विकासशील होगी उसे अगली पीढी पवित्र विरासत समझेगी। इसके बाद भिन्न-भिन्न उपसमितिया बनाई गई जिन्होने रक्षा के अधिकार, सीमा, अल्प-सख्यको, ब्रह्मा, सरकारी नौकरिया और प्रान्तीय तथा सघ-शासन के ढाचो की बावत बाकायदा रिपोर्टें दी। परिषद् अधिवेशन को जल्दी समाप्त करना चाहती थी, इसलिए १९ जनवरी को खुला अधिवेशन हुआ। इसके बाद प्रधानमन्त्री ने भारतवर्ष के भावी शासन-विधान के सम्बन्ध मे ब्रिटिश-सरकार की नीति और उसके इरादो की घोषणा की और फिर परिषद् समाप्त हुई।

रिआयती प्रस्ताव

परिषद् को समाप्त हुए अभी एक सप्ताह भी न हुआ था कि भारतवर्ष की स्थिति मे एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो गया, जिसके परिणामस्वरूप गाधीजी और उनके १९ साथियो को जेल से विना शर्त रिहा कर दिया गया। पीछे ७ आदमियों की रिहाई से यह संख्या और भी बढ गई। उस समय वाइसराय ने जो वक्तव्य प्रकाशित कराया था वह भाषा और भाव दोनो मे ही सुन्दर था। काग्रेस-कार्य-समिति-द्वारा पास किये हुए एक विशेष प्रस्ताव को यहा देना आवश्यक समझते हैं, जिसपर 'रिआयती' (Privileged) लिखा हुआ था। यह 'रिआयती प्रस्ताव' काग्रेस कार्यकारिणी ने २१ जनवरी १९३१ को शाम के ४ वजे स्वराज्य भवन इलाहाबाद मे स्वीकार किया।

"अ० भा० राष्ट्रीय महासभा की यह कार्यसमिति उस 'गोलमेज परिषद्' की कार्रवाईयो को स्वीकार करने को तैयार नही है जो ब्रिटिश-पार्लमेंट के खास-खास सदस्यो, भारतीय नरेशो और ब्रिटिश-सरकार द्वारा अपने समर्थको मे से चुने हुए उन व्यक्तियो ने मिलकर की थी, जो भारतवासियो के किसी भी वर्ग के चुने हुए प्रतिनिधि नही थे। इस कार्य-समिति की राय में ब्रिटिश-सरकार ने

भारतीय-प्रतिनिधियो से सलाह लेने का प्रदर्शन करने के लिए जिन तरीको का इस्तेमाल किया है, उनसे उसने स्वय अपने-आपको निन्दनीय ठहराया है। वास्तव बात तो यह है कि वह, भारतवासियो के महात्मा गाधी और जवाहरलाल नेहरु जैसे वास्तविक नेताओ को जेलो मे बद करके, आर्डिनेसो और सजाओ द्वारा और सविनय-अवज्ञा-द्वारा अपने देश की स्वाधीनता प्राप्त करने के देशभक्तिपूर्ण प्रयत्न में लगे हुए हजारो शात, शस्त्रहीन, और मुकावला न करनेवाले लोगो पर लाठी-प्रहार करके और गोलिया चलाकर, इस देश की सच्ची आवाज को रोकती रही है।

"इस कार्य-समिति ने १९ जनवरी १९३१ को मन्त्रि-मडल की ओर से इगलैंड के प्रधान मत्री मि० रेम्जे मैकडानल्ड-द्वारा घोषित सरकार की नीति पर खूब विचार कर लिया है। इस समिति की राय मे वह इतनी अस्पष्ट और सामान्य है कि उससे काग्रेस की नीति मे परिवर्तन नही किया जा सकता।

"यह समिति लाहौर-काग्रेस मे स्वीकृत पूर्ण स्वाधीनता के प्रस्ताव पर दृढ है और यरवडा जेल से १५ अगस्त १९३० को लिखे हुए पत्र में म० गाधी, प० मोतीलाल नेहरू, प० जवाहरलाल नेहरू तथा अन्य लोगो ने जो विचार प्रकट किये है उनका समर्थन करती है।

"समिति देश से अपील करती है कि वह, २६ जनवरी को स्वाधीनता-दिवस, प्रकाशित किये हुए कार्यक्रम के अनुसार मनाये और यह सिद्ध कर दे कि वह निर्भय और आशा-पूर्ण होकर स्वाधीनता की लडाई जारी रखने का दृढ निश्चय कर चुका है।"

जब काग्रेस-कार्य-समिति मे यह प्रस्ताव आया तब राजेंन्द्र बाबू काग्रेस के काम-चलाऊ अध्यक्ष थे। वल्लभभाई तो ११ मास मे तीसरी बार जेल गये हुए थे, इसलिए वही उनके स्थानापन्न थे। प० मोतीलाल नेहरू जेल मे सख्त बीमार हो जाने के कारण सजा की मियाद खत्म होने से पहले ही छोड दिये गये थे। इसके थोडे दिन बाद ही उनकी मृत्यु हुई थी। कार्य-समिति की बैठक का और उसके उद्देश्य का प्रेस द्वारा खुला एलान कर दिया गया था। इस अवसर पर कार्य-समिति के सदस्य इलाहाबाद मे जमा हुए। कुछ वाद-विवाद के बाद यह प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। प० मदनमोहन मालवीय यद्यपि रोगी थे, किन्तु फिर भी समिति की इस बैठक मे उपस्थित हुए थे। सवाल यह था कि आया यह प्रस्ताव प्रकाशित किया जाय या नही? इस पर मतभेद था। अन्त मे यह तय हुआ कि इसे अगले दिन तक प्रकाशित न किया जाय। किन्तु दूसरे दिन अचानक एक ऐसी घटना हो गई जिससे इसे प्रकाशित न करने का निश्चय ही ठीक सिद्ध हुआ। लन्दन से डा० सप्रू और शास्त्रीजी का एक तार मिला, जिसमे उन्होने कार्य-समिति से उनके आने से पहले उनकी बाते बिना सुने प्रधान-मन्त्री के भाषण पर कोई निर्णय न करने

की प्रार्थना की थी। उस तार के अनुसार प्रस्ताव प्रकाशित नहीं किया गया, किन्तु जैसा कि ऐसे मामलो मे प्राय हुआ करता है, इसकी सूचना इसके पास होने के कुछ देर बाद ही सीधी सरकार के पास पहुँच गई थी। २५ जनवरी १९३१ को गवर्नर-जनरल ने एक वक्तव्य निकाला जिसके अनुसार काग्रेस की कार्य-समिति के सदस्यो को आपस मे और उन लोगों के साथ जो १ जनवरी १९३० से समिति के सदस्य के तौर पर काम कर रहे थे, बातचीत करने की पूरी-पूरी छूट दी गई और वे जेल से मुक्त कर दिये गये।

: १४ :

गांधी-अर्विन-समझौता : १९३१

मोतीलाल नेहरू का स्वर्गवास

कांग्रेस-कार्य-समिति के सदस्यो की रिहाई २६ जनवरी की आधीरात से पहले होने वाली थी। इस बात की भी हिदायत थी कि उनकी पत्निया यदि जेल में हो तो उन्हे भी रिहा कर दिया जाय। बीच-बीच में जो लोग किसी के बजाय कार्य-समिति के सदस्य बने थे उनकी रिहाई की भी आज्ञा थी, इसलिए इस प्रकार रिहा होनेवालो की कुल सख्या २६ तक पहुँच गई। गाधीजी, छूटते ही, पं० मोती-लाल नेहरू से मिलने के लिए इलाहाबाद चल दिये, जहा वह बीमार पडे हुए थे। कार्य-समिति के सब सदस्यो को भी बुलाया गया। वही स्वराज्य-भवन मे, ३१ जनवरी और १ फरवरी १९३१ को, कार्य-समिति की बैठक हुई, जिसमे एक प्रस्ताव पास हुआ। प्रस्ताव मे कहा गया कि जबतक स्पष्ट रूप से सविनय अवज्ञा आन्दोलन को बन्द करने की आज्ञा न निकाली जाय तबतक आन्दोलन बराबर जारी रहेगा। साथ ही विदेशी कपड़े और शराब तथा अन्य नशीली चीजो की दूकानो पर धरना देना जबतक बिलकुल शान्ति-पूर्ण रहे और जबतक सर्वसाधारण के कार्य मे उससे कोई रुकावट न पडती हो तबतक वह नागरिको के साधारण अधिकार के अन्तर्गत है।

कार्य-समिति के असली और स्थानापन्न सदस्य ३ फरवरी तक इलाहाबाद ही रहे। पण्डित मोतीलाल की हालत दिन-ब-दिन खराब होती जाती थी। इसलिए यह आवश्यक समझा गया कि उन्हे 'एक्सरे-परीक्षा' के लिए लखनऊ ले जाया जाय। तबतक करीब-करीब सभी लोग थोडे दिनो के लिए वहां से चले गये, पर गांधीजी सहित कुछ लोग वही रहे। गाधीजी तो मोतीलालजी के साथ लखनऊ

भी गये, जहा मौत से बड़ी कश-मकश के बाद इन अन्तिम शब्दो के साथ मोती-लाल जी सदा के लिए हमसे विदा हो गये—"हिन्दुस्तान की किस्मत का फैसला स्वराज्य-भवन मे ही कीजिये। मेरी मोजूदगी मे ही फैसला कर लो। मेरी मातृ-भूमि के भाग्य-निर्णय के आखिरी सम्मानपूर्ण समझौते मे मुझे भी साझीदार होने दो। अगर मुझे मरना ही है, तो स्वतंत्र भारत की गोद मे ही मुझे मरने दो। मुझे अपनी आखिरी नीद गुलाम देश मे नही, बल्कि आजाद देश मे ही लेने दो।" इस प्रकार पंडितजी की महान् आत्मा हमसे जुदा हो गई। जब उनकी दूरन्देशी और तत्काल बुद्धि से राष्ट्र को अपने सामने उपस्थित पेचीदा समस्याओं को स्पष्ट रूप से सुलझाने मे पर्याप्त सहायता मिलने की आवश्यकता थी तब उनका हमारे बीच से उठ जाना राष्ट्र की ऐसी भारी क्षति थी कि वस्तुत उसकी पूर्ति नही हो सकती थी। उनकी मृत्यु पर, ७ फरवरी को, गाधीजी ने इलाहाबाद से यह संदेश दिया—"मोतीलालजी की मृत्यु हरेक देशभक्त के लिए ईर्ष्यास्पद होनी चाहिए। क्योकि अपना सब-कुछ न्योछावर करके वह मरे है और अन्त समय तक देश का ही ध्यान करते रहे है। इस वीर की मृत्यु से हमारे अन्दर भी बलिदान की भावना आनी चाहिए। हम मे से हरेक को चाहिए कि जिस स्वतन्त्रता के लिए वह उत्सुक थे और जो अब हमारे बहुत नजदीक आ पहुची है, उसको प्राप्त करने के लिए अपना सर्वस्व नही, तो कम-से-कम इतना बलिदान तो करे ही कि जिससे वह हमे प्राप्त हो जाय।"

दमन का दौर-दौरा

राजनैतिक परिस्थिति मे इस समय जो बात वस्तुत शोकजनक थी, और जिसके लिए गाधीजी खास तौर पर चिन्तित थे, वह यह थी कि इंग्लैण्ड मे तो खूब चिल्ला-चिल्ला कर हिन्दुस्तान को स्वतन्त्रता देने की बात कही जा रही थी, पर उसके कारण हिन्दुस्तानी के अधिकारियो के रुख मे कोई परिवर्तन नजर नही आ रहा था। चारो ओर दमन-चक्र अपने भयंकर रूप मे जारी था। ठीक इसी समय गोलमेज परिषद् मे गये हुए प्रतिनिधि लौटकर हिन्दुस्तान आये और आते ही, ६ फरवरी १९३१ को, उन्होने काग्रेस से निम्न प्रकार अपील की —

"गोलमेज-परिषद् की योजना अभी तो खाली एक खाका है, तफसील की बाते तो जिनमे से कुछ बहुत सार की और महत्वपूर्ण है, अभी तय होनी है। हमारी यह हार्दिक इच्छा है कि अब कांग्रेस तथा अन्य दलो के नेता आगे बढकर इस योजना की पूर्ति के लिए अपना रचनात्मक सहयोग प्रदान करे। हमे आशा है कि वातावरण को ऐसा शात कर दिया जाय जिसमे आवश्यक विषयो पर भलीभाति विचार किया जा सके और राजनैतिक कैदियो की रिहाई हो सके।"

लेकिन इसके बाद भी सजाये दी जाती रही। फरवरी १९३१ मे कानपुर शहर मे पिकेटिंग के अपराध मे १३६ गिरफ्तारियाँ हुई। साथ ही जेलो मे भी क्या खाना-कपड़ा और क्या दवादारू—कैदियो के साथ वैसा ही खराब व्यवहार होता रहा जैसा पहले होता था। उन्हे पहले की ही तरह सजा भी दी जाती रही। १३ फरवरी को इलाहाबाद मे कार्य-समिति की बाजाब्ता बैठक हुई। इस समय तक डा० सप्रू और शास्त्रीजी हिन्दुस्तान आ गये थे। गाधीजी और कार्य-समिति से मिलने के लिए वे दौडे हुए इलाहाबाद गये। कार्य-समिति के साथ उनकी लम्बी बहस हुई, जिसमे कार्य-समिति के सदस्यो ने उनसे कड़ी-से-कडी जिरह की। यहां तक कि कभी-कभी तो कार्य-समिति के सदस्य उनके प्रति मृदुता तक न रख पाते थे; क्योंकि शास्त्री जी इग्लैण्ड मे कुछ ऐसी बाते कह गये थे जिससे सर्वसाधारण मे उत्तेजना ही नही फैल रही थी, बल्कि उनके प्रति रोष भी बढ़ रहा था।

वाइसराय से भेंट

गाधीजी ने लार्ड अर्विन को एक पत्र लिखा, जिसमे देश मे पुलिस-द्वारा की जा रही ज्यादतियो, खास कर २१ जनवरी को बोरसद मे स्त्रियो पर किये जानेवाले हमले की ओर उनका ध्यान आकृष्ट करते हुए उनसे पुलिस के कारनामो की जाच कराने के लिए कहा। लेकिन इस माग को ठुकरा दिया गया। तब गाधीजी ने लार्ड अर्विन के पास मुलाकात के लिए एक सक्षिप्त पत्र लिखा जिसमे उन्होने उनसे बहैसियत एक मनुष्य बात-चीत करने की इच्छा प्रकट की। यह पत्र १४ तारीख को भेजा गया और १६ तारीख के बडे सबेरे तार-द्वारा इसका उत्तर आ गया। १६ तारीख को ही गाधीजी दिल्ली के लिए रवाना हो गये। पुरानी कार्य-समिति के अन्य सदस्य भी शीघ्र ही दिल्ली पहुच गये। कार्य-समिति ने एक प्रस्ताव द्वारा गाधीजी को काग्रेस की ओर से सुलह-सम्बन्धी सब अधिकार दे दिये थे। गाधीजी ने १७ फरवरी को वाइसराय से पहली बार मुलाकात की और कोई चार घण्टे तक वाइसराय से उनकी बाते होती रही। तीन दिन तक लगातार यह बात-चीत चलती रही।

इस बात-चीत के दौरान मे गाधीजी ने पुलिस-द्वारा की गई ज्यादतियो की जाच और पिकेटिंग के अधिकार पर जोर दिया। पिकेटिंग का अधिकार और पुलिस की जाच की बाते ऐसी विवादास्पद थी जिनपर तुरन्त कोई समझौता होने की सम्भावना नही थी। १९ फरवरी को वाइसराय-भवन से जो सरकारी विज्ञप्ति प्रकाशित हुई उसमे कहा गया कि बात-चीत के दौरान मे कई ऐसी बाते उठी है जिनके बारे मे विचार किया जा रहा है। यह बहुत सम्भव है कि उसके आगे बात-चीत होने मे कई दिन लग जायं।

पहले दिन की बात-चीत से एक प्रकार की निश्चित आशा बधती थी। दूसरे

दिन यह स्पष्ट हो गया कि गाधीजी की स्थिति को वाइसराय समझते तो है, लेकिन उनके अनुसार करने को तैयार नही है। चूकि इग्लैण्ड के निर्णय की प्रतीक्षा थी, इसलिए वात-चीत कुछ समय के लिए रुकने की सम्भावना पैदा हो गई, स्वय वाइसराय ने गाधीजी को दुवारा शनिवार २१ तारीख को बुलवाने के लिए कहा। लेकिन गुरुवार १६ तारीख को एकाएक बुलावा आ पहुचा। इवर सरकार और काग्रेस के वोच चलने वाली वातचीत के दौरान मे उठने वाले विविध-विषयो के विचारार्थ १२ व्यक्तियो का एक छोटा सम्मेलन करने का विचार किया गया, जिसकी सख्या वाद में वढकर तीस हो गई। वाइसराय लन्दन से इस विषय मे तार आने की प्रतीक्षा कर रहे थे, इसलिए इस सम्मेलन को २४ ता० तक ठहरना पडा। वहुत प्रतीक्षा के वाद आखिर २६ ता० को वाइसराय का बुलावा आ ही पहुचा। २६ ता० को गाधीजी वाइसराय के पास गये और साढे-तीन घण्टे तक वहुत खुलकर, साफ-साफ और मित्रता-पूर्वक वातचीत हुई। २८ ता० को, वाइसराय की इच्छानुसार, गाधीजी ने पिकेटिंग के वारे मे उन्हे अपना मन्तव्य भेजा और वाइस-राय ने प्रस्तावित समझौते के वारे मे अपने कुछ विचार गाधीजी को लिख भेजे। समझौते के सिलसिले मे उठी प्रत्येक वात पर वाइसराय ने गाधीजी के निश्चित विचार जानने चाहे और इसके लिए १ मार्च के दिन दोपहर के २॥ वजे उन्हे वाइसराय-भवन मे मिलने के लिए बुलाया। १ मार्च को हालत एकदम निराशा-जनक मालूम पडने लगी। निश्चित समय पर गाधीजी वाइसराय से मिले और सायकाल ६ वजे वाइसराय-भवन से वापस आ गये। इतने थोडे समय मे उनके लौट आने से एकदम निराशा छा गई, लेकिन शीघ्र ही समझौते की फिर से आशा बंधने लगी। १ मार्च के तीसरे पहर जव गाधीजी वाइसराय से मिले तब वाइस-राय का रुख विलकुल दोस्ताना था। होम-सेक्रेटरी मि० इमर्सन भी वडी अच्छी तरह पेश आये। वाइसराय ने गाधीजी से कहा कि मि० इमर्सन के सलाह-मशविरे से वह पिकेटिंग के वारे मे कोई हल सोचे।

आशाजनक परिस्थिति

इतने समय के वाद अब सम्भवत हम यह कह सकते है कि यदि अधिकारो की भावना के ऊपर कर्तव्य-भाव ने विजय न पाई होती तो शायद समझोता विलकुल ही न हुआ होता। पिकेटिंग के वारे मे वहस-तलव एक वात यह थी कि सारे "विदेशी माल के खिलाफ की जाय या ब्रिटिश माल के ?" दूसरी बात उसके लिए ग्रहण किये जानेवाले साधनो के वारे मे थी। सामान्य वाद-विवाद के वाद लॉर्ड अर्विन ने गाधीजी और मि० इमर्सन से आपस मे मिलकर कोई हल निकालने के लिए कहा और वह निकाल भी लिया गया।

इसके वाद ताजीरी पुलिस के वारे मे बातचीत हुई और वह सन्तोषजनक

रही। गाधीजी ने नजरबंदो का भी प्रश्न उठाया और वाइसराय ने निश्चित रूप से यह आश्वासन दिया कि सामूहिक रूप मे नही, पर वैयक्तिक रूप मे वह उनके मामलो की तहकीकात अवश्य करेगे। जब्त सम्पत्ति के वारे मे तय हुआ कि उसमे से जो विक चुकी है वह नहीं लौटाई जा सकती। गाधीजी से कहा गया कि इसके लिए वह प्रान्तीय सरकारो से मिले, क्योकि भारत-सरकार प्रान्तीय सरकारों से सीधी वातचीत चलाने के लिए तैयार नही है। मगर जब्त जमीनो के वारे मे वम्बई-सरकार के नाम एक सिफारिशी-चिट्ठी गाधीजी को देने का वाइसराय ने वादा किया। नमक के वारे मे तो स्थिति अच्छी ही रही। जिन जगहो पर नमक अपने-आप तैयार होता है वहा से आजादी मे नमक लेने-देने का वाइसराय ने आश्वासन दिया। यह एक ऐसी सुविधा थी जो गाधीजी के लिए वडी सतोप-जनक हुई। पुलिस की ज्यादतियो के प्रश्न पर दोनो ही अड गये। गाधीजी ने इस सम्वन्ध मे अपने को कार्य-समिति पर ही छोड दिया। वाइसराय से वातचीत करके वह १ वजे वापस आये और रात के २। वजे तक कार्य-समिति के सदस्यो तथा अन्य मित्रो के सामने भाषण देते रहे। वाइसराय और मि० इमर्सन दोनो ही अच्छी तरह पेश आये थे। पिकेटिंग के वारे में उसी रात एक हल निकल आया, लेकिन उस पर और विचार करने के लिए ३ मार्च का दिन तय रहा, क्योकि २ मार्च को सोमवार पडता था, जो गाधीजी का मौन-दिवस था।

समझौते की जो आशा थी, ३ मार्च को उसमे एक और वडी कठिनाई उत्पन्न हो गई। वारडोली के किसानो की जमीन लौटाने के मामले पर पहले भी विचार हुआ था, अव फिर उस मामले को उठाया गया। वाइसराय की भी अपनी कठिनाइया थी। जव वारडोली मे करवन्दी-आन्दोलन अपने पूरे जोर पर था तव उन्होंने वम्बई-सरकार को एक पत्र मे लिखा था, कि चाहे कुछ हो, मैं किसानो की जब्त जमीने लौटाने के लिए कभी नही कहूगा। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि अव उनसे विलकुल उलटी वात लिखने के लिए वह तैयार नही थे। उन्होने चाहा कि गाधीजी सर पुरुषोत्तमदास और सर इब्राहीम रहीमतुल्ला से इसके लिए वीच मे पडने को कहे, और आशा प्रकट की कि सव ठीक हो जायगा। गाधीजी ने चाहा कि वाइसराय स्वयं ऐसा करें। आखिरकार वाइसराय वम्वई सरकार के नाम ऐसा पत्र लिखने के लिए तैयार हुए कि जमीनें प्राप्त कराने के मामले में पूर्वोक्त दोनों महानुभावो की मदद की जाय। इन वातचीत के दौरान में वम्वई सरकार के रेवेन्यू-मेम्वर भी दिल्ली पहुचे। वह तत्सम्वधी वातचीत के लिये वुलाये गये।

समझौता और उसकी विज्ञप्ति

गाधीजी बडे उत्साह मे थे। अपने स्वभाव के अनुसार गाधीजी ने उस रात की सब घटनाये कार्य-समिति के सदस्यो को सुनाईं। कार्य-समिति के सदस्यो में शाम तक पिकेटिंग के सम्बन्ध मे सोचे गये हल पर खूब गरमागरम वाद-विवाद हुआ, क्योकि उसका पहले-पहल जो मसविदा बनाया गया उसमे मुसलमान दुकानदारो के यहा पिकेटिंग न करने की धारा रखी गई थी। सरकार उसे रखना चाहती थी, लेकिन अन्त मे उसे छोड ही दिया गया। समझौते की हरेक मद मे थोडो-बहुत खामी थी। वल्लभभाई समझौते की जमीन सम्बन्धी अश से सहमत नही थे। जवाहरलाल को विधान-सम्बन्धी अश नापसन्द था। कैदियो वाली बात पर तो किसी को भी सन्तोष न था। लेकिन यदि प्रत्येक अश ऐसा होता कि उसपर प्रत्येक को सन्तोष हो जाता तो फिर वह समझौता ही कहा रहता, वह तो काग्रेस की जीत ही न होती! जब काग्रेस समझौता या राजीनामा कर रही थी तब ऐसा नही हो सकता कि उसी-उसकी बात रहे। गाधीजी ने कार्य-समिति के प्रत्येक सदस्य से पूछा कि क्या कैदियो के प्रश्न पर, पिकेटिंग के मामले पर, जमीनो के सवाल पर, अन्य किसी बात पर या प्रत्येक बात पर, या आप कहे तो समूचे समझौते पर मैं सुलह की बातचीत तोड दू? समझौते की आखिरी धारा पर, जिसमे सरकार ने अपने लिए यह अधिकार रखा था कि "यदि काग्रेस इस समझौते की बातो पर पूरी तरह अमल न कर सकी तो उसे (सरकार को) ऐसा कार्य करने का हक रहेगा, जो, उसके परिणाम स्वरूप, सर्वसाधारण तथा व्यक्तियो की रक्षा और कानून-व्यवस्था के उपयुक्त अमल के लिए आवश्यक हो," यह ऐतराज उठा कि यह हक दोनो पक्षो के बजाय एक ही के लिए क्यो रखा जाय? दूसरे शब्दो मे, ऐतराज करनेवालो का कहना था कि एक धारा इसमे और जोडी जाय, कि यदि सरकार इस समझौते की बातो पर पूरी तरह अमल न कर सके तो काग्रेस सविनय-अवज्ञा की घोषणा कर सकेगी। लेकिन यह समझना कोई बहुत मुश्किल बात नही थी कि काग्रेस ने सरकार से स्वीकृति लेकर सविनय-अवज्ञा की शुरुआत नही की थी, इसी तरह उसकी फिर से शुरुआत करने के लिए भी उसे स्वीकृति लेने की कोई आवश्यकता नही थी।

इस प्रकार १५ दिन तक सरकार और काग्रेस के बीच खूब गहरा वाद-विवाद हुआ जिसके परिणाम-स्वरूप ५ मार्च १९३१ को यह समझौता हुआ। इसकी मुख्य-मुख्य बाते यहा दी जाती हैं —

"सर्व-साधारण की जानकारी के लिए कौंसिल-सहित गवर्नर-जनरल का निम्न वक्तव्य प्रकाशित किया जाता है —

(१) विधान-सम्बन्धी प्रश्न पर सम्राट्-सरकार की अनुमति से यह तय हुआ कि हिन्दुस्तान के वैध-शासन की उसी योजना पर आगे विचार किया जायगा,

जिसपर गोलमेज-परिषद् मे पहले विचार हो चुका है। वहा जो योजना बनी थी, सघ-शासन उसका एक अनिवार्य अंग है।

(२) १९ जनवरी १९३१ के प्रधान-मन्त्री के वक्तव्य के अनुसार, ऐसी कार्रवाई की जायगी जिससे शासन-सुधारो की योजना पर आगे जो विचार हो उसमे काग्रेस के प्रतिनिधि भी भाग ले सके।

(३) सविनय-अवज्ञा अमली रूप मे बन्द कर दी जायगी और (उसके बदले मे) सरकार अपनी ओर से कुछ कार्रवाई करेगी। सविनय अवज्ञा-आदोलन को अमली तौर पर बन्द करने का मतलब है उन सब हलचलो को बन्द कर देना, जो कि किसी भी तरह उसको बल पहुचानेवाली हो।

(४) विदेशी कपड़ो के बहिष्कार के सबध मे यह बात तय पाई है कि सविनय-अवज्ञा-आदोलन बन्द करने मे ब्रिटिश माल के बहिष्कार को राजनैतिक शस्त्र के तौर पर काम मे लाना निश्चित रूप से बन्द कर देना भी शामिल है, और इसलिए आदोलन के समय मे जिन्होने ब्रिटिश माल की खरीद-फरोख्त बन्द कर दी थी वे यदि अपना निश्चय बदलना चाहे तो अबाध-रूप से उन्हे ऐसा करने दिया जायगा।

(५) विदेशी माल के स्थान पर भारतीय माल का व्यवहार करने और शराब आदि नशीली चीजो के व्यवहार को रोकने के लिए काम मे लाये जानेवाले उपायो के सम्बन्ध मे तय हुआ है कि ऐसे उपाय काम मे नहीं लाये जायँगे जिनसे कानून की मर्यादा भंग होती हो।

(६) सविनय-अवज्ञा आन्दोलन के सिलसिले मे जो कानून (आर्डिनेन्स) जारी किये गये है वे वापस ले लिये जायंगे।

(७) १९०८ के क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ट के मातहत सस्थाओ को गैर-कानूनी करार देने के हुक्म वापस ले लिये जायगे, बशर्ते कि वे सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले मे जारी किये गये हो।

(८) जो मुकदमे चल रहे है उन्हे वापस ले लिया जायगा, यदि वे सविनय अवज्ञा आन्दोलन के सिलसिले मे चलाये गये होगे और ऐसे अपराधो से सम्बन्धित होगे जिनमे हिसा सिर्फ नाम के लिए होगी या ऐसी हिसा को प्रोत्साहन देने की बात हो। यही सिद्धान्त जाब्ता-फौजदारी की जमानती धाराओ के मातहत चलने वाले मुकदमो पर लागू होगी। सैनिको या पुलिस वालों पर चलाने वाले हुक्म-उदूली के मुकदमे, अगर कोई हो, इस धारा के कार्य-क्षेत्र मे नही आयेगे।

(९) वे कैदी छोडे जायंगे, जो सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले में ऐसे अपराधो के लिए कैद भोग रहे होगे जिनमे नाम-मात्र की हिसा को छोड कर और किसी प्रकार की हिसा या हिसा के लिए उत्तेजना का समावेश न हो।

(१०) जुर्माने जो वसूल नही हुए है, माफ कर दिये जायंगे। इसी प्रकार

जाब्ता-फौजदारी की जमानती धाराओ के मातहत निकले हुए जमानत-जब्ती के हुक्म के बावजूद जो जमानतें वसूल नही हुई होगी उन्हे भी माफ कर दिया जायगा। जुर्माने या जमानतो की जो रकमें वसूल हो चुकी है, चाहे वे किसी भी कानून के मुताबिक हो, उन्हे वापस नही किया जायगा।

(११) सविनय अवज्ञा आन्दोलन के सिलसिले मे किसी खास स्थान के बाशिन्दो के खर्चे पर जो अतिरिक्त-पुलिस तैनात की गई होगी उसे प्रान्तीय सरकारो के निश्चय पर उठा लिया जायगा। इसके लिए वसूल की गई रकम, यदि असली खर्चे से ज्यादा हो तो भी लौटायी नही जायगी, लेकिन जो रकम वसूल नही हुई है वह माफ कर दी जायगी।

(१२) वह चल-सम्पत्ति जो गैर-कानूनी नही है और जो सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले मे आर्डिनेन्सो या फौजदारी-कानून की धाराओ के मातहत अधिकृत की गई है, यदि अभी तक सरकार के कब्जे मे होगी तो लौटा दी जायगी। जो चल-सम्पत्ति बेच दी गई होगी या सरकार-द्वारा अतिम रूप से जिसका भुगतान कर दिया गया होगा, उसके लिए हरजाना नही दिया जायगा और न उसकी बिक्री से प्राप्त रकम ही लौटाई जायगी।

(१३) जिस अचल-सम्पत्ति पर १९३० के नवे आर्डिनेन्स के मातहत कब्जा किया गया है उसे आर्डिनेन्स के अनुसार लौटा दिया जायगा। जहा अचल-सम्पत्ति बेच दी गई होगी, जहातक सरकार से सम्बन्ध है, वह सौदा अन्तिम समझा जायगा।

(१४) जिन लोगो ने सरकारी नौकरियो से इस्तीफा दिया है उनके रिक्त-स्थानो की जहा स्थायी-रूप से पूर्ति हो चुकी होगी वहा सरकार पुराने (इस्तीफा देनेवाले) व्यक्ति को पुन नियुक्त नही कर सकेगी। इस्तीफा देनेवाले अन्य लोगो के मामलो पर उनके गुण-दोष की दृष्टि से प्रातीय सरकारे विचार करेगी।

(१५) नमक-व्यवस्था सम्बन्धी मौजूदा कानून के भग को गवारा करने के लिए सरकार तैयार नही है, न देश की वर्तमान आर्थिक परिस्थिति को देखते हुए नमक-कानून मे ही कोई खास तब्दीली की जा सकती है।

(१६) यदि काग्रेस इस समझौते की बातो पर पूरी तरह अमल न कर सकी तो, उस हालत मे, सरकार वह सब कार्रवाई करेगी जो, उसके परिणाम-स्वरूप, सर्व-साधारण तथा व्यक्तियो के सरक्षण एव कानून और व्यवस्था के उपयुक्त परिपालन के लिए आवश्यक होगी।"

गांधीजी का वक्तव्य

समझौते से निबटते ही गाधीजी ने, ५ मार्च की शाम को अमरीकन, अग्रेज व भारतीय पत्रकारो और प्रेसमैनो के एक समूह के सामने एक युगान्तकारी वक्तव्य दिया। पूरा वक्तव्य लिखाने मे गाधीजी को कुल डेढ घण्टा लगा। वक्तव्य गाधीजी ने

मुह-जवानी ही लिखाया था और उसमे कही भी एक-बार भी रद्दो-बदल नही किया। इस वक्तव्य मे उन्होने लॉर्ड अर्विन की उचित प्रशसा की और पुलिस, सिविल-सर्विस तथा क्रातिकारियो से उपयुक्त अपील की। उन्होने कहा कि इस समझौते ने वास्तव मे रास्ता खोल दिया है। इस प्रकार के समझौते का स्थायी होना स्वाभाविक ही है। यह जो सन्धि हुई है वह कई बातो की पूर्ति होने पर निर्भर है। काग्रेस गोलमेज-परिषद् मे भाग ले सके, इसके पहले कई बातो का पूरा हो जाना आवश्यक है। काग्रेस का ध्येय तो पूर्ण स्वराज्य है, जिसको अंग्रेजी मे अनुवाद करके 'पूर्ण स्वाधीनता' कहा जाता है। अन्य राष्ट्रो की भाति भारत का यह जन्म-सिद्ध अधिकार है और भारत इससे कम पर सन्तुष्ट नही हो सकता। सघ-शासन (फेडरेशन) मृगतृष्णा भी हो सकता है, अथवा एक ऐसे सजीव राष्ट्र का रूप धारण कर सकता है जिसके दोनो हाथ इस प्रकार कार्य करते हो कि उनसे उसका शरीर मजबूत बन जाय। इसी प्रकार 'उत्तरदायित्व' जो दूसरा पाया है वह या तो बिल्कुल छाया के समान नि सार है या बडा ऊंचा, विशाल अथवा न झुकने वाले बरगद के पेड के सदृश हो सकता है। एक दल इन तीन पायो का एक मतलब निकाल सकता है और दूसरा दल दूसरा। इस धारा के अनुसार दोनो दल अपनी-अपनी दिशा मे काम कर सकते है। काग्रेस ने परिषद् की कार्रवाई मे भाग लेने की जो रजामन्दी दिखाई है वह इसी कारण कि वह संघ-शासन, उत्तरदायित्व, संरक्षण, प्रतिबन्ध अथवा उन्हे जिन नामो से पुकारा जाता हो उनको ऐसा रूप देना चाहती है कि उनसे देश की वास्तविक राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक उन्नति हो। यदि परिषद् ने काग्रेस की स्थिति को ठीक-ठीक समझकर मान लिया, तो मेरा दावा है, कि इसका परिणाम 'पूर्ण-स्वाधीनता' होगा। लेकिन मै जानता हू कि यह मार्ग बहुत कठिन और थका देनेवाला है। मार्ग मे बहुत-सी चट्टाने है और बहुत से गड्ढे है। लेकिन यदि काग्रेस-वादी इस नये काम को विश्वास एव उत्साह के साथ करेगे तो मुझे इसके परिणाम के बारे मे कोई भी सन्देह नही रह सकता। अत. यह उन्ही के हाथ मे है कि वे इस नये अवसर का, जो उन्हे मिला है, अच्छे-से-अच्छा उपयोग करे।

अपने वक्तव्य मे गाधीजी ने अंग्रेजो से भी अपील की। उन्होने कहा कि यदि भारत को परिषदो तथा विचार-विमर्श द्वारा ही अपने निश्चित उद्देश्य को प्राप्त करना है तो अंग्रेजो की सद्भावना एवं सक्रिय-सहायता की बडी आवश्यकता होगी। मुझे यह बात कहनी पडेगी कि लदन मे पहली परिषद् मे जिन-जिन बातो को उन्होने मान लिया है वे तो उस ध्येय की आधी भी नही है जिस ध्येय तक भारत पहुचना चाहता है। यदि अग्रेज वास्तव मे सच्ची मदद करना चाहते है तो उन्हे भारत को भी उसी स्वतन्त्रता की मस्ती का अनुभव करा देना पडेगा, जिसको वे स्वयं मरते दम तक नही छोड़ सकते। उन्हें इस बात के लिए

तैयार होना पडेगा कि वे भारत को गलतिया करने के लिए छोड दे। यदि गलती करने की, यहा तक कि पाप तक करने की, स्वतन्त्रता न हुई तो ऐसी स्वतन्त्रता किस काम की? यदि परम-पिता परमात्मा ने अपने छोटे-से-छोटे जीव को गलती करने की स्वतन्त्रता दी है, तो मेरी समझ मे नही आता कि वे कैसे मनुष्य-जीव होगे जो, चाहे वे कितने ही अनुभवी और योग्य क्यो न हो, दूसरी जाति के मनुष्यो के इस अमूल्य अधिकार को छीनने मे खुशी मना सकते है?

अमरीकन-राजतन्त्र तथा ससार के अन्य राष्ट्रो की जनता से अपील करते हुए उन्होने कहा—"मै एक अपील करना चाहता हू। मुझे मालूम है कि इस युद्ध ने जिसका आधार सत्य और अहिंसा है—उनके मन पर वडा असर डाला है और उनमे उत्सुकता पैदा की है। उत्सुकता ही नही, वे इससे भी आगे वढे है। उन्होने और खासकर अमरीका ने सहानुभूति के द्वारा हमारी प्रत्यक्ष मदद की है। कांग्रेस की ओर से और अपनी ओर से मै कहता हू कि इस सहानुभूति के लिए हम उनके वहुत आभारी है। मुझे आशा है कि कांग्रेस अव जिस मुश्किल काम मे पडनेवाली है उसमे हमे न केवल उनकी यह वर्तमान सहानुभूति ही प्राप्त रहेगी बल्कि वह दिन-प्रति-दिन वढती भी जायगी। मै वडी नम्रता से यह कहने की हिम्मत करता हू कि यदि सत्य एव अहिंसा के द्वारा भारत अपने ध्येय तक पहुच गया तो जिस विश्व-शाति के लिए ससार के सब राष्ट्र तडप रहे है, उसके हित मे वडा भारी काम कर दिखायेगा और इन राष्ट्रो ने उसे जी खोलकर जो सहायता दी है, उसका कुछ थोडा-सा बदला भी चुक जायगा।"

गाधीजी ने आखिरी अपील पुलिस तथा सिविल-सर्विस अर्थात् सरकारी अधिकारियो से की। उन्होने कहा—"समझौते मे एक वाक्य है, जिसमे जाहिर किया गया है कि मैंने पुलिस की कुछ ज्यादतियो की जाच की माग की थी। इस जाच की माग को छोड देने का कारण भी समझौते मे दिया गया है। महकमा पुलिस द्वारा शासन की जो मशीन चलती रहती है उसका सिविल सर्विस एक अभिन्न अग है। यदि वे वास्तव मे यह महसूस करते है कि भारत शीघ्र ही अपने घर का मालिक बननेवाला है और उन्हे वफादारी तथा ईमानदारी से भारत सेवको की तरह काम करना है, तो उन्हे यह शोभा देता है कि वे अभी से लोगो को अनुभव करा दे कि सिविल-सर्विस तथा पुलिसवाले उनके सेवक है।"

जेल मे पडे बन्दियो के बारे मे गाधीजी ने कहा—व्यक्तिगत रूप से उन लोगो के जो हिंसा करने के दोषी है, जेल भेजे जाने की प्रणाली पर मेरा विश्वास नही है। मेरा विश्वास है कि वे लोग महसूस करेगे कि मै न्यायपूर्वक उनकी रिहाई के लिए नही कह सकता था। लेकिन इसका यह मतलब नही कि मुझे अथवा कार्य-समिति के सदस्यो को उनका खयाल ही नही है।

अन्त मे गाधीजी ने कहा कि कांग्रेस ने जान-बूझकर, चाहे अस्थायी तौर पर

ही सही, सहयोग का मार्ग ग्रहण किया है। यदि काग्रेसवादी ईमानदारी से समझौते की उन शर्तो को जो उनपर लागू होती है, पूरी-पूरी तरह से पालन करे तो काग्रेस का गौरव बहुत बढ जायगा और सरकार पर इस बात का सिक्का बैठ जायगा कि जहा काग्रेस ने, अवज्ञा-आन्दोलन चलाने की योग्यता सिद्ध कर दी है वहा उसमे शान्ति बनाये रखने की भी क्षमता है। मेरा खयाल है कि सम्मानप्रद समझौता करने के प्रयत्न मे मैने अपनी सारी शक्ति लगा दी है। मैने लार्ड अर्विन को अपना वचन दे दिया है कि मै समझौते की शर्तो को, जहातक उनका काग्रेस से सम्बन्ध है, पालन कराने मे जी-जान से जुट जाऊगा। मैने समझौते का प्रयत्न इसलिए नही किया कि पहला अवसर मिलते ही मै उसके टुकड़े-टुकडे कर डालू, बल्कि इसलिए कि अभी जो अस्थायी है उसे बिलकुल पक्का करने मे कोई भी कसर न छोडू और उसे उस ध्येय तक पहुचाने वाला पेशवा समझू जिसे प्राप्त करने के लिए काग्रेस कायम है।

पत्रकारों से भेंट

उक्त वक्तव्य के पश्चात् दूसरे दिन, गांधीजी ने कई पत्रकारो से भेट की। ६ मार्च १९३१, दिल्ली मे ११॥ बजे भारत तथा विदेशो के कई पत्रकार उपस्थित थे। गाधीजी ने उनके प्रश्नो का उत्तर दिया। इस अवसर पर अमरीका के 'असोशिएटेड-प्रेस' के श्री जेम्स मिल्स, 'लन्दन-टाइम्स' के श्री पीटरसन, 'शिकागो ट्रिब्यून' के श्री शिरार, 'बोस्टन ईवनिंग ट्रासक्रिप्ट' के श्री हाल्टन जेम्स, 'क्रिश्चियन साइन्स मॉनीटर' (अमरीका) के श्री० इंगल्स, 'हिन्दुस्तान-टाइम्स' के श्री जे० एन० सहानी, और 'पायोनियर' व 'सिविल एण्ड मिलिटरी गजट' के श्री नीडहम आदि पत्रकार उपस्थित थे। कुछ प्रश्न और उनके उत्तर यहा दिए जाते है —

प्रश्न—आपने अपने कल वाले वक्तव्य मे 'पूर्ण स्वराज्य' शब्द का प्रयोग किया और कहा कि जिसका अनुवाद अंग्रेजी भाषा मे मामूली तौर से 'पूर्ण-स्वाधीनता' होता है। सो 'पूर्ण-स्वराज्य' की आपकी सही व्याख्या क्या है ?

उत्तर—मै आपको इसका ठीक उत्तर नही दे सकता, क्योकि अंग्रेजी भाषा मे ऐसा कोई शब्द नही जो, 'पूर्ण-स्वराज्य' के भाव को व्यक्त कर सके। स्वराज्य का मूल अर्थ तो स्व-राज्य अर्थात् स्व-शासन है। 'स्वाधीनता' से इस प्रकार का कोई मतलब नही निकलता। स्वराज्य का मतलब है आत्म-नियन्त्रित-शासन और पूर्ण का मतलब है पूरा। कोई बराबरी का शब्द न मिलने के कारण हमने अंग्रेजी मे complete independence (पूर्ण-स्वाधीनता) शब्दो को चुन लिया है जिन्हे हर कोई समझता है। 'पूर्ण-स्वराज्य' का यह मतलब नही कि किसी भी राष्ट्र से, या इंग्लैण्ड से ही कहिए, सम्बन्ध नही रखा जा सकता। लेकिन यह सम्बन्ध स्वेच्छा से और दोनो के फायदे के लिए ही हो सकता है।

प्रश्न—समझौते की दूसरी धारा को देखते हुए क्या काग्रेस के लिए युक्ति-सगत होगा कि वह पूर्ण-स्वाधीनता के प्रस्ताव को, जो उसने मद्रास, कलकत्ता, तथा लाहौर के अधिवेशनो मे पास किया था, फिर से दोहराये?

उत्तर—अवश्य ही, क्योकि कराची-काग्रेस को फिर इसी प्रकार का प्रस्ताव पास करने से रोकने की और आगामी गोलमेज-परिषद् तक में उसपर जोर देने से रोकने की कोई शर्त नही है।

प्रश्न—द्वितीय गोलमेज-परिषद् का भारत मे होना आप पसन्द करते है या इग्लैड मे?

उत्तर—परिस्थिति पर इसका दारोमदार है। मेरा अभी कोई खास विचार नही है। मोटे तौर पर मै यह चाहूगा कि गोलमेज-परिषद् का पूर्वार्द्ध भारत मे हो और फिर उसकी समाप्ति लन्दन मे हो।

प्रश्न—क्या आप नियमित रूप से परिषद् मे भाग लेगे?

उत्तर—मै आशा तो करता हू और शायद हो भी यही।

प्रश्न—क्या आप परिषद् मे 'पूर्ण-स्वराज्य' के लिए जोर देगे?

उत्तर—यदि हम उसके लिए जोर न दें तब तो हमे अपने अस्तित्व से ही इन्कार कर देना चाहिए।

प्रश्न—क्या आप इस समझौते को अपने अबतक के जीवन की सबसे बडी सफलता समझते है?

उत्तर (हसकर)—मुझे यही मालूम नही कि मैने जीवन मे अबतक कौन-कौनसी सफलताये पाई और यह उनमे से एक है या नही?

प्रश्न—यदि आप 'पूर्ण-स्वराज्य' प्राप्त कर ले तो आप उसे अपने जीवन की ऐसी सफलता मान सकेगे?

उत्तर—मै समझता हू कि यदि ऐसा हो सके तो मै उसे अवश्य ऐसा मानूगा।

प्रश्न—क्या आप अपने जीवन-काल मे 'पूर्ण-स्वराज्य' प्राप्त करने की उम्मीद करते है?

उत्तर—यकीनन! जरूर! (मुस्कुराते हुए) पाश्चात्य विचारो के अनुसार तो मै अपने को ६२ साल का युवक मानता हू।

प्रश्न—क्या आपकी राय मे समझौते के फलस्वरूप विदेशी-कपडे का बहिष्कार ढीला कर देना चाहिए?

उत्तर—नही, कदापि नही। विदेशी कपडे का बहिष्कार राजनैतिक अस्त्र नहीं है। यह तो भारत के एकमात्र सहायक धन्धे चर्खे की उन्नति के लिए है। उसका कार्य सिर्फ विदेशी कपड़े के भारत-आगमन से सम्बन्ध रखता है।

प्रश्न—परिषद् मे जाने से पूर्व क्या आप हिन्दू-मुस्लिम-समस्या को सुलझा लेने की आशा करते है?

उत्तर—यह मेरी आकाक्षा तो है, लेकिन मै यह नही कह सकता कि यह कहा तक पूरी हो सकेगी। परिषद् में जाकर एकता होना, मेरी राय में मुश्किल है।

प्रश्न—क्या हिंदू-मुस्लिम-एकता स्थापित करने मे बरसो लगेगे?

उत्तर—नही, मेरा ख्याल ऐसा नही है। हिन्दू तथा मुसलमान जनता मे कोई नाइत्तिफाकी नही है। नाइत्तिफाकी केवल सतह पर है और इसका अधिक महत्त्व इसलिए है कि सतह पर जो आदमी है, वे वही है जो भारत के राजनैतिक दिमाग के प्रतिनिधि है।

प्रश्न—क्या आप इस वात की सम्भावना देखते है कि जव 'पूर्ण-स्वराज्य' मिल जायगा तो राष्ट्रीय-सेना हटा दी जायगी?

उत्तर—गगन-विहारी आदमी का उत्तर है तो अवश्य, लेकिन मेरा विचार है कि मै अपने जीवन-काल मे तो ऐसा न देख सकूगा। विलकुल सेना न रखने की स्थिति तक पहुचने के लिए भारतीय-राष्ट्र को कई युगो तक ठहरना होगा। सम्भव है कि श्रद्धा की कमी के कारण ही मेरी यह शकाशीलता हो। लेकिन ऐसी सम्भावना असम्भव नही। वर्तमान सामूहिक जागृति की तथा अहिंसा पर लोगो के डटकर कायम रहने की—अपवादो को छोड दीजिये—किसे आशा थी? इसी वात से मुझे कुछ आशा होती है कि निकट-भविष्य में भारतीय नेता हिम्मत के साथ कह सकेगे कि अव हमे किसी सेना की जरूरत नही। मुल्की कामो के लिए पुलिस पर्याप्त समझी जानी चाहिए।

प्रश्न—क्या आप भावी सरकार के प्रधान मंत्री वनना स्वीकार करेंगे?

उत्तर—नही। यह पद तो नौजवानो और मजवूत आदमियो के लिए है।

प्रश्न—लेकिन यदि जनता आपको चाहे और अड जाय, तो?

उत्तर—तो मै आप जैसे पत्रकारो की शरण ढूंढूगा। (हसी)

प्रश्न—"यदि पूर्ण-स्वराज्य स्थापित हो गया तो क्या आप सव मशीनरी उडा देगे?" एक अमेरिकन पत्रकार ने पूछा।

उत्तर—नही, विलकुल नही। उड़ा देने के वजाय मै तो अमरीका को शायद और भी अधिक मशीनरी का आर्डर दूगा (हसी) और कौन कह सकता है कि मै ब्रिटिश मशीनरी को ही तरजीह दू? (और अधिक हंसी)

प्रश्न—स्वराज्य मिलने के पूर्व क्या आप आश्रम लौटेंगे?

उत्तर—मेरा विचार केवल आश्रम देखने का है। जवतक पूर्ण-स्वराज्य का मेरा व्रत पूरा न हो जायगा तवतक मै आश्रम में नही रहूंगा।

प्रश्न—सेना-सम्वन्धी प्रश्न के आपके उत्तर से क्या यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आप इस वात की सम्भावना नही देखते कि अन्तर्राष्ट्रीय पेचीदगियो को सुलझाने में अहिंसा उपयोगी अस्त्र हो सकता है?

उत्तर—अगर ससार के अन्य राष्ट्रो की भाति भारत मे भी सेना हो तो, मेरा खयाल है, कि अहिंसा ऐसा अस्त्र वन जायगा। सवसे पहले विचारो मे परिवर्तन होगा। कार्य तो सदा धीरे-धीरे होता है। ज्यो-ज्यो समय जायगा, राष्ट्र विचार-विमर्श तथा पचायती फैसलो पर अधिकाधिक विश्वास करेगे और शनै शनै सेनाओ पर कम। सम्भव है कि सेनाये केवल दर्शन-मात्र की ही चीज रह जाय, जिस प्रकार खिलौने पुरानी किसी चीज के अवशेष होते है, न कि राष्ट्र की रक्षा के साधन।

कांग्रेस की हिदायतें

समझौता होते ही काग्रेस-कमिटियो तथा सस्थाओ पर से रोक उठा ली गई और वे फिर से जीवित हो गई। महासमिति के प्रधानमत्री ने काग्रेस के आगामी अधिवेशन मे भाग लेनेवाले प्रतिनिधियो के चुनाव के वारे मे अपनी सूचनाये काग्रेस-वादियो के पास भेजी। कार्य-समिति ने यह निर्णय किया कि प्रत्येक जिले से दो प्रकार के प्रतिनिधि चुने जाय। आधे प्रतिनिधियो का चुनाव तो वे व्यक्ति करे जिन्हे आन्दोलन मे सजा मिल चुकी हो, और शेष का चुनाव साधारण नियमो के अनुसार हो। इस सम्बन्ध मे विस्तार-सहित कई हिदायते जारी की गई। जेल हो आने वालो का चुनाव एक सभा बुलाकर करना था। वगाल के प्रतिनिधियो के चुनाव के निर्णायक श्री अणे नियत किये गये थे। उसी दिन काग्रेस-वादियो को यह भी हिदायत दी गई कि वे सविनय-अवज्ञा, करबन्दी-आदोलन और ब्रिटिश-माल के बहिष्कार को वन्द कर दें। लेकिन नशीली चीजो, सव विदेशी कपडो व शराब की दुकानो के बहिष्कार की इजाजत दे दी गई और उन्हे जारी रखने की भी हिदायत कर दी गई। साथ ही यह भी कहा गया कि पिकेटिग शान्तिमय होना चाहिए, लेकिन उसमे दबाव न रहना चाहिए, विरोधी प्रदर्शन न होना चाहिए, जनता के मार्ग मे रुकावट नही डाली जानी चाहिए और देश के साधारण कानून के अन्तर्गत कोई अपराध नही किया जाना चाहिए। गैर-कानूनी समाचार-पत्रो के प्रकाशन बन्द करने का आदेश भी हुआ। इस प्रकार समझौते की हरएक मद के सम्बन्ध मे हिदायते जारी की गई और स्वय गाधीजी ने उन आदेशो के साथ वे शर्तें जोड दी जो शराब तथा विदेशी कपडे की दुकानो पर पिकेटिग करते समय स्वयसेवको को माननी चाहिए।

करांची-कांग्रेस : १९३१

कार्य-समिति ने सरदार वल्लभभाई पटेल को कराची-काग्रेस के सभापति-पद के लिए चुन लिया, क्योकि करीब एक साल तक काग्रेस की जो साधारण परिस्थिति थी उसके कारण साधारण प्रणाली-द्वारा सभापति का चुनाव होना सम्भव न था।

कराची-कांग्रेस के लिए आवश्यक प्रबन्ध करना कोई आसान काम न था। यद्यपि १ मार्च के आसपास कार्य-समिति के सदस्यो के छूटने पर ही अधिवेशन का होना निश्चित-सा दिखाई देने लगा था, तो भी अस्थायी-सन्धि के भाग्य ने कराची-कांग्रेस के प्रबन्धको की स्थिति बड़ी असमंजस मे डाल दी थी। एक सुभीता अवश्य था—और वह यह कि अब केवल गुलाबी जाड़े रह गये थे। अधिवेशन के मार्च मे करने से पडाल की भी कोई जरूरत नही रही, क्योकि कांग्रेस अब खुले मैदान मे हो सकती थी। केवल एक सभा-मञ्च और व्यासपीठ की जरूरत थी और जमीन के चारो ओर एक घेरा डालने की।

कराची-अधिवेशन के प्रबन्ध की सफलता का बहुत अधिक श्रेय कराची की म्युनिसिपैलिटी को था जिसने जमशेद मेहता की अध्यक्षता एवं संचालकत्व मे कार्य किया। कांग्रेस के खुले अधिवेशन के प्रारम्भ होने के पहले ही २५ मार्च को खुले मैदान मे एक मीटिंग की गई, जिसमे चार आने की प्रवेश-फीस देने वाले गाधीजी को देख और उनका भाषण सुन सकते थे। इस प्रकार १०,०००) इकट्ठा हुआ।

सरदार वल्लभभाई पटेल ने अधिवेशन का सभापतित्व किया। उन्होने अपने छोटे से अभिभाषण मे सभापति चुने जाने पर कहा कि यह गौरव एक किसान को नही, किन्तु गुजरात को, जिसने स्वतन्त्रता के युद्ध मे एक बडा भाग लिया था, प्रदान किया गया है। उन्होने कहा कि यदि कांग्रेस ने गाधी-अर्विन-समझौता न किया होता तो उसने अपने-आपको गलती मे रख दिया होता। उन्होने समझौते का वास्तविक महत्व समझाते हुए यह बताया कि समझौते के रहते हुए कांग्रेस-वादियो का क्या कर्त्तव्य है।

कराची-कांग्रेस जो एक सर्व-व्यापी आनन्दमयी छटा के साथ होने जा रही थी, वास्तव मे विषाद और सन्ताप की घनघोर घटा से घिरकर हुई। कांग्रेस के अधिवेशन के प्रारम्भ होने से पूर्व ही भारत के तीन नौजवान भगतसिंह, राजगुरु तथा सुखदेव फासी के तख्ते पर चढाये जा चुके थे। इन तीन युवको की आत्मायें उस समय कांग्रेस-नगर पर मंडराती हुई लोगो को शोक-सन्ताप में डुबो रही थी। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि भगतसिंह का नाम भारत-भर मे उतना ही लोकप्रिय था जितना कि गाधीजी का। अधिकाधिक प्रयत्न करने पर भी गाधीजी इन तीन युवकों की फासी की सजा रद्द नही करा सके थे। लेकिन जो लोग इन तीनो युवको की जान बचाने के गाधीजी के प्रयत्नो की अभीतक प्रशंसा कर रहे थे, अब इस बात पर बेतहाशा नाराज होने लगे कि इन तीनो शहीदों के सम्बन्ध मे पास किये जाने वाले प्रस्ताव की भाषा क्या हो। पडित मोतीलाल नेहरू, मौलाना मुहम्मदअली, मौलवी मजहरुलहक, श्री रेवाशंकर झवेरी, शाह मुहम्मद जुबैर तथा पुरुनम्बा मुदालियर की मृत्यु पर शोक प्रकाशित करने के पश्चात् सबसे पहले

जिस प्रस्ताव पर विचार हुआ वह भगतसिंह के सम्बन्ध मे था। इस प्रस्ताव मे बहस एव मतभेद की केवल यही बात थी कि भगतसिंह तथा उनके साथियो की वीरता और आत्मत्याग की प्रशसा करते हुए ये शब्द कि 'प्रत्येक प्रकार की राजनैतिक हिंसा से अपने-आपको अलिप्त रखते हुए और उसका विरोध करते हुए' भी प्रस्ताव मे जोडे जाय या नही ?

दूसरा प्रस्ताव जिस पर काग्रेस ने विचार किया, वह बन्दियो की रिहाई के बारे मे था। उस समय तक यह स्पष्ट हो चुका था कि बन्दियो की रिहाई के सम्बन्ध मे सरकार केवल कजूसो-जैसी नीति ही नही बरत रही है, बल्कि उन वादो से भी मुकर रही है और उन शर्तों को भी तोड रही है जो उसन समझौते के सिलसिले मे की थी। इसलिए काग्रेस ने अपना यह दृढ मत प्रकट किया कि यदि सरकार और काग्रेस के समझौते का उद्देश्य ग्रेट ब्रिटेन और भारत मे सद्भाव बढाना है और यदि यह समझौता ग्रेट ब्रिटेन की शासनाधिकार छोडने की इच्छा को वास्तविकता मे प्रकट करता है तो सरकार को चाहिए कि वह सब राजनैतिक बन्दियो, नजरबन्दो तथा विचाराधीन बन्दियो को, जो समझौता की शर्तों मे नही भी आते हैं, रिहा कर दे और उन सब राजनैतिक प्रतिबन्धो को हटा ले जो सरकार ने भारतीयो पर, चाहे वे भारत मे हो या विदेशो मे, उनके राजनैतिक विचारो या कार्यों के कारण, लगा रखी है। काग्रेस ने सरकार को यह भी याद दिलाया कि यदि वह इस प्रस्ताव के अनुकूल कार्य करेगी तो जनता का वह रोष जो हाल की फासियो के कारण उत्पन्न हो गया है, कुछ कम हो जायगा।

गणेश शंकर की हत्या

भगतसिंह आदि की फासियो के अलावा एक और कारण भी था जिसने कराची-काग्रेस मे उदासी के बादल छा दिये थे। जब इधर काग्रेस का अधिवेशन हो रहा था, कानपुर मे जोरो का हिन्दू-मुस्लिम-दगा शुरू हो गया और श्री गणेश शकर विद्यार्थी शान्ति एव सद्भाव स्थापित करने और मुसलमानो को हिन्दुओ के रोष से बचाने के प्रयत्न मे मारे गये। कानपुर कोई ऐसी जगह नही थी जो साम्प्रदायिक कलहो के लिए बदनाम रही हो। १९०७ मे एक इक्की-दुक्की मार-पीट हुई थी और फिर १९२८ तथा २९ मे। भगतसिंह तथा उनके साथियो को लाहौर मे २३ मार्च को जो फासी दी गई थी उसके सबध मे देश-भर मे हडताले की गई। कानपुर मे हडताल पूरी नही हुई। हिन्दुओ ने तो अपनी दुकाने बन्द कर दी, लेकिन मुसलमानो ने नही की। कुछ समय पहले जब मौ० मुहम्मदअली मरे थे उस समय हिन्दुओ ने भी मुसलमानो की हडताल मे भाग नही लिया था। बस, अधिक कहने की जरूरत नही—चिंगारी भी मौजूद थी और बारूद का ढेर भी मौजूद था। २४ मार्च को हिन्दुओ की दुकानो का लूटना प्रारम्भ हो गया। २३ मार्च की रात

को ही लगभग ५० व्यक्ति घायल कर दिये गये थे। २५ मार्च को अग्निकाण्ड प्रारम्भ हो गये। दुकानो और मन्दिरो मे आग लगा दी गई और वे जल-जल कर खाक हो गये। पुलिस ने कोई सहायता नही दी। लूट-मार, मार-काट, अग्निकाण्ड, हुल्लडवाजी का बाजार गरम हो गया। लगभग ५०० परिवार अपने घर छोड़-छोड कर आस-पास के गावो मे जा बसे। काग्रेस ने वावू पुरुषोत्तमदास टण्डन तथा अन्य कुछ मित्रो को शीघ्र ही कानपुर घटना-स्थल पर भेजा, लेकिन शान्ति के वातावरण को वापस लाना सहज न था। श्री गणेशशकर विद्यार्थी २५ ता० से लापता थे। उनकी लाश का पता २९ ता० को लगा। उन्होने उस दिन कई मुसलमान परिवारो को वचाया था। पता चलता है कि उन्हे फसा कर किसी स्थान पर ले जाया गया था जहा वे विना किसी सकोच के चले गये और फिर एक सच्चे सत्याग्रही की भाति क्रुद्ध भीड के सामने उन्होने अपना सिर झुका दिया। काग्रेस ने इस शोक-भरी घटना पर भी एक प्रस्ताव पास किया और डा० भगवानदास की अध्यक्षता मे ६ सदस्यो की एक कमिटी नियुक्त की। कमिटी ने एक मोटी रिपोर्ट तैयार करके कार्य-समिति के सामने पेश की, जो बहुत दिनो वाद छापी गई, लेकिन सरकार ने उसका विवरण रोक दिया।

अन्य प्रस्ताव

इसके पश्चात अस्थायी सन्धिवाला प्रस्ताव आता है जो एक मुकम्मिल चीज है। इसमे काग्रेस का दृष्टि-कोण दर्शाने के साथ-साथ काग्रेस की ओर से वह वात भी स्पष्ट कर दी गई जो गाधी-अर्विन-समझौते मे अस्पष्ट अथवा सन्देहास्पद समझी गई थी। इसके वाद काग्रेस ने उन सव व्यक्तियो को, खासकर महिलाओ को, वधाई दी जिन्होने गत सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन मे महान् कष्ट उठाये थे। महात्मा गाधी को काग्रेस ने गोलमेज-परिषद् के लिए अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया और यह निश्चय किया कि उनके अतिरिक्त जिन्हे काग्रेस-कार्यसमिति नियुक्त करेगी वे भी महात्माजी के नेतृत्व में सम्मेलन में काग्रेस का प्रतिनिधित्व करेंगे। अन्य प्रस्ताव साम्प्रदायिक उपद्रव, पूर्ण मद्य-निषेध, खादी-प्रचार, शान्तिमय धरना आदि के सवध मे थे।

मौलिक अधिकार का प्रस्ताव

यहा यह कह देना शेष है कि 'मौलिक अधिकारो तथा आर्थिक व्यवस्था' वाला प्रस्ताव कार्य-समिति के सामने कुछ यकायक तौर पर पेश हुआ था। मौलिक अधिकारो का प्रश्न सबसे पहले श्री चक्रवर्ती विजय राघवाचार्य ने अमृतसर-काग्रेस में उठाया था। जब दूसरे साल नागपुर मे काग्रेस-अधिवेशन के वह स्वय सभापति बने तब इस प्रश्न को और महत्व मिल गया। कराची में युवक-वर्ग तथा प्रौढ़-

वर्ग मे इस प्रश्न पर कुछ मतभेद-सा था। यह सोचा गया कि इतने महत्वपूर्ण प्रश्न पर फुरसत के साथ विचार होना चाहिए और कार्य-समिति तथा महासमिति के सदस्यो द्वारा उसका अध्ययन-मनन होना चाहिए। यह सलाह मान ली गई। इसलिए महासमिति को अधिकार दिया गया कि प्रस्ताव के सिद्धान्तो तथा उसकी नीति को आघात पहुँचाये विना उसमे रद्दो-वदल करे। वम्वई मे, अगस्त १९३१ मे, महासमिति ने मूल प्रस्ताव मे कुछ परिवर्तन किये। इसके वाद उसे जो रूप प्राप्त हुआ वह इस प्रकार था —

सर्वसाधारण के अधिकार

(१) भारत के प्रत्येक नागरिक को प्रत्येक विषय मे, जो कि कानून और सदाचार के विरुद्ध न हो, अपनी स्वतन्त्र राय प्रकट करने, स्वतन्त्र सस्थाये तथा सघ बनाने और विना हथियार के एव शातिपूर्वक एकत्र होने का अधिकार है।

(२) भारत के प्रत्येक नागरिक को, अन्तरात्मा का अनुसरण करने और सार्वजनिक शान्ति और सदाचार मे वाधक न होनेवाले धार्मिक विश्वास और आचरण की स्वतन्त्रता है।

(३) अल्पसख्यक जातियो और भिन्न भाषा-भाषी वर्ग की सस्कृति, भाषा और लिपि की रक्षा की जायगी।

(४) भारत के सब नागरिक, कानून की दृष्टि मे बिना किसी धर्म, जाति, विश्वास अथवा लिंग के भेद-भाव के समान है।

(५) सरकारी नौकरियो, अधिकार और सम्मान के पदो और किसी भी व्यापार या धन्धे के करने मे किसी भी नागरिक स्त्री-पुरुष को धर्म, जाति, विश्वास अथवा लिंग के कारण अयोग्य नही ठहराया जायगा।

(६) सरकारी अथवा सार्वजनिक खर्च से बने अथवा नागरिको-द्वारा सार्वजनिक उपयोग के लिए समर्पित कुओ, सडको, पाठशालाओ और सार्वजनिक आवागमन के स्थानो के सम्वन्ध मे सव नागरिको के समान अधिकार और कर्त्तव्य है।

(७) हथियार रखने के सम्बन्ध मे बनाये गये नियम और मर्यादा के अनुसार प्रत्येक नागरिक को हथियार रखने और धारण करने का अधिकार है।

(८) कानूनी आधार के बिना किसी तरह किसी भी मनुष्य की स्वतन्त्रता न छीनी जायगी और न किसी के घर और जायदाद मे प्रवेश और कुर्की या जब्ती की जायगी।

(९) सरकार सब धर्मों के प्रति तटस्थ होगी।

(१०) वालिग उमर के तमाम मनुष्यो को मताधिकार होगा।

(११) राज्य मुफ्त और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करेगा।

(१२) सरकार किसी को खिताब न देगी।

(१३) मौत की सजा उठा दी जायगी।

(१४) भारत का प्रत्येक नागरिक भारत-भर मे भ्रमण करने, उसके किसी भाग मे ठहरने या बसने, जायदाद खरीदने और कोई भी व्यापार या धंधा करने मे स्वतन्त्र होगा और कानूनी कार्रवाई और रक्षा के विषय मे, भारत के सब भागो मे, उसके साथ समानता का व्यवहार होगा।

श्रमिक वर्ग के अधिकार

(१) सरकार कारखानो के मजदूरो के स्वार्थों की रक्षा करेगी और उपयुक्त कानून-द्वारा एव अन्य उपायों से उनके जीवन-निर्वाह के लिए पर्याप्त मजदूरी, काम के लिए आरोग्यप्रद परिस्थिति, मजदूरी के घण्टो की मर्यादा, मालिको और मजदूरो के बीच झगडो के निपटारे के लिए उपयुक्त साधन और बुढापा, बीमारी तथा बेकारी के आर्थिक परिणामो के विरुद्ध रक्षा का उपाय करेगी।

(२) दासत्व या लगभग दासत्व-जैसी दशा से मजदूर मुक्त होगे।

(३) मजदूर-स्त्रियों की रक्षा और प्रसूति-काल के लिए पर्याप्त छुट्टी का विशेष प्रवध होगा।

(४) स्कूल मे जा सकने योग्य आयु के लड़के खानो और कारखानो मे नौकर न रक्खे जायंगे।

(५) किसान और मजदूरो को अपने हितों की रक्षा के लिए संघ बनाने के अधिकार होगे।

कर और व्यय

(१) जमीन की मालगुजारी और लगान का तरीका वदला जायगा और छोटे किसानो को वर्तमान कृषि-कर और मालगुजारी से तुरन्त और यदि अराजी से लाभ न होता हो तो आवश्यक समय तक के लिए छूट देकर या उससे मुक्त करके कृषको के वोझ का न्याययुक्त निपटारा किया जायगा।

(२) एक न्यूनतम निश्चित रकम के अलावा की जायदाद पर क्रमागत विरासत-कर लिया जायगा।

(३) फौजी खर्च मे वहुत अधिक कमी की जायगी, जिससे कि वर्तमान व्यय से वह कम-से-कम आधा रह जायगा।

(४) मुल्की-विभाग के व्यय और वेतन मे वहुत कमी की जायगी। खास तौर पर नियुक्त किये गए विशेषज्ञ अयवा ऐसे ही व्यक्ति के सिवा राज्य के किसी

भी नौकर को, एक निश्चित रकम के सिवा, जोकि आम तौर पर ५००) मासिक से अधिक न होनी चाहिये, अधिक वेतन न दिया जायगा।

(५) हिन्दुस्तान मे बने हुए नमक पर कोई कर नही लिया जायगा।

आर्थिक और सामाजिक कार्यक्रम

(१) राज्य देशी कपडे की रक्षा करेगा और इसके लिए ब्रिटिश वस्त्र और सूत को देश मे न आने देने की नीति और आवश्यक अन्य उपायो का अवलम्बन करेगा। राज्य अन्य देशी धन्धो की भी, जब कभी आवश्यक होगा, विदेशी प्रतियोगिता से रक्षा करेगा।

(२) औषधियो के काम के सिवा, नशीले पेय और पदार्थ सर्वथा बन्द कर दिये जायगे।

(३) हुण्डावन और विनिमय का नियंत्रण राष्ट्र-हित के लिए होगा।

(४) मुख्य उद्योगो और विभागो, खनिज साधनो, रेलवे, जल-मार्ग, जहाजरानी और सार्वजनिक आवागमन के अन्य साधनो पर राज्य अपना अधिकार और नियन्त्रण रखेगा।

(५) कृषको के ऋण से उद्धार के उपाय और प्रत्यक्ष रूप से लिये जाने वाले ऊचे दर के ब्याज पर सरकार का नियत्रण होगा।

(६) नियमित सेना के सिवा, राष्ट्र-रक्षा का साधन संगठित करने के लिए राज्य नागरिको की सैनिक शिक्षा की व्यवस्था करेगा।

कार्य-समिति की बैठक

गाधी-अर्विन समझौते की सफलता तथा इससे भी अधिक कराची के प्रस्तावो की सफलता गाधीजी तथा काग्रेसके भारी बोझोको और भी अधिक बोझीला बनाती-गई। कराची-काग्रेस में एक दो महत्वपूर्ण प्रश्न ऐसे रह गए थे जिन्हे उसने कार्य समिति एवं महासमिति के लिए छोड दिया था। सिक्खो ने राष्ट्रीय झण्डे तथा उसमें उनके लिए समाविष्ट किये जानेवाले रग के प्रश्न को उठाया। यह प्रश्न पहले लाहौर मे भी उठाया जा चुका था, कराची मे इसे और भी अधिक महत्व मिला। चूकि काग्रेस का अधिवेशन ऐसी तफसील पर विस्तार-सहित विचार नहीं कर सकता था, अत उसे काग्रेस की कार्य-समिति के सुपुर्द किया गया। नई कार्य-समिति ने, जिसकी बैठके १ और २ अप्रैल को हरचन्द्रराय-नगर मे हुई, इस आपत्ति की जाच कराने के लिए कि राष्ट्रीय-झण्डे के रग साम्प्रदायिक आधार पर निर्धारित किये गये है अथवा नही, और यह सिफारिश करने के लिए कि काग्रेस कौन-सा झण्डा स्वीकृत करे, एक कमिटी नियुक्त करने का निश्चय किया। कमिटी को गवाहिया लेने का अधिकार दिया गया और जुलाई १९३१ से पहले उसकी रिपोर्ट मागी गई।

को शराब न पीने और विदेशी कपडे से तन न ढकने की शिक्षा देने लगे थे और ये सव बाते उसी सिपाही की आखो के सामने होने लगी थी जो कल इन लोगो पर भेडिये की तरह टूटता था। कानून और अमन के ठेकेदार वननेवाले निराशा और पराजय का अनुभव कर रहे थे। कैदी रोज छोडे जा रहे थे। उन्हे मालाये पहनाई जाती थी, उनके जलूस निकाले जाते थे। वे भाषण देते थे। अब उनके व्याख्यानो मे विजय की ध्वनि और ललकार की भावना होती थी। १८ अप्रैल को लार्ड अर्विन ने भारत से प्रस्थान किया और गाधीजी ने बम्बई मे उन्हे विदाई दी। वाइसराय-भवन के व्यक्ति बदल गये।

१७ अप्रैल को नए वाइसराय लार्ड विलिंगडन ने चार्ज लिया। वह देश की स्थिति से अनभिज्ञ थे। देश के हाकिम समझौते को अपनी हतक-इज्जत समझते थे। इसलिए प्रतिदिन कांग्रेस के दफ्तरो मे यह शिकायते आती थी कि समझौते की शर्तों का ठीक पालन नही होता। गुन्टूर मे समझौते पर हस्ताक्षर होने के बाद भी पुलिस इससे बाज न आई थी। पूर्वी गोदावरी के बादपल्ली मे बहुत दुखद गोली-काण्ड हुआ था, जिसमे चार आदमी मर गये थे और कई घायल हो गये थे। यह गोली-काड महज इसलिए हुआ था कि लोगो ने एक मोटर पर गाधीजी का चित्र रक्खा था और पुलिस इस पर ऐतराज करती थी। स्थिति शीघ्र ही खेदजनक और असमर्थनीय गोली-काड मे बदल गई। लाठिया और गोलिया चला देना पुलिस का स्वभाव ही हो गया था। वह इसके बिना रह नही सकती थी।

कार्य-समिति की बैठक

जब कांग्रेस ने अस्थायी सधि की थी, तब वह इस उम्मीद मे थी कि भारत के विभिन्न सम्प्रदायो मे भी एक समझौता हो जायगा और सरकार भी इस दशा मे हमारी मददगार होगी। लेकिन ये सब उम्मीदे नाकामयाब हुईं। गाधीजी यह अच्छी तरह जानते थे कि यहा हिन्दू-मुस्लिम-समझौता हुए बिना लन्दन जाने की बनिस्बत भारत मे ही रहना अधिक उपयुक्त है। फिर भी, कार्य-समिति ९, १० और ११ जून १९३१ को बैठी और, गाधीजी की इच्छा न होते हुए भी मुसलमान मित्रो के आग्रह से उसने ऐसा प्रस्ताव पास कर दिया—

"समिति की यह सम्मति है कि दुर्भाग्य से यदि इन प्रयत्नो मे सफलता न मिले तो भी कांग्रेस के रुख के सम्बन्ध मे किसी तरह की गलतफहमी फैलने की सम्भावना से वचने के लिए महात्मा गाधी गोलमेज-परिषद् मे कांग्रेस की ओर से प्रतिनिधित्व करे, यदि वहा कांग्रेस के प्रतिनिधित्व की आवश्यकता हो।"

कार्य-समिति को यह उम्मीद थी कि यदि भारत मे नही, तो इंग्लैण्ड मे अवश्य समझौता हो जायगा। उसने मौलिक-अधिकार, उप-समिति और सार्वजनिक ऋण-समिति की रिपोर्ट आने की मियाद बढ़ा दी और मिल के सूत से बने कपडे

के व्यापारियो तथा ऐसे करघों को प्रमाण-पत्र देने की प्रथा को, जो पिछले दिनो बहुत बढ गई थी, बन्द कर दिया। कुछ काग्रेस-सस्थाये विदेशी कपड़े के वर्तमान स्टाक को बेचने की इजाजत दे रही थी। उनको बुरा बताया गया। श्री नरीमैन से कहा गया कि एक सूची उन कैदियो की तैयार करे जो कि अस्थायी सन्धि की शर्तो के अन्दर नही आते और उसे गाधीजी के सामने पेश करे।

गांधीजी की चेतावनी

अस्थायी-सन्धि और उसकी शर्तो के पालन के सबध मे गाधीजी ने सारे देश के काग्रेसियो को झगडा न शुरू करने की, पर साथ ही राष्ट्रीय आत्म-सम्मान पर चोट भी न सहने की सख्त चेतावनी दी। गाधीजी पस्त-हिम्मती के भारी शैतान को दूर रखना चाहते थे। वह भय और असहायता पर हावी होने का सदा आग्रह करते थे। काग्रेसियो को समझाते हुए उन्होने कहा कि—

"यदि वे समझौता का सम्मान-पूर्वक पालन असम्भव कर देते है, तो यह इस बात की स्पष्टतम चेतावनी है कि हम भी रक्षणात्मक उपाय करने के अधिकारी है। हम कोई नई स्थिति अपने आप पैदा नहीं करते, लेकिन हमे अपनी रक्षा करनी ही चाहिए। उदाहरण के तौर पर यदि झण्डाभिवादन रोक दिया जाता है तो हम इसे सहन नही कर सकते और हमे इस पर जरूर अड़े रहना चाहिए। यदि एक जलूस रोक दिया जाता है तो हमे उसके लिए लाइसेन्स की प्रार्थना करनी चाहिए और यदि वह नही दिया जाता, तो हमे जलूस न निकालने की आज्ञा का उल्लंघन करना चाहिए। लेकिन जहा मासिक झण्डाभिवादन और सार्वजनिक सभा का मामला हो, हमे इजाजत की प्रतीक्षा न करनी चाहिए और न इसके लिए दरख्वास्त ही देनी चाहिए। हमे असहायता और उससे उत्पन्न होनेवाली पस्त-हिम्मती को दूर करना चाहिए। करबन्दी-आन्दोलन के बारे मे तुम इसकी इजाजत दे सकते हो, लेकिन इसे अपने कार्यक्रम मे शामिल नही कर सकते। वे इसे खुद अपने हाथ मे लेगे और अपने मित्रो को भी इस आन्दोलन मे लेआएँगे। जब ऐसा होगा, तब आर्थिक प्रश्न बन जायगा और जब यह आर्थिक प्रश्न बन जायगा, तब जनता इस आन्दोलन की ओर खिच जायगी।"

जगह-जगह संधि भंग

उक्त चेतावनी के फलस्वरूप सरकार की ओर से बहुत सहानुभूति दिखाई गई और लॉर्ड विलिंगडन ने मीठे शब्दो की भी कमी न रखी। ऐसा कोई कारण न था कि उनके वचनो की सच्चाई पर सन्देह किया जाता। लेकिन यह जानने मे अधिक समय न लगा कि वाइसराय की हवाई बातो से जो ऊंची आशाये की गई थी, वे सब झूठी है। जुलाई के पहले सप्ताह मे गाधीजी के दिल मे यह सन्देह उत्पन्न हो गया था। किसी-न-किसी रूप मे दमन सब जगह जारी था। उत्तर

प्रदेश के अन्तर्गत सुलतानपुर में ९० आदमियो पर दफा १०७ ताजीरात हिन्द के अनुसार मुकदमा चलाया गया था। भवन शाहपुर मे ताल्लुकेदारो ने किसानो को राष्ट्रीय झण्डा हटा लेने का हुक्म दिया था और उनके इन्कार करने पर उन्हे हवालात मे बिठा दिया था। मथुरा मे एक थानेदार ने सार्वजनिक सभा को जबर-दस्ती भग कर दिया था। बाराबकी मे जिला-मजिस्ट्रेट ने पुलिस-इस्पेक्टरो को १४४ धारावाले कोरे आर्डर अपने दस्तखत करके दे दिये थे। डिप्टी कमिश्नर ने गाधी-टोपियो को उतरवा दिया था और लोगो को गाधी-टोपी न पहनने तथा काग्रेस मे न जाने की चेतावनी दी था।

अहमदाबाद, अकलेश्वर और रत्नागिरी जिलो मे गैर-लाइसेन्स-शुदा शराब की दुकानो पर और गैर-लाइसेन्स शुदा घण्टो मे शान्तिमय पिकेटिग की आज्ञा नही दी गई। कैदी भी नही छोडे गये। वलसाड मे पाच आदमियो से इसलिए जुरमाना मागा गया कि सत्याग्रह सग्राम के दिनो मे उन्होने स्वयसेवक-कैम्प के लिए अपनी जमीने दे दी थी। उनसे जबतक जुरमाना वसूल नही हुआ तबतक उन्हे जमीने नही दी गईं। कर्नाटक मे पश्चिमी जमीने तबतक वापस नही की गईं, जबतक यह वचन नही ले लिया कि आगे वे आदोलन मे भाग न लेगे। कई पटेल और तलाटी फिर बहाल नही किये गये। दो डिप्टी-कमिश्नरो को, जिन्होने इस्तीफा दे दिया था, पेन्शन नही दी गई, यद्यपि लॉर्ड अर्विन वचन दे चुके थे। बगाल मे वकीलो तथा बैरिस्टरो से 'आयन्दा ऐसा न करने का' वचन लेने से एक नई परिस्थिति उत्पन्न हो गई थी। नवे आर्डिनेन्स के मातहत एक जब्त आश्रम वापस नही लौटाया गया। गोहाटी मे विद्यार्थियो से ५०)-५०) की जमानते मागी गईं। जोर-हट मे सुपरिन्टेण्डेन्ट बार्टली की आज्ञा से १९ जून को प्रभातफेरी करनेवाले लडको को पीटा गया। दिल्ली मे विद्यार्थियो से आगे के लिए वादे लिये गये। मद्रास में १३ जुलाई को एक सरकारी विज्ञप्ति प्रकाशित हुई कि अस्थायी सन्धि के शान्तिमय पिकेटिग मे 'स्लिकारी साल' पर पिकेटिग शामिल नही है। तजोर के वकीलो पर शराब की दुकानो की पिकेटिग न करने के लिए १४४ दफा की रू से नोटिस तामील किये गये। पिकेटिग करते हुए स्वयसेवको पर बनावटी अभियोग लगाये गये। अनेक स्थानो पर उन्हे पीटा गया और झण्डा तथा छाता रखने से भी रोका गया। लोगो को यह चेतावनी दी गई कि उन्हे पानी न दिया जाय। शोलापुर के मार्शल-लॉ कैदियो की रिहाई की निश्चित प्रतिज्ञा लार्ड अर्विन कर गये थे, लेकिन फिर भी वे न छोडे गये। परन्तु बारडोली मे सरकार ने अस्थायी-सधि को जिस ढग से भग किया उसके सामने ये सब बाते फीकी पड जाती है। पाठको को याद होगा कि इस ताल्लुके मे लगान-बन्दी का आदोलन था। नई मालगुजारी २२ लाख रुपये देनी थी, जिसमे से २१ लाख रुपये दिये जा चुके थे। इस प्रकार प्रश्न केवल एक लाख के सबध मे था।

जब गाधीजी जुलाई के मध्य मे शिमला गये तब उन्होंने ये सब शिकायते भारत-सरकार तक पहुंचाईं। अगले दस दिनो मे स्थिति मे जो परिवर्तन हुआ, उसकी कोई उम्मीद न थी। गाधीजी ने बारडोली से इस विषय पर अपने विचार सीधे सूरत के कलक्टर को लिखे और उसकी एक प्रति बम्बई-सरकार को भी भेजी। बम्बई के गवर्नर का जवाब भी असन्तोष-जनक था। शिमला के अधिकारियो ने भी बम्बई-सरकार का समर्थन किया।

जांच का प्रस्ताव

तब गाधीजी ने पंच नियुक्त करने का प्रश्न उठाया। इस संबंध मे भारत-सरकार के होम-सेक्रेटरी इमर्सन साहब और उनके बीच पत्र-व्यवहार हुआ। यह पत्र-व्यवहार जुलाई के अंतिम सप्ताह तक चलता रहा। गाधीजी ने २१ जुलाई, १९३१ का शिमला से इमर्सन साहब के पास जो चौथा पत्र भेजा उसमे उन्होने लिखा कि वाइसराय-भवन मे आज शाम को किये गये वादे के अनुसार मै अपनी यह प्रार्थना लेखबद्ध कर रहा हूँ कि सरकार तथा काग्रेस के बीच हुए समझौते-सम्बन्धी उन प्रश्नो का निर्णय करने के लिए निष्पक्ष पच बैठाये जाय, जो समय-समय पर सरकार या काग्रेस की ओर से उसके सामने पेश किये जायं। कुछ ऐसे मामले है, जिन पर शीघ्र विचार होना अत्यन्त आवश्यक है। यह नही समझना चाहिए कि पंच के सामने केवल यही मामले पेश होगे। संभव है, भविष्य मे ऐसे अकल्पित मामले भी खडे हो जाय, जिनके सबंध मे समझौते की सीमा के अन्दर होने का दावा किया जा सके। हम यह तरीका रखे कि सरकार और काग्रेस दोनो की ओर से लिखित वक्तव्य पेश हो। दोनो पक्ष के वकील उन विषयो पर अपनी-अपनी दलीले पेश करे और बाद को पंच जो निर्णय करे वह दोनो पक्षो को मान्य हो।

इमर्सन साहब ने शिमला से ३० जुलाई १९३१ को उक्त पत्र का उत्तर देते हुए लिखा कि भारत सरकार ने व्याख्या-सम्बन्धी प्रश्नो के लिए निर्णायिक मण्डल-सम्बन्धी प्रस्ताव पर खूब गौर किया है। आपके पत्र मे वर्णित प्रश्नो पर भी सरकार ने खास ध्यान दिया है, जिन्हे आप इस श्रेणी के अन्तर्गत समझते है। इसके साथ सरकार ने यह भी ध्यान मे रक्खा है कि इन प्रश्नो पर निर्णायिक-मण्डल मजूर करने का आवश्यक परिणाम होगा सरकार की खास जिम्मेदारी और फर्जो का उलझन मे पड जाना। आप भी निस्संदेह यह स्वीकार करेगे कि सरकार के लिए किसी ऐसी व्यवस्था को मान लेना सभव नही है, जिससे हुकूमत की नियमित मशीनरी मौकूफ हो जाय, और जो अदालत की अधिकार-सीमा मे प्रवेश करे। ५ मार्च के समझौते मे इस तरह की किसी बात की कोई गुजाइश नही है।

परिषद् से गांधीजी का इन्कार

इस पत्र-व्यवहार से स्पष्ट हो गया कि समझौते मे कोई दम नही है। उत्तर-प्रदेश मे किसानो पर दमन और अत्याचार जारी था। अपने खेतो तथा घरो से निर्वासित किसानो की दुर्दशा से उत्तर प्रदेश के नेताओ को विशेष चिन्ता उत्पन्न हो गई थी। ऐसी दशा मे गाधीजी ने उत्तर प्रदेश के गवर्नर सर माल्कम-हेली को एक तार भेजा। लेकिन उसका जवाब निराशाजनक मिला। सभी ओर से ऐसी शिकायते आ रही थी और परिस्थितिया इतनी दिल तोडने वाली थी कि ११ अगस्त १९३१ को गाधीजी वाइसराय को एक तार भेजने पर विवश हो गये। उस तार में उन्होंने लिखा कि अभी हाल मे बम्बई-सरकार का जो पत्र मिला है, उसने मेरा लन्दन जाना असम्भव कर दिया है। पत्र से कई कानूनी समस्याये उपस्थित हो गई है। पत्र मे हकीकत और कानून दोनो दृष्टियो से एक बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया गया है और लिखा है कि सरकार ही हर प्रकार से दोनो बातो में अन्तिम निर्णय करेगी। इसका साफ अभिप्राय यह है कि जिन मामलो में सरकार और शिकायत करने वाले दो दल हो, उनमे भी सरकार ही अभियोग लगाये और वही फैसला करे। काग्रेस के लिए यह स्वीकार करना असम्भव है। बम्बई-सरकार के पत्र, सर माल्कम हेली के तार और उत्तर प्रदेश, सीमा-प्रान्त तथा अन्य प्रान्तो मे होने वाले अत्याचारो की रिपोर्ट पर जब मै ध्यान देता हू तब मुझे यही प्रतीत होता है कि मै लन्दन न जाऊँ, जैसा मैंने वादा किया था कि कोई भी अन्तिम निर्णय करने से पहले मै आपको लिखूगा। मै ऊपर लिखी हुई सब बाते आपके सामने रख रहा हूँ। अन्तिम घोषणा करने से पहले मै आपके उत्तर की प्रतीक्षा करूगा।

वाइसराय ने १३ अगस्त १९३१ को गाधीजी के तार का उत्तर देते हुए लिखा कि समझौते-सम्बन्धी हरेक मामले मे मै खुद दिलचस्पी रखता हू और मैने आशा की थी कि आप इन विस्तार की बातो से उत्पन्न विवादो के कारण अपने को भारत की उस सेवा से वचित नही करेगे, जो आप उस महत्वपूर्ण वाद-विवाद मे भाग लेकर कर सकते है, जो आपके और मेरे समय के भी आगे के लिए देश के भाग्य का निपटारा कर देने वाला है। यदि आपका निश्चय अन्तिम है तो मै फौरन ही प्रधान-मत्री को आपके लन्दन न जाने की सूचना दे दूगा। गाधीजी ने १३ अगस्त १९३१ को तार-द्वारा वाइसराय को जो सूचना दी वह लन्दन न जाने के ही सबध मे थी।

यद्यपि जून के महीने से यह आशका की जा रही थी कि काग्रेस के गोलमेज-परिषद् मे भाग लेने के रास्ते मे दिक्कते आएगी, लेकिन फिर भी प्रत्येक व्यक्ति अन्तिम क्षण तक यह उम्मीद कर रहा था कि किसी तरह परिस्थिति अपने-आप सुलझ जायगी। परन्तु प्रयत्न करने पर भी कोई सूरत न निकल सकी। इस तरह

जब कि गाधीजी वाइसराय और बम्बई तथा उत्तर प्रदेश की सरकारों से पत्र-व्यवहार करने मे लगे हुए थे, काग्रेस की कार्य-समिति बदस्तूर अपना कार्य करने मे सलग्न थी।

कार्य-समिति तथा महासमिति के निश्चय

कार्य-समिति की एक बैठक २० जुलाई को हुई। उसने 'ब्रिटेन तथा भारत के लेन-देन' पर तैयार की हुई रिपोर्ट को छापने की स्वीकृति दे दी। मौलिक-अधिकार-समिति ने अपनी बैठके मछलीपट्टम मे करके जो रिपोर्ट तैयार की थी उसे कार्यसमिति ने महासमिति के सामने पेश करने का निश्चय किया। हिन्दुस्तानी-सेवादल को काग्रेस का केन्द्रीय स्वयसेवक-सगठन मान लिया गया और यह निश्चय किया गया कि इसका नियन्त्रण कार्य-समिति प्रत्यक्ष रूप से स्वयं करेगी या वह करेगा, जिसे वह अपनी ओर से नियुक्त करे। प्रातीय काग्रेस-कमिटियो को यह अधिकार और आदेश दिया गया कि वे भी बाकायदा स्वयं-सेवक-दल बनाएँ। इस दल के सदस्यो के लिए काग्रेस का सदस्य होना और केन्द्रीय स्वयंसेवक-दल के नियन्त्रण को मानना जरूरी रखा गया। इसके बाद साम्प्रदायिक प्रश्न पर विचार हुआ और एक वक्तव्य प्रकाशित हुआ। विदेशी कपड़े और सूत के बहिष्कार की रूपरेखा तैयार की गई। यह भी निश्चय किया गया कि अस्पृश्यता-निवारण-समिति को, जो गत वर्ष सविनय अवज्ञा के संग्राम मे लुप्त हो गई थी, पुनर्जीवित किया जाय। मिल-समिति की तथा मजदूरो की हालत के प्रश्न पर कार्य-समिति ने यह निर्णय किया कि जहां सम्भव और आवश्यक प्रतीत हो, उक्त समिति आपसी तजबीजो के द्वारा ऐसी मिलो में, जिन्होने काग्रेस की घोषणा पर हस्ताक्षर कर दिये हो, मजदूरो को दण्ड दिये जाने या निकाले जाने को रोकने और मजदूरो की स्थिति को अधिक अच्छी करने की कोशिश करे।

महासमिति की बैठक ६, ७ और ८ अगस्त १९३१ को हुई। उसने बहुत महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किये। पहला प्रस्ताव बम्बई के स्थानापन्न गवर्नर की हत्या के प्रयत्न और बंगाल मे जज गार्लिक की हत्या के सबंध मे था। इसके पश्चात् राष्ट्रीय-झंडा-समिति की रिपोर्ट पर विचार हुआ और यह निश्चय किया गया कि राष्ट्रीय झण्डा तीन रग का और पहले की तरह लम्बाई-चौडाई मे समानान्तर होगा। लेकिन उसके रङ्ग क्रमश ऊपर से नीचे केसरिया, सफेद और हरा होगे। सफेद पट्टे के केन्द्र मे गहरे नीले रङ्ग का चरखा होगा। रंग गुणो के न कि जातियो के सूचक हैं। केसरिया रङ्ग साहस और बलिदान का, सफेद रङ्ग शान्ति और सत्य का, हरा रङ्ग श्रद्धा तथा वीरता का एवं चर्खा जनता की आशा का प्रतिनिधि होगा। झण्डे की लम्बाई-चौडाई का अनुपात ३ : २ होगा। ३० अगस्त रविवार को नया राष्ट्रीय झण्डा फहराने का निश्चय किया गया। इसी के अनुसार

प्रति मास हर रविवार को झण्डा फहराया जाने लगा। मौलिक-अधिकार-समिति की रिपोर्ट पर विचार हुआ और अधिकार एव कर्त्तव्य स्वीकृत हुए।

सीमा-प्रान्तीय काग्रेस-कमिटी, अफगान-जिरगा तथा खुदाई-खिदमतगारो के सम्वन्ध मे यह निश्चय किया गया कि काग्रेस-विधान के अनुसार एक नई प्रान्तीय सस्था स्थापित की जाय जो प्रान्त मे काग्रेस का प्रतिनिधित्व करे। यह नई चुनी हुई कमिटी प्रान्तीय काग्रेस-कमिटी होगी। उस प्रान्त की भाषा मे यह सीमा-प्रान्तीय जिरगा कहलायेगी। इसी तरह जिला तथा स्थानीय काग्रेस-कमिटिया स्थानीय जिरगे कहे जा सकेंगे। यह भी फैसला हुआ है कि खुदाई खिदमतगार कार्य-समिति के हाल के प्रस्ताव के अनुसार काग्रेस-स्वयसेवक वन जाय। 'खुदाई खिदमतगार' नाम रक्खा जा सकेगा। काग्रेस के विधान, नियम और कार्यक्रम के अनुसार ही सम्पूर्ण सगठन चलाया जायगा। इसलिए झडे के तौर पर वस्तुत राष्ट्रीय झडा ही काम मे लाया जायगा। कार्य-समिति की प्रार्थना पर सीमा-प्रान्तीय नेता खान अब्दुलगफ्फारखा ने उस प्रान्त मे काग्रेस-आन्दोलन के सचालन का भार अपने कधो पर ले लिया।

कार्य-समिति ने इस आशय का प्रस्ताव भी पास किया कि वह अनिच्छा-पूर्वक इस परिणाम पर पहुची है कि समझौते की शर्तों और राष्ट्रीय हितो को देखते हुए काग्रेस गोलमेज परिषद् मे न भाग ले सकती है और न उसे लेना ही चाहिए। मणि-भवन (बम्बई) में सारे दिन आशाओ से भरी ऐसी अफवाहे गरम हो रही थी कि सर तेजबहादुर सप्रू और श्री जयकर के आखिरी समय किये गये शान्ति के प्रयत्नो के कारण गाधीजी का लन्दन जाना सम्भव हो जायगा। लेकिन जव गाधीजी रात के ८।।। बजे मणि-भवन छोडकर बम्वई-सेन्ट्रल स्टेशन पर गुजरात-मेल के एक तीसरे दर्जे के डिब्बे मे सवार हो गये तब सब सन्देह बिलकुल खतम हो गये।

परिषद् में न जाने के कारण

गाधीजी के गोलमेज-परिषद् मे उपस्थित होने से इन्कार करने और १३ अगस्त को वाइसराय को तार-द्वारा अपने निश्चय से (जिसका समर्थन कार्य-समिति ने भी किया) सूचित करने का, एक कारण था। वस्तुत इमर्सन साहव के ३० जुलाई के पत्र, बम्बई गवर्नर के पत्र तथा सर माल्कम हेली के तार ने, यह निश्चय करने मे गाधीजी को बाध्य किया था, लेकिन इनमे सबसे वडा कारण था बारडोली मे लगान-वसूली के लिए दमनकारी उपायो का अवलम्बन। २२ लाख रुपये मे से २१ लाख दिए जा चुके थे। काग्रेस का कहना था कि लगान न चुकानेवाले आपत्ति मे ग्रस्त है और समय चाहते है। परन्तु सरकार ने पुलिस-द्वारा धमकिया देना तथा पुलिस के 'जुल्म' के जोर पर उस साल का तथा पिछले

सालो का बकाया वसूल करना शुरू किया। सरकार का कहना था कि लगान की वसूली मे अन्तिम निर्णय काग्रेस का नही, बल्कि सरकार और उसके कर्मचारियों का होना चाहिए। सरकार को मालगुजारी की इतनी परवाह न थी, जितनी अपने रौब की।

एक दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण और भी था, जिससे गाधीजी इंग्लैंड नही जाना चाहते थे। भारत-सरकार ने डॉक्टर असारी को गोलमेज-परिषद् का प्रतिनिधि मनोनीत नही किया था। स्वभावत काग्रेस उन्हे ले जाना चाहती थी। काग्रेसी होने के अलावा वह भारत की एक बडी पार्टी—राष्ट्रीय मुस्लिम दल—का प्रतिनिधित्व करते थे। सभी मुसलमान उन्नति-विरोधी नही थे। उनमे भी एक ऐसा साफ गिरोह था, जो दिल से राष्ट्रीय था और पूर्ण स्वराज्य के लिए उत्सुक था। लॉर्ड अर्विन ने गाधीजी के कहने से पण्डित मदनमोहन मालवीय, श्रीमती सरोजिनी नायडू और डाक्टर असारी को मनोनीत करने का वचन दिया था। लॉर्ड विलिगडन भी यह जानते थे। लॉर्ड अर्विन के वचन का पालन करने की माग के उत्तर मे लॉर्ड विलिगडन ने यह दलील दी कि मुसलमान-प्रतिनिधि डॉक्टर असारी के प्रतिनिधित्व के विरुद्ध है। देश मे डॉक्टर अन्सारी की स्थिति असाधारण थी, उनके अनुयायी भी बहुत थे, उनके विचार भी राष्ट्रीय थे। वह साम्प्रदायिकता के प्रबल और निर्भीक विरोधी थे। ऐसे डॉक्टर अन्सारी के चुनाव को वह मुसलमान-प्रतिनिधि कैसे सहन करते? काग्रेस ने साम्प्रदायिक प्रश्न पर एक हल तैयार कर लिया था, जिसका समर्थन गोलमेज परिषद् मे एक हिन्दू और एक मुसलमान प्रतिनिधि करते। सरकार यह जानती थी। इसलिए वह साफ तौर पर मुसलमान अग को काटकर काग्रेस को बेकार बना देना चाहती थी। इन परिस्थितियो मे काग्रेस के लिए राष्ट्रीय सम्मान की रक्षा करते हुए केवल एक ही मार्ग खुला था। गाधीजी ने उसे ही पकड़ा और गोलमेज-परिषद् के लिए लन्दन जाने से इन्कार कर दिया।

लन्दन के लिए प्रस्थान

गाधीजी ने शान्ति के लिए कभी दरवाजा बन्द नही किया। उनका कहना था कि ज्यो ही रास्ता साफ हुआ, मै लन्दन की ओर दौड पडूगा। जो बात प्रत्येक राजनैतिक विचार के दिमाग मे घूम रही थी, उसे उन्होने खुले तौर पर कह दिया—"यहा के बडे सिविलियन नही चाहते कि मै परिषद् मे जा सकू और यदि वे चाहते भी है, तो ऐसी परिस्थितियो मे ,जिन्हे काग्रेस-जैसी कोई राष्ट्रीय-संस्था बर्दाश्त नही कर सकती।" देश के सिविलियन बडे जोरो से यह बात फैला रहे थे कि काग्रेस के रूप में गाधीजी एक मुकाबले की सरकार कायम करना चाहते है और ऐसी विध्वंसक संस्था कभी गवारा नही की जा सकती। गाधीजी ने बम्बई से अहमदाबाद

के लिए रवाना होते समय लार्ड विलिंगडन को एक निजी पत्र लिखा कि अपने नेतृत्व मे मुकाबले की सरकार खडी करने का मेरा इरादा कभी नही रहा और न मैने कभी पच नियुक्त करने पर जिद की। हा, उसके इस अधिकार का दावा मैने अवश्य किया है। मै तो केवल न्याय चाहता हू। काग्रेस-कार्य-समिति ने आज प्रात काल जो प्रस्ताव पास किया है उसके अनुसार दिल्ली-समझौते का अन्त नही समझना चाहिए। इससे आप देखेगे कि कार्य-समिति इस समय सरकार को परेशान नही करना चाहती और वह सच्चाई से दिल्ली-समझौते का पालन करना चाहती है।

गाधीजी ने अपना पत्र इस प्रार्थना के साथ समाप्त किया कि इसका उत्तर शीघ्र मिले और यदि दिल्ली-समझौते का पालन मजूर है तो शिकायतो पर शीघ्र ही विचार किया जाय, क्योकि काग्रेसी कार्यकर्त्ता इस पर जोर दे रहे है कि यदि शिकायते दूर नही होती तो कम-से-कम आत्म-रक्षा के लिए रक्षात्मक उपाय हाथ मे लेने की आज्ञा दी जाय। गाधीजी को इसकी कोई चिन्ता न थी कि सरकार काग्रेस को अपने और जनता के बीच मध्यस्थ स्वीकार नही करती। वह सरकार को परेशानी मे डालने अथवा उसे अपमानित करना नही चाहते थे।

गाधीजी ने शिमला से प्राप्त १४ अगस्त के तार से अधिकार पाकर सरकार के विरुद्ध आरोप-सूची प्रकाशित कर दी। गाधीजी के पत्र का वाइसराय ने जो जवाब दिया, वह भी सन्तोषजनक न था। उसमे वाइसराय ने यह भी लिखा था कि गोलमेज-परिषद् मे काग्रेस का सम्मिलित न होना समझौते के प्रधान उद्देश्य को असफल करना है। इस विषय पर वाइसराय से बातचीत करने के लिए गाधीजी ने तार-द्वारा मुलाकात की अनुमति मागी। मुलाकात की अनुमति मिल गई। गाधीजी, श्री वल्लभभाई पटेल, जवाहरलालजी और सर प्रभाशकर पट्टनी वाइसराय से मिले। वाइसराय ने कार्यकारिणी की बैठक की। आखिर बहुत-सी बाधाओ के बाद मामले किसी तरह सुलझाये गये और गाधीजी शिमला से स्पेशल ट्रेन-द्वारा उस गाडी को पकडने के लिए रवाना हुए, जो उन्हे २९ अगस्त को रवाना होने वाले जहाज पर सवार करा सके। इस तरह गाधीजी और भारत-सरकार के प्रतिनिधियो की बातचीत के परिणाम-स्वरूप यह फैसला हुआ कि काग्रेस की ओर से गाधीजी गोलमेज परिषद् मे भाग ले। इसके अनुसार वह बम्बई से २९ अगस्त को जहाज पर रवाना हो गये।

यात्रा में गांधीजी

गाधीजी के साथ श्री महादेव देसाई, देवदास गाधी, प्यारेलाल, श्रीमती मीराबहन और श्रीमती सरोजिनी नायडू थी। अदन मे उनका हार्दिक स्वागत हुआ। अरबो तथा भारतीयो ने उन्हे एक साथ अभिनन्दन-पत्र दिया।

रेजीडेन्ट सभा में राष्ट्रीय झण्डा फहराने की अनुमति नही देना चाहता था। गाधीजी ने स्वय यह गुत्थी सुलझाई। उन्होने स्वागत समति के अध्यक्ष श्री फरामरोज कावसजी को यह सुझाया कि वह रेजिडेण्ट को फोन पर यह सूचित कर दे कि इन परिस्थितियो में गाधीजी अभिनन्दन-पत्र लेना स्वीकार नही करेगे। यह दलील काम कर गई। जहा गाधीजी को मानपत्र देना था उस स्थान पर भारत का राष्ट्रीय झण्डा फहराया गया और ३२८ गिनी की थैली उन्हें भेट में दी गई।

जहाज पर गाधीजी उसी तरह अपनी प्रार्थना, अपना चरखा और बालको के साथ अपना मनोरंजन आदि साधारण जीवन व्यतीत करते रहे, जैसे आश्रम मे करते थे। गाधीजी को श्रीमती जगलुलपाशा और वफ्द पार्टी के अध्यक्ष नहस-पाशा ने बधाई भेजी। पहले का संदेश तो स्वभावत. हृदयस्पर्शी था, और दूसरे का हार्दिक उत्साह इस उद्धरण से ज्ञात हो जायगा—

"अपनी स्वतन्त्रता और स्वाधीनता के लिए लड़ते हुए मिश्र के नाम पर मै उसी स्वाधीनता के लिए लडनेवाला भारत के सर्वप्रधान नेता का स्वागत करता हू। मेरी हार्दिक कामना है कि आपकी यह यात्रा सकुशल समाप्त हो और आप प्रसन्नतापूर्वक लौटे। मै ईश्वर से भी प्रार्थना करता हू कि आप जब वहा से लौटकर स्वदेश जाने लगे, तब मुझे आपसे मिलने की खुशी हासिल हो। ईश्वर आपको चिरायु करे और आपके प्रयत्नो में आपको व्यापक तथा स्थायी विजय दे।"

मिश्री शिष्ट-मण्डल को पोर्टसईद पर गाधीजी से मिलने की आज्ञा नही दी गई, लेकिन कैरो पर भारतीयो के शिष्ट-मण्डल को उनसे मिलने दिया गया। बहुत दिक्कत के बाद नहसपाशा का एक प्रतिनिधि गाधीजी से मिल सका। जब गाधीजी मार्सेलीज पहुंचे, तब वहा श्री रोम्या रोला की बहन मैडलीन रोलां उनका उत्साहपूर्वक स्वागत करने के लिए प्रतीक्षा कर रही थी। रोम्या रोला अस्वस्थ होने के कारण स्वयं उपस्थित न हो सके थे। मैडलीन रोला के साथ मोशियर प्रिवे तथा उनकी पत्नी भी थीं। मो० प्रिवे स्विटजरलैण्ट के एक अध्यापक थे, जिन्हे भारत-सरकार ने पीछे १९३२-३३ के आन्दोलन में मामूली तथा सदिग्ध अध्यापक कहकर प्रसिद्ध कर दिया था। कितने ही फ्रासीसी विद्यार्थियो ने भी गाधीजी का अभिनंदन किया।

लन्दन में गांधीजी

एक दिन यूस्टन रोड पर स्थित मित्र-सभा-भवन मे दिये गाधीजी के भाषण तथा किंग्स्ले-हाल से न्यूयार्क को ब्रौडकास्ट-द्वारा भेजे गये सदेश की रिपोर्ट 'टाइम्स' मे पढकर ५० पौड का चेक ही भेज दिया था। 'चचा गाधी'—हिन्दुस्तानी चप्पल के सिवा नगे पैर, कमीज नदारद, सिर्फ चादर ओढे हुए—ईस्ट-एन्ड के बालको मे इतने प्रिय हो गये थे कि वे प्रति दिन प्रात काल आकर उनको घेर लेते थे। गाधीजी और उनकी शाम की प्रार्थनाये, लकाशायर के मजदूरो के सामान्य अतिथि के रूप मे गाधीजी, और उनकी ब्रिटिश-सम्राट् से अपनी मामूली पोशाक मे भेट—ये सब ऐसी बातें है जिनका काग्रेस के इतिहास से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही है, लेकिन जो भारतीयो के लिए बहुत दिलचस्पी की है।

परिषद् में गाधीजी

गोलमेज प्ररिषद् मे गाधीजी एक ऐसे व्यक्ति थे जिनकी ओर हमारा ध्यान गये बिना नही रह सकता। फेडरल स्ट्रक्चर कमिटी मे दिये गये उनके भाषण को लन्दन में दिये गये उनके अन्य भाषणो की उत्तम भूमिका कह सकते है। उन्होने काग्रेस, उसका इतिहास, उसकी रचना, उसके साधन, उसके उद्देश्य आदि सबका सक्षिप्त परिचय नपे-तुले शब्दो मे दिया। उन्होने काग्रेस के जन्मकालीन सहायक और पालन-पोषणकर्ता मि० ए० ओ० ह्यूम के प्रति श्रद्धाजलि अर्पित की और काग्रेस तथा सरकार और काग्रेस तथा अन्य दलो के आधार-भूत भेदो का निर्देश किया। उन्होने कराची का प्रस्ताव पढकर उसकी व्याख्या की। उन्होने यह भी बताया कि प्रधान मन्त्री का वक्तव्य केन्द्रीय उत्तरदायित्व, सघ तथा भारतीय हितो की दृष्टि से सरक्षण, इन तीन कारणो से चित्रित भारतीय ध्येय से बहुत कम है। उन्होने वर्तमान समय की सबसे बडी आवश्यकता पर भी विचार प्रकट किये।

अल्प सख्यक-समिति मे भाषण देते हुए गाधीजी ने कई खरी बाते पेश की। उन्होने असदिग्ध भाषा मे यह कहते हुए स्थिति को बिलकुल साफ कर दिया कि विभिन्न जातियो को अपने पूरे बल के साथ अपनी-अपनी माग पर जोर देने के लिए उत्साहित किया गया है। उन्होने यह भी कहा कि यही प्रश्न आधार-रूप नही है, हमारे सामने मुख्य प्रश्न तो शासन-विधान का निर्माण है। उन्होने पूछा कि क्या प्रतिनिधियो को अपने घरो से ६००० मील केवल साम्प्रदायिक प्रश्न हल करने के लिए ही बुलाया गया है? हमे लन्दन मे इसलिए निमत्रित किया गया है कि हमे जाने से पहले यह सतोष हो जाय कि भारत की स्वतन्त्रता के लिए हम सम्मान-युक्त और असली ढाचा तैयार कर चुके है और अब उसपर केवल पार्लमेण्ट की स्वीकृति लेनी रह गई है। उन्होने सर ह्यूबर्टकार की अल्पसख्यक

जातियों की योजना की चुटकी लेते हुए कहा कि सर ह्यूबर्टकार तथा उनके साथियो को इससे जो सतोष हुआ है वह मै उनसे न छीनूगा, लेकिन मेरे विचार मे उन्होने जो-कुछ किया है वह मुर्दे की चीर-फाड़-जैसा ही है। सरकार की यह योजना उत्तरदायित्वपूर्ण शासन अर्थात् स्वराज्य प्राप्ति के लिए नही, किन्तु नौकरशाही की सत्ता मे भाग लेने के लिए ही बनाई गई है। 'मै उनकी सफलता चाहता हूँ, लेकिन काग्रेस इससे बिलकुल अलग रहेगी। किसी ऐसे प्रस्ताव या योजना पर, जिससे कि खुली हवा मे पैदा होनेवाला आजादी और उत्तरदायी शासन का वृक्ष कभी पनप न सकेगा, अपनी सहमति प्रकट करने की अपेक्षा काग्रेस वर्षों जगल मे भटकना स्वीकार कर लेगी।' अन्त मे उन्होने उस कठिन प्रतिज्ञा के साथ अपना भाषण समाप्त किया, जिस पर कुछ समय बाद उन्होने अपने जीवन की बाजी लगा दी थी। उन्होने कहा कि अन्य अल्पसंख्यक जातियो के भावो को मै समझ सका हू, लेकिन अछूतो की ओर से पेश किया गया दावा तो मेरे लिए सबसे अधिक निर्दय घाव है। इसका अर्थ यह हुआ कि अस्पृश्यता का कलंक निरतर रहेगा। हम नही चाहते कि अस्पृश्यो का एक पृथक् जाति के रूप मे वर्गीकरण किया जाय। सिक्ख सदैव के लिए सिक्ख, मुसलमान हमेशा के लिए मुसलमान और ईसाई हमेशा के लिए ईसाई रह सकते है। लेकिन क्या अछूत भी सदा के लिए अछूत रहेगे? अस्पृश्यता जीवित रहे, इसकी अपेक्षा मै यह अधिक अच्छा समझूगा कि हिन्दू-धर्म ही डूब जाय। जो लोग अछूतो के राजनैतिक अधिकारों की बात करते है वे भारत को नही जानते, और हिंदू-समाज का निर्माण किस प्रकार हुआ है, यह भी नहीं जानते। इसलिए मै अपनी पूरी शक्ति से यह कहता हू कि इस बात का विरोध करनेवाला यदि सिर्फ मै ही अकेला होऊ तो भी, अपने प्राणो की बाजी लगा कर भी, मै इसका विरोध करूंगा।

सेना के सवाल पर बहस हुई और गाधीजी ने इस विषय पर भी कुछ और स्पष्ट बाते कही। लेकिन इससे पहले उन्होने यह भी कहा कि जरूरत हुई तो मै इग्लैड मे अधिक समय तक ठहरने का विचार रखता हूं, क्योकि मै तो लन्दन आया ही इसलिए हू कि सम्मान-युक्त समझौते का प्रत्येक सम्भव उपाय खोजने का प्रयत्न करू। उन्होने कहा कि काग्रेस उत्तरदायी-शासन से आनेवाली सब प्रकार की जिम्मेदारियो को—रक्षा का पूर्ण अधिकार और वैदेशिक मामले तक—आवश्यक हेर-फेर और व्यवस्था के साथ अपने कन्धो पर उठाने के योग्य है। उन्होने इसका भी निर्देश किया कि भारत की सेना वस्तुत देश पर अधिकार जमाये रखने के लिए है। उसके सैनिक चाहे किसी जाति के हो, मेरे लिए सब विदेशी है, क्योकि मै उनसे बोल नही सकता, वे खुले तौर पर मेरे पास आ नही सकते और उन्हें यह सिखाया जाता है कि वे काग्रेसियो को अपना देशभाई न समझे। इन सैनिको और हमारे बीच एक पूरी दीवार खड़ी कर दी गई है।

अंग्रेजी सेना अग्रेजो के स्वार्थों की रक्षा करने, विदेशियो के हमलो को रोकने तथा आन्तरिक विद्रोहो का दमन करने के लिए रखी गई है। वस्तुत केवल अंग्रेजी सेना ही नही, सम्पूर्ण सेना (भारतीय सेना) रखने का भी यही हेतु है। सम्पूर्ण सेना पर पूरा-पूरा भारतीय अधिकार होना चाहिए। लेकिन मै यह भी जानता हूं कि वह सेना मेरा आदेश नही मानेगी, न प्रधान सेनापति और न सिक्ख या राजपूत ही मेरी आज्ञा मानेगे, किन्तु फिर भी मै आशा करता हू कि ब्रिटिश-जनता की सद्भावना से मै अपने आदेश और आज्ञा का पालन उनसे करा सकूगा। अग्रेजी फौज को भी यह कहा जा सकेगा कि अब तुम यहा अग्रेजो के स्वार्थों की रक्षा के लिए नही, वरन् भारत को विदेशी आक्रमण से बचाने के लिए हो। यह सब मेरा स्वप्न है। मै जानता हू कि मै ब्रिटिश-राजनीतिज्ञो तथा जनता से इस स्वप्न को पूर्ण न करा सकूगा, लेकिन यदि इस समय मेरा यह स्वप्न पूरा न हुआ, और मै फौज पर अधिकार न पा सका तो जिन्दगी-भर इसके पूर्ण होने की प्रतीक्षा करूगा। भारत अपनी रक्षा करना जानता है। मुसलमान, गुरखे, सिक्ख और राजपूत हिन्दुस्तान की हिफाजत कर सकते है। राजपूत तो ग्रीस की एक छोटी-सी थर्मा-पोली नही, हजारो थर्मापोलियो के जन्मदाता कहे जाते है।

गाधीजी अग्रेजो और उनकी कर्तव्य-बुद्धि पर विश्वास करते थे। उन्होने कहा कि हमें अग्रेजो के हृदय मे भारत के प्रति उस प्रेम-भाव का सचार कर देना चाहिए, जिससे भारत अपने पैरो पर खडा हो सके। यदि अग्रेजो का यह खयाल है कि ऐसा होने के लिए अभी एक सदी दरकार है, तो इस सदी-भर काग्रेस बयावान मे भटकती रहेगी, उसे भयकर अग्नि-परीक्षा मे होकर गुजरना होगा, आपदाओ के तूफान और गलतफहमियो के ववण्डर का मुकाबला करना होगा और यदि परमात्मा की इच्छा हुई तो गोलियो की बौछार भी सहनी पड़ेगी। संरक्षणो पर बोलते हुए उन्होने कहा कि कोई भी ऐसा सरक्षण नही है, जो साथ-साथ ब्रिटिश-स्वार्थों की भी रक्षा न करे, बशर्तेकि हम साझेदारी—इच्छित और सर्वथा बराबरी के दर्जे की साझेदारी—की कल्पना करे। गोलमेज-परिषद् के खुले अधिवेशन मे बोलते हुए उन्होने उपस्थित लोगो के सामने यह स्पष्ट कर दिया कि मै इस भ्रम मे नही हूं कि आजादी वाद-विवाद से एव सन्धि-चर्चा से मिल सकती है। लेकिन मै यह जरूर कहूगा कि जब यह घोषणा हो चुकी है कि परिषदो या कमिटियो मे फैसले की कसौटी बहुमत नही रखी जायगी, तब परिषद् के संयोजक ऐसी कमिटियो की एक के बाद दूसरी रिपोर्ट पर 'बहुमत की सम्मति' कैसे लिखते है और मतभेद रखनेवाले 'एक' के नाम तक का उल्लेख नही करते, वह 'एक' कौन है? क्या यहॉ उपस्थित दलो मे से काग्रेस भी एक दल है? मै तो पहले भी यह दावा कर चुका हू कि काग्रेस ८५ फीसदी जनता की प्रतिनिधि है। अब मै यह दावा करता हूं कि अपनी सेवा के अधिकार से काग्रेस राजाओ, जमींदारो

और शिक्षित-वर्ग की भी प्रतिनिधि है। अन्य सब प्रतिनिधि खास-खास वर्गों के प्रतिनिधि होकर आये हैं; काग्रेस ही एकमात्र ऐसी सस्था है जो साम्प्रदायिकता से दूर है। इसका मंच सबके लिए एकसा खुला है। फिर भी इसे अनेक दलो में से एक दल माना गया है। लेकिन यह भी याद कर लेना चाहिए कि यही एकमात्र ऐसी सस्था है, जिससे कारआमद फैसला हो सकता है। कुछ लोग अनुभव कर रहे थे कि काग्रेस मुकाबले की सरकार चलाने की कोशिश कर रही है। यदि काग्रेस हत्यारे के छुरे, जहरीले प्याले, गोलियो और भालों के मार्ग को छोडकर अहिंसा-पूर्वक मुकाबले की सरकार चला सकती है, तो इसमे बुरा क्या है? यह ठीक है कि कलकत्ता कारपोरेशन पर एक लाछन लगाया गया था, परन्तु यह मानना पड़ेगा कि ज्योही उस बात के सम्बन्ध मे मेयर का ध्यान आकृष्ट किया गया, उन्होने अपनी भूल स्वीकार कर ली और उस सम्बन्ध मे यथोचित परिमार्जन भी किया था। काग्रेस हिंसा नही, अहिंसा को मानती है, इसलिए सविनय अवज्ञा-आन्दोलन जारी किया गया। इसे भी तो सरकार ने बरदाश्त नही किया। परन्तु उसका मुकाबला भी नही किया जा सकता था—स्वय जनरल स्मट्स भी नहीं कर सके। १९०८ मे जो भारतीयों को देने से इन्कार किया जाता था, १९१४ मे वही दे देना पडा। बोरसद तथा बारडोली में सत्याग्रह सफल हुआ है, इसे लॉर्ड चेम्सफोर्ड भी स्वीकार कर चुके हैं। लॉर्ड अर्विन ने आर्डिनेन्सों-द्वारा देश को खूब तपाया है, लेकिन उन्हें सफलता नही मिली। समय रहते हुए, मै चाहता हू, आप समझें कि काग्रेस का ध्येय क्या है। परमात्मा के नाम पर मुझ ६२ साल के दुबले-पतले आदमी को थोडा-सा तो मौका दो। मुझे और जिस सस्था का मै प्रतिनिधि हू उसके लिए, अपने हृदय के कोने मे थोड़ा स्थान तो बनाओ। यद्यपि आप मुझपर विश्वास करते प्रतीत होते है, तथापि काग्रेस पर अविश्वास करते है। परन्तु एक क्षण के लिए भी आप मुझे उस महान् संस्था से भिन्न न समझिए जिसमें मै समुद्र की एक बूद के समान हूं। मै काग्रेस से बहुत छोटा हू; और यदि आप मुझपर विश्वास कर मुझे कोई जगह दें, तो मै आपको आमन्त्रित करता हूं कि आप काग्रेस पर भी विश्वास कीजिए, अन्यथा मुझपर आपका जो विश्वास है वह किसी काम का नहीं, क्योंकि काग्रेस से जो अधिकार मुझे मिला है उसके सिवा मेरे पास कोई अधिकार नही। यदि आप काग्रेस की प्रतिष्ठा के अनुकूल काम करेंगे, तो आप आतंकवाद को नमस्कार कर लेंगे। तब आपको उसे दबाने के लिए अपने आतकवाद की कोई जरूरत न रहेगी। क्या आप यह नहीं देखते कि हम गेहूं की बनी हुई रोटी नहीं, बल्कि आजादी की रोटी चाहते हैं, और जबतक रोटी नहीं मिल जाती, ऐसे हजारों लोग मौजूद है, जो इस बात के लिए प्रतिज्ञा-बद्ध हैं कि उस वक्त तक न तो खुद शान्ति लेंगे और न देश को ही चैन से बैठने देंगे?

१ दिसम्बर को परिषद् विसर्जित। हुई गाधीजी ने सभापति को धन्यवाद देने का प्रस्ताव पेश करते हुए कहा कि अब हमें अलग-अलग रास्तो पर जाना होगा। मनुष्य-स्वभाव का गौरव तो इसमे है कि हम जीवन में आनेवाली आधियो से टक्कर ले। मै नही जानता कि मेरा रास्ता किस दिशा मे होगा, लेकिन इसको मुझे चिन्ता नही है। यदि मुझे आपसे बिलकुल विभिन्न दिशा में भी जाना पडे, तो भी आप मेरे हार्दिक धन्यवाद के अधिकारी तो है ही। इन भावीसूचक शब्दो के साथ गाधीजी गोलमेज-परिषद् से विदा हुए। उस समय स्थिति यह थी कि जिन शर्तों पर काग्रेस गोलमेज-परिषद् मे सम्मिलित हुई थी, उनमे से एक 'घोर दमन रोक दिया जायगा'—पूरी तरह टूट चुकी थी। गाधीजी बगाल तथा उत्तर प्रदेश की बढती हुई बुरी स्थिति से बहुत चिन्तित हुए, क्योकि उनका खयाल था कि भारत मे दमन-नीति को जारी रखना लन्दन मे प्रदर्शित सहयोग और भारत को स्वतन्त्रता देने की इच्छा से बिलकुल मेल नही खाता।

बारडोली में अशांत वातावरण

उधर गाधीजी गोलमेज-परिषद् में भाग ले रहे थे, इधर देश का वातावरण विषाक्त होता जाता था। जब गाधीजी गोलमेज-परिषद् के लिए रवाना हुए थे, तब यह आश्वसन दिया गया था कि बारडोली मे लगान वसूली के सिलसिले मे पुलिस की ज्यादतियो के आरोपो की जाच होगी। मि० गॉर्डन को सूरत जिले को माल-गुजारी-कानून के अनुसार अधिकार देकर जाच के लिए खास अफसर नियत किया गया। जाच ६ अक्तूबर १९३१ को शुरू हुई। श्री भूलाभाई देसाई और सरदार वल्लभ-भाई पटेल उपस्थित थे। दोनो पक्ष इसपर सहमत हो गये कि किसानो को अपनी शक्ति के अनुसार अधिक-से-अधिक लगान देना चाहिए और यदि किसान उन सत्याग्रहियो मे से नही है, जिन्हे बहुत नुकसान उठाना पडा है, तो उन्हे कर्ज लेकर भी लगान देना चाहिए। जाच एक अरसे तक चलती रही। भारत-सरकार तथा बम्बई-सरकार ने ५ मार्च से २८ अगस्त तक जितनी आज्ञाए प्रचारित की थी, काग्रेस ने उन्हे पेश करने के लिए कहा। काग्रेस ने अभिलषित कागजो को मागने के कारण बताये और यह भी बताया कि किस किस्म के कागज विरोधी-पक्ष के अधिकार मे है। मि० गॉर्डन ने १२ नवम्बर १९३१ को यह हुक्म दिया कि विचारा-धीन प्रश्न के सिलसिले मे अनिश्चित और अयुक्ति-युक्त मागो से सहमत होना असम्भव है। दरअसल सरकार के हाथ मे मौजूद कागजो को पेश करने से इन्कार कर देने का अर्थ सरकारी गवाहो पर से जिरह की एक उपयोगी कैद को हटा देना था और यह भी महसूस किया गया कि इस तरह अधकचरी जाच निरुपयोगी से भी अधिक बुरी है। इस कारण सरदार वल्लभभाई पटेल ने जाच से हाथ खीच लिया।

अन्य प्रान्तों की स्थिति

बरडोली की जाच का यह हाल हुआ, अब उत्तर प्रदेश की ओर आइए! उत्तर-प्रदेश मे भी विकट परिस्थिति उत्पन्न हो रही थी। किसानो की—अधिकाशत. ताल्लुकेदारो तथा जमीदारो के अधीनस्थ किसानो की—विपत्ति बढ रही थी। लगान-वसूली के तरीको मे नरमी का नाम-निशान न था। अनेक ग्रामीण क्षेत्रो मे तो किसानो पर आतक का राज्य छा गया था। जिन जिलो मे किसानो के साथ सख्तिया की गई थी, उन्हे देखने तथा किसानो की स्थिति और विपत्तियो पर अपनी रिपोर्ट देने के लिये उत्तर प्रदेशीय काग्रेस-कमिटी ने कई जाच कमिटिया बिठाई थी, परन्तु उनकी जॉच का फल व्यर्थ हो गया। ऐसी स्थिति मे भी उत्तर प्रदेशीय काग्रेस-कमिटी ऐसा कोई कदम उठाना नही चाहती थी जिससे समझौते की बातचीत ही टूट जाय। लेकिन उसी समय किसानो के लगातार सलाह मागने पर वह चुप भी न रह सकती थी और न यही सलाह दे सकती थी कि वे मागी हुई रकम दे दे, क्योकि उसे विश्वास था कि यह रकम बहुत अनुचित है और उन किसानो को तबाह कर देगी, जिनकी वह प्रतिनिधि है। तब काग्रेस ने महासमिति के अध्यक्ष से आज्ञा लेने के बाद किसानो को यह सलाह दी कि वे लगान और मालगुजारी का चुकाना सन्धि-चर्चा के समय तक के लिए मुल्तवी कर दे। फिर भी काग्रेस ने यह स्पष्ट कर दिया कि वह सन्धि-चर्चा के लिए इच्छुक और उद्यत है और ज्योही किसानो की शिकायत दूर हुई वह अपनी सलाह को वापस ले लेगी। सरकार चाहती थी कि पहले काग्रेस अपनी सलाह वापस ले। उसने काग्रेस का परामर्श नही माना। अब उत्तर प्रदेश की काग्रेस-कमिटी के पास सिवा इसके कोई चारा न था कि लगान मुल्तवी करने की अपनी सलाह को दोहराये। सरकार ने अपने लिए खुद दूसरी नीति अख्तियार की। उसने सैकडो काग्रेसी कार्य-कर्त्ताओ को जेल मे डाल दिया। ये गिरफ्तारिया इतनी तडाक-फड़ाक हुईं कि सभी प्रमुख और उच्च कार्यकर्त्ता जेलो मे पहुच गये।

सघर्ष का तीसरा केन्द्र बगाल था। अस्थायी सन्धि के समय वहा अत्याचारो के अनेक दृश्य देखने मे आये। शायद इनका उद्देश्य था, चटगाव जिले मे हुए उत्पातो का बदला लेना। चटगाव शहर और जिले मे ३१ अगस्त और पिछले तीन दिनो मे हुई घटनाओ की जाच करने के लिए एक गैर-सरकारी जाच-कमिटी नियुक्त की गई थी। कुछ गैर-सरकारी यूरोपियन और गुण्डे बडे हथौडे और लोहे की सलाखें लेकर रात को एक प्रेस मे घुस गये और उन्होने मशीनो को तोड दिया तथा प्रेस-मैनेजर एव अन्य कर्मचारियो को मारा-पीटा। दिल्ली मे २७, २८ और २९ नवम्बर को कार्य-समिति ने इस घटना की रिपोर्ट पर विचार किया और आतकवाद की नीति का अनुसरण करते हुए कुछ गैर-सरकारी यूरोपियनो तथा गुण्डों के साथ

निरपराध जनता की बेइज्जती करने तथा उसे भीषण क्षति पहुचाने के लिए स्थानीय पुलिस तथा मजिस्ट्रेटो की तीव्र निन्दा की। जेलो से बाहर लोगो के साथ जब इस प्रकार आयर्लैण्ड के-से दमन के तौर-तरीके काम मे लाये जा रहे थे, जेलो और नजरबन्दो के कैम्पो मे उनके साथ और भी अधिक कठोर व्यवहार किया जा रहा था। हिजली के नजरबन्द कैम्प मे जो दु खान्त नाटक खेला गया, उसके फलस्वरूप २ नजरबन्द मर गये और २० घायल हो गये।

भारत के उत्तरी द्वार मे सरकार ने चौथी अग्नि प्रज्वलित कर रक्खी थी। वहाँ खुदाई खिदमतगार अनुशासन एव सगठन के साथ असहयोग के लिए तैयार किये गये थे। खान अब्दुलगफ्फार खा के नेतृत्व और प्रेरणा में काम करनेवाले ऐसे आदमी एक लाख से ऊपर थे। अगस्त के महीने तक इन खुदाई खिदमतगारो का काग्रेस से सम्बन्ध नही था। अस्थायी सधि के समय से ही गाधीजी सीमाप्रान्त जाने और उस सगठन का अध्ययन करने के लिए कई बार लॉर्ड अर्विन से उन्होने आज्ञा मागी, लेकिन उन्हे आज्ञा नही मिली। अन्त मे उन्होने सीमाप्रान्त मे श्री देवदास गाधी को भेजा। उन्होने एक आश्चर्यजनक रिपोर्ट पेश की। उसपर कार्य-समिति ने विचार किया तथा खुदाई खिदमतगारो को काग्रेस-सगठन का अग बना कर एक महत्वपूर्ण कार्य सम्पादन किया। बैण्ड और बिगुल, सिर से पैर तक लाल पोशाक और एक ऐसे ऊंचे व्यक्तित्व मे श्रद्धा और विश्वास—जो अपने चरित्र, मनुष्यता, बलिदान एव सेवा से 'सीमान्त-गाधी' का पद पा चुका था और बहुत जल्दी सब आखो का एक लक्ष्य, एक केन्द्र हो रहा था—ये सब बाते उस सगठन को अर्द्ध-सैनिक सिद्ध करने के लिए काफी थी। लाल पोशाक मे एक लाख सेना—सब पठान, उनपर विश्वास नही किया जा सकता था। सरकार को एक बहाना भी मिल गया कि खान अब्दुल गफ्फारखा सरकार से सहयोग नही करते, क्योकि वह सीमा-प्रान्तीय चीफ-कमिश्नर के दरबार में सम्मिलित नही हुए। वह पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रचार करते है। बस, निरपराध खानसाहब और उनके भक्त तथा उन्ही की तरह उनके निरपराध भाई डॉ० खानसाहब गाधीजी के भारत पहुचने से कुछ ही दिन पहले जेल मे डाल दिये गये।

गाधीजी जब २८ दिसम्बर को बम्बई उतरे तब परिस्थिति इस प्रकार बन चुकी थी।

: १५ :

कांग्रेस पर महान संकट : १९३२-३५

गांधीजी बम्बई में

देश के सभी प्रान्तों के प्रतिनिधि गांधीजी का स्वागत करने के लिए २८ दिसम्बर को बम्बई में एकत्र हुए। चुंगी-दफ्तर के एक भवन में उनका विधिवत स्वागत किया गया। फिर एक जलूस निकाला गया। गांधीजी ने सबसे पहले बम्बई की जनता को अपना भाषण सुनाया। आजाद मैदान में सचमुच उस दिन बहुत भीड़ थी। गांधीजी ने उसके सामने गम्भीर आवाज में कहा कि मैं शान्ति के लिए अपने बस-भर कोशिश करूंगा और अपनी तरफ से कोई बात उठा न रक्खूंगा। साथ ही हिन्दू जाति से अछूतों को जुदा करनेवाले किसी भी प्रयत्न को मैं बरदाश्त नहीं करूंगा, बल्कि मौका पड़ने पर उसके विरोध में मैं अपनी जान लड़ा दूंगा।

तीन दिन तक गांधीजी जुदा-जुदा प्रान्तों से आये प्रतिनिधियों से मिलते रहे और उनकी दुःख कथायें सुनते रहे। बंगाल में अत्याचार हो रहे थे। सुभाष बाबू बंगाल से अपने चार साथियों को लेकर आये थे। उत्तर प्रदेश और सीमाप्रान्त में आर्डिनेन्स जारी कर दिये गये थे। आरजी सुलह के दिनों में शासन की गाड़ी इन आर्डिनेन्सों से ही हांकी जा रही थी। देश में भयंकर मन्दी और घोर संकट था। कर्नाटक को कोई रिआयत नहीं दी गई थी। आन्ध्र में लगान बढ़ाया जानेवाला था और मद्रास के गवर्नर ने तो यहां तक धमकी दे रखी थी कि अगर लोग लगान रोकने की बात करेंगे तो आर्डिनेन्स जारी कर दिये जायंगे। गांधीजी ने ऐसी अनेक करुण कथाएं सुनीं और फिर उन्होंने भी अपने दुखड़े की कहानी लोगों को सुनाई। वह गोलमेज-परिषद् में जाना नहीं चाहते थे। जो बातें इस परिषद् में होनेवाली थीं उनकी छाया गुजरात और बंगाल में ही नजर आने लग गई थी, पर कांग्रेस की कार्य-समिति ने इस बात पर जोर दिया कि उन्हें जाना ही चाहिए।

का भी निश्चय कर लिया था कि आइन्दा काग्रेस किसी प्रकार की भी साम्प्रदायिकता का समर्थन नही करेगी। उसका धर्म शुद्ध और विशुद्ध राष्ट्र-धर्म होगा। उन्होने यह भी कहा कि अगर यह देश साम्प्रदायिक प्रश्न के साथ इसी तरह पहले की भाति खिलवाड करता रहेगा तो इसके लिए कोई आशा नही है। अपने मुसलमान और सिक्ख-मित्रो से उन्होने यह आश्वासन चाहा कि अगर भारत के लिए कोई ऐसा विधान बने जिसमे किसी प्रकार साम्प्रदायिकता की बू न हो और जो विशुद्ध राष्ट्रीयता के आधार पर बनाया जाय तो उसे वे स्वीकार कर लेगे। इन सारे विचारो और अनुभवो के कारण उनके चित्त को बडा क्लेश हो रहा था, पर तत्कालीन परिस्थिति का उन्होने बडी शान्ति और स्थिर चित्त से सामना किया। अपने ऊपर तथा अपने देश-भाइयो पर भी उन्हे खूब विश्वास था। देश ने उन पर विश्वास किया और उन्होने उसका बराबर निर्वाह किया। अब आज उन्हे अपने सामने एक जबरदस्त खाई नजर आ रही थी। सवाल यह था कि इसपर पुल बनाया जा सकता है या इसे जिंदा और मरे हुए आदमियो से पाट कर पार करना होगा? जब वह अपने काम मे भिडे, उनके हृदय मे ये विचार उमड रहे थे। कार्य-समिति उनके साथ थी। उन चौदह सदस्यो वाली कार्य-समिति की ही नही, उन्हे तो सारे देश की हिम्मत थी।

कार्य-समिति के आदेशानुसार उन्होने लॉर्ड विलिगडन को एक तार दिया और उसका जवाब भी आया। जवाब लम्बा और तफसीलवार था। उसमे धमकी भी थी। गाधीजी ने फिर एक तार दिया। मगर कोई नतीजा न निकला। अपने तार में गाधी जी ने लिखा कि अपने साथियों के कार्यों की नैतिक जिम्मेदारी से मै अपने-आपको बरी नही समझता, पर मै यह स्वीकार करता हू कि मेरे साथियो के कार्यो की और हलचलो की ब्यौरेवार जानकारी मुझ नही है, क्योकि मै भारत मे नही था और चूकि काग्रेस को कार्य-समिति को अपनो राय देकर मार्ग-प्रदर्शन करना मेरे लिए जरूरी था, मैने निष्पक्ष भाव से वाइसराय से मिलना और मार्ग-दर्शन चाहा। मै वाइसराय महोदय से अपनी यह राय नही छिपा सकता कि उन्होने जो जवाब भेजने की कृपा को है वह मेरे सद्भाव और मित्रतापूर्ण प्रस्ताव का पर्याप्त उत्तर नहीं है। अगर अब भी वाइसराय चाहे तो मै उनसे कहूगा कि वह अपने निर्णय पर पुर्नविचार करे और हमारी बातचीत पर, उसके विषय-क्षेत्र पर, बगैर कोई शर्त लगाये मुझसे मिलना स्वीकार करे। अपनी तरफ से मै यह वचन दे सकता हू कि वह जो भी वाते मेरे सामने रखेगे उनपर मै निष्पक्ष होकर विचार करूगा। बगैर किसी हिचकिचाहट के और खुशी के साथ मै उन-उन प्रातो मे जाऊँगा और अधिकारियो की सहायता से प्रश्न के दोनो पहलुओ का अध्ययन करूगा, और यदि पूरे अध्ययन के पश्चात् मै इस नतीजे पर पहुंचूगा कि लोग गलती पर है और सरकार का ही पक्ष ठीक है,

की सब सुविधाये दी जाय, तो वह इस समिति के सामने गवाह पेश करके सहायता देने के लिए तैयार रहेगी।

गोलमेज-परिषद् मे प्रधानमन्त्री-द्वारा की गई घोषणा और उसपर पार्लमेन्ट की कामन-सभा तथा लार्ड-सभा मे हुए वाद-विवाद पर भी कार्य-समिति ने विचार किया और अपना यह मत प्रकट किया कि पूर्ण स्वाधीनता से, जिसमें राष्ट्र के हित के लिए आवश्यक सिद्ध होने वाले सरक्षणो के साथ सेना, वैदेशिक सम्बन्ध तथा आर्थिक मामलो पर पूर्ण अधिकार सम्मिलित हैं, जरा भी कम को कांग्रेस सन्तोषजनक नही मान सकती। साथ ही उसने यह भी स्पष्ट कर दिया कि इस बीच यदि आर्डिनेन्सो तथा हाल के कृत्यो के सम्बन्ध मे काफी राहत दी जाय, भावी विचारो और परामर्श मे कांग्रेस के लिए अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता का दावा पेश करने की आजादी रहे और ऐसी स्वतन्त्रता मिलने तक देश का शासन लोक-प्रतिनिधियो की सलाह से चलाया जाय, तो कार्य-समिति सरकार को सहयोग देने के लिये तैयार है। इन शर्तो के आधार पर यदि सरकार की ओर से कोई सन्तोषजनक उत्तर न मिले, तो कार्य-समिति इसे सरकार की ओर से दिल्ली के समझौते के रद किये जाने की सूचना समझेगी। सन्तोषजनक उत्तर न मिलने की दशा मे कार्य-समिति राष्ट्र को कुछ निश्चित शर्तों पर फिर सविनय-अवज्ञा, जिसमें लगान-बन्दी भी सम्मिलित है, आरम्भ करने के लिए आह्वान करती है।

वाइसराय का उत्तर

गाधीजी के तार के उत्तर मे, २ जनवरी की शाम को वाइसराय के प्राइवेट-सेक्रेटरी ने तार-द्वारा सूचित किया कि अपने उत्तरदायित्व का खयाल रखने वाली कोई भी सरकार किसी भी राजनैतिक सस्था की गैर-कानूनी कार्रवाई की धमकी-युक्त शर्तो को स्वीकार नही कर सकती, न भारत-सरकार आपके तार मे वर्णित इस स्थिति को स्वीकार कर सकती है कि दिल्ली के समझौते पर पूरी सावधानी और पूरे ध्यान से विचार करने और अन्य सब सम्भव उपायो के समाप्त हो जाने के बाद, सरकार ने जिन उपायो का अवलम्बन किया है उनके औचित्य का आधार आपके निर्णय पर होना चाहिए। कांग्रेस ने जिन उपायो के अवलम्बन का इरादा जाहिर किया है, उनके सब परिणामो के लिए हम आपको और कांग्रेस को उत्तरदायी समझेगे और उनके दबाने के लिए सरकार सब आवश्यक अस्त्रो का अवलम्बन करेगी।

गांधीजी का उत्तर

वाइसराय के उक्त तार के उत्तर मे गाधीजी ने, ३ जनवरी १९३२ को जो तार भेजा उसमे उन्होने लिखा कि प्रामाणिक मत-प्रदर्शन को धमकी समझ लेना

रूप से अपनी नीति वदल ली है और केन्द्रीय सुवारो के आश्वासन के साथ प्रान्तीय स्वराज्य पर ही मामला टालने की कोशिश की है। यह भी निश्चय है कि काग्रेस के साथ लडाई अनिवार्य है; तव हमने महसूस किया और कहा कि जितनी जल्दी वह शुरू हो जाय उतना ही अच्छा है। लेकिन इसके साथ ही हमने यह भी सोच लिया है कि इसमे पूरी सफलता तभी मिल सकती है जवकि जितने हो सकें उन सव मित्रो को अपने पक्ष मे करले। मुसलमान तो हमारे साथ है ही, जैसा कि अल्पसख्यक-समझौते और मुसलमानो के प्रति सरकार के सामान्य रुख से स्पष्ट है। यही हाल राजाओ और दूसरी अल्पसख्यक जातियो का है।

हमे यह आवश्यक प्रतीत होता है कि सर सप्रू, जयकर, पैंटरो आदि के समान सर्व-साधारण हिन्दुओ को अपनी ओर मिलाया जाय। अगर हम उन्हे काग्रेस के खिलाफ खडा न कर सके तो कम-से-कम ऐसा तो कर ही सकते हैं कि जिससे वे काग्रेस का साथ भी न दे। और यह कोई मुश्किल वात भी नही है। इसके लिए उन्हे सिर्फ यही विश्वास कराने की आवश्यकता है कि संघ-योजना को नही छोड़ा जायगा। हमने सरकार से आग्रह किया है कि वह प्रान्तीय और केन्द्रीय-विघानो को एक-साथ उपस्थित करे, जिसे ये लोग सरकार की ईमानदारी और सद्भाव का ठोस नमूना समझेंगे और इनका सन्तोष हो जायगा। जहातक प्रान्तीय-स्वराज्य का सम्वन्ध है, वह हिन्दुस्तान पर जवरदस्ती नही लादा जा सकता; क्योंकि अकेले मुसलमान उसे नहीं चला सकते। मुसलमान तो अंग्रेजो के पक्के दोस्त ही हो गये हैं। अपनी परिस्थिति से उन्हे पूरा सन्तोष है और वे हमारे साथ काम करने के लिए तैयार है। लेकिन यह हरगिज न समझ लेना चाहिए कि जव हम यह कहते है कि सुधारो का होना जरूरी है तो हम हरेक प्रान्त मे जन-तन्त्रीय सुधारो का ही प्रतिपादन करते है। हम जो कुछ कहते हैं उसका अर्थ शासन-पद्धति मे ऐसे हेर-फेर करना भर है, जिससे कि उसकी सुचारुता वढ जाय।

मजदूर-सरकार ने अपनी घोषणा में भारत को जो कुछ देने का वचन दिया था उसके उद्देश्य को नष्ट करने को टोरी (कजरवेटिव) सरकार और उसके साथियो ने कैसी चेष्टा की, यह उक्त उद्धरण से भली-भाति मालूम हो जाता है। भारत के विरुद्ध उन्नति-विरोधी ब्रिटिशो के वीच जो समझौता हुआ वह एकाएक नही हो गया। उसकी नीव तो गोलमेज-परिषद् के दूसरे अधिवेशन से कही पहले हिन्दुस्तान और इंग्लैण्ड दोनो जगह रखी जा चुकी थी। सच तो यह है कि जव गाधीजी और लॉर्ड अर्विन के वीच समझौता हुआ तव उसके बाद ही भारत मे उन सव उन्नति-विरोधी लोगो ने, जो समझौते को पसन्द नही करते थे, शीघ्रता के साथ अपनी शक्तियो को सगठित किया और भारतीय राष्ट्रवादियो को शिकस्त देने के लिए अपना सम्मिलित गुट वना लिया था। इस षड्यन्त्र की आशिक रचना तो शिमला मे ही हुई थी, जो कि भारत-सरकार का सदर मुकाम है।

दमन-चक्र और गांधीजी की गिरफ्तारी

यह सब एक प्रकार की चुनौती थी। कार्य-समिति ने इस चुनौती को स्वीकार कर लिया। वस्तुत सरकार ने वही से लड़ाई को फिर से ग्रहण किया जहा पर कि ४ मार्च १९३१ को उसे छोडा गया था। अस्थायी-सधि के दर्मियान उसने हजारो लाठिया और एकत्र करली थी। यह अवसर सरकार के लिए नये सिरे से लडाई की तैयारी करने का था। इस प्रकार अस्थायी-सधि का टूटना निश्चित ही था। तीन आर्डिनेन्स तो जारी कर दिये गये थे, और कई जारी कर देने के लिए वाइसराय की जेब में रखे हुए थे। ४ जनवरी १९३२ को सरकारी प्रहार शुरू हो गया। काग्रेस को तथा उससे सम्बन्धित प्रत्येक सस्था को गैर-कानूनी करार दे दिया गया और काग्रेसी लोगों को गिरफ्तार करके जेलो मे भेजा जाने लगा। सरकारी लाठी-प्रहार पहले आन्दोलन (१९३१) के समय आरम्भ में नही, वल्कि वाद मे जारी हुआ था, लेकिन १९३२ मे सत्याग्रहियो को सवसे पहले उसी का मुकाबला करना पड़ा। चारो ओर यह वात फैल रही थी कि लॉर्ड विलिगडन सारे उत्पात को छ सप्ताह में ही समाप्त कर देने की आशा रखते हैं। लेकिन छ' सप्ताह का समय इतना कम था और सत्याग्रह ऐसी लम्वी लडाई थी कि उनकी आशा पूर्ण नहीं हुई।

आयोजन करके उनको अमली रूप दिया गया। हाईकोर्ट के एक एडवोकेट को सताने के लिए एक-एक करके उसके बाल उखाडे गये और यह सिर्फ इसलिए कि उसने पुलिस को अपना नाम और पता नही बताया था।

आर्डिनेन्सों का राज

जैसे-जैसे परिस्थिति बदलती गई, उसके अनुसार, नये-नये आर्डिनेन्स निकलते गये। हालाकि वे एक साथ नही, बल्कि भिन्न-भिन्न समय जारी हुए, मगर उनपर एक साथ विचार करना ही ठीक होगा। इनमे से एक आर्डिनेन्स का जिक्र तो पहले ही हो चुका है, जो कि उस समय बगाल मे जारी किया गया था जबकि गाधीजी लन्दन ही मे थे। कहा यह गया था कि यह बगाल मे आतकवादी-आन्दोलन का प्रसार रोकने और उसके सम्बन्ध मे चलनेवाले मुकदमो को जल्दी निपटाने के लिए है। प्रान्तीय-सरकार से अधिकार-प्राप्त किसी भी सरकारी अफसर को इससे यह सत्ता प्राप्त हो गई थी कि जिस किसी भी व्यक्ति पर कोई भी सन्देह हो उससे उसका परिचय प्राप्त करे और उसकी बताई हुई बाते ठीक है या नही, इसकी तहकीकात करने के लिए उसे गिरफ्तार करके एक दिन के लिए हिरासत मे ले ले। इसी प्रकार जिला-मजिस्ट्रेट किसी भी चीज या सामान के मालिक या इस्तेमाल करनेवाले से, मुआवजे के साथ या बिना मुआवजे के ही, उसका सामान ले सकता था।

उत्तर प्रदेशीय इमर्जेन्सी-आर्डिनेन्स १४ दिसम्बर १९३१ को जारी हुआ। इसके द्वारा प्रातीय सरकार को अधिकार दिया गया कि वह सरकार, स्थानीय अधिकारी अथवा जमीदार को दी जानेवाली किसी रकम को सरकारी पावना करार देकर उसे बकाया मालगुजारी के रूप मे वसूल करे। जिस किसी व्यक्ति पर यह शक हो कि वह सरकारी पावने को न अदा करने की प्रेरणा कर रहा है उसे दो साल की कैद, जुर्माना अथवा दोनो सजाये दी जा सकती थी। जो कोई व्यक्ति किसी सरकारी नौकर को अपने फर्जों को भली-भाति अदा न करने अथवा किसी व्यक्ति को पुलिस या सेना मे भरती होने से रोकने की चेष्टा करे उसे एक साल कैद या जुर्माने की सजा दी जा सकती थी। किसी जब्त साहित्य के अश दोहरानेवाले को ६ महीने कैद या जुर्माने की सजा दी जा सकती थी। ऐसे हुक्म के खिलाफ दीवानी अदालत मे कानूनी कार्रवाई भी नही की जा सकती थी। सीमाप्रान्त-सम्बन्धी तीन आर्डिनेन्स २४ दिसम्बर १९३१ को जारी किये गये। उनमे से एक तो उत्तर प्रदेशी आर्डिनेन्स की ही तरह था और सरकारी लहने की वसूली के लिए निकाला गया था। बाकी दो मे से एक का नाम सीमाप्रातीय 'इमर्जेन्सी पावर्स आर्डिनेन्स' था और दूसरे का 'अनलाफुल असोसियेशन आर्डिनेन्स'। इनमे से पहले के मातहत कोई भी अधिकार-प्राप्त व्यक्ति किसी भी सन्दिग्ध-व्यक्ति

को विना किसी कारण गिरफ्तार करके एक दिन के लिए हिरासत मे रख सकता था और प्रान्तीय सरकार-द्वारा वह मियाद दो महीने तक बढाई जा सकती थी। जिला-मजिस्ट्रेट डाक, तार, टेलीफोन और वायरलेस (वेतार के तार) को नियन्त्रित करके उनके द्वारा जानेवाली चीजो अथवा चिट्ठी-पत्रियो को रोक सकता था, किसी खास व्यक्ति या माल को किसी भी मुकाम पर ले जाने की मनाही कर सकता था और रेलगाड़ी मे से किसी भी यात्री को उतरवा सकता था।

४ जनवरी को चार नये आर्डिनेन्स और जारी हुए—(१) इमर्जेन्सी पावर्स आर्डिनेन्स, (२) अनलॉफुल इस्टिगेशन आर्डिनेन्स, (३) अनलॉफुल असोसियेशन आर्डिनेन्स और (४) प्रिवेन्शन ऑफ मॉलेस्टेशन एण्ड बायकाट आर्डिनेन्स। इनमे से पहले आर्डिनेन्स के मातहत तो लोगो को गिरफ्तार करने, वन्द रखने या उसकी हलचलो को नियन्त्रित करने, इमारतो को माग लेने, इमारतो या रेलवे को वर्जित-स्थान करार देने, यातायात को नियन्त्रित करने, सर्व-साधारण के व्यवहार की किसी चीज को अपने कब्जे मे करने या उसकी खपत व विक्री पर नियन्त्रण करने, यातायात के साधनो पर नियन्त्रण करने, शस्त्रास्त्र की विक्री पर नियत्रण करने, स्पेशल पुलिस-अफसर नियुक्त करने, जमीदारो और अध्यापको आदि को कानून और व्यवस्था कायम रखने मे मदद करने के लिए बाध्य करने, सार्वजनिक उपयोग के कामो पर नियन्त्रण करने, डाक, तार या हवाई जहाज से जानेवाली चीजो तथा चिट्ठी-पत्रियो को रोकने और वीच मे गायब कर लेने, रेलो और नौकाओ मे जगह हासिल करने तथा उनके यातायात पर नियन्त्रण करने, सभाओ मे पुलिस अफसरो को भेजने इत्यादि के वैसे ही अधिकार दिये गये थे जैसो का विस्तार के साथ ऊपर वर्णन किया जा चुका है। 'अनलॉफुल इस्टिगेशन आर्डिनेन्स' के मातहत सरकार किसी पावने को इश्तिहारी पावना घोषित कर सकती थी और जो भी कोई व्यक्ति उसकी अदायगी मे बाधक होता उसे ६ महीने कैद और उसके साथ जुर्माने की सजा दी जा सकती थी। जिसको ऐसा पावना मिलना हो वह आदमी कलक्टर से यह कह सकता था कि इसे बतौर मालगुजारी वसूल किया जाय और कलक्टर उसे माल-गुजारी के बकाया के रूप में वसूल करवा सकता था। 'अनलॉफुल असोसियेशन आर्डिनेन्स' के मातहत प्रान्तीय-सरकार गैरकानूनी करार दी गई संस्था की इमारत और उसकी चल-सम्पत्ति तथा रुपये-पैसे को अपने कब्जे में कर सकती थी। ऐसे रुपये-पैसे को प्रातीय

सकती थी जो किसी दूसरे व्यक्ति को तग करते और उसका वहिष्कार करते या उसे तग करने और उसका बहिष्कार कराने मे सहायक होते थे।

इस प्रकार इन आर्डिनेन्सो के द्वारा सरकार ने वहुत विस्तृत अधिकार अपने हाथ मे ले लिये, जो अमली तौर पर सारे देश मे लागू कर दिये गये थे। ऐसे आर्डिनेन्सो और दमनकारी अस्त्रो को तैयार करने का विचार तो अस्थायी-सधि के पूर्व से ही हो रहा था।

कार्य-समिति की तत्परता

सरकारी आक्रमण ४ जनवरी क बडे सबेरे म० गाधी और राष्ट्रपति सरदार वल्लभभाई पटेल की गिरफ्तारी के साथ आरम्भ हुआ। १९३२ के उपर्युक्त आर्डिनेन्स उसी दिन सबेरे जारी हुए और कई प्रान्तो पर लागू कर दिये गये। पश्चात् कुछ ही दिनो मे, अमली तौर पर, सारे देश मे लागू हो गये। अनेक प्रान्तीय और मातहत काग्रेस-कमिटियो, आश्रमो, राष्ट्रीय स्कूलो तथा अन्य राष्ट्रीय सस्थाओ को गैरकानूनी करार दे दिया गया और उनकी इमारतो, फर्नीचर, रुपये-पैसे तथा अन्य चल-सम्पत्ति को सरकारी कब्जे मे ले लिया गया। देश के खास-खास काग्रेसियो मे से अधिकाश को एकदम जेलो मे ठूस दिया गया। इस प्रकार देखते-ही-देखते काग्रेस के पास न तो नेता रहे, न रुपया-पैसा, न निवास-स्थान। लेकिन इन आकस्मिक और दृढ झपट्टे के बावजूद जो काग्रेसी बच रहे थे वे साधन-हीन नही हो गये थे। जो जहा था वही उसने काम शुरू कर दिया। कार्य-समिति ने तय कर लिया कि १९३० की तरह ही बार खाली होनेवाली स्थानो की पूर्ति न की जाय। सरदार वल्लभ भाई पटेल ने, अपनी खुद की गिरफ्तारी का खयाल करके, अपने बाद क्रमश कार्य करनेवाले व्यक्तियो की एक सूची बना दी थी। कार्य-समिति ने अपने सारे अधिकार अध्यक्ष के सुपुर्द कर दिये और अध्यक्ष ने उन्हे अपने उत्तराधिकारियो को सौप दिया, जो क्रमश अपने उत्तराधिकारियो को नामजद करके वे अधिकार दे सकते थे। प्रान्तो मे भी, जहा कही सम्भव हुआ, काग्रेस-सगठन की सारी सत्ता एक ही व्यक्ति को दे दी गई। इसी प्रकार जिलो, थानो, ताल्लुको और गावो तक की काग्रेस-कमिटियो मे भी हुआ। यही व्यक्ति आमतौर पर डिक्टेटर या सर्वेसर्वा के रूप मे प्रसिद्ध हुए। शराब और विदेशी कपडे की दुकानो तथा ब्रिटिश माल की पिकेटिंग सब प्रान्तो मे समान-रूप से लागू हुई। लगानबन्दी उत्तर प्रदेश मे काफी बडी हद तक और बगाल मे आशिक रूप से एक महत्व का विषय रहा। बिहार और बगाल के कुछ स्थानो मे चौकीदारी-टैक्स देना बन्द कर दिया गया। मध्यप्रान्त तथा वरार, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश, मद्रास प्रेसीडेन्सी और बिहार के कुछ स्थानो मे जगलात के कानून तोड़े गये। गैरकानूनी नमक बनाने, उसे एकत्र करने और बेचने के रूप मे नमक-

कानून भंग तो अनेक स्थानो मे किया गया। सभाओ और जलूसो की तो जरूर ही मनाही की गई, लेकिन निषेधाज्ञाओ के होते हुए भी सभायें हुई और जलूस भी निकाले गये। लडाई की शुरुआत मे खास-खास दिनो का मनाया जाना बहुत लोकप्रिय रहा। जैसा कि अभी कह चुके हैं, काग्रेस के दफ्तरो तथा आश्रमों को सरकार ने अपने कब्जे मे कर लिया था। अत: अनेक स्थानो मे उन्हे सरकारी कब्जे से वापस लेने का प्रयत्न किया गया, जिसका प्रयोजन उस आर्डिनेन्स का भग करना था जिसके अनुसार इन स्थानो में जाना निषिद्ध और गैरकानूनी करार दे दिया गया था। ये प्रयत्न 'धावो' के नाम से मशहूर हुए। आर्डिनेन्सो के कारण कोई प्रेस काग्रेस का काम नही कर सकता था। इस अभाव की पूर्ति के लिए बेजाब्ता हस्तपत्रक, परचे, सवाद-पत्र, रिपोर्टें आदि निकाले गये। यह मार्के की बात है कि पुलिस के सतर्क रहने पर भी ये सवाद-पत्र और हस्तपत्रक नियमित रूप से प्रकाशित होते रहे। इससे उस समय सारे देश को खबरे मिल जाती थी। डाक और तार विभाग के दरवाजे काग्रेस के लिए बद हो गये थे, इसलिए काग्रेस ने अपनी डाक को खुद ही पहुंचाने की व्यवस्था की। कभी-कभी यह डाक ले जाने वाले स्वयसेवक पकड़े भी गये और तब स्वभावत उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। १९३० के आन्दोलन के उत्तरार्द्ध मे वस्तुत यह प्रथा प्रारम्भ हुई थी और १९३२ में जाकर यह लगभग पूर्णता को पहुच गई। और तो और, महासमिति अथवा प्रान्तीय कमिटियो के दफ्तरो का भी सरकार पता नही लगा सकी, जहा से न केवल हस्तपत्रक ही निकलते थे बल्कि आन्दोलन चलाने के सम्बन्ध में हिदायते भी जारी होती रहती थी। दूसरी बात जिससे कि लोगो मे बडा उत्साह पैदा हुआ और जिससे पुलिस को भी कम परेशानी नही उठानी पडी, काग्रेस के अधिवेशन का किया जाना था। इसके बाद प्रान्तो तथा जिलो की परिषदो के रूप मे देश-भर मे काग्रेस-सम्मेलनो की झडी लग गई। कई जगह स्वयसेवको ने जजीर खीचकर चलती रेलगाडियो को रोकने के रूप में रेलों के नियमित काम-काज में खलल डालने की कोशिश की। एक बार तो रेलो को नुकसान पहुंचाने की दृष्टि से बहुत बडी तादाद में बिना टिकट रेल मे जाने का प्रयत्न किया गया, लेकिन जिम्मेदार हलको मे इस चेष्टा को प्रोत्साहन नही मिला। इसलिए बाद में यह चेष्टा बन्द कर दी गई।

बहिष्कार ने बहुत जोर पकडा। इसके एक-एक अंग को चुनकर उन पर शक्तिया केन्द्रित की गई। कई स्थानो में विदेशी कपडे, ब्रिटिश दवाइयो, ब्रिटिश बैंको, बीमा-कम्पनियो, विदेशी शक्कर, मिट्टी का तेल और आम तौर पर ब्रिटिश माल के बहिष्कार का जोरदार आन्दोलन करने के लिए अलग-अलग सप्ताह भी निश्चित किये गये।

यह तो खयाल ही नही करना चाहिए कि नेताओ को गिरफ्तार कर लेने के

बाद सरकार खामोश अथवा नरम पड गई। आर्डिनेन्सो मे उल्लिखित सब अधिकारो का उसने उपयोग किया। यहा तक कि दमन के कुछ ऐसे तरीके भी अख्तियार किये गये जिनकी उन आर्डिनेन्सो तक मे इजाजत नही थी। गिरफ्तारियाँ बहुत बडी तादाद मे हुईं, लेकिन वे की गईं चुन-चुन कर। सजा पानेवालो की कुल सख्या एक लाख से कम न थी। इन कारणो से जेल-अधिकारियो के साथ अक्सर उनका सघर्ष हो जाता था, जिसके फल-स्वरूप भिन्न-भिन्न प्रकार की ऐसी सजाये उन्हे दी जाती रही जिनकी जेल के नियमो मे स्वीकृति थी, और बहुत बार पिटाई तथा दूसरे ऐसे जुल्म भी किये गये जो जेल की चहार-दीवारी के भीतर किसी को पता लगने के भय से मुक्त होकर आसानी से किये जा सकते है। एक खास तरह की अपमानप्रद स्थिति मे बैठने से इन्कार करने पर मार-पीट और हमला करने के अत्याचार का एक मामला तो अदालत मे भी पहुचा, जिसके परिणाम-स्वरूप नासिक-जेल के जेलर, उसके सहायक तथा कई अन्य व्यक्तियो को सजा भी हुई, परन्तु सत्याग्रही कैदियो के लाठी से पीटे जाने की घटनाये तो अक्सर ही होती रही। अस्थायी जेलो मे रहना तो बिलकुल ही नाकाबिल बर्दाश्त था, क्योकि उनमे टीन के जो छप्पर पडे हुए थे उनसे न तो मई-जून की गरमी का बचाव होता था, न दिसम्बर-जनवरी की ठण्ड का ही बचाव होता था। इससे वहा तन्दुरुस्ती अच्छी रह नही सकती थी। अनेक जेलो मे, खासकर कैम्प-जेलो मे, कैदियो का स्वास्थ्य बहुत बिगड रहा था। पेचिश का तो सभी समय जोर था, वर्षा और ठण्ड के साथ निमोनिया तथा फेफडे की नाजुक बीमारियो ने भी बहुतो को दबोचा था। फलत अनेक तो जेलो मे ही मर गये।

लाठी मार-मारकर लोगो की भीड और जलूसो को भग करने का तरीका तो पुलिस ने आरभ ही मे अख्तियार कर लिया था। जेलो तथा मार-पिटाई की सख्तियो के लिए तो सत्याग्रही तैयार ही थे, और अनेक तो गोली खाकर मर जाने को भी तैयार थे—लेकिन, सरकार ने सोचा, अगर इनकी सम्पत्ति पर आक्रमण किया जाय तो इनमे से बहुत-से उसे बरदाश्त न कर सकेगे। अतएव सजा देते वक्त उनपर भारी-भारी जुर्माने किये गये। कभी-कभी तो जुर्मानो की रकम पाच अंको तक चली जाती थी। जहा मालगुजारी, लगान अथवा अन्य करो का देना बन्द किया गया वहा तो ऐसी बकाया रकमो और करो की तथा जुर्मानो की वसूली के लिए न केवल उन्ही लोगो की मिल्कियत पर धावा बोला गया जिनसे कि उन्हे वसूल करना वाजिब था, बल्कि साथ मे सयुक्त परिवारो की और कभी-कभी तो नाते-रिश्तेदारो की मिल्कियत भी कुर्क करके बेच डाली गई। कुर्की और बिक्री तक ही बात रहती तो भी गनीमत थी, लेकिन यहा तो कुर्की के बाद बड़ी-बड़ी कीमत की मिल्कियतो को बिल्कुल कौडी के ही मोल बेच डाला गया। कई स्थानो मे अतिरिक्त ताजीरी-पुलिस तैनात की गई और उसका खर्च वहा के

निवासियों से वसूल किया गया। बिहार-प्रान्त के कुल चार-पाच स्थानों मे, जहा जहा ऐसी अतिरिक्त पुलिस तैनात की गई थी, कम-से-कम ४ लाख ७० हजार रुपया वहा के निवासियो से ताजीरी-कर के रूप मे वसूल किया गया। मिदनापुर जिले (बगाल) के कुछ हिस्सो मे ताजीरी फौज की तैनाती से ऐसा सर्वनाश और आतक फैला कि जिले के दो थानो मे रहनेवाले हिन्दुओ मे से अधिकाश तो सचमुच ही अपने घर-बार छोडकर आस-पास के स्थानो मे चले गये।

अखबारो को भी बडी कठिनाई का सामना करना पड़ा। बहुत-से अखबारों से जमानते मागी गई, बहुतो की जमानते जब्त की गई, और बहुत-से अखबारो को जमानत जमा न कर सकने या प्रेस जब्त हो जाने अथवा सरकारी प्रहार के भय से अपना प्रकाशन ही बन्द कर देना पडा। इस आतक और सर्वनाश के बीच भी एक बात बिल्कुल स्पष्ट थी। वह यह कि लोगो ने किसी गम्भीर हिंसात्मक कार्य का अवलम्बन नही किया। अहिंसा की शिक्षा उनमे जड़ पकड चुकी थी, जिसके कारण महीनो तक आन्दोलन जारी रहा, जब कि सरकार ने तो चन्द हफ्ते मे ही उसे खत्म कर देने की आशा की थी।

दिल्ली-कांग्रेस : १९३२

इन्हीं दिनों दिल्ली-अधिवेशन भी हुआ। यह १९३२ के अप्रैल महीने मे दिल्ली मे हुआ था। यह पुसिस को बडी भारी सतर्कता के बावजूद किया गया था, जिसने कि दिल्ली के रास्ते मे ही बहुत-से प्रतिनिधियो का पता लगाकर उन्हे गिरफ्तार भी कर लिया था।

चादनीचौक के घंटाघर पर यह अधिवेशन हुआ और पुलिस की सतर्कता के बावजूद लगभग ५०० प्रतिनिधि जैसे-तैसे सभा-स्थान पर जा पहुंचे थे। पुलिस इस सन्देह मे कि अधिवेशन की जगह का जो ऐलान किया गया है वह सिर्फ चाल है, प्रतिनिधियो को नई दिल्ली मे कही तलाश करती रही और कुछ पुलिस एक जगह अकालियो के जलूस से निपटती रही। पेश्तर इसके कि वह घण्टाघर पर आयें, काफी तादाद मे प्रतिनिधि एकत्र हुए और उन्होने कार्रवाई भी शुरू कर दी। अहमदाबाद के सेठ रणछोडदास अमृतलाल उसके सभापति थे। उसमे काग्रेस की सालाना रिपोर्ट पेश हुई और चार प्रस्ताव स्वीकृत हुए। पहले प्रस्ताव मे इस बात की ताईद की गई कि पूर्ण-स्वाधीनता ही काग्रेस का लक्ष्य है, दूसरे मे सविनय-अवज्ञा के फिर से जारी होने का हार्दिक समर्थन किया गया, तीसरे मे गाधीजो के आह्वान पर राष्ट्र ने जो सुन्दर जवाब दिया उसके लिए उन्हे वधाई दी गई और महात्माजी के नेतृत्व मे पूर्ण विश्वास प्रदर्शित किया गया, तथा चौथे मे अहिंसा में अपने विश्वास की फिर से पुष्टि करते हुए काग्रेस को, खासकर सीमाप्रात के बहादुर पठानो को, अधिकारियों की ओर से अधिक-से-

अधिक उत्तेजना की करतूते की जाने पर भी अहिसात्मक रहने पर बधाई दी गई।

प० मदनमोहन मालवीय दिल्ली अधिवेशन के मनोनीत सभापति थे, लेकिन वह तो रास्ते में ही गिरफ्तार कर लिये गये थे। वैसे काग्रेसियो में उल्लेख-योग्य वही एकमात्र ऐसे नेता थे जो जेल से बाहर थे। अपनी वृद्धावस्था एव गिरे हुए स्वास्थ्य के बावजूद, गोलमेज-परिषद् से लौटने के बाद, वह कभी शाति से नही बैठे और अधिकारियो की ज्यादतियो का पर्दाफाश करनेवाले वक्तव्य-पर-वक्तव्य निकालकर अपने अथक उत्साह एव अद्भुत शक्ति से काग्रेस-कार्यकर्ताओ को प्रोत्साहन प्रदान करते रहे। जब कभी कोई सन्देह अथवा कठिनाई का प्रसग उपस्थित होता, काग्रेस-कार्यकर्त्ता उन्ही की ओर मुखातिब होते थे और उन्होने कभी भी उन्हे निराश नहीं होने दिया।

गांधीजी का उपवास

दूसरी गोलमेज-परिषद् मे गाधीजी ने अपना यह निश्चय सुनाया था कि अस्पृश्यो को यदि हिन्दू-जाति से अलग करने की चेष्टा की गई तो मै उस चेष्टा का अपने प्राणो की बाजी लगाकर भी मुकाबला करूँगा। अब गाधीजी के उस भीषण-व्रत की परीक्षा का अवसर आ पहुचा था। लोथियन-कमिटी, मताधिकार और निर्वाचन की सीटो का निर्णय करने के लिए, १७ जनवरी को भारत में आ पहुची थी। इसीलिए बहुत सोचने-समझने के बाद, गाधीजी ने भारत-मन्त्री सर सेम्युअल होर को ११ मार्च को एक पत्र लिखा, जिसमे उन्होने यह निश्चय प्रकट किया कि यदि सरकार ने अस्पृश्यो या दलित-जातियो के लिए पृथक निर्वाचन रखा तो मै आमरण-उपवास करूगा। सर सेम्युअल होर ने अपना उत्तर १३ अप्रैल १९३२ को भेजा। यह उत्तर वही पुरानी पत्थर की लकीर का उदाहरण था। १७ अगस्त को मि० मैकडानल्ड का निश्चय सुनाया गया। दलित-जातियो को पृथक् निर्वाचन का अधिकार तो मिला ही, साथ ही आम निर्वाचन मे भी उम्मीद-वारी करने और दुहरे वोट हासिल करने का उन्हे अधिकार दिया गया। १८ अगस्त को गाधीजी ने अपना निश्चय किया और उस निश्चय से प्रधान मत्री को सूचित कर दिया। उन्होने यह भी कहा कि व्रत यानी उपवास २० सितम्बर (१९३२) के तीसरे पहर से शुरू होगा। मि० मैकडानल्ड ने आराम के साथ ८ सितम्बर को उत्तर दिया और १२ सितम्बर को सारा पत्र-व्यवहार प्रकाशित कर दिया गया। प्रधान-मत्री ने गाधीजी को दलित-जातियो के प्रति शत्रुता के भाव रखनेवाला व्यक्ति बताना उचित समझा। व्रत २० सितम्बर १९३२ को आरम्भ होनेवाला था। पत्र-व्यवहार के प्रकाशन और व्रत आरम्भ होने मे एक सप्ताह था। यह सप्ताह देश ही क्या, ससार-भर के लिए क्षोभ, चिन्ता और हलचल का

सप्ताह था। यह सप्ताह बड़े अवसाद का सप्ताह था, जिसमे व्यक्तियो और सस्थाओ ने उस क्षण जो ठीक समझा किया। गाधीजी से भेंट करने की अनुमति मांगी गई, पर न मिली। संसार के कोने-कोने से पूना को तार भेजे गये। गाधीजी का सकल्प छुडाने के लिए तरह-तरह की सलाहो और तर्कों से काम लिया गया। सोचा गया, एक परिषद् करना अच्छा होगा। यह बडी अच्छी बात हुई कि दलित जातियो के ही एक नेता ने इस दिशा मे पैर बढाया। रायबहादुर एम० सी० राजा ने पृथक् निर्वाचन को धिक्कारा। सर सप्रू ने गाधीजी की रिहाई की माग पेश की। काग्रेस-वादियो ने भी स्वभावत देश-भर मे सगठन करके समझौता कराने की चेष्टा की। मालवीयजी ने तत्काल नेताओं की एक परिषद् बुलाने की बात सोची। इगलैंड मे दीनबन्धु एण्डरूज, मि० पोलक और मि० लेन्सबरी ने स्थिति की गम्भीरता की ओर अग्रेज-जनता का ध्यान आकृष्ट किया। एक अपील पर प्रभावशाली व्यक्तियो के हस्ताक्षर हुए, जिसके द्वारा इग्लैंड-भर मे खास तौर से प्रार्थना करने को कहा गया। भारतवर्ष मे २० सितम्बर को उपवास और प्रार्थनाये की गईं। इसमे शाति-निकेतन ने भी भाग लिया। वैसे इस आन्दोलन का आरम्भ प्रधान-मत्री के निश्चय मे संशोधन कराने के लिए किया गया था, पर इस आन्दोलन को अस्पृश्यता निवारण के अधिक व्यापक आन्दोलन का रूप धारण करते देर न लगी। कलकत्ता, दिल्ली और अन्य स्थानो मे अस्पृश्यो के लिए मदिर खोले जाने लगे। यह आशा की जाती थी कि गाधीजी उपवास के आरभ होते ही छोड दिये जायगे। पर पता चला कि उनकी रिहाई तो क्या होगी, उन्हे किसी खास स्थान पर नजरबन्द कर दिया जायगा और उनकी गति-विधि पर भी रुकावट लगा दी जायगी।

पूना-पैक्ट और उपवास का अन्त

पूना-पैक्ट जिन-जिन बातो का परिणाम है, उनके क्रम-विकास मे पाठको को ले जाना हमारे लिए सम्भव नही है। परिषद् बम्बई मे आरम्भ हुई, पर शीघ्र ही पूना मे ले जाई गई। डा० अम्बेडकर शीघ्र ही बातचीत मे शामिल हो गये और श्री अमृतलाल ठक्कर, श्री राजगोपालाचार्य, सर चुन्नीलाल मेहता, पण्डित मालवीय, बिडलाजी, सरदार पटेल, श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्री जयकर, डॉ० अम्बेडकर, रायबहादुर एम० सी० राजा, बाबू राजेन्द्रप्रसाद, पडित हृदयनाथ कुजरू और अन्य सज्जनो की सहायता से एक योजना तैयार की गई, जिसे उपवास के पाचवे दिन सारे दलो ने स्वीकार कर लिया। दलित जातियो ने पृथक् निर्वाचन का अधिकार त्याग दिया और आम हिन्दू-निर्वाचनो से ही सन्तोष कर लिया। उच्च जातियो के हिन्दुओ ने महत्वपूर्ण सरक्षण प्रदान किया। निश्चय हुआ कि पूरा समझौता उस समय तक कायम रहे जब तक सब की सलाह से उसमे परिवर्तन

न किया जाय और दलित-जातियो का प्रारम्भिक निर्वाचन दस साल तक जारी रहे। ब्रिटिश-सरकार ने पूना-पैक्ट के उस अश तक को स्वीकार कर लिया जिस अश तक उसका प्रधान-मत्री के निश्चय से सम्वन्ध था। जो-जो वाते साम्प्रदायिक निर्णय के वाहर जाती थी, उनपर निश्चय रोक रखा गया। दलित-जातियो के नेताओ को कृतज्ञ होना ही चाहिए था, क्योकि प्रधान-मत्री के निश्चय के अनुसार उन्हे जितनी जगहे मिलने वाली थी, अव उन्हे उनसे दुगुनी मिल गई और उन्हे अपनी जन-सख्या से अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त हो गया। दस वर्ष वाद जनमत स्थिर करने के प्रश्न पर अन्तिम समय मे फिर विवाद उठ खडा हुआ। अन्त मे यह निश्चय किया गया कि इस प्रश्न को भविष्य मे आपस के समझौते-द्वारा तय किया जाय। २६ तारीख को, ठीक जिस समय ब्रिटिश-मन्त्रि-मण्डल द्वारा समझौते के स्वीकृत होने की खवर मिली, श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने गाधीजी से भेंट की। २६ तारीख की सुबह को इग्लैंड और भारत मे एक साथ घोषणा की गई कि पूना का समझौता स्वीकार कर लिया गया।

गाधीजी को यह व्यवस्था स्वीकार करने मे कुछ पशोपेश हुआ। वह चाहते थे कि दलित-जातियो के नेता भी सन्तुष्ट हो जाय। उन्हें अपने भौतिक प्राण बचाने की चिन्ता न थी, बल्कि उन लाखो प्राणियो के नैतिक प्राण बचाने की चिन्ता थी, जिनके लिए वह उपवास कर रहे थे। परन्तु अन्त मे प० हृदयनाथ कुजरू और चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने गाधीजी को सन्तोष करा दिया। इसपर गाधीजी ने ६ तारीख को शाम के सवा पाच बजे उपवास छोडने का निश्चय किया। भजन और धार्मिक श्लोक-पाठ के बाद उन्होने पारण किया। यह ठीक था कि गाधीजी के प्राण बच गये, परन्तु जिस श्वास मे वह अपना उपवास भग करने को राजी हुए उसी मे उन्होने यह भी कह दिया कि यदि उचित समय के भीतर अस्पृश्यता-निवारण-सम्बन्धी सुधार नेकनीयती के साथ पूरा न किया गया तो मुझे नये सिरे से उपवास करना पड़ेगा।

हरिजन-आन्दोलन

प्रधान-मत्री-द्वारा पैक्ट स्वीकार होने और गाधीजी के उपवास छोडने के बाद ही २५ सितम्बर, १९३२ को परिषद् ने बम्बई मे सभा की। परिषद् के सभापति प० मदनमोहन मालवीय थे। इसमे एक प्रस्ताव पास हुआ, जिसके द्वारा प्रतिज्ञा की गई कि हिन्दू अस्पृश्यता का निवारण करेगे। जो सस्था बाद को हरिजन-सेवक-सघ के रूप मे विकसित हो गई उसकी स्थापना इसी प्रस्ताव के फल-स्वरूप हुई। इसके सभापति सेठ घनश्यामदास बिडला और मत्री भारत-सेवक-समिति के श्री अमृतलाल ठक्कर हुए।

इस प्रकार गाधीजी के पवित्र तप का स्वभावत ही पूरा परिणाम निकला।

अस्पृश्यता-निवारण के लिए सारा देश तैयार हो गया। खतरा इसी बात का था कि कही युवक जल्दबाजी से काम न ले। इसलिए गाधीजी को लगाम खीचनी पडी। हरिजनो के लिए मन्दिर-प्रवेश का अधिकार प्राप्त कराने के निमित्त देश मे कई व्यक्तियो ने सत्याग्रह किया। भोपाल के नवाब ने इस हिन्दू धार्मिक आन्दोलन के लिए ५०००) दिये। फादर विन्स्लो ने अपने अन्य सहधर्मियो के हस्ताक्षर के साथ एक अपील छपवाकर ईसाइयो के लिए पृथक निर्वाचन की व्यवस्था को धिक्कारा। उधर मौलाना शौकतअली गाधीजी की रिहाई का आग्रह कर रहे थे और इस बात पर जोर दे रहे थे कि हिन्दू-मुस्लिम-समस्या का भी निपटारा हो जाय। इस प्रकार वातावरण मे एकता की भावना और एकता की पुकार छाई हुई थी, और यदि सरकार अकस्मात २९ सितम्बर को अपनी नीति मे परिवर्त्तन करके गाधीजी से मुलाकात आदि करने की सुविधाये देती तो साम्प्रदायिक समझौता भी अवश्य हो जाता। परन्तु मुलाकाते बन्द कर दी गईं। गाधीजी अब वैसे ही कैदी हो गये जैसे १२ सितम्बर से पहले थे।

कलकत्ता-कांग्रेस : १९३३

अप्रैल १९३२ के दिल्ली-अधिवेशन की भाति कलकत्ता का अधिवेशन भी निषेधाज्ञा के होते हुए करना पडा। यद्यपि इसका आयोजन उस समय किया गया था जब सत्याग्रह-आन्दोलन शिथिल पड़ गया था, फिर भी जो उत्साह और प्रतिरोध की भावना यहा दिखाई पडी वह दिल्ली मे भी न दिखाई पडी थी। कुछ प्रान्तो ने तो अपने पूरे प्रतिनिधि भेजे। कुल मिलाकर कोई २२०० प्रतिनिधि सारे प्रान्तो से चुने गये। इस बात से कि प० मदनमोहन मालवीय ने अधिवेशन का सभापतित्व स्वीकार कर लिया है, राष्ट्र का उत्साह और भी बढ गया। श्रीमती मोतीलाल नेहरू ने वृद्धावस्था और दुर्बलता का ध्यान न करके अधिवेशन मे भाग लेने का जो निश्चय किया उससे आनेवाले प्रतिनिधियो को बड़ी स्फूर्ति मिली। अधिवेशन कलकत्ता मे ३१ मार्च को बडे सनसनीपूर्ण वातावरण मे हुआ। डॉ० प्रफुल्ल घोष स्वागत समिति के अध्यक्ष थे। सरकार ने अधिवेशन न होने देने के लिए कुछ उठा न रखा। पण्डित मदनमोहन मालवीय को बीच ही मे आसनसोल स्टेशन पर गिरफ्तार कर लिया गया। उनके साथ ही श्रीमती मोतीलाल नेहरू, डॉ० सैयदमहमूद और अन्य सारे व्यक्ति, जो सभापति के साथ थे, गिरफ्तार कर लिये गये और सबको आसनसोल की जेल मे ले जाया गया। काग्रेस के कार्यवाहक सभापति श्री अणे भी कलकत्ता जाते हुए गिरफ्तार कर लिये गये और उन्हे जेल मे भेज दिया गया। कलकत्ते मे स्वागत-समिति के सदस्यो को गिरफ्तार कर लिया गया और कई काग्रेस-नेताओ पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। श्रीमती नेली सेन गुप्त और डॉ० मुहम्मद आलम इनमे प्रमुख थे। लगभग १००० प्रतिनिधि

रवाना होने से पहले ही, कलकत्ते के मार्ग मे, गिरफ्तार कर लिये गये। बाकी प्रतिनिधि नगर मे पहुचने में सफल हुए। निषेधाज्ञा होते हुए भी लगभग ११०० प्रतिनिधि अधिवेशन के लिए नियत स्थान पर एकत्र हो गये। शीघ्र ही उनपर पुलिस आ टूटी और काग्रेस-वादियो के शान्तिपूर्ण-समुदाय पर लाठिया बरसाने लगी। बहुत-से प्रतिनिधि बुरी तरह घायल हुए और श्रीमती नेली सेन गुप्त और अन्य प्रमुख काग्रेसवादी गिरफ्तार किये गये। पुलिस ने अधिवेशन को बल-प्रयोग-द्वारा होने से रोकने की चेष्टा की, परन्तु असफल रही, क्योकि लाठियो की वर्षा होते रहने पर भी प्रतिनिधियो का भीतरी समूह अपनी-अपनी जगहो पर जमा रहा, और वे सातो प्रस्ताव पढकर सुनाये गये और पास हुए। कलकत्ता-अधिवेशन के सिलसिले मे गिरफ्तार हुए अधिकाश व्यक्तियो को काग्रेस समाप्त होते ही छोड दिया गया। अन्य व्यक्तियो पर मुकदमा चलाया गया और उन्हें सजाये दी गई। श्रीमती सेन गुप्त को भी छ मास का दण्ड मिला। जेल से रिहा होते ही पण्डित मदनमोहन मालवीय सीधे कलकत्ता पहुचे और शीघ्र ही देश के सामने इस बात का कि पुलिस ने किस प्रकार अमानुषिकता के साथ काग्रेस भग करने की चेष्टा की थी, प्रमाण पेश किया। उन्होने सरकार को जाच करने की चुनौती दी, पर वह चुनौती कभी स्वीकार न की गई।

गांधीजी का उपवास

कलकत्ता काग्रेस के बाद शीघ्र ही देश मे एक घटना हुई जो बिल्कुल आकस्मिक थी। हरिजन-आन्दोलन मे काम करने वाले कार्यकर्ताओ की सख्या उत्तरोत्तर बढ रही थी। इन कार्यकर्त्ताओ को अपना काम पवित्रता, सेवा-भाव और अधिक नेकनीयती के साथ करने मे सहायता देने के लिए गाधीजी ने ८ मई १९३३ को आत्म-शुद्धि के निमित्त २१ दिन का उपवास आरम्भ किया। उन्होने कहा कि यह अपनी और अपने साथियो की शुद्धि के लिए, जिससे वे हरिजन-कार्य मे अधिक सतर्कता और सावधानी के साथ काम कर सके, हृदय से की गई प्रार्थना है। इसलिए मै अपने भारतीय तथा ससार-भर के मित्रो से अनुरोध करता हू कि वे मेरे लिए मेरे साथ प्रार्थना करे कि मै इस अग्नि-परीक्षा मे सकुशल पूरा उतरू, और चाहे मै मरू या जियू, मैने जिस उद्देश्य से उपवास किया है, वह पूरा हो। मै अपने सनातनी भाइयो से अनुरोध करता हू कि वे प्रार्थना करे कि इस उपवास का परिणाम मेरे लिए चाहे जो कुछ हो, कम-से-कम वह सुनहरा ढकना, जिसने सत्य को ढक रक्खा है, हट जाय। एक पत्र-प्रतिनिधि से उन्होने कहा कि किसी धार्मिक आन्दोलन की सफलता उसके आयोजको की बौद्धिक या भौतिक शक्तियो पर निर्भर नही करती, बल्कि आत्मिक-शक्ति पर निर्भर करती है, और उपवास इस शक्ति की वृद्धि करने का सबसे अधिक जाना-पूछा उपाय है।

उसी दिन सरकार ने एक विज्ञप्ति निकाली, जिसमे कहा गया कि उपवास जिस उद्देश्य से किया गया है उसको सामने रखकर और उसके द्वारा प्रकट होने वाली मनोवृत्ति को ध्यान मे रखते हुए, भारत-सरकार ने निश्चय किया है कि वह (गाधीजी) रिहा कर दिये जाय। तदनुसार गाधीजी ८ मई को छोड दिए गये। रिहा होते ही गाधीजी ने एक वक्तव्य दिया, जिसके द्वारा उन्होने छ सप्ताह के लिए सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित रखने की सिफारिश की।

अपने वक्तव्य मे उन्होने कहा कि मै इस रिहाई से प्रसन्न नही हूं, और जैसा कि कल मुझसे सरदार वल्लभभाई ने कहा और ठीक ही कहा, मै इस रिहाई से लाभ उठाकर सत्याग्रह-आन्दोलन का सचालन अथवा पथ-प्रदर्शन कैसे कर सकता हूं? पर साथ ही, रिहाई होने पर अब मै अपनी थोडी-बहुत शक्ति सत्याग्रह-आन्दोलन का अध्ययन करने मे लगाने को बाध्य हू। इसमे सन्देह नही कि इस समय मै केवल इतना ही कह सकता हू कि सत्याग्रह के सम्बन्ध मे मेरे विचारो मे किसी प्रकार का अन्तर नही पडा है। असख्य सत्याग्रहियो की वीरता और आत्मत्याग के लिए मेरे पास साधुवाद के सिवा और कुछ नही है। इतना कहने के बाद मै यह कहे बिना भी नही रह सकता कि यदि आन्दोलन को जारी रखना है, तो जो लोग इस आन्दोलन का सचालन देश के विभिन्न स्थानो मे कर रहे है उनसे मेरा कहना है कि लुका-छिपा का न छोड़ दो। यदि इससे एक सत्याग्रही का मिलना कठिन हो जाय तो मुझे परवाह नही है। यदि सरकार देश में वास्तविक शान्ति चाहती है और समझती है कि वास्तविक शान्ति मौजूद नही है, यदि वह समझती है कि आर्डिनेन्स का शासन सभ्य-शासन नही है तो उसे इस आन्दोलन-बन्दी से लाभ उठाकर सारे सत्याग्रहियो को बिना किसी शर्त के छोड देना चाहिए। अन्त मे गाधीजी ने कहा कि मै शान्ति चाहता हू और सरकार को बता देना चाहता हू कि मै इस रिहाई का दुरुपयोग न करूगा और यदि मै इस अग्नि-परीक्षा मे से निकल आया और मुझे उस समय भी राजनैतिक वातावरण ऐसा ही अन्धकारमय दिखाई पडा तो मै सविनय-अवज्ञा को बढाने की लुक-छिपकर या खुल्लम-खुल्ला कोई भी कार्रवाई किये बिना ही सरकार से कहूगा कि मुझे अपने साथियो के पास, जिन्हे मै इस समय त्याग-सा आया हू, यरवदा पहुचा दिया जाय।

सत्याग्रह स्थगित

गाधीजी की घोषणा के बाद ही कांग्रेस के कार्यवाहक-अध्यक्ष ने भी अपनी घोषणा प्रकाशित करके सत्याग्रह-आन्दोलन छ सप्ताह के लिए स्थगित कर दिया। सरकार ने भी उत्तर प्रकाशित कराने मे विलम्ब से काम नही लिया।

९ मई को एक सरकारी विज्ञप्ति मे कहा गया कि केवल सत्याग्रह स्थगित

करने से वे शर्ते पूरी नही होती जो कैदियो की रिहाई के लिए रखी गई है। सरकार काग्रेस से इस मामले मे सौदा करने को तैयार नही है। इधर शिमला से यह नकारात्मक उत्तर आया, उधर वियेना से एक वक्तव्य आया जिसपर श्री विट्ठलभाई पटेल और श्री सुभाष बसु के हस्ताक्षर थे। उसमे कहा गया कि सत्याग्रह बद करने की गाधीजी की ताजा कार्रवाई असफलता की स्वीकारोक्ति है।

वक्तव्य मे यह भी कहा गया कि हमारी यह स्पष्ट सम्मति है कि गाधीजी राजनैतिक नेता की हैसियत से असफल रहे। इसलिए अब समय आ गया है कि हम नये सिद्धातो के ऊपर नये उपाय को लेकर काग्रेस की कायापलट करे। हमे इसके लिए एक नेता की आवश्यकता है, क्योकि गाधीजी से यह आशा करना अनुचित है कि वे ऐसे कार्य-क्रम को हाथ मे लेगे जो उनके जीवन-भर के सिद्धान्तो के साथ मेल न खाता हो। यदि काग्रेस मे स्वय ही इस प्रकार का आमूल परिवर्तन हो सके तो अच्छा ही है, नही तो काग्रेस के भीतर ही उग्र मतवाले लोगो की एक नई पार्टी बनानी पडेगी।

यह पहला ही अवसर न था जब गाधीजी को इन दोनो संभ्रान्त व्यक्तियो की विरुद्ध आलोचना का शिकार बनना पडा हो। गाधीजी जिस प्रकार अपना कष्ट सन्तोष, आस्था और धैर्य के साथ सह रहे थे, उसी प्रकार उन्होने ससार की आलोचना भी सह ली। उनकी प्रतिज्ञा पूरी हुई और २९ मई १९३३ को उन्होने अपने उपवास का अन्त किया। इस बीच काग्रेसवादियो मे यह तय हुआ कि गाधीजी की रिहाई से जो अवसर मिला है उसका उपयोग करके देश की अवस्था पर आपस मे चर्चा की जाय। सोचा गया कि इस प्रकार की बैठक तभी की जाय जब गाधीजी उसमे भाग लेने योग्य हो। इसलिए सत्याग्रह-बन्दी की अवधि को कार्यवाहक सभापति ने छ सप्ताह के लिए और बढा दिया।

पूना-परिषद्

१२ जुलाई १९३३ को देश की राजनैतिक अवस्था पर विचार करने के लिए पूना मे काग्रेसवादियो की अनियमित बैठक हुई। श्री अणे ने भूमिका-स्वरूप भाषण के साथ इस परिषद् का श्रीगणेश किया। गाधीजी ने राजनैतिक अवस्था के सम्बन्ध मे अपने विचार परिषद् के सम्मुख सक्षेप मे रख दिये। इसपर आम चर्चा आरम्भ हुई और अन्त मे परिषद् दूसरे दिन के लिए स्थगित कर दी गई। दूसरे दिन की कार्रवाई का आरम्भ गाधीजी ने एक लम्बे-चौडे वक्तव्य-द्वारा किया। इसके बाद परिषद् ने सत्याग्रह को बिना किसी शर्त के वापस लेने के प्रस्ताव को रद कर दिया, पर साथ ही व्यक्तिगत-सत्याग्रह के प्रस्ताव को अस्वीकार किया। अन्त मे परिषद् ने गाधीजी को सरकार से समझौता करने के लिए वाइसराय से मिलने का अधिकार दिया। इस निश्चय के अनुसार गाधीजी ने वाइसराय को

तार देकर शान्ति की सम्भावना को खोज निकालने के उद्देश्य से उनसे मिलने की अनुमति चाही। पर वाइसराय ने उस समय तक मुलाकात करने से इन्कार कर दिया जबतक काग्रेस सत्याग्रह-आन्दोलन वापस न ले ले। गाधीजी ने उत्तर दिया कि यदि उन्हे मुलाकात करने की इजाजत मिले तो वह यह दिखा देगे कि कुल मिलाकर कार्रवाई सम्मानप्रद समझौता करने के पक्ष मे हुई है। पर गाधीजी की शाति-स्थापना की चेष्टा का कोई उत्तर न मिला और राष्ट्र को अपना सम्मान अक्षुण्ण रखने के लिए युद्ध जारी करने को बाध्य होना पडा। पर सामूहिक सत्याग्रह वन्द कर दिया गया और जो लोग तैयार थे उन्हे व्यक्तिगत सत्याग्रह करने की सलाह दी गई। कार्यवाहक-सभापति के आज्ञानुसार सारी काग्रेस-संस्थाये और युद्ध-समितिया उठा दी गई।

व्यक्तिगत-सत्याग्रह

गाधीजी ने व्यक्तिगत-सत्याग्रह का आरम्भ अपने पास की मूल्यवान् से मूल्यवान वस्तु के परित्याग से किया। इस प्रकार उन्होने उस कष्ट मे भाग लेने की चेष्टा की जिसे आन्दोलन के दौरान मे हजारो ग्रामीणो ने सहा था। उन्होने सावरमती-आश्रम तोड दिया और आश्रम के निवासियो को और सारे काम छोडकर युद्ध मे भाग लेने के लिए आमत्रित किया। उन्होने सारा आश्रम खाली कर दिया और उसकी जगम संपत्ति को कतिपय सस्थाओ को सार्वजनिक उपयोग के लिए दे दिया। वह किसी दूसरे से लगान आदि न दिलाना चाहते थे, इसलिए वह जमीन, इमारत और खेती सरकार को देने को तैयार हो गये। सरकार की ओर से केवल उस पत्र की पहुंच मे एक पक्ति भेजी गई।

सावरमती-आश्रम का दान

जव सरकार ने गाधीजी का दान स्वीकार नही किया तव उन्होने आश्रम को हरिजन-आदोलन को अर्पण कर दिया। इस सम्वन्ध मे गांधीजी का वह वक्तव्य याद आता है जो उन्होने १९३० मे दण्डी-यात्रा करने के अवसर पर दिया था। उन्होने प्रतिज्ञा की थी कि जवतक स्वराज्य न मिल जायगा, वह आश्रम मे वापस न आयेगे। उन्होने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया। इस प्रकार आश्रम को हरिजन-संघ को देकर उन्होने पार्थिव-जगत से वांध रखने वाली इस अन्तिम वस्तु का, जिसके प्रति सम्भवत. उनके हृदय में मोह वना रहता था, अंत कर दिया।

गांधीजी की गिरफ्तारी

१ अगस्त १९३३ को गांधीजी रास नामक गाव की यात्रा करने वाले थे। पर एक दिन पहले ही आधी रात के समय गाधीजी को उनके ३४ आश्रम-वासियों

के साथ गिरफ्तार कर लिया गया। गाधीजी ४ अगस्त की सुबह को छोड दिये गये और उन्हे यरवडा गाव की सीमा छोडकर पूना जाकर रहने का नोटिस दिया गया। इस आज्ञा की निश्चय ही अवहेलना की गई, और रिहाई के आधे घण्टे के भीतर गाधीजी फिर गिरफ्तार कर लिये गये। उन्हे एक वर्ष की सजा दी गई।

व्यक्तिगत-सत्याग्रह की सफलता

उनकी गिरफ्तारी और सजा के बाद ही व्यक्तिगत-सत्याग्रह सारे प्रान्तो मे आरम्भ हो गया और पहले ही हफ्ते मे सैकडो कार्यकर्त्ता गिरफ्तार हो गये। काग्रेस के कार्यवाहक-अध्यक्ष श्री अणे अकोला से यात्रा करते समय अपने १३ साथियो के साथ १४ अगस्त को गिरफ्तार कर लिये गये। इसके बाद उनके उत्तराधिकारी सरदार शार्दूलसिंह कवीश्वर की बारी आई। परन्तु उन्होने गिरफ्तारी के पहले आज्ञा जारी की कि कार्यवाहक-अध्यक्ष का पद और डिक्टेटरो की नियुक्ति का सिलसिला तोड दिया जाय, जिससे युद्ध सचमुच व्यक्तिगत-सत्याग्रह का रूप धारण करले। गाधीजी ने जो मार्ग दिखाया था उस पर १९३३ के अगस्त से १९३४ के मार्च तक देशभर मे काग्रेस-कार्यकर्ता लगातार चलते रहे और सत्याग्रहियो के अटूट ताते ने युद्ध को जारी रखा।

गांधीजी की रिहाई

सरकार ने जेल में गाधीजी को उन सुविधाओ से वञ्चित कर दिया जो मई मे उनकी रिहाई से पहले उन्हे दी गई थी। इसलिए अब दुबारा गिरफ्तारी के थोड़े दिनो बाद ही गाधीजी को फिर अनशन आरम्भ करना पडा। सरकार अडी रही। गाधीजी की अवस्था बडी शीघ्रता के साथ शोचनीय होनेलगी। अन्त मे उन्हे २० अगस्त को, अर्थात् अनशन के पाचवे दिन, पूना के सैसून-अस्पताल मे कैदी की हैसियत से पहुचाया गया। पर २३ अगस्त तक सरकार को यह शक हो गया कि उनके प्राण सकट मे हैं। इसलिए उस दिन उन्हे बिना किसी शर्त के छोड दिया गया। जेल से छूटने पर उन्होने निश्चय किया कि उन्हें अपने-आप को रिहा न समझना चाहिए और अपनी सजा की अवधि अर्थात् ३ अगस्त १९३४ तक, सयम से काम लेना चाहिए। वह स्वय तो सत्याग्रह न करेंगे, पर जो लोग उनसे सलाह मागेंगे उन्हे अवश्य ठीक मार्ग दिखायेंगे और इस अवधि के अधिकाश भाग को वह हरिजन-आन्दोलन की उन्नति मे लगायेंगे।

हरिजन-आन्दोलन

गाधीजी ने अपने निश्चय के अनुसार हरिजन-आन्दोलन करने के लिए १९३३ के नवम्बर से देश में दौरा शुरू किया। उन्होने दस महीने के भीतर भारत के

हरेक प्रान्त का दौरा किया। इस दौरे से बहुत प्रचार-कार्य हुआ। उन्होने लगभग आठ लाख रुपया एकत्र किया। साथ ही दो शोचनीय दुर्घटनाये भी हुई। २५ जून १९३४ को गाधीजी बाल-बाल बच गये। वह पूना म्युनिसिपैलिटी का मान-पत्र ग्रहण करने वाले थे, कि इस अवसर पर एक व्यक्ति ने उन पर बम फेका। वह उस मोटर मे नही थे जिस पर बम फेका गया था, फिर भी उसके बम ने सात निर्दोष व्यक्तियो को घायल किया। दूसरी घटना १४ दिन बाद ही अजमेर मे हुई। यहा किसी तेज मिजाज सुधारक ने आपे से बाहर होकर बनारस के पण्डित लालनाथ का, जो हरिजन-आन्दोलन के कट्टर विरोधी थे, सिर फोड दिया। इस दूसरी घटना को लेकर गाधीजी ने ७ दिन का उपवास किया। सार्वजनिक मामलो में एक-दूसरे से मत-भेद रखनेवालो ने जिस असहिष्णुता का परिचय दिया था, यह प्रायश्चित्त उसी के विरुद्ध किया गया था।

गाधीजी ने हरिजनोत्थान-कार्य के सम्बन्ध मे सारे भारत का दौरा करने का निश्चय किया था, पर दिसम्बर का महीना उनके लिए एक कसौटी ही सिद्ध हुआ। श्री केलप्पन ने गुरुवयूर-मन्दिर के ट्रस्टियो को तीन महीने का नोटिस दिया था और अब १ जनवरी १९३४ को अन्तिम निश्चय करना जरूरी था। इस निश्चय का अर्थ केलप्पन और गाधीजी दोनो का आमरण उपवास भी हो सकता था। इसलिए यह तय किया गया कि गुरुवयूर-मन्दिर के उपासको की राय ली जाय। इस प्रयोग का जो परिणाम हुआ वह शिक्षाप्रद भी था और सफल भी। इसी बीच डा० सुब्बारायन ने मद्रास-प्रान्त के मन्दिरो मे अछूतो के प्रवेश के सम्बन्ध मे बिल भी पेश कर दिया। बिल बहुमत से पास हो गया।

बिहार का भूकंप

१६ जनवरी को सारा भारत हकबका कर रह गया। जब सुबह के समाचार पत्रो ने गत तीसरे पहर के बिहार के भूकम्प की अभूतपूर्व विपत्ति के समाचार घर-घर पहुचाये तब सब लडखडा कर रह गये। कुछ ही मिनटो के भीतर प्रान्त की शक्ल ऐसी बदल गई कि उसका पहचानना तक असम्भव हो गया। हजारो इमारते धूल मे मिल गईं और पृथ्वी के गर्भ मे समा गईं। पलक मारते हजारो परिवार अनाथ और हजारो स्त्रिया विधवा हो गई और उनके निर्दोष बच्चे गिरते हुए मकानो के बीच दब कर मर गये। भूकम्प का प्रभाव ३०,००० वर्ग मील की लगभग डेढ करोड जनता पर पड़ा। २०,००० मनुष्यो के प्राण गये। लगभग दस लाख घर नष्ट हो गये, या टूट-फूट गये। ६५,००० कुएं और तालाब या तो निकम्मे हो गये या टूट-फूट गये। लगभग १० लाख बीघा खेती पर रेत छा गया और वह निकम्मी हो गई। इस भयंकर सकट का सामना करने के लिए बिहार और भारत दोनों पीछे न रहे। चन्दे द्वारा लगभग एक करोड़ रुपया एकत्र हुआ।

बिहार केन्द्रीय रिलीफ फण्ड मे जून के अन्त तक २७ लाख से अधिक एकत्र हो गया। अधिकाश नेता और कार्यकर्ता भारत के भिन्न-भिन्न भागो से पीडितो के कष्ट-निवारण का कार्य करने को दौड पडे।

बिहार के विध्वस्त-प्रदेश मे बाहर से आये नेताओ मे पण्डित जवाहरलाल भी थे। उनका आगमन सेवा-कार्य का प्रत्यक्ष उदाहरण था। जब समाचार मिले कि गिरे हुए घरो के भीतर जीवित मनुष्य दबे पडे हैं, तब उन्होने स्वयसेवक का बिल्ला लगाया, कधे पर फावडा रखा ओर उस स्थान को रवाना हो गये। उनके साथ-साथ स्वयसेवक हाथो मे फावडे लिये मौजूद थे। उन्होने और अन्य कार्यकर्त्ताओ ने फावडे चलाये और मिट्टी की टोकरिया अपने सिरो पर ढोयी। गाधीजी ने एक मास तक उनका पथ-प्रदर्शन किया और उन्हे परामर्श दिया। जबतक वह बिहार मे रहे, उन्होने पीडित नगरो और गावो का दौरा किया और जनता की दयनीय दशा को स्वय देखा। उन्होने अपने दक्ष कार्यकर्त्ताओ को भी घटनास्थल पर भेजा और उनकी सेवाये बिहार को अर्पण कर दीं।

जवाहरलाल की गिरफ्तारी

उत्तर प्रदेश की सरकार ने जवाहरलाल को ३० अगस्त को छोडा था। इसके कुछ म.स बाद ही वह बिहार गये। बिहार का दौरा समाप्त करने पर वह एक बार फिर सरकार के कैदी बने। जब वह कलकत्ता गये थे, तब उन्होने बगाल की अवस्था और मिदनापुर जिले की हलचल के सम्बन्ध मे दो भाषण दिये थे। उन्होने अपने स्पष्ट भाषणो मे, आतकवाद की मनोवृत्ति और उसका सामना करने के लिए अधिकारियो ने जो तरीका अपनाया था उसकी चर्चा की थी। बगाल की नौकरशाही को यह सहन न हुआ। जबतक वह बिहार मे मानवता के मिशन को पूरा करने मे लगे रहे तबतक बगाल-सरकार के औचित्य ने उसे उनपर हाथ डालने से रोक रक्खा, पर अभी वह अपने घर भी नही पहुँचे थे कि उनके लिए जेल का दरवाजा फिर खोल दिया गया। उनपर कलकत्ते के दो भाषणो के लिए मुकदमा चलाया गया और उन्हे दो वर्ष सादी कैद की सजा दी गई।

कौंसिल-प्रवेश का प्रोग्राम

जुलाई १९३३ की पूना-परिषद् के बाद से ऐसे काग्रेसवादियो की सख्या मे वृद्धि हो रही थी, जिनका यह विचार था कि आर्डिनेन्स-शासन के कारण देश मे जो अवस्था उत्पन्न हो गई है उसको ध्यान मे रखकर इस 'निश्चेष्टा' से उद्धार पाने के लिए कौसिल-प्रवेश का कार्यक्रम अपनाना आवश्यक है। इस विचार ने सगठित रूप धारण किया और इस प्रकार के विचार रखनेवाले काग्रेसी-नेताओ की एक परिषद् दिल्ली मे ३१ मार्च १९३३ को डॉ० अन्सारी की अध्यक्षता मे हुई।

इसमे निश्चय किया गया कि जो स्वराज्य-पार्टी भंग कर दी गई है उसे दुबारा जीवित किया जाय और मतदाताओ को अच्छी तरह सगठित करने तथा गाधीजी के जुलाई १९३३ वाले पूना-वक्तव्य के अनुसार काग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम को पूरा करने का अवसर दिया जाय। इस परिषद् ने यह विचार भी प्रकट किया कि पार्टी के लिए बडी कौसिल के आगामी निर्वाचनो मे भाग लेना आवश्यक है। इस उद्देश्य-सिद्धि के लिए परिषद् ने निश्चय किया कि निर्वाचन दो लक्ष्यो को लेकर लड़े जायं : (१) सारे दमनकारी कानूनों को रद कराना और (२) ह्वाइट-पेपर की योजनाओ को रद कराकर उनका स्थान उन राष्ट्रीय मागो को दिलाना जिनका जिक्र गाधीजी ने गोलमेज-परिषद् मे किया था। परिषद् ने यह निश्चय करने के बाद गाधीजी के पास डॉ० अन्सारी, श्री भूलाभाई देसाई और डॉ० विधानचन्द्र राय का एक शिष्टमण्डल भेजा कि वह इन प्रस्तावो के विषय मे उनसे बातचीत करे और उन्हे कार्य-रूप मे परिणत करने से पहले उनके विचार जान ले।

इस अवसर पर गाधीजी बिहार के भूकम्प-पीड़ित स्थानो का दौरा कर रहे थे और सयोगवश अपना मौन-दिवस (२ अप्रैल, १९३४) सहरसा नामक एक एकान्त स्थान पर बिता रहे थे। यही उन्होने दिल्ली का हाल-चाल जाने बिना ही एक ववतव्य तैयार किया, जिसे वे प्रेस मे देना ही चाहते थे कि उनके पास डॉ० अन्सारी का सन्देश आया कि कल दिल्ली-परिषद् ने एक शिष्ट-मण्डल नियुक्त किया है जो आपसे मिलने पटना आ रहा है। गाधीजी ने उस शिष्ट-मण्डल से बातचीत होने तक वह वक्तव्य रोक रखा और अन्त मे अच्छी तरह बात-चीत होने के बाद ७ तारीख को उसे प्रकाशित किया। डॉ० अन्सारी ने भी इसी अवसर पर एक वक्तव्य प्रकाशित करके यह स्पष्ट कर दिया कि गाधीजी ने अपनी हार्दिक और स्वत दी हुई सहायता द्वारा काग्रेस मे विरोध और भेदभाव की आशका को दूर कर दिया है। अब कौसिलो के भीतर और बाहर रहकर दुहरा युद्ध किया जाय जिससे शिक्षित समाज और जनता की राजनैतिक निष्क्रियता और अन्ततः कुपित असतोष दूर हो जाय।

महासमिति की बैठक

१९३४ की २ और ३ मई को राची मे एक बैठक स्वराज्य-पार्टी को शक्तिशाली और सजीव संस्था का रूप देने के मुख्य उद्देश्य से की गई। ३ मई १९३४ को राची-परिषद् ने स्वराज्य-पार्टी का जो कार्य-क्रम निश्चित किया उसमे उन सारे कानूनो और विशेष विधानो को, जो राष्ट्र की समुन्नति और पूर्ण-स्वराज्य-प्राप्ति के मार्ग मे बाधक हों, रद कराने की बात रखी गई। इस कार्य-क्रम के अनुसार सारे राजनैतिक कैदियो की रिहाई कराना, उन सारे कानूनो और प्रस्तावो का मुकाबला करना जो देश का शोषण करने वाले हो, ग्राम-सघटन करना, मजदूर

सम्बन्धी, मुद्रा-व्यवस्था, विनिमय, कृषि आदि के मामलो मे सुधार करवाना और अन्त मे काग्रेस का रचनात्मक कार्यक्रम पूरा करना कर्त्तव्य माना गया। इन सब विषयो पर १८ और १९ मई १९३४ को पटना मे महासमिति की बैठक मे चर्चा हुई। यहा यह बात भी कह देना जरूरी है कि काग्रेस की महासमिति ही एक मात्र ऐसी सस्था थी जो सरकार-द्वारा गैरकानूनी करार नही दी गई थी। गाधीजी की सिफारिश के अनुसार सत्याग्रह बन्द कर दिया गया और स्वराज्य-पार्टी के सम्बन्ध मे एक प्रस्ताव पास किया गया जिसमे कहा गया कि महासमिति पण्डित मदनमोहन मालवीय और डॉ० अन्सारी को एक बोर्ड बनाने के लिए नियुक्त करती है। इस बोर्ड का नाम होगा—'पार्लमेण्टरी-बोर्ड' और इसके प्रधान डॉ० अन्सारी होगे। इसमे २५ से अधिक काग्रेसवादी न रहेगे। यह बोर्ड काग्रेस की ओर से कौंसिलो के निर्वाचन के लिए उम्मीदवार खडे करेगा और इसे अपना काम पूरा करने, चन्दा एकत्र करने, उसे रखने और खर्च करने का अधिकार रहेगा। यह बोर्ड महासमिति के शासन के अधीन रहेगा। यह अपना विधान तैयार करेगा जो कार्य-समिति के सामने स्वीकृति के लिए रखा जायगा। बोर्ड केवल उन्ही उम्मीदवारो को चुनेगा जो कौसिलो मे काग्रेस की नीति का, जिसे समय-समय पर निश्चित किया जायगा, पालन करने की प्रतिज्ञा लेगे।

कार्य-समिति के निश्चय

महासमिति की बैठक के आगे-पीछे काग्रेस की कार्य-समिति की बैठक भी १८, १९ और २० मई को पटना मे हुई। उसने सत्याग्रह की मौकूफी और कौसिल-प्रवेश के सम्बन्ध मे सिफारिशे की, जिन्हे महासमिति ने स्वीकार कर लिया। कार्यसमिति ने, महासमिति के सत्याग्रह-बन्दी के निश्चय के अनुसार, सारे काग्रेस-वादियो को उसका पालन करने का आदेश दिया। देश-भर के काग्रेसवादियो ने इस निश्चय का पालन किया और २० मई १९३४ को सत्याग्रह बन्द कर दिया गया। सत्याग्रह-बन्दी के साथ ही कार्यवाहक-अध्यक्ष का पद स्वभावत ही उठा दिया गया। काग्रेस के अध्यक्ष सरदार पटेल इस समय जेल मे थे, इसलिए उनकी अनुपस्थिति मे सेठ जमनालाल बजाज कार्य-समिति के सभापति बनाये गये, और काग्रेस के नये अधिवेशन तक उन्हें काग्रेस के अध्यक्ष की हैसियत से सारा काम चलाने का अधिकार दिया गया।

पटना के निश्चय के बाद ही काग्रेस के कार्य का क्षेत्र बदल गया। सत्याग्रह आन्दोलन बन्द हुआ और कौसिल-प्रवेश का कार्यक्रम आरम्भ हुआ। अब केवल गाधीजी ही सत्याग्रह करने के लिए रह गये। गाधीजी ने उत्कल मे हरिजन-आन्दोलन के सम्बन्ध मे दौरा फिर जारी कर दिया। इसके बाद उत्तर प्रदेश की बारी आई। इसके बाद ही से देश-भर के काग्रेसवादियो ने काग्रेस-कमिटियो का पुनस्सगठन

आरम्भ कर दिया था। जून लगते-लगते प्रान्तो मे काग्रेस-कमिटियां १९३२ के पहले की भाति काम करने लगी। तदनुसार कार्य-समिति की बैठक १२–१३ जून को वर्धा मे और १७–१८ जून को बम्बई में हुई। इन बैठको मे नव-सगठित काग्रेस-कमिटियो के लिए एक रचानात्मक कार्यक्रम तैयार किया गया। हाथ से कातकर खद्दर तैयार करना और खद्दर तैयार करनेवाले इलाके मे उसका प्रचार करना, अस्पृश्यता-निवारण, साम्प्रदायिक एकता, मादक-द्रव्य-सेवन के त्याग और नशीली वस्तुओ से दूर रहने का प्रचार करना, राष्ट्रीय ढग की शिक्षा की वृद्धि, छोटे-छोटे उपयोगी उद्योग-धन्धो की वृद्धि, ग्राम्य-जीवन का आर्थिक, शारीरिक, सामाजिक और आरोग्य सम्बन्धी दृष्टि से पुनस्सङ्गठन करना, वयस्क गाववालो मे उपयोगी ज्ञान का प्रसार करना, और मजदूरो का संगठन आदि इस कार्यक्रम मे सम्मिलित किए गये। कार्य-समिति ने सरकार का ध्यान उसकी उस विज्ञप्ति की असंगति की ओर दिलाया, जिसके अनुसार काग्रेस-संस्थाओ पर से तो प्रतिबन्ध उठा लिया गया था, परन्तु खुदाई-खिदमतगारो पर, जो १९३१ से काग्रेस के ही अंग थे, उसी प्रकार प्रतिबन्ध लगा हुआ था। सरकार ने असंगति से तो नही, पर खुदाई खिदमतगारों और अफगान जिरगे के विरुद्ध जारी की गई निषेधाज्ञा को वापस लेने से इन्कार कर दिया।

कार्य-समिति की वम्बई वाली बैठक के सामने एक और भी महत्वपूर्ण प्रश्न आया। वह यह था कि ह्वाइट-पेपर की योजना और साम्प्रदायिक निर्णय के सम्बन्ध मे काग्रेस की क्या नीति होनी चाहिए? काग्रेस-पार्लमेण्टरी-बोर्ड ने कार्य-समिति से इस मामले मे अपनी नीति स्पष्ट करने का अनुरोध किया था, इसलिए उसने इस विषय पर एक प्रस्ताव पास किया।

सरदार पटेल की रिहाई

सत्याग्रह की बन्दी के कारण सरकार ने सत्याग्रहियो को धीरे-धीरे छोड़ना आरम्भ कर दिया था, पर सरदार वल्लभभाई पटेल, पण्डित जवाहरलाल और खान अब्दुलगफ्फार खा को रिहा न करने का उसने निश्चय कर लिया था। इनमे से दो को, सरदार पटेल और खान अब्दुलगफ्फारखा को, उसने जेल मे अनिश्चित समय के लिए बन्द कर रक्खा था। पर ऐसी परिस्थिति आ पड़ी कि सरकार को विवश होना पड़ा। सरदार वल्लभभाई पटेल को नाक का पुराना रोग था, जो इधर वहुत वढ गया और जुलाई लगते-लगते रोग ने वड़ी भयंकर अवस्था धारण कर ली। सरकार-द्वारा नियुक्त किये गये मेडिकल-बोर्ड ने वताया कि आपरेशन होना जरूरी है, पर आपरेशन तभी अच्छी तरह हो सकेगा जव वह स्वतन्त्र होगे। फलतः सरकार ने उन्हे १४ जुलाई १९३४ को छोड़ दिया।

मालवीयजी और अणे के त्याग-पत्र

२७ से ३० जुलाई तक बनारस मे कार्य-समिति की बैठक हुई। इसमे प० मदनमोहन मालवीय और श्री अणे के साथ बातचीत फिर आरम्भ हुई। कार्य-समिति मालवीयजी और श्री अणे का सहयोग प्राप्त करने के लिए साम्प्रदायिक निर्णय की मौलिक नीति को नही छोड सकती थी। इस कारण पण्डित मदनमोहन मालवीय ने काग्रेस पार्लमेण्टरी-बोर्ड के सभापति-पद से इस्तीफा दे दिया और श्री अणे ने पार्लमेण्टरी बोर्ड और कार्य-समिति की सदस्यता को त्याग दिया। बगाल को भी शिकायत थी कि हरिजनों को अतिरिक्त जगहे क्यो दी गई? इस प्रकार बगाल का रुख कार्य-समिति के साम्प्रदायिक निर्णय वाले मामले के ही विरुद्ध नही था, बल्कि पूना पैक्ट के भी विरुद्ध था।

अब्दुल गफ़्फार खां की रिहाई

सत्याग्रह-बन्दी के बाद भी सरकार ने दमन-नीति जारी रखी थी। खान अब्दुलगफ्फार खा को जेल में बन्द रखने से लोक-मत बहुत रुष्ट हो गया था। सीमान्त-प्रदेश उन प्रान्तो मे से था जिन्होने १९२० के और १९३२-३४ के युद्ध मे पूरा मोर्चा लिया था। युद्धप्रिय पठानो के अहिंसा-व्रत की बडी परीक्षा हुई, पर उन्होने सन्तोषपूर्वक कष्ट सहे। इसलिए देश मे यहा से वहा तक लोगो का दिल यही कहता था कि उस प्रान्त के नेता को जेल मे बन्द रखना अन्यायपूर्ण है। सीमान्त-प्रदेश के प्रश्न पर गाधीजी भी चिन्तित थे। परन्तु जब अगस्त के अन्तिम सप्ताह मे अचानक खान अब्दुलगफ्फारखा और उनके भाई डॉ० खानसाहब को छोड दिया गया तब जनता को बडी तसल्ली हुई। पर मुक्त होने पर भी उन्हे अपने प्रात और अपने घर जाने की इजाजत नही थी। यद्यपि सीमान्त-प्रदेश ने भी सत्याग्रह-बन्दी के आदेश का यथावत पालन किया था।

कार्य-समिति की बैठक

कार्य-समिति की बैठक २५ सितम्बर को वर्धा मे हुई। इस अवसर पर लक्ष्य और लक्ष्य-प्राप्ति के साधनो के सम्बन्ध मे काग्रेस की नीति को दोहराया गया। 'आगामी निर्वाचनो' के सम्बन्ध मे कार्य-समिति ने सारी प्रान्तीय और मातहत काग्रेस-सस्थाओ को आज्ञा दी कि वे निर्वाचन-सम्बन्धी कार्य मे पार्लमेण्टरी-बोर्ड को सहायता देना अपना कर्तव्य समझे। कार्य-समिति ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि जो दल या व्यक्ति काग्रेस की नीति के विरुद्ध हो उन्हे सहायता न दी जाय। एक दूसरे प्रस्ताव मे जजीबार के भारतीयो का और उन्हे उनके न्यायपूर्ण भूस्वत्व से वचित किये जाने की कारंवाई-सम्बन्धी कष्टो का जिक्र किया गया। श्री अणे के महासमिति की बैठक बुलाने के प्रस्ताव पर भी विचार हुआ। कार्य-समिति ने

महासमिति की बैठक बुलाने के प्रश्न पर कई घण्टे तक विचार किया। अन्त मे वह इस नतीजे पर पहुची कि चूँकि कार्य-समिति को अपने निश्चय के औचित्य के सम्बन्ध मे कोई सन्देह नही है और चूकि महासमिति के नये चुनाव अभी हो रहे है, इसलिए कार्य-समिति महासमिति की बैठक बुलाने का जिम्मा नही ले सकती। बैठक मे यह भी कहा गया कि यदि महासमिति के कुछ सदस्यो को कार्य-समिति के प्रस्ताव के खिलाफ कोई शिकायत है तो महासमिति के ३० सदस्य महासमिति की बैठक करने की माग पेश कर सकते है। कार्य-समिति ने इस प्रश्न पर भी विचार किया कि चुनाव के उम्मीदवारो को कार्य-समिति के साम्प्रदायिक निर्णय-सम्बन्धी निश्चय का, अन्त करण के विरुद्ध होने के आधार पर पालन न करने के लिए मुक्त कर दिया जाय, पर वह इस नतीजे पर पहुची कि चूकि कार्य-समिति ने इस बन्धन-मुक्ति के सम्बन्ध मे कोई प्रस्ताव पास नही किया है, इसलिए बन्धन-मुक्ति स्वीकार न की जाय। मालवीयजी ने श्री अणे के द्वारा एक संदेश भेजा था, जिसके उत्तर मे गाधीजी ने यह तजबीज पेश की थी कि व्यर्थ के पारस्परिक तनाव और संवर्ष को वचाने के लिए यह अच्छा होगा कि प्रतिद्वन्द्वी उम्मीदवारो की सफलता की सम्भावना पर विचार करके उन उम्मीदवारो को हटा लिया जाय जिनके सफल होने की सम्भावना कम हो। इसपर कोई समझौता न हो सका। पर पार्लमेण्टरी-बोर्ड ने यह निश्चय किया कि जिन जगहो के लिए मालवीयजी और श्री अणे खडे हो उनके लिए उम्मीदवार खडे न किये जाय। बोर्ड ने यह भी निश्चय किया कि सिन्ध मे और कलकत्ता शहर मे उम्मीदवार खड़े न किये जाय।

गांधीजी और कांग्रेस

इन्ही दिनो काग्रेस के इतिहास मे एक और महत्त्वपूर्ण घटना हुई। यह चर्चा आमतौर से की जा रही थी कि गाधीजी काग्रेस त्याग देगे। यह कोरी किम्बदन्ती ही न थी, क्योकि उनके जुलाई के मध्यवाले ७ दिन के उपवास के दौरान मे जो मित्र उनसे मिलने गये थे, और इसके बाद बगाल तथा आध्र से जो लोग किसी-न-किसी कार्यवश उनके पास वर्धा पहुचे थे, उनसे वह इसकी चर्चा बराबर कर रहे थे। गाधीजी ने १७ सितम्बर १९३४ को वर्धा से नीचे लिखा वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमे उन्होने कहा कि यह अफवाह सच थी कि मै काग्रेस से अपना स्थूल सम्बन्ध विच्छेद करने की बात सोच रहा हू। वर्धा मे अभी हाल मे कार्य-समिति और पार्लमेण्टरी-बोर्ड की बैठको मे भाग लेने के लिए जो मित्र यहा आये थे उनसे मैने इस सम्बन्ध मे विचार करने का अनुरोध किया और उनकी इस बात से बाद मे सहमत हो गया कि अगर मुझे काग्रेस से अलग ही होना हो तो वह सम्बन्ध-विच्छेद काग्रेस के अधिवेशन के बाद ही होना अच्छा होगा। अन्तिम निश्चय को स्थगित कर देने की बात इस दृष्टि से पसन्द

आई कि इस बीच मुझे अपनी इस धारणा की जाच कर लेने का मौका मिल जायगा।

गाधीजी ने यह भी कहा कि मुझे ऐसा मालूम हो रहा है कि वहुत-से काग्रेस-वालो और मेरी विचार-दृष्टि के बीच एक बढता हुआ और गहरा अन्तर मौजूद है। वे यदि मेरे प्रति अनुपम भक्ति के वन्धन मे न पडे रहे तो प्रसन्नता के साथ उस दिशा की ओर जायगे जो मेरी दिशा के बिलकुल विपरीत है। कोई भी नेता उस वफादारी और भक्ति की आशा नही कर सकता जो मुझे बुद्धिशाली काग्रेसवादियो द्वारा प्राप्त हो चुकी है, वह भी ऐसी अवस्था मे जब उनमे से बहुतो ने मेरे द्वारा काग्रेस के सामने रखी गई नीति का स्पष्ट रूप से विरोध व्यक्त किया है। मेरे लिए उनकी भक्ति तथा श्रद्धा से अब और लाभ उठाना उन पर बेजा दबाव डालना है।

मत-भेदो का उल्लेख करते हुए गाधीजी ने कहा कि चर्खा और खादी को मैंने सबसे पहला स्थान दिया है। काग्रेस के बुद्धिजीवी लोगो द्वारा चर्खा कातना लुप्तप्राय हो गया है। साधारणत' उन लोगा का इसमे कोई विश्वास रही रह गया है। काग्रेस-विधान मे खादी के सम्बन्ध मे जो धारा है वह शुरू से ही निर्जीव रही है और काग्रेसवाले खुद मुझे यह चेतावनी देते रहे है कि खादी की धारा के सम्बन्ध मे जो पाखण्ड और टाल-मटोल चल रही है उसके लिए मै ही जिम्मेदार हू। मुझे यह बात मान लेनी चाहिए कि उन लोगो की इस दलील मे काफी सचाई है। फिर भी मेरा विश्वास बढता ही रहा है। चर्खा सच्चे अर्थ मे मानव-गौरव तथा समानता का शुद्ध चिह्न है। वह खेती का एक सहायक धन्धा है। वह राष्ट्र का दूसरा फेफडा है जिसे काम मे न लाने से हम नष्ट हो रहे है। काग्रेस-विधान मे से खादी की धारा को हटा देने का अर्थ यह है कि काग्रेस और देश के करोडो गरीबो के बीच की कडी टूट गई। इस गरीब जनता का प्रतिनिधित्व करने का प्रयत्न काग्रेस अपने जन्मकाल से करती आ रही है। यदि उक्त सम्बन्ध कायम रखने के लिए वह धारा बनी रहेगी तो उसका सख्ती से पालन कराना पडेगा।

पार्लमेण्टरी-बोर्ड के सम्बन्ध में गाधीजी ने कहा कि काग्रेस के नियत्रण मे एक पार्लमेण्टरी-पार्टी बनाना किसी भी कार्यक्रम का आवश्यक अग है। यहा भी हम लोगो के बीच गहरा मतभेद है। पटना की महासमिति की बैठक मे जिस जोर से मैंने इस कार्यक्रम को पेश किया था उसने हमारे बहुत-से अच्छे-अच्छे साथियो को व्यथित किया, और उसपर चलने मे वे हिचकिचाये। किसी हद तक अपने मत को दूसरे ऐसे व्यक्ति के मत के आगे जो बुद्धि या अनुभव में बडा समझा जाता है दबा देना एक संस्था की निर्विकार उन्नति के लिए हितकर और वाञ्छनीय है। किन्तु यह तो एक भयकर अत्याचार होगा, यदि अपना मत इस प्रकार बार-बार दबाना पड़े। बहुत-से मेरे मित्र मेरा विरोध करने के विषय मे हताश हो गये है।

मेरे जैसे जन्मना लोकतंत्रवादी के लिए इस भेद का खुल जाना लज्जा की बात है। मैंने गरीब-से-गरीब मनुष्य के साथ अपने को मिला देने और उससे अच्छी दशा मे न रहने की तीव्र अभिलाषा अपने हृदय मे रखी है, और सतह तक पहुचने के लिए ईमानदारी से प्रयत्न किया है। इन कारणो से अगर कोई लोकतत्रवादी होने का दावा कर सकता है, तो वह दावा मै करता हू।

गाधीजी ने यह भी कहा कि मैने समाजवादी-दल का स्वागत किया है, जिसमे मेरे बहुत से आदरणीय और आत्मत्यागी साथी मौजूद है। यह सब होते हुए भी उनका जो प्रामाणिक कार्यक्रम छपा है उससे मेरा मौलिक मतभेद है। किन्तु मै उनके साहित्य मे प्रतिपादित सिद्धान्तो का फैलना अपने नैतिक दबाव से नही रोकना चाहता। अस्पृश्यता के बारे मे भी मेरी दृष्टि अधिकाश नही तो बहुत-से काग्रेसजनो से कदाचित् भिन्न है। मेरे लिए तो यह एक गम्भीर धार्मिक और नैतिक प्रश्न है। बहुतो का विचार है कि इस प्रश्न को जिस तरह और जिस समय मैने हाथ मे लिया उससे सत्याग्रह-आन्दोलन की गति मे बाधा डालकर मैने भारी भूल की। पर मै अनुभव करता हू कि अगर मैने दूसरा मार्ग पकडा होता तो मै अपने-तईं सच्चा न रहा होता।

अहिंसा के सम्बन्ध मे गाधीजी ने लिखा कि १४ वर्ष के प्रयोग के बाद भी वह अबतक अधिकाश काग्रेसियो के लिए नीतिमात्र ही है, जबकि मेरे लिए वह एक मूल सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के २७ वर्ष के अध्ययन और व्यवहार के बाद भी मै यह दावा नही कर सकता कि मै उसके सम्बन्ध मे कुछ जानता हू। अनुसन्धान का क्षेत्र अवश्य ही परिमित है। मनुष्य के जीवन मे सत्याग्रह करने के अवसर निरन्तर नही आते रहते। माता, पिता, शिक्षक अथवा धार्मिक या लौकिक गुरुजनो की आज्ञा स्वेच्छा से पालन करने के बाद ही ऐसा अवसर आ सकता है। इसपर आश्चर्य न होना चाहिए कि एकमात्र विशेषज्ञ होने के कारण, चाहे मै कितना ही अपूर्ण होऊ, मै इस नतीजे पर पहुचा हू कि कुछ समय के लिए सत्याग्रह मुझ तक ही सीमित रहना चाहिए। सत्याग्रह-आन्दोलन स्थगित करने के बारे मे पटना से जो मैने वक्तव्य प्रकाशित किया था उसमे मैने लोगो का ध्यान सत्याग्रह की विफलता की ओर दिलाया था। अगर हममे पूर्ण अहिंसा का भाव होता तो वह स्वय प्रत्यक्ष हो जाता और सरकार से छिपा न रहता। निस्सन्देह सरकार के आर्डिनेन्स हमारे किसी कार्य अथवा हमारी किसी गलती के कारण नही बने थे। वे तो हमारी हिम्मत तोडने के लिए बनाये गये थे। पर यह कहना गलत है कि सत्याग्रही दोष से परे थे। मै इतना ही कहना चाहता हू कि हम मन, वचन और कर्म से विशुद्ध अहिंसक नही रहे है। इस प्रयोग के लिए, जिसके लिए जीवन अर्पित है, मुझे पूर्ण निस्संग और स्वतत्र रहने की आवश्यकता है।

स्वराज्य की परिभाषा के सबध मे गाधीजी ने कहा कि "पूर्ण-स्वराज्य की परिभाषा करना असम्भव नही तो बहुत कठिन अवश्य है। १६०८ से मै बराबर कहता आया हू कि साधन और साध्य समानार्थक शब्द है। इसलिए जहा साधन अनेक और परस्पर-विरोधी भी है वहा साध्य अवश्य भिन्न और साधन के प्रतिकूल होगा। साधनो पर सदा हमारा अधिकार और नियत्रण रहता है, पर साध्य पर कभी नही होता। यदि हम समान अर्थ तथा ध्वनि-वाले साधनो का उपयोग करते हो तो हमे साध्य के विश्लेषण मे माथापच्ची करने की जरूरत न होगी। पर बहुतेरे काग्रेसवादी इस स्पष्ट सत्य को स्वीकार नही करते। उनका विश्वास है कि साध्य शुद्ध हो तो साधन चाहे जैसे काम मे लाये जा सकते है। इन सब मतभेदो ने ही काग्रेस के वर्तमान कार्यक्रम को विफल बना दिया है। कारण, जो काग्रेस-सदस्य हृदय से उसमे विश्वास किये बिना मुह से उसकी हामी भरते है वे स्वभावत उसे कार्य मे परिणत नही कर पाते, और मेरे पास उस कार्यक्रम के सिवा दूसरा कोई कार्यक्रम है ही नही, जो इस समय देश के सामने है—अर्थात् अस्पृश्यता-निवारण, हिन्दू-मुस्लिम-एकता, सम्पूर्ण मद्य-निषेध, चर्खा और खादी तथा ग्राम-उद्योगो को पुनर्जीवित करने के रूप मे सौ फीसदी स्वदेशी का प्रचार और भारत के ७ लाख गावो का सगठन। यह कार्यक्रम प्रत्येक देशभक्त की देशभक्ति को तृप्त करने के लिए काफी होना चाहिए। काग्रेस देश की सबसे अधिक शक्ति-शालिनी और प्रतिनिधि सस्था है। उसका जीवन उच्चकोटि की अटूट सेवा और त्याग का इतिहास है। अपने जन्म-काल से ही उसने जितने तूफानो का सफलता के साथ सामना किया है उतना किसी और सस्था को नही करना पडा है। अत यदि ऐसी सस्था से मुझे अलग होना ही पडे तो यह नही हो सकता कि ऐसा करने मे मुझे दिल कचोटने का भारी कष्ट, विछोह की असहनीय पीडा न सहन करनी पडेगी। और मै तभी ऐसा करूगा जब मुझे निश्चय हो जायगा कि काग्रेस के अन्दर रहने की अपेक्षा उसके बाहर रहकर मै देश की अधिक सेवा कर सकूगा।

अन्त मे गाधीजी ने कहा कि मै चाहता हू कि मैने जिन विषयो की चर्चा की है उनको कार्य रूप मे परिणत कराने के लिए कुछ प्रस्ताव विषय-समिति मे पेश करके काग्रेस के भाव की परीक्षा करू। पहला सशोधन जो मै पेश करूगा वह यह होगा कि 'उचित और शान्तिमय' शब्दो के बदले 'सत्यतापूर्ण' और 'अहिंसात्मक' शब्द रखे जाय। अगर काग्रेसी वस्तुत हमारे ध्येय की प्राप्ति के लिए सचाई और अहिंसा की आवश्यकता समझते है तो उन्हे इन स्पष्ट विशेषणो को स्वीकार करने मे हिचक न होनी चाहिये। दूसरा सशोधन यह होगा कि काग्रेस की मताधिकार-योग्यता चार आने के बदले हर महीने कम-से-कम १५ नम्बर का अच्छा बटा हुआ २००० तार (एक तार=४ फुट) सूत हर महीने देने की

रखी जाय और वह सूत मतदाता खुद चर्खे या तकली पर कात कर दे। अगर किसी मेम्बर की गरीबी साबित हो तो उसको कातने के लिए काफी रुई दी जाय ताकि वह उतना सूत कातकर दे सके। तीसरा संशोधन जो मैं पेश करना चाहता हू वह यह होगा कि किसी ऐसे काग्रेसी को काग्रेस के निर्वाचन मे मत देने का अधिकार न होगा जिसका कि नाम ६ महीने तक बराबर काग्रेस रजिस्टर पर न रहा हो और जो पूरी तरह से आदतन खादी पहननेवाला न रहा हो। साथ ही मैं यह सशोधन भी चाहूंगा कि ६००० प्रतिनिधियो की सख्या घटा कर इतनी कर दी जाय जो १००० से अधिक न हो, और प्रति एक हजार वोटरो के पीछे एक प्रतिनिधि से अधिक न चुना जाय। इस प्रकार पूरे प्रतिनिधियो की सख्या का अर्थ यह हुआ कि पूरे १० लाख मतदाता हो। यह कोई ऐसी आकाक्षा नही है, जो पूरी न हो। ३५ करोड की जन-सख्या वाले देश के लिए यह अधिक नही है। इस सशोधन के द्वारा काग्रेस को जो वास्तविक लाभ होगा, उससे सख्या-बल की क्षतिपूर्ति अच्छी तरह हो जायगी। अधिवेशन के ऊपरी ठाट-बाट की रक्षा दर्शको के लिए उचित प्रबन्ध करके की जायगी, और स्वागत-समिति को अत्यधिक सख्यक प्रतिनिधियो के रहने आदि की व्यवस्था करने मे जिस व्यर्थ की परेशानी का सामना करना पडता है उससे छुटकारा मिल जायगा।

मुझे आशका है कि जिन सशोधनो का मैंने उल्लेख किया है वे बम्बई-काग्रेस मे शामिल होनेवाले काग्रेसजनो मे से अधिकतर को शायद ही पसन्द आये। परन्तु यदि काग्रेस की नीति का संचालन मेरे जिम्मे रहे, तो मैं इन संशोधनो को और अन्य ऐसे प्रस्तावो को, जो मेरे इस वक्तव्य के भाव के अनुकूल हो, देश के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अति आवश्यक समझता हूं। जिस नेता के पास अहिसा और सत्य के सिवा और कोई साधन नही है, उसके लिए तो यह बात और भी सच्ची है। इसलिए यह स्पष्ट है कि मैंने जो कार्यक्रम उपस्थित किया है उस मे समझौते की गुजाइश नही है। काग्रेसजनो को चाहिए कि शान्त भाव से उसके गुणदोष पर विचार कर ले। वे मेरा कोई लिहाज न करें और अपनी विवेक-बुद्धि के अनुसार ही कार्य करे।

बम्बई-कांग्रेस : १९३४

२६ से २८ अक्तूबर (१९३४) तक बम्बई मे कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। अधिवेशन के शुरू होते ही गाधीजी ने अपने संशोधनो को दो विभागो मे बाट दिया, काग्रेस-विधान-सम्बन्धी और सत्याग्रह-सम्बन्धी। सत्याग्रह-सम्बन्धी संशोधनो को उन्होंने कार्य-समिति के फैसले के लिए छोड़ दिया, पर विधान-सम्बन्धी संशोधनो के बारे मे उन्होने कहा कि उनका पास होना ही इस बात की परख होगी कि काग्रेस उसके नये सभापति व उनके साथियो में विश्वास रखती है अथवा नहीं।

पर आश्चर्य की वात है कि कार्य-समिति ने उपयुक्त परिवर्तनो-सहित दोनो प्रकार के सशोधन स्वीकार कर लिये और स्वय काग्रेस ने भी उन्हे मुख्यत. स्वीकार कर लिया, जिससे गाधीजी सतुष्ट हो गये।

लेकिन काग्रेस का नया विवान या पार्लमेण्टरी वोर्ड, रचनात्मक कार्यक्रम एव साम्प्रदायिक निर्णय-सम्वन्धी पुराने प्रस्तावो की स्वीकृति में प्रस्तावो का पास होना, अधिवेशन के मार्के के निर्णयो मे से नही थे। अखिल-भारतीय ग्राम-उद्योग-सघ की स्थापना इस काग्रेस की मुख्य घटना थी, जिसके वारे में यह निश्चय हुआ कि वह गाधीजी की सलाह एव देख-रेख मे काम करे और राजनैतिक कहलाई जानेवाली हलचलो से अलग रहे। खद्दर के कार्यक्रम की पूर्ति का यह युक्ति-युक्त परिणाम ही था।

गाधीजी के काग्रेस से अलग होने का प्रश्न भी सामने आया। गाधीजी का उद्देश्य काग्रेस को देश मे एक शक्ति बनाना था। किसी सस्था की शक्ति उसके सदस्यो की सख्या से नही, वल्कि उन सदस्यो के पीछे जो नैतिक शक्ति होती है उसमे निहित रहती है, और जैसे-जैसे उसके नेताओ मे जिम्मेदारी की भावना वढती जाती है वैसे-वैसे ही, अर्थात् उसी अनुपात मे, वह नैतिक-शक्ति भी वढती जाती है। इसी जिम्मेदारी को सभालने के वजाय काग्रेस वहुत काल तक और बहुत अधिक मात्रा में गाधीजी पर ही निर्भर रहती चली आई थी और अपनी शर्तों पर ही गाधीजी का सहयोग चाहती थी। गाधीजी इसके लिए तैयार नहीं थे। काग्रेसी गाधीजी का सहयोग गाधीजी की शर्तों पर ही प्राप्त कर सकते थे। यदि काग्रेस गाधीजी की शर्तों को पूरा कर दे तो वह काग्रेस मे वापस आने और उसका कार्य सचालन करने के लिए तैयार थे। अपने इन्ही विचारो के कारण गाधीजी काग्रेस से अलग हो गये।

वम्वई-काग्रेस के सभापति वाबू राजेन्द्रप्रसाद थे। उनका अभिभाषण उन गिने-चुने नमूनेदार अभिभाषणो मे से था जो राजनैतिक-स्थिति पर स्थायी प्रभाव छोड देते है। उन्होने श्वेत-पत्र (ह्वाइट पेपर) की तफसीलवार अत्यन्त विद्वत्ता-पूर्ण आलोचना की। उनके तथा स्वागताध्यक्ष के तत्त्वावधान मे कई महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए। काग्रेस के पहले प्रस्ताव-द्वारा उन प्रस्तावो को मजूर किया गया जो कार्य-समिति तथा महासमिति ने उस वर्ष अपनी बैठको मे पास किये थे और जिनके मुख्य विषय पार्लमेण्टरी-वोर्ड, रचनात्मक कार्य-क्रम, प्रवासी भार-तीयो की स्थिति, शोक-प्रकाश, स्वदेशी आदि थे। इसके पश्चात् राष्ट्र के त्याग और सविनय-अवज्ञा मे राष्ट्र की आस्था विषयक एक प्रस्ताव पास हुआ।

अखिल-भारतीय ग्राम-उद्योग-सघ के विषय पर खासी वहस और चहल-पहल रही और इस सम्बन्ध मे भी एक लम्बा प्रस्ताव पास किया गया। इस प्रस्ताव के परिणाम-स्वरूप ही नुमाइशो तथा प्रदर्शनो के सम्बन्ध मे भी एक प्रस्ताव

पास किया गया। काग्रेस पार्लमेण्टरी बोर्ड पर भी काग्रेस ने एक प्रस्ताव पास किया। काग्रेस ने बोर्ड की सिफारिश स्वीकार करते हुए निश्चय किया कि मौजूदा पार्लमेण्टरी बोर्ड १ मई १९३५ को भग हो जाय और महासमिति उस तारीख तक या उससे पहले २५ सदस्यो के एक नये बोर्ड का चुनाव करे। निर्वाचित बोर्ड को ५ सदस्यों को अपने मे और सम्मिलित करने का अधिकार भी दिया गया। काग्रेस ने यह भी निश्चय किया कि हर साल काग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर पार्लमेण्टरी बोर्ड का नया चुनाव हुआ करे और इस बोर्ड को भी ५ अतिरिक्त सदस्यो के सम्मिलित करने का अधिकार रहे। निर्वाचित पार्लमेण्टरी बोर्ड को भी वही अधिकार दिये गये जो मौजूदा बोर्ड को थे। खद्दर-मताधिकार के सम्बन्ध मे एक पृथक् प्रस्ताव पास किया गया। इन प्रस्तावो के पश्चात् बम्बई-काग्रेस मे सबसे पहली बार श्रम-मताधिकार का प्रस्ताव पास किया गया। अन्त मे गाधीजी की अलहदगी पर गाधीजी मे विश्वास का एक प्रस्ताव पास किया गया। तत्सम्बन्धी प्रस्ताव इस प्रकार था—

"यह काग्रेस महात्मा गाधी के नेतृत्व मे अपने विश्वास को फिर प्रकट करती है। उसका यह दृढ मत है कि काग्रेस से अलग होने के निश्चय पर उन्हे विचार करना चाहिए। लेकिन चूकि उन्हे इस बात के लिए राजी करने के सब प्रयत्न विफल हुए है, यह काग्रेस अपनी इच्छा के विरुद्ध उनके निर्णय को मानते हुए राष्ट्र के लिए की गई उनकी बेजोड सेवाओ के प्रति धन्यवाद प्रकट करती है और उनके इस आश्वासन पर संतोष प्रकट करती है कि उनका सलाह-मशविरा और पथ-प्रदर्शन आवश्यकतानुसार काग्रेस को प्राप्त होता रहेगा।"

काग्रेस के आगामी अधिवेशन के लिए उत्तर प्रदेश से जो निमन्त्रण मिला था, वह स्वीकार किया गया।

असेम्बली का चुनाव

बम्बई का अधिवेशन खतम भी न हो पाया था कि देश असेम्बली के चुनावो में जी-जान से कूद पड़ा। देश-भर मे प्रचार-आन्दोलन जारी कर दिया गया। काग्रेस ने लगभग हरेक 'साधारण' क्षेत्र की जगह के लिए अपना उम्मीदवार खडा किया। राष्ट्रवादियों ने पण्डित मालवीय और श्री अणे के नेतृत्व में काग्रेस से अलग काग्रेस-नेशनलिस्टो के नाम से खडा होने का निश्चय किया। जिस क्षेत्र के चुनाव पर देश का सबसे अधिक ध्यान गया वह था दक्षिण-भारत का व्यापार-क्षेत्र, जिसके लिए सर षण्मुखम् चेट्टी खडे हुए थे। स्मरण रहे कि सर चेट्टी को भारत-सरकार ने एक व्यापार-सन्धि की शर्ते तय करने के लिए ओटावा भेजा था। ओटावा से लौटने पर वह असेम्बली के अध्यक्ष भी चुन लिये गये थे। उनको एक प्रकार से मद्रास-सरकार तथा भारत-सरकार का समर्थन प्राप्त था।

मद्रास-सरकार के भूतपूर्व गृह-सदस्य सर मुहम्मद उस्मान तथा चीफ मिनिस्टर बॉबिली के राजा उनके पक्ष मे निकाले गये घोषणा-पत्र पर दस्तखत करनेवालो मे मुख्य थे। उनके पक्ष मे इग्लैड के इस रिवाज तक को पेश किया गया कि पार्लमेण्ट अर्थात् असेम्बली के अध्यक्ष के विरुद्ध किसी को चुनाव न लडना चाहिए। सरकारी अफसरो तक ने खुलकर चुनाव मे भाग लिया था। काग्रेस सर चेट्टी के विरोधी सामी वेकटाचलम चेट्टी की ओर थी। सामी वेकटाचलम ने सर षण्मुखम् के ऊपर जो विजय प्राप्त की उसकी गणना साधारण विजयो मे नही की जा सकती थी। वास्तव मे वह सरकार के ऊपर काग्रेस की, धनसत्ता के ऊपर नैतिक-बल की, और ओटावा और ब्रिटेन दोनो के ऊपर भारत की विजय थी। दक्षिण-भारत और उत्तर-प्रदेश काग्रेस ने सब 'साधारण' जगहो पर कब्जा कर लिया। उत्तर-प्रदेश मे काग्रेस को मुसलमानो की भी एक जगह मिल गई। बगाल मे काग्रेस नेशनलिस्टो की विजय रही। बिहार, मध्यप्रान्त, महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक तथा आसाम मे सब जगह काग्रेस ने बाजी मारी। केवल पजाब मे ही काग्रेस पिछड गई। वहा उसे केवल एक ही जगह मिली। 'साम्प्रदायिक निर्णय' के प्रश्न के अलावा काग्रेस-नेशनलिस्ट हरेक बात मे काग्रेस के साथ थे।

असेम्बली मे काग्रेस-पार्टी ने श्री तसद्दुक अहमदखा शेरवानी को असेम्बली की अध्यक्षता के लिए खडा किया, लेकिन वह हार गये। अपने तीन विजयी उम्मीदवार श्री अभ्यकर, शेरवानी व शशमल को खोकर काग्रेस को बडी क्षति उठानी पडी। देश को श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ सेवा अर्पित करके ये तीनो वीर अपने जीवन के यौवन-काल मे इस ससार से कूच कर गये।

असेम्बली में कार्य

काग्रेस-पार्टी ने फौरन असेम्बली मे, जिसका अधिवेशन ११ जनवरी को शुरू हुआ, अपना कार्य आरम्भ कर दिया। सरकार ने अखिल-भारतीय ग्राम-उद्योग-सघ के बारे मे जो गश्ती-पत्र निकाला था उस पर विवाद उठाने के लिए काग्रेस ने कार्य रोक रखने का प्रस्ताव पेश किया, लेकिन वह खटाई मे पड गया। श्री शरत्चन्द्र बसु को नजरबन्द रखने के विरोध मे पेश किया गया ऐसा ही प्रस्ताव ५४ के विरुद्ध ५८ रायो से पास हो गया। स्मरण रहे कि श्री शरत्चन्द्र बसु जब नजरबन्द थे तब भी वह असेम्बली के लिए निर्विरोध चुन लिये गये थे। असेम्बली के सदस्य होते हुए भी असेम्बली की बैठको मे भाग लेने की सरकार ने उन्हे इजाजत नही दी। काग्रेस-पार्टी का ध्यान सबसे पहले इस बात की ओर ही गया और उसने श्री भूलाभाई के योग्य नेतृत्व मे अपनी मोर्चाबन्दी की। काग्रेस ने अपना दूसरा वार ब्रिटेन तथा भारत मे हुए तिजारती समझौते पर किया। समझौता तो किया था ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल के दो सदस्यो ने भारत के व्यापार की लूट को बाटने के

लिए, पर उसको दे दिया गया बडा ऊँचा नाम 'ब्रिटेन-भारत का व्यापारिक समझौता'। वास्तव मे समझौते मे यह बात खुलासा तौर पर रखी गई थी कि "भारतीय-व्यवसायो को केवल इतना ही सरक्षण दिया जायगा, जिससे कि बाहर से आनेवाला माल भारत मे लगभग उसी कीमत पर बिक सके जिस कीमत पर उसी प्रकार का भारत का बना माल यहा बिकेगा, और जहातक सम्भव होगा ब्रिटेन के बने माल पर कम महसूल लगाया जायगा। इस विलक्षण समझौते पर १० जनवरी १९३५ को हस्ताक्षर हुए। बडी कौसिल मे इसकी चारो ओर से निन्दा की गई। खुदाई खिदमतगारो पर लगाये गये प्रतिबन्ध को हटाने के पक्ष मे भी विजय रही। सरकार की कर-सम्बन्धी नीति के ऊपर भी लोकमत की ही विजय हुई। जब रेलवे-बजट पर विचार हुआ तब सरकार को अनेक बार हार खानी पड़ी। साथ ही स्याम के चावल और २५ या ३० अन्य विषयो पर भी विजय प्राप्त हुई थी।

कार्य-समिति की पहली बैठक

नई कार्य-समिति की पहली बैठक पटना मे ५, ६ और ७ दिसम्बर १९३४ को हुई। समिति ने श्री बी० एन० शशमल की मृत्यु पर शोक-प्रकाश किया। वह बड़ी कौसिल के लिए निर्वाचन का फल प्रकट होने के दिन ही परलोक सिधारे थे। कार्य-समिति ने ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी कमिटी की रिपोर्ट के सम्बन्ध मे अपने विचार प्रकट किये और उसके विरोध मे प्रस्ताव पास किया। श्री सुभाषचन्द बसु की स्वतन्त्रता और गति-विधि पर जो अपमान और सन्ताप-जनक सरकारी बन्दिशे लगाई गई थी, उन पर कार्य-समिति ने क्षोभ प्रकट किया। समिति ने सम्मति प्रकट की कि कौसिलो मे गये हुए काग्रेसी सदस्यो को सदा खद्दर पहनना चाहिए और उनसे अनुरोध किया कि वे इस नियम का पालन कडाई के साथ करे। कार्य-समिति से बंगाल के राष्ट्रीय-दल ने इस आशय का जो आग्रह किया था कि गतनिर्वाचन के अवसर पर दिये गये बगाल के हिन्दुओ के काग्रेस-विरोधी मत को ध्यान मे रखकर साम्प्रदायिक-निर्णय के सम्बन्ध मे काग्रेस के रुख पर दुबारा विचार हो, उसके सम्बन्ध मे समिति ने यह सम्मति स्थिर की कि काग्रेस की नीति बम्बई काग्रेस के प्रस्ताव-द्वारा निर्धारित हुई थी, और समिति के अधिकाश सदस्यो ने उस नीति का समर्थन किया था, इसलिए उसमे कोई परिवर्तन नही किया जा सकता।

कार्य-समिति की दूसरी बैठक

कार्य-समिति की दूसरी बैठक १६ से १८ जनवरी तक फिर हुई। इस बैठक मे नागपुर के श्री अभ्यकर और गुजरात-विद्यापीठ के आचार्य गिडवानी के

परलोकवास पर शोक-प्रकाश किया गया। इन दोनो सज्जनो ने बडे कष्ट उठाये थे और देश की सेवा बडी लगन के साथ की थी। अन्य वर्षों की भाति इस वर्ष भी पूर्ण-स्वराज्य-दिवस मनाया गया और इस अवसर के लिए सारे भारत के पालनार्थ एक खास प्रस्ताव बनाया गया।

कार्य-समिति ने यह सिफारिश की कि राष्ट्रीय दिवस मे जहा तक सम्भव हो कोई खास रचनात्मक कार्य किया जाय और इस दिन पूर्ण-स्वराज्य के लक्ष्य की सिद्धि के लिए अपेक्षाकृत अधिक आत्मसमर्पण करने का निश्चय किया जाय। हडताले न की जाय। उसने यह भी हिदायत दी कि किसी आर्डिनेन्स अथवा स्थानीय अधिकारी की आज्ञा की अवहेलना न की जाय और न सभा में भाषण दिए जाय। राष्ट्रीय झण्डा फहराया जाय और खडे होकर पूर्वोक्त प्रस्ताव पास किया जाय।

सम्राट् जार्ज के शासन की रजत-जयन्ती की ओर स्वभावत ही कार्य-समिति का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हुआ और इस सम्बन्ध मे एक प्रस्ताव पास हुआ।

सूती-मिलो के प्रश्न पर भी विचार किया गया और यह तय हुआ कि चूकि अधिकाश सूती मिलो के मालिको ने काग्रेस को दिये वचनो को तोड़ दिया है, इसलिए कार्य-समिति की सम्मति है कि काग्रेस अथवा उससे सम्बन्ध रखने-वाली सस्थाओ के लिए प्रमाण-पत्र जारी करने का सिलसिला कायम रखना सम्भव नही है। ऐसी दशा मे पुराने प्रमाण-पत्र अब रद समझे जाय। इसके पश्चात् कार्य-समिति ने बर्मा की समस्या पर, ज्वाइन्ट-पार्लमेण्टरी-कमिटी की सुधार-योजना की दृष्टि से, और काग्रेस के एक केन्द्र की दृष्टि से, विचार किया और निश्चय किया कि बर्मा-प्रान्तीय काग्रेस-कमिटी पहले की भाति ही काम करती रहे।

कार्य-समिति के निश्चय के अनुसार ७ फरवरी १९३५ को ज्वाइन्ट-पार्ले-मेण्टरी-कमिटी की रिपोर्ट के विरुद्ध दिवस मनाया गया और इसके द्वारा एक बार फिर आदर्श और कार्य का पारस्परिक सहयोग प्रदर्शित कर दिया गया। इस सम्बन्ध मे जो अपील प्रकाशित की गई उसके उत्तर मे बडे-बडे नगरो मे ही सभाये की गई हों सो बात नही, अनेक प्रान्तो के कोने-कोने मे सभाये की गई। इन सारी सभाओ मे वह प्रस्ताव पास किया गया जो काग्रेस के अध्यक्ष ने बताया था। रगून मे बर्मा-प्रान्तीय-काग्रेस-कमिटी-द्वारा आयोजित प्रदर्शन भी अपने ढग का निराला था, क्योकि रिपोर्ट को रद करने की माग पेश करने मे बर्मी और भारतीय दोनो आपस मे मिल गए थे।

साम्प्रदायिक समझौते के लिए प्रयत्न

अब हमे उस मेल-सम्बन्धी बातचीत की चर्चा करनी है जो **१९३५ की जनवरी**

और फरवरी मे हुई थी। कांग्रेस के अध्यक्ष बाबू राजनेन्द्र प्रसाद और मुस्लिम लीग के सभापति श्री मुहम्मदअली जिन्ना मे, एक ऐसे साम्प्रदायिक समझौते की बातचीत, एक महीने तक चलती रही जो साम्प्रदायिक 'निर्णय' का स्थान ले सके और जिसके द्वारा जातिगत वैमनस्य और कटुता दूर हो और देश सम्मिलित रूप से मुकाबला करे। बातचीत २३ जनवरी को आरम्भ हुई और बीच मे कुछ दिनो के लिए बन्द रहकर फिर १ मार्च १९३५ तक जारी रही। पर इस बात-चीत का कोई परिणाम न हुआ और देश को बड़ी निराशा हुई।

सरकार की दमन-नीति

१९३५ मे भी सरकारी रुख अथवा नीति मे कोई परिवर्तन नही हुआ। कांग्रेस को शक्तिशाली शत्रु समझकर उसपर सन्देह की निगाह बनी रही। जरा-जरा-सी बात पर कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओं के विरुद्ध कार्रवाई करने के अवसर से लाभ उठाया जाता रहा। जिनपर आतंककारी कामो का सन्देह किया जाता था, उन्हे बिना मुकदमा चलाये जेलो मे या घरो मे नजरबन्द रखा जाता था। अनेक स्थानो पर यदा-कदा मकानो की तलाशिया होती थी। महासमिति के तथा बिहार आदि प्रान्तों की कांग्रेस-कमिटियों के दफ्तरो पर भी निगाह थी। खान अब्दुलगफ्फारखा को बम्बई मे भाषण देने के अपराध मे दो वर्ष की सजा दी गई थी और डॉ० सत्यपाल को निर्वाचन सम्बन्धी भाषण देने के सिलसिले मे एक साल का दण्ड दिया गया था। बंगाल के नजरबन्दो की सख्या हजारो मे थी। उनके परिवार असहाय अवस्था मे थे। सरकार ने इन परिवारो से उनका निर्वाह करने मे समर्थ युवको को छीन लिया था। २४ और २५ अप्रैल को जबलपुर मे महासमिति की बैठक हुई, जिसमें उनके प्रति सहानुभूति प्रकट की गई। नजरबन्दो के परिवारो और आश्रितों के कष्ट-निवारण के लिए चन्दा इकट्ठा करने का निश्चय किया गया। इस कार्य की पूर्ति के लिए १९ मई का दिन निश्चित किया गया। कांग्रेस के अध्यक्ष ने इस सम्बन्ध मे देश के नाम एक अपील प्रकाशित की। बगाल की सरकार ने कांग्रेस की इस कार्रवाई का मुकाबला करने के लिए इडियन प्रेस (इमर्जेन्सी पावर्स) एक्ट की धारा २—ए के अन्तर्गत आदेश जारी कर दिया कि कांग्रेस के अध्यक्ष के आज्ञानुसार देश-भर मे मनाये जानेवाले नजरबन्द-दिवस से सबधित देश के किसी स्थान की कोई सूचना पत्रो मे प्रकाशित न की जाय। बंगाल के पत्रकारों ने इसका विरोध किया और इस सम्बन्ध मे एक दिन के लिए पत्र-प्रकाशन बन्द रखा।

महासमिति की बैठक

महासमिति ने अपनी २४ और २५ अप्रैल की जबलपुर की बैठक मे कांग्रेस पार्लमेण्टरी बोर्ड और निर्वाचन-सम्बन्धी झगड़ो का निपटारा करने के लिए एक

समिति निर्वाचित की और हिसाब-किताब की जाच के लिये आडीटर नियुक्त किये। महासमिति ने श्री तसद्दुक अहमदखा शेरवानी की मृत्यु पर शोक और बडी कौसिल मे काग्रेस-पार्टी के काम पर सतोष प्रकट किया। इनके सिवा सीमान्तप्रदेश मे काग्रेस-सस्था के वदस्तूर गैर-कानूनी रहने, वगाल के मिदनापुर जिले की काग्रेस-कमिटियो के निषिद्ध रहने, और वगाल, गुजरात तथा अन्य स्थानो पर खुदाई-खिदमतगार और हिन्दुस्तानी सेवादल आदि के गैर-कानूनी वने रहने की ओर देश का ध्यान आकर्षित किया। उसने वगाल मे प्रचलित सरकारी दमन-नीति की, अनेकानेक युवको को नजरवन्द रखने की नीति की, और स्वय उन परिवारो के निर्वाह का प्रवन्ध न करने की निन्दा की। उसने कहा कि वगाल की सरकार को या तो इन नजरवन्दो को छोड देना चाहिए, या उनपर अच्छी तरह मुकदमा चलाना चाहिए। वगाल की जनता और उसके नजरवन्दो को आश्वासन दिया कि उनके कष्टो के साथ उसकी पूरी समवेदना है। समिति ने वगाल-प्रान्तीय काग्रेस कमिटी को आज्ञा दी कि वह नजरवन्दो की पूरी सूची तैयार करे और उनके नजरवन्द रहने की अवधि और उसके परिवारो की आर्थिक अवस्था से उसे सूचित करे। नजरवन्दो के परिवारो का कष्ट-निवारण करने के उद्देश्य से कार्य-समिति की अधीनता मे भारतवर्ष-भर मे चन्दा एकत्र करने का निश्चय किया गया। फीरोजा-वाद के सामूहिक हिंसात्मक कार्यों के ऊपर खेद प्रकट किया, जिनके फल-स्वरूप डॉ० जीवाराम का पूरा परिवार, वच्चो और कई रोगियो सहित, जीवित जला दिया गया था।

इसी अवसर पर जबलपुर मे कार्य-समिति की भी बैठक हुई, जिसमे काग्रेस के नये विधान के अनुसार प्रतिनिधियो की सख्या निश्चित की गई और महासमिति के सदस्यो और आगामी काग्रेस के प्रतिनिधियो के निर्वाचन के सम्बन्ध मे विभिन्न काग्रेस-कमिटियो के पालन के लिए समय-तालिका बनाई गई। उसमे कई प्रान्तो के निर्वाचन-सम्वन्धी झगडो का निपटारा किया गया और काग्रेस तथा महासमिति मे बगाल के मिदनापुर जिले के प्रतिनिधित्व का प्रबन्ध किया गया, क्योकि इन दोनो स्थानो पर काग्रेस-सस्थाओ के गैर-कानूनी होने के कारण निर्वाचन नही हो सकता था।

क्वेटा-भूकम्प

१५ जनवरी १९३४ को बिहार के भूकम्प ने देश को हिला दिया था। अभी मुश्किल से १८ महीने बीते होगे कि ३१ मई १९३५ को क्वेटा के भूकम्प के कारण देश-भर मे शोक छा गया। यह शहर सैनिक-केन्द्र था, इसलिए कष्ट-निवारण का काम सरकार ने स्वय अपने हाथ मे लिया। यह स्वाभाविक ही था, पर कष्ट-निवारण और सगठित सहायता के उद्देश्य से वाहर से आनेवालो के प्रवेश

के विरुद्ध आज्ञा क्यो दी गई, यह समझ मे न आया। इस स्थान पर जाने की अनुमति न कांग्रेस के सभापति को मिली, न गाधीजी को। ऐसी परिस्थिति मे केवल निषिद्ध-प्रवेश के आसपास के स्थानो पर ही संगठित सहायता की जा सकती थी। कांग्रेस के सभापति ने क्वेटा-कष्ट-निवारक-समिति का सगठन किया, जिसकी शाखाये सिंध, पंजाब और सीमान्त-प्रदेश मे स्थापित की गईं। ३० जून का दिन भूकम्प-पीड़ितो के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के निमित्त प्रार्थना करने के लिए नियत हुआ। इस सम्बन्ध मे सरकार ने जिस नीति का परिचय दिया वह उसकी अविश्वास और सन्देह की नीति की चरम-सीमा थी।

पद-ग्रहण का प्रश्न

१९३५ के मध्य मे कांग्रेसवादियो को, विशेष कर उनको जो कौंसिल-प्रवेश पर अड़े हुए थे, एक और प्रश्न ने उद्विग्न कर रक्खा था, और वह था नये शासन विधान के अन्तर्गत पद-ग्रहण करने के सम्बन्ध मे। यह दुर्भाग्य की बात हुई कि इस अवसर पर, जब कि बिल अभी पार्लमेण्ट के सामने पेश ही था, यह प्रसङ्ग छेडा गया। बम्बई-कांग्रेस का प्रस्ताव इस मामले मे बिलकुल स्पष्ट था। आगामी अधिवेशन तक इसके निर्णय करने का किसी को अधिकार न था। फलत. जुलाई के अन्त मे वर्धा मे कार्य-समिति की बैठक हुई, जिसमे तय हुआ कि इसका निर्णय कांग्रेस का खुला अधिवेशन ही कर सकता है।

देशी राज्य प्रजा-परिषद् और कांग्रेस

अभी बिल कामन-सभा के सामने ही था कि पार्लमेण्टरी-बोर्ड के नेता श्री भूलाभाई देसाई ने वकील की हैसियत से देशी-नरेशो को भावी भारत-सरकार क अन्तर्गत सङ्घ शासन के प्रश्न पर सलाह दी और फिर मैसूर मे इस विषय पर भाषण भी दिया। इन बातो को लेकर इस वर्ष के आरम्भ मे देशी-राज्य-प्रजा-परिषद् मे हलचल मच गई। जुलाई मे देशी रियासतो की प्रजा के प्रति कांग्रेस के रुख पर विचार करने के लिए महासमिति की बैठक की माग हुई। देशी-रियासतो की प्रजा ने अपनी माग गाधीजी के उस भाषण के आधार पर कायम कर रखी थी, जिसे उन्होने दूसरी गोलमेज-परिषद् के अवसर पर दिया था अर्थात् 'कांग्रेस' ऐसे किसी शासन-विधान से सन्तुष्ट न होगी, जिसके द्वारा देशी राज्यो की प्रजा को नागरिकता के अधिकार प्राप्त न हो और वे सघ व्यवस्था-मण्डल मे प्रतिनिधि न भेज सके।

कार्य-समिति की बैठक

२९, ३० और ३१ जुलाई १९३५ को वर्धा मे होनेवाली कार्य-समिति की बैठक मे इस विषय पर प्रस्ताव पास किया गया, जिसमें कहा गया कि भारतीय

रियासतो की प्रजा को भी स्वराज्य का उतना ही अधिकार है जितना ब्रिटिश-भारत की प्रजा को है। इसके अनुसार काग्रेस ने देशी-राज्यो मे प्रतिनिधित्वपूर्ण उत्तर-दायी-शासन की स्थापना के पक्ष मे अपनी राय प्रकट की है,और न केवल देशी नरेशो से ही अपने-अपने राज्यो मे इस प्रकार की उत्तरदायी-शासन-व्यवस्था स्थापित करने और अपनी प्रजा को व्यक्तिगत, सभा आदि करने के, भाषण देने के और लेखो-द्वारा विचार प्रकट करने के नागरिकता के अधिकार देने की अपील की है, बल्कि देशी-राज्यो की प्रजा से प्रतिज्ञा की है कि पूर्ण उत्तरदायी-शासन की प्राप्ति के लिए उचित और शान्तिपूर्ण साधनो से किये गए सघर्ष मे उसकी सहानुभूति है। काग्रेस अपनी उसी घोषणा और उसी प्रतिज्ञा पर दृढ है। पर यह बात समझ लेनी चाहिए कि इस प्रकार का सघर्ष जारी रखने का बोझ स्वय देशी-राज्यो की प्रजा पर था। काग्रेस रियासतो पर नैतिक और मैत्री-पूर्ण प्रभाव ही डाल सकती थी। मौजूदा परिस्थिति मे और किसी प्रकार का सामर्थ्य काग्रेस को प्राप्त नही था।

अन्त मे यह निश्चय किया गया कि चूकि १८८५ मे काग्रेस का पहला अधिवेशन हुआ था, इसलिए उसका पचासवा वर्ष उचित ढग से मनाया जाय। इस उद्देश्य से कार्य-समिति ने कार्यक्रम तैयार करने के लिए एक उप-समिति नियुक्त की। वर्धा की बैठक और वर्ष की समाप्ति के बीच मे जो थोडा-सा समय रहा उसमे तीन घटनाओ को छोडकर कोई विशेष बात नही हुई। उनमे से एक घटना पण्डित जवाहरलाल की आकस्मिक रिहाई थी। वह अपनी धर्मपत्नी की चिन्ताजनक अवस्था के कारण ३ सितम्बर को अलमोडा-जेल से छोड दिय गये। उन्हे तुरन्त यूरोप जाना था। शर्त यह थी कि यदि अपनी सजा की मियाद खतम होने से पहले वह लौट आए तो उन्हे फिर जेल वापस जाना पडेगा। दूसरी घटना गवर्नर जनरल-द्वारा सितम्बर मे क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ट-एक्ट पर सही होना था, यद्यपि बडी कौसिल ने उसे स्पष्ट बहुमत-द्वारा रद कर दिया था। तीसरी महत्व-पूर्ण घटना १७ और १८ अक्तूबर १९३५ की महासमिति की बैठक थी। यह मद्रास मे हुई। मद्रास मे देशी-राज्यो के प्रश्न पर कार्य-समिति के वक्तव्य के साथ सहमति प्रकट की गयी और पद स्वीकार करने के प्रश्न पर महासमिति ने यह विचार प्रकट किया कि इस विषय पर काग्रेस के लिए कोई निश्चय करना समयानुकूल नही होगा।

अन्त मे इस बात का उल्लेख कर देना आवश्यक है कि पार्लमेण्ट ने भारत शासन-विधान पास कर दिया और २ जुलाई को उसे सम्राट् की स्वीकृति प्राप्त गई हो।

: १६ :

पद-ग्रहण और त्याग-पत्र : १९३५-३९

हमारी स्थिति

पूर्व निश्चय के अनुसार सन् १९३५ मे न तो कॉग्रेस की स्वर्ण-जयन्ती मनाई गई और न उसका कोई अधिवेशन ही हुआ। सन् १९३६ मे हमको चारो तरफ से घेरते हुए तूफान के कुछ आरभिक लक्षण दिखाई दिये। सन् १९३५ मे एविसीनिया पर इटली ने हमला कर दिया था। भारत मे नागरिक स्वतत्रता विलकुल समाप्त कर दी गई थी। भारतीय जेलों मे लगभग २१०० व्यक्ति नजरबन्द थे। गवर्नर जनरल के विशेषाधिकार से स्वीकृत क्रिमिनल लॉ एमेण्डमेण्ट कानून मौजूद था। करीब पाँच सौ अखवारों से जमानते मॉगी गई थीं और इसकी वजह से करीब ३५० अखवार बन्द हो गये थे। १६६ अखवारों की जमानतो की रकम २,५०,००० रु० थी। विदेशो में दशा यह थी कि रूस ने बडी तेजी से उन्नति की थी और सारी दुनिया की ऑखे उधर ही थी। इस अर्द्ध-प्राच्य देश से, जिसने गुलामी की जजीरो और पूंजीवाद के वन्द तोडे थे, जब कोई प्रगति की खवर मिलती थी तव भारत के लोगो को, जिनकी लम्बी गुलामी ने आज़ादी की सारी उम्मीदो को दूर कर दिया था, एक चैन-सा मिलता था। आम जनता के उत्थान की दिशा मे इस विशालकाय रूस ने जो नई समाज-व्यवस्था बनाई थी, उसको देखकर यहाँ के लोगो मे वैसा ही आन्दोलन करने, वैसा ही ढाँचा बनाने और वैसी ही सार्वजनिक स्वतत्रता स्थापित करने की तीव्र उत्कठा थी। भारत की औद्योगिक जनसख्या वीस लाख से अधिक नही थी। वास्तव मे असली समस्या भारत के दसियो करोड किसानो की ही थी जो वेकार तो नहीं, पर अर्ध-वेकार जरूर थे। भारत विदेशी शासन से कुचला जा रहा था और वह शासन किसी राष्ट्रीय, निरंकुश तानाशाह के शासन से वेहतर नही था।

अपनी राजनैतिक मुक्ति के लिए भारत ने कॉग्रेस-द्वारा जो योजना चालू की थी, उसको पचास वरस वीत चुके थे। इस लम्बे अर्से मे राष्ट्रीयता का वह सिद्धान्त, जो उन्नीसवी शताब्दी के आरंभ से ही यूरोप के राजनैतिक विकास में गहरी जड जमा चुका था, सारे भारत मे भी समा गया था और उसकी वजह ने राष्ट्रीय जीवन, विचार, आकाक्षा, प्रयत्न, उपलब्धि और आदर्श में एक ऐक्य की भावना स्थापित हो चुकी थी। इससे राष्ट्रीयता के अमूर्त्त विचारों की जगह कुछ ही समय में,

सामाजिक सघर्षो की पार्थिव धारणाओ ने ले ली। नये आर्थिक सिद्धान्त उठ खड़े हुए और मानव-समाज का निर्देश करने वाले नये सिद्धान्तो का प्रचार किया गया। कॉंग्रेस ने आर्थिक और सामाजिक ढॉंचे में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने की सलाह दी और भारतीय जनता की दशा सुधारने और साथ ही गरीवी और तकलीफ दूर करने के ध्येय से सामाजिक विषमता को दूर करने के लिए कहा। यह बात ध्यान देने की है कि पूर्ण स्वाधीनता सवधी लाहौर मे स्वीकृत प्रस्ताव के छ महीने पहले ही उपर्युक्त प्रस्ताव पास हो गया था। इसलिए यह कहना सही नही होगा कि कॉग्रेस का उद्देश्य सिर्फ राजनैतिक आजादी ही था और एक नया सामाजिक ढॉचा बनाना नही था। 'नई समाज व्यवस्था' का नारा, जिसका महायुद्ध के समय से प्रचार बढ गया था, कॉंग्रेस के कार्यक्रम मे गुथा हुआ था।

भारत मे प्रश्न यह था कि 'नई समाज-व्यवस्था' के उद्देश्य पर पहुँचने के लिए कौन-सा साधन है—हिसा या अहिसा ? बम्बई के अधिवेशन (१९३४) मे महासमिति और विषय-निर्वाचन समिति ने कॉग्रेस के उद्देश्य मे 'शान्तिपूर्ण और उचित' की जगह 'सत्य और अहिसा' को नही रखा, लेकिन इसका तात्पर्य यह नही था कि अधिकाश कॉग्रेसियो और आम जनता मे अहिसा के सिद्धान्त की पकड कुछ ढीली हो गई थी, पर देश के तरुण हिसा से शीघ्र सफलता प्राप्त करने की प्रत्याशा और सम्भावना से प्रभावित थे। देश के नौजवानो मे चारो तरफ समाजवाद की आवाज थी। विद्यार्थी-सघ और यूथ-लीग की इसी कारण स्थापना हुई थी। कॉग्रेस समाजवादी दल के नाम से कॉग्रेस के अन्दर एक पार्टी काम कर रही थी। एक नई पार्टी साम्यवादी पार्टी भी तैयार हो चुकी थी और वह समाजवादी दल से ज्यादा शक्तिशाली थी। दोनो दल जनता मे एक-से सुपरिचित हो गये थे। सरकार जब षड्यत्र के मुकदमे चलाती थी तब ये बाते लोगो मे और भी ज्यादा फैलती थी। दक्षिण भारत मे समाजवादी दल, साम्यवादी दल के ही रूप मे काम कर रहा था। ऐसी दशा मे साम्यवादी दल का प्रभाव बराबर बढता जा रहा था। इन्ही परिस्थितियो मे लखनऊ-कॉग्रेस का अधिवेशन (अप्रैल १९३६) हुआ।

लखनऊ-कॉंग्रेस १९३६

इस सारी पृष्ठभूमि को ध्यान मे रखते हुए यह प्रश्न सामने था कि लखनऊ मे सभापति कौन हो ? गाधीजी धार्मिक मालूम हो सकते थे और उन्हे राजनीतिज्ञ की जगह सत अधिक आसानी से समझा जा सकता था, लेकिन इसका अर्थ यह नही कि उनमे राजनीति-चातुर्य नही था और उनकी अपनी नीति नही थी। गाधीजी के बाद सबसे अधिक प्रभावशाली कॉग्रेसी प० जवाहरलाल थे। वह कॉग्रेस को अन्दर

से आगे बढने की शक्ति दे सकते थे और बाहर से रोक भी लगा सकते थे। इसके अलावा उनमे रूस, जर्मनी, इगलैण्ड, अमेरिका, जापान, चीन, फ्रास, स्पेन, इटली और मध्य यूरोप की घटनाओ का गहरा अध्ययन करनेके कारण वर्तमान समस्याओं की उलझन समझने की शक्ति भी थी। भारत की परिस्थिति से भी वह परिचित थे। इस तरह वह पुराने और नये मे एक जोडने वाली कडी थे। वह गाधीवाद और साम्यवाद के बीच एक सेतु की तरह थे और इसी कारण लखनऊ मे सभापति-पद ग्रहण करने के लिए सब से अधिक उपयुक्त थे। अन्त मे वही काँग्रेस के सभापति चुने गये।

लखनऊ-अधिवेशन मे जो कुछ हुआ उससे जवाहरलालजी को बड़ी भारी और तीखी निराशा हुई। उन्होने ऐसा महसूस किया, मानो वह अकेले एक तरफ हो, सारी दुनिया दूसरी तरफ। खेतिहर कार्यक्रम पर जो प्रस्ताव था वह तो उस बडे क्रान्तिकारी सामाजिक उभाड के कार्यक्रम के लिहाज से, जिसे जवाहरलालजी राष्ट्र से मनवाना चाहते थे, एक बहाना भर था। उस समय उन्होने जिन तीन कट्टर समाजवादियो को कार्यसमिति मे लेकर अवसर का ज्यादा-से-ज्यादा फायदा उठाया वे थे श्री जयप्रकाशनारायण, आचार्य नरेन्द्रदेव और अच्युत पटवर्धन। खेतिहर कार्यक्रम मौके पर लिया गया था। सारे देश मे किसानो मे हलचल मची हुई थी और सरकार और जमीदारो की मनमानी लगान-नीति का विरोध हो रहा था। जमीदार तालाबो, बन्दो, सिचाई के साधनो, चरागाहो और जगलो पर विशेषाधिकार जता रहे थे। इन बातो के सबध मे काँग्रेस ने कोई अतिम निर्णय नही किया। नए ऐक्ट का प्रश्न भी उसके सामने था। इस नये ऐक्ट पर उसने अपना असन्तोष जताया और उसकी निन्दा की, लेकिन साथ ही यह तय किया कि चुनाव के लिए एक घोषणा-पत्र बनाया जाय और उसकी बुनियाद पर चुनाव लड़ा जाय। पद-ग्रहण करने के प्रश्न पर काँग्रेस ने उस समय किसी फैसले की जिम्मेदारी लेना मुनासिब नही समझा; क्योकि आगे की परिस्थिति का कुछ ठीक नही था। इसलिए उसने खेतिहर कार्यक्रम और पद-ग्रहण के सबध मे अतिम निर्णय का अधिकार समिति पर छोड दिया। ऐक्ट का प्रमुख दोष यह था कि उसमे न तो आत्म-निर्णय था, न सयुक्त निर्णय, बल्कि कुछ और ही निर्णय था। इसके अलावा सरकारी योजनाओ मे एक और स्पष्ट दोष था जिसको कि जान-बूझकर रखा गया था। वह यह कि राजसत्ता का धड़ तो था, लेकिन सिर का कोई पता नही था और इस तरह सारे काम अनियन्त्रित और असबद्ध थे। न तो उस शरीर का दिमाग था, जो चालक-शक्ति देता और न वह भाग जो विभिन्न प्रान्तो के कामो मे सामञ्जस्य बनाये रखता।

इस तरह लखनऊ-अधिवेशन ने महासमिति को दो महत्वपूर्ण काम सौंपे: एक तो खेतिहर कार्यक्रम की अन्तिम रूपरेखा और दूसरे चुनाव के घोषणा-पत्र

की तैयारी। दोनो बाते परस्पर सबधित थी। असल मे पहली चीज़ दूसरी का हिस्सा बनती और दोनो मिलकर वह बुनियाद उपस्थित करती, जिसके अनुसार काग्रेस चुनाव जीतने पर अगर पद-ग्रहण करती तो अपना वैधानिक काम करती। उस समय इन तीनो बातो मे जो गहरा और सजीव नाता था, उसे अनुभव नही किया गया। फिर भी घटनाओ की प्रगति मे एक मौलिक कठिनाई थी। कार्य-समिति के अधिकाश सदस्यो से सभापति का मतभेद था। तीन नये दोस्त जो अन्दर लिये गये थे, उनके साथ कमेटी का एक-चौथाई से ज्यादा हिस्सा था, लेकिन आमतौर पर काग्रेस के फैसले, विचार-विनिमय, और विवाद बहुमत और अल्पमत के अनुसार नही होते थे। जवाहरलाल शुरू मे ही त्याग-पत्र देना चाहते थे, पर उनसे कह-सुन कर उनको वहीं बनाये रखा गया। बने तो वह रहे, लेकिन दिल मे बेचैनी थी। एक ओर सभापति-पद से दिया गया उनका भाषण था, दूसरी ओर गाधीजी थे और कार्य-समिति में उनसे सहमत दस सदस्य। ये लोग एक चट्टान की तरह थे। पन्द्रहवा व्यक्ति जेल मे था—सुभाषचन्द्र बोस, जो यदि बाहर भी होते तो भी वह किसी एक तरफ न मिलकर अपना अलग ही रास्ता बनाते। सभापति के भाषण मे पूरा साम्यवाद का पक्ष था। एक ऐसे देश मे, जहाँ बहुत अर्से से विदेशी राज्य की गुलामी रही हो, वहाँ उस राष्ट्र के नौजवानो का पुरानी नीति और व्यवस्था से जी ऊब जाता है और शासक राष्ट्र की नीति और व्यवस्था के प्रति घृणा पैदा हो जाती है। ऐसी हालत मे उनके लिए यह स्वाभाविक है कि वे एक ऐसा हल तलाश करे जो दोनो से भिन्न हो।

मुख्य घटनाएँ

लखनऊ और फैजपुर के बीच घटनाओ की एक विशेष प्रगति हुई जिनका उल्लेख आवश्यक है। इनमे से एक अत्यन्त दुखपूर्ण बात तो यह थी कि गुजरात के बुजुर्ग अब्बास तय्यबजी का १० जून १९३६ को मसूरी मे स्वर्गवास हो गया और उधर लखनऊ अधिवेशन के कुछ ही बाद यात्रा मे डा० अन्सारी की मृत्यु हो गई। १७ मई १९३६ को डा० अन्सारी की मृत्यु पर देश-भर मे शोक मनाया गया। कार्यकारिणी की सलाह पर सारे देश मे दो दिन और मनाये गये एक तो ९ मई को 'अबीसीनिया-दिवस' मनाया गया और इटली की निन्दा करते हुए अबीसीनिया के साथ सहानुभूति के प्रस्ताव पास किये गये। कई जगह लीग ऑव नेशन्स की भी निन्दा की गई और यह कहा गया कि उसने अबीसीनिया के साथ विश्वासघात किया है। दूसरा दिन १० मई को मनाया गया। यह था 'सुभाष-दिवस'। सरकार ने श्री सुभाषचन्द्र बोस को कुर्सिओग मे उनके भाई के बगले मे नजरबन्द कर लिया था। गृह-विभाग के सदस्य ने कहा कि सार्वजनिक हित मे उन पर खुला अभियोग नही चलाया जा सकता। इस तरह की यह नजर-

वन्दी थी। देश-भर मे सरकार के इस काम की निन्दा की गई और विरोध मे प्रस्ताव पास किये गये। १३ सितबर को यतीन्द्रदास के मृत्यु-दिवस पर काग्रेस के सभापति जवाहरलालजी ने काग्रेसियों और काग्रेस कमेटियों से 'राजबन्दी दिवस' मनाने के लिए कहा। यह सच है कि इस चीज को उसी वक्त कामयाबी नहीं मिली, लेकिन इससे दोनो तरफ हृदय-परिवर्तन के लिए रास्ता खुला। वन्दियो ने आतकवाद की निरर्थकता का अनुभव किया और सरकार ने धीरे-धीरे इन लोगो को छोडना शुरू कर दिया, लेकिन उनकी रिहाई इतने लम्बे अर्से मे फैला दी कि इस काम मे जो कुछ खूबी और भलमनसाहत थी, वह आधी भी नही रही।

विदेशो मे जो घटनाएँ हो रही थी, उनकी तरफ भी काग्रेस को उतना ही ध्यान देना जरूरी था, जितना कि घरेलू मामलो पर। एक ओर इटली-द्वारा अबीसीनिया पर बलात्कार था, दूसरी ओर यूरोपीय राष्ट्र निश्चित रूप से अपराधी की मदद कर रहे थे। इसका नतीजा यह हुआ कि भारतीयो के दिमाग से अपनी आजादी के सिलसिले मे न्याय की रही-सही आशा भी जाती रही। दुनिया मे शान्ति चाहने वाले लोग खामोश तो नही थे, लेकिन उनकी आवाज ही क्या थी! जब ६ सितम्बर को विश्व-शाति सम्मेलन की ब्रसैल्स मे वैठक हुई तब युद्ध के बादल दुनिया के सिर पर मडराते हुए बहुत नीचे झुक आये थे। स्पेन मे हिंसापूर्ण गृह-युद्ध चल ही रहा था और उसके पडोसी अपने आपको तटस्थ बताते हुए भी एक-न-एक पक्ष ले रहे थे।

दमन-चक्र

भारत मे भी बड़ी उथल-पुथल रही और जबर्दस्त दमन-चक्र चला। तलाशियाँ हुईं, गिरफ्तारियाँ हुई और बड़ी विचित्र आज्ञाएँ जारी की गई। विद्यार्थियो को स्कूलो और कालेजो से निकाला गया। मजदूरो के अधिकारो को सीमित किया गया। यह छूत की बीमारी पाडिचेरी मे भी पहुँची, जहाँ फ्रासीसी कब्जा था। साम्यवादी दल का एक घोषणा-पत्र जब्त कर लिया गया। एक लिफाफा जिस पर गाधीजी की तस्वीर बनी हुई थी, डाकखाने से भेजने वालो के पास 'जब्त' लिखकर लौटा दिया गया। प्रजा समिति और किसान कमेटियो पर पाबन्दियाँ लग गईं। कपूरथला, जोधपुर, मैसूर, वडौदा, सिरोही, मारवाड और राजनादगाँव की देशी रियासतो ने भी दमन-नीति का अनुकरण किया। चारो तरफ इस अँधेरे मे एक प्रकाश की किरण दिखाई पडी उस वक्त, जब अल्मोडे से १ अगस्त १९३६ को मियाद खतम होने पर खान अब्दुल गफ्फार खाँ को छोडा गया, लेकिन जेल के दरवाज़े पर उन्हे यह हुक्म मिला कि वह सीमाप्रांत और पजाब में न घुसे। लाहौर सेण्ट्रल जेल में एक वन्दी और थे श्री परमानन्द, जो

लाहौर षड्यन्त्र केस मे सन् १९१४-१५ के बन्दी थे और जिनकी सजा को २३ साल बीत चुके थे। सरकार की तरफ से कामन्स सभा मे यह कहा गया कि सरकार का उनको छोडने का इरादा नही है। यह बात ध्यान देने की है कि जुलाई सन् १९३६ मे अकेले बगाल मे ही ३००० से अधिक लोग नजरबन्द थे और फिर भी दमन चक्र बराबर ज्यादा तेज होता जा रहा था। कम-से-कम ५० कांग्रेसियो और समाजवादियो को पजाब मे इस आशय के नोटिस दे दिये गये थे कि वे अपने गाँवो को न छोडे। चार अगस्त को एक हुक्म जारी किया गया कि "सूर्यास्त से सूर्योदय के बीच" कोई शख्स, जिसकी उम्र १२ और ३० साल के बीच हो, घूमता हुआ न पाया जाय। यह हुक्म एक साल के लिए था और यह मनाही ढाका मे १९ जगहो और नारायणगज मे १६ जगहो के लिए थी। इन जगहो मे पार्क, खेलने के मैदान और मन्दिर भी शामिल थे। इस हुक्म को न मानने पर ६ महीने के लिए जेल और जुर्माने की सजा थी। दमन सन् १९३६ मे शुरू नहीं हुआ। जिन बातो का ऊपर जिक्र किया गया है वे तो बराबर बहनेवाली नदी की एक बूद की तरह थी। लखनऊ-अधिवेशन के बाद जिस बात पर राष्ट्रपति ने सबसे पहले ध्यान दिया, वह थी 'भारतीय नागरिक स्वतन्त्रता यूनियन' की स्थापना। इस सस्था के अवैतनिक सभापति डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर और उसकी प्रमुख श्रीमती सरोजिनी नायडू थी। ऊपर से देखने पर भारत मे ऐसी यूनियन की स्थापना, नागरिक स्वतत्रता के सरक्षण की दृष्टि से एक बडे राष्ट्रीय महत्व की बात थी।

कार्य-और सेवाएँ

इस साल की घटनाओ मे एक खास बात यह थी कि काँग्रेस की पार्लमिण्टरी कमेटी और मजदूर कमेटी ने जिनको पहले अधिवेशन पर नियुक्त किया गया था, नियमित रूप से काम किया। पहली कमेटी का एक बहुत बडा काम था अगली फरवरी (सन् १९३७) मे प्रातीय धारा-सभाओ के चुनावो के सिलसिले मे घोषणा-पत्र की तैयारी। इन चुनावो मे ३॥ करोड नागरिको को मताधिकार मिला हुआ था। फिर मुस्लिम और परिगणित जातियो की सीटो के लिए भी चुनाव लडने का इरादा था। ऐसी दशा मे घोषणा पत्र-द्वारा काग्रेस का सन्देश, गॉव-गाँव मे पहुँचाना था। काग्रेस महासमिति ने २२, २३ अगस्त १९३६ को बम्बई मे इस घोषणा-पत्र को स्वीकार किया।

मजदूर कमेटी ने, जिसके मत्री कृपलानीजी थे, अपना कार्यक्रम बनाया। इसमे मजदूर यूनियनो के सगठनो और औद्योगिक झगडो के बारे मे सूचना एकत्र करना था। यहाँ एक ज्यादा दिलचस्प और अहम बात यह थी कि अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस ने काग्रेस-मजदूर-कमेटी के सदस्यो से मिलने की इच्छा प्रकट की।

इस पर ट्रेड यूनियन काग्रेस, नेशनल फेडरेशन ऑव ट्रेड यूनियन, अ० भा० रेलवे मैन्स फेडरेशन, अहमदाबाद टेक्स्टाइल लेबर एसोसियेशन, अ० भा० पोस्टल और आर० एम० एस० यूनिर्यन और अ० भा० प्रेस कर्मचारी फेडरेशन के प्रतिनिधियो को कमेटी ने अपनी अगली बैठक के मौके पर बुलाया। इसके अलावा बम्बई मे अ० भा० ट्रे० यू० काग्रेस का जो पन्द्रहवा अधिवेशन हुआ उसमे काग्रेस सभापति को आमन्त्रित किया। यह जलसा १७, १८ और १९ मई को हुआ। इसकी अध्यक्षा श्रीमती मणीबेन कारा थी। सम्मेलन मे देश के मिल-मालिको का ध्यान इस ओर खीचा गया कि वे मजदूरो को अपना संगठन करने के लिए आवश्यक सुविधाएँ दे, कायदे से बनी हुई यूनियनो की सत्ता को स्वीकार करे और उनसे समझौते की बातचीत करे। इसके अतिरिक्त वे लोग उन मजदूरो को, जो यूनियन मे काम करते हो, कोई कष्ट न दे। धारासभाओ मे जो काग्रेस दल थे उनसे मजदूरो के लिए उचित वेतन और उनके साथ सद्व्यवहार के लिए कानून बनवाने की सिफारिश की गयी। ब्रिटिश और भारत की काग्रेस कमेटियो और रियासतो का ध्यान इस ओर खीचा गया कि मजदूरो की हालत सुधारने के लिए कदम बढाने की सख्त जरूरत है और औद्योगिक श्रम की बेहतरी के मामलो मे दिलचस्पी लेना आवश्यक है। रेलवे कम्पनियो का काम सरकार के हाथो मे आता जा रहा था। सरकारी रेलो मे छंटनी हो रही थी और निचले दर्जे के नौकरो के वेतन घटाये जा रहे थे। इस सिलसिले मे जो सवाल उठ खडे हुए थे उन पर मजदूर कमेटी और सम्मेलन ने कार्यकारिणी से सिफारिश की कि वह उपयुक्त प्रस्ताव पास करे।

अनुशासन का अभाव

इस तरह यह जाहिर है कि काग्रेस पार्लमेण्टरी काम तेजी से बढ रहा था। इस काम को सफलता-पूर्वक करने के लिए अनुशासन की आवश्यकता थी। लेकिन अनुशासन का अभाव चारो तरफ दिखाई दे रहा था। सभापति की स्थिति भी विचित्र थी। अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए प० जवाहरलाल नेहरू ने कहा—"सभापति की हैसियत से मै काग्रेस का प्रमुख कार्य-निर्वाहक था और यह आशा की जा सकती है कि मै उस सस्था का प्रतिनिधित्व करता था। लेकिन नीति-सबधी कुछ बडे सवालो पर मै बहुमत का प्रतिनिधित्व नही करता था। यह दृष्टिकोण लखनऊ-काग्रेस के प्रस्तावो से प्रकट है। इस प्रकार कार्यसमिति एक साथ मेरे और बहुमत के दृष्टिकोण को नहीं रख सकती थी।" यह एक ऐसी स्थिति थी जैसी कि बाद मे त्रिपुरी (सन् १९३९) मे और अप्रैल १९४२ मे महासमिति की इलाहाबाद वाली बैठक के बाद पैदा हुई थी। अपने मित्रो और आलोचको से जवाहरलालजी ने लखनऊ की अपनी परेशानियो का फिर जिक्र किया। उन्होने कहा, "इस विचित्र स्थिति का मेरी समाजवादी निष्ठा से कोई संबंध नही

है। लखनऊ मे जो अन्तर था वह तो केवल राजनैतिक था। लखनऊ के प्रस्तावो मे ऐसी कोई बात नही थी, जिसको समाजवादी कहा जा सके। समाजवादियो ने भी यह अनुभव किया कि सबसे अहम प्रश्न था—स्वतन्त्रता का प्रश्न, और उन्होने भी उस पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। फूट की बात बेमानी थी। जब स्वतन्त्रता की पुकार हमारे खून मे हिलोरे ला रही थी तो हममे फूट की बात कैसे उठ सकती थी? हम सहमत हो, चाहे हममे मतभेद हो, कभी-कभी हम साथ भी छोड सकते हो, लेकिन आजादी की पुकार में हम सब एक साथ है।" खादी पर उन्होने जो आलोचना की थी, उसके सिलसिले मे लोगो को उन्होने फिर जवाब दिया, "मै इस चीज़ को कई बार साफ कर चुका हूँ कि मै खादी को अपनी आर्थिक समस्याओ का अन्तिम हल नही मानता और इसलिए मै उस हल को दूसरी जगह तलाश करता हूँ। फिर भी मेरा यह विश्वास है कि आज की परिस्थिति मे खादी का एक राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक महत्व है और हमे उसे बढावा देना चाहिए।" उन्होने यह भी कहा कि रूस के सामाजिक ढाचे की नीव मे जो मौलिक आर्थिक सिद्धान्त है, मै उसमे विश्वास करता हूँ। उनका ऐसा विचार था कि रूस ने सास्कृतिक, औद्योगिक, शिक्षा-सबधी और सही अर्थो मे असाधारण प्रगति की है, लेकिन इसके माने यह नही थे कि रूस मे जो कुछ हुआ, उस सबको वह अच्छा समझते और मानते है। इसी वजह से उनका कहना यह नही था कि रूस का अधानुकरण किया जाय। इसलिए साम्यवाद की जगह उन्होने समाजवाद शब्द का प्रयोग करना उचित समझा, क्योकि साम्यवाद सोवियट रूस का द्योतक था। उनका कहना था—"मै जिस चीज़ को चाहता हूँ वह यह है कि समाज मे से मुनाफे का भाव निकल जाय और उसकी जगह समाज-सेवा की भावना आ जाय। प्रतिद्वन्द्विता की जगह सहयोग ले ले। उत्पादन लाभ के लिए न होकर उपभोग के लिए हो। वजह यह है कि मै हिंसा से घृणा करता हूँ और उसे निंद्य समझता हूँ। वर्तमान व्यवस्था हिंसा पर खडी हुई है। मै सुदृढ और समर्थ व्यवस्था चाहता हूँ, जिसने से हिसा की जडे निकाल दी गई हो, जहा घृणा लुप्त हो गई हो और उनकी जगह श्रेष्ठतर भावनाओ ने ले ली हो। इस सब को मै समाजवाद कहता हूँ।"

अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति का प्रभाव

इसी समय अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति मे दो महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। जार्ज पचम के मरने पर उनके सबसे बडे पुत्र एडवर्ड अष्टम बादशाह बने। जब वह वेल्स के राजकुमार थे तभी उनका एक अपना ढग था। उनका समाजवाद की तरफ झुकाव था और वे सामाजिक और राजसी परम्पराओ से घृणा करते थे। दीन-हीन व्यक्तियो के उत्थान से उनकी सजीव सहानुभूति थी और वह वेल्स और

दूसरी जगहो के बेकार लोगों के घर अक्सर मिलने चले जाते थे। जानबूझ कर अपनाये गये बादशाह के इस ढर्रे से बडे-बडे लोग बिगडे। मई १९३४ मे एक शाही घोषणा प्रकाशित की गई, जिसमे कहा गया कि १२ मई १७३७ को बादशाह को ताज पहनाया जायगा। सन् १९३६ मे अपनी पार्लमिेण्ट के पहले भाषण मे बादशाह ने राजगद्दी के बाद भारत जाने और वहाँ दरबार करने का इरादा जाहिर किया। लेकिन २ दिसम्बर को एक सकट उठ खडा हुआ। बात यह थी कि बादशाह ने एक अमरीकी महिला श्रीमती अर्नेस्ट सिम्पसन से विवाह करने की अपनी इच्छा अपने मन्त्रियो के सामने प्रकट की थी। श्रीमती सिम्पसन पहले ही दो पतियो को तलाक दे चुकी थी। वे दोनो ही जिन्दा थे और उनमे से एक तो ब्रिटिश नागरिक ही था। मन्त्रियो को यह प्रस्ताव पसन्द नहीं आया। ४ दिसम्बर को कामन्स-सभा मे मि० बॉल्डविन ने यह सूचना दी कि सम्राट की सरकार हीनतर स्तर की महिला से विवाह की अनुमति देने के लिए कोई विशेप कानून बनाने को तैयार नही है। तब १० दिसम्बर को बादशाह को राजगद्दी छोडने के निश्चय का सन्देश सुनाया गया। राजगद्दी-त्याग-बिल दोनो सभाओ मे बाकायदा पास हुआ और उसे शाही स्वीकृति मिली। रातोरात अधेरे और मेह मे भूतपूर्व बादशाह को समुद्र पार अपरिचित स्थान के लिए लाद दिया गया।

दूसरी घटना रुस की है। फैजपुर-अधिवेशन से ठीक एक महीने पहले २५ नवम्बर १९३६ को क्रैमलिन महल मे सोवियट रूस के नये विधान पर विचार कर उसे अपनाने के लिए २०४० प्रतिनिधि एकत्र हुए। पिछले बारह बरसो मे जो आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक और सास्कृतिक उन्नति हुई थी, उसकी यह अभिव्यक्ति थी। जरा सी देर मे एक विशुद्ध खेतिहर देश, ससार की अत्युन्नत शक्तियों मे गिना जाने लगा था और वहाँ खेती के साथ उद्योगो का भी समान रूप से विकास हो गया था। सारे काम आधुनिक वैज्ञानिक ढग से होते थे। नये विधान से नया युग आरभ हुआ और राजसत्ता का एक नया सगठन हुआ। सोवियट के आठवे अधिवेशन मे स्टैलिन ने वैधानिक कमीशन की स्थापना और उसके काम, पिछले बारह बरसो मे रूसी जीवन मे हुआ अन्तर, नये विधान की प्रमुख विशेषताएँ, उसकी मध्यवर्गीय आलोचना, उसके सशोधन और वैधानिक महत्व पर जो भाषण दिया, उसका तालियों, नारो और जयकारो से जबर्दस्त स्वागत हुआ।

फैजपुर के सारे वातावरण पर उक्त दोनो समाजवादी हलचलो का प्रभाव पडा। एक तरफ मजदूरो और किसानो के अधिकारो पर जोर दिया जाने लगा, दूसरी तरफ फासिस्टवाद और साम्राज्यवाद का विरोध किया जाने लगा। फैजपुर-काग्रेस मे विषय-निर्वाचन-समिति के सामने समाजवादी दल ने इस बात पर जोर दिया कि काग्रेस भारतीय जनता की दुनिया के गुलाम लोगो के साथ—चाहे

वे उपनिवेशो के हों अथवा तथाकथित आजाद देशो के—सोवियट रूस की जनता के साथ एकता की घोषणा करे। इस बात की आशा स्वाभाविक थी, क्योकि स्टैलिन ने कहा था, "यह इस बात का प्रमाण है कि जो कुछ रूस मे हुआ है, वह दूसरे देशो मे भी हासिल किया जा सकता है।" इस पुकार का एक महीने के ही अन्दर कांग्रेस समाजवादी दल ने फैजपुर में जवाब दिया।

फैज़पुर-कांग्रेस : १९३७

रूसी विधान के पास होने के चार सप्ताह बाद और एडवर्ड के राजगद्दी छोडन के दो सप्ताह बाद एक बास से बनी बस्ती मे जिसका नाम 'तिलकनगर' था, फैजपुर अधिवेशन हुआ। यह अपने ढग का पहला अधिवेशन था। गाधी जी ने स्वय यहाँ की सारी व्यवस्था को बारीकी के साथ देखा था। फैजपुर मे सौभाग्य से चालक-शक्ति शकरराव देव थे, जो गाधीजी के अनन्य और समझदार अनुयायी थे। इसके साथ ही उनमे असाधारण व्यवहार-बुद्धि थी। सभापति प० जवाहर लाल नेहरू भी इस बीच मे काफी नर्म हो गये थे। पिछले आठ महीनो में उन्होने जिस असलियत को पकडा उससे उनके और चारो चरफ के वातावरण के बीच जो खाई थी वह पट रही थी। अपने राष्ट्रपति-पद से दिये गए भाषण में उन्होन खान अब्दुल गफ्फार खॉ और हाल मे छुटे हुए श्री एम० एन० राय का स्वागत करते हुए यूरोप मे फासिस्टवाद के विजयपूर्ण प्रवाह की चर्चा की और उसका ढर्रा बताया। साथ ही इस बात की तरफ भी लोगो का ध्यान आकृष्ट किया कि अगर रोक-थाम न की गई तो उसका लाजिमी नतीजा ससारव्यापी महायुद्ध होगा। उन्होंने बताया कि प्रतिक्रियावादी शक्तियो की इस प्रतिक्रिया के बीच कांग्रेस आज भी भारत मे पूरी तरह लोकतत्र लाना चाहती है और उसी के लिए लडती है। वह साम्राज्यवाद-विरोधी है और वह राजनैतिक और सामाजिक ढॉचे मे बडे-बडे परिवर्तनो की कोशिश मे है। मेरी ऐसी आशा है कि घटनाओ के प्रवाह मे समाज-वाद आ जायगा, क्योकि मुझे ऐसा लगता है कि भारत की आर्थिक बीमारी का सिर्फ वही एक इलाज है। इसके बाद वह राष्ट्रीय समस्याओ की तरफ मुडे। उन्होने नये विधान, चुनाव के घोषणापत्र, विधान-परिषद, धारासभा के लिए निर्वाचित कांग्रेस सदस्यो के सम्मेलन, सघीय ढॉचे के विरोध की आवश्यकता और एक नये सिरे से विधान बनाने की बातो की चर्चा की। फिर उन्होने पद-ग्रहण के प्रश्न की विस्तार-पूर्वक विवेचना की और इस बात की याद दिलाई कि किस तरह लखनऊ मे उन्होने यह बात साफ की थी कि पद-ग्रहण से विधान को अस्वीकार करने की बात ही उड जायगी। उन्होने आगे कहा, "हमारे सामने असली उद्देश्य यह है कि देश की सारी साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियो का एक सयुक्त मोर्चा तैयार किया जाय। कांग्रेस ऐसा सयुक्त सार्वजनिक मोर्चा पहले

भी थी और अब भी है और यह बात लाजिमी है कि जो कुछ काम हो, उसकी धुरी और बुनियाद काग्रेस ही हो। सगठित मजदूरो और किसानो के सक्रिय सहयोग से यह मोर्चा और भी मजबूत होगा और हमे उसके लिए कोशिश करनी चाहिए।"

काग्रेस ने फैजपुर मे एक प्रस्ताव द्वारा देश को चेतावनी दी कि अगर लडाई छिडे तो उसको युद्ध के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा होने वाले अपने धन और जन के शोषण को रोकना चाहिये और यह भी कहा कि उस लड़ाई मे न कोई चन्दे दिये जाय, न कर्ज, न लडाई की तैयारियो मे ही मदद दी जाय। इसके अलावा देश की सीमाओ मे शान्ति और पडोसियों से दोस्ती बनाए रखने की कोशिश की जानी चाहिए। काग्रेस का ऐसा विश्वास है कि सीमाप्रान्त मे जो सरकारी नीति है वह असफल रही है, क्योकि उसका निर्माण साम्राज्यवादी हितो की दृष्टि से हुआ है। काग्रेस का विश्वास है कि वहाँ के पठानो पर खूखार होने का जो दोप लगाया गया है, वह निराधार है और उन लोगो के साथ दोस्ताना बर्ताव करके उनका सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। भारत सरकार की हजारो भारतीयो को अनिश्चित काल के लिए नजरबन्द रखने की अमानुषिक नीति की भी निन्दा की गई। उनकी छूट और तीन नजरबन्दो की कथित आत्महत्या के सिलसिले मे जाँच की माँग की गई और साथ ही अडमान कारावास को बन्द करने के लिए भी कहा गया।

फैजपुर के सबसे महत्वपूर्ण विषय चुनाव और विधान-परिषद से संबधित थे। इसके अतिरिक्त धारासभा के लिए निर्वाचित काग्रेसियो के सम्मेलन और राज्याभिषेक-उत्सव मे साथ देने की बाते भी महत्वपूर्ण थी। पहली अप्रैल १९३७ को एक आम हडताल के लिए कहा गया। यह हडताल इस बात को प्रकट करने के लिए थी कि भारतीय जनता अवाछित विधान के लादे जाने के विरुद्ध है। काग्रेस की दृष्टि से वह विधान भारत की आजादी की लड़ाई के साथ विश्वासघात है और इसका नतीजा यह होगा कि भारतीय जनता के शोषण के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद की पकड और भी अधिक मजबूत हो जायगी। भारत अपने लिए स्वय ही विधान बनाने का अधिकार चाहता है। पद-ग्रहण की समस्या को फिर महासमिति के लिये छोड दिया गया, जिसका फैसला चुनावो के बाद करना था। लेकिन इस बीच धारासभा के काग्रेसियो, महासमितियो के सदस्यो और ऐसे व्यक्तियो का, जिन्हे कार्य-कारिणी नियुक्त करे, एक सम्मेलन करने के लिए कहा गया। चुनाव के घोषणा-पत्र का समर्थन किया गया। लखनऊ मे जो खेतिहर कार्यक्रम तैयार किया गया था, उसे कुछ सशोधनो के बाद स्वीकार कर लिया गया। चूकि काग्रेस ने पार्लमेण्टरी कार्य-क्रम बनाया था, इसलिए उस समय सविनय आज्ञा-भग आन्दोलन का कोई प्रश्न ही नहीं था।

अनुशासन के नियम

काग्रेस को मजबूत करने के लिये आम जनता से पोषण प्राप्त करना और राष्ट्रीय सस्था को हर ढग से समृद्ध बनाना था। यह आवश्यकता फैजपुर-काग्रेस के पश्चात् चुनाव से पूरी हो गयी। इससे देश मे एक सिरे से दूसरे सिरे तक राजनैतिक जाग्रति का जो तूफान आया, वह सरकारी नजर से भी छिपा न रहा। सरकार ने महसूस किया कि यद्यपि वोट देने का अधिकार आबादी के सिर्फ दसवे हिस्से को मिला था, फिर भी उससे देश में एक क्राति शुरू हो गई थी। नतीजा यह हुआ कि स्थानीय सरकारो ने काग्रेसी उम्मीदवारो को उनको जेल की सजा के या किसी और बहाने मताधिकार से वचित कर दिया था। कुछ प्रान्तो मे बराबर सक्रिय हस्तक्षेप किया गया, और शान्तिपूर्ण जलूसो, सभाओ और झडारोहण पर पाबन्दियाँ लगा दी गई। बडे काग्रेसी नेताओ के आने-जाने पर रोक लगा दी गई। खान अब्दुल गफार खा को पजाब और सीमाप्रात में घुसने नही दिया गया। कहने की जरूरत नही कि जहा इससे सरकारी रुख का पता लगता है वहाँ साथ ही इसका नतीजा यह भी हुआ कि लोगो ने काग्रेसी उम्मीदवारो की मदद मे जी-जान से काम किया। इस अवसर पर अनुशासन की अत्यन्त आवश्यकता थी। अत कार्य-कारिणी के अनुशासन सबधी पहले प्रस्तावो को रद करते हुए ये नियम बनाये गये —

(१) कॉग्रेस कमेटी, काग्रेस कार्य-कारिणी, किसी निर्वाचित काग्रेस कमेटी के सदस्य, अथवा काग्रेस के फैसलो के खिलाफ जो जानबूझ कर काम करता हो, जो नियुक्त निर्णायको और अधिकारियो की आज्ञा का उल्लघन करता हो, जो काग्रेस फड मे गबन, चोरी या हिसाब की गडबडी का दोषी हो, जो काग्रेस के सामने प्रतिज्ञा-भंग का दोषी हो, जिसने काग्रेस के मेम्बर बनाने या काग्रेस के चुनाव मे बेईमानी की हो, जो जान-बूझकर इस ढग से काम करता हो जिससे कार्यकारिणी की राय मे काग्रेस की प्रतिष्ठा और शक्ति को चोट पहुँचती हो और जिसकी वजह से उसकी सदस्यता अवाञ्छनीय हो गई हो उसके विरुद्ध अनुशासन की कार्रवाई हो सकती है।

(२) जहॉ तक काग्रेस कमेटियो का सवाल है, अनुशासन सबधी कार्रवाई यह हो सकती है कि उस कमेटी को अधिकारो से वचित कर दिया जाय।

(३) जहॉ तक कार्य-कारिणी या किसी निर्वाचित काग्रेस कमेटी के सदस्य का सवाल है, उसके खिलाफ अनुशासन सबधी कार्रवाई मे उसको उस पद से या सदस्यता मे हटाया जा सकता है और एक ऐसा समय निश्चित किया जा सकता है जब तक न वह किसी पद के लिए चुना जा सकता है और न किसी कमेटी का सदस्य ही हो सकता है।

(४) जहाँ प्रारभिक काग्रेस संगठन के सदस्य का सवाल है, उस को निश्चित समय तक किसी चुनाव मे खडा होने के लिए अयोग्य घोषित किया जा सकता है। साथ ही उस अवधि मे सदस्यता के दूसरे अधिकारो से उसे वचित किया जा सकता है और इसके अलावा उसके काग्रेस सदस्य बनने पर भी रोक लगाई जा सकती है।

(५) अनुशासन संबंधी कोई भी कार्रवाई करने से पहले अपराधी कमेटी, या व्यक्ति को, अपनी सफाई पेश करने और अपने विरुद्ध आक्षेपो का उत्तर देने का अवसर दिया जायगा।

(६) प्रान्तीय काग्रेस कमेटियो की कार्य-समितियों को भी अनुशासन सबधी कार्रवाई करने का अधिकार होगा जिसका उपयोग वे अपने अधीन सभी कमेटियो और सदस्यो पर कर सकती हैं। अभियुक्त कमेटी और व्यक्ति को कार्य-कारिणी से अपील करने का अधिकार होगा, लेकिन अपील तय होने तक उसे उस आज्ञा का पालन करना होगा जो कि पहले जारी हो चुकी है और जिसके ख़िलाफ अपील की गई है।

(७) जब कार्यकारिणी काम न कर रही हो उस समय अनुशासन संबंधी मामलो मे जहाँ तात्कालिक ध्यान देने की जरूरत हो राष्ट्रपति कार्रवाई कर सकता है और यह काम वह कार्य-कारिणी की ओर से और उसी के नाम पर करेगा। ऐसी परिस्थितियों मे राष्ट्रपति को कार्यकारिणी की अगली बैठक पर अपने सारे निर्णय उसके सामने रखने होगे और उसकी स्वीकृति लेनी होगी।

चुनाव में कांग्रेस की विजय

फैजपुर-अधिवेशन के पश्चात् ही चुनाव हुआ। इस चुनाव मे काग्रेस के ५८ मुस्लिम उम्मीदवारो ने ४८२ मे से २६ सीटें जीती, जिनमे अधिकाश सीमाप्रान्त मे थी। ४२४ गैर-काग्रेसी मुसलमान जीते। २ करोड ८० लाख लोगो ने वोट दिये। कुल निर्वाचको की यह संख्या ५५ फ़ीसदी थी। प्रान्तीय धारा सभाओ मे कुल १५८५ सीटे थी। इनमे से ७११ काग्रेस के हाथ मे आई और पॉच प्रान्तो—मद्रास, यू० पी०, सी० पी०, बिहार और उड़ीसा में उसका स्पष्ट बहुमत रहा। चार प्रान्तो यानी बगाल, बम्बई, आसाम और सीमाप्रान्त मे अकेले, कॉग्रेस पार्टी सबसे बड़ी थी। सिध और पंजाब की एसे-म्बलयों मे काग्रेस अल्पसंख्यक थी।

शपथ की समस्या

चुनावो मे काग्रेस की जीत तो हुई पर उसके साथ ऐसी कठिन समस्याएँ आई, जिनको हल करना पूरी तरह काग्रेस के हाथ मे नहीं था। इसमे राजभक्ति की

शपथ एक बडी परेशानी थी। बहुत से लोगो की आत्मा इस बात को गवारा नही करती थी कि पुराने रवैये के मुताबिक अंग्रेज बादशाह के प्रति राजभक्ति की शपथ ली जाय। इस सिलसिले मे शक उठ खडा हुआ था। ऐसी स्थिति मे बादशाह के लिए वफादारी की शपथ लेने से पहले ही सम्मेलन ने नये निर्वाचित सदस्यो को राष्ट्रीय स्वतन्त्रता और हिन्दुस्तान की जनता के प्रति वफादारी की शपथ दिलाई, जो इस प्रकार थी —

"मै, जो कि अखिल भारतीय सम्मेलन का सदस्य हूँ, इस बात की शपथ लेता हूँ कि मै हिन्दुस्तान की सेवा करूँगा, धारासभा के बाहर और भीतर, हिन्दुस्तान की आजादी के लिए काम करूँगा और हिन्दुस्तानी जनता की गरीबी और उसके शोषण को खत्म करने की कोशिश करूँगा। मै इस बात की शपथ लेता हूँ कि मैं काग्रेस के आदर्श और उद्देश्यो को हासिल करने के लिए काग्रेस के अनुसासन में काम करूँगा ताकि हिन्दुस्तान आजाद हो और उसके करोडो निवासी जिस बोझ और तकलीफ से पिस रहे है उससे छुटकारा पा जाय।"

कांग्रेस की निर्देशक नीति

राष्ट्र के सामने तात्कालिक काम धारासभाओ मे काग्रेस नीति को विस्तार-पूर्वक स्पष्ट करना था। इसके लिए सक्षेप मे निर्देशक-नीति यह थी—

(१) काग्रेस धारासभाओ मे नये विधान और सरकार से सहयोग के लिए नही, बल्कि उनसे लडाई लडने के लिए घुसी है। इसलिए काग्रेस अपनी उस बुनियादी नीति पर जमी हुई है कि जब तक परिस्थितियो के कारण परिवर्तन आवश्यक न हो, ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासन की मशीनरी से असहयोग करना चाहिये।

(२) काग्रेस का उद्देश्य है, पूर्ण स्वराज्य। काग्रेस के सारे काम उसी तरफ केन्द्रित है। काग्रेस हिन्दुस्तान मे सच्ची लोकतत्रीय सरकार चाहती है, जिसमे राजनैतिक सत्ता भारतीय जनता के हाथो मे हो और उस जनता का सरकारी ढॉचे पर सफल नियत्रण हो।

(३) धारासभाओ मे काग्रेस का तात्कालिक उद्देश्य नये विधान का विरोध करना है, इस नये ऐक्ट के सघीय भाग को लागू होने देने से रोकना है और साथ ही विधान परिषद् के लिए राष्ट्र की मॉग पर जोर देना है।

(४) धारासभा के काग्रेसियो को यह बात याद रखनी है कि वे किसी ऐसे काम अथवा जलसे मे शामिल न हो, जिससे हिन्दुस्तान मे ब्रिटिश साम्राज्यवाद की शक्ति अथवा प्रतिष्ठा बढती हो।

(५) धारासभा का कोई काग्रेसी ब्रिटिश सरकार द्वारा दिये हुए किसी खिताब को स्वीकार नही कर सकता।

(६) हर सदस्य को प्रान्तीय धारासभा मे काग्रेस पार्टी के अनुशासन के

साथ काम करना होगा। सरकार अथवा किसी दूसरे समुदाय से वातचीत करने के लिए उस दल के नेता प्रतिनिधित्व करेगे।

(७) धारासभा के अधिवेशन के समय जब पार्टी उसमे हिस्सा ले रही हो, तव सव सदस्यो की उपस्थिति आवश्यक होगी।

(८) धारासभा के सारे कांग्रेसी सदस्य खादी की पोशाक मे होगे।

(९) प्रान्तीय धारासभाओ मे काग्रेस पार्टियो को किसी दूसरे समुदाय से कार्य-कारिणी की अनुमति विना कोई समझौता नही करना चाहिए।

(१०) यदि प्रान्तीय धारासभा का कोई सदस्य, जो काग्रेस की तरफ से नही चुना गया है, लेकिन जो काग्रेस की शपथ लेकर उसके सिद्धान्तो और अनुशासन को मानने के लिए तैयार है, और पार्टी उसका साथ वाछनीय समझती है तो वह उसको पार्टी मे दाखिल कर सकती है। लेकिन यदि कोई ऐसा आदमी है जिसके खिलाफ काग्रेस ने अनुशासन सवधी कार्रवाई की है तो उसको विना कार्य-कारिणी की अनुमति के दाखिल नही किया जा सकता।

(११) काग्रेस सदस्यो को इस वात की कोशिश करनी चाहिये कि घोषणा-पत्र और खेतिहर प्रस्ताव मे जो कार्यक्रम है उस पर अमल किया जाय।

(१२) वर्तमान एक्ट मे सरक्षण तथा गर्वनर और वायसराय के विशेषाधिकारो के कारण गतिरोध होना अनिवार्य है। काग्रेसी नीति के पालन मे यदि ऐसी स्थिति पैदा हो तो उससे वचने की कोशिश नही होनी चाहिये।

(१३) प्रान्तीय धारासभा के काग्रेसियो को सिविल शासन का व्यय घटाने, तथा व्यापार, तट-कर और मुद्रा पर पूर्ण राष्ट्रीय नियत्रण की माग करनी चाहिये। वोलने और लिखने की आजादी के लिए जोर देना चाहिये। इनके अलावा युद्ध की तैयारियो और युद्ध-ऋणो का विरोध करना चाहिये।

(१४) धारासभा के भीतर और वाहर के काम मे सामजस्य होना चाहिये और जो मागे की जाये उनके पीछे सार्वजनिक समर्थन प्राप्त कर लेना चाहिये।

राष्ट्रीय सम्मेलन

चुनाव मे कागेस की विजय पर चारो तरफ खुशियाँ मनाई जा रही थी। परन्तु जहाँ आशाएँ थी वहाँ उनके साथ डर भी मिला हुआ था। ऐसी हालत मे दिल्ली मे राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ। उससे पहले १७ मार्च को महासमिति की वेठक हुई और १७ मार्च को ही शाम को श्री सुभापचन्द्र वोस को विना किसी शर्त के छोड दिया गया। पॉच वरस से ज्यादा से वह निर्वासित या नजरवन्द थे। वह जिस समय छोडे गये उनका स्वास्थ्य वेहद खराव था। उनकी छूट पर राष्ट्रपति ने महासमिति की तरफ से उनका स्वागत किया और उनके शीघ्र स्वास्थ्य-लाभ की शुभ कामनाए की। पद-ग्रहण के सवाल पर महासमिति ने

इस वात का अधिकार तथा अनुमति दी कि जिन प्रान्तो मे काग्रेस का वहुमत है वहाँ यदि उस प्रान्तीय धारासभा की काग्रेस पार्टी को इस वात का विश्वास हो और यदि वह इस वात को खुले आम घोषित कर सके कि गवर्नर हस्तक्षेप के अपने विशेषाधिकारो का उपयोग नही करेगा या वैधानिक कार्रवाई मे मंत्रियो के निर्णय को नही टालेगा तो वहाँ पद-ग्रहण किया जा सकता है। इसके वाद सम्मेलन हुआ और सारे सदस्यो ने एक स्वर से हिन्दुस्तानी मे शपथ ग्रहण की। फिर यह राष्ट्रीय माग पेश हुई :—

"यह सम्मेलन भारत की जनता की इस राय को फिर दुहराता है कि सन् १९३५ के गवर्नमेण्ट ऑफ इडिया एक्ट से भारत की गुलामी और उसके शोषण की जड मजवूत होती है।

"यह सम्मेलन इस वात की घोषणा करता है कि भारतीय जनता किसी विदेशी शक्ति या सत्ता के इस अधिकार को नही मानती कि वह भारत के राजनैतिक और आर्थिक ढाचे का निर्देश करे।

"यह सम्मेलन भारत के लिए सच्ची लोकतत्रीय राज-सत्ता के पक्ष मे है जिसमे राजनैतिक शक्ति देश की जनता के हाथ मे हो। ऐसी राजसत्ता की स्थापना खुद भारतीय जनता ही कर सकती है और इसके लिए जो माध्यम है, वह है विधान-परिषद, जो वयस्क मताधिकार से निर्वाचित होनी चाहिये और जिसको देश का विधान वनाने का पूर्ण और अन्तिम अधिकार होना चाहिये।

"इसलिए यह सम्मेलन काग्रेस पार्लमेण्टरी पार्टियो को आदेश देता है कि वे राष्ट्र के नाम पर अपनी-अपनी धारासभाओ मे इस विधान के वापस लिए जाने की माँग करे ताकि हिन्दुस्तानी जनता अपना विधान वना सके।"

नए एक्ट का विरोध

पहली अप्रैल १९३७ आई और चली गई। उस दिन एक तरफ तो शाति-पूर्ण हडताल हुई और दूसरी तरफ तीन महीने के लिए जवर्दस्त प्रचार-कार्य शुरू हुआ। ग्यारह मे से जिन छ प्रान्तो मे पार्टी का वहुमत था, वहाँ न तो वह पद-ग्रहण ही करती और न उस तरफ से अपना हाथ ही खीचती। अगर काग्रेस पार्लामेण्टरी मैदान खाली कर देती तो सरकार अपना काम जानती थी। दूसरी तरफ अगर काग्रेस पद-ग्रहण करती तो सरकार फौरन नये वातावरण से अपना मेल विठा लेती। नौकरशाही अपना रग वदलने मे होशियार थी। मौका पाने पर वह पार्टी के लोगो को उखाड फेकती, लेकिन काग्रेस सरकार को मनमानी खेलने का मौका देने को तैयार नही थी। भारत के, शायद दुनिया के, इतिहास मे यह एक पहली सस्था थी जिसने गवर्नर से यह आश्वासन माँगा कि वह अपने विशेषाधिकार से हस्तक्षेप नही करेगा और मन्त्रियो के वैधानिक काम को नही टालेगा।

विशेषाधिकार खुद एक्ट से ही मिले हुए थे और उनको बडे सोच-विचार के बाद 'विशेष' नाम दिया गया था। फिर गवर्नर इन सरक्षणो को कैसे छोडते जिनको कानून ने उन्हीमे निहित किया था, जिनकी शासक सत्ता के स्थापित स्वार्थों के लिए आवश्यकता थी और जिनके बलबूते पर ही असलियत मे गुलाम देश की लोकतत्री कार्रवाई को रोका जा सकता था? ऐसे आश्वासनो को माँगने की वैधानिकता पर एक जबर्दस्त लडाई हुई। राष्ट्र के सामने वैधानिकता अथवा अवैधानिकता का प्रश्न नही था। जो विधान सामने था उसके लिए भारत जिम्मेदार नही था। उस विधान मे न तो आत्म-निर्णय की झलक थी, न सयुक्त निर्णय ही था, बल्कि असल मे कुछ और ही निर्णय था जो बाहर से लादा गया था। यदि ऐसे विधान को भारतीय अमल मे लाते तो साफ है कि ऐसा वे अपनी खास शर्तो पर ही करते, वरना नये एक्ट के अध्यायो और उसकी धाराओ के अनुसार कानून और विधान अपना रास्ता पकड़ते। अगर गति-रोध होते तो उसमे भारत का क्या दोष? एक ओर ब्रिटिश सरकार ने जान-बूझकर भारतीय जनता की घोषित इच्छा के विरुद्ध नीति अपनाई थी, दूसरी ओर महासमिति ने नये विधान के विरोध का इरादा किया था। चुनाव के मौके पर निर्वाचन-क्षेत्रो मे ये दोनो बाते समझा दी गई थी। गति-रोध होना अनिवार्य था, यह बात साफ कर दी गई थी और साथ ही यह बात भी कि इससे ब्रिटिश-साम्राज्यवाद और भारतीय राष्ट्रीयता का जन्मजात विरोध और उभडेगा और तब नये विधान का अलोकतत्रीय और निरकुश स्वरूप और भी ज्यादा स्पष्ट होगा। इस विधान के निजी गुण-दोष पर भी काग्रेस उसे नही अपना सकती थी। लेकिन जहाँ कानूनी और वैधानिक पक्ष का सबध है वहाँ यह कहना आवश्यक है कि गाधीजी ने यदि काग्रेस के रुख को सही बताया तो वह एक राजनैतिक दल के नेता की हैसियत से नही, बल्कि एक वैधानिक वकील की हैसियत से, जिसको साम्राज्य के सुदूर प्रदेशो का पर्याप्त अनुभव था। भारत और इगलैड मे कानूनी लोगो ने विरोध किया। सबसे पहले मत का विरोध सर तेज बहादुर सप्रू ने किया और इस माँग को अमान्य बताया। कानून के ऐसे धुरधर के विरोध मे दो कानूनी पंडित सामने आये—एक श्री तारापोरावाला और दूसरे डा० बहादुरजी। उन्होने निश्चित रूप से अपना सुचिन्तित मत यह बताया कि आश्वासनो के लिए काग्रेस की माग किसी भी दृष्टि से कानून या विधान के लिए अमान्य नही है। इस समय जब कि भारतीय मन दो दलो मे बँटा हुआ था, इगलैड के कानूनी महारथी बेरीडेल कीथ ने काग्रेस-मत को सुदृढ किया और उसकी मागो की वैधानिकता का समर्थन किया। इंगलैड के दैनिक पत्र भारतीय नेताओ के दृष्टिकोणो में दिलचस्पी ले रहे थे। लन्दन के 'न्यूज क्रोनीकिल' में पं० जवाहरलाल नेहरू के बयान के जवाब मे लार्ड लोथियन ने लिखा कि यह विधान ब्रिटिश पार्लमेण्ट ने अपनी जिम्मेदारी पर बनाया है और उसमें भारतीय स्वशासन की

दिशा मे एक रास्ते का सुझाव है। मि० नेहरू और उनके दोस्त दूसरे रास्ते में यकीन करते हैं। विधान इस अनुभव के आधार पर बना है कि तात्कालिक स्व-शासन के सब से बडे रोडे खुद भारत मे ही हैं।

गवर्नरो के विशेषाधिकार कुछ समुदायो, स्थापित स्वार्थों और क्षेत्रों से सबधित थे। समुदाय थे—अल्पसख्यक दल, स्थापित स्वार्थ थे—ब्रिटिश स्वार्थ और क्षेत्र थे—ब्रिटिश भारत और भारतीय रियासतो के कुछ छँटे हुए भाग। उस माँग का मतलब यह था कि गवर्नर आस्ट्रेलिया के गवर्नरो की तरह ही काम करे। वह अपनी इच्छा से मन्त्रियो को पद-च्युत न करे, मंत्रियो की कौसिल मे सभापति न बने, शान्ति और सुरक्षा के नाम पर आर्डिनेन्स न बनायें, एडवोकेट जनरल नियुक्त करने मे उसका कोई हाथ न हो और न वह पुलिस के नियम बनायें।

ब्रिटिश मन्त्रियो का यह कहना था कि जब तक एक्ट मे सशोधन न कर दिया जाय, काग्रेस के मागे हुए आश्वासन देना गवर्नर के हाथ की बात नही है। दूसरी तरफ कार्यकारिणी को प्रमुख वैधानिको ने यह परामर्श दिया था कि विधान के अन्तर्गत ऐसे आश्वासन दिये जा सकते हैं। लार्ड ज़ेटलैंड और आर० ए० बटलर के वक्तव्य से काग्रेस की नाराज़गी बढ गई। वजह यह थी कि उस वक्तव्य से गलत-फहमी होती थी और उसमे काग्रेस दृष्टिकोण को तोड-मरोडकर उसके गलत अर्थ लगाये गये थे। सबसे बड़ी बात यह थी कि जिस ढग से और जिस स्थिति मे यह बयान दिया गया था उसमे काग्रेस के प्रति अशिष्टता थी। इसी बीच काग्रेसी बहुमत के प्रान्तो मे मन्त्रिमण्डल बनने लगे जो बिलकुल अवैधानिक थे, जिनमे स्वतत्रता की गध भी नही थी और जिनमे उन प्रान्तो के सार्वजनिक बहु-मत की अवहेलना की गई थी। सारे देश मे आम सभाएँ की गईं और तथाकथित मन्त्रियो की निन्दा की गई।

पद-ग्रहण का प्रश्न

परस्पर विरोधी राजनैतिक और कानूनी मतो को लेकर तारो और केबिलो द्वारा लडाई होती रही, लेकिन भारत-मत्री या भारत-सरकार पर इसका कोई असर दिखाई नही दिया। इस तरह तीन महीने बीते। तब जून के तीसरे सप्ताह मे वायसराय ने एक बयान निकाला। लेकिन उनके बीच मे आने से मामले कोई ज्यादा सुधर नही गये और न कोई छोटा रास्ता ही निकला। उसका उद्देश्य असहानुभूति का भी नही था। काग्रेस ऐसा अनुभव करती थी कि जब तक गवर्नरो से कुछ आश्वासन न मिले, एक्ट के आधार पर पद-ग्रहण करना बुद्धिमानी नही होगी। वाइसराय पिछले तीन महीनो के अनुभव से यह सिद्ध कर रहे थे कि जिन प्रान्तो मे मन्त्रिमडल बने थे वहाँ सरकारी कर्मचारियो से काफी सहयोग मिल रहा था और साथ ही गवर्नर भी सहायता, सहानुभूति और सहयोग के साथ

काम कर रहे थे। वायसराय ने अपने मन में काग्रेस की आशकाओं को मानते हुए यह बताया कि उनके लिए व्यवहार मे इस बात का कोई आधार नही था कि गवर्नर मन्त्रिमडल की नीति में हस्तक्षेप करेंगे ही, लेकिन उस स्थिति मे क्या होगा, जहाँ गवर्नर को निज-निर्णय का अधिकार हो और जहाँ गवर्नर और मन्त्रिमडल मे जबर्दस्त मतभेद हो ? मन्त्रियो को सारे क्षेत्र मे, यहाँ तक कि विशेषाधिकार के क्षेत्र में भी, परामर्श देने का अधिकार है। ऐसे परामर्श के लिए मत्री धारा-सभा के प्रति उत्तरदायी है। विशेषाधिकार के सीमित क्षेत्र मे अपने काम के लिए गवर्नर पार्लामेण्ट के प्रति उत्तरदायी है, लेकिन जब गवर्नर मन्त्रियो के परामर्श को नही मानता तब उस निर्णय की जिम्मेदारी उसी की है। मत्री उस जिम्मेदारी से मुक्त है और उन्हे इस बात को खुले आम कहने का हक है कि उस मामले में जो फैसला हुआ है उसमे उनका कोई हाथ नही है। वायसराय ने गाधीजी के इस सहायक सुझाव का स्वागत किया और कहा, "गवर्नर और मन्त्रिमडल के सबध टूटने का सवाल तो उस समय ही आना चाहिये जब उनमें बडा जबर्दस्त मतभेद हो। सिर्फ ऐसी ही हालत मे मन्त्रिमंडल को या तो इस्तीफा देना चाहिये या उसको पदच्युत कर देना चाहिये। इस्तीफे में आत्म-सम्मान है और मन्त्रिमडल का स्वेच्छा-पूर्ण काम है। पदच्युत करना अस्वाभाविक है और उसमें हीनता का बोध होता है। दोनों बाते सभव है, लेकिन ऐक्ट की नीयत यह नही है कि गवर्नर के पदच्युत करने की माँग से मन्त्रिमडल विवश होकर त्याग-पत्र दे। आमतौर से गवर्नर और मन्त्रि-मडल में जो मतभेद होगे वे दोनो ओर की सद्भावनाओ से आपसी समझौते द्वारा सुलझ जाने चाहिये। गवर्नर इस बात के लिए उत्सुक है कि झगडे न हो और ऐसे झगडे न होने देने के लिए वह कोई कसर नही उठा रखेगा। इस तरह व्यवहार मे कार्य-सचालन गवर्नर के नाम से होगा, लेकिन मन्त्रिमडल के क्षेत्र में कुछ पाबन्दियो को छोडकर गवर्नर अपना शासन-सचालन मंत्रियो के परामर्श से ही करेगा। कुछ सीमित और सुनिश्चित मामलो मे और जगहो की तरह यहाँ भी पहली जिम्मेदारी तो मन्त्रिमडल की ही होगी, लेकिन गवर्नर अन्त मे पार्लामेण्ट के प्रति उत्तरदायी होगा। शेष क्षेत्र में केवल मन्त्रिमडल की ही जिम्मेदारी है और वह सिर्फ प्रान्तीय धारासभा के सामने ही जवाबदेह होगा। विशेष उत्तर-दायित्व के मामलो मे गवर्नर मन्त्रिमडल के परामर्श से भिन्न मार्ग अपना सकता है और ऐसे मामलो मे फैसला उसी के हाथ मे होगा और इसके लिए वह पार्लामेण्ट के प्रति उत्तरदायी है। इसका अर्थ यह नही है कि गवर्नर आजाद है, या उसको इस बात का हक है कि अपने विशेष उत्तरदायित्व के क्षेत्र के अलावा वह प्रान्त के दैनिक शासन मे हस्तक्षेप कर सकता है। कठोर व्यवस्थाओ मे नहीं. [illegible] [illegible] काम करने की नीति मे किसी हालत मे वैधानिक [illegible] नहीं है। विधान मे असाधारण परिस्थितियों की व्यवस्था का अर्थ यह नहीं है कि ऐसी असाधारण

परिस्थितियाँ सामने लाने की इच्छा है। उस पूर्णतर राजनैतिक जीवन के लिए, जिसे आपमे से बहुत से लोग जी-जान से चाहते है, सबसे छोटा मार्ग इस विधान को अपनाना और उसको उसी के गुण-दोष के अनुसार अमल मे लाना है। इस विधान को पूरी तरह अमल मे लाने और उसके अनुसार आगे बढने मे ही देहाती जनता और समाज के निचले वर्ग के कष्टो को स्थायी रूप से घटाने और उन्हे दूर करने की, सर्वोत्तम आशा निहित है।"

कार्यकारिणी की बैठक

२० जून १९३७ के वाइसराय के भाषण के बाद तत्काल जुलाई मे कांग्रेस की स्थिति को कांग्रेस की कार्य-कारिणी के उस समय के प्रस्तावो से सक्षिप्त उद्धरण लेकर व्यक्त किया जा सकता है। राष्ट्रीय सम्मेलन से पहले १८ मार्च को दिल्ली मे महासमिति की जो बैठक हुई थी, उसमे पद-ग्रहण के प्रश्न पर यह कहा गया था कि उन प्रान्तो मे जहाँ धारासभा मे कांग्रेसी बहुमत हो और जहाँ कांग्रेस पार्टी के *नेता को यह विश्वास हो और इसकी वह खुली घोषणा कर सके कि गवर्नर मन्त्रियो* के वैधानिक कामो मे हस्तक्षेप नही करेगा, वहाँ मत्रिमडल बनाया जा सकता है। इसके अनुसार विभिन्न प्रान्तो के कांग्रेसी नेताओ ने आश्वासन मागे और उनके अभाव मे मत्रिमडल बनाने की अपनी असमर्थता प्रकट की। इस बीच भारत-मत्री, उपमत्री और वाइसराय ने ब्रिटिश सरकार की ओर से उस समस्या पर कुछ बातो की घोषणाए की जिनके आधार पर कार्य-कारिणी ने ऐसा महसूस किया कि परिस्थितियो का कुछ ऐसा जोड बन गया है कि गवर्नरो के लिए अपने विशेषाधिकारो को उपयोग मे लाना सरल न होगा। इसीलिए जुलाई के पहले सप्ताह मे वर्धा मे कार्य-कारिणी ने अपनी बैठक मे यह प्रस्ताव पास किया —

"इसलिए कमेटी इस नतीजे पर पहुची है कि जहा कांग्रेसियो को मत्रिमडल बनाने के लिए आमन्त्रित किया जाय वहाँ उन्हे मत्रिमडल बना लेना चाहिये। किन्तु वह इस बात को भी स्पष्ट करना चाहती है कि पद-ग्रहण करके चुनाव के घोषणा-पत्र के अनुसार काम करने और उसकी बातो को ही पूरा करने के लिए कोशिश होनी चाहिये, जिसके अनुसार एक ओर तो नये विधान के सबध मे कांग्रेसी नीति होगी और दूसरी ओर रचनात्मक कार्य-क्रम को चलाया जायगा।"

पद-ग्रहण : जुलाई १९३७

वर्धा म कार्य-कारिणी द्वारा पद-ग्रहण का निश्चय करने पर कांग्रेसी बहुमत के प्रान्तो के अन्तर्कालीन मत्रिमडलो ने त्याग-पत्र दे दिये। गवर्नरो ने अपने-अपने प्रान्त की कांग्रेस-पार्टी के नेताओ को आमन्त्रित किया कि वे नये मन्त्रिमडल बनाने मे उसकी (गवर्नर की) सहायता करे। मुलाकाते सतोषप्रद हुई और नेताओ ने मत्रिमडल बनाना स्वीकार कर लिया तथा गवर्नरो

को अपने साथियो के नाम दे दिये। जैसा कि काग्रेस कार्य-कारिणी पहले कह चुकी थी, रहने और सवारी के लिए सरकारी इन्तजाम के अलावा, मत्रियो, प्रमुखो और एडवोकेट-जनरलो का वेतन ५००) रु० प्रति मास निश्चित किया गया।

पद-ग्रहण से राष्ट्रीय जीवन मे एक नई प्रक्रिया आरम्भ हुई। काग्रेसियो को विभिन्न प्रकार के और विभिन्न परिणाम के महत्व के शासन का अनुभव नही था। उनमे से कुछ ही लोगो को धारासभा का और उससे भी कम लोगो को सरकारी अनुभव था, किन्तु बडे प्रान्तो का शासन उनके लिए नयी चीज थी। शासन की जटिलताओ से उनका सम्पर्क न तो गहरा था और न व्यापक। इसके अलावा उनको परस्पर विरोधी हितो मे मेल कराना था और विभिन्न माँगों के साथ न्याय करना था।

एक ओर यह बात थी, दूसरी ओर जनता की आशाएं बहुत बढी-चढी थी। किसानो को राहत मिले, कर्ज घटे, मद्य-पान निषेध हो, गैरकानूनी वसूलयाबी बन्द हो, घरेलू धधो और बृहत् परिमाण के उद्योगो को बढाया जाय, शिक्षा का पुनस्सगठन हो, राष्ट्रीय सस्कृति का पुनरुत्थान हो, ग्राम-पचायतें फिर से कायम हो, न्याय सस्ता और सही हो, नये नागरिक अधिकार और कर्त्तव्यो का स्वरूप सामने आये, हरिजनो और पिछडी हुई जातियो की राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक दशा सुधारी जाय, श्रम को देश की सच्ची सम्पत्ति समझा जाय, ये सुधार थे जो मत्रियो को करने थे। इनमे से हर काम के लिए साधनो की जाच करनी थी, योजना बनानी थी और सामाजिक तथा आर्थिक मूल्य के सबध मे सार्वजनिक धारणाओ को शुद्ध और उन्नत करना था। लगभग सभी प्रान्तो मे राजनैतिक कैदी थे जिनमे कुछ हिसा के दोषी थे। ये लोग काग्रेस के हाथो छुटकारा पाने की बाट जोह रहे थे। काग्रेस की नीयत और उसके ढग पर, काग्रेस के कट्टर विरोधी तरह-तरह के सन्देह कर रहे थे।

गांधीजी-द्वारा स्पष्टीकरण

विरोधियो से गाधीजी का कहना था कि पद-ग्रहण का अर्थ यह नहीं है कि काग्रेस एक्ट को अमल मे लाना चाहती है। उसका विचार तो यह है कि इस अवसर पर पश्चिम से पूर्व की ओर, पदार्थ से निहित भावना की ओर, मशीन से दस्तकारी की ओर, धन से सेवा की ओर, सजावट से सादगी की ओर और मशीन के पहिये से चरखे के चक्र की ओर दृष्टि को मोड दिया जाय। सारे राष्ट्रीय व्यक्तित्व को इस तरह फिर से जगा दिया जाय कि भारत में अगरेजियत की जगह भारतीयता आ जाय। वह स्वय पर्याप्त हो, सादा हो, उसका राष्ट्रीय दृष्टिकोण हो और उसकी राष्ट्रीयता मे मानवता हो। ऐसी दशा में मत्रियो के लिए यह आवश्यक था कि वे पुराने मूल्यो को छोडे और नये मूल्य अपनायें।

ऐक्ट पर कानूनी ढग से अमल किया जायगा, इसे और भी स्पष्ट करते हुए गाधीजी ने कहा—"यदि तीन करोड निर्वाचको के प्रतिनिधियो मे अपना विश्वास और अपनी बुद्धि है तो वे इस ऐक्ट के उद्देश्यो को दवा सकते है। यह काम वडी आसानी से हो सकता है। वे कानून के अन्दर ही इस ऐक्ट का अप्रत्याशित ढग से उपयोग करे और उस ढग से उसका उपयोग ही न करे, जिसकी कि इसके वनाने वालो ने आशा की है।" इस तरह 'कानूनी' शव्द का अर्थ यह था कि ऐक्ट की धाराओ का इस्तेमाल करने मे कोई आपत्ति नही थी, लेकिन उसके माने ऐक्ट पर अमल करने की सलाह के नही थे।

कांग्रेस की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ

गाधीजी-द्वारा ऐक्ट के स्पष्टीकरण से सिद्ध है कि काग्रेस के सामने अनेक कठिनाइयाँ थी। सबसे वडी कठिनाई प्रान्तीय काग्रेस कमेटियो की स्थिति के सबध मे थी। उन्हीने चुनाव की तैयारी की थी। उन्होने ही उम्मीदवारो को छाँटा था। इसलिए जनता की दृष्टि मे वही सार्वजनिक अधिकारो की रक्षक और मत्रियो की सत्ता की प्रतिनिधि थी। इसका परिणाम यह हुआ कि अधीर जनता ने इन कमेटियो से बहुत-सी मागे की, जिनका मत्रिगण निपटारा नही कर सकते थे।

काग्रेस चाहती थी कि काग्रेसी मत्रियो के मुश्किल काम को आसान करे और वे धारासभा के बाहर से ही अपने भीतर के साथियो की मदद करे, परन्तु काग्रेस ने अब तक इस दिशा मे काम नही किया था। पुराने नरमदली लोगो को शासन सबधी अनुभव और ज्ञान था। काग्रेसी पिछले सत्रह साल से लडाई और आन्दोलन चला रहे थे। उनका कार्यक्रम सेवा और बलिदान का था। ऐसी दशा मे वे काफ्रेन्स और कमीशनो की रिपोर्टो और सरकारी नियमावलियो से अनभिज्ञ थे।

धारासभा के बाहर के काग्रेसियो को जनता के मित्र की तरह काम करना था। उन्हे उन लाखो मूक प्राणियो की आवाज ही नही बनना था, बल्कि उन्हे सच और झूठ, जरूरी और बेजरूरी को छाट कर रखना था। इस काम के लिए उन्हे पदाधिकारियो का बर्ताव देखना था, जिनको जनता का दुश्मन न समझकर अब जनता मे इस तरह घुला-मिला देना था कि दोनो तरफ एक दूसरे का भरोसा और यकीन हो। मौजूदा शासन मे बहुत बुरी बात यह थी कि अधिकारियो और जनता मे एक बहुत बडी दूरी थी। दफ्तरी नौकरियो मे भी नौकरशाही घुस गई थी। जब तक खुद राष्ट्रीय चरित्र न उठता, ऊपर के नियत्रण और दबाव से यह दोष दूर नही हो सकता था।

प्रान्तीय और राष्ट्रीय मामलो मे जनता के प्रति उत्तरदायित्व के अभाव मे एक दुखद चीज यह थी कि लोग छोटे-छोटे आपसी झगडो और दलबदियो मे पडे हुए थे। मौके-मौके पर यह झगड़े खास तौर से उफन पडते थे। छोटी-छोटी बाते

रचनात्मक कार्यक्रम मे बडी भारी मदद मिलती थी। जुलाहो के सरक्षण के लिए सबसे पहला कदम यह उठाया गया कि हाथबुने कपडे के अलावा और सब तरह के कपडे बेचने वालो के लिए लाइसेन्स लेना लाजिमी कर दिया गया। कुछ हडतालो के सिलसिले मे समझौता बोर्ड कायम किये गये।

उत्तर प्रदेश मे किसानो को राहत देने के लिए दो कमेटियाँ नियुक्त की गई। किसानो को बेदखल करने के जो मामले चल रहे थे उन्हे फौरन रोक दिया गया ताकि किसानो को तात्कालिक सुविधा मिले। दूसरी कमेटी ने देहाती कर्ज के सवाल पर ध्यान दिया। कानपुर में मालिको के झगडे को मत्रिमडल ने समय पर हस्तक्षेप करके दूर किया। मध्य प्रात में छोटे किसानो को स्थायी रूप से १२॥ फीसदी की छूट दी गई। कर्ज के सिलसिले मे समझौता बोर्ड कायम किये गये। क्लबो पर लाइसेस लगाने, विदेशी शराब की दुकानो और देशी शराब के इस्तेमाल को घटाने का प्रस्ताव रखा गया। रचना विभाग के कामो मे सार्वजनिक इमारतो की लागत को काफी घटा दिया गया। २४०० गाँवो की, जहाँ पढाई की सुविधाएँ नही थी, ज़रूरतो को पूरा करने के लिए विद्या मदिर-योजना जोरो से चलाई गई। बगाल कॉग्रेस-सचालित प्रान्त नही था। वहाँ नजरबन्द और राजबन्दी सब प्रान्तो से ज्यादा थे। वे सब गाधीजी के हाथो छुटकारे के इन्तजार मे थे। गाधीजी बहुत बुरा स्वास्थ्य होने पर भी कलकत्ते मे २५ अक्टूबर १९३७ से १६ नवम्बर तक तीन सप्ताह ठहरे। बगाल के गवर्नर और मत्रिमडल से उन्होने लम्बी बातचीत की। बहुत से निकले हुए नजरबन्दो और राजबन्दियो से गाधीजी मिले। कलकत्ते से लौटते वक्त उन्होने हिजली कैम्प के १६ राजबन्दियो से दो घटे तक बातचीत की। इस समय सरकार ने लगभग ११०० नज़रबन्दो की रिहाई की आज्ञा दी।

इस प्रकार कुल मिला कर १९३७ का साल बहुत घटनापूर्ण रहा। कॉंग्रेस ने उस साल कोई अधिवेशन नही किया, लेकिन उसने उस समय मे आधी सदी की प्रगति पूरी की। असल मे जब मत्रिमडल बनाये गये तब उसने राष्ट्रीय सगठन की मेहराब की चुनाई की। असहयोग का रास्ता बदला, लेकिन सहयोग का वक्त अभी नही आया था। सघ बनाने से ऐक्ट के जिस हिस्से का सबध था उसके विरोध मे कॉग्रेस के रुख मे कोई फर्क नही हुआ। जब कॉंग्रेसी मत्रिमडल बने थे तब संघ बनाने के बारे मे ब्रिटिश सरकार ने अपना अगला कदम बताया था। कॉंग्रेस की निगाह मे ब्रिटिश सरकार की ऐसी कोशिश भारत की जनता के लिए चुनौती थी और उसने प्रान्तीय और स्थानीय कॉग्रेस कमेटियो, प्रान्तीय सरकारो और मत्रि-मडलो से सघीय ढॉचा लादे जाने के विरोध मे अपील की। विशेषकर प्रान्तीय सरकारो को यह हिदायत दी गई कि वे अपनी धारासभा के विरोध को, प्रस्ताव द्वारा प्रकट करे।

कांग्रेस महासमिति के निर्णय

सघीय विधान के बडे सवाल के अलावा ब्रिटिश सरकार और भारतीय जनता मे और बहुत-सी बातो के झगडों की वजह से न कोई सहयोग की भावना हुई और न कोई विशेष प्रगति हो सकी। उदाहरण के लिए हजारो नजरबन्द कैम्पो या जेलो मे पडे हुए थे और कुछ अण्डमान मे थे। अण्डमान के बन्दियो ने गाधीजी को एक तार मे यह सूचना भेजी कि हिसा मे अब उनका विश्वास नहीं रहा है। ऐसी हालत मे उन्हे नजरबन्द रखने का कोई मौका या बहाना नही था। ऐसे लोगो के साथ ही कुछ और लोग भी थे जिनके खिलाफ हिसा के अभियोग थे। उनके अलावा निर्वासित लोग भी थे, जिनकी रिहाई के बारे मे महासमिति ने एक प्रस्ताव पास किया।

पहले सालो मे काँग्रेस ने सारे भारत की श्रम-सबंधी समस्याओं पर उचित ध्यान नहीं दिया, लेकिन जब उसने पद-ग्रहण किया तब इस महत्वपूर्ण विषय को छोडना सभव नही था। यह चीज राष्ट्रीय जीवन मे एक विशेष महत्व की थी—विशेषकर बम्बई प्रान्त मे। कॉग्रेस ने जो मजदूर-कमेटी नियुक्त की थी उसने बडे परिश्रम के बाद सुधार का एक विस्तृत कार्यक्रम पेश किया। इसको कॉग्रेस महा-समिति ने अक्टूबर १९३७ मे एक प्रस्ताव द्वारा स्वीकार किया और अपनी यह राय प्रकट की कि अगर कॉग्रेसी श्रम-मत्री समय-समय पर सम्मेलनो मे भाग लेते रहे तो वह उन्हे एकसी नीति और एकसा कार्यक्रम निश्चित करने मे सहायता देगा।

काँग्रेस के लिए अल्पसख्यको का प्रश्न भी महत्वपूर्ण था। उसने इस सम्बन्ध मे अक्टूबर, १९३७ मे होने वाली कलकत्ता-महासमिति मे एक प्रस्ताव पास किया जिसमे कहा गया कि काग्रेस अल्पसख्यको के विकास के लिए ज्यादा-से-ज्यादा क्षेत्र देना चाहती है जिससे वे राष्ट्र के राजनैतिक, आर्थिक और सास्कृतिक जीवन मे पूरा-पूरा हिस्सा ले सके। कॉग्रेस का उद्देश्य एक स्वतत्र और अखण्ड भारत है जहाँ कोई वर्ग, समुदाय—बहुसख्यक या अल्पसख्यक—एक दूसरे का शोषण न कर सके और जहाँ राष्ट्र के सारे हिस्से एक साथ मिलकर राष्ट्रीय उन्नति के लिए काम कर सके। अपने इस दृष्टिकोण के अनुसार काग्रेस ने मौलिक अधिकारो के प्रस्ताव मे इन बातो को भी शामिल किया —

(१) भारत के हर नागरिक को अपनी स्वतन्त्र सम्मति प्रकट करने का अधिकार है।

(२) हर व्यक्ति को आत्मिक स्वतंत्रता होगी और वह किसी भी मत, धर्म या सम्प्रदाय को मान सकता है, लेकिन उससे सार्वजनिक शाति और नैतिकता भग नही होनी चाहिये।

(३) अल्पसख्यकों और विभिन्न भाषाओ के क्षेत्रों की संस्कृति, भाषा और लिपि का सरक्षण किया जायगा।

(४) कानून के सामने सभी व्यक्ति बराबर हैं, फिर चाहे उनका कोई धर्म हो या उनकी कोई जाति हो और वे चाहे स्त्री हो या पुरुष।

(५) किसी व्यक्ति पर उसके धर्म, लिंग और जाति के कारण सार्वजनिक नौकरियो आदि मे कोई भेदभाव या पाबन्दी नही होगी।

(६) किसी सार्वजनिक कुएँ, तालाब, सडक, स्कूल और दूसरे स्थान के लिए हर नागरिक के समान अधिकार और कर्त्तव्य हैं।

(७) सब धर्मों के प्रति राजसत्ता तटस्थ रहेगी।

(८) प्रत्येक वयस्क स्त्री-पुरुष को मताधिकार प्राप्त होगा।

(९) हरएक नागरिक भारत मे कही आने-जाने, ठहरने और बसने के लिए आजाद है। वहाँ वह जायदाद ले सकता है।

अल्पसख्यको के सवाल के साथ 'राष्ट्रीय गान' का सवाल भी था। कुछ धारासभाओ मे कार्रवाई 'वन्दे मातरम्' गान से शुरू हुई। इस गाने के साथ इकबाल के कुछ गाने भी प्रसिद्ध हुए। इनके अतिरिक्त महासमिति ने कुछ दूसरे मामलो पर भी ध्यान दिया। लगभग पच्चीस बरस से आंध्र और कर्नाटक इस बुनियाद पर अलग प्रान्त बनाने पर जोर दे रहे थे कि नये प्रान्त भाषा के आधार पर बनाये जाय। कलकत्ते मे महासमिति ने पहली बार "कॉग्रेस-नीति" निश्चित की कि भाषा के आधार पर फिर से प्रान्त बनाए जायं। उसने बम्बई और मद्रास सरकार से आंध्र और कर्नाटक के अलग प्रान्त बनाने पर विचार करने के लिए कहा। इस सिफारिश पर मद्रास की धारासभा ने विभिन्न भाषा क्षेत्रो के लिए विभिन्न प्रान्त बनाने का एक प्रस्ताव पास किया। मद्रास-सरकार और भारत मत्री मे लम्बा पत्र-व्यवहार हुआ। परिणामस्वरूप भारत-मत्री ने उस प्रस्ताव को उस समय रोक दिया। बम्बई ने भी कर्नाटक के सवाल पर उसी समय विचार किया।

घरेलू समस्याओ के बीच कॉंग्रेस अपने प्रवासी और रियासती भाइयो के प्रति अपनी जिम्मेदारी को नही भूली। भारतीय रियासतो का मामला, भारत सरकार के विदेश-विभाग के अन्तर्गत था। १९३७ मे जब मैसूर मे जबर्दस्त दमन हुआ तब महासमिति ने उसका घोर विरोध किया। उस समय जो प्रवासी जजीबार मे थे वे नये कानून के खिलाफ वीरता-पूर्वक लड रहे थे। उन कानूनो से भारतीय हितो को चोट पहुँचती थी और उस देश मे बसे हुए भारतीयो का आयात-निर्यात व्यापार बरबाद होता था। वास्तव मे जजीबार की समृद्धि मे सब से बडी सहायता प्रवासी भारतीयो ने ही की थी। उस समय उनके सघर्ष मे सहायता और भारतीय हितो के रक्षण के लिए भारत में लौंग के आयात पर रोक लगाना जरूरी समझा

गया। इस पर भारतीय जनता से जजीबार की लौग न इस्तैमाल करने की अपील की गई। यह योजना जोश के साथ अपनाई गई। इससे जजीबार के भारतीयों को इच्छित सुविधा प्राप्त करने मे सहायता मिली।

१९३७ मे कॉंग्रेस का सब से ज्यादा ध्यान आन्तरिक अनुशासन और स्वतत्रता पर था। इस देश को दो चीजो से दबाकर रखा गया था। एक ओर तो राजभक्ति का पुरस्कार था और दूसरी ओर देशभक्ति के लिए सजा थी। अंगरेजो ने भारत पर नैतिक और बौद्धिक विजय पाने के लिए जो योजना निकाली थी उसमे सबसे पहला नम्बर खिताबो का था। जब उनकी सूची आती तो अखबारो की कई कालमे भर जातीं थी। ऐसी सूचिया दो बार निकलती थी—एक तो अंगरेजी नये साल के शुरू मे और एक बादशाह के जन्म-दिवस पर। इन खिताबो ने राष्ट्रीय अध पतन मे बड़ी भारी सहायता की। नौकरियो और दूसरे इनामो से इनका असर कही ज्यादा था। इस पर महासमिति ने अपना सुचिन्तित मत यह प्रकट किया कि कॉंग्रेसी मत्रिमडलो की धारा-सभा मे खिताबो को बन्द करने का प्रस्ताव पास किया जाय। मत्रिमडलो को बादशाह को इस बात की सूचना दे देनी चाहिए कि वे आगे इस सिलसिले मे सिफारिशे नही करेगे।

भारत जैसे बडे देश मे प्रान्तो के सरकारी काम मे सामजस्य स्थापित करना और अनुशासन बनाये रखना कोई आसान काम नही था—विशेषकर उस समय जब राष्ट्र को शासन-सत्ता का पहली बार स्वाद मिला हो। धारासभाओ की पार्टियो की नेतागिरी मे उन बहुत-सी बातो का समावेश था जो ऊपरी तौर से दिखाई नहीं देती थी। पहली बार कॉंग्रेस ने महसूस किया कि चार आने देकर कॉंग्रेस सदस्य बनने मे एक वह अकुर था जो आगे जाकर प्रधान मन्त्री के रूप मे एक सुदृढ वृक्ष हो सकता था। इसलिए जब व्यक्तिगत अधिकारो के झगड़े होते कि कौन नेता हो तो कॉंग्रेस कार्य-कारिणी ही एक ऐसी सत्ता थी, जो उन अधिकारो पर निर्णय कर सकती थी।

देश की स्थिति

अगर कहा जाय कि पिछले दो वर्षो मे राष्ट्रीय विचार-धारा मे होने वाली हलचले देश मे स्थान पाने वाली समाजवादी तथा वर्गवादी विचार-धाराओ के परिणास्वरूप थी तो यह भी माना जा सकता है कि १९३८ मे जो झगड़े उठ खड़े हुए थे, उनकी जडे पिछले कुछ वर्षो से कॉंग्रेस के भीतर चलते रहने वाले आपसी विरोधो मे मौजूद थी। सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व अब भी गाधीजी का ही था। यद्यपि वह कॉंग्रेस के सदस्य न थे, तो भी शक्ति का सूत्र उन्ही के हाथो मे था। उन्ही का शक्तिशाली व्यक्तित्व था जो युवा-वर्ग की हिसात्मक नीति पर रोक लगाए हुए था। परन्तु इतने पर भी देश की स्थिति सतोषजनक नही थी। प्रान्तो मे कॉंग्रेसी

मत्रिमडल स्थापित होने पर भी किसानो को मुक्ति नही मिली थी। लोग अचरज करते थे कि अभी जमीदार पहले के ही समान बने हुए है, पुलिस के जुल्म मे भी कोई कमी नही हुई है, और बगाल, बिहार तथ पजाब मे हिंसात्मक अपराधो के बन्दी अभी तक यातनाएँ भुगत रहे है। अण्डमान के बन्दियो ने अनशन कर रखा था और वे दिन प्रति-दिन मृत्यु के निकट पहुँच रहे थे। स्वच्छदता-पूर्वक विचार प्रकट करने के कारण जो लोग जेलो मे इतने दिनो से सड रहे थे उनकी सख्या अब भी एक हजार के लगभग थी। अण्डमान से कैदियो की वापसी तथा १,१०० बगाली नजरबन्दो की रिहाई के बाद हलचल मे कुछ कमी हुई, परन्तु २० देशभक्तो ने पजाब मे अनशन करके और उसे ३० दिन तक जारी रखकर वातावरण मे सर गर्मी ला दी थी और राष्ट्र के अन्त करण मे फिर से हलचल पैदा कर दी थी। असख्य किसान सैकडो मील चलकर गावो से आते थे और अपने सगठन अलग कायम करते थे। ये नये सगठन प्राय कॉंग्रेस के विरुद्ध होते थे। इसके लिए उन्हे एक उद्देश्य, एक झडा और एक नेता मिल गया था। किसानो की हिमायत कोई नई बात न थी, लेकिन अब तक ऐसा कॉंग्रेस ही करती आई थी। इस बार उन्होने लाल रग का सोवियट झडा अपनाया, जिसमे हसिया और हथौडा के चिह्न अकित थे। किसानो और कम्यूनिस्टो मे यह झडा अधिकाधिक चल पडा और पण्डित जवाहरलाल नेहरू के लगातार कहने-सुनने पर भी स्थिति मे सुधार नही हुआ। झडे की ऊँचाई तथा प्रमुखता के प्रश्न को लेकर प्राय सभी जगह कॉंग्रेस तथा किसानो के बीच झगडे हुए। तिरगे झडे का स्थान किसानो के झडे को देने का जो प्रयत्न हो रहा था वह दर-असल समाजवाद का गाधीवाद से सघर्ष था। कुछ प्रान्तो मे समाजवादियो ने कम्यूनिस्टो का साथ देना शुरू कर दिया था और कुछ मे वे राष्ट्रीयतावादियो मे मिल गये थे। कई प्रान्तो मे प्रान्तीय चुनावो के बीच व्यक्तिगत सघर्षों का दौरदौरा रहा। इनमे कर्नाटक, बिहार और उडीसा मुख्य थे।

हरिपुरा-कॉंग्रेस : १९३८

हिसा और अहिंसा के सघर्ष, जेलो मे भूख-हडताल की पृष्ठभूमि और कॉंग्रेस मत्रिमडलो के प्रति असतोष के इस वातावरण मे कॉंग्रेस का इक्यावनवाँ अधिवेशन विट्ठलनगर, हरिपुरा मे १९, २० और २१ फरवरी, १९३८ को श्री सुभापचद्र बोस की अध्यक्षता मे हुआ। सुभाष बाबू ने अपनी नीति का स्पष्टीकरण करते हुए कहा कि इस वर्ष भारत की जनता मे वह ऐसी अवरोध-शक्ति का विकास करने की चेष्टा करेगे, जिसके फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार को राष्ट्र पर अवाछनीय योजना थोपने का विचार त्यागने के लिए विवश होना पडेगा। अपने इन प्रयत्नो के दौरान मे भारत की जनता अतर्राष्ट्रीय घटनाओ पर दृष्टि रखेगी और ऐसी नीति से काम

लेगी, जिसके द्वारा अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति से पूरा-पूरा लाभ उठाया जा सके। अग्रेज राजनीतिज्ञो को चेतावनी देते हुए उन्होने कहा कि उन्हें इस भ्रम मे न रहना चाहिए कि कॉंग्रेस ने विरोध करते हुए भी जिस तरह प्रान्तो मे मन्त्रिमडल कायम करना मजूर कर लिया उसी तरह वह भारतीय शासन कानून के सघ-योजना वाले अश को भी स्वीकार कर लेगी। कॉंग्रेस साम्प्रदायिक प्रश्न के निवटाने का प्रयत्न करते हुए राष्ट्र मे एकता कायम करने पर जोर देगी। वह राष्ट्रीयता की रक्षा करते हुए मुसलमानो से समझौता करने के लिए कोई भी प्रयत्न बाकी न छोडेगी। उन्होने मुसलमानो को आश्वासन दिया कि यदि अल्पसख्यक समान नीति का अनुसरण करने को तैयार हो तो कॉंग्रेस उनकी सभी उचित मॉगे मान लेगी।

जैसा कि पहले कहा गया है हरिपुरा-अधिवेशन का वातावरण ठीक नही था। अभी कॉंग्रेसी मन्त्रिमडलो को कायम हुए सात महीने भी न हुए थे कि प्रान्तीय गवर्नरो से उनका मतभेद हो गया। हरिपुरा में डेलीगेटो के शिविरो मे अफवाह फैली हुई थी कि हिंसात्मक कार्यो के लिए सजा पाये हुए राजनैतिक वदियो के छुटकारे के प्रश्न को लेकर विहार और उत्तर प्रदेश क मन्त्रिमडल इस्तीफा दे चुके है। साथ ही रियासतो तथा किसानो की समस्याए भी कम दिलचस्प न थी। उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम सभी ओर रियासतो मे पिछले दो वर्षो मे जाग्रति की लहर फैल गई थी। इसके अलावा, किसान नये जोश मे आकर ऐसे कार्य कर रहे थे, जो कॉंग्रेस के आधार-भूत सिद्धान्तों के खिलाफ थे और जिनकी जिम्मेदारी वह नही ले सकती थी। अल्पसख्यको की समस्या के सम्वन्ध में भी कुछ सनसनी फैली हुई थी। २८ दिसम्बर, १९३७ को मोहम्मदअली पार्क, कलकत्ता मे मुस्लिम विद्यार्थी सघ के सम्मेलन में भाषण देते हुए श्री जिन्ना ने कॉंग्रेस को चुनौती देते हुए कहा था कि "कॉंग्रेस हाईकमाड का दिमाग ठीक करना पडेगा।" इसके अलावा नजरवन्दो एवं अनशनकारियो का मामला पड़ा हुआ था, जिसके निवटारे के लिए गांधीजी हरिपुरा-अधिवेशन के वाद वगाल जाने वाले थे। ऐसी विरोधी परिस्थितियो मे भी हरिपुरा-अधिवेशन हुआ। सभापति के भाषण के पश्चात् स्वर्गीय पण्डित मोतीलाल जी की पत्नी श्रीमती स्वरूपरानी के देहावसान पर शोक-प्रस्ताव पास हुआ और मिदनापुर जिले की ११० कॉंग्रेसी संस्थाओ पर लगे प्रतिवन्ध का विरोध किया गया। साथ ही वगाल सरकार के इस तर्क का कड़े शब्दो में प्रतिवाद किया गया कि वहॉं की कांग्रेस समितियां आतकवादी सगठन की अग रही हैं।

कांग्रेस के प्राय सभी अधिवेशनो में प्रवासी भारतीयो का प्रश्न उठाया जाता था। हरिपुरा मे भी दक्षिण-पूर्वी अफ्रीका तथा मारीशस और फिजी के प्रवासी भारतीयो के पद, स्थिति और अधिकार-सवंधी ह्रास पर खेद प्रकट किया गया। दक्षिण तथा पूर्वी अफ्रीका के मूलनिवासियो के प्रति अपनी नीति को स्पष्ट करते हुए कांग्रेस ने कहा कि भारतीय प्रवासियो की माग अफ्रीका के मूलनिवासियो के

प्रति शत्रुता की भावना से प्रेरित होकर नही की गई है, वल्कि उसका उद्देश्य अफ्रीकावासियो और भारतीयो दोनो ही को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के शोषण से बचाना है।

परन्तु हरिपुरा-अधिवेशन के समय ससार मे विनाशकारी युद्ध के जो बादल छाये हुए थे उनकी तुलना मे इन सबका अधिक महत्व न था। चीन, जापान, फिलस्तीन, यूरोप आदि सभी देश युद्ध का स्वप्न देख रहे थे। युद्ध तथा विदेशी सम्बन्धो के बारे मे भारतीय राष्ट्र की नीति स्पष्ट थी और हरिपुरा-अधिवेशन में उसे और भी अधिक स्पष्ट कर दिया गया। ससार की इस उथल-पुथल तथा हलचलो के बीच काँग्रेस को हरिपुरा मे अपनी अन्दरूनी कठिनाइयो का सामना करना था। चूँकि काँग्रेस प्रातीय स्वायत्त शासन योजना को अमल मे ला रही थी, इसलिए यह नही कहा जा सकता था कि वह सघ-योजना को भी कार्यान्वित करेगी, क्योकि सघ-योजना के दायरे से शासन के कुछ महत्वपूर्ण अगो को छोड दिया गया था। ऐसी परिस्थिति मे जनता की प्रकट की हुई इच्छा के विरुद्ध सघ-योजना लादे जाने के प्रयत्नो का सामना करने के अलावा कॉग्रेस के पास और कोई उपाय नही रह गया था। सघ-योजना से अल्पसख्यको के अधिकारो तथा रियासतो के प्रश्नो का भी सम्बन्ध था। पिछले वर्षो मे अल्पसख्यक समुदायो के अधिकाधिक सदस्य काँग्रेस मे सम्मिलित होकर स्वाधीनता के सग्राम तथा जनसाधारण के शोषण को समाप्त करने का समर्थन कर चुके थे। कॉग्रेसी मन्त्रिमडलो की स्थापना से काँग्रेस की सदस्यता मे वृद्धि हुई थी और एक विशेषता यह भी देखने मे आ रही थी कि इन नये सदस्यो में अल्पसख्यक समुदायो का अनुपात बढता जा रहा था। इसके अतिरिक्त रियासतो का प्रश्न था। रियासती प्रजा अपनी कलकत्ते की सफलता से प्रोत्साहित होकर और आगे बढने की कोशिश करने लगी थी। वह चाहती थी कि कॉग्रेस उसका भी भार वहन करे या कम-से-कम उसके सगठन का ही दायित्व ग्रहण कर ले। हरिपुरा मे प्रश्न यही उठा कि रियासतो मे कॉग्रेस समितियाँ स्थापित करने की अनुमति दी जाय या नही और भारत के सूबो मे कॉग्रेस के जिस विधान के अनुसार कार्य हो रहा था उसे रियासतो की प्रजा पर लागू होने दिया जाय या नही। अत मे एक बीच का रास्ता निकाला गया। इसके अनुसार जहा एक ओर रियासतो मे कॉग्रेस-समितियाँ स्थापित करने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया वहाँ दूसरी ओर यह तय हुआ कि रियासतो की कॉग्रेस-समितियाँ कार्यसमिति के निर्देशन तथा नियन्त्रण मे रहकर कार्य करे। मामला यही खत्म नही हुआ। खुले अधिवेशन मे रियासती प्रजा सगठन से बाहर के कुछ लोगो ने इस समझौते से आगे बढने का प्रयत्न किया। परन्तु रियासती प्रजापरिषद के प्रतिनिधियो ने कडाई से इस प्रयत्न को दबा दिया और उपर्युक्त समझौता स्वीकार कर लिया। इससे रियासतो मे दमन चक्र आरभ हो गया। फलस्वरूप जनता मे हिसा की ज्वाला उमड पडी और

हत्याएँ हुईं। इसके बाद दूर-दूर तक आतक फैल गया और २०००० रियासती प्रजा अपना घरबार छोड कर ब्रिटिश भारत मे चली आई। मैसूर की प्रगतिशील रियासत मे विदुर अश्वधा की दुर्घटना हुई, जिसमे १० व्यक्ति गोली के शिकार बने और इससे दुगने व्यक्ति घायल हुए। इसके अलावा और भी कई गोलीकाड वहाँ हुए। राजकोट, राजपूताना, मध्यभारत तथा पजाब की रियासतो मे सत्याग्रहियो को जेलो मे ठूँस दिया गया। इन सभी मामलो मे लोगो की आँखे गाधीजी की ही तरफ उठती थी।

प्राय. इतना ही हलचल उत्पन्न करने वाला किसान-आदोलन था। देश मे विभिन्न पेशों तथा स्वार्थो के सगठन कायम होने पर काँग्रेस को कभी भी आपत्ति न थी और फिर किसान तो देश की जनता के तीन-चौथाई भाग थे। भारत की स्वाधीनता के व्यापक प्रश्न को देखते हुए यह आवश्यक था कि वे बहुत भारी सख्या मे काँग्रेस मे सम्मिलित होते और उसके झडे के नीचे एकत्र होकर, स्वाधीनता सग्राम मे भाग लेते। इसके विपरीत, किसानो ने कितनी ही जगह लाल झंडा फहराने और काग्रेस के प्रति विरोध का रुख धारण करने का निश्चय किया था और वह भी इसलिए नही कि उनका काँग्रेस के लक्ष्य से कुछ मतभेद था, बल्कि इसलिए कि काँग्रेस मे रह कर उनके निजी स्वार्थो की सिद्धि मे बहुत देर लग रही थी। इस जल्दबाजी के कारण किसानो ने, कुछ ऐसे कार्यो मे सहयोग किया, जो स्पष्टत. काग्रेस के आधारभूत सिद्धातो के विरुद्ध थे और इस प्रकार काग्रेस की नीति तथा सिद्धातो के विरुद्ध वातावरण तैयार करने मे सहायक हुए। हरिपुरा-अधिवेशन ने प्रातीय काग्रेस कमेटियों को इन तथ्यो को ध्यान मे रखने और उपयुक्त कार्रवाई करने का आदेश दिया।

हरिपुरा-अधिवेशन की एक और भी सफलता उल्लेखनीय है। इसका सम्बन्ध काँग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय शिक्षा के ऐसे सगठन से है जिससे कि भारत मे हाल मे ही फैली राष्ट्रीयता की आवश्कताएँ पूरी हो सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक अखिल भारतीय शिक्षा-बोर्ड की स्थापना की गई और उसे अपना विधान तैयार करने, धन इकट्ठा करने तथा अन्य आवश्यक कार्य करने के अधिकार दिये गये। हरिपुरा-अधिवेशन मे एक अन्य प्रस्ताव पास किया गया, जिसका महत्व युद्ध के वर्षो तथा युद्ध छिड़ने से पूर्व एक वर्ष तक युद्ध की अफवाहो के काल मे प्रमाणित हुआ। यह प्रस्ताव 'विदेश नीति तथा युद्ध-सकट' के सबध मे था और उसके द्वारा हरिपुरा मे काग्रेस ने इस विषय मे राष्ट्र की नीति का स्पष्टीकरण किया। प्रस्ताव मे कहा गया कि भारतीय राष्ट्र अपने पडोसियो तथा अन्य सभी देशो के प्रति मैत्री और शाति के वातावरण मे रहना चाहता है। इसलिए भारत मे युद्ध की जो तैयारियाँ की जा रही है उन्हे काग्रेस नापसंद करती

है। यदि भारत को युद्ध में फसाने का प्रयत्न किया गया तो इसका विरोध किया जायगा।

कार्य-समिति के निश्चय

१९२७ से ही काग्रेस युद्ध के सकट का अनुभव कर रही थी, १९२७ के मद्रास-अधिवेशन और हरिपुरा-अधिवेशन के मध्य के दशक मे कितनी ही घटनाएँ हो गई। काग्रेस यह नही समझती थी कि उसमे युद्ध को रोक सकने की सामर्थ्य है—यह असम्भव कार्य तो वडे-से-वडे लोग भी नही कर सकते थे। काग्रेस तो सिर्फ ऐसे युद्ध के विरुद्ध लोकमत तैयार करना चाहती थी, जो सम्भवत भारत का अपना युद्ध न हो या काग्रेस के विचार से जो भारत के हितो के विरुद्ध हो। ऐसी परिस्थिति मे एक विदेश-विपय-समिति नियुक्त की गई, जिसका कार्य अन्तर्राप्ट्रीय परिस्थिति के सपर्क मे रहना, काग्रेस कार्यसमिति को परामर्श देना और हिन्दुस्तान से बाहर के लोगो को काग्रेस के दृप्टिकोण तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियो के सबध मे हरिपुरा मे पास प्रस्ताव से अवगत कराना था।

प्रातीय स्वायत्तशासन स्थापित होते ही प्रत्येक प्रात के लिए अपने यहा के योग्य व्यक्तियो को अन्य प्रान्तो के अधिक योग्य व्यक्तियो की तुलना मे तरजीह देना स्वाभाविक ही था; परन्तु कुछ पेचीदगियाँ भी थी। १९०५ से पूर्व वगाल, विहार और उडीसा का एक ही प्रात था। बगाली लोग अधिक शिक्षित होने के कारण प्रात के तीनो भागो मे महत्वपूर्ण पदो पर नियुक्त हुए, किंतु वाद मे ये तीनो भाग तीन पृथक प्रात बन गये। अब प्रश्न यह उठा कि विहार मे बहुत दिनो से बसे हुए बगालियो के प्रति कैसा व्यवहार किया जाय। इस समस्या ने १९३७-३८ के वर्ष मे विशेष महत्वपूर्ण रूप धारण कर लिया। विवाद मे विहार हाईकोर्ट के एक अवकाशप्राप्त जज ने भी भाग लिया। इस प्रश्न पर अच्छी तरह विचार हुआ और कार्य-समिति ने यह निश्चय किया कि (१) प्रात मे वसने, (२) नौकरी करने तथा (३) शिक्षा, (४) व्यापार और (५) व्यवसाय के पहलुओ पर विचार करते हुए श्री राजेन्द्रप्रसाद अपनी रिपोर्ट उपस्थित करे। राजेन्द्र बाबू की रिपोर्ट मिलने पर कार्यसमिति ने बारडोली मे ११ जनवरी, १९३९ को अपना जो निर्णय दिया उसके अनुसार प्रातीय व्यक्तियो को विशेष महत्व दिया गया।

एक ऐसा ही विषय प्रान्तो मे रियासती प्रजा पर लगे प्रतिबन्धो तथा अयोग्यताओ का था। अखिल भारतीय मारवाडी सघ ने इस सम्बन्ध मे काग्रेस से अनुरोध किया और तब कार्य-समिति ने अपना मत प्रकट किया कि प्रान्तो मे रियासती प्रजा को सरकारी नौकरियो तथा मताधिकार के विषय मे जिन प्रतिबन्धो तथा अयोग्यताओ का सामना करना पडता हो उन्हे तुरन्त हटा लिया जाय।

यद्यपि प्रान्तीय स्वायत्त शासन के क्षेत्र के विस्तार और उसकी सीमाओ की

समय-समय पर व्याख्या होती रही, तथापि वास्तविक शासन के समय ऐसी समस्याएँ उठने लगी, जिनकी कल्पना काग्रेस और सरकार मे से किसी ने भी नही की थी। ऐसी ही एक अप्रत्याशित समस्या उस समय उठ खडी हुई जब उडीसा का स्थायी गवर्नर सर जान ह्यू बेक छुट्टी पर जाने वाला था। स्थानापन्न गवर्नरी सिविल सर्विस के एक सदस्य मि० डान को दी गई, जो मन्त्रियो की अधीनता मे काम कर चुका था। ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति अवाछनीय तथा अन्य देशो मे प्रचलित परम्परा के विरुद्ध थी। इस परिस्थिति मे उडीसा के मन्त्रियो ने इस नियुक्ति का विरोध किया और काग्रेस कार्य-समिति ने इस नियुक्ति मे परिवर्तन करने का अनुरोध किया। अन्त मे यह राजनैतिक सकट सर जान ह्यू बेक द्वारा अपनी छुट्टी रद्द करा लेने से टल गया।

उत्तरदायी शासन का मतलब यही होता है कि व्यवस्थापिका सभा को मन्त्रिमडल मे रद्दोबदल करने का अधिकार रहे। यह अवसर सबसे पहले भारत के नये प्रान्त सिन्ध मे मार्च, १९३८ मे आया, परन्तु सिन्ध में किसी भी दल को वैसा बहुमत नही प्राप्त था, जैसा काग्रेस को छ प्रान्तो मे। इसलिए वहा किसी मन्त्रिमडल को हटाना तो सहल था, किन्तु उसकी जगह नया मन्त्रिमडल बनाना उतना सरल न था। यह समस्या वहाँ उस समय उठी जब वहाँ मन्त्रिमण्डल की पराजय हुई। ऐसी स्थिति मे मन्त्रिमण्डल बनना काग्रेस-दल के समर्थन अथवा विरोध पर निर्भर हो गया। इस अवसर पर गवर्नर ने काग्रेस-दल के नेता को इस बात का पता लगाने के लिए बुलाया कि प्रान्त के राजनैतिक सकट के प्रति काग्रेस का क्या रुख है। यह बडी अप्रत्याशित बात थी; क्योकि धारासभा के ६० सदस्यो मे से काग्रेस की शक्ति केवल ८ थी। परन्तु धारासभा मे ऐसा कोई भी दल न था, जिसे अकेले बहुमत प्राप्त हो सकता। काग्रेस के ८ सदस्य किसी भी दल के साथ मिलकर मन्त्रिमडल नही कायम कर सकते थे। उन्होने नये सयुक्त-मन्त्रिमण्डल का समर्थन करना ही निश्चय किया। नये सम्मिलित दल के नेता खानबहादुर अल्लाहबख्श ने काग्रेस दल के नेता को पत्र लिखकर आश्वासन दिया था कि यदि मैंने मन्त्रिमण्डल बनाया तो मेरी नीति काग्रेस के सिद्धान्तो पर आधारित होगी। इस परिस्थिति मे कांग्रेस दल ने उत्तर दिया कि नये मन्त्रिमण्डल के कानूनो तथा शासन-सम्बन्धी कार्यो का विरोध करने की अपनी स्वतन्त्रता सुरक्षित रखते हुए कुछ अवधि तक वह ऐसा कोई कदम न उठाएगा और न किसी दूसरे दल के ऐसे किसी कार्य का ही समर्थन करेगा, जिससे नये मन्त्रिमण्डल के अपदस्थ होने की सम्भावना हो। इसके उपरान्त वह अन्तिम रूप से अपनी नीति स्थिर करेगा। इस प्रकार संयुक्त-मन्त्रिमण्डल का रास्ता साफ हो गया। आसाम में भी बहुत कुछ इसी प्रकार की घटनाएँ हुई। परिणाम यह हुआ कि एक समय ११ प्रान्तो में से ८ मे काग्रेसी या मिलीजुली मन्त्रिमंडल काम करने लगे।

काग्रेस मन्त्रिमण्डलो द्वारा ६ प्रान्तों के शासन मे कितनी ही घटनाओ के कारण और कभी-कभी मन्त्रियो की निजी कमजोरियो के कारण विपम समस्याए उठ खडी होती थी। ऐसी ही एक खेदजनक घटना मध्यप्रान्त के मन्त्रिमण्डल के सम्बन्ध मे उठ खडी हुई। वहा न्यायमन्त्री-द्वारा दया के अधिकार का प्रयोग एक ऐसे उच्च स्थिति वाले राजनैतिक बदी के लिए किया गया, जिसे बलात्कार के मामले मे सज़ा की आज्ञा सुनाई जा चुकी थी। सम्बन्वित मन्त्री ने खेद प्रकट किया और इस्तीफा देने को कहा। मध्यप्रान्त का काग्रेस पार्लमेटरी दल तथा दूसरे मत्री इस मत्री के खेद प्रकट करने पर सन्तुष्ट हो गये और उन्होने यह कारण भी मान लिया कि मामले की गम्भीरता का अनुभव न करने के कारण ही उसने अपने दूसरे साथियो से सलाह नही ली थी, परन्तु कार्य-समिति अधिक ऊँचे दृष्टि-कोण से इस विषय पर विचार करना चाहती थी। इसलिए उसन जनता से अनुरोध किया कि एक प्रसिद्ध कानूनवेत्ता-द्वारा मामले की जाच-पडताल किये जाने के बाद उसके अन्तिम निर्णय की उसे प्रतीक्षा करनी चाहिए। फलत मामला कलकत्ता हाईकोर्ट के अवकाश प्राप्त जज सर मन्मथनाथ मुकर्जी के सुपुर्द किया गया और उनकी रिपोर्ट जब सम्बन्वित मत्री के आगे उपस्थित की गई तब उन्होने तुरत इस्तीफा दे दिया। इस तरह एक ओर काग्रेस की नेकनामी पर धब्बा न लगा और दूसरी तरफ वह व्यक्ति भी जनता की नजर मे ऊँचा उठ गया।

दक्षिण भारत मे एक काग्रेसजन पर राजद्रोह के लिए १२४-अ धारा के अनुसार मुकदमा चलाये जाने पर नौजवान और विशेषकर समाजवादी बडे क्षुब्ध थे। कार्यसमिति को १९३८ के आरम्भ मे ही इस सम्बन्ध मे एक प्रस्ताव का सामना करना पडा, जिसकी सूचना समाजवादियो ने अक्टूबर १९३७ मे अखिल-भारतीय काग्रेस कमेटी की एक बैठक मे दी थी। इससे कार्यसमिति को विभिन्न प्रान्तो मे पैदा होने वाली परिस्थितिश्रो और साथ की कठिनाइयो पर विचार करने का अवसर मिल गया। कार्यसमिति ने जहा एक तरफ काग्रेस-मत्रिमडलो के कार्यों की पुष्टि की, वहा दूसरी तरफ उसने नागरिक स्वतत्रता का क्षेत्र बढा दिया तथा काग्रेस के कार्यक्रम को अमल मे लाने के प्रयत्नो का स्वागत किया, परन्तु सबसे महत्वपूर्ण बात कार्यसमिति के शब्दो मे "काग्रेस की अहिसा की नीति के अनुसार आचरण करना और हिसा की प्रेरक प्रवृत्तियो को निरुत्साहित करना" थी। इसी नीति के अनुसार कार्यसमिति ने काग्रेस-कमेटियो तथा काग्रेस-जनो से देश मे शान्तिपूर्ण तथा अनुशासनयुक्त कार्य का वातावरण उत्पन्न करने मे सहायता प्रदान करने की अपील की और साथ ही गलत रास्ते पर चलने वाले उन काग्रेस-जनो को चेतावनी दी, जिनमे काग्रेस की अहिसात्मक नीत के विरुद्ध कार्य करने की प्रवृत्ति दिखाई दे रही थी।

प्रधान मंत्रियों का सम्मेलन

ऐसी स्थिति मे परस्पर सहयोग की विशेष आवश्यकता थी। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्रधान मंत्रियो का एक सम्मेलन मई १९३८ मे हुआ। सातो प्रधानमन्त्रियो तथा उनके कुछ साथियो ने इस सम्मेलन मे भाग लिया। इस सम्मेलन मे साधारण कृषि-नीति, श्रमिक तथा औद्योगिक पुनर्निर्माण, शक्ति के साधनो का विकास, ग्रामसुधार, शिक्षा, राजस्व सम्बन्धी साधन, कर-व्यवस्था तथा अर्थ-व्यवस्था के सम्बन्ध मे विचार हुआ। उत्तर प्रदेश ने रचनात्मक कार्य के लिए राजस्व के नये साधनो के सम्बन्ध में और वम्वई ने जेल-सुधार के सम्बन्ध में सम्मेलन बुलाने की जिम्मेदारी ग्रहण की। प्रत्येक प्रात ने किसी-न-किसी विषय की विशेष छानवीन करने का भार लिया। मद्रास ने मादक वस्तु निषेध, मन्दिर-प्रवेश तथा ऋण-सम्वन्धी सहायता के सम्वन्ध में, वम्वई ने मजदूरो की समस्या के विषय मे, उत्तर प्रदेश तथा विहार ने भूमि-कर तथा कृषि-समस्याओं के वारे मे, आसाम ने खनिज साधनो के विषय मे, उडीसा ने कलापूर्ण दस्तकारियो के विषय मे और मध्यप्रात ने औद्योगिक तथा खनिज साधनो के अध्ययन का दायित्व ग्रहण किया। ये तो सिर्फ सुझाव थे। मद्रास ने जिमीदारी समस्या, वम्वई ने मादक वस्तु निषेध और उत्तर प्रदेश ने जेल सुधार के विषय हाथ मे लिये। इस प्रकार प्रधानमंत्रियो के इस सम्मेलन से औद्योगिक योजना-निर्माण का मार्ग प्रशस्त हुआ, जिसका कुछ समय वाद श्रीगणेश भी हुआ।

केन्द्रीय सरकार की स्थिति

इस प्रकार जवकि प्रातीय सरकारे अपने नये क्षेत्र में अप्रत्याशित विषयों द्वारा उत्पन्न होने वाले विरोध का सामना कर रही थी, कांग्रेस के पुराने महारथी केन्द्रीय सरकार से संघर्ष कर रहे थे। केन्द्रीय सरकार भी अभी तक चंद व्यक्तियो का शासन था और वह पहले के ही समान निरकुश थी। इसलिए उस पर जनता के मत और उसकी अपील का कोई प्रभाव नही पडता था। केन्द्रीय असेम्वली का वजट-अधिवेशन भारतीय सेना की ब्रिटिश शाखा के यंत्रीकरण के विरुद्ध कांग्रेस-दल के एक निन्दात्मक प्रस्ताव से आरम्भ हुआ। पाच ब्रिटिश रेजिमेंटो का २ करोड १५ लाख रु० की लागत से यंत्रीकरण होने को था और इस रकम मे से ब्रिटिश सरकार सिर्फ अस्सी लाख रु० दे रही थी और शेष रकम भारत के मत्थे मढने जा रही थी। यह नीति अनुचित थी, क्योकि भारतीय धन से भारतीय सेना के अंग्रेज दस्तो का यंत्रीकरण किया जा रहा था और यंत्रीकरण के इस कार्यक्रम से भारतीय रेजिमेंटो को अलग रखा गया था।

२८ फरवरी को अर्थ-सदस्य सर जेम्स ग्रिग ने केन्द्रीय वजट उपस्थित किया।

इसके उपरात बजट पर आम बहस आरम्भ हुई। आम बहस आरम्भ होने के समय विरोधी दल के नेता श्री भूलाभाई देसाई ने एक वक्तव्य दिया कि काग्रेस दल, स्वतन्त्र काग्रेस राष्ट्रीयतावादी दल और डेमोक्रेट दल ने बजट की आम बहस मे भाग न लेने का निश्चय किया है। इसलिए सर जेम्स द्वारा कस्टम्स सम्बन्धी माग पेश करते ही विरोधी दल की तरफ से कटौती का प्रस्ताव पेश करने के स्थान पर मत लेने की माग उपस्थित कर दी गई। माग ४६ के विरुद्ध ६४ मतों से नामजूर करदी गई। अर्थ-सदस्य द्वारा पेश की गई अन्य मागो का भी यही हाल हुआ। बाद मे इन नामजूर मागो को गवर्नर-जनरल ने अपने विशेषाधिकार द्वारा मजूर कर दिया। असेम्बली ने इसका जवाब सम्पूर्ण अर्थ-बिल को नामजूर करके दिया। सभा ने सिफारिशी अर्थ बिल को भी ४८ के विरुद्ध ६८ मतो-द्वारा अस्वीकार कर दिया। बजट पर आम बहस आरम्भ होते ही परिषद से काग्रेस तथा प्रोग्रेसिव दल के सदस्य उठ कर बाहर चले गये।

मजदूर-कमेटी की बैठक

यद्यपि प्रान्तीय सरकारो को मजदूरो की समुचित व्यवस्था करने के लिए काफी अधिकार प्राप्त थे, फिर भी सभी प्रान्तों मे एक-जैसी नीति का अनुसरण करने के लिए केन्द्रीय सरकार विभिन्न प्रान्तो की नीतियो का एकीकरण कर सकती थी। बम्बई सरकार ने अपने यहा मजदूरो-सम्बन्धी कानून का मसविदा बनाया था। मई १९३८ मे काग्रेस की मजदूर कमेटी की बैठक हुई, जिसमे कुछ प्रान्तो के प्रधानमन्त्रियो ने तथा अन्य प्रान्तो के प्रधानमन्त्रियो के प्रतिनिधियो ने भाग लिया। बैठक मे अनुरोध किया गया कि मजदूरो की अवस्था तथा मजदूर-सभाओ के झगडो की जॉच-पडताल के लिए जो कमेटिया नियुक्त की जाय उनमे सार्वजनिक जीवन और राष्ट्रीय आन्दोलन से सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्तियो को ही रखा जाय। यह बडी खुशी की बात थी कि बम्बई कपडा-उद्योग-जाच कमेटी की सिफारिशे बम्बई की सरकार ने स्वीकार कर ली और बम्बई प्रान्त के मिल-मालिको ने उन्हे अमल मे लाना मजूर कर लिया। बम्बई मे कानून बनने का कार्य जारी था, जिसमे इस बात का भी प्रबन्ध था कि बीमारी के दिनो मे वेतन के साथ छुट्टी दी जाय। बडोदा सरकार ने १ अगस्त १९३८ से रियासत मे ९ घटे का दिन घोषित करके दूसरी रियासतो का पथ-प्रदर्शन किया। बम्बई सरकार ने अपने कारखाना-कानून को उन कारखानो पर लागू करने का निश्चय किया जिनमे १० या इससे अधिक व्यक्ति काम करते थे।

उद्योग-मंत्रियों का सम्मेलन

अगस्त १९३७ मे ही जबकि काग्रेस को प्रातो मे मत्रिमडल स्थापित किये

महीना-भर भी नही हुआ था, कार्यसमिति अखिल-भारतीय औद्योगिक योजना के निर्माण के लिए विशेषज्ञो की एक समिति नियुक्त करने का विचार कर चुकी थी। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए जुलाई १९३८ मे काग्रेस के अध्यक्ष को उद्योग-मत्रियों का एक सम्मेलन बुलाने तथा विभिन्न प्रातो के मौजूदा उद्योगो तथा नये उद्योगो की आवश्यकता के सबध मे रिपोर्ट प्राप्त करने का अधिकार दिया गया। यह सम्मेलन दिल्ली मे २ और ३ अक्टूबर १९३८ को हुआ। इसका उद्देश्य कुछ ऐसी समस्याओ पर विचार करना था, जिनका हल राष्ट्रीय पुनर्निर्माण तथा सामाजिक आयोजन की किसी योजना के लिए आवश्यक था। इन समस्याओ के हल के लिए यह जरूरी था कि हम अपना लक्ष्य निर्धारित करे और विस्तृत जाच-पडतालो के बाद आवश्यक सामग्री का सकलन करे। सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए सुभाष बाबू ने स्वाधीन भारत मे राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की समस्याओ पर प्रकाश डाला और बतलाया कि कृषि की उन्नति वैज्ञानिक ढग पर कितनी ही क्यो न की जाय, निर्धनता और बेकारी को दूर करने तथा उत्तम वस्त्र, उत्तम मकान, उत्तम शिक्षा और अधिक फुरसत पाने का एकमात्र उपाय औद्योगीकरण ही हो सकता है। यह हमारे यहाँ ब्रिटेन की तरह क्रमिक न होकर रूस की तरह तुरत और बल-पूर्वक होना चाहिए। उन्होने कहा कि घरेलू उद्योग और बड़े उद्योगो मे कोई विरोध नही है, केवल राष्ट्र को एक ओर यह फैसला कर लेना चाहिए कि औद्यो-गिक क्रान्ति आवश्यक है और दूसरी तरफ यह कि किस उद्योग का विकास घरेलू आधार पर किया जाय और किसका बडे आधार पर। इसके बाद उन्होने राष्ट्रीय-योजना निर्माण के कुछ सिद्धान्त बनाये और औद्योगीकरण की समस्याओ के सम्बन्ध मे सलाह देने के लिए विशेषज्ञो की एक समिति की स्थापना की। योजना-समिति मे जिन लोगो को रखा गया उनके नामो की घोषणा की गई। समिति के अध्यक्ष पडित जवाहरलाल नेहरू नियुक्त किये गये। इसके अन्तर्गत २७ उप-समितियाँ थी और इसने १९३८-३९ से नवम्बर १९४० तक काम किया।

रियासतों की समस्याएँ

अखिल भारतीय क्षेत्र मे काग्रेस की दिलचस्पी जिन समस्याओ मे थी उनमें रियासतो की समस्या ने सबसे अधिक महत्व धारण कर लिया था। प्रान्तो मे स्वायत्त शासन की प्रगति होने से रियासतो मे केवल जाग्रति ही नही हुई, बल्कि ऐसी परिस्थितियाँ भी उत्पन्न हो गई, जिन पर गाधीजी और कार्यसमिति को विचार करना पडा। दक्षिण मे ट्रावनकोर और मैसूर का तत्कालीन इतिहास मे मुख्य स्थान रहा। ट्रावनकोर-काग्रेस के उद्देश्य के प्रश्न के बारे मे रियासती सरकार और राज्य की काग्रेस के बीच उग्र विवाद चल रहा था। हैदराबाद राज्य ने जरूरत से कही ज्यादा विशेपाधिकार-कानून जारी कर दिए थे। लेकिन जिस

रियासत ने जनता का ध्यान सबसे अधिक आकृष्ट किया था और जो उसकी नजर मे सबसे अधिक गिरी वह थी मैसूर। वहाँ 'स्वाधीनता दिवस' के सम्बन्ध में मौखिक चेतावनियो और विनाशात्मक कार्यों के लिए व्यक्तियो से जमानते मागी जा रही थी और उन पर प्रतिबध लगाये जा रहे थे। १९३८ में विदुर-स्वाथम् के गोलीकाड से यह नीति अपनी चरम सीमा को पहुँच गई। इसी बीच एक जाच समिति की नियुक्ति हुई। समिति ने निर्णय दिया कि गोली भीड की हिसा से बचने के लिए आत्म-रक्षा के उद्देश्य से चलाई गई थी। इसी समय गाधीजी ने कार्यसमिति के दो सदस्यो, सरदार वल्लभ भाई पटेल तथा आचार्य कृपलानी, को भेजा। वे मैसूर काग्रेस के नेताओ तथा दीवान सर मिरजा इस्माइल से मिले। इस वार्ता के परिणामस्वरूप एक समझौते का मार्ग निकाला गया। १७ मई के समझौते मे वे सभी मागे स्वीकार कर ली गई, जिन्हे राज्य-काग्रेस ने अपने शिवपुर वाले अधिवेशन मे उपस्थित किया था यह समझौता जेल के कैदियो तथा राज्य के अधिकारियो मे हुई वार्ता के कारण हुआ था। सरदार पटेल और आचार्य कृपलानी ने राज्य और मैसूर काग्रेस के बीच जो यह समझौता कराया था उसे कार्य समिति ने भी स्वीकार कर लिया। मैसूर-सरकार ने इस सम्बन्ध मे एक विज्ञप्ति प्रकाशित की और जून १९३८ मे कार्यसमिति ने महाराज और उन सलाहकारो को समझौते की शर्तें उत्साह से पूरी करने के लिए बधाई भी दी।

अन्तर्राष्ट्रीय सेवाएँ

यद्यपि भारत एक पराधीन देश था, फिर भी काग्रेस उसकी विशेष अतर-राष्ट्रीय स्थिति पर ध्यान रखती थी। पिछले चार वर्ष से चीन भीतरी अशाति तथा बाहरी आक्रमण की आशका से गुजर रहा था। इसलिए चीन की राष्ट्रीय सरकार के लिए एक मोटर, एम्बूलेन्स-दल, आवश्यक डाक्टर तथा नर्स आदि के सहित भेजने का निश्चय किया गया। भारतीय डाक्टरो का एक दल डा० अटल की देखरेख मे तैयार किया गया। दो वर्ष तक परिश्रम और लगन से काम करने के बाद डा० अटल अपने साथियो के हाथ मे काम छोडकर भारत लौट आये। उनके कार्य की सभी जगह प्रशसा हुई। दल के एक सदस्य डा० कोटनीस का स्वर्गवास भी हुआ। जजीबार की परिस्थिति मे भी सुधार हुआ। भारत मे जजीबार की लौग का जो बहिष्कार जून १९३८ के मध्य तक किया था उसका प्रभाव पडा और जजीबार सरकार तथा प्रवासी भारतवासियो मे समझौता हो गया। १९३८ के पतझड मे युद्ध के बादल घिरने लगे। ब्रिटेन और जर्मनी में उन दिनो जो कुछ हो रहा था। उसकी सूचना कार्यसमिति को प्रति सप्ताह पडित जवाहरलाल नेहरू से मिल रही थी। नेहरूजी २ जून को भारत से यूरोप के लिए रवाना हुए थे और मसावा मे भारतीय व्यापारियो तथा सिकदरिया मे

नहसपाशा तथा दूसरे वफद-नेताओं से मिलने के बाद सीधे बार्सीलोना (स्पेन) चले गये थे। उन दिनों आकाश से जो निर्दयतापूर्ण बम-वर्षा हो रही थी, उसे उन्होंने अपनी आँखो से देखा था। इसके उपरान्त वह पेरिस गये और वहाँ उन्होंने रेडियो पर भाषण करते हुए भारतीय स्वाधीनता के आदोलन के आदर्शो पर प्रकाश डाला और फ्रासीसियो से सहानुभूति की माग की। इंगलैड मे भी उनका कार्यक्रम विविध प्रकार का था। पेरिस मे जुलाई १९३८ को खुले नगरो मे बम-बारी के विरुद्ध हुए अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन मे पडित नेहरू ने एक प्रभावशाली भाषण दिया। सितम्बर १९३८ मे कार्यसमिति की बैठक दिल्ली मे हुई और उसमे युद्ध-संबन्धी परिस्थिति पर विचार हुआ।

मुसलिम लीग का रुख

पिछले कुछ समय से साम्प्रदायिक मनमुटाव बढ रहा था, जिसकी चर्चा भी कभी-कभी सुनने मे आती थी। १९३८ मे जवाहरलाल और जिन्ना के बीच पत्र-व्यवहार हुआ। यह पत्र-व्यवहार बहुत ही उग्र रहा और उसका परिणाम भी कुछ न निकला। एक असाधारण तथा दुखद घटना यह हुई कि राष्ट्रपति की हैसियत से जब सुभाष बाबू चटगाव डिवीजन गये तब मुसलिम लीगियो की एक भीड ने शिष्टाचार और इसानियत को ताक पर रखकर उनके जुलूस पर पत्थर फेके। सौभाग्यवश राष्ट्रपति तथा जुलूस के १४ आदमियो को साधारण चोटे लगी। श्री जिन्ना ने तो जो स्थिति ग्रहण की थी उससे एक इच भी हटना उन्होने स्वीकार नही किया। काग्रेस की कार्य-समिति ने अपनी दिसम्बर वाली बैठक मे श्री जिन्ना के ९ अक्टूबर १९३८ वाले पत्र के सम्बन्ध मे निश्चय किया कि उससे साम्प्रदायिक समस्या के निवटारे मे कुछ भी मदद नही मिल सकती। इसलिए राष्ट्रपति ने १६ दिसम्बर १९३८ के दिन श्री जिन्ना को सूचित कर दिया कि कार्य-समिति मुसलिम लीग-कौसिल से वार्त्ता के आधार पर सहमत नही हो सकती। इसलिए इस दिशा मे और कुछ नही किया जा सका।

राजकोट की समस्या

सन् १९३९ का आरभ होते ही देश के सामने दो वडी-वड़ी समस्याएँ आई एक तो र जकोट की समस्या और दूसरी सभापति का चुनाव। काठियावाढ की ३६० रियासतो मे से राजकोट कोई वडी रियासत नही थी, परन्तु वह एक प्रकार से पश्चिमी भारत की रियासतो की राजधानी थी, क्योकि एजेट-जनरल वही रहता था। राजकोट का सम्वन्ध गाधीजी के प्रारम्भिक जीवन से भी था। गाधीजी के पिता इसी रियासत के दीवान रह चुके थे। राजकोट के तत्कालीन ठाकुर साहब की सगाई होने के अवसर पर श्रीमती कस्तूरवा

गाधी ही ने उनके माथे पर कुकुम का अभिषेक किया था। इस पृष्टभूमि को देखते हुए यह विधाता का क्रूर उपहास था कि राजकोट-नरेश को तूफान का केंद्र बन कर ससार के सबसे महान पुरुष से टक्कर लेनी पडी। १९३८ मे रियासतो प्रजा का सगठन कुछ प्रमुख रियासतो मे उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए प्रयत्न कर रहा था। दूसरी रियासतो की तरह राजकोट में भी इस प्रयत्न के दमन की चेष्टा की गई। सत्याग्रह का जोरदार आन्दोलन छिडा और इसका उतने ही जोर से दीवान वीरवाला-द्वारा दमन किया गया।

रियासत के अधिकारियो ने राजकोट प्रजापरिषद को गैरकानूनी घोषित कर दिया। इस आदेश के निकाले जाने पर कार्य-समिति का ध्यान इस आन्दोलन की ओर आकृष्ट हुआ। समिति ने जहा एक ओर उत्तरदायी शासन की प्राप्ति के लिये किये जानेवाले इस आन्दोलन का स्वागत किया वहा दूसरी ओर उसने रियासत के बाहर के लोगो को आन्दोलन मे भाग न लेने का परामर्श दिया। ऐसी स्थिति मे राजकोट के ठाकुर साहब ने सरदार वल्लभभाई पटेल को बम्बई से मुलाकात के लिए बुलाया। २६ दिसम्बर को सरदार पटेल और ठाकुर साहब के बीच समझौते की घोषणा हुई, जिससे राजकोट की प्रजा का सघर्ष समाप्त हो गया। यह सिर्फ राजकोट की जनता की ही नही, बल्कि साधारण रूप से रियासती प्रजा की विजय थी। ठाकुर साहब तथा सरदार पटेल मे ८ घटे के विवाद के बाद जो समझौता हुआ उसके अनुसार ठाकुर साहब ने यह वचन दिया कि हमने दस ऐसे व्यक्तियो की एक समिति नियुक्त करने का निश्चय किया है, जिसमे तीन रियासत के अफसर और सात प्रजा-जन होगे। जनवरी, १९३९ के अत तक यह समिति उचित जाच-पडताल के बाद शासन सुधार की एक ऐसी योजना तैयार करेगी, जिसमे प्रजा को अधिक-से-अधिक व्यापक अधिकार दिये जायगे, किन्तु इन अधिकारो का सर्वोच्च सत्ता के प्रति हमारे उत्तरदायित्व पर या नरेश के रूप मे हमारे विशेष अधिकार पर कोई प्रभाव न पडेगा। हमारी यह भी इच्छा है कि अब से हमारे निजी खर्च की रकम नरेन्द्र-मडल की गश्ती विज्ञप्ति के अनुसार निर्धारित की जाया करे। हम अपनी प्रजा को यह भी आश्वासन देना चाहते हैं कि उपर्युक्त समिति जो भी योजना उपस्थित करेगी, उसे विचार करके कार्यान्वित करने का हमने इरादा कर लिया है। यह मान लिया गया है कि शान्ति तथा सद्भावना स्थापित करने के उद्देश्य से प्रत्येक प्रकार का अवैध आन्दोलन बद कर दिया जायगा और हम आम माफी करके सब राजनैतिक कैदियो को रिहा कर देगे, सब जुरमाने वापस कर देगे और दमनकारी कानूनो को वापस ले लेगे।

समझौता २६ दिसम्बर १९३८ को हुआ था। उसकी शर्तो के अनुसार जब सरदार ने सात नाम भेजे तब रेजिडेट और सपरिषद ठाकुर साहब मे सलाह-

मशविरा हुआ। रेजिडेंट ने सरदार तथा कांग्रेस के विरुद्ध कुछ बाते कही। सरदार की सूची पर इस मामूली बात को लेकर आपत्ति उठाई गई कि ठाकुर साहब को सूची मिलने से पहले ही नाम प्रकट कर दिये गये। इसके अतिरिक्त यह आपत्ति भी उठाई गई कि ठाकुर साहब अपनी प्रजा के महत्त्वपूर्ण वर्गो, जैसे भय्यत, मुसलिम परिषद तथा दलित जातियो की उपेक्षा नही कर सकते। इसलिए ठाकुर साहब ने सात नामो मे से केवल चार ही मजूर किये और शेष तीन नामो को नामजूर कर दिया। सरदार ने जिन नामो की सिफारिश की थी वे ठाकुर साहब को मान्य न थे। इस प्रकार समझौता भग हो गया। इस विश्वासघात का सामना करने के लिए महात्माजी ने अनशन किया। अनशन अनिश्चित काल के लिए था। वाइसराय के हस्तक्षेप पर सर मारिस ग्वायर को निर्णय के लिए नियुक्त किया गया। निर्णय गाधीजी के पक्ष मे था, किंतु गाधीजी ने अपने अनशन मे कुछ दबाव का अनुभव किया और फिर उन्होने निर्णय का लाभ न उठाने का निश्चय किया। यह अनशन त्रिपुरी-अधिवेशन के दिनो मे हुआ और इसी बीच समाप्त हो गया।

सभापति का चुनाव

साधारणतया राष्ट्रपति के चुनाव मे कोई हलचल नहीं होती थी। अक्टूबर १९३४ मे बम्बई वाले अधिवेशन मे नया विधान स्वीकार किये जाने से पूर्व प्रान्तीय कांग्रेस-कमेटियाँ नये वर्ष के लिए राष्ट्रपति के नामो के प्रस्ताव करती थी और फिर वही इनमे से एक का चुनाव कर लेती थी। परन्तु त्रिपुरी अधिवेशन के लिए सभापतित्व के सवाल को लेकर वास्तविक विवाद उठ खडा हुआ। सुभाष बाबू कांग्रेस के चुप रहने वाले अध्यक्षो मे से थे। उनकी तदुरुस्ती लगातार खराब रही थी और शरीर थक चुका था। फिर भी उनके मस्तिष्क मे थकान न थी और शक्ति भी अक्षुण्ण बनी हुई थी। ऐसी स्थिति मे सितम्बर १९३८ के अन्त मे जाहिर हुआ कि सुभाष बाबू त्रिपुरी मे भी अध्यक्ष रहना चाहते है। राष्ट्र की माग और अभी तक ब्रिटेन द्वारा उसकी पूर्ति न होने के कारण आवश्यक यह था कि राष्ट्रपति का पद किसी मुसलमान को दिया जाय। देश को मौलाना अबुल कलाम आजाद के रूप मे ऐसा मुसलमान मिल भी सकता था। वह एक बार १९२३ मे कांग्रेस के अध्यक्ष रह चुके थे, किन्तु वह विशेष अधिवेशन था। गाधीजी का विचार था कि त्रिपुरी मे कांग्रेस के अध्यक्ष मौ० अबुल कलाम आजाद के होने से साम्प्रदायिक समस्या के हल करने मे मदद मिलेगी। यही कारण था कि उन्होने सुभाष बाबू को राष्ट्रपति के पद के लिए फिर से खड़े होने को प्रोत्साहन नही दिया। इसके बावजूद मित्रो ने सुभाष बाबू के नाम का प्रस्ताव कर दिया और सुभाष बाबू ने खडा होना भी स्वीकार कर लिया। मौलाना की उम्मीदवारी की भी नियमित रूप से घोषणा की गई और जनवरी १९३८ मे कार्यसमिति की बार-

दोली वाली बैठक मे यह प्राय निश्चित ही था कि मौलाना को चुन लिया जायगा।

इन पंक्तियो के लेखक को बार्दोली से रवाना होते समय गाधीजी से सूचना मिली कि यदि मौलाना ने स्वीकार न किया तो वह (गाधीजी) यह काटो का ताज उस (लेखक) के सिर पर रखना चाहते है। मौलाना अपनी रजामदी दे चुके थे और बम्बई के लिए रवाना हो चुके थे। अगले दिन बम्बई मे मौलाना ने अपनी राय बदल दी और अपनी उम्मेदवारी वापस लेने का फैसला किया। बाद मे मौलाना के कहने पर इन पक्तियो के लेखक का नाम सामने आया और इस तरह लेखक और सुभाष बाबू दो ही प्रतियोगिता के लिए रह गये। इस प्रकार मौलाना के हट जाने पर सुभाष बाबू को अपने प्रतियोगी के विरुद्ध लगभग ९५ मतो से सफलता प्राप्त हुई।

चुनाव का प्रभाव

चुनाव का परिणाम प्रकट होते ही गाधीजी ने घोषणा कर दी कि सुभाष के 'प्रतिस्पर्धी' की पराजय को वह अपनी पराजय मानते है। इससे देश में हलचल मच गई। जिन लोगो ने सुभाष बाबू के पक्ष मे मत दिया था वे गाधीजी और उनके नेतृत्व मे विश्वास प्रकट करने लगे। इससे एक परेशान करने वाली परिस्थिति उत्पन्न हो गई। राष्ट्रपति के पद के लिए पहले २९ जनवरी १९३९ को मत लिया गया था, परन्तु एक सप्ताह के भीतर ही स्थिति मे परिवर्तन हो गया इससे नये अध्यक्ष के लिए बडी विकट समस्या उत्पन्न हो गई। यद्यपि अध्यक्ष का चुनाव डेलीगटो के बहुमत से हुआ था, तो भी अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी मे उसका अल्पमत था। अब प्रश्न यह था कि वह अपनी कार्यसमिति कैसे बनाए? सुभाष बाबू का स्वास्थ्य पहले से ही खराब था और इन चिन्ताओ का असर भी उनके स्वास्थ्य पर पडा। फलत ९ फरवरी १९३९ को खुले अधिवेशन के प्रस्तावो का मसविदा बनाने के लिए वर्धा मे कार्य-समिति की जो बैठक हुई उसमे वह न जा सके। कार्यसमिति के १२ सदस्यो ने इस्तीफा दे दिया, जिससे सिर्फ अध्यक्ष और श्रीशरत्चन्द्र बोस ही कार्य-समिति मे रह गये। सुभाष बाबू के स्वास्थ्य मे सुधार नही हुआ और उनकी बीमारी खुले अधिवेशन मे भी चलती रही। अधिवेशन के पाच या छ दिन उन्हे तापमान रहा और अधिवेशन के दूसरे दिन तो वह १०४° व १०५° डिग्री तक चढ गया। बीमारी के कारण तत्कालीन राजनीति मे और भी पेचीदगी आ गई।

त्रिपुरी-कांग्रेस : १९३९

त्रिपुरी-अधिवेशन की कार्यवाही अध्यक्ष के चुनाव तथा गाधीजी के अनशन की परिस्थितियो के कारण फीकी पड गई थी। वातावरण इन दो मुख्य घटनाओ की

प्रतिक्रियाओं से व्याप्त था। तीसरी घटना स्वयं मनोनीत अध्यक्ष की बीमारी थी, जिसके कारण वह शानदार जलूस में भाग न ले सके। जलूस मे अध्यक्ष को ५२ हाथियों के रथ में बैठाकर निकालने का निश्चय किया गया था और इस जलूस को रेलवे स्टेशन से प्रकृति की गोद में बसे त्रिपुरी के विष्णुदत्त नगर तक निकालने की व्यवस्था की गई थी। नगर नदी के किनारे बनाया गया था और वह गांवों तथा जंगलों की पृष्ठ-भूमि में बड़ा ही मनोहर लगता था। इस मनोहर दृश्यावली के बीच जलूस अध्यक्ष के चित्र के साथ निकाला गया। इसके बाद प्रतिनिधियों ने मौ० शौकत-अली, सर मुहम्मद इकबाल, बेगम अंसारी, मद्रास के मंत्री श्री के० रामुनी मेनन, जी० एस० कापडिया, बी० राजा राउ, डा० राजबली पटेल और श्री के० नागेश्वर राव पंतलू की दिवंगत आत्मा के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की। अधिवेशन आरम्भ होने से पहले समस्याओ का स्पष्टीकरण होना था। अ० भा० कांग्रेस कमेटी की जिस प्रारम्भिक बैठक मे प्रबन्ध तथा नियम सम्बन्धी कार्य होते थे उसी मे इस बार ताकत की आजमाइश हुई। पिछले महीने कार्यसमिति की जो बैठक वर्धा मे हुई थी उसमे प्रधानमन्त्री की वार्षिक रिपोर्ट को मनोनीत अध्यक्ष की अनुपस्थिति के कारण स्वीकार नहीं किया गया था। इसीलिये अ० भा० काग्रेस कमेटी मे जब प्रधानमत्री की रिपोर्ट उपस्थित की गई तब यह आपत्ति उठाई गई कि कार्य-समिति की स्वीकृति के विना अ० भा० काग्रेस कमेटी उस पर विचार नही कर सकती। अध्यक्ष ने फैसला दिया कि विधान मे यह कही नही कहा गया कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सामने उपस्थित होने से पूर्व प्रधानमन्त्री की रिपोर्ट पर कार्य-समिति की मंजूरी लाजिमी है। इसलिए कमेटी ने सर्वसम्मति से रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया। यह पहली कशमकश थी। दूसरी कशमकश तब उत्पन्न हुई जब श्री गोविन्दवल्लभ पत ने अ० भा० काग्रेस कमेटी के १६० सदस्यो की ओर से एक प्रस्ताव पेश किया जिसमे कहा गया कि चूकि आगामी वर्ष मे विकट परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है और चूकि ऐसे सकट के समय केवल महात्मा गाधी ही काग्रेस तथा देश को विजय-पथ पर ले जा सकते है, इसलिए यह आवश्यक है कि कार्यसमिति को उनका पूर्ण विश्वास प्राप्त हो और इसीलिए कमेटी अध्यक्ष से अनुरोध करती है कि वह कार्यसमिति का चुनाव गाधीजी की इच्छा के अनुसार करे। प्रश्न यह था कि इस प्रस्ताव को स्वीकार किया जाय या नही। एक वर्ग ने कहा कि अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी इस प्रकार के प्रस्ताव पर विचार ही नही कर सकती। अध्यक्ष ने भी यही निर्णय दिया। परन्तु उन्होने विषय-समिति मे इस प्रश्न को उठाने की अनुमति देना स्वीकार कर लिया।

अध्यक्ष का भाषण काग्रेस के इतिहास मे सब से छोटा था, किन्तु उसमे सुभाष बाबू ने राष्ट्र के आगे अपना दिल खोल कर रख दिया था। उन्होने अन्तर्राष्ट्रीय

परिस्थिति, म्यूनिक का समझौता, मिस्री प्रतिनिधिमडल, गाधीजी का अनशन, कार्य-समिति के सदस्यो का इस्तीफा और रियासतो की हलचल—सभी समस्याओ का जिक्र किया था। घरेलू राजनीति के सम्बन्ध मे उन्होने बताया कि उसमे निराशावाद के लिए स्थान न था, बल्कि इससे विपरीत परिस्थिति राष्ट्र के लाभ मे ही थी जिससे लोग सफलता की आशाए कर सकते थे। उनका कहना था कि हमे ब्रिटिश सरकार के सामने अपनी माग एक अल्टीमेटम के रूप मे रखनी चाहिए और उनका उत्तर पाने के लिए समय की अवधि निर्धारित कर देनी चाहिये और यदि इस निर्धारित अवधि के भीतर सतोपजनक उत्तर न मिले तो हमे अपनी राष्ट्रीय माग स्वीकार कराने के लिये सामूहिक सत्याग्रह जैसी कार्रवाई करनी चाहिए, क्योकि सुभाष बाबू का विश्वास था कि ब्रिटिश सरकार अखिल भारतीय सत्याग्रह जैसे आदोलन का अधिक समय तक सामना नही कर सकेगी। उनके विचार से निष्क्रिय दृष्टिकोण रख कर सघ योजना लादे जाने की प्रतीक्षा का समय नही था, बल्कि वह सघ-योजना लादे जाने से पूर्व कार्रवाई आरम्भ कर देने के पक्ष मे थे।

राष्ट्रीय माग के व्यापक प्रश्न पर त्रिपुरी मे हरिपुरा से अधिक और कुछ न कहा गया। उस समय एक तरफ राष्ट्रीय सघर्ष के आसार दिखाई दे रहे थे तो दूसरी तरफ अतर्राष्ट्रीय युद्ध के बादल घिरते आ रहे थे। भारत को इन दोनो ही परिस्थितियो का सामना करना था और इसीलिए त्रिपुरी मे एकता की वृद्धि, फूट की शक्तियो के निराकरण, प्रातीय कार्यो के एकीकरण तथा राष्ट्रीय सस्था की शक्ति बढाने की आवश्यकता पर जोर दिया गया। सब कुछ ठीक था। मार्ग स्पष्ट था और मजिल दिखाई देने लगी थी। उस तक पहुचने की बाधाए भीतरी और बाहरी दोनो ही प्रकार की थीं। यदि हमे बाहरी बाधाओ पर विजय पाना था तो भीतरी बाधाओ को तो मार्ग से बिलकुल हटा देना ही जरूरी था। जो अव्यवस्था दिखाई दे रही थी उसमे से काग्रेस व्यवस्था को कैसे खोज निकाले? इस राष्ट्र की डगमगाती नैया का केवट कौन हो? गाधीजी राजकोट मे थे और हाल ही मे अनिश्चित काल के लिए आरम्भ किये गये एक अनशन को समाप्त कर चुके थे। उनका शरीर त्रिपुरी मे नही था, किन्तु आत्मा वही मौजूद थी। सवाल सिर्फ यही था कि राष्ट्र उन्हे अपना कर्णधार बनाता है या नही? त्रिपुरी मे प्रतिनिधियो को इसी प्रश्न का फैसला करना था।

अधिवेशन भर सुभाष बाबू बीमार रहे और इधर काफी समय से इस बीमारी मे कोई सुधार होता हुआ नही दिखाई दे रहा था, यहा तक कि वह खुले अधिवेशन तक मे नही आ पाये थे। अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी तथा विषय-समिति की बैठक मे वह स्ट्रेचर पर लाये गये थे। उनके स्ट्रेचर पर आने-जाने से दया का सचार होता था, लेकिन जहा तक सिद्धान्तो और नीतियो का सवाल था, दोनो ही पक्ष अडिग थे। प्रतिनिधियो के एक भाग मे गुल-गपाडा मच रहा था। इसके कारण

लगभग एक घण्टे तक कार्यवाही न हो सकी। जब शरत बाबू मंच पर आये और उन्होने अनुरोध किया तब शोरगुल कम हुआ। यह उपद्रव प० गोविन्द वल्लभ पत के इस सुझाव पर हुआ कि खुले अधिवेशन मे इस अप्रिय प्रसग से बचने के लिए प्रस्ताव को अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के सिपुर्द कर दिया जाय। परन्तु इस सुझाव का जोरदार विरोध किया गया। सुझाव वापस ले लिया गया और अधिवेशन स्थगित कर दिया गया। अगले दिन दर्शको को बाहर ही रखा गया और विषय-समिति के पडाल मे, प्रतिनिधि एकत्र हुए। प्रतिनिधियो के अलावा पडाल मे पत्रकार तथा स्वयसेवक भी थे। इस बार प्रबन्ध उत्तम हुआ और खुला अधिवेशन सुव्यवस्थित रूप से हुआ। बाद मे जब विषय समिति के पडाल मे खुला अधिवेशन आरम्भ होने जा रहा था, बगाल के कुछ मित्रो ने पहले वाले सुझाव को मानना स्वीकार किया; किन्तु फिर शोरगुल होने से वह आगे न बढ सका। खैर, खुले अधिवेशन की कारवाई आरम्भ हुई और प्रस्ताव, बिना किसी उल्लेखनीय घटना के पास हो गया।

सुभाष बाबू का त्याग-पत्र

काग्रेस का अधिवेशन समाप्त हो गया। त्रिपुरी मे अध्यक्ष की विदाई एक गम्भीर घटना थी। इस अवसर पर परिवार के कुछ लोग, एक या दो डाक्टर या कार्यसमिति के दो सदस्य उपस्थित थे। बडी कठिनाई से सुभाष बाबू को अम्बुलेस गाडी की गद्दी पर रखा गया, जिसमे उन्हे लम्बी यात्रा करनी थी। वह सीधे झरिया के निकट किसी स्थान को गये और वहा स्वास्थ्य सुधार होने मे लगभग एक महीना लग गया। प्राय नित्य ही देश मे कार्यसमिति के सदस्यो के चुनाव और इस सम्बन्ध मे घोषणा की प्रतीक्षा की जाती थी। परन्तु उन्होने यह घोपणा नही की। अन्त मे परिस्थिति का सामना करने के लिए अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी की एक बैठक बुलाई गई। काग्रेस के कार्य मे गतिरोध उत्पन्न हो गया था। कार्य समिति के बिना काग्रेस की वही अवस्था थी, जो हाथ-पैर के बिना शरीर की होती है। सुभाष बाबू के रुख से पैदा हुई स्थिति का मुकाबला अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी ही कर सकती थी, जिसकी बैठक कलकत्ता मे अप्रैल १९३९ मे हुई। परन्तु इस बैठक से पूर्व कलकत्ता मे सुभाष बाबू ने इस्तीफा दे दिया। ऐसी स्थिति मे उस वर्ष के लिए नये राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू निर्वाचित हुए।

सुभाष बाबू का विरोधी रुख

पाठको को स्मरण होगा कि जलपाईगिरि (बगाल) के जिला-सम्मेलन मे ब्रिटिश सरकार को छ. महीने का अल्टीमेटम देने और फिर से सत्याग्रह शुरू करने का गुर निकाला गया था। बगाल के लोग ब्रिटिश सरकार से सघर्ष शीघ्र

ही छेडने के पक्ष मे थे। किसानो को रियायतें देने के बारे में भी वे सत्याग्रह की धमकी दे रहे थे। बगाल में काग्रेसी मन्त्रिमडल था। ऐसी स्थिति में यदि सत्याग्रह चलाया जाता तो वहा के मत्रियो को सत्याग्रह का सामना करना पडता। इसके अतिरिक्त किसी भी उद्देश्य के लिए छेडा गया सत्याग्रह सम्वन्धित प्रान्तीय काग्रेस कमेटी के निर्देशन तथा नियत्रण मे ही चलता। इन वातो की उपेक्षा करके सुभाष बावू ने इस विद्रोह का नेतृत्व किया। इन्ही दिनो काग्रेस के दो दलो मे मनमुटाव बढने का एक और भी कारण उत्पन्न हो गया। यह अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी द्वारा अपनी उसी बैठक मे काग्रेस पार्टियो तथा प्रान्तीय कमेटियो को दी हुई सलाह थी। प्रान्तीय कमेटियो को यह आदेश दिया गया था कि उन्हे शासन-सम्वन्धी मामलो मे हस्तक्षेप न करना चाहिए। यदि नीति के सम्वन्ध मे मन्त्रिमडल या प्रान्तीय कमेटी मे कोई मतभेद उठे तो उसे पार्लमिटरी वोर्ड के सुपुर्द करना चाहिए और इस सम्वन्ध मे सार्वजनिक रूप से कोई वहस न होनी चाहिए। इस नियम के विरोधियो ने जनता के अधिकारो पर कुठाराघात समझा और कहा कि इससे तो प्रान्तीय काग्रेस कमेटिया मत्रियो तथा धारासभाओ की पार्टियो के अधीन हो गईं। विभिन्न स्थानो की मातहत कमेटियो ने अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के निश्चयो के औचित्य पर सदेह प्रकट करते हुए प्रस्ताव पास किये और उनकी निन्दा के लिए सभाए वुलाईं। उचित तो यह था कि उच्च कमेटी के पास सुझाव भेजा जाता या कोई अनुरोध किया जाता, किन्तु किया यह गया कि सुभाष बावू और उनके अनुयायियो ने अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के उपर्युक्त निर्णयो के बारे मे ९ जुलाई को भारत मे विरोध-दिवस मनाया। इन दिनो गाधीजी सीमाप्रान्त गये हुए थे और जवाहरलालजी लका जा रहे थे। फिर भी कार्यसमिति की बैठक तुरन्त बुलाना आवश्यक समझा गया। अगस्त १९३९ मे वर्धा मे उसकी बैठक हुई। सुभाष बाबू से स्पष्टीकरण करने को कहा गया, क्योकि उन्होने इस प्रदर्शन का आयोजन किया था।

कार्य-समिति का निश्चय

सुभाष बाबू की लम्बी सफाई पर कार्यसमिति ने उत्सुकतापूर्वक विचार किया और अन्त मे खेद और अनिच्छा के साथ इस परिणाम पर पहुची कि राष्ट्रपति ने जो मुख्य बात कही थी, उसे सुभाष बाबू ने अच्छी तरह नही समझा। कार्यसमिति का विचार यह था कि "भूतपूर्व अध्यक्ष की हैसियत से सुभाष बाबू को अनुभव करना चाहिए था कि अध्यक्ष-द्वारा उन्हे जो आवश्यक आदेश दिये गये थे, राष्ट्र के सेवक के रूप मे उन्हें पालन करना चाहिए था, चाहे अध्यक्ष के निर्णय से उनका निजी मतभेद ही क्यो न रहा हो। यदि सुभाष बाबू को अध्यक्ष के निर्णय पर आपत्ति थी तो वह यह आपत्ति कार्यसमिति या अखिल भारतीय काग्रेस

कमेटी के सामने उपस्थित कर सकते थे, किन्तु जब तक अध्यक्ष के आदेश बने हुए थे तब तक सुभाप बावू को उन्हे मानना चाहिए था। काग्रेस को ससार की सब से शक्तिशाली साम्राज्यवादी ताकत से टक्कर लेनी है और ऐसे समय मे कार्यसमिति सुभाष बावू का यह तर्क मानने मे असमर्थ है कि प्रत्येक सदस्य को काग्रेस के विधान का मनमाना अर्थ लगाने की स्वतत्रता है, क्योकि यदि इस प्रकार की स्वतत्रता दी गई तो काग्रेस मे अराजकता फैल जायगी और थोडे समय मे उसका खात्मा हो जायगा। इसीलिए सुभाप बावू को वगाल प्रान्तीय काग्रेस कमेटी के अध्यक्ष पद के लिए तथा अगस्त, १९३९ से तीन वर्प के लिए किसी भी निर्वाचित काग्रेस कमेटी मे चुने जाने के अयोग्य ठहरा दिया गया। आशा प्रकट की गई कि श्री सुभापचन्द्र बोस अपनी गलती महसूस कर के अनुशासन की कार्रवाई स्वीकार करेगे। परन्तु सुभाष वावू ने इसके वाद दक्षिण भारत का दौरा किया। इस दौरे मे जनता की भारी भीड के स्वागत से वह इस भ्रम मे पड गये कि सब लोग उन्ही के अनुयायी है और सब-के-सब उस अग्रगामी दल (फारवर्ड ब्लाक) मे सम्मिलित हो जायगे, जिसकी स्थापना उन्होने इस्तीफा देने के वाद की थी।

नेहरूजी की लंका-यात्रा

लका के कुछ कानूनो के कारण प्रवासी भारतीयो के लिए चिन्तनीय परिस्थिति पैदा हो गई थी। दो मैत्रीपूर्ण पडोसियो के बीच अनावश्यक झगडे को रोकने के लिए अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी ने प० जवाहरलाल नेहरू को लका जाने और सम्भव हो तो शान्तिपूर्ण समझौता कराने के लिए नियुक्त किया। जवाहरलाल नेहरू १६ जुलाई को वायुयान द्वारा कोलम्बो पहुचे। जनता ने, जिसमे सिहल तथा भारतीय दोनो ही थे, उनका शानदार स्वागत किया। लका की राज-परिपद के नेता सर बेरन जयतिलक के कहने पर एक विशेप स्वागत समिति बनाई गई, जिसका आतिथ्य पडितजी ने स्वीकार किया।

लका मे उनका वडा व्यस्त कार्यक्रम रहा। वह मन्त्रियो, सीलोन इडियन काग्रेस और सीलोन सेंट्रल इडियन असोसियेशन के प्रतिनिधियो तथा अन्य व्यक्तियो से मिले। उन्होने कई सार्वजनिक सभाओ मे भापण भी दिये। मन्त्रियो के साथ अपनी वार्ता मे उन्होने सिहलो तथा लका मे वसे भारतीयो को व्यापक दृप्टिकोण से हल करने की आवश्यकता पर जोर दिया। आपने कहा कि हमे जिन महान समस्याओ का सामना करना है उनकी तुलना मे वर्तमान समस्याए छोटी एव गौण है, इसलिए इस छोटी समस्या को हमे व्यापक दृप्टिकोण से देखना चाहिए। भारतीयो तथा उनके प्रतिनिधियो से उन्होने अन्दरूनी मतभेदो को मिटाकर आत्माभिमानी नागरिको के समुदाय वनने का अनुरोध किया। साथ ही उन्होने

भारतीयो को सलाह दी कि वे लका को अपना घर समझे और सचाई तथा लगन से उसकी सेवा करें।

इस प्रकार समस्या के प्रति इस उच्च दृष्टिकोण के कारण सब तरफ शान्त और अनुकूल वातावरण उत्पन्न हो गया, परन्तु मन्त्रिगण भारतीयो को वापस भेजने की योजना मे कोई बडा परिवर्तन करने के लिए राजी नही हो सके। योजना मे थोडा हेर-फेर करना उन्होने अवश्य स्वीकार कर लिया और वादा किया कि भारतीयो के लौटाने की वह ऐसी व्यवस्था करेंगे कि उन्हे विशेप असुविधा न हो। यद्यपि जवाहरलाल जी की यात्रा के कारण दोनो देशो की परम्परागत मैत्री की यादगारे ताजी हो गईं और कटुता मे भी कमी हो गई, लेकिन उसके कारण उद्देश्य की सिद्धि न हो सकी। लका की सरकार का रुख तत्कालीन समस्याओ के सम्बन्ध मे इतना हठी रहा कि कार्यसमिति को अपने प्रस्ताव मे कहना पडा कि यह रुख अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की वृद्धि करने वाला अथवा न्यायपूर्ण नही है। समिति ने विचारपूर्वक अपना मत प्रकट किया कि लका के लिए भारत से मजदूरो का जाना एकदम रोक दिया जाय। यहा यह भी बता देना अप्रासगिक न होगा कि १९४० मे लका-सरकार का एक प्रतिनिधि मडल भारत सरकार से वार्ता करने के लिए आया और इसका भी कोई भिन्न परिणाम न निकला।

खादी पहनने पर जोर

शिकायते आने पर कि निर्वाचित स्थानो पर चुने गये अथवा उनके उम्मीदवार व्यक्ति आदतन खद्दरधारी नही है, एक अधिकारपूर्ण घोपणा आवश्यक हो गई। हरिपुरा अधिवेशन समाप्त होते ही कार्यसमिति की बैठक हुई थी और उसमे कहा गया था कि सिर्फ हाथ का कता और हाथ का बुना कपडा ही खद्दर नही कहा जायगा, बल्कि उस कपडे को भी खद्दर कहा जा सकता है, जिसे बनाने मे कारीगरो को चर्खा सघ द्वारा निर्धारित मजदूरी दी गई हो। जब कार्यसमिति से प्रश्न किया गया कि "हाथ से कती और हाथ से बुनी खादी का आदतन पहनने वाला" किसे कहा जायगा तब कार्यसमिति ने फैसला दिया कि आदतन खादी पहनने वाला वही व्यक्ति माना जायगा, जो किसी काग्रेस कमेटी मे अथवा किसी पद के लिए निर्वाचित होने के छ महीने पूर्व से खादी पहनता रहा हो। यह भी निश्चय किया गया कि खादी वाली धारा जिस प्रकार धारासभाओ की सदस्यता के लिए आवेदनपत्र भेजने वालो पर लागू होती है उसी प्रकार वह म्यूनिसिपल तथा स्थानीय बोर्डो के सदस्यो पर भी लागू होगी।

बम्बई मे नशाबन्दी-आन्दोलन

बम्बई के लिए १ अगस्त का दिन स्मरणीय था। इस दिन बम्बई नगरी तथा

पास की बस्तियो मे नशाबदी का कार्यक्रम आरम्भ किया गया। पहले दिन एक विशाल जलूस निकाला गया, जो एक भारी सभा मे समाप्त हुआ। इस सभा मे भाषण करते हुए सरदार वल्लभ भाई पटेल ने कहा—"सम्पूर्ण भारत और बम्बई हमे देख रहा है। सारा ससार जिस दिन की इन्तजारी कर रहा था वह दिन आ गया है। इस देश के लिए यह दिन नशाखोरी की राक्षसी से हमारे छुटकारे का दिन है। आज बम्बई ने अपने पिछले इतिहास का खात्मा करके एक नये अध्याय का आरम्भ किया है।"

गाधीजी ने, जो इस प्रयोग के प्रेरक थे, निम्न सन्देश भेजा—

"मुझे आशा है कि अन्त मे बम्बई की सहज सद्भावना की, जिसके लिए वह प्रसिद्ध है, विजय होगी और सब मिलकर बम्बई मन्त्रिमडल द्वारा आरम्भ किये गये इस साहसपूर्ण सुधार को सफल बनायेगे, जैसा कि इसे होना ही चाहिए। मुझे विश्वास है कि नशाखोरी के अभिशाप से छुटकारा देश के लिए एक वरदान सिद्ध होगा।"

जमनालाल बजाज की रिहाई

श्री जमनालाल बजाज की रिहाई भी इस वर्ष की एक प्रमुख घटना थी। कार्यसमिति के एक सदस्य तथा जयपुर प्रजामडल के अध्यक्ष श्री जमनालाल बजाज को जयपुर राज्य मे प्रवेश की निषेध-आज्ञा भग करने के अपराध मे पिछली फरवरी मे गिरफ्तार कर लिया गया था। वह जयपुर अकाल-पीडितो की सहायता का कार्य करने जा रहे थे। आज्ञा उल्लघन करने पर उन पर बाकायदा मुकदमा नही चलाया गया, बल्कि उन्हे अनिश्चित काल के लिए जेल मे रखा गया। जेल के कष्टमय जीवन का उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पडा। जब मामला स्थानीय डाक्टरो की शक्ति के बाहर हो गया तब सेठजी को इस शर्त पर छोड़ना स्वीकार किया गया कि वह इलाज के लिए विदेश चले जाय। जमनालालजी ने इन शर्तो पर छोडा जाना पसन्द नही किया। ९ अगस्त १९३९ को छ महीने के अनावश्यक तथा कष्टमय जेल-जीवन के बाद उन्हे बिना किसी शर्त के छोड़ दिया गया।

द्वितीय महायुद्ध और भारत

पिछले बारह साल से काग्रेस दूसरे यूरोपीय महायुद्ध के छिड़ने की आशका कर रही थी। आखिरकार १९३९ के अगस्त महीने के दूसरे सप्ताह मे अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति ने चिन्तनीय रूप धारण कर लिया और युद्ध का संकट उपस्थित हो गया। एक ओर वे राष्ट्र थे, जो लोकतत्रवाद और स्वाधीनता के हामी थे और दूसरी ओर वे राष्ट्र थे जिनके दृष्टिकोण फासिस्ट थे और जिनके आचरण से हमला करने के इरादे के चिह्न दिखाई दे रहे थे। राष्ट्रो के इन दो दलों के बीच

काग्रेस की सहानुभूति स्पष्टतया पहले की ओर थी। परन्तु काग्रेस निश्चय कर चुकी थी कि वह युद्ध मे भारत के ढकेलने के प्रयत्न का विरोध करेगी। १ मई १९३९ को कलकत्ते मे होने वाली अपनी बैठक मे काग्रेस कमेटी विदेशो को भारतीय सेना की रवानगी के वारे मे अपने विरोध को दुहरा चुकी थी, फिर भी सरकार ने मिस्र तथा सिगापुर को भारतीय सेना भारतीय जनता की इच्छा के विरुद्ध भेज दी थी। युद्ध-परिस्थिति के अलावा केन्द्रीय असेम्वली भी कह चुकी थी कि उसकी अनुमति के विना सेना विदेश न भेजी जायगी। इस तरह जाहिर था कि व्रिटिश सरकार काग्रेस तथा असेम्वली की घोपणाओ का अनादर कर ऐसे कार्य कर रही थी, जिनके परिणामस्वरूप भारत के युद्ध मे फस जाने की सम्भावना थी। लोकमत की इस अवज्ञा के कारण जवाव मे कार्यसमिति ने केन्द्रीय असेम्वली के सदस्यो से असेम्वली के अगले अधिवेशन मे भाग न लेने का अनुरोध किया। साथ ही प्रान्तीय सरकारो को चेतावनी दी गई कि काग्रेसी मन्त्रिमडलो को चाहे इस्तीफा ही देना पडे, किन्तु उन्हे युद्ध की तैयारियो मे हरगिज सहायता न देनी चाहिए।

इसके वाद घटनाचक्र बहुत तेजी से घूमा। इधर २४ अगस्त, १९३९ को मास्को मे रूसी-जर्मन अनाक्रमण-सधि हुई और उधर व्रिटिश विदेश-विभाग ने २५ अगस्त को व्रिटेन और पोलैण्ड के वीच परस्पर सहायता की घोषणा कर दी। पोलैण्ड के प्रति व्रिटेन ने जो जिम्मेदारी ग्रहण की थी उसके कारण व्रिटिश सरकार को जर्मन सरकार से कहना पडा कि यदि वह पोलैण्ड के प्रति हमले की कार्रवाई रोक कर सतोपजनक आश्वासन न देगी और पोलैण्ड की भूमि से अपनी सेना न हटा लेगी तो तीन सितम्बर के ११ बजे से दोनो देशो के मध्य युद्ध की अवस्था आरम्भ हो जायगी। फिर तीन सितम्बर को श्री चेम्वरलेन ने रेडियो पर घोपणा करते हुए कहा कि चूकि ऐसा कोई आश्वासन प्राप्त नही हुआ, इसलिए व्रिटेन का जर्मनी से युद्ध चालू समझना चाहिए। इस प्रकार युद्ध छिड गया।

तीन सितम्बर की रात को सम्राट ने अपने साम्राज्य के नाम एक सदेश दिया। इसमे उन्होने एक ऐसे राज्य की स्वार्थपरता की निन्दा की, जिसने अपनी सधियो और वचनो को भग कर के दूसरे राज्यो की स्वाधीनता पर आक्रमण करने के लिए पशुबल का सहारा लिया था। इसके उपरान्त वाइसराय ने अपनी घोषणा मे उपस्थित समस्या पर प्रकाश डाला और विश्वास प्रकट किया कि भारत पशुवल के विरुद्ध मानवीय स्वाधीनता के लिए लडेगा। उनके सदेश का सबसे उपहासास्पद अथवा सबसे अधिक चोट करने वाला भाग वह था, जिसमे उन्होने यह विश्वास प्रकट किया था कि भारत पशुबल के विरुद्ध मनुष्य की स्वाधीनता का पक्ष ग्रहण करेगा और ससार की ऐतिहासिक सभ्यता की हैसियत से दुनिया के महान राष्ट्रो के बीच अपने स्थान के अनुरूप अपने हिस्से का कार्य पूरा करेगा। सचमुच एक

कार्यसमिति की बैठक

इस समय ब्रिटेन एक तरह से अकेला और असहाय रह गया था। यहा तक कि स्वाधीन उपनिवेशो ने विरोधी भावनाओ का परिचय दिया था। यदि एक ओर आयर्लैंड ने तटस्थ रहने का निश्चय किया था और दक्षिण अफ्रीका ने सिर्फ एकमत से स्मट्स के पक्ष मे फैसला किया था तो आस्ट्रेलिया ने स्वार्थपूर्ण भावना प्रकट की थी और कनाडा ने सुदूर मैत्री का परिचय दिया था। यदि ऐसे समय गाधीजी से नैतिक सहयोग का वचन प्राप्त कर वाइसराय जोरदार और विश्वासपूर्ण स्वर मे उत्सुक ससार के आगे घोषणा कर देते कि गाधीजी के इस वचन मे वह भारत की ३५ करोड जनता के समर्थन की आशा देख रहे है तो ससार के समस्त राष्ट्र और विशेषकर शत्रु-राष्ट्र ब्रिटेन के लिए प्राप्त इस सहायता को देखकर चकित रह जाते। अत लार्ड लिनलिथगो और ब्रिटेन के सामने यह समस्या थी कि गाधीजी के इस पूर्ण और हार्दिक समर्थन से सतुष्ट हो जाय और भारत से साधनो और असख्य जनो की भी सहायता प्राप्त करे। दूसरे शब्दो मे प्रश्न यह था कि गाधीजी ने ब्रिटेन के प्रति राष्ट्र की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए जो आवाज उठाई थी उसे प्राप्त किया जाय या भारत की सम्पत्ति तथा उसकी करोडो जनता को सेना मे भरती करने की सुविधा उपलब्ध की जाय।

९ सितम्बर, १९३९ को इस परिस्थिति पर विचार करने के लिए वर्धा मे कार्यसमिति की बैठक हुई। समिति ने पोलैण्ड के प्रति, जो पशुबल का शिकार हुआ था, गहरी सहानुभूति प्रकट की और इगलैण्ड तथा फ्रास जिस उद्देश्य से युद्ध मे शामिल हुए थे उसकी सराहना की। साथ ही समिति ने इस बात के लिए खेद और आश्चर्य प्रकट किया कि जब साम्राज्य के स्वाधीन उपनिवेश अपनी-अपनी पार्लमिन्टो से युद्ध मे भाग लेने अथवा न लेने का फैसला कर रहे है, तब भारत का युद्ध से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध न होने पर भी उसे उसमे भाग लेने के लिए विवश कर दिया गया है। समिति को वाइसराय की इस घोषणा से प्रसन्नता हुई है कि सरकार ने सघ-योजना को अमल मे लाने की तैयारियो को रोक दिया है, यद्यपि उसने सघ-शासन के सिद्धान्त को अक्षुण्ण बनाये रखा है। समिति का मत है कि केन्द्र मे जिम्मेदार शासन के अभाव तथा सघ-योजना स्थगित होने के कारण केन्द्र मे एक ऐसी अनुत्तरदायी सरकार रह गई है, जो युद्ध की तैयारियो के सम्बन्ध मे प्रान्तीय सरकारो पर नियत्रण रखती है और इस तरह एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई है, जिसे चुपचाप नही छोडा जा सकता। यदि प्रान्तीय सरकारो को सिर्फ प्रान्तीय स्वायत्त शासन के क्षेत्र मे ही नही, बल्कि युद्ध सम्बन्धी उन नये कार्योके बारे मे भी कार्रवाई करनी है, जिनकी अन्तिम जिम्मेदारी प्रातीय सरकारो पर आनी चाहिए, तो केन्द्रीय सरकार के सम्बन्ध मे उनकी स्थिति साफ होनी चाहिए।

पिछले, खासकर गत महायुद्ध के, अनुभव ने हमे सिखा दिया है कि ब्रिटिश सरकार या भारत सरकार के युद्धकालीन वचनो या वक्तव्यो पर विश्वास नही किया जा सकता। इसलिए समिति सरकार से अनुरोध करती है कि भारत के सम्बन्ध मे सिर्फ स्थिति का स्पष्टीकरण ही नही होना चाहिए, बल्कि इन सिद्धातो पर अमल भी शुरू हो जाना चाहिए। समिति ने घोषणा की कि जब तक स्थिति का स्पष्टीकरण इस भाति नही किया जाता तब तक वह देश की सरकार से पूर्ण सहयोग करने की सलाह नही दे सकती।

इसके अलावा सत्याग्रह का प्रश्न था। इस प्रश्न का एक पक्ष तो यह हो सकता था कि सत्याग्रह छेडने पर सभव है, सरकार मार्शला-ला घोपित कर दे और नेताओ को जेलो मे ठूस दे। दूसरे पक्ष मे तर्क यह दिया गया कि यदि मन्त्रिमडलो को काम करते रहने दिया गया और मन्त्री काग्रेसजनो की गिरफ्तारी का आदेश देने को मजबूर हुए तो युद्ध समाप्त होने तक राजनैतिक सगठन के रूप मे काग्रेस का खात्मा ही हो जायगा। इस तरह काग्रेस को दो बुराइयो मे से एक का चुनाव करना था। गाधीजी की राय थी कि हमे अपना नैतिक समर्थन प्रदान करना चाहिए और मन्त्रियो को काम करते रहने देना चाहिए। जवाहरलालजी समझौता द्वारा जिस पूर्ण स्वराज्य या स्वाधीन उपनिवेश पद प्राप्त करने की आशा करते थे, गाधीजी का खयाल था कि इस प्रकार की घोपणा वह मन्त्रियो द्वारा प्राप्त कर सकते थे। दोनो ही अवस्थाओ मे इस बात का खतरा था कि हो सकता है कि वादा पूरा न किया जाय, किन्तु गाधीजी के दृप्टिकोण से होने वाली घोपणा के पूरी होने की सम्भावना अधिक थी। गाधीजी का कहना था कि उस हालत मे सिर्फ बातचीत के दर्मियान हुए वादे को पूरा करने का ही सवाल न था, बल्कि तब तो एक नैतिक जिम्मेदारी अदा करने की बात उठती थी। गाधीजी कोई राजभक्ति की भावना के कारण ऐसा नही सोचते थे, बल्कि वह हमारी कमजोरी का अनुभव कर रहे थे। वास्तव मे गाधीजी किसी प्रस्ताव के आधार पर बातचीत चलाने को तैयार न थे और न वह कोई माग उपस्थित करने के ही पक्ष मे थे, यहा तक कि वह अवधि निर्धारित करने की बात भी किसी हालत मे मानने को तैयार न थे। यदि ब्रिटेन से कुछ मिले तब भी गाधीजी उसे लेने को तैयार न थे। वह सविनय अवज्ञा के भी विरुद्ध थे। सभी जानते है कि घोपणा-पत्र के प्रस्ताव के मसविदे के मुख्य भाग से जवाहरलालजी का सम्बन्ध था। गाधीजी ने अनुभव किया कि यदि वह प्रस्ताव पास हो तो जवाहरलालजी को अध्यक्ष बनना चाहिए और उन्ही को अपनी कार्यसमिति का चुनाव करना चाहिए। गाधीजी अपने अहिसा के सिद्धान्त पर किसी तरह से आच न आने देना चाहते थे। वह सिर्फ मध्यस्थ ही बन सकते थे। यही उनकी स्थिति थी। ऐसी स्थिति मे उन्होने अनुभव किया कि कार्यसमिति उनके साथ चलने को तैयार नही है।

यदि वह चाहते तो कार्यसमिति मे वहुमत उनके पक्ष मे हो सकता था, किन्तु वह सदा से हृदय के परिवर्तन मे विश्वास करते थे। इसीलिए खुद सहमत न होते हुए भी वह चाहते थे कि जवाहरलालजी का मसविदा मजूर होना चाहिए। उन्ही को वातचीत करना चाहिए और अध्यक्ष भी उन्ही को चुना जाना चाहिए। यह सुझाव कुछ विचित्र-सा जान पडता था, परन्तु वास्तव मे इससे तीन दिन पहले ही राजेन्द्र वावू सेवाग्राम गये थे और उन्होने अपना इस्तीफा देने को कहा था। वैधानिक कठिनाई के कारण जवाहरलालजी को अध्यक्ष वनाने का सुझाव आगे न वढ सका। तव युद्ध-समिति नियुक्त करने का एक और प्रस्ताव सामने आया और उसे तुरन्त स्वीकार कर लिया गया। जवाहरलालजी इस समिति के अध्यक्ष थे और उन्होने इस समिति के अन्य सदस्यो का चुनाव किया। चुने हुए सदस्य थे वल्लभभाई पटेल तथा अवुलकलाम आजाद। प्रस्ताव का मसविदा समिति मे दूसरी वार पढा गया और कुछ मौखिक सशोधनो के साथ उसे स्वीकार कर लिया गया। ९ सितम्वर से १५ सितम्वर तक कार्यसमिति की वैठक हुई। इसी वीच ११ सितम्वर को सम्राट का सदेश आया, जिसमे भारतवासियो के प्रत्येक वर्ग से सहायता और समर्थन की आशा प्रकट की गई थी।

गांधीजी का वक्तव्य

काग्रेस कार्यसमिति के घोषणा-पत्र पर गाधीजी-द्वारा विचार कर लेने के वाद उसे प्रकाशित कर दिया गया। गाधीजी का वक्तव्य सक्षेप मे नीचे दिया जाता है —

"कार्यसमिति ने विश्व-युद्ध सकट के सम्वन्ध मे जो वक्तव्य जारी किया है उसे तैयार करने मे पूरे चार दिन लग गये है। समिति के कहने पर घोषणा-पत्र का मसविदा पडित जवाहरलाल नेहरु ने तैयार किया था। मेरा विचार था कि व्रिटेन को जो भी समर्थन दिया जाय वह विना किसी शर्त के दिया जाय, किन्तु यह देखकर खेद हुआ कि यह विचार सिर्फ मेरा अपना ही था। यह सिर्फ अहिसात्मक आधार पर ही होना सम्भव था। लेकिन समिति को तो भारी जिम्मेदारी पूरी करनी थी। वह सिर्फ अहिसात्मक दृष्टिकोण कैसे ग्रहण कर सकती थी! समिति ने अनुभव किया कि विरोधी की कठिनाई से लाभ न उठाने की शक्ति के लिए जिस अहिसात्मक भावना की जरूरत होती है उसका राष्ट्र मे अभाव है। फिर भी, समिति जिस नतीजे पर पहुची है उसके कारणो पर रोशनी डालते हुए उसने अग्रेजो के प्रति महान उदारता का परिचय दिया है। इसलिए इस वक्तव्य को इस देश के निवासियो के नाम, अथवा व्रिटिश सरकार और व्रिटिश जनता के नाम नही, वल्कि ससार के उन सभी राष्ट्रो के नाम जो भारत की तरह पीडित है, एक घोषणा-पत्र कहा जा सकता है। इसने कार्यसमिति के द्वारा सम्पूर्ण भारत को इस

बात के लिए मजबूर किया है कि वह सिर्फ अपनी स्वाधीनता का ही खयाल न करे, बल्कि दुनिया के सभी शोषित राष्ट्रों की स्वाधीनता का ध्यान रखे।

"समिति ने यह वक्तव्य पास करने के साथ ही जवाहरलालजी की मर्जी का एक बोर्ड नियुक्त किया है और उन्ही को इस बोर्ड का अध्यक्ष बनाया है। इस बोर्ड का काम समय-समय पर बदलने वाली परिस्थिति का सामना करना होगा। मुझे आशा है कि इस वक्तव्य का काग्रेस के सभी वर्ग समर्थन करेगे। राष्ट्र के इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण घडी मे काग्रेस को विश्वास करना चाहिए कि यदि कुछ करने की जरुरत हुई तो कार्रवाई के समय कमजोरी न दिखाई जायगी। यह बडे दु ख की बात होगी यदि इस समय काग्रेसजन दलगत भीतरी और छोटे-मोटे झगडो मे पडे रहे। यदि समिति की कार्रवाई से कोई बडा या महत्वपूर्ण परिणाम निकलता है तो प्रत्येक काग्रेसी का हार्दिक सहयोग मिलना बहुत ही जरूरी है। मुझे आशा है कि दूसरे सभी राजनैतिक दल भी ब्रिटिश सरकार से अपनी नीति का स्पष्टीकरण करने और लडाई के दिनो मे उस नीति के अनुसार जितनी कार्रवाई सम्भव हो करने की माग मे समिति का साथ देगे। अग्रेजो ने लोकतत्रवाद के बारे मे जो कुछ कहा है उससे स्वाभाविक परिणाम तो यही निकलता है कि हिन्दुस्तान व ब्रिटिश साम्राज्य के दूसरे प्रदेशो को स्वाधीन राज्य घोषित कर देना चाहिए। यदि युद्ध का उद्देश्य इसके अलावा कुछ और है तो पराधीन राष्ट्र ईमानदारी से या अपनी मर्जी से कैसे सहयोग कर सकते है। जरूरत सिर्फ ब्रिटिश राजनीतिज्ञो की विचारधारा मे मानसिक-क्रान्ति की है। युद्ध से पूर्व लोकतत्रवाद मे विश्वास की जो घोषणाए की गई थी और जिन्हे अभी तक दोहराया जा रहा है उन्हे अमल मे लाने के लिए ईमानदारी से कार्य करने की जरूरत है। सवाल यह है कि ब्रिटिश आधुनिक भारत को युद्ध मे घसीटना चाहेगा या सच्चे लोकतत्रवाद की रक्षा मे उसका सहयोग एक इच्छुक साथी के रूप मे प्राप्त करेगा? काग्रेस का समर्थन इगलैण्ड और फ्रास के लिए सबसे महान नैतिक निधि होगी, क्योकि काग्रेस के पास देने को सिपाही नहीं है। काग्रेस हिसात्मक साधनो से नही लडती। वह तो अहिसात्मक साधनो से ही काम लेती है, फिर चाहे ये साधन कितने ही अपूर्ण या बेढगे क्यो न हो।"

भारत-सरकार का रुख

इस बात को सभी स्वीकार करेगे कि युद्ध उप-समिति थोडे ही समय रही और इस थोडे समय मे उसने कार्य भी अधिक नही किया। रामगढ में यह उप-समिति फिर नियुक्त नही की गई। १६ सितम्बर, १९३९ से १९ मार्च, १९४० तक उसने प्राय कुछ भी महत्व का कार्य नही किया। २६ सितम्बर १९३९ से अप्रैल १९४० तक लार्ड जेटलैंड ने कई वक्तव्य दिये। इन वक्तव्यो की ध्वनि

प्रतिक्रियापूर्ण और क्षोभ पैदा करने वाली थी। इनमे इस बात की तारीफ की गई थी कि भारत से सभी वर्गो ने सरकार को सहायता प्रदान की है। यह जिक्र खास तौर पर किया गया कि देशी नरेशो ने धन, सेवाए और सैनिक देने को कहा है और देश के सभी भागो से लोगो ने सहानुभूति तथा समर्थन के सदेश भेजे है। इसके बाद भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के प्रतिनिधियो द्वारा दिये गये वक्तव्य का उल्लेख किया गया और कहा गया कि काग्रेस दोनो देशो के सम्बन्धो के बारे मे पेश की गई शर्ते पूरी होने की अवस्था मे ही सहयोग करने को तैयार है। लार्ड जेटलैंड ने लार्ड सभा की बहस के बीच लार्ड स्नेल के इन शब्दो को दोहराया कि "काग्रेस के नेताओ ने स्वशासन के अधिकारपूर्ण स्वरूप के सम्बन्ध मे अपने दावो को जो फिर से उपस्थित किया है वह स्वाभाविक तो अवश्य है, किन्तु साथ ही असामयिक भी है।" उन्होने दावो पर जोर डालने के लिए काग्रेस की भर्त्सना भी की। उन्होने कहा कि ऐसे समय जब कि अग्रेज जीवन-मरण के सग्राम मे लगे हुए है, किसी आन्दोलन के छेडने से उनकी परेशानी बढ जायगी। इसके बजाय उपयुक्त समय आने पर यदि दावो को पेश किया गया तो अग्रेज अधिक धैर्य से काग्रेस की माग सुन सकेगे।

गांधीजी का उत्तर

गाधीजी ने २६ सितम्बर को वाइसराय से दूसरी मुलाकात की और फिर २८ सितम्बर को उन्होने लार्ड जेटलैड को नीचे लिखा उत्तर दिया —

"लार्ड-सभा मे हुई बहस के अवसर पर काग्रेस की निदात्मक तुलनाए करने मे जो पुराना जोश दिखाया गया है, उसके लिए मै तैयार न था। मै तो यही मानता हूँ कि काग्रेस मे सभी आ गये है। किसी दूसरी सस्था की निदा किये बिना यह कहा जा सकता है कि एकमात्र काग्रेस ही ऐसी सस्था है, जो जाति और धर्म का भेद भुलाकर आधी शताब्दी तक सर्वसाधारण का प्रतिनिधित्व करती रही है। उसका कोई भी स्वार्थ ऐसा नही है, जिसका मुसलमानो अथवा रियासती प्रजा के स्वार्थो से विरोध हो। इसी सस्था ने अग्रेजो से अपने इरादे स्पष्ट करने की माग की है। यदि अग्रेज सभी की स्वाधीनता के लिए लड रहे है तो उनके प्रतिनिधियो को साफ शब्दो मे कह देना चाहिए कि भारत की स्वाधीनता भी उनके युद्ध-उद्देश्यो मे सम्मिलित है। इस स्वाधीनता के स्वरूप का फैसला खुद भारतीय ही कर सकते है। लार्ड जेटलैड के लिए यह शिकायत करना कि जब ब्रिटेन जीवन-मरण के सग्राम मे व्यस्त हो, काग्रेस को अग्रेजो के इरादो के स्पष्टीकरण की माग न करनी चाहिए उचित नही है। कागेस को यह जानने का अधिकार है कि वह जनता से यह कह सकती है या नही कि युद्ध के बाद भारत का पद स्वाधीन देश के रूप मे होगा अथवा नही? इसीलिए अग्रेजो के मित्र की हैसियत से मै अग्रेज

राजनीतिज्ञो से अपील करता हू कि साम्राज्यवादियो की पुरानी भाषा भूल कर उन्हे उन सभी लोगो के लिए एक नये युग का आरम्भ करना चाहिए, जो अभी तक साम्राज्यवाद के शिकार रहे है।"

नेहरूजी का उत्तर

कांग्रेस-युद्ध-उप-समिति के अध्यक्ष एक कदम और बढ गये। उन्होने कहा कि कार्यसमिति का वक्तव्य सिर्फ भारत की ही तरफ से नही, बल्कि ससार के पीडित लोगो की तरफ से दिया गया है ताकि निराश मानव-समाज को कुछ आशा बध सके। उन्होने ठीक ही कहा कि लार्ड जेटलैड उस कल की भाषा मे बोल रहे है, जो मर चुका है, गुजर चुका है। ऐसा भाषण बीस बरस पहले दिया जा सकता था। उन्होने यह भी अभिमानपूर्वक कहा कि हमने सौदा करने की भावना से अपनी मागे नही रखी है। हमे ससार को स्वाधीनता मिलने और ससार की उस स्वाधीनता म भारत के स्थान का विश्वास होना चाहिए। तभी हमारे और हम से भी अधिक हमारे मस्तिष्क और हृदय के लिए युद्ध का कुछ अर्थ हो सकता है, क्योकि तब हम ऐसे ध्येय की प्राप्ति के लिए लड सकेगे, जो सिर्फ हमारे ही लिए नही, बल्कि ससार की जनता के लिए भी उपयुक्त होगा। चूकि हम महसूस करते है कि बहुत से अग्रेजो के वही आदर्श है, जो हमारे भारत मे है, इसलिए हमने उन आदर्शो की प्राप्ति के लिए अपना सहयोग प्रदान किया है। लेकिन यदि ये आदर्श है ही नही तो हम लडते किसलिए है? जिन आदर्शो की खुले शब्दो मे घोषणा की जा रही है और जिन पर अमल भी किया जा रहा है उनके लिए स्वाधीन और रजामद हिन्दुस्तान ही लड सकता है। इसके बाद वाइसराय से कम-से-कम ५२ व्यक्ति मिले, जिनमे गाधीजी, राजेन्द्र प्रसाद, जवाहरलाल नेहरू वल्लभ भाई पटेल, सुभाष बाबू, श्री जिन्ना तथा मुसलिम लीग के अन्य सदस्य, नरेन्द्रमडल के अध्यक्ष और भारत के राजनैतिक जीवन के कुछ अन्य प्रमुख व्यक्ति थे।

प्रजा परिषद् का वक्तव्य

अखिल भारतीय राज्य-प्रजा-परिषद का पिछला अधिवेशन फरवरी १९३९ मे लुधियाना मे हुआ था और पडित जवाहरलाल नेहरू उसके अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे। इस प्रकार १९३९ के अक्टूबर मे वह कांग्रेस की युद्ध उप-समिति तथा देशी राज्य प्रजा परिषद दोनो के अध्यक्ष थे। ११ अक्टूबर को परिषद की स्थायी समिति ने एक वक्तव्य निकाल कर कार्यसमिति के विचारो तथा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के युद्ध विषयक प्रस्ताव का समर्थन किया। वक्तव्य मे स्थायी समिति ने कहा—"हम भारत की अखडता तथा समस्त जनता की स्वा-

धीनता मे विश्वास करते है। इस दृष्टि से समिति को संतोष है कि कांग्रेस ने इस संकट की घडी मे भारतीय राष्ट्र की लोकतंत्रीय स्वाधीनता की माग को अपनी जोरदार आवाज मे उपस्थित किया है। इस मिलने वाली स्वाधीनता मे रियासती प्रजा बराबरी की हिस्सेदार होनी चाहिए और उसे बराबरी की जिम्मेदारी भी उठाने को तैयार रहना चाहिए।" इसीलिए कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार से ब्रिटेन के युद्ध और शान्ति के उद्देश्यो के सम्बन्ध मे स्पष्टीकरण करने की जो माग की है उसके प्रति समिति अपनी सहमति प्रकट करती है। वक्तव्य मे यह भी कहा गया कि रियासतो के शासको ने जहाँ यूरोप मे लोकतंत्रवाद की रक्षा के लिए सहायता देने का वचन दिया है वहाँ उनकी अपनी रियासतो मे नग्न निरंकुशता का बोलबाला है। इसलिए समिति ने नरेशो से अनुरोध किया कि वे अपने यहा पूर्ण उत्तरदायी शासन का लक्ष्य स्वीकार करने की घोषणा कर दे और निकट भविष्य मे इस नीति को अधिक-से-अधिक अमल मे लाने का वचन दे। अन्त मे स्थायी समिति ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि जब तक ये आधारभूत परिवर्तन नही किये जाते और रियासतो का शासन जनता की मर्जी और उसके प्रतिनिधियो की राय से नही किया जाता तब तक नरेश प्रजा से सहयोग की आशा नही कर सकते।

वाइसराय का वक्तव्य

अब भारत के भविष्य तथा उसकी वैधानिक उन्नति का सवाल हमारे सामने आता है। इसके उत्तर मे वाइसराय ने माटफोर्ड-शासन-सुधार, १९१९ के कानून की प्रस्तावना और लार्ड इर्विन द्वारा उस प्रस्तावना की व्याख्या से लेकर इस विषय के इतिहास पर प्रकाश डाला। लार्ड इर्विन ने साफ शब्दो मे कहा था कि भारत की उन्नति का लक्ष्य औपनिवेशिक पद है। साथ ही आदेशपत्र का भी हवाला दिया गया, जिसमे कहा गया कि भारत और ब्रिटेन के बीच इस साझेदारी को इस सीमा तक बढाया जाय, जिससे भारत स्वाधीन उपनिवेशो के बीच अपना उचित स्थान प्राप्त कर सके। अन्त मे वाइसराय ने यह भी कहा कि १९३५ का कानून उस समय प्राप्त होनेवाले अधिक-से-अधिक मतैक्य पर आधारित था, किन्तु अब भविष्य मे जब कभी भी पार्लमेंट द्वारा दिये गये आश्वासनो को पूरा करने के लिए कोई योजना बनाई जायगी तो विचार किया जायगा कि १९३५ के कानून मे विभिन्न विस्तार की बाते तत्कालीन परिस्थिति के लिए कहा तक उपयुक्त है। वाइसराय ने यह वादा भी किया कि १९३५ के कानून मे संशोधन करने से पूर्व विभिन्न सम्प्रदायो, दलो और स्वार्थों के प्रतिनिधियो तथा देशी नरेशो की सहायता प्राप्त करने के लिए उनसे सलाह-मशविरा कर लिया जायगा। संक्षेप मे, युद्ध की समाप्ति पर सम्राट की सरकार

१९३५ के कानून मे भारतीयो की सलाह से सशोधन करने को तैयार होगी।
इसके उपरान्त वाइसराय ने बताया कि युद्ध के सचालन से भारतीय लोकमत का सम्बन्ध कायम रखने के लिए सलाहकार सगठन स्थापित किये जायगे। यहा यह बता देना आप्रसगिक न होगा कि यह सगठन २० महीने बाद २२ जुलाई १९४१ को कायम किया गया था।

मंत्रिमंडलों के इस्तीफे

पार्लमेटरी उप-समिति ने कार्यसमिति की अनुमति से मत्रियो तथा प्रातो के काग्रेसी दलो के मार्ग-प्रदर्शन के लिये निम्न आदेश जारी किये —

"कार्य-समिति के प्रस्ताव द्वारा प्रातो की काग्रेसी सरकारो से इस्तीफा देने के लिए कहा जाता है। ये इस्तीफे असेम्बलियो की उन बैठको के बाद दिये जाने चाहिए, जो महत्वपूर्ण कार्य के लिए बुलाई गई है, किंतु ३१ अक्टूबर, १९३९ तक सभी इस्तीफे दे दिये जाने चाहिये।

"मध्य भारत तथा उडीसा की प्रातीय असेम्बलिया नवम्बर के आरम्भ मे बुलाई गई है और इन प्रातो की सरकारे उनकी बैठक होने के बाद तक अपने पदों पर रह सकती है।

"असेम्बलियो के स्पीकर, डिप्टी स्पीकर, कौसिलो के अध्यक्ष तथा सदस्य अपने पदो पर बने रहेगे। इस अवसर पर सिर्फ मत्रियो तथा पार्लमेटरी सेक्रेटरियो ही से इस्तीफा देने की आशा की जाती है।

"असेम्बलियो मे युद्ध-उद्देश्यो के सबध मे जो प्रस्ताव पेश किया जायगा उसमे नई परिस्थिति के कारण उपयुक्त सशोधन भी उपस्थित होने चाहिए।"

मद्रास, मध्यभारत, बिहार, उत्तर प्रदेश, बबई, उडीसा और सीमा प्रात की प्रातीय असेम्बलियो मे प्रधान मत्रियो ने निम्न प्रस्ताव उपस्थित किया —

"यह असेम्बली इस बात पर अफसोस जाहिर करती है कि ब्रिटेन और जर्मनी के बीच होनेवाली लडाई मे ब्रिटिश सरकार ने भारत को उसकी जनता की इच्छा जाने बिना हिस्सेदार बना दिया है और उसने ऐसी कार्रवाई की है और ऐसे कानून पास किये है, जिनके कारण प्रातीय सरकारो के अधिकारो तथा कार्यो मे कमी होती है।

"असेम्बली को अफसोस है कि सम्राट की सरकार ने भारत के बारे मे जो वक्तव्य प्रकाशित करने की इजाजत दी है ऐसा करते समय उसने भारत की परिस्थिति को ठीक तरह नही समझा है और चूकि ब्रिटिश सरकार इस माग को पूरा करने मे असफल हुई है, यह असेम्बली मत प्रकट करती है कि सरकार ब्रिटिश सरकार की नीति से सहमत नही हो सकती।"

प्रधान मंत्रियो ने यूरोप मे युद्ध छिडने और उसके परिणामस्वरूप भारत मे

उत्पन्न हुए सकट के समय से कार्यसमिति द्वारा समय-समय पर पास हुए प्रस्तावो को मद्देनजर रखते हुए प्रस्तुत प्रस्ताव के महत्व पर प्रकाश डाला। असेम्बलियो मे मुस्लिम लीग दल ने प्रस्ताव के सबध मे एक सशोधन उपस्थित किया, जिसे अस्वीकार कर दिया गया।

सात प्रातो मे प्रस्ताव अपने मूल रूप मे भारी बहुमत से पास हो गया। उत्तर प्रदेश और मध्यप्रात मे प्रस्ताव थोडे सशोधनो के साथ, जिन्हे काग्रेस दल ने स्वीकार कर लिया, पास हुआ। इन आदेशो के अनुसार प्रातीय मत्रिमडलो ने एक के बाद एक इस्तीफा दे दिया। पन्द्रह दिनो के भीतर सभी मत्रिमडलो ने इस्तीफे दे दिये। सबसे पहले इस्तीफा मद्रास के मत्रिमडल ने दिया था।

१७ :

इस्तीफ़ा देने के बाद : १९४०

स्वाधीनता की प्रगति मे काग्रेस ने एक और महत्वपूर्ण मजिल तय कर ली। आठो प्रान्तो मे प्रान्तीय मत्रिमडलो ने एक साथ इस्तीफे दे दिये। पचास वर्ष की योजनाओ और तैयारियो के बाद जो कला-कृति तैयार हुई थी, वह एक ही धडाके मे तहस-नहस हो गई। क्या इसे काग्रेस फिर से बना सकेगी? क्या फिर कभी काग्रेस शक्ति-सम्पन्न हो सकेगी और हो सकेगी तो कैसे? ये सवाल उस समय शत्रु-मित्र सभी की जबान पर थे। फिर भी काग्रेस को ऐसी आशकाए न थी। उसे आगे आने वाले कष्टो और कठिनाइयो का पूरा-पूरा ज्ञान था। ब्रिटिश-सरकार गाधीजी के लिए कोई समस्या न थी। अलबत्ता हमारे दो आन्तरिक शत्रु अवश्य थे काग्रेस अपने प्रति मुस्लिम लीग के रुख का मुकाबला कैसे करेगी और काग्रेस किस हद तक लोगो को अहिसा पर अमल करा सकेगी, जिसका पालन स्वय काग्रेसजनो की ओर से अनिश्चित-सा प्रतीत होता था।

वाइसराय का वक्तव्य

पहली नवम्बर को राजेन्द्र बाबू के साथ गाधीजी को तीसरी बार वाइसराय से मुलाकात करने के लिए आमत्रित किया गया। श्री जिन्ना भी वाइसराय-भवन मे उपस्थित थे। गाधीजी और श्री जिन्ना अलग-अलग भी एक दूसरे से मिले। यह बातचीत न सिर्फ नाकामयाब ही रही, बल्कि दोनो पार्टियो के साथ बातचीत करने से वाइसराय को इस समस्या के सम्बन्ध मे ऐसे नये विषय उठाने मे मदद मिली,

जो पहली बार ही उठाए गए थे और उनसे नई पेचीदगिया और परेशानिया पैदा हो गई थी। वाइसराय ने अपने मिलने वालो के सामने ठोस और लिखित रूप में अपने प्रस्ताव रखे। अपने ५ नवम्बर के वक्तव्य मे उन्होने जो कुछ कहा वह सक्षेप मे इस प्रकार है —

"३ सितम्बर को युद्ध की घोषणा हुई थी। उसी रात के अपने एक ब्राडकास्ट मे मैंने सभी दलो और सभी वर्गो से इसके सचालन मे सहयोग प्रदान करने की अपील की थी। अगले दिन मैंने शिमला मे गाधीजी तथा मुस्लिम लीग के प्रतिनिधि श्री जिन्ना से तत्काल मुलाकात की। नरेन्द्र मडल के चासलर से भी मिला। इसके बाद समस्या विचार-विनिमय करने के लिए काग्रेस और मुस्लिम लीग की वर्किंग कमेटियो के सामने रखी गई। काग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठक १५ सितम्बर को हुई। उसने खुले शब्दो मे नाजी आक्रमण की निन्दा की और ब्रिटिश सरकार से असदिग्ध शब्दो मे अपने युद्ध-उद्देश्य घोषित करने, उन्हे भारत पर लागू करने और तत्काल उन्हे कार्यान्वित करने की माग की। इसी प्रकार मुस्लिम लीग की वर्किंग कमेटी ने भी १८ सितम्बर को ऐसा ही आश्वासन मागते हुए कहा, "यदि मुसलमानों की ओर से पूर्ण, प्रभावशाली और सम्मानपूर्ण सहयोग अपेक्षित है तो उनमें 'सुरक्षा और सतोष' की भावना पैदा करनी होगी। इसके अलावा उसने काग्रेस-प्रान्तो मे मुसलमानो की परिस्थिति का विशेष रूप से उल्लेख किया। साथ ही उसने वर्तमान विधान मे किसी भी परिवर्तन और उसकी स्वीकृति तथा समर्थन के लिए मुसलमानो से पूरा-पूरा सलाह-मशविरा लेने की आवश्यकता पर जोर दिया। इस पर मैंने पुन गाधीजी, श्री जिन्ना और नरेन्द्र मडल के चासलर से सपर्क स्थापित किया। मैंने यह मानकर कि भारत के दो प्रमुख राजनैतिक दलो के दृष्टिकोणो मे स्पष्टरूप से मतभेद है, फैसला किया कि मुझे यहा के लोगो की विचारधारा का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। इसी उद्देश्य को ध्यान मे रखकर मैंने सभी दलो, सप्रदायो और हितो के ५० से ऊपर प्रतिनिधियो से मुलाकात की। अभी यह बात चल ही रही थी कि अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी ने १० अक्टूबर को एक प्रस्ताव पास किया, जिसमे वर्किंग कमेटी की माग को दोहराते हुए सम्राट् की सरकार से युद्ध और शान्ति के उद्देश्यो पर प्रकाश डालते हुए एक वक्तव्य देने का अनुरोध किया। कमेटी ने भारत को स्वाधीन घोषित कर देने की भी माग की और यह भी कहा कि उसे तत्काल अधिक-से-अधिक सीमा तक यह पद दे दिया जाय।

"मैंने १८ अक्टूबर को सम्राट् की सरकार की ओर से एक घोपणा की। इसमे सबसे पहले इस बात पर जोर दिया गया कि भारत का लक्ष्य औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त करना है। दूसरे, सम्राट् की सरकार लडाई के बाद भारतीय नेताओ के परामर्श से वर्तमान विधान की योजना पर पुनर्विचार करने के लिए तैयार है। तीसरे, सम्राट् की सरकार युद्ध-संचालन मे भारतीय जनता के सहयोग को बहुत

महत्व देती है, और इसी उद्देश्य से उसका विचार एक सलाहकार ममिति स्थापित करने का है, जिसकी विस्तृत वातो का फैसला विभिन्न दलो के नेताओ से सलाह-मशविरा कर लेने के वाद होगा। मेरे वक्तव्य के प्रकाशन के वाद काग्रेस वर्किंग कमेटी ने २२ अक्टूवर को एक प्रस्ताव पास कर मेरे वक्तव्य को पूर्णत असतोप-जनक वताते हुए प्रान्तो मे काग्रेस मन्त्रिमडलो से पद-त्याग करने को कहा। उसी दिन मुस्लिम लीग ने भी कुछ आशकाओ का निवारण करने और वक्तव्यो के सम्वन्ध मे पूर्ण स्पष्टीकरण करने की माग की। इसके वाद मैने गाधीजी, डा० राजेन्द्रप्रसाद और श्री जिन्ना को १ नवम्वर को भेट करने के लिए आमत्रित किया और हमने सारी स्थिति पर खुले दिल से विचार-विनिमय किया। मैने उन्हे वता दिया कि केन्द्र मे सहयोग के मामले मे यदि हम सलाहकार समिति की योजना से आगे नही वढ सके है तो इसका कारण यह है कि दोनो प्रमुख सप्रदायो मे पहले से कोई ऐसा समझौता मौजूद न था, जिससे वे केन्द्र मे मेलजोल के साथ काम कर सकते। मैने यह भी कहा कि २२ अक्टूवर को काग्रेस वर्किंग कमेटी और मुस्लिम लीग की ओर से जो घोपणाए की गई है, उनसे साफ तौर पर यह पता चलता है कि इन दोनो वडे दलो के वीच गहरा मतभेद है। इन परिस्थितियो मे मैने अपने मुलाकातियो से अनुरोध किया कि वे आपस मे वैठकर एक अस्थायी आधार पर विचार-विनिमय कर ले जिससे कि वाद मे एक दूसरे की सहमति से वे ऐसे प्रस्ताव रख सके, जिनके परिणामस्वरूप केन्द्र मे गवर्नर-जनरल की परिपद् मे कुछ विस्तार हो सके।

"मैने जिन वातो पर विचार करने का सुझाव रखा था उनपर विचार-विनिमय हो चुका है। परन्तु इसका परिणाम मेरे लिए अधिक निराशापूर्ण रहा है। दोनो प्रमुख दलो के प्रतिनिधियो मे वुनियादी मामलो के वारे मे अव भी पूर्ण मतभेद विद्यमान है। जव से मै भारत मे आया हूँ, मुझे सव से अधिक चिता एकता स्थापित कराने की रही है। इसलिए मै समस्त देशवासियो से, वडे राजनैतिक दलो के नेताओ और उनके अनुयायियो से, अनुरोध करूँगा कि यदि हमे अपनी कठिनाइयो को पार करना है और अपने अभीष्ट परिणाम पर पहुँचना है तो आप मेरी मदद कीजिए। आपकी मदद की मुझे इस समय वडी आवश्यकता है।"

महात्मा गांधी का उत्तर

महात्मा गाधी ने वाइसराय के उक्त वक्तव्य के उत्तर मे कहा—"मै इसका स्वागत करता हूँ कि वाइसराय महोदय पराजय से हार नही मानते है। मै उनके इस दृढ निश्चय का भी स्वागत करता हूँ कि वह एक ऐसी समस्या को सुलझाने के लिए कटिवद्ध है, जिसे सुलझाना असभव-सा हो गया है। समस्या का हल ढूँढ निकालने के सम्वन्ध मे वाइसराय महोदय की व्यग्रता मे मै पूरी तरह से भागीदार हूँ।

इसलिए सामान्य उद्देश्य मे सहयोग प्रदान करने की प्रतीक्षा किये बिना ही मै यह सुझाव रखना चाहता हूँ कि जब तक भारत के बारे मे युद्ध-उद्देश्यो की कोई ऐसी घोषणा नही की जाती, जो स्वीकार की जा सके तब तक यह समस्या हल नही हो सकती। यदि इस बुनियादी सत्य को स्वीकार करने का समय अभी नही आया है तो मै आग्रह करूँगा कि समस्या का हल ढूँढने का प्रयत्न हमे फिलहाल मुलतवी कर देना चाहिए। इस समय आवश्यकता इस बात की है कि भारत की इच्छाओ का ख़याल किये बगैर ब्रिटेन अपनी भारतीय नीति के बारे मे अपने इरादो की घोषणा कर दे। एक बार दासता के बधनो से भारत के मुक्त और स्वतत्र हो जाने की घोषणा कर देने के बाद अस्थायी हल भी आसानी से निकल आयेगा। उस हालत मे अल्पसख्यको के अधिकारो के सरक्षण का प्रश्न भी आसान हो जाएगा। अल्पसख्यको को सरक्षण प्राप्त करने का अधिकार है, क्रमश. नही, बल्कि पूर्णरूप से और एकबारगी ही। स्वतत्रता के किसी भी अधिकार-पत्र का कोई महत्व नही होगा यदि उससे अल्पसख्यको को भी उतनी ही स्वाधीनता नही मिलती जितनी कि बहुमत को। विधान-निर्माण मे अल्पसख्यक भी पूर्णरूप से भागीदार होगे। यह बात उन प्रतिनिधियो के विवेक और सूझ-बूझ पर निर्भर करेगी, जिन्हे विधान तैयार करने का पवित्र कार्य सौपा जाएगा। ब्रिटेन ने अब तक अपनी ताकत को अल्पसख्यको को बहुसख्यको के विरुद्ध खडा कर के बनाये रखा है। किसी भी साम्राज्यवादी पद्धति मे ऐसा होना अनिवार्य है और इस प्रकार उनमे कोई समझौता हो जाना असभव बना दिया गया है। अल्पसख्यको के सरक्षण का कोई हल निकालने की जिम्मेदारी स्वय विभिन्न दलो पर होनी चाहिए। जब तक ब्रिटेन यह समझता है कि इसकी जिम्मेदारी उसके कन्धो पर है तब तक वह भारत को परतत्र बनाए रखने की आवश्यकता भी अनुभव करता रहेगा।

"वाइसराय की ईमानदारी मे विश्वास करते हुए, जैसा कि मै करता हूँ, मै अपने सहयोगियो से धैर्य रखने का आग्रह करूँगा। एक तो जब तक (१) वाइसराय समझौता कराने का प्रयत्न कर रहे है, (२) मुस्लिम लीग की ओर से मार्ग मे रुकावट पैदा की जाती है और (३) काग्रेसजनो मे एकता और अनुशासन की कमी बनी है तब तक सविनय-कानून-भग-आदोलन नही शुरू किया जा सकता।"

राष्ट्र के प्रतिनिधियों की बैठक

गाधीजी के मैत्रीपूर्ण और आकर्षक वक्तव्य के साथ-साथ काग्रेस और युद्ध-समितियो के अध्यक्षो ने भी अपने-अपने उत्तर दिये। राजेन्द्र बाबू ने इस प्रश्न को और भी स्पष्ट और असदिग्ध शब्दो मे व्यक्त करते हुए ब्रिटिश सरकार पर यह दोषारोपण किया कि वह "किसी भी ऐसे विधान को, जिसे सभी भारतीय, जिनमे

अल्पसख्यक भी शामिल है, तैयार करेंगे और जिसमे अल्पसख्यको के लिए सरक्षण भी रहेंगे, स्वीकार करने और उसे वैधानिक रूप मे कार्यान्वित करने के लिए तैयार नही है।" इस सवध मे पडित जवाहरलाल नेहरू का वक्तव्य भी कम ठोस और निर्णयात्मक नही था। उन्होने वाइसराय के वक्तव्य पर आश्चर्य प्रकट किया और बताया कि श्री जिन्ना और मेरे दरमियान यह समझौता हुआ था कि हम जल्दी ही किसी सुविधाजनक समय पर साप्रदायिक प्रश्न पर पूरी तरह से सोच-विचार करेंगे। जब तक राजनैतिक कठिनाई दूर नही हो जाती तव तक इसका वाइसराय के प्रस्तावो पर कोई प्रभाव नही पडता। इसलिए इस सम्वन्ध मे इस पर कोई विचार नही किया गया।

वास्तव मे यह एक ऐसा प्रश्न था, जिसके स्पष्टीकरण की आवश्यकता थी। इसलिए काग्रेस वर्किंग कमेटी और अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के रूप मे राष्ट्र के प्रतिनिधि एक वार एकत्र हुए। इस वार यह वैठक १९ नवम्बर को इलाहावाद मे हुई। प्रतिनिधियो ने देश के सामने अपनी सुनिश्चित राय रखी। निर्णय मे यह कहा गया कि युद्ध की गतिविधि, ब्रिटिश और फ्रेच सरकार की नीति और खासतौर से वह घोपणा, जो ब्रिटिश सरकार की ओर से भारत के सम्वन्ध मे की गई है, यह जाहिर करती है कि वर्तमान युद्ध सन् १९१४-१८ के महायुद्ध की भाति साम्राज्यवादी उद्देश्यो के लिए लडा जा रहा है और भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य इसी तरह कायम रहेगा। इसलिए ऐसी लडाई और नीति से काग्रेस सहयोग नही कर सकती और न वह यह बात ही देख सकती है कि एक ऐसे उद्देश्य के लिए उसके साधनो का शोपण किया जाय। मुख्य प्रश्न के वारे मे ब्रिटिश सरकार की ओर से उठाया गया साप्रदायिक प्रश्न और देशी राज्यो की समस्या बिल्कुल वेकार थे। स्पष्टत एक नैतिक प्रश्न के वारे मे ब्रिटिश सरकार द्वारा अपने इरादो की घोपणा न करने और वेमतलव के प्रश्नो की आड लेने की उसकी नीति से यही जाहिर होता था कि वह भारत मे साम्राज्यशाही प्रभुत्व देश के प्रतिक्रियावादी तत्वो की सहायता से बनाए रखना चाहती है। इस सम्बन्ध मे काग्रेस के प्रधान ने ४ नवम्वर १९३९ को वाइसराय को जो जवाव दिया था, उसे स्वीकार किया गया और उसका समर्थन किया गया। साथ ही ब्रिटेन की नीति से साम्राज्यवाद का रग हटा देने के लिए और काग्रेस के लिए भविष्य मे सहयोग प्रदान करने के सवाल तथा साप्रदायिक एव अन्य कठिनाइयो को दूर करने के उद्देश्य से विधान परिषद् का विचार और उसकी योजना को आवश्यक बताया गया। इसके वाद सविनय अवज्ञा के लिए तैयारिया करने की आवश्यकता पर पर्याप्त जोर दिया गया, जिसकी सच्ची कसौटी यह थी कि काग्रेसजन स्वय चरखा चलाए, मिल के कपडो की जगह खादी को प्रोत्साहन दे और विभिन्न सस्थाओ मे मेल-मिलाप स्थापित करना अपना कर्तव्य समझे।

कार्यसमिति का रुख

१९३९ के अन्त मे वर्किग कमेटी ने देश की राजनैतिक परिस्थिति का सिहावलोकन किया। उस समय वातावरण अत्यन्त क्षुब्ध था। अल्पसख्यको का प्रश्न सबसे आगे था और उनमे सतोप की भावना पैदा करना साफ तौर से काग्रेस का कर्तव्य था। उनकी तवीयत मे सदेह था और यह सदेह काग्रेसी सरकारो के शासन के प्रति उनके आरोपो मे से पैदा हुआ था। वास्तव मे मुसलमानो के विशिप्ट स्वार्थो—धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक—के सरक्षण के लिए जो आश्वासन जरूरी था, काग्रेस देने को तैयार थी, लेकिन क्या इस प्रकार की घोपणा से अवसरवादी अल्पसख्यको के हाथ मजवूत नही हो जायेगे अथवा और नये अल्पसख्यक नही पैदा हो जायेगे और उनमे आन्दोलन करने की और भी दृढ भावना नही भर देगे? कारण कि अपने आन्दोलन मे उन्हे कुछ हद तक सफलता मिल चुकी थी। यदि आप किसी को कुछ रियायते देगे तो उनकी पिपासा और भी बढ जाएगी, जैसे कि खाने के साथ-साथ भूख भी वढ जाती है। यदि ऐसा नही होना चाहिए तो एक और उपाय यह हो सकता था कि साप्रदायिक प्रश्नो का जिक्र ही न किया जाय—भले ही वह फिलहाल के लिए ही क्यो न हो। समय वडी तेजी से बदल रहा था और उसके साथ परिस्थितिया भी। जो हो, काग्रेस के प्रस्तावो मे अल्पसंख्यको के धार्मिक, सामाजिक और सास्कृतिक हितो का उल्लेख किया गया था। राजनैतिक शब्द इसमे शामिल नही किया गया, क्योकि विधान-परिषद् मे भी हमे उन्हे सिर्फ ये ही सरक्षण देने थे—राजनैतिक नही। इस प्रकार का कोई समझौता करना हिन्दू-महासभा जैसी सस्था के उपयुक्त हो सकता था, लेकिन यदि काग्रेस मत्रिमडलो अथवा नौकरियो मे ऐसी राजनैतिक रियायते देने लगी तो वह स्वराज्य की प्रगति मे देश को गलत राह पर ले जाएगी। धारासभाओ मे विभिन्न दलो का सयुक्त बहुमत होना चाहिये, जिनका निर्वाचन सयुक्त-निर्वाचन-पद्धति के आधार पर हुआ हो और जिनमे हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, सिक्ख और जैन सभी राष्ट्रवादियो के रूप मे हो, वरना काग्रेस एक भारी गलती करेगी और तब उसके लिए पीछे कदम हटाना असभव हो जाएगा। यदि काग्रेस का ऐसा विश्वास नही है तो बेहतर होगा कि वह बियावान मे चली जाय।

इस समस्या पर आतरिक दृष्टि से विचार करने पर काग्रेस ने अनुभव किया कि जिस सेनापति को उसका नेतृत्व करना है उसके सामने अभी कोई स्पष्ट योजना नहीं हैं। उसे इस बात का पूरा विश्वास था कि अग्रेज गलती पर है और उसकी यह कोशिश थी कि वह अग्रेजों की इस 'गलती' को मुसलमानो और सारे ससार के सामने खोलकर रख दे। गाधीजी का तरीका 'आजादी, आजादी' चिल्लाने का नही था। उनकी कार्य-पद्धति या कारीगरी यह थी कि उनके किये-कराये काम

से 'आजादी' का आभास होता था। हाँ, 'आजादी' शब्द की रट उसमें नहीं होती थी। तात्पर्य यह कि इस प्रकार कांग्रेस कमेटी जो प्रस्ताव पास करे उससे सविनय-भग आन्दोलन की भूमि तैयार हो जानी चाहिये और यह प्रस्ताव ऐसा होना चाहिए, जिसमे लार्ड जैटलैण्ड की उपेक्षा भी न की गई हो, क्योंकि देश मे प्रचलित शासन-प्रणाली इन दोनो मे ही मूर्तिमान् थी। जब गाधीजी ने सर स्टैफर्ड क्रिप्स से लम्बी बातचीत की तब यह सब उनके दिमाग मे था।

स्टैफर्ड की वर्धा-यात्रा

ब्रिटिश प्रजातत्र मे उसके कुछ अत्यधिक महत्वपूर्ण राजनैतिक पदो को प्रमुख वकीलो ने ही सुशोभित किया है। लार्ड रीडिंग, लार्ड बर्कन हेड, सर जॉन साइमन, श्री एस्क्विथ, श्री लायड जार्ज (सालीसिटर), लार्ड सैंकी—ये सभी अपने समय के प्रमुख वकील थे। सर स्टैफर्ड-क्रिप्स भी उसी वर्ग के प्रख्यात वकीलो मे से थे, और १९३९ के पतझड में जब वह वर्धा गए, उनकी गणना ब्रिटेन के प्रमुख वकीलो मे होती थी। लन्दन से प्रस्थान करने से एक सप्ताह पहले उन्होंने वकालत छोड दी थी। उसी समय से वह अपना सारा समय सार्वजनिक जीवन मे लगा रहे थे। उन्होने बताया कि हाल मे ब्रिटेन के लोगो की सहसा ऐसी धारणा हो गई है कि भारत से समझौता कर लिया जाय और भारतीयो की आकांक्षाओ को पूरा कर दिया जाय। ऐसे सकट के समय मे ब्रिटेन भारत को अपना विरोधी नही बनाना चाहता। उन्होने एक और दिलचस्प बात यह भी कही कि भारत की स्थिति का अध्ययन करने के लिए शीघ्र ही यहां एक सर्वदलीय प्रतिनिधि-मडल आ रहा है। उनके इस कथन से क्या हम यह खयाल कर सकते थे कि यह प्रतिनिधि-मडल एक जांच-पडताल करने वाले कमीशन के रूप मे भेजा जा रहा था? वास्तव मे कांग्रेस को ऐसे सर्वदलीय प्रतिनिधि-मडलो के सम्बन्ध मे काफी सन्देह और अविश्वास था। उसने स्टैफर्ड क्रिप्स का एक ऐसे व्यक्ति के रूप मे स्वागत किया जिसने सच को सच और झूठ को झूठ कहने की हिम्मत थी। सर्वदलीय प्रतिनिधि-मंडल तो सिर्फ लीपापोती का काम करेगा। साइमन कमीशन भी तो सभी दलो का एक ऐसा ही प्रतिनिधि-मडल था। वास्तव मे यह समय टालने की एक चाल थी। भारत की माग थी कि तुरन्त ही युद्ध के उद्देश्यो की घोषणा कर दी जाय और उन्हे ईमानदारी के साथ भारत पर लागू किया जाय। इसके विपरीत सर्वदलीय प्रतिनिधि-मंडल भेजने की योजना एक ऐसी चाल थी, जिसके जरिये ब्रिटिश राजनीतिज्ञो को पार्लमेंट मे सर सेम्युअल होर द्वारा अपनाई गई इस स्थिति को—जिसने न तो साफ तौर पर 'ना' ही की गई थी और न प्रकट रूप से 'हा' ही की गई थी—एक व्यावहारिक रूप देना था। इगलैण्ड दोनो मे से एक भी बात नही कहना चाहता था; क्योंकि वह कोई बड़ी कीमत देकर

भारत की न तो सद्भावना हासिल करना चाहता था और न उसे खोना चाहता था।

स्टैफर्ड क्रिप्स ने गाधीजी, जवाहरलाल और सरदार पटेल के साथ काफी लम्बी बातचीत की और इगलैण्ड वापस जाते हुए वह गाधीजी-द्वारा तैयार किया गया एक विस्तृत और लम्बा मसविदा भी अपने साथ लेते गये। इसके साथ ही सर स्टैफर्ड की छोटी-सी यह हवाई यात्रा भी खत्म हो गई।

कार्यसमिति की बैठक

गाधीजी का ऐसा खयाल था कि यद्यपि हम समझौते से काम चला सकते है, तथापि यह समझौता अग्रेजो और हिन्दुओ के दरमियान नहीं हो सकता। यह तो हिसा होगी। यही वजह थी कि वह अपने ही तरीके की विधान-परिपद् की कल्पना कर रहे थे। जहा तक सविनय-अवज्ञा आन्दोलन का प्रश्न था उनका ख़याल था कि काग्रेस जनों को देश की जनता को उनकी इच्छा से अपने साथ लेना होगा, मशीन के कल-पुर्जे की तरह नही। उनका तो यह भी खयाल था कि काग्रेसी सदस्यो को असेम्बली मे जाना और उसके द्वारा काम करना चाहिए और काग्रेस की सदस्यता के सम्बन्ध मे सबकी एक राय होनी चाहिए। यह ठीक है कि काग्रेस मत्रिमडल छोडकर बाहर मैदान मे आई थी, लेकिन इसकी वजह यह थी कि हमारी ताकत घटती जा रही थी, कारण कि ब्रिटिश सरकार अपने उद्देश्यो के लिए हमे इस्तेमाल कर रही थी। केन्द्रीय असेम्बली से हम उसी हालत मे बाहर आये जब हमने महसूस किया कि हम अपनी शक्ति बढाने की बजाय उसे घटा रहे है। इसका मतलब यह नही था कि हम सभी चीजे निषिद्ध करार दे रहे थे। गाधीजी सब प्रकार की दोस्ती बनाए रखना चाहते थे। अगर दूसरा पक्ष शत्रु और विपाक्त बनता जा रहा था तो इसका मतलब यह था कि वह सविनय-भग को निमत्रण दे रहा था। उसके चाहते ही हम उसके लिए उद्यत थे। जो लोग १९३९ के अन्त मे राप्ट्र की नौका को खे रहे थे, उनके मस्तिप्क मे ऐसे ही विचार उठ रहे थे। १८ दिसम्बर को कार्यसमिति की बैठक हुई और उसने भारतमत्री की उन घोषणाओ पर खेद प्रकट किया, जिनमे उन्होने साप्रदायिक प्रश्न को उठाकर प्रधान समस्या पर परदा डालने की कोशिश की थी और जनता का ध्यान इस वास्तविक तथ्य से हटाने का प्रयत्न किया था कि ब्रिटिश सरकार अपने युद्ध उद्देश्यो की घोषणा करने मे असफल रही है, खासकर भारत की स्वतत्रता के बारे मे। जब तक विभिन्न दल तीसरे दल पर आश्रित थे तब तक साप्रदायिक प्रश्न कभी भी सन्तोषजनक रूप से नही हल हो सकता था। ब्रिटिश सरकार चूंकि यहा से हटना नही चाहती थी अथवा शक्ति नही छोडना चाहती थी, इसलिए स्वाभाविक था कि वह विभिन्न दलो मे परस्पर फूट डालने के उद्देश्य से साप्रदायिक प्रश्न का सहारा ले। अत सिर्फ विधान-परिषद् ही एकमात्र

ऐसा मार्ग रह गया था, जिसके जरिये कोई अन्तिम समझौता हो सकता था। काग्रेस तो यह बात वहुत स्पष्ट रूप से कह चुकी थी कि सवद्ध अल्पसख्यको के अधिकारो की इस तरह से रक्षा होनी चाहिए कि उन्हे सन्तोष हो जाय और यदि इतने पर भी मतभेद रह जाएँ तो उनका निपटारा एक निष्पक्ष पच द्वारा करा लिया जाय।

राष्ट्र के नाम काग्रेस कार्यसमिति ने अन्तिम सदेश वर्ष के अन्त मे सक्षिप्त और जोरदार शब्दो मे दिया था। यह सदेश वास्तव मे राष्ट्र को कमर कस लेने और आगामी लडाई के लिए कटिवद्ध हो जाने का था। यह लडाई की तैयारी का आह्वान था। यही आह्वान स्वतत्रता-दिवस मनाने के अनुरोध और उस दिवस की प्रतिज्ञा मे शामिल कर लिया गया था, जो २६ जनवरी के दिन नये सिरे से पढी जानी थी। इसलिए इस आशय का प्रस्ताव पास किया गया —

"काग्रेस कार्यसमिति सव काग्रेस कमेटियो, काग्रेसजनो और मुल्क का ध्यान इस वात की ओर आकर्पित करती है कि २६ जनवरी, १९४० को व्यवस्थित रूप से सजीदगी के साथ आजादी का दिन मनाने की आवश्यकता है। १९३० से ही यह दिन देशभर मे वरावर मनाया जा रहा है और हमारी स्वाधीनता के सग्राम मे इसका खास स्थान वन गया है। चूँकि इस समय भारत और ससार एक सकटपूर्ण घडी मे से गुजर रहे है और हमारी आजादी की लडाई और भी तीव्र रूप मे जारी रहने की सम्भावना है, इसलिए इस वार इस दिन के मनाने का एक खास महत्व है। इसके कारण उसे इस तरह मनाना चाहिए कि न सिर्फ राष्ट्र का आजादी लेने का सकल्प ही उससे जाहिर हो, वल्कि लडाई की तैयारी और अनुशासन मे रहकर काम करने की प्रतिज्ञा की भी घोषणा हो जाय।"

स्वतत्रता-दिवस की प्रतिज्ञा इस प्रकार थी —

"हमारा विश्वास है कि ससार के दूसरे लोगो की भाति भारतीय जनता का भी यह जन्मसिद्ध अधिकार है कि उसे आजादी मिले। वह अपनी मेहनत का फल भोगे और जीवन के लिए आवश्यक चीजे उसे इतनी मिले, जिससे उसे अपने विकास की पूरी सुविधा हो जाय। हमारा विश्वास है कि कोई सरकार प्रजा के इन अधिकारो को छीने और उसे सताए तो प्रजा का भी यह हक हो जाता है कि वह उस सरकार को वदल दे या मिटा दे। हिन्दुस्तान मे अग्रेजी सरकार ने भारतीय प्रजा से उसकी आजादी ही नही छीनी है, वल्कि जनता के शोषण पर अपनी वुनियाद रक्खी है और हिन्दुस्तान को आर्थिक, राजनैतिक, सास्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टियो से तवाह कर दिया है। इसलिए हमारा विश्वास है कि भारत को अग्रेजो से नाता तोडकर पूर्ण स्वराज्य हासिल करना ही चाहिए।

"हमारा यकीन है कि आमतौर पर किसी भी अहिसात्मक कार्रवाई के लिए और खासकर अहिसात्मक सविनय-भग जैसी सीधी लडाई के लिए खादी, कौमी एकता और अस्पृश्यता निवारण के रचनात्मक कार्यक्रम का सफलतापूर्वक सचालन

आवश्यक है। हम जात-पात या धर्म का भेदभाव छोडकर अपने देशवासियो मे सद्भाव फैलाने का कोई मौका हाथ से नही जाने देगे। हमारे धार्मिक विश्वास भले ही अलग-अलग हों, हम आपसी व्यवहार मे भारतमाता की सन्तान की भाति काम करेगे, क्योकि हम सबका एक ही राष्ट्र है और सब के राजनैतिक तथा आर्थिक हित समान है।

"हम प्रतिज्ञा करते है कि काग्रेस के सिद्धान्तो और नीतियो का कडाई के साथ पालन करेगे और भारत की स्वतंत्रता के संग्राम के लिए जब कभी भी काग्रेस हमे बुलाएगी, हम सदा उसकी आज्ञा को मानने के लिए तैयार रहेगे।"

केन्द्रीय असेम्बली मे शामिल होने के सवाल पर समिति ने फैसला किया कि जहा अपनी सीटो को कायम रखने के लिए उपस्थित होना जरूरी हो, वहा उपस्थित रहा जाय, अन्यथा अनुपस्थिति जारी रक्खी जाय।

वाइसराय का वक्तव्य

हर बार जब कभी काग्रेस की कार्यसमिति ने कोई घोषणा की और अपनी स्थिति का स्पष्टीकरण किया तब उसके बाद या तो वाइसराय ने अथवा भारतमंत्री ने या दोनो ही ने कोई-न-कोई घोषणा की। परन्तु किसी भी हालत मे सरकारी घोषणा काग्रेस द्वारा समय-समय पर पास किये गये प्रस्तावो या वक्तव्यो मे उठाए गए प्रश्नो का उत्तर नही होता था। ब्रिटिश सरकार के इन प्रतिनिधियो की यह आदत-सी बन गई थी कि वे एक ही राग अलापते रहते थे। यह राग कभी तो कर्णकटु और तीक्ष्ण होता था और कभी उसमे से मधुर झकार सुनाई देती थी। यह मानना पडेगा कि १० जनवरी १९४० को वाइसराय ने बम्बई के 'ओरियेण्ट क्लब' मे जो भाषण दिया उसका स्वर अब तक के भाषणो की अपेक्षा कम कडा, कम तीक्ष्ण था। पिछले महीने की घटनाओ और उनके फलस्वरूप होने वाले परिवर्तनो का उल्लेख करने के बाद वाइसराय ने यह विश्वास प्रकट किया कि प्रान्तीय स्वायत्त-शासन के सचालन मे जो रुकावट या गतिरोध पैदा हो गया है, वह अस्थायी होगा और जल्दी ही विधान का सचालन सभव हो सकेगा। केन्द्र मे मन्त्रियो का सहयोग प्राप्त न कर सकने, सामान्य सरकार के रूप मे रियासतो का सहयोग न पाने, सुनिश्चित आधार पर सभी अल्पसख्यको का प्रतिनिधित्व हासिल न कर पाने और भारत की एकता को बनाए रखने की असमर्थता पर खेद प्रकट करने के बाद वाइसराय ने कहा कि "भारत मे उनका उद्देश्य वेस्टमिन्स्टर के कानून के तरीके का औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त करना है।" आगे चलकर उन्होने एक बार फिर मुस्लिम और अछूत अल्पसख्यको का रोना रोया। उन्होने कहा कि विभिन्न दलो के प्रति न्याय होना चाहिए और सम्राट् की सरकार ऐसा करने पर कटिबद्ध है। लेकिन उन्होने विभिन्न दलों के मित्रो

से अनुरोध किया कि वे यह विचार कर देखे कि क्या वे इकट्ठे नही हो सकते और आपस मे कोई समझौता नही कर सकते। जहा तक उद्देश्य का सम्बन्ध है, उन्होने आश्वासन दिया कि सम्राट् की और उनकी सरकारे वर्तमान परिस्थिति और औपनिवेशिक स्वराज्य मिलने की अवधि को कम-से-कम करने मे कोई कसर नही उठा रखेगी। वाइसराय के भाषण का अन्तिम पैरा न केवल आग्रहपूर्ण बल्कि करुणाजनक भी था। उन्होने कहा कि प्रस्ताव आपके सामने है। राजनैतिक दलो और उनके नेताओ पर बहुत भारी जिम्मेदारी आ पडी है। उन्होने भूतकाल मे मेरी मदद की है और आज मै उनसे फिर अपनी और भारत की सहायता करने की प्रार्थना करता हूँ।

यह जाहिर है कि मधुर और आकर्षक भाषा का प्रयोग करने पर भी वाइसराय के भाषण का भाव पहले जैसा ही कठोरतम था। उनके भाषण की मुख्य बातें थी अल्पसख्यक, मुस्लिम और परिगणित जातिया, सरकारी आश्वासन, विभिन्न दलो के बीच न्याय और आपसी समझौता, यहा तक कि इस राग की तर्ज भी वही पुरानी थी। यह स्मरण रखने योग्य बात है कि ओरियण्ट-क्लब के भाषण के तुरन्त बाद ही वाइसराय ने एक भाषण बडौदा मे दिया, जिसमे उन्होने लोगो का ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट किया कि जल्द-से-जल्द औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त करने का तरीका भारत-विधान की सघ-योजना थी, जो उस समय खटाई मे पडी थी। उनका खयाल था कि यदि सभी सम्बद्ध वर्ग उसे स्वीकार कर ले तो उससे बहुत-सी समस्याए आसानी से सुलझ जाएगी।

वाइसराय से गांधीजी की भेंट

कांग्रेस के प्रधान ने १४ जनवरी के अपने उत्तर मे यह बात स्पष्ट कह दी कि हमारा ध्येय वेस्ट मिस्टर के किस्म का औपनिवेशिक स्वराज्य नही, विशुद्ध स्वाधीनता है। विभिन्न दलो के नेता देश की सारी आबादी के विश्वस्त प्रतिनिधि नही है और इन्ही परिस्थितियो को ध्यान मे रखते हुए कांग्रेस ने खूब सोच-विचार के बाद विधान-परिषद् को इस समस्या का एकमात्र मार्ग बताया है। निश्चय ही यह कोई 'निकटतर मार्ग' नही है, क्योकि इसके अन्तर्गत जिस कार्यप्रणाली पर अमल होगा और उसके बारे मे जैसी कार्रवाई की जायगी, उससे तो यह मार्ग विशेष रूप से लम्बा हो जाएगा। इसके बाद वाइसराय ने ५ फरवरी को गाधीजी को मुलाकात के लिए दिल्ली बुलाया। वाइसराय तथा गाधीजी की यह चौथी मुलाकात थी। उनमे ढाई घण्टे तक खुलकर बातचीत हुई जिसका आशय निम्नलिखित विज्ञप्ति से स्पष्ट हो जाता है —

वाइसराय महोदय के निमत्रण के जवाब मे आज गाधीजी उनसे मिलने आए। बहुत देर तक दोनो मे मित्रतापूर्ण बातचीत होती रही। इस बातचीत के

दौरान मे दोनो ने सारी स्थिति की विस्तार से समीक्षा की। गाधीजी ने बातचीत के शुरू मे ही यह स्पष्ट कर दिया था कि उन्हे काग्रेस कार्यसमिति की ओर से कोई हिदायत नही मिली है और किसी तरह का कोई बन्धन अपने ऊपर लेने का उन्हे हक नही है। अपनी वैयक्तिक हैसियत से ही वह कुछ कह सकते है।

वाइसराय महोदय ने सम्राट् की सरकार के इरादो और प्रस्तावों पर कुछ विस्तार से प्रकाश डाला। उन्होंने सब से पहले इस बात पर जोर दिया कि उनकी यह दिली ख्वाहिश है कि भारत यथाशीघ्र औपनिवेशिक स्वराज्य का दर्जा हासिल कर ले और वह चाहते है कि इसकी प्राप्ति मे वह यथाशक्ति भारत की मदद करे। उन्होने इस बारे में कुछ ऐसे विषयो की पेचीदगियो और मुश्किलों की तरफ गाधीजी का ध्यान आकृष्ट किया, जिनपर विचार-विनिमय करना जरूरी था—खासकर औपनिवेशिक स्वराज्य मे रक्षा का प्रश्न। उन्होंने यह बात साफ तौर से बताई कि सम्राट् की सरकार समय आने पर सभी दलो और हितो के सलाह-मशविरे से इस सारे ही विषय की जाच-पडताल करने के लिए उत्सुक हैं। उन्होने यह भी स्पष्ट कर दिया कि सम्राट् की सरकार इस सक्रमण काल को यथासभव कम-से-कम करना चाहती है। उन्होने बताया कि पिछले नवम्बर मे उन्होने जिस आधार पर और जिस तरीके पर गवर्नर-जनरल की शासन-परिषद् मे विस्तार करने का प्रस्ताव रखा था—वह अब तक ज्यो-का-त्यो बना है और सम्राट् की सरकार उस पर तत्काल अमल करने को तैयार है। यदि सम्बद्ध दलो की सलाह हो तो सम्राट् की सरकार सघ-योजना पर भी फिर से विचार करने को तैयार है, जिससे कि भारत को शीघ्र ही औपनिवेशिक स्वराज्य मिल सके और लडाई के बाद युद्धकाल की समस्याओ पर आसानी से समझौता हो सके।

गाधीजी ने इन प्रस्तावो को पेश करने की भावना को पसन्द किया, परन्तु उन्होने कहा कि मेरी राय मे इस समय इनसे काग्रेस दल की पूर्ण माग पूरी नही होती। उन्होंने प्रस्ताव पेश किया कि अच्छा यह होगा कि फिलहाल हम इस सम्बन्ध मे और बातचीत स्थगित कर दे, जिससे कि उन कठिनाइयों को सुलझाने मे मदद मिल सके, जो इस समय पैदा हो गई है। वाइसराय महोदय ने इसे स्वीकार कर लिया।

ज्यों-ज्यो बातचीत आगे बढी, इस समस्या पर बहुत गहराई से खोजबीन होने लगी। मानो सरकार और जनता साथ मिलकर एक कुआँ खोद रहे थे और ज्यों-ज्यो उसकी तहे खुलती जाती थी, उनमे से आशाओं के झरने प्रवाहित हो रहे थे। इन झरनो से मानो लोगो को जीवन प्राप्त होने और उनकी स्वतत्रता की पिपासा तृप्त हो जाने वाली थी, लेकिन बात वास्तव मे ऐसी थी नही। इस सहयोग के प्रयास मे एक ऐसी अवस्था आ गई, जब गाधीजी ने उस गुप्त स्रोत और झरने की असलियत खोलकर वाइसराय के सामने रख दी। ६ फरवरी, १९४०

के अपने एक वक्तव्य मे गाधीजी ने बताया कि वाइसराय के प्रस्ताव का उद्देश्य भारत के भाग्य का अन्तिम निर्णय ब्रिटिश सरकार के हाथो मे देना था, जबकि काग्रेस का ध्येय आत्मनिर्णय के सिद्धान्त पर अमल करने का था। स्वतत्रता की वास्तविक कसौटी यही थी, दोनो विचारधाराओ मे यही मुख्य भेद था। गाधीजी के विचार से इसे दूर किये विना कोई शान्तिपूर्ण तथा सम्मानपूर्ण समझौता सभव नही था। एक वार ऐसा हो जाने पर राष्ट्र की रक्षा, अल्पसख्यको, नरेशो और यूरोपियनो के स्वार्थो के प्रश्न अपने आप सुलझ जाएँगे। गाधीजी और वाइसराय ने इन सभी वातो पर मित्रो के रूप मे विचार-विमर्श किया। लेकिन दोनो के दृष्टिकोणो मे भारी अन्तर था। इतने पर भी उन दोनो ने वतौर दोस्तो के ही एक-दूसरे से विदा ली।

कार्यसमिति की वैठक

काग्रेस का अगला अधिवेशन विहार मे रामगढ मे होने वाला था। उसका समय वहुत निकट आ रहा था। एक पुरानी प्रथा के अनुसार—आगामी अधिवेशन से काफी समय पहले काग्रेस कार्यसमिति की वैठक वुलाई जाती थी। चुनाँचे इसके अनुसार इस वार भी २८ फरवरी १९४० को पटना मे काग्रेस कार्यसमिति की एक वैठक हुई। कुछ लोगो के खयाल के मुताबिक रामगढ काग्रेस उस समय की यद्धकालीन चर्चाओ के दरमियान प्राय एक महत्वपूर्ण घटना वन गई थी। लेकिन यह वात ऐसी नही थी। काग्रेस ने वहुत-से विभाग खोल रखे थे, जैसे प्रचार, अल्पसख्यक, हरिजन और चर्खा जिनके जरिये वह अपना पुन सगठन कर रही थी। इन विभागो का उद्देश्य सत्याग्रह के कार्यक्रम को सफल वनाने के लिए देश को तैयार करना था, क्योकि सभी का खयाल था कि इस गतिरोध को खत्म करने का एकमात्र मार्ग सत्याग्रह ही था। गाधीजी अपने अहिसात्मक सिद्धान्तो, और किस तरीके से उन्हे सामूहिक और वडे पैमाने पर कार्यान्वित करके देश को मुक्ति दिलाई जा सकती है, के वारे मे बहुत कुछ लिख चुके थे। पटना मे उन्होने अनुभव किया कि काग्रेसजनो मे इतना मतभेद और अनुशासन-हीनता है कि सविनय-अवज्ञा का परिणाम ठीक नही होगा। इसके विपरीत लोगो का कहना था कि अगर सिविल-नाफरमानी शुरू कर दी जाय तो ये सब मतभेद दूर हो जाएँगे। इन दोनो दलो के दरमियान एक दल और था, जिसका विचार था कि काग्रेस को इस समय अपनी स्थिति स्पष्ट रूप से जनता के सामने रख देनी चाहिए और साफ-साफ कह देना चाहिए कि वह क्या करेगी। जनता को साफ साफ पता होना चाहिए कि अगर आसमान भी टूट पडे तो हमारी स्थिति यह होगी, वरना जनता मे अरक्षा की भावना पैदा हो जायगी जो स्वय इस आन्दोलन के लिए घातक होगी। इस तरह की विचारधारा का मुख्य कारण यह था कि लोगो

को सन्देह होने लगा था कि क्या आज से तीन महीने पहले देश की अधिक तैयारी नही थी और क्या वे उस स्थिति से पीछे नही हटते जा रहे है। हो सकता है कि हम सविनय अवज्ञा आज प्रारम्भ न करे, हो सकता है कि इसे हम कल भी न करे, लेकिन हमे सन्देह की इस भावना की रोक-थाम करके कोई अन्तिम निर्णय अवश्य करना चाहिए। लडाई के कारण यह सकटपूर्ण स्थिति पैदा हुई थी और अग्रेजो का उद्देश्य यथासभव अपने साम्राज्य का विस्तार करना था। हर हालत मे उसे सुदृढ तो करना था ही। हमारे रास्ते मे सिर्फ एक बडी रुकावट साम्प्रदायिक समस्या खडी कर दी गई थी जिसका उद्देश्य काग्रेस के रास्ते मे रोडे अटकाना था। ऐसी स्थिति मे रामगढ अधिवेशन के लिए कार्यक्रम तैयार करने के उद्देश्य से जब काग्रेस कार्य-समिति की पटना मे बैठक हुई तब उसने केवल एक ही प्रस्ताव तैयार किया, जिसका सम्बन्ध भारत और युद्ध से था।

रामगढ़-कांग्रेस : १९४०

रामगढ मे मार्च १९४० मे होनेवाली काग्रेस के ५३वे अधिवेशन के प्रधान के लिए सिर्फ मामूली-सा चुनाव हुआ। १५ फरवरी १९४० को सभी प्रान्तो मे प्रतिनिधियो ने प्रधान के निर्वाचन के लिए अपने-अपने वोट डाले और मौलाना आजाद, श्री० एम० एन० राय के मुकाबले मे १८६४ वोटो से काग्रेस के प्रधान चुने गए। श्री राय को १८३ वोट मिले।

रामगढ का नाम मजहर नगर रखा गया था और सदा की भाति यहाँ भी सब उत्सव बडी धूम-धाम से मनाए जाने का आयोजन किया गया। खुले अधि-वेशन को छोडकर विषय-निर्वाचन समिति, प्रदर्शनी, सार्वजनिक सभाएँ इत्यादि का सारा कार्यक्रम निर्विघ्न सपन्न हुआ। लेकिन खुले अधिवेशन का आयोजन इस पठार की एक सुरम्य तराई मे किया गया। प्रकृति क्रुद्ध हो गई, उसने रौद्र रूप धारण कर लिया और सारे मैदान मे घुटनो तक पानी चढ आया। इसका कारण यह था कि ठीक उसी समय, जब कि काग्रेस का अधिवेशन होना था, जोर का तूफान आया और वर्षा होने लगी। काग्रेस के महारथियो ने इसका बहादुरी से मुकाबला किया। इसी प्रलय की घडी मे स्वागत-समिति के प्रधान और अधि-वेशन के प्रधान ने क्रमश अपनी-अपनी कार्रवाइया की। बेशक उनके अभिभाषण बिना पढे ही पढे हुए मान लिए गए। उस दिन का मुख्य प्रस्ताव पडित जवाहरलाल ने पेश किया और उसे अगले दिन के लिए मुल्तवी कर दिया गया। अगले दिन काग्रेस अधिक सौभाग्य-शालिनी रही और उसे अधिवेशन के लिए काफी समय मिल गया। अधिवेशन आसानी और धूमधाम से हो गया। अधिवेशन का आयोजन झण्डे वाले मैदान मे किया गया था, जहा जमीन ऊँची और सूखी थी। काग्रेस का यह ऐतिहासिक निर्णय, जिसका समर्थन गाधीजी ने अपने महत्वपूर्ण भाषण मे

किया था, लोगो ने झण्डे के नीचे बैठकर पूरी गभीरता और सजीदगी से किया। मजहर-नगर के सिहद्वार के सामने ३० फुट ऊँचे एक स्तभ पर यह झण्डा फहरा रहा था। इस स्तभ का रग भूरा और पीला था और इसके बनाने मे अशोक-स्तभ की नकल की गई थी।

राजेन्द्र बाबू का अभिभाषण

रामगढ का अधिवेशन रामगढ के राजा के एक जगल की देहाती बस्तियो मे किया गया था। और इस अवसर के सर्वथा उपयुक्त श्रीयुत राजेद्र बाबू को कांग्रेस के प्रतिनिधियो के स्वागत के लिए चुना गया था। उनके अभिभाषण मे युक्तियो और विभिन्न घटनाओ का वर्णन बडे ही बढिया तथा मोहक ढग से किया गया था। उन्होने एक धर्मोपदेश का वर्णन करते हुए कहा —

"कभी-कभी हम भूतकाल से शिक्षा लेकर बडे प्रेरित और प्रभावित हो उठते हैं। यह प्रकरण समाप्त करने से पहले मै ऐसी ही एक घटना आपके सामने रखूगा। किसी जमाने मे राजा अजातशत्रु दक्षिण बिहार मे राज्य करते थे और उत्तर बिहार मे वज्जियो का सुसमृद्ध प्रजातन्त्र था। अजातशत्रु वज्जियो को जीतकर उनका प्रदेश अपने राज्य मे सम्मिलित कर लेने के लिए बडे उत्सुक थे। एक बार गौतम बुद्ध अजातशत्रु की राजधानी राजगिर (राजगृह) आये और गिद्धकूट (गृद्धकूट) पर्वत पर ठहरे। अजातशत्रु ने अपने मत्री वस्सकार को बुद्ध के पास यह जानने के लिए भेजा कि वज्जियो के विरुद्ध उनकी जो योजना और चाल है, उसके सबध मे उनकी क्या राय है। जब बुद्ध को अजातशत्रु के इरादो का पता चला तब उन्होने अपने शिष्य आनन्द से सात प्रश्न किये और उनका उत्तर मिलने पर उन्होने अजातशत्रु के प्रश्न का जवाब दे दिया। उन्होने पूछा, "आनन्द! क्या तुमने सुना है कि बज्जी लोग अपनी सभाएँ अक्सर बुलाते है और लोग उनमे काफी सख्या मे शामिल होते है?" आनन्द ने उत्तर दिया, "प्रभु! तथागत! मैने सुना है कि वज्जियो की सभाएँ बहुधा होती है और उनमे लोग काफी सख्या मे भाग लेते है।" बुद्ध ने कहा, "हे आनन्द! जब तक वज्जियो की सभाएँ बहुधा होती रहेगी और उनमे लोग काफी सख्या मे भाग लेते रहेगे तब तक तुम यह आशा कर सकते हो कि केवल उनकी अभिवृद्धि ही होगी, विनाश नही।" उन्होने इसी प्रकार के छ' और प्रश्न किये और उनका सतोषजनक उत्तर मिलने पर कहा, "जब तक वज्जी एक जगह मिलकर बैठते रहेगे, एक साथ मिलकर काम करते रहेगे और अपने राष्ट्रीय कर्त्तव्यो का पालन एक साथ मिलकर करते रहेगे, जब तक वे कानून बनाए बिना कोई मनमाने आदेश नही जारी करेगे और न अपने कानूनो का अतिक्रमण करेगे, जब तक वे अपने बनाए नियमो के अनुसार सामूहिक रूप से कार्य करते रहेगे, जब तक वे अपने बडो का आदर-सम्मान करेगे और उनकी मान्य राय को मानते

रहेगे, जब तक अपनी स्त्रियो के प्रति कठोर अथवा उद्दण्डतापूर्ण बर्ताव नही करेगे, जब तक वे अपने चैत्यो (धार्मिक और राष्ट्रीय मदिरो) का आदर-सम्मान करते रहेगे और धार्मिक प्रयोजन से दी गई उनकी सपत्ति उनसे नही छीनेगे, जब तक वे अपने अर्हतो (आत्मत्यागी विद्वानो) की रक्षा करते रहेगे और बाहर के अर्हतों को अपने देश मे प्रवेश करने की आज्ञा देते रहेगे, अपने राज्य के अर्हतो को आराम से जीवन व्यतीत करने देगे, तव तक उनकी समृद्धि होती रहेगी, वे सपन्न होते रहेगे। इसलिए तुम्हे उनकी किसी प्रकार की क्षति की आशा नही करनी चाहिए।" जब अजातशत्रु ने यह सुना तब उसे विश्वास हो गया कि उसके लिए अपनी सेनाओं के बल पर वज्जियो को जीतना असभव है। आज भी ये सातो नियम, जिनके ऊपर राष्ट्रो का उत्थान-पतन निर्भर रहता है और जो आज से २,५०० वर्ष पूर्व लागू किये गये थे—कितने सच्चे और शाश्वत है। राजगिर की पहाड़ियो मे गिद्धकूट का यह पर्वत आज भी हमे उनका स्मरण दिला रहा है। किसी भी जीवित समाज मे मतभेद का होना सर्वथा स्वाभाविक ही होता है। क्या आज हम काग्रेस के बारे मे यह कह सकते है कि हम एक साथ मिलकर बैठते है, एक साथ मिलकर बात करते है और एक साथ मिलकर अपने राष्ट्रीय कर्त्तव्यो का पालन करते है? क्या हम यह कह सकते है कि हम अपने ही बनाए हुए नियमो का उल्लघन नही करते? क्या हम अपने ही बनाए हुए नियमो के अनुसार सामूहिक रूप से कार्य करते है? क्या हम विश्वास और निश्चय के साथ यह कह सकते है कि हम अपने बडों का आदर-सत्कार करते है, उनकी मान्य सलाह पर ध्यान देते है और उसे स्वीकार करते है? वज्जियो की ताकत इन्ही बुनियादो पर निर्भर थी। यदि हम भी इन प्रश्नों का उत्तर 'हा' मे दे सके तो हमारी शक्ति भी बढ़ेगी। एक बार बुद्ध ने भिक्षुओ को वज्जियों की सभाओं को दिखाते हुए कहा था, "तुम इस सभा को देखो। इससे तुम यह अनुमान लगा सकते हो कि देवताओ की सभा किस प्रकार की होगी।" क्या हमारे लिए इस प्रकार का सगठन करना और अपने इस राष्ट्रीय संगठन को इस प्रकार चलाना सभव नही है कि जिससे गाधीजी हममे अनुशासन की कमी और हिसा की शिकायत करने के बजाय अपने आश्रम की कन्याओ को सबोधित करते हुए ऐसे ही उपदेश दे, जैसे कि भगवान बुद्ध ने अपने भिक्षुओ को दिये थे?"

मौलाना आज़ाद का भाषण

राष्ट्रपति मौलाना आजाद का भाषण उच्चकोटि का था। उन्होंने कहा—"आज हमारा काफिला एक बडी नाजुक घड़ी मे से गुजर रहा है। इस तरह की नाजुक घडी मे कठिनाई यह रहती है कि उसमे परस्पर विरोधी सभावनाओ की आशका बनी रहती है। बहुत सभव है कि यदि हम कोई ठीक कदम उठाएँ तो

अपने उद्देश्य के वहुत निकट तक पहुँच जाएँ और दूमरी ओर यदि हम कोई गलत कदम उठा वैठे तो उससे हम नई कठिनाइयो और उलझनो में फँस जायँ।" आगे उन्होंने विस्तार से काग्रेस की माग, उस पर व्रिटिश सरकार के जवाव और अव तक काग्रेस-द्वारा उठाए गए कदमो का जिक्र करते हुए कहा—"हमारी स्थिति विल्कुल साफ है। हम व्रिटिश साम्राज्यवाद को विजयी और मजवूत होता हुआ नही देखना चाहते और इस तरह अपनी गुलामी की अवधि को भी नही वढाना चाहते। १९३७ मे हमने जो अस्थायी और आशिक सहयोग का हाथ वढाया था, उसे हमने युद्ध की घोपणा के वाद खीच लिया। स्पष्ट है कि हमारा इरादा असहयोग की दिशा मे आगे कदम वढाना है। जिस स्थिति मे हम आज है, हमे यह फैसला करना है कि हमें इस दिशा मे आगे वढना चाहिए या पीछे कदम लौटाना चाहिये ? लेकिन एक दफा कदम उठा लेने पर उसे पीछे नही हटाया जा सकता। कदम रोकने का मतलव पीछे हटना है और हम पीछे हटने से इन्कार करते है। इसलिये हम सिर्फ आगे ही कदम वढा सकते है। मुझे यकीन है कि जव मै यह कहता हूँ कि हमे आगे कदम वढाना चाहिए और हम आगे ही आगे चलेंगे तव आप सव मेरे साथ इसमे पूरी तरह से शरीक है।

गांधीजी की चेतावनी

इस वात को ध्यान मे रखते हुए कि इस अधिवेशन का मुख्य प्रस्ताव पहले से ही पटना मे तैयार कर लिया गया था, रामगढ की गतिविधि इतनी शान्त न थी जितनी कि आशा की जाती थी। लेकिन इस थोडे से दरमियानी अरसे मे भी विचार-धारा वडी तेजी से प्रवाहित हो रही थी। श्री जिन्ना का दो राष्ट्रो का सिद्धात उनके दिमाग मे पनपने लगा था, जो अपने आपको पाकिस्तान की सूरत मे प्रकट कर रहा था। साम्प्रदायिक झगडे, जिनके पैदा हो जाने की आशका सविनय भग के कारण की जा रही थी, पहले ही शुरू हो चुके थे और सक्खर का दगा अपने पूरे वेग से प्रारभ हो चुका था, जिसमे ४०० आदमी मारे गए और हजारो घायल हुए थे। यह दगा उस समय देश के इतिहास मे पाशविकता, क्रूरता और रक्तपात मे अपना सानी नही रखता था। जहा तक लडाई के जमाने मे सविनय भग आन्दोलन प्रारभ करने का प्रश्न था, रामगढ अधिवेशन के समय प्रादेशिक और जातिगत सिद्धात के आधार पर देश के विभाजन की माग और साम्प्रदायिक कलह की समस्या ऐसी नही थी जिस पर शान्त चित्त से विचार किया जा सकता था। जबकि समस्याएँ ऐसी थीं तव घटनाओ के सिहावलोकन से भी कोई आश्वासन नही मिल सकता था। गाधीजी को तो सभी ओर अनुशासन-हीनता ही दिखाई दे रही थी। उनकी मुख्य कठिनाई थी—सगठन। "मै इस तरह के सगठन के वल पर कैसे लड़ सकूगा ?"—यही एक विचार था जिस पर वह अपने आत्मनिरीक्षण के समय

सोचते थे और विचार-विनिमय मे बराबर इसी पर चर्चा करते थे। संगठन की ऐसी हालत देखते हुए उन्होने अनुभव किया कि वह काग्रेस-जनो से कह दे कि उन्हे बडा खतरा नजर आ रहा है और इस तरह के सगठन के बल पर किसी तरह की लडाई नही लडी जा सकती। तो क्या फिर उन्हे काग्रेस के बिना ही अकेले जूझ पडना चाहिए ? उन्होने गभीरतापूर्वक अध्ययन किया कि वह इस नेतृत्व से अलहदा हो जाने का प्रस्ताव करे। यह निश्चय ही एक नई बात थी, क्योकि पटना मे उनकी विचार-धारा इस प्रकार की नही थी। इस स्थिति को हम सक्षेप मे इस प्रकार रख सकते है। लोग गाधीजी से पूछ रहे थे, "आप आन्दोलन कब करेगे ?" और गाधीजी इसके जवाब मे उनसे कह रहे थे, "जब तुम तैयार हो जाओगे।" रामगढ से सिर्फ चार महीने पहले एक प्रस्ताव पेश किया गया था, जो प्राय स्वीकार कर लिया गया था। इसमे सब कुछ गाधीजी पर छोड देने को कहा गया था। गाधीजी सिर्फ यह चाहते थे कि लोगों के अन्दर से यह धारणा दूर हो जाय कि वह शीघ्र ही आन्दोलन शुरू करने वाले है, क्योकि वातावरण इसके अनुकूल न था, न उनके पास पर्याप्त सामग्री ही थी। यहा तक कि इस काम के लिए उनके पास आदमी भी नही थे। अन्त मे रामगढ मे पटना वाला प्रस्ताव ही पास हुआ।

विषय-निर्वाचन-समिति मे और खुले अधिवेशन मे गाधीजी ने जो बाते कही और उसके एक सप्ताह बाद उनकी ओर से देश को जो चेतावनी दी गई उसका साराश इस प्रकार है—

"मै आप लोगो से मुलाकात करने और आपसे अपना परिचय ताजा करने आया हूँ। मै आपसे सीधा सम्पर्क कायम करना चाहता हूँ और यह जानना चाहता हूँ कि मेरी और आपकी एक दूसरे के सबध मे क्या स्थिति है। आपने प्रस्ताव प्राय सर्वसम्मति से पास किया है। बहस के दौरान मे आपस मे से कुछ लोगो ने जो बाते कही है उनका मै उत्तर देना नही चाहता। लेकिन मै यह जरूर कहना चाहता हूँ कि अब मै बडी सख्ती से काम लूँगा। इसलिए नही कि सख्ती मुझे पसन्द है, बल्कि इसलिए कि एक सेनापति को, जिसे अपनी फौज की रहनुमाई करनी है, पहले से ही सेना को अपनी शर्ते बता देनी चाहिए। इस बार मै देखता हूँ कि पहले की अपेक्षा आज हम लोग चारो ओर से कठिनाइयो से कही ज्यादा घिरे हुए है। कठिनाइयाँ भीतरी और बाहरी दोनो तरह की है। ब्रिटिश सरकार विश्वव्यापी युद्ध मे फँसी हुई है और अगर हम भी उससे लडाई ठान ले तो स्वाभाविक है कि हम काफी कष्ट मोल ले लेगे। यह हमारी पहली कठिनाई है, लेकिन मुझे जो चीज भयभीत कर रही है—वह है हमारी भीतरी कठिनाई। मैने अक्सर कहा है कि अगर आन्दोलन ठीक आधार पर चले तो बाहरी मुश्किलो से सत्याग्रही को कभी डरने की जरूरत नही है। हमारी भीतरी कठिनाई यह है कि हमारी काग्रेस के

रजिस्टर ऐसे सदस्यो से भरे पडे है जो यह जानकर वडी सख्या मे भरती हो गए है कि काग्रेस मे घुसने का अर्थ सत्ता हासिल करना है। इस कारण जो पहले काग्रेस मे शामिल होने का कभी विचार भी नही करते थे वे भी अव उसमे आ गए है और उसे नुकसान पहुँचा रहे है। काग्रेस मे कोई अनुशासन नही है। लोग दलो मे वँटे हुए है और उनमे लडाई झगडे है। प्रजातत्र तो मेरी कल्पना मे ऐसे दलो का निर्माण नही है, जो आपस मे इस हद तक लडते-झगडते रहे कि उससे सगठन ही नष्ट हो जाय। और फिर हमारी सस्था तो लोकवादी और लडाकू दोनो ही है। हमारी लडाई अभी खत्म नहीं हुई है। जव हम एक सेना के रूप मे आगे वढते है तव हम लोकवादी नही रहते। वतौर सिपाही के तव हमे सेनापति से आदेश लेना पडता है और उसे विना किसी हिचकिचाहट के मानना पड़ता है। सेना मे तो जो कुछ सेनापति कहे, वही कानून होता है। मै आपका सेनापति हूँ। इसका यह मतलव नही कि मैं आपको अपनी भावनाओ के वारे मे अन्वकार में रखूँ। लेकिन मुझे अपने जैसे कमजोर सेनापति की मिसाल इतिहास मे नही मिलती। मेरे पास कोई अविकार नही है। मेरा एकमात्र वल आपका प्रेम है। एक प्रकार से यह वडी भारी चीज है, लेकिन दूसरी प्रकार से वह निरर्थक भी है। मै कह सकता हूँ कि मेरे दिल मे सवके लिए प्रेम है। शायद आप भी ऐसा ही कहते हो, लेकिन आपका प्रेम क्रियात्मक होना चाहिए। आपको आजादी की प्रतिज्ञा मे वताई गई शर्तो को पूरा करना चाहिए। मै आपको यह वता देना चाहता हूँ कि अगर आप उन शर्तो को पूरा नही कर सकते तो मेरे लिए आन्दोलन शुरू करना सभव न होगा। आपको कोई और सेनापति तलाश करना होगा। आप मुझे मेरी मर्जी के खिलाफ अपना नेतृत्व करने के लिए मजवूर नही कर सकते। जव आपने मुझे अपना सेनापति वनाया है तव आपको मेरे आदेश का पालन करना ही होगा। इसमे कोई तर्क नही चल सकता। चूँकि मेरी एकमात्र ताकत प्रेम है, इसलिए आपसे आग्रह करता हूँ कि आप धैर्य रखे। प्रेम के साथ धैर्य का होना अनिवार्य है। मैने अपने मित्रो को चर्खे के सवव मे टीका-टिप्पणी करते सुना है। मुझे मालूम है कि आप सव जेल जाने को तैयार है, लेकिन इसके लिए पहले आपको अपना हक और योग्यता हासिल करनी होगी और जेल जाने की कीमत चुकानी होगी। आपको मुजरिम के तौर पर जेल नही जाना है।

"मै १९१८ से ही वागी हूँ। लेकिन उससे पहले मै साम्राज्य का इतना राजभक्त था कि मैने लार्ड चेम्सफोर्ड को लिखा कि मै साम्राज्य का उतना ही राजभक्त वनना चाहता हूँ, जितना कोई अग्रेज हो सकता है। मैने यह इसलिए लिखा, क्योकि सत्य पर मेरा यकीन है। सत्य ही मेरा ईश्वर है और यदि मै अपने प्रति सच्चा होना चाहता था तो मै इससे भिन्न लिख ही कैसे सकता था। आपका मार्ग सत्य और अहिंसा से अलग हो सकता है, पर मेरा तो वही पुराना रास्ता है। आप लोगो

की तरह ही मनुष्य होने के नाते मुझसे भी गलतियाँ हो जाती है। मैने कभी स्वप्न मे भी ख्याल नही किया कि मै महात्मा हूँ। ईश्वर की नजरो मे हम सब समान है। मेरे लिए हिन्दू, मुसलमान, पारसी और हरिजन सभी एक-से है। कायदे आजम जिन्ना के बारे मे जब मै चर्चा करता हूँ तब कोई हल्की बात कह नही सकता। वह भी तो मेरे भाई है। वास्तव मे मुझे खुशी होगी अगर वह मुझे अपनी जेब मे रख सके। एक समय था, जब मै यह कह सकता था कि एक भी मुसलमान ऐसा नही है, जिसका मुझ पर विश्वास न हो। लेकिन यह मेरा दुर्भाग्य है कि आज ऐसी बात नही है। उर्दू के पत्रो मे जो कुछ छपता है वह सब मै नही पढता, लेकिन शायद उनमे मेरे लिए ज्यादातर गालियाँ ही रहती है। इसका मुझे दु ख नही है। मेरा अब भी यही विश्वास है कि हिन्दू-मसलमानो के समझौता के बिना स्वराज्य नही मिल सकता। शायद आप पूछेंगे, "तो ऐसी हालत मे आप लडाई की बात क्यो करते है ?" मै ऐसा इसलिए कहता हूँ कि यह लडाई विधान-परिषद के लिए है। यदि मुसलमानो के वोट से विधान-परिषद मे आने वाले मुसलमान यह घोषणा करते है कि हिन्दू-मुसलमानो मे कोई बात सामान्य नही है तो मै उस हालत मे सब आशाएं छोड दूँगा। लेकिन फिर भी मै उनसे आग्रह करूँगा, क्योकि वे कुरान-शरीफ पढते है और मैने भी उसका थोडा-बहुत अध्ययन किया है। मै उनसे कहूँगा कि ईश्वर हिन्दू-मुसलमानो मे कोई भेद नही करता।

"किसी ने कहा है कि सविनय भग से सम्बन्ध रखने वाले प्रस्ताव मे 'सामूहिक' शब्द का जिक्र नही किया गया। यदि यह सामूहिक सविनय भग नही होना है तो फिर मुझे आपके सामने आने की क्या पडी थी ? यदि यह सविनय भंग सामूहिक न होगा तो क्या मुट्ठी भर लोगों का होगा ? तब आप मुझे इस प्रकार आपसे तर्क करते नही पायेगे। आप शायद इन बातो पर गभीरता से विचार न करते हो, पर इस सविनय भग के खयाल मे ही मेरा मन आठो पहर जाग्रत रहता है। मेरा मन तो आपकी मदद और सहयोग से इस महान् परीक्षा को ही कार्यान्वित करने की बात सोचा करता है, क्योकि इससे न सिर्फ भारत का ही लाभ होगा, बल्कि सारी दुनिया का कल्याण होगा।

"अब हिदायतो की बात सुन लीजिए। हर कांग्रेस कमेटी को सत्याग्रह कमेटी बन जाना चाहिए और जिन लोगो का सबके प्रति सद्भाव पैदा करने मे विश्वास हो, जिनमे किसी भी रूप मे छुआछूत की भावना न हो, जो नियमित रूप से कातते हो और जो सब तरह का कपडा छोडकर आदतन खादी पहनते हो, उन सबके नाम लिख लेने चाहिएँ। मै आशा रखता हूँ कि जो लोग अपनी कमेटियो में इस तरह नाम लिखाएँगे वे अपना सारा फालतू समय रचनात्मक कार्यक्रम मे लगाएँगे। अगर यह आशा सच्चाई के साथ पूरी की जाएगी तो ये सत्याग्रह कमेटियाँ कताई के घर बन जाएँगी और वहा काम-ही-काम दिखाई देगा। ये चर्खा-संघ की शाखाओं

के साथ मिलकर और उनकी सलाह के अनुसार इतने व्यावसायिक ढग से काम करे कि कमेटियो के इलाके मे एक भी काग्रेसी ऐसा न बच रहे, जो खद्दर के सिवाय और कोई कपडा पहनता हो। मै आशा रखूँगा कि प्रान्तीय दफ्तर अखिल भारतीय महासमिति के सत्याग्रह कमेटियो के काम की प्रगति के बारे मे व्यवस्थित समाचार भेजते रहे। नाम लिखाने वाले सत्याग्रही रोजनामचा रखें और नित्य जो काम करे, उसमे लिखते जाय। अपनी कताई के अलावा उनका काम यह होगा कि चवन्नी—मेम्बरो के पास जाय और उन्हें खादी इस्तेमाल करने, कातने और अपने नाम लिखाने को समझाएँ। मेम्बर ऐसा करे या न करे, उनके साथ सपर्क जरूर बना रहना चाहिए। हरिजनो के घर भी जाते रहना चाहिए और जहॉ तक हो सके उनकी दिक्कते मिटानी चाहिएँ। यह कहने की तो जरूरत ही नहीं कि नाम उन्ही के लिखने चाहिए, जो जेल के कष्ट उठाने को रजामन्द और समर्थ हो। सत्याग्रही कैदियो को अपने या अपने आश्रितो के लिए किसी तरह की आर्थिक सहायता की उम्मीद नही रखनी चाहिए।

"यह तो हुई बात सत्याग्रह मे भाग लेने वालो की। लेकिन उनसे भी कही बडा वर्ग ऐसे स्त्री-पुरुषो का है, जो भले ही काते नही या जेल न जाय, मगर उनका सत्याग्रह के दोनो मुख्य सिद्धान्तो पर विश्वास है और वे लडाई का स्वागत करते है और उसकी सफलता चाहते है। इन्हे मै निष्क्रिय सत्याग्रही कहूँगा। अगर ये लोग खुद जेल न जाकर या मजदूरो या विद्यार्थियो की हडतालो मे मदद न देकर या जल्दबाजी न कर के लडाई के प्रवाह मे दखल न दे तो उनकी मदद सक्रिय सत्याग्रहियो के बराबर ही गिनी जायगी। जो बहुत उत्साह या और किसी कारणवश इन हिदायतो के खिलाफ चलेगे, वे लडाई को हानि पहुँचाएँगे और सभव है, उसे बीच मे ही रोक देने को मुझे मजबूर कर दे।

"मेरे दिमाग मे यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि यदि राजनैतिक विचार रखने वाले हिन्दुस्तानियो का सहयोग मिल जाय तो भारत को शुद्ध अहिसा के जरिये आजादी हासिल होना पूरी तरह सभव है। हम जो अहिसा का दभ करते है उस पर दुनिया का विश्वास नहीं है। दुनिया की बात जाने दीजिए, मै तो सेनापति बन बैठा हूँ। मैने ही बार-बार स्वीकार किया है कि हमारे दिलो मे हिसा है और अक्सर आपस के व्यवहार मे एक दूसरे के साथ हम हिसक हो जाते है। मुझे स्वीकार करना चाहिए कि जब तक हममे हिंसा है तब तक मै नही लड सकूँगा। लेकिन जिस सूची के बनाने की मैने तजवीज की है यदि वह सच्ची हुई और साहस कर के बाहर रहने वाले लोगो ने लडाई के सीधे प्रवाह मे बाधा न डाली तो मै जरूर लडूँगा।"

प्रतिक्रिया की भावना

गाधीजी की योजना निश्चित रूप से जिन सिद्धान्तों पर आधारित थी उनमे से

एक सिद्धान्त कातना था और दूसरा अग्रेजो को भारत से निकाल बाहर करना नहीं, बल्कि उनका हृदय-परिवर्तन करके उन्हे भारत का सेवक बनाना था। इसका अर्थ यह नही था कि वह साम्राज्यवाद के पक्ष मे थे। उन्होने स्वय कहा, "यदि मेरा प्रेम गुलाब की पखुडियो की तरह मुलायम है तो वह काच के टुकड या पत्थर से ज्यादा कठोर भी हो सकता है।" उनकी पत्नी और सब से बडे बेटे को कठोर प्रेम का आस्वादन करना पडा था। गाधीजी ने कहा, "मेरा ख़याल है कि मैंने सुभाष बाबू को हमेशा के लिए पुत्र के रूप मे स्वीकार कर लिया है, लेकिन मुझे यह शिष्टता छोडनी पडी। उनके ऊपर जो प्रतिबन्ध लगाया गया है उसके लिए मुझे दु ख और खेद के साथ स्वीकृति देनी पडी।" इसी तरह से उन्होने डा० खरे और वीर नरीमैन के विरुद्ध की गई अनुशा .नत्मक कार्रवाई के सम्बन्ध मे भी अपनी सहमति प्रदान करने के लिए खेद प्रकट किया। अग्रेजो के प्रति भी उनका रवैया ऐसा ही था। चर्खा उनके प्रेम के कार्यक्रम का एक प्रधान अग बन गया था। उनके विचार से यदि कोई हिसा का मुकाबला हिसा से करने की व्यवस्था करता है या सोचता है तो उसका परिणाम यही सभव है कि उसका जीवन सकटपूर्ण बना रहेगा और उसे अपनी रक्षा के लिए बडे-बडे शहर और शस्त्रागार बनाने पडेगे। भारत का प्राचीन देहाती प्रजातत्र अहिसा पर आधारित सभ्यता का प्रतीक था। चर्खे का यही सिद्धान्त है। एक सप्ताह बाद गाधीजी ने फिर इसी विषय को उठाया और बताया कि किस प्रकार श्री जयप्रकाशनारायण और उत्तर प्रदेश के शिक्षामत्री श्री सपूर्णानन्द ने प्रतिज्ञा-पत्र मे किये गए सशोधनो का विरोध किया है। रामगढ अधिवेशन तक और उसके बाद भी सत्याग्रह आन्दोलन शुरू करने के सम्बन्ध मे उन्होने जिस हिचकिचाहट और अन्यमनस्कता का परिचय दिया, उसका एक कारण यह भी था। स्वाधीनता-दिवस पर देश मे कही-कही अनुशासन-भंग की घटनाए देखने मे आई। सवाल यह नही था कि अनुशासन-भग की ये घटनाएं कितनी थी, बल्कि प्रश्न तो उसके पीछे काम करने वाली प्रचलित भावना का था। ज्यों-ज्यों रामगढ अधिवेशन करीब आ रहा था—विरोध-प्रदर्शन के सम्बन्ध मे बडी-बडी अफवाहे सुनाई दे रही थी और यहाँ तक कहा जा रहा था कि शायद काग्रेस-नगर में विस्फोट हो जाय। सौभाग्य से रामगढ अधिवेशन के समय ऐसी आशकाएँ निर्मूल साबित हुई। लेकिन रामगढ को अग्नि-वर्षा और विस्फोट की बजाय वर्षा का सामना करना पडा।

कांग्रेस-विरोधी सम्मेलन

साम्यवादियो, समाजवादियो, राष्ट्रीय प्रजातन्त्रवादियो, किसानो और अग्रगामी दल वालो के विरोध और मतभेदों का ऊपर जिक्र किया गया है। बाद के दोनों दल तो संयुक्त रूप से काग्रेस का विरोध करने पर उतर आए और उन्होने

किसान-नगर नामक स्थान पर सुभाष बाबू की अध्यक्षता में एक समान्तर सम्मेलन किया। उनका उद्देश्य कांग्रेस कार्यसमिति के पटना वाले प्रस्ताव का, जिसे रामगढ अधिवेशन मे पेश किया जाना था, विरोध करना था। इससे वे यह साबित करना चाहते थे कि जिन लोगो का यह खयाल था कि कांग्रेस ने समझौता न करने का रवैया अख्तियार किया है, वे गलती पर है। उन्हे इस प्रस्ताव मे खासकर उसके दूसरे भाग मे बहुत-सी खामिया नजर आईं, जिनके कारण उसका महत्व ही जाता रहा था। सुभाष बाबू ने बताया कि इस प्रस्ताव के पास होते ही गाधीजी यह कहने लगे है कि उन्होने भविष्य के लिए समझौते का दरवाजा बन्द नही कर दिया है। सविनय भग के बारे मे गाधीजी के विचारो से उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। सुभाष बाबू ने कहा, "अगर इस देश मे साम्राज्यवाद के साथ समझौता होगा तो उसका परिणाम यह होगा कि भविष्य मे भारतीय वामपक्षियो को न केवल साम्राज्यवाद से ही जूझना पडेगा, बल्कि उसके भारतीय सहयोगियो से भी टक्कर लेनी होगी। इसका परिणाम तो यही होगा कि साम्राज्यवाद के खिलाफ लडी जाने वाली राष्ट्रीय लड़ाई स्वय भारतीयो की घरेलू लड़ाई मे ही परिवर्तित हो जायगी।"

यह सम्मेलन कांग्रेस के अधिवेशन से पहले ही हुआ और इसमे बडी सख्या मे लोग शामिल हुए और उन्होने घोषणा की कि वे लडाई के लिए तैयार है।

सम्मेलन का उद्देश्य देश की उन सभी साम्राज्यवादी ताकतो का सगठन करना था, जो साम्राज्यवाद से सुलह न करने पर आमादा थी। सुभाष बाबू ने एक ओर तो कांग्रेस के प्रस्तावो और कार्यसमिति के सदस्यो के वक्तव्यो और दूसरी ओर गाधीजी तथा वामपक्षी नेताओ के वक्तव्यो की परस्पर विरोधी बातो पर प्रकाश डाला। उन्होने विधान-परिषद् की माग को अनुचित बताते हुए इस बात पर प्रकाश डाला कि किस तरह से नरम दल वाले लोग पृथक् निर्वाचन और धारासभाओ के मौजूदा मताधिकार को ही विधान-परिषद् का आधार मानने को तैयार है। सम्मेलन ने एक प्रस्ताव पास करके इसके प्रधान और स्वागत-समिति से सीधी कार्रवाई शुरू करने के लिए एक अखिल भारतीय युद्ध-समिति बनाने को कहा और यह आन्दोलन अप्रैल मे ही छेड देने को कहा। प्रस्ताव मे चर्खा कातने और रचनात्मक कार्यक्रम पर जोर देने की निन्दा की गई और भारतीय जनता को चेतावनी दी गई कि उसे विधान-परिषद् की उपहासास्पद माग के भ्रमजाल मे पडकर गुमराह नही होना चाहिए। नागरिक अधिकारो की स्वतन्त्रता पर किये गए आक्रमणो के विरुद्ध एक जोरदार आन्दोलन आरम्भ करना चाहिए और स्वतंत्रता-प्रेमियो को देश की उस गरीब और जागरूक जनता—किसानो और मजदूरो—के साथ घनिष्ठ-सपर्क स्थापित करना चाहिए, जो आर्थिक स्वतत्रता के लिए हमारी इस लडाई मे शामिल हो रही है। इस काम मे जितनी ही देर होगी

जनता मे उतनी ही निराशा फैलेगी, उनका नैतिक वल उतना ही कम होता जायगा और वे उतना ही अधिक असमजस मे पड़ जाएँगे। स्थानीय सग्रामो को और जोरदार वना दिया जाना चाहिए और जहाँ-कही जरूरी समझा जाय और सभव हो, नये आन्दोलन छेड देने चाहिएँ। अन्त मे सुभाष बाबू ने लोगो से आन्दोलन के लिए तैयार रहने की अपील की।

गांधी-सेवा-संघ का अधिवेशन

२० फरवरी, १९४० को ढाका मे मलिकन्दा मे गाधी-सेवा-सघ का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। गाधीजी ने ग्राम-उद्योग-प्रदर्शिनी का उद्घाटन किया। उनके भाषण से पहले विरोधी नारे लगाए गए और वहुत से गाधी-विरोधी मे परचे बाटे गए। इस घटना का जिक्र करते हुए गाधीजी ने कहा, "अभी मैने कुछ लोगो को 'गाधी-वाद का विनाश हो' के नारे लगाते हुए सुना है। जो लोग गाधीवाद को ध्वस करना चाहते है, उन्हे ऐसा करने का पूरा-पूरा हक है। आपको विरोधी नारो अथवा उसके विरुद्ध लगाए गए नारो से उत्तेजित नही होना चाहिए। आप उन्हे शान्ति से सहन करे। जो लोग गाधीवाद के खिलाफ कुछ कहना चाहते है, उन्हे ऐसा करने की पूरी आजादी दीजिए। मै नही जानता गाधीवाद से उनका मतलब क्या है। मैने कोई नई वात नही कही। मैने तो सिर्फ जो कुछ पहले से मौजूद है, उसे नई शक्ल मे पेश करने की कोगिश की है।" गाधीजी ने सेवासघ के सदस्यो को सलाह दी कि वे 'राजनीति' को विल्कुल भूल जाएँ और सघ के सदस्य के नाते उसमे भाग लेना वन्द कर दे। सघ का कोई भी सदस्य काग्रेस का सदस्य नही वन सकता। सिर्फ डा० राजेन्द्र प्रसाद और सरदार वल्लभभाई पटेल को इस वारे मे छूट दे दी गई। गाधीजी और उनके सहयोगी कलकत्ता होकर वापस लौटे और दूसरे ही स्टेशन पर किसी अज्ञात व्यक्ति ने उनके डिव्वे मे एक जूता फेका।

लार्ड जेटलैण्ड का वक्तव्य

रामगढ के वाद के जमाने मे या यो कहिये कि काग्रेस के नये साल के मौके पर भी पिछले सालो की तरह ही ब्रिटेन के राजनीतिज्ञो ने वे ही वाते दोहराई, जो वे पिछले कई महीनो से कहते चले आ रहे थे। श्री एमरी के भारतमत्री वनने से पहले लार्ड जेटलैण्ड ने अपने पद से अवकाश लेने से पूर्व वही पुराना राग फिर अलापा कि हमारा उद्देश्य भारत पर जवरदस्ती कोई वात लादना नही है वल्कि हम तो समझौते से ही आगे वढना चाहते है। भारतीयो को अपने लिए उपयुक्त विधान स्वय ही तैयार करना चाहिए, लेकिन पिछले दो सौ साल से ब्रिटेन का भारत के साथ जो सम्बन्ध चला आ रहा है, उसे देखते हुए वह एकदम उससे अपना

नाता नही तोड सकता। देशी राजाओ, रक्षा के प्रश्न, अल्पसख्यको, ब्रिटिश हितो और आठ करोड मुसलमानो की दुहाई देने के वाद उन्होने रामगढ मे उठाये गए प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा कि अगर सत्याग्रह शुरू किया गया तो सरकार को विवश होकर उसका पूरी तरह से मुकावला करना पडेगा। अन्त मे उन्होने सवाल किया कि क्या काग्रेस देश की उस एकता के प्रश्न पर विचार करना वन्द कर देगी, जिसके लिए वे स्वय इतने उत्सुक है ? इस सवाल के जवाव पर ही भारत का भाग्य आश्रित है। लार्ड जेटलैण्ड ने यह वक्तव्य भारतीय विधान की धारा ९३ के अन्तर्गत स्थापित की गई सरकारो को जारी रखने के लिए पार्लमेण्ट की स्वीकृति के समय दिया।

हमारी स्थिति

ऐसी स्थिति मे सत्याग्रह अनिवार्य होता जा रहा था। काग्रेस ने रामगढ के वाद देश को सत्याग्रह के लिए तैयार करने की आवश्यकता पर भी विचार किया। गाधीजी की हिदायतो के मुताविक प्रान्तीय काग्रेस कमेटियो ने सत्याग्रह कमेटियो के रूप मे अपना काम जोरो से शुरू कर दिया और वे सक्रिय तथा निष्क्रिय सत्याग्रहियो की भरती मे जुट गई। उन्हे यह हिदायत भी की गई कि वे अपने आन्तरिक मामलो और रचनात्मक कार्यक्रम की प्रगति का भी विवरण तैयार करती रहें। यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि काग्रेस कमेटियो के जो सदस्य निर्धारित प्रतिज्ञा लेने मे असमर्थ हो और काग्रेस के अनुशासन मे रहते हुए आन्दोलन की जिम्मेदारी अपने कन्धो पर न उठा सकते हो, उन्हे काग्रेस मे अपने पदो से हट जाना चाहिये। सविनय भग शुरू होने से पहले इन शर्तो की पूर्ति अत्यावश्यक वताई गई थी।

अप्रैल, १९४० मे जो स्थिति पैदा हो गई थी, नि सदेह वह वडी विकट थी। देश की नैय्या अज्ञात दिशा मे वही चली जा रही थी, क्योकि उसके कर्णधार को अपने लक्ष्य का ज्ञान न था। राजनैतिक दल रक्षात्मक खेल खेल रहे थे। दोनो ही दल आक्रमण करने मे आनाकानी कर रहे थे—इसका कारण डर, कायरता या कमजोरी नही ी, बल्कि दोनो ही दल वास्तव मे लडना नही चाहते थे। वे इसके परिणामस्वरूप पैदा होने वाली कटुता, प्रतिशोध की भावना और स्थायी शत्रुता से बचना चाहते थे। जहाँ तक काग्रेस का सवाल है, उसने साफ-साफ कह दिया था कि अगर अग्रेज भारत के ऊपर से अपना साम्राज्यवादी पजा उठा ले तो वह उनके प्रति मित्रता का हाथ वढाने को तैयार है। इस बीच एक तरह से अग्रगामी दल ने अपना अल्टीमेटम देकर सरकार को कुछ करने के लिए मजवूर कर दिया था। सरकार इसके परिणामस्वरूप होने वाली जोरदार प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा कर सकती थी, लेकिन इसके विपरीत वह इस दल को कोई भी कार्रवाई नही करने देना चाहती थी। परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रीय सप्ताह मे देश के एक दल को

अनिवाय परिस्थितियो मे सग्राम छेड देना पडा। देश के उन अधिकाश काग्रेसजनो के सामने, जिन्हे काग्रेस कार्यसमिति के आदेश-पालन मे दृढ विश्वास था, यह समस्या थी कि ऐसे नाजुक मौके पर उन्हे क्या करना चाहिये। उनका नेता, उनका संगठन और उनके लिए आदेश मौजूद थे और इनके फलस्वरूप देश को गाधीजी की शर्तो के अन्तर्गत आगामी सग्राम के लिए स्त्री-पुरुषों को तैयार करना था। इस नाजुक घडी मे जल्दबाजी करना तबाही को बुलावा देना था।

इस जमाने मे ब्रिटिश साम्राज्य की शासन-व्यवस्था में बडी-बडी घटनाएँ हुईं। ब्रिटेन के मत्रिमडल मे परिवर्तन हुआ। १० मई १९४० को लार्ड जेटलैण्ड की जगह श्री एमरी नियुक्त किये गये। इससे पहले वे ब्रिटेन के मंत्रिमडल मे कई पदो पर रह चुके थे। १९३९ के पतझड मे जब एडवर्ड टाम्सन वर्धा आये थे तब उन्होने कहा था कि भविष्य मे ब्रिटेन के छ राजनीतिज्ञ भारत की समस्या पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करेगे। इनमे से एक श्री एमरी और दूसरे श्री विस्टन चर्चिल थे। श्री चर्चिल के बारे में कुछ अग्रेजो का मत था कि वह भारतीय स्थिति पर काबू पा लेगे। वह या तो भारतीयो को अपना विश्वासपात्र बना लेगे और या फिर समझौते के सारे दरवाजे बन्द कर के कहेगे, "मार्शल-ला"—और कोई बात नही सुनाई जाएगी। इसलिए यह कहा जा रहा था कि भारत की स्थिति अब त्रिशकु की भाति बीच मे ही लटकी नहीं रहेगी। उसके बारे मे अच्छा या बुरा कोई भी निर्णय कर लिया जायगा। सात महीने से अग्रेज आँखमिचौनी कर रहे थे; पर अब स्थिति बदल गई थी और सीधी-सादी बात करने वाला व्यक्ति रगमच पर विद्यमान था। इसलिए गतिरोध का भी अन्त होने वाला था।

सम्राट का संदेश

परन्तु भारत के भाग्य मे तो सिवाय निराशा के और कुछ नही था। ब्रिटेन की सरकार मे परिवर्तन होने के कुछ समय बाद ही दो उल्लेखनीय घोषणाएँ हुईं। एक घोषणा सम्राट् द्वारा की गई और दूसरी श्री एमरी द्वारा। महारानी विक्टोरिया की मृत्य के बाद से २४ मई प्रतिवर्ष साम्राज्य-दिवस के रूप मे मनाई जाती है। इसकी नीव अर्लमीथ ने डाली थी। पिछले चालीस बरस से यह दिन मनाया जा रहा था और १९४० का यह दिवस बहुत महत्वपूर्ण था। उस दिन ब्रिटेन के सम्राट् ने नीचे लिखा सदेश ब्राडकास्ट किया—

"आज मै इस साम्राज्य के सम्बन्ध मे एक बिल्कुल नई कल्पना पर प्रकाश डालने जा रहा हूँ। अब इसका महत्व अधिक स्पष्ट और असदिग्ध नजर आता है। इस समय इसका सघर्ष एक दूषित और निन्दनीय व्यवस्था से हो रहा है, जिसके साथ इसकी तुलना नहीं हो सकती। हमारे शत्रु हमारे खिलाफ एक शब्द—साम्राज्यवाद—का प्रयोग करते है। इससे उनका मतलब अधिकार और दूसरे

के प्रदेश पर कब्जा है। परन्तु हम जो इस साम्राज्य के स्वतन्त्र वासी हैं, इस शब्द का प्रयोग उन्ही को मुँह तोड जवाब देने के लिए करते है। उनकी ही भावनाएँ दूषित हैं। हमारा उद्देश्य तो हमेशा से शान्ति रहा है।"

श्री एमरी का वक्तव्य

श्री एमरी ने घोषणा की : "पिछली सरकार की भाति हमारी नीति का उद्देश्य भी ब्रिटिश कामनवेल्थ (राष्ट्रमडल) के अन्तर्गत भारत को स्वतन्त्र और बराबरी का दर्जा देना है।" आपने यह बात भी स्वीकार की कि भारतीय परिस्थितियो और भारतीय दृष्टिकोण के उपयुक्त कोई विधान तैयार करने की जिम्मेवारी स्वय भारतीयो पर ही है। कामन सभा मे, अप्रैल, १९४० मे लार्ड जेटलैण्ड के शब्दो को दोहराते हुए श्री एमरी ने कहा कि ब्रिटिश सरकार का इरादा वर्ष के अन्त मे वर्तमान योजना की अन्तर्निहित नीति और अन्य बातो के बारे मे फिर से जाच-पडताल करने का है और हमारी नीति भारत के सिर पर कोई बात लादने के बजाय उससे समझौता करने की है। उन्होने कहा, "मेरी राय मे भारत के लिए सर्वोत्तम विधान परिषद् विभिन्न प्रान्तो के १० या १२ प्रतिनिधियो द्वारा तैयार की जानी चाहिये, जिसमे यूरोपियनो सहित सभी वर्गों के लोग हो। भारत की आन्तरिक, बाहरी और सामरिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण स्थिति इस बात की इजाजत नही देती कि उसके लिए भी अन्य स्वाधीनता प्राप्त उपनिवेशो-जैसी विधान परिषद् बनाई जाए। यह प्रश्न किये जाने पर कि इस नाजुक घडी मे भारतीयो के लिए क्या सलाह दे सकते हैं, श्री एमरी ने कहा, "अगर कांग्रेस वाइसराय से सहयोग करके काम कर सके तो मुझे इससे बडी खुशी होगी। लेकिन अगर कांग्रेस ने वर्तमान परिस्थिति के प्रतिकूल कोई काम किया तो यह निस्सदेह बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण होगा।"

स्टैफर्डक्रिप्स के विचार

यह स्पष्ट हो गया था कि लडाई के फलस्वरूप मिलने वाली आजादी मे से भारत को कुछ नही मिलेगा, बल्कि उसे तो उसका पूरा वेग सहन करना पडेगा। उसे युद्ध के प्रहार ही सहन करने होगे। सिर्फ सर स्टैफर्डक्रिप्स ही ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होने भारत से लौटने पर भारत के बारे मे कुछ सहानुभूतिपूर्ण शब्द कहे। २६ अक्टूबर, १९३९ को कामन सभा मे दिये गए उनके वक्तव्य का काफी महत्व था, क्योकि उसमे उन्होने भारत और उसकी समस्याओ के निराकरण का एक उपाय विधानपरिषद बताया था। उनका कहना था कि सभी श्रेणियो के भारतीयो मे यह भावना जोर पकड रही है कि पार्लमेण्ट भारतीय समस्याओ पर बहुत कम ध्यान देती है। कांग्रेस की माग वस्तुत राष्ट्रीय माग है। इसमे सभी विचारो

के लोग शामिल है और यह भारतीय जनता की घोषणा है, लेकिन इतने पर भी आशका की जाती है कि शायद ब्रिटिश सरकार भी इसकी उपेक्षा कर दे। इसका परिणाम सविनय भग आन्दोलन होगा, क्योकि काग्रेस का यकीन है कि इस प्रकार सारी जनता की नैतिक शक्ति इस माग के पीछे होगी। काग्रेस का अन्तिम हथियार सारे देश मे एक व्यापक हडताल की घोषणा होगी। किसानों और मजदूरो का ऐसा विचार है कि काग्रेस उन्हे जमीदारो और पूजीपतियो के पजे से नजात दिलाएगी और ठीक यही एक कारण है कि काग्रेस का उनके ऊपर वड़ा असर है। आज अधिकाश भारतीय बडी आतुरता से काग्रेस की ओर देख रहे है और इस प्रतीक्षा मे है कि वह उन्हे क्या आदेश देती है। वे भारत के विभाजन के लिए श्री जिन्ना की योजना का विरोध करते है। गाधी जी को शान्तपूर्ण नीत पर पूरा यकीन है और उनका विचार है कि हिसात्मक उपायो से नैतिक ताकत कमजोर पड़ती है और उससे सत्य की अजेय शक्ति मे अविश्वास की भावना प्रकट होती है। मै सरकार पर जोर दूगा कि वह असदिग्ध रूप मे यह घोषणा कर दे कि लडाई समाप्त हो जाने के बाद एक साल के अन्दर उसे स्वराज्य दे दिया जायगा और 'मेरा विश्वास है कि अगर इस किस्म की कोई घोषणा की जाय तो उससे साप्रदायिक समस्या भी सुलझ जाएगी और सभव है कि जब तक लडाई खत्म न हो जाय काग्रेस भी शान्त होकर बैठ रहे।

लार्ड प्रिवीसील के कथन का प्रतिवाद करते हुए सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने कहा कि साप्रदायिक प्रश्न की कठिनाई के कारण भारत के लिए केन्द्रीय सरकार की स्थापना का कोई सन्तोषजनक तरीका ढूढ निकालना जटिल हो गया है। यही बात पोलैण्ड के बारे मे भी कही जा सकती थी, जहाँ रूसी, यहूदी, जर्मन और पोल रहते है। यही बात चेकोस्लोवाकिया के लिए भी कही जा सकती थी, जहाँ सूडेटन, चेक, और स्लोवाक रहते है, और अगर यह दलील प्रजातत्र की बिना पर पेश की जाय तो मै इसे समझने मे असमर्थ हूँ, क्योकि इस तरह से एक अल्पसख्यक जाति को सरक्षण देने के लिए बहुसख्यक जाति को उसके उचित अधिकारो से वचित किया जाता है। यह आवश्यक हो सकता है कि बहुमत के कुछ अधिकारो मे सशोधन किया जाय और उसे इस पर सहमत कर लिया जाय, जैसा कि काग्रेस ने स्वेच्छा से किया है, लेकिन आपके लिए बहुमत से उसके अधिकार इसलिए छीनना न्यायसगत नही कहा जा सकता कि आप अल्पसख्यको के सरक्षण का दावा करते है। अगर आप ऐसा करते है तो वास्तव मे बहुमत को अल्पमत मे परिवर्तित करते है।

अगर आप प्रजातत्रात्मक सरकार के समर्थक है तो अल्पमत के लिए जरूरी हो जाता है कि वह बहुमत का शासन स्वीकार करे और यही बात हम आये दिन इस देश मे देख रहे है। अगर आप प्रजातत्र को मानते है, अगर आप प्रजातत्र-

पद्धति को अपनाना चाहते है, जिसका मतलव यह होता हे कि आप यह जान सकें कि कौन-सा वर्ग, अथवा जाति या दल वहुमत मे है, तो आपको इस पद्धति का परिणाम भी स्वीकार करना होगा। और इस वक्त, आप चाहे या न चाहे, काग्रेस दल का ब्रिटिश भारत मे वहुमत है।

यह वताने से पूर्व कि इस स्थिति को सुलझाने के लिए हमे कौन-से व्यावहारिक तरीको को अपनाना चाहिये, मै एक और विषय का जिक्र करना चाहता हूँ। अगर हम इस वक्त भारत को स्वराज्य देने से इन्कार करते है तो उसका यूरोप की परिस्थिति और यूरोप में हमारी कठिनाइयो पर क्या प्रभाव पड सकता है? मेरा खयाल है कि यह प्रभाव तीन तरीको से पड सकता है। पहला तो यह कि स्वय हमारे ही लोगो पर यह प्रभाव पडेगा कि हम आजादी और जमहूरियत के वारे मे जो कुछ कहते है, उस पर यकीन नही किया जा सकता। इससे हमारे युद्ध-प्रयत्न की एकता और उसकी प्रगति कम हो जाएगी। दूसरा यह कि तटस्थ देशो मे, खासकर अमरीका मे, जहाँ वहुत से लोग भारत की समस्याओ मे गहरी दिलचस्पी रखते है तटस्थता की नीति और ब्रिटिश-विरोधी प्रवृत्तियो को प्रोत्साहन मिलेगा। तीसरा यह एक विरोधी और असहयोगी भारत। हमे यह न भूलना चाहिए कि भारत के इस रुख के परिणामस्वरूप सघर्ष के खतरे है। और इससे हमें अपनी कठिनाइयाँ सुलझाने मे मदद मिलने के वजाय सभवत रुकावटो का ही सामना करना पडेगा। इस वात का हमे उचित रूप से तथा ईमानदारी के साथ मुकावला करना होगा।

. . मेरा सुझाव यह था कि अगर हम यह दावा करते है कि हम लडाई प्रजातन्त्र और आजादी के लिए लड रहे है और वही चीज हम ब्रिटिश साम्राज्य के एक हिस्से पर लागू नही करते तो भारतीय जनता कहेगी कि "यह एक और उदाहरण है जब ब्रिटेन ने कहा कुछ है और किया कुछ और ही है।" इसलिए मेरे खयाल से हमे यह फैसला करना है कि क्या हम वास्तव मे भारत की जनता को स्वराज्य देना चाहते है—और मुझे यकीन है कि अगर हमने ऐसा ही किया तो वह देश हमारा एक शक्तिशाली सहयोगी राष्ट्र वन जाएगा और भविष्य मे सदा के लिए दोस्ती का हाथ वटाएगा।

काग्रेस ने हमसे अपने युद्ध-उद्देश्यो और भारत के वारे मे अपने इरादो पर प्रकाश डालने को कहा है—ऐसी हालत मे हमारा क्या जवाव होना चाहिए? मेरा सुझाव है कि हमे यह फैसला अवश्य करना चाहिए और अभी करना चाहिए।

फ्रांस के पतन का प्रभाव

इसके वाद ५ जून को यह घोषणा की गई कि ब्रिटिश-राजदूत ने मो० मोलोतोव को सूचित कर दिया है कि ब्रिटिश सरकार का इरादा सर विलियम सीड्स

की जगह सर स्टैफर्ड क्रिप्स को मास्को मे ब्रिटिश-राजदूत नियुक्त करने का है और उनका पद साधारण राजदूत का होगा, जिसे कोई असाधारण कार्य न करना होगा। रूसी सरकार को इस पर कोई आपत्ति नही थी। सर स्टैफर्ड क्रिप्स की नियुक्ति ब्रिटिश राजनीति का एक महान् आश्चर्य था। ३९ की सर्दियों मे वह कलकत्ता देखने गए और वहा से चुगकिग गए और हवाई जहाज से चीन का दौरा करके मास्को होते हुए इगलैण्ड वापस पहुचे। मई के अन्तिम सप्ताह और जून १९४० के पहले सप्ताह मे भारत मे जो बेचैनी और आन्दोलन देखने मे आया उसका वास्तविक कारण उस समय फ्रास मे होने वाली घटनाओं और युद्ध की प्रगति की प्रतिक्रिया था। फ्रास उस समय युद्ध का प्रधान केन्द्र बन चुका था। वहा कालचक्र बडी तेजी से चल रहा था। डेजिग का पतन, चेकोस्लोवाकिया की पराजय, पोलैण्ड का विनाश, हालैण्ड, बेल्जियम और नार्वे का आक्रमण—ये सभी युद्ध की उस प्रगति की शृखलाएँ थी, जिसकी इतिश्री १४ जून को जाकर फ्रास के पतन के रूप मे हुई। १४ जून को काग्रेस की कार्यसमिति का जलसा हो रहा था और फ्रांस के पतन की खबर १५ और १६ जून को रेडियो के जरिये जनता तक पहुची। अब आगे क्या होगा? हिटलर को रोका नही जा सकता था? इंग-लैंड पर आक्रमण उसके दिमाग मे उस समय चक्कर लगा रहा था। फ्रास के पतन से उसकी डीग और बन्दर-भभकियों को और भी प्रोत्साहन मिला। अगर इग-लैण्ड पर आक्रमण होता है तो भारत की स्थिति क्या होगी? पिछले १५० वर्षो से भारत इगलैण्ड के साथ बधा हुआ था। काग्रेस के लिये अपनी स्थिति के बारे मे इतना अधिक सोचने की आवश्यकता नही थी, जितना कि इस बात पर जोर देने की थी कि भारत का ध्येय पूर्ण स्वाधीनता है। एक सप्ताह तक के गहरे सोच-विचार के बाद काग्रेस ने एक प्रस्ताव पास किया जिसमे बहुत से महत्वपूर्ण विषय उठाए गये।

कार्यसमिति के निश्चय

काग्रेस कार्यसमिति ने फैसला किया कि उसकी बैठके थोडी-थोडी देर बाद हुआ करेंगी। उसने अपने सदस्यो को हिदायत की कि वे शीघ्र बुलाए जाने के लिए हमेशा तैयार रहा करे। इसके अलावा कार्यसमिति ने जुलाई, १९४० के अन्त मे अखिल भारतीय महासमिति की बैठक बुलाने का भी फैसला किया। इन बातों का लोगो पर बडा प्रभाव पडा और उन्होने स्थिति की गम्भीरता का अनु-भव किया। इस बीच काग्रेस अपनी अधीनस्थ सभी कमेटियों को सगठन का काम जोरो से चालू रखने और अपनी परीक्षा के समय के लिए प्रारम्भिक तैयारियाँ करने के लिए प्रोत्साहित करती रही। बडी सख्या मे प्रतिज्ञापत्र जारी किये गये और कार्यसमिति ने अपनी ओर से श्री आर० एस० पण्डित को स्वयसेवक-आन्दो-

लन की प्रगति के सम्बन्ध मे पूरी-पूरी और वास्तविक जानकारी हासिल करने के लिए सभी प्रान्तों का दौरा करने का आदेश दिया। कांग्रेस-संगठन के अन्तर्गत अनुशासन बनाये रखने के सम्बन्ध मे अधीनस्थ समितियो से पाक्षिक रिपोर्ट भेजने को कहा गया। खादी को प्रोत्साहन देने, हरिजनो और अल्पसंख्यको के साथ घनिष्ठ संपर्क-स्थापन, कांग्रेस कमेटियो के दफ्तरो की कार्यकुशलता, सत्याग्रह की तैयारी के सम्बन्ध में कांग्रेस के सदस्यो और जनता की प्रतिक्रिया, इस दिशा में मातहत कमेटियो और स्थानीय संस्थाओ के सहयोग, प्रचार-कार्य और प्रान्तो के ट्रेनिंग कैम्पो (शिक्षण-शिविरो) के सम्बन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त करने के लिए एक विस्तृत प्रश्नावली जारी की गई।

यूरोप की लडाई में जो आश्चर्यजनक घटनाएं घट रही थीं उन्हे देखते हुए कांग्रेस महासमिति की बैठक बुलाना आवश्यक हो गया था। इसके अलावा कांग्रेस कार्य-समिति ने जो नया कदम उठाया था उसकी भी उसे स्वीकृति लेनी थी और खास कर रामगढ के प्रस्ताव को ध्यान मे रखते हुए उसे इस समस्या के विभिन्न पहलुओ की फिर से जाच-पडताल करनी थी। इसलिए कार्यसमिति को अपनी बैठक ३ जुलाई को दिल्ली में बुलानी पडी।

दिल्ली मे पुरानी कठिनाइया फिर से नये रूप में और नये जोर मे प्रकट हुई। गाधीजी अहिंसा के प्रश्न को फिर से सामने लाए। उन्होने समिति का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया कि २१ जून को वर्धा मे उसने जो वक्तव्य दिया था उससे कांग्रेसजनो मे भ्रम फैला हुआ है। इसलिए गाधीजी चाहते थे कि कार्यसमिति फिर से यह ऐलान करे कि जहा तक अन्दरूनी फसाद का सवाल है उसका मुकाबला करने के लिए वह सिर्फ अहिंसा और कांग्रेस के अनुशासन मे बंधे हुए कांग्रेस के स्वयसेवको पर ही आश्रित रहेगी और हमारे स्वयसेवक सिविक गार्डो तथा अन्य ऐसे ही संगठनो से केवल अहिंसा के आधार पर ही सहयोग करेंगे। जहा तक बाहरी हमले के मुकाबले का सवाल है, गाधीजी का विचार था कि इससे पहले इस प्रश्न पर विचार करने का कांग्रेस को कभी मौका नही मिला था, परन्तु यह खयाल करके कि यूरोप के राष्ट्र हिंसा के बल पर अपनी रक्षा करने मे असमर्थ साबित हुए है, कांग्रेस का फर्ज हो जाता है कि वह इस बारे मे भी कोई फैसला करे। जब तक ऐसा मौका न आये कांग्रेस को सारी स्थिति पर खुले दिमाग से सोच-विचार करना चाहिये। इसका मतलब यह था कि कांग्रेसी सैनिक ट्रेनिंग या उन कार्रवाइयो मे भाग न ले जिनका उद्देश्य भारत को लडाई के लिए तैयार करना था।

वर्धा की तरह दिल्ली मे भी स्वयं गाधीजी ने एक प्रस्ताव का मसविदा तैयार किया, लेकिन इस बार भी उनके प्रस्ताव की जगह ७ जुलाई, १९४० को एक नया प्रस्ताव पास किया गया। कांग्रेस कार्यसमिति ने सारी स्थिति की फिर से

समीक्षा करते हुए अनुभव किया कि इस समय ब्रिटेन और भारत को जिन समस्याओं का सामना करना पड रहा है उन्हे सुलझाने का एकमात्र उपाय ब्रिटेन-द्वारा भारत की पूर्ण स्वाधीनता की स्वीकृति है और इसे तत्काल कार्य-रूप मे परिणत करने के लिए उसे केन्द्र मे एक अस्थायी राष्ट्रीय सरकार कायम करनी चाहिये, जो यद्यपि एक अस्थायी साधन के रूप मे बनाई जाए, तो भी वह इस तरह से स्थापित की जाय कि उसे केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के सभी निर्वाचित वर्गो का विश्वास प्राप्त रहे और इसके अलावा प्रान्तों की जिम्मेदार सरकारो का सहयोग भी उसे मिलता रहे।" कार्यसमिति ने ऐलान किया कि अगर इन उपायों को अपनाया गया तो काग्रेस देश की रक्षा के लिए प्रभावशाली सगठन मे पूरा-पूरा सहयोग देने को तैयार हो जायगी। इस प्रस्ताव के सम्बन्ध मे जितनी बार गलत-फहमियाँ फैली और उसका गलत अर्थ किया गया, उतनी ही बार उनका फिर से विश्लेषण करना भी आवश्यक हो गया।

मौलाना आज़ाद और जिन्ना साहब

अब हम कुछ देर के लिए अपने मुख्य विषय को छोडकर एक और विषय उठाना चाहते हैं। जुलाई के पहले सप्ताह से पूर्व दिल्ली मे पज़ाब और बगाल के प्रधान मन्त्रियों तथा काग्रेसी नेताओं के बीच कुछ बातचीत हुई। स्वय मौलाना आजाद सर सिकन्दर से मिल चुके थे। श्री जिन्ना ने इसका विरोध किया और यह कहा कि लीग की वर्किंग कमेटी के पीठ-पीछे प्रधानमन्त्रियो को बातचीत करने या सुलह-सफाई करने का कोई अधिकार नही है और न उन्हे इसकी इजाजत ही दी जा सकती है। इन परिस्थितियों मे काग्रेस के प्रधान की हैसियत से मौलाना साहब ने श्री जिन्ना को एक तार भेजने का साहस किया और उनसे प्रार्थना की कि वह इसे गोपनीय समझे। परन्तु श्री जिन्ना ने उसका तुरन्त उत्तर देकर दोनो तार अखबारो को प्रकाशनार्थ दे दिये। दोनो तार नीचे दिये जाते है।

श्री जिन्ना के नाम मौलाना आजाद का तार यह था—"मैंने आपका जुलाई का वक्तव्य पढा है। दिल्ली के प्रस्ताव मे काग्रस ने जिस राष्ट्रीय सरकार का जिक्र किया है उससे उसकी मुराद निश्चित रूप से सयुक्त मन्त्रिमण्डल है, किसी दल विशेष की सरकार नहीं। लेकिन क्या लीग की स्थिति यह है कि वह दो राष्ट्रो के सिद्धान्तो पर आश्रित सरकार को छोडकर कोई और अस्थायी सरकार बनाना स्वीकार नही कर सकती? अगर यह बात ऐसी ही है तो कृपया तार द्वारा इसे स्पष्ट कर दीजिए।"

श्री जिन्ना ने यह उत्तर दिया—"मुझे आपका तार मिला। मैं इसे गोपनीय नहीं रख सकता। चूंकि आप पूरी तरह से मुस्लिम भारत का विश्वास खो बैठे हैं, इसलिए मैं आपसे पत्र-व्यवहार-द्वारा या किसी और तरीके से कोई बातचीत

करने को तैयार नही हूँ। क्या आप यह महसूस नही कर सकते कि आपको काग्रेस का प्रधान महज एक दिखावे के रूप मे वनाया गया है, जिससे कि काग्रेस का स्वरूप राष्ट्रीय नजर आए और वाहरी मुल्को को धोखा दिया जा सके ? आप न तो मुसलमानो के प्रतिनिधि है और न हिन्दुओ के ही। आप दोनो मे से किसी का भी प्रतिनिधित्व नही करते। काग्रेस एक हिन्दू सस्था है। अगर आप में आत्मसम्मान की भावना है तो आप फौरन इस्तीफा दे दे। अव तक आपने लीग के खिलाफ अपना पूरा जोर लगाया है। आप जानते है कि आप इसमे वुरी तरह असफल रहे है। अव आप इसे छोड दीजिए।"

महासमिति की वैठक

पूना मे काग्रेस महासमिति ने केवल ७ जुलाई १९४० के दिल्ली-प्रस्ताव का ही समर्थन किया और यह स्पष्ट किया कि यद्यपि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के निमित्ति लडी जानेवाली लडाई मे काग्रेस अहिसा के सिद्धान्त पर कडाई से अमल करती रहेगी, फिर भी मौजूदा हालतो मे वह भारत की राष्ट्रीय रक्षा के मामले मे इस सिद्धान्त को लागू नही कर सकती। महासमिति ने इस वात पर भी जोर दिया कि काग्रेस का सगठन अहिसा के आधार पर ही जारी रहना चाहिये और काग्रेस के सभी स्वयसेवक अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अपने कर्तव्य का पालन करते समय अहिसा पर चलने को बाध्य है और इस सिद्धात के अलावा किसी और सिद्धात पर काग्रेस का कोई भी स्वयसेवक-सगठन नही कायम हो सकता। आत्मरक्षा के लिए और भी ऐसे जो स्वयसेवक-सगठन होगे और जिनके साथ काग्रेस को सहयोग करना होगा—उन्हे भी अहिसा पर दृढ रहना होगा। इस सम्बन्ध मे काग्रेस कार्यसमिति ने देश की राजनैतिक स्थिति पर वर्धा मे एक उपयुक्त वक्तव्य प्रकाशित किया था। जिसे पूना मे काग्रेस महासमिति के अधिवेशन के समय सदस्यो मे व्यापक रूप से प्रचारित किया गया था।

पूना मे कार्यसमिति का प्रस्ताव कोई सुगमता से नही पास हो गया था। प्रस्ताव के हक मे ९७ और उसके खिलाफ ६३ वोट पडे। विरोधियो मे कुछ उल्लेखनीय नाम ये है वावू राजेन्द्र प्रसाद, डा० प्रफुल्ल घोष, आचार्य कृपलानी श्री शकरराव देव और श्री हरेकृष्ण मेहताव। राजेन्द्रबाबू ने प्रस्ताव के विरोध मे भाषण दिया।

कार्यसमिति के मत-भेद के बारे मे और जिस तरीके से यह प्रस्ताव महासमिति मे पास हुआ था उसके सम्बन्ध मे अनावश्यक रूप से कोई वात गुप्त नही रखी गई थी। विभिन्न दल खुले रूप मे सामने आए। यदि रायवादियो का नारा बिना शर्त सहयोग का था तो श्री राजगोपालाचारी शर्त के साथ सहयोग देने के पक्ष मे थे। यदि पडित जवाहरलालजी कुछ शर्तों पर नैतिक सहयोग के पक्षपाती

थे तो गाधीजी बिना शर्त के नैतिक सहायता के। वह स्वय पूना मे नही आए थे। लेकिन पूना के बाद उन्होने विशुद्ध अहिसा के पक्षपातियो और शेष लोगो का अन्तर स्पष्ट रूप से बताया था।

गांधीजी का कांग्रेस से संबंध-विच्छेद

जब पूना मे दिल्ली का प्रस्ताव पास हुआ तब देश भर मे खलबली मच गई और आत्मनिरिक्षण किया जाने लगा। एक तरफ तो वे लोग थे जिन्हे इस बात का सन्तोष था कि अहिसा की दुर्बोधता, उसकी आध्यात्मिकता और प्रतिदिन के जीवन की उसकी अवास्तविकता का अब देश की राजनीति मे कोई महत्व नही रह गया है। लेकिन देश की अधिकाश जनता को इस पर खेद हुआ। गाधीजी पिछले २० साल से देश का नेतृत्व कर रहे थे और उनके नेतृत्व मे देश ने दो ही दशको मे इतनी उन्नति करली थी जितनी दो शताब्दियो मे की जा सकती थी। उन्होने शक्तिशाली ब्रिटेन को भारतीय जनता से समझौता करने पर विवश कर दिया था। इसलिए अब इस नाजुक घडी मे उनका काग्रेस से अलग हो जाना देश को बहुत खेदजनक प्रतीत हुआ। लेकिन क्या 'वस्तुत. स्थिति ऐसी ही थी'? नही। अब भी देश को उनका नेतृत्व प्राप्त था। लेकिन यह समय तो एक नए युग का सदेश लेकर आया था। गाधीजी को पराजित नही होना पडा था, बल्कि उन्हे तो ससार के सामने एक नये रूप से प्रकट होना था। महान् पुरुषो के जीवन मे अक्सर ऐसे ही अवसर आया करते है, जब उन्हें कसौटी पर परखा जाता है। इस परिक्षा के साधन होते है बड़े-बडे खतरे और महान् अवसर। स्थायी नेतृत्व का रहस्य इसमे है कि नेता यह जानता हो कि बीच का मार्ग कब अख्तियार किया जाना चाहिये। वह यह जानता हो कि सयम से कैसे काम लेना है। अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए ३१ जुलाई, १९४० को गाधीजी ने जो लेख लिखा उसमे उन्होने कहा—"१९३४ मे बम्बई मे मै काग्रेस से इसलिए बाहर आया कि उसकी अधिक सेवा कर सकूँ। बाद कि घटनाओ ने साबित कर दिया कि मेरा काग्रेस से पृथक् होना उचित था। इस समय भी मै जो काग्रेस से अलहदा हुआ हूँ, उसका भी यही मकसद है।"

जिस प्रकार प्रकृति का एक ही स्पर्श सारे संसार को एकता के सूत्र मे पिरो देता है, उसी तरह ब्रिटिश नौकरशाही के एक ही स्पर्श ने सारे भारत को एक परिवार बना दिया था। ऐसे समय मे जब कि काग्रेस जैसी सुदृढ चट्टान मे एक मामूली-सा छिद्र हो जाने पर ऐसा खतरा प्रतीत हो रहा था कि वह एक बड़ा भारी दरार बन जाएगी—अर्थात् काग्रेस मे बहुत भारी मतभेद पैदा हो जाएगा—श्री एमरी ने कामन-सभा मे भारत की स्थिति के सम्बन्ध में श्री सोरेन्सेन के बहुत ही संगत प्रश्न का जो उत्तर दिया उससे सब की आँखे खुल गईं। श्री एमरी ने

भारत की परिस्थिति की गम्भीरता को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। उन्होने उसकी कोई कद्र ही नही की। परन्तु गाधीजी ने श्री एमरी को चुनौती देते हुए उनके इस दृष्टिकोण को गलत वताया। गाधीजी ने स्वय वताया कि काग्रेस से अलग हो जाने पर भी मेरा खयाल है कि जनता का एक वडा हिस्सा अव भी मेरा मार्ग-दर्शन चाहता है और वह तव तक चाहता रहेगा, जव तक कि मेरे लियें यह समझा जायगा कि मै हिन्दुस्तान के दूसरे किसी भी व्यक्ति की अपेक्षा सत्याग्रह की भावना का अधिक प्रतिनिधित्व करता हूँ। गाधीजी ने वताया कि ब्रिटिश इतिहास की इस अत्यन्त नाजुक घडी मे काग्रेस ने ब्रिटिश सरकार को परेशान न करने के खयाल से जिस सयम से काम लिया है उसका कम अन्दाजा लगाकर भारत-मत्री ने वडी भारी भूल की है। उनका खयाल था कि अगर यह सयम न रहे तो मुमकिन है कि आग भडक उठे और उसका कैसा असर पडे, यह कोई नही जान सकता। सत्याग्रह का शस्त्र ऐसा है कि उसका उपयोग अन्दरूनी कम-जोरियो के वावजूद किया जा सकता है। इसलिए सत्याग्रह को स्थगित करने का आखिरी उद्देश्य यह है कि ब्रिटिश सरकार को परेशान न किया जाय। लेकिन काग्रेस के इस सयम की भी एक हद है। काग्रेसियो मे यह शक वढता जा रहा है कि ब्रिटिश सरकार काग्रेस के इस सयम का फायदा काग्रेस को कुचलने के लिए उठा रही है। उदाहरण के तौर पर वे वडी सख्या मे काग्रेसियो की गिरफ्तारियो की वात कहते है। गाधीजी ने आगे चलकर कहा, "अगर यह सावित हुआ कि मेरा यह सन्देह दृढ आधार रखता है तो दुनिया की कोई भी ताकत मुझे किसी-न-किसी रूप मे सत्याग्रह शुरू करने से नही रोक सकती। लेकिन यह मेरी प्रार्थना और कोशिश है कि उसे तब तक वचाऊँ जव तक ग्रेट ब्रिटन पर से विपदाओ के वादल न उठ जायँ।"

वाइसराय का वक्तव्य

खतरे की इस घण्टी पर अपने विचार प्रकट किये हुए गाधीजी को अभी मुश्किल से एक हफ्ता हुआ होगा कि वाइसराय महोदय ने ८ अगस्त का अपना प्रसिद्ध वक्तव्य प्रकाशित कर दिया। इसकी एक अग्रिम प्रति उन्होने ४ अगस्त को उटकमड से काग्रेस-प्रधान को भेज दी थी और २० अगस्त के लगभग उन्हे मुलाकात करने का निमत्रण दिया था। यह वक्तव्य बहुत वडा और विस्तृत था। इसमे विभिन्न राजनैतिक नेताओ से मुलाकात करने और सम्राट् की सरकार से सलाह-मशवरा करने के वाद कुछ प्रतिनिधिक भारतीयो को अपनी शासन-परिषद् मे शामिल होने का निमत्रण देने और एक युद्ध सलाहकार परिषद् की स्थापना करने की वात कहकर उन्होने अल्पसख्यको और उचित समय आने पर ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डल के अन्तर्गत नयी वैधानिक योजना बनाने के सम्बन्ध मे की जाने वाली

व्यवस्था पर प्रकाश डाला। वाइसराय का वक्तव्य अप्रत्याशित था। इससे नरम और उदार दलवालो को सन्तोष हुआ, पर काग्रेस को नही। अगर केन्द्र मे राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हो, प्रांतो मे फिर से मंत्रिमण्डल स्थापित हो जाय, विधान-परिषद् की माग मान ली जाय, ब्रिटिश सरकार तुरन्त ही उसका आयोजन करे और अगर देश की प्रजातत्रात्मक सरकार के सचालन मे अल्पसख्यको और राजाओ को भारत की भावी प्रजातत्रात्मक सरकार को रद करने का अधिकार न दिया जाय तो शायद काग्रेस इन प्रस्तावो पर सोच-विचार कर सके। लेकिन काग्रेस की यह स्थिति फ्रास के पतन से पहले की थी। अब फ्रांस के पतन के बाद जब कि साम्राज्यवाद कमजोर हो चुका था और काग्रेस स्पष्ट एव असदिग्ध शब्दों मे पूर्ण स्वतत्रता की घोषणा कर चुकी थी, वाइसराय महोदय एक ऐसी विधान-परिषद् का प्रस्ताव पेश करते है, जिसकी माग सितम्बर, ४२ मे की गई थी। जब उसकी माग की गई थी तब उसे ठुकरा दिया गया था। अब जब कि काग्रेस तत्काल पूर्ण स्वाधीनता की माग कर रही है तब वाइसराय महोदय स्वतत्र और बराबर की साझेदारी का राग अलापने लगे थे।

मौलाना आज़ाद और वाइसराय

वाइसराय ने मौलाना आजाद को इस बारे मे जल्दी ही जवाब भेजने से पहले—और अगर सभव हो सके तो २१ अगस्त से पहले-पहले—मुलाकात के लिए बुलावा भेजा, जिससे वह यह जान सके कि काग्रेस के लिए उनकी केन्द्रीय सरकार और युद्ध सलाहकार परिषद् मे शामिल होना सभव हो सकेगा अथवा नही। उन्होने लिखा, "मेरा खयाल है कि काग्रेस की ओर से कोई नियमित जवाब भेजने से पहले शायद आपके लिए इस सम्बन्ध मे मुझसे और बातचीत करना सुविधाजनक हो।" वाइसराय चाहते थे कि जितनी जल्दी हो सके इन फैसलो को अमल मे लाया जाय। उन्होने बताया कि मेरा खयाल अगस्त के अन्त या सितम्बर के मध्य तक इन दोनो सस्थाओं मे लिये जानेवाले व्यक्तियो के नामों की घोषणा कर देने का है। काग्रेस के प्रधान ने वाइसराय से पूछा कि जब सरकार ने पहले से ही एक निश्चित योजना पर अमल करने का फैसला कर लिया है तब फिर उस हालत मे और बातचीत करने से लाभ क्या होगा? इसके जवाब मे वाइसराय ने लिखा—"सम्राट् की सरकार की नीति मेरे वक्तव्य मे स्पष्ट रूप से निर्धारित कर दी गई है। मुझे आशा है कि काग्रेस के लिए इन शर्तो के अन्तर्गत मेरे साथ केन्द्रीय सरकार और युद्ध सलाहकार परिषद् मे शामिल होना सभव हो सकेगा।" इसके साथ ही उन्होने दुबारा उन्हे निमंत्रण देते हुए लिखा—"अगर अपना निश्चित जवाब भेजने से पहले आप इस विषय पर और बातचीत करना चाहे तो कर सकते है।" ८ अगस्त की घोषणा की शर्तो के अन्तर्गत काग्रेस के

प्रधान न कोई और वातचीत करना लाभदायक नही समझा। चूकि इस घोषणा मे राष्ट्रीय सरकार का तो कोई उल्लेख तक भी न था, इसलिए मौलाना साहव ने यह निमत्रण अस्वीकार कर दिया।

वाइसराय के वक्तव्य और काग्रेस के प्रधान के वीच उनके पत्र-व्यवहार के कुछ देर बाद ही भारत-मत्री ने १४ अगस्त को पार्लमिण्ट मे एक घोपणा की। वाइसराय की ८ अगस्त वाली घोषणा और पार्लमिण्ट मे भारत-मंत्री के वक्तव्य पर अगर एक साथ विचार किया जाय तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेगे कि ये दोनो घोपणाए भारत की राजनैतिक परिस्थिति, उसके वैधानिक पहलू और केन्द्रीय सरकार के तत्काल पुर्नानिर्माण के सम्बन्ध मे एक अधिकृत निर्णय के रूप में थी। पहली वार ब्रिटिश सरकार ने अपने ऊपर लगाया जानेवाला यह आरोप स्पष्ट कर दिया कि वह जवतक उसका वस चलेगा सत्ता हस्तान्तरित नही करेगी। इसका तो साफ मतलव यह हुआ कि मौजूदा नौकरशाही और गैर-जिम्मेवार हुकूमत तवतक जारी रहेगी जवतक कोई भी दल या राजे (अपनी प्रजा को छोडकर) अथवा विदेशी स्वार्थ भी भारतीय जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियो द्वारा बनाए गए किसी भी विधान पर आपत्ति उठाते रहेंगे। १८ अगस्त, १९४० को वर्धा मे कार्यसमिति की जो बैठक हुई उसके फैसले का यही तत्त्वमात्र था। एक वार फिर गाधीजी और कार्य-समिति को एक कडी परीक्षा मे से गुजरना पडा।

गांधीजी के नेतृत्व की मांग

पूना के बाद की परिस्थिति और सरकारी ऐलान वास्तव मे इतने सरल न थे, जितने कि ऊपर से दिखाई देते थे। समय-समय पर पेचीदा और जटिल समस्याओ का खडा हो जाना अनिवार्य था। यह सच है कि भारतीय माग को घृणापूर्वक ठुकरा दिया गया था और जिन लोगो ने यह माग की थी और जिन्होने इस पर आपत्ति उठाई थी, वे सभी व्यग्रता से गाधीजी की ओर देख रहे थे। इसलिए सर्वथा स्वाभाविक था कि इस सम्बन्ध मे उनकी सलाह ली जाती। इसी प्रकार यह भी सर्वथा स्वाभाविक था कि गाधीजी यह महसूस करते कि उनके लिये नये वातावरण मे ऐसी सलाह देना असभव था।

आप पूना-प्रस्ताव की उपेक्षा कर सकते है। लेकिन जबतक यह प्रस्ताव कायम था, राष्ट्रीय सगठन को बढाने की शक्ति का कायम रहना सभव न था। गाधीजी का दृढ विचार था कि उक्त प्रस्ताव वर्धा, दिल्ली और पूना मे की गई भारी गलती या भूल का परिणाम था। वह जान-बूझकर पूना मे काग्रेस महासमिति की बैठक मे नहीं शामिल हुए, क्योकि वह नही चाहते थे कि उनके कारण उन लोगो पर किसी किस्म का दबाव पडे। अत पूना के प्रस्ताव मे आवश्यक परिवर्तन किये बिना उनके लिए कार्यसमिति का मार्ग-प्रदर्शन करना कठिन था।

सारी स्थिति को ध्यान मे रखते हुए हर एक ने यह महसूस किया कि गाधीजी को इस वारे में पूरी आजादी देनी चाहिये और इसके लिए शायद वे कार्यसमिति से अपने प्रस्ताव मे सशोधन करने को कहे। लेकिन यह भी महसूस किया गया कि यह सशोधन नयी कार्यसमिति को करना चाहिये, क्योकि वर्तमान कार्यसमिति के अधिकाश सदस्य पूना प्रस्ताव के समर्थक थे।

कमेटी के सामने कई रास्ते थे। एक रास्ता यह था कि कार्यसमिति को स्थगित करके सारा काम गांधीजी को सौप दिया जाय, दूसरा यह कि जो लोग कार्य-समिति से पृथक् हो जाए, उनकी जगह ऐसे नये सदस्य लिए जाएँ जिन्हे उनपर विश्वास हो। एक और कठिनाई यह थी कि सत्याग्रह किस वात को लेकर शुरू किया जाय? गाधीजी आजादी को इसका केन्द्र-विन्दु नही वनाना चाहते थे। वह तो यह चाहते थे कि सारी वात उन्ही पर छोड दी जाय और यह फैसला वही करे कि सत्याग्रह शुरू करने का तात्कालिक कारण क्या हो। वह किस विना पर छेडा जाय। देश की स्थिति गम्भीर थी। जो नौजवान काग्रेस के स्वयसेवक होते और उसके कार्य मे प्रमुख भाग लेते थे, उन्हे सैकडो की तादाद मे जेल मे ठूसा जा रहा था। कोई दो हजार से ऊपर नवयुवक जेल मे जा चुके थे। सभी जगह मजदूर-संगठन का काम करनेवालो को पकडा जा रहा था। सम्मेलनों पर प्रति-वन्ध लगाए जा रहे थे। लोगों को घरों मे नजरवन्द रखना आम वात हो गई थी। इन आदेशो का कडाई से पालन किया जा रहा था। लोग धडाधड गिरफ्तार हो रहे थे और राजवन्दियो को विना मुकदमा चलाए नजरवन्द किया जा रहा था। जिलो मे लोगो पर इस तरह के प्रतिवन्ध लगाए जा रहे थे—(१) उन्हे प्रति सोमवार कोतवाली मे हाजिरी देनी पडती थी, (२) उन्हें किसी राजद्रोहात्मक आन्दोलन या युद्ध-विरोधी प्रचार मे भाग लेने की इजाजत नही थी, (३) किसी स्कूल या कालेज के विद्यार्थियो से किसी तरह की वातचीत, पत्र-व्यवहार या सपर्क नही रख सकते थे, (४) किसी तरह की सभा मे शरीक नही हो सकते थे, और (५) अगर एक जगह से दूसरी जगह जाना हो तो रवाना होने से कम-से-कम २४ घण्टे पहले उसकी इत्तला पुलिस-थाने मे और इसके साथ ही समय की भी सूचना देनी पडती थी। २ जुलाई, १९४० को स्वय सुभापचन्द्र वोस को भारत-रक्षा कानून के मातहत कलकत्ता मे एल्गिन रोड पर स्थित उनके घर से गिरफ्तार कर लिया गया था। इस तरह परिस्थिति को वरदाश्त करना मुश्किल हो गया था।

महासमिति की वैठक

इस गभीर परिस्थिति पर सोच-विचार करने के लिए १५ सितम्वर को वम्वई मे काग्रेस महासमिति की एक वैठक वुलाई गई। १५ और १६ सितम्वर, १९४०

को बम्बई मे काग्रेस महासमिति ने पिछले दो महीनो मे देश की जो हालत हो गई थी उस की समीक्षा की और यह घोषणा की कि दिल्ली का प्रस्ताव जिसकी स्वीकृति पूना मे दी गई थी, अब अमल में नही रहा और वह खत्म हो गया। इसके साथ ही समिति ने यह भी कहा कि काग्रेस ने अब तक स्वय अपने ऊपर जो प्रतिबन्ध लगा रखा था—जिस सयम से वह चल रही थी, उसका मतलब यह नही था कि वह अपनी हस्ती ही मिटा देना चाहती है। काग्रेस का यह इसरार है कि अहिसा के अनुसार अपनी नीति पर चलने की उसे पूरी आजादी रहे, परन्तु काग्रेस की यह मर्जी नही है कि मजबूरी की हालत मे भी वह अपना अहिसात्मक विरोध उस हद के पार ले जाय जितनी आजादी की रक्षा के लिए आवश्यक है।

इस प्रकार सितम्बर के मध्य मे भारत के इतिहास मे एक नया अध्याय शुरु हो रहा था। लडाई को शुरु हुए एक साल और १५ दिन हो चुके थे। हर सभव कोशिश की गई थी कि ब्रिटेन की मुसीबत के दिनो मे कोई सग्राम न शुरू किया जाय, यहा तक कि गाधीजी के नेतृत्व की भी उपेक्षा कर दी गई थी। आखिर यह प्रतिज्ञा पूना मे तोड दी गई, परन्तु उसका फल अभी सामने नही आया था। अब सिर्फ यह बाकी रह गया था कि फिजूलखर्च पुत्र अपने विवेक और अपनी काबलियत का गर्व गवाकर खाली हाथ और पछताता हुआ, विश्वसनीय होकर और मिन्नतें करता हुआ फिर से अपने पिता के पास वापस चला आए। दुनियावी विचारों मे फसी हुई सन्तान अपने पिता की चेतावनी या डाट-डपट को बहुत अधिक नैतिक समझ सकती है, लेकिन उनकी बेवकूफी या भूल जल्दी ही भुला दी जाती है। अगर इस बात की आम चर्चा न हुई होती कि गाधीजी फिर से सेनापति बन रहे है और जल्दी ही ब्रिटेन के खिलाफ लडाई शुरू हो जायगी तो बम्बई मे बहुत अधिक खीचातानी हुई होती। अब सिर्फ राष्ट्र को अपने अटूट आज्ञापालन का परिचय देना होगा।

कार्यसमिति का निश्चय

उक्त परिस्थितियो मे कार्यसमिति ने दो महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किये, एक सविनय अवज्ञा के स्थगित करने के सम्बन्ध मे और दूसरा केरल प्रान्त की परिस्थिति के बारे मे। कार्यसमिति चाहती थी कि उसके सत्याग्रह शुरू करने से पहले देश मे पूरी शान्ति और व्यवस्था कायम रहे और वातावरण अहिसात्मक बना रहे। लेकिन १५ सितम्बर को केरल मे पुलिस के एक सब-इस्पेक्टर को पत्थरो से मार डाला गया था। इस घटना के कारण काग्रेस बहुत अधिक परेशान थी। इसलिए उसने केरल प्रान्तीय काग्रेस कमेटी के खिलाफ अनुशासन-भग की शिकायतो और १५ सितम्बर को सभाओ मे जो गडबड हुई थी, उसकी जाच-पडताल करने के लिए एक समिति वहाँ भेजनी आवश्यक समझी। आगे कार्य-समिति ने सभी काग्रेस-सगठनो से आग्रह

किया कि वे "सविनय अवज्ञा"—चाहे वह व्यक्तिगत हो या किसी और किस्म की—तव तक के लिए वन्द कर दें जव तक कि उन्हे गाधीजी की ओर से कोई निश्चित हिदायत न दी जाय। गाधीजी वाइसराय के साथ अपनी आगामी मुलाकात की सफलता के लिए इसे आवश्यक समझते थे। रजिस्टरशुदा और गैर-रजिटरशुदा काग्रेसजनो और काग्रेस से प्रेम रखनेवाले सभी स्त्री-पुरुषों के अनुशासन की कसौटी के रूप मे भी उन्हें यह आवश्यक प्रतीत होता था। वह मानते थे कि यदि सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू करना पडे तो उसकी सफलता के लिए थोडे समय तक आज्ञा-पालन की शिक्षा लेना वहुत जरूरी और अनिवार्य है।

१८

सत्याग्रह और उसकी प्रगति : १९४०-४१

गांधीजी का पत्र

ऐसे समय मे जव कि दुनिया भारी संहार और सर्वनाश में जुटी हुई थी, सिर्फ भारत ही एकमात्र ऐसा देश था जो शान्ति और सद्भावना का युगो पुराना सन्देश लिए सभ्य मानवता के वीच अपना सिर ऊँचा किये खडा था। ऐसे ही सुअवसर पर गाधीजी की ७२ वी शुभ वर्षगाँठ आई। ७१ वे जन्मदिन के अवसर पर गाधीजी ने लडाई छिडते ही हिटलर के नाम अपना प्रसिद्ध पत्र लिखा था। वह अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सालभर से भी अधिक समय तक कोशिश करते रहे और इस वीच उन्होने 'प्रत्येक अंग्रेज के प्रति' अपना प्रसिद्ध पत्र लिखा, जिसमें उन्होने कहा—"मेरा प्रत्येक अंग्रेज से, चाहे वह दुनिया के किसी भी हिस्से में क्यो न हो, निवेदन है कि वह राष्ट्रों के पारस्परिक सवधो और दूसरे मामलो का फैसला करने के लिए युद्ध का मार्ग छोडकर अहिंसा का मार्ग स्वीकार करे। आपके राजनीतिज्ञों ने यह घोषणा की है कि यह युद्ध प्रजातन्त्र के सिद्धान्त की रक्षा के लिए लडा जा रहा है। परन्तु मैं आपसे यह कहता हूँ कि इस युद्ध के समाप्त होने पर जीत चाहे जिस पक्ष की हो, प्रजातन्त्र का कहीं नामोनिशान भी न मिलेगा। यह युद्ध मनुष्य-जाति पर एक अभिशाप और चेतावनी के रूप में उतरा है। यह शापरूप है। आज तक कभी इन्सान इन्सानियत को इस कदर नहीं भूला था, जितना कि वह इस युद्ध के अन्दर मे भूल रहा है। आज

इन्सान की करतूतें हैवान को भी शर्मिन्दा कर रही है। मै प्रकृति की इस चेतावनी का अर्थ युद्ध छिडते ही समझ गया था। मगर मेरी यह हिम्मत नही होती थी कि मै आपसे कुछ कहूँ, किन्तु आज ईश्वर ने मुझे हिम्मत दे दी है और मौका भी अभी हाथ से निकल नही गया है। आप लोग नाजीवाद का विनाश करना चाहते हैं, मगर आप नाजीवाद की कच्ची-पक्की नकल करके उसका कभी नाश नही कर सकेगे। मै नही चाहता कि ब्रिटेन हारे। मगर मै यह भी नही चाहता कि वह पाशविक वल की परीक्षा मे जीते, भले ही वह पशुवल बाहुवल के रूप मे प्रदर्शित किया जाय या वुद्धि-वल के रूप मे। आपका बाहुवल तो जगत्प्रसिद्ध है। क्या आपको यह प्रदर्शन करने की जरूरत है कि आपका वुद्धिवल भी तवाही करने में सबसे ज्यादा शक्तिशाली है? मुझे आशा है कि आप लोग नाजियो के साथ इस किस्म के मुकाबले मे उतरना अपनी वेइज्जती समझेगे।

"मै दावा करता हूँ कि मै ब्रिटेन का आजीवन और नि स्वार्थ मित्र रहा हूँ। एक वक्त ऐसा था कि मै आपके साम्राज्य पर भी मुग्ध था। मै समझता था कि आपका राज्य हिन्दुस्तान को फायदा पहुँचा रहा है। मगर जव मैंने देखा कि वस्तुस्थिति ऐसी नही है, इस रास्ते से हिन्दुस्तान का भला नही हो सकता, तव मैंने अहिंसक तरीके से साम्राज्यवाद का सामना करना शुरू किया और आज भी कर रहा हूँ। मेरे देश की किस्मत मे आखिर कुछ भी लिखा हो, आप लोगो के प्रति मेरा प्रेम वैसे ही कायम है और रहेगा। मेरी अहिसा सार्वभौम है और वह सारे जगत् के प्रति प्रेम मागती है और उस जगत का आप लोग कोई छोटा हिस्सा नही है। आप लोगो के प्रति अपने प्रेम के कारण ही मैंने यह निवेदन किया है।"

व्यक्तिगत सत्याग्रह का आरंभ

गाधीजी के उक्त पत्र का अग्रेजो पर कोई प्रभाव नहीं पडा। उन्होने देखा कि लडाई की लपटे यूरोप मे दूर-दूर तक फैलती जा रही थी और इनके कारण ब्रिटेन का दिल भारत के प्रति नरम होने के बजाय और भी सख्त और कठोर होता जा रहा था। वह इतना निर्मम और निर्दय बनता जा रहा था, जिसकी कल्पना तक भी नही की जा सकती थी। ऐसी स्थिति मे देश धीरे-धीरे सत्याग्रह-सग्राम की तीसरी मजिल तक पहुँच गया और १७ अक्तूबर को सत्याग्रह-सग्राम की रणभेरी बज उठी। श्री विनोबा ने वर्धा से पाच मील दूर अपने निवास-स्थान पवनार गांव मे १७ अक्तूबर को युद्ध-विरोधी एक भाषण देकर सत्याग्रह का श्रीगणेश कर दिया। न तो सभा पर ही कोई रोक लगाई गई और न श्री विनोबा को ही पकडा गया। हा, इतना अवश्य हुआ कि देशभर के अखबारो को चेतावनी दे दी गई कि वे उनके भाषण अथवा उनके कार्यक्रम के बारे मे कोई समाचार न छापे। श्री विनोबा पैदल चलकर गाव-गाव मे भाषण देते रहे। आखिरकार

२१ अक्तूबर को उन्हे गिरफ्तार करके तीन महीने की सादी कैद दी गई। सजा पानेवाले दूसरे व्यक्ति पडित जवाहरलाल थे। जवाहरलाल ने प्रान्त के विभिन्न जिलो का दौरा अभी खत्म ही किया था। उन्होने मौजूदा परिस्थिति पर सभी तरह के बहुत से भाषण दिये। उन्हे वर्धा आने को कहा गया था जहाँ की वापसी पर उन्हे ३१ अक्टूबर, १९४० को गिरफ्तार कर लिया गया। जिस मजिस्ट्रेट के यहाँ उन पर मुकदमा चलाया गया, उसने उन्हे ४ साल की सजा दी। १७ नवम्बर को सरदार पटेल भी हिरासत मे ले लिये गये। उन पर कोई इलजाम नही लगाया गया और न मुकदमा ही चलाया गया। उन्हे गिरफ्तार करके अनिश्चित अवधि तक के लिए नजरबन्द कर दिया गया। देश के विभिन्न भागो मे सत्याग्रह करने वाले लोगो की भरमार थी। गाधीजी ने एक वक्तव्य निकाला, जिसमे उन्होने इस बात पर एक दफा फिर जोर दिया कि लोग नेताओ की गिरफ्तारी के बाद किसी किस्म का प्रदर्शन न करे। बाद के सप्ताह मे देश के विभिन्न भागो मे बहुत से प्रसिद्ध नेता गिरफ्तार कर लिये गये। बडे बड़े शानदार प्रदर्शन कही भी नही हुए।

नवम्बर के अन्त तक अधिकांश मत्री और पार्लमेंटरी सचिव तथा अखिल भारतीय महासमिति के बहुत से सदस्य जेलो मे जा चुके थे। नये वर्ष के प्रारभ मे काग्रेस के प्रधान पकड लिये गये। इसके अलावा इसी वर्ष जमीयत-उल-उलेमा ने भी सत्याग्रह आन्दोलन मे शरीक होने का फैसला कर लिया। उधर उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रात के प्रधान मत्री डा० खान साहब सत्याग्रह करने के अपराध मे गिरफ्तार कर लिये गये, पर बाद मे रिहा कर दिये गये। मध्य-प्रात मे सरकार ने स्त्री सत्याग्रहियो को गिरफ्तार करना बन्द कर दिया।

आन्दोलन शुरू होने से पहले प्रत्येक सूबे मे उसके सबध मे बडी सावधानी के साथ जाच-पडताल कर ली गई। ज्यो-ज्यो कार्यसमिति, व्यवस्थापिका सभाओ और अखिल भारतीय काग्रेस महासमिति के सदस्य अपने को गिरफ्तारी के लिए पेश करते रहे त्यो-त्यो आन्दोलन जोर पकडता गया। कुछ प्रातो मे सरकार ने सदस्यो को सत्याग्रह करने से पहले ही नजरबन्द कर दिया। श्री वल्लभ भाई, श्री भूलाभाई, श्रीमती सरोजिनी और बम्बई के भूतपूर्व मत्रियो, स्पीकर और बम्बई की कौंसिल के प्रधान—इन सभी व्यक्तियो को नजरबन्द कर दिया गया। मद्रास में वहाँ के मत्रियो ने सत्याग्रह किया और उन्हे दण्ड दिया गया। सिर्फ स्पीकर, चीफ पार्लमेंटरी सेक्रेटरी और चार-पाँच दूसरे व्यक्ति नजरबन्द कर लिये गये। इसी प्रकार संयुक्त-प्रात, मध्य-प्रात और बिहार मे भी कुछ मत्रियों को नजरबन्द कर लिया गया। आसाम और उडीसा मे उन्हे सजा दी गई, परन्तु उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रांत मे न तो मत्री और न कोई अन्य ही पकड़ा गया। राजेद्र बाबू चूकि बीमार थे, इसलिए उन्हे जेल जाने की इजाजत नही दी गई। जेल जाने के थोड़ी देर बाद

श्रीमती सरोजिनी देवी वीमार पड गईं, इसलिये उन्हे रिहा कर दिया। श्री कृपलानी काग्रेस के दफ्तर का काम करते रहे और निरन्तर गाधीजी की मदद करते रहे। वह देश का दौरा करते रहे और सत्याग्रह का मुख्य भार अपने कधो पर उठाते फिरे। उनकी पत्नी श्रीमती सुचिता देवी जेल चली गई। सन् १९४१ की गर्मियो मे श्री जमनालाल जी को सख्त वीमारी के कारण रिहा कर दिया गया। स्वयं राष्ट्रपति को अचानक गिरफ्तार करके सजा दे दी गई। वाकी का आन्दोलन विधिवत् चलता रहा और उसमे योजना के अनुसार प्रगति होती रही। स्वय गाधीजी जेल नही गये।

सन् १९४० समाप्त हो रहा था। युद्ध को चलते हुए १६ महीने हो चुके थे। इस दौरान मे यूरोप को महान् विनाश का सामना करना पडा। भारत अभी तक इस सर्वनाश से वचा हुआ था। युद्ध की भयकरता अभी हिन्दुस्तान तक नहीं पहुँच पाई थी। फिर भी एक गुलाम देश को—जिसे कहने और करने की कोई आजादी नही थी—लडाई में उसकी मर्जी के खिलाफ ढकेल दिया गया। भारत मे भरती का काम, धन-सग्रह और गोला-वारूद का उत्पादन पूरे वेग से होता रहा।

नरम दल - सम्मेलन

ब्रिटेन के खिलाफ काग्रेस की ओर से लडी जानेवाली इस लडाई के वडे नाटक के सवध मे हमे कुछ जरूरी घटनाओ का भी जिक्र करना है। इस नाटक के साथ हिन्दू-मुस्लिम समस्या का भी गहरा सवध है। यह समस्या काग्रेसी-मत्रिमण्डलो के इस्तीफे के वाद सामने आई, परन्तु इसके वाद से यह ज्यादा जोर पकड गई। डा० सप्रू ने मार्च मे इस सवध मे हस्तक्षेप करना शुरू किया। वह सरकार के विश्वस्त व्यक्ति थे। नमक-सत्याग्रह के समय जुलाई १९३० मे भी श्री सप्रू और श्री जयकर ने सरकार और काग्रेस मे समझौता कराने की कोशिश की थी। उसके वाद फरवरी और मार्च १९३१ मे गाधी-इरविन समझौते की वातचीत के समय भी आपने श्री जयकर और माननीय शास्त्रीजी के साथ मिलकर दोनो पक्षो मे समझौता कराने मे वडा महत्त्वपूर्ण भाग लिया था। इसलिए मार्च १९४१ मे उनके द्वारा फिर से समझौते की कोशिश करना कोई आश्चर्य की वात नही थी। उन्होने मार्च, १९४१ मे वम्वई मे नरमदल के नेताओ का एक सम्मेलन बुलाया। इसके वह सभापति थे। सम्मेलन ने एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास करके गवर्नर जनरल की शासन-परिषद के पुनर्निर्माण की जोरदार माग की और आग्रह किया कि इसमे (१) सभी भारतीय सदस्य लिये जाएँ तथा अर्थ और रक्षा विभाग भी भारतीयो के हाथो मे ही दे दिये जायँ, (२) युद्धकाल मे यह परिषद सामूहिक रूप से सम्राट के प्रति जिम्मेदार हो और (३) इसका दरजा वही हो जो अन्य स्वाधीनता-प्राप्त उपनिवेशो की सरकारो का है अर्थात् ब्रिटिश सरकार

की घोषणा कर देनी चाहिये कि लडाई खत्म होने के बाद एक निश्चित अवधि के अन्दर हिन्दुस्तान को पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य दे दिया जायगा।

हिन्दू-मुस्लिम-समस्या

उदार और नरमदली नेताओ के इस सम्मेलन के अलावा एक घटना और भी है जिसका जिक्र करना जरूरी हो जाता है। गाधीजी चूकि स्वतत्र थे और जेल नही गये थे—इसलिए सर तेजबहादुर सप्रू का उनसे और श्री जिन्ना से लिखा-पढी करना स्वाभाविक और सरल था। इसके अलावा वह अपने बम्बई-सम्मेलन को निर्दल सम्मेलन का रूप देने के लिए भी व्यग्र थे। वह श्री जिन्ना को अपने पक्ष में ले लेना चाहते थे और ऐसा करना उनके लिए न्यायोचित भी था।

डा० सप्रू ने यह काम "ट्वेन्टीयथ सेचुरी" नामक पत्रिका मे एक लेख लिखकर शुरू किया। इसमे भारत की वैधानिक समस्या का विवेचन करते हुए डा० सप्रू ने बताया कि साम्प्रदायिक प्रश्न के सम्बन्ध मे कोई समझौता करने की जिम्मेदारी स्वय भारतीयो की है। यह लेख पढने के बाद गाधीजी ने डा० सप्रू से कहा कि वह इस सम्बन्ध मे श्री जिन्ना से मिले। डा० सप्रू ने कहा कि यह अधिक अच्छा होगा अगर गाधीजी श्री जिन्ना से मिले और अगर वह (गाधीजी) चाहे तो मै इसका प्रबन्ध करने की कोशिश करूँ। परन्तु गाधीजी को आशका थी कि इस तरह अगर वह श्री जिन्ना से मुलाकात करे भी तो शायद उसका कोई फल न निकले, क्योकि श्री जिन्ना चाहेगे कि वह (गाधीजी) उनसे एक हिन्दू नेता की हैसियत से ही कोई बातचीत करे। इस सम्बन्ध मे श्री जिन्ना ने जो पत्र लिखा—उसकी बाते गाधीजी के लिए पहले से ही भाप लेना, निस्सदेह एक बडी बुद्धिमत्ता थी। कहने का मतलब यह है कि श्री जिन्ना ने (जैसी कि आशका की गई थी) डा० सप्रू के पास इसी आशय का एक पत्र लिखा। इस तरह यह योजना वही ठप्प हो गई।

श्री एमरी का भाषण

२२ अप्रैल को श्री एमरी ने कामन-सभा मे एक भाषण दिया जिसमे उन्होने विगत मार्च के बम्बई के निर्दल नेता-सम्मेलन के प्रस्ताव पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला। डा० सप्रू और उनके प्रस्तावो की प्रशंसा करने के बाद उन्होने प्रस्तावो को इस आधार पर नामजूर कर दिया कि उनके अनुसार वर्तमान सरकार मे सशोधन की बात न कहकर उसकी जगह नयी सरकार बनाने की बात कही गई थी और यह लडाई के दौरान मे सभव नही था। उनके फलस्वरूप आन्तरिक वैधानिक समस्याए पैदा हो जायँगी और भावी विधान के सम्बन्ध मे भी और नई समस्याएँ खडी हो जायँगी। आगे उन्होने कहा कि "मै यह बात बिना किसी प्रकार की अभद्रता के कहूँगा कि वाइसराय के प्रस्तावों पर अमल करना इसलिये मुल्तवी

नही किया गया कि उनकी निन्दा की गई है, वल्कि खास तौर पर इस वजह से कि मुसलमानो और हिन्दुओ के अपनी-अपनी स्थितियो के वारे में किये गये दावो मे कोई सामजस्य स्थापित करना कठिन है।" मार्च, १९४१ मे निर्दल नेताओ के इस सम्मेलन की समाप्ति पर श्री जिन्ना ने इसकी तुलना डच सेना से करते हुए कहा कि, "इसमे सभी सेनापति है—सिपाही एक भी नही।"—अर्थात् सम्मेलन में सभी नेता है—लेकिन उनके पीछे चलनेवाला या उनकी वात मानने वाला एक भी व्यक्ति देश मे नही है। उनके इस रुख से श्री एमरी को वडी मदद मिली और उन्होने कहा कि मुझे मालूम नही कि वास्तव मे वम्बई प्रस्ताव के समर्थक कौन लोग है।

श्री एमरी ने कामन-सभा को याद दिलाया कि वगाल, आसाम, सिन्ध और पजाव मे प्रान्तीय सरकारे अपना-अपना काम करती है और इन चारो प्रान्तो में ब्रिटिश भारत की कुल जनसख्या का तीसरा हिस्सा रहता है। वडे खेद की वात है कि शेप सात प्रान्तो के २०,००,००,००० निवासियो को काग्रेस के हाईकमाण्ड ने स्वायत्त शासन की परम्परा का जारी रखने की मनाही कर दी। भारत की वैधानिक प्रगति के सम्वन्ध मे ब्रिटिश सरकार की नीति का उल्लेख करते हुए उन्होने कहा कि सारे ही विधान मे सशोधन किया जा सकता है, वशर्ते कि भारतीयो मे आपस मे यह समझौता हो जाय कि वे अपने लिए किस किस्म का विधान चाहते है। युद्धकाल मे भारत-सरकार के ढाचे मे कोई परिवर्तन करना सभव नही है, परन्तु भारतीय नेताओ-द्वारा इसी समय आपस मे कोई प्रारम्भिक वातचीत शुरू करने मे कोई रुकावट नही पैदा हो सकती। श्री एमरी ने कहा, "मुझे डर है कि काग्रेस यह मानने को तैयार नही कि इस समय कोई और ऐसा विधान नही वन सकता जिसके अन्तर्गत समस्त भारत पर इतनी अधिक मात्रा मे नियत्रण रखा जा सके जितना कि भारत को वर्तमान विधान के अन्तर्गत प्राप्त है। इस दिशा मे हम एक महत्त्वपूर्ण लक्षण यह देख रहे है कि श्री जिन्ना की यह माग जोर पकडती जा रही है कि भारत के उत्तर-पश्चिमी और उत्तर-पूर्वी भागो को शेष भारत से पूर्णत पृथक् करके वहा पूर्ण रूप से स्वतत्र रियासते कायम कर दी जायँ जिन्हे रक्षा, विदेश और आर्थिक मामलो पर पूरा-पूरा नियत्रण प्राप्त हो।

"तथाकथित पाकिस्तान योजना के मार्ग मे जो वडी-वडी व्यावहारिक कठिनाइया है उनसे मेरा कोई सम्बन्ध नही है और न मै १८ वी सदी के भारतीय इतिहास के 'अन्धकारपूर्ण' पृष्ठो का उल्लेख ही करना चाहता हूँ। इसके अलावा आज हम अपनी आँखो के सामने देख रहे है कि वाल्कन राष्ट्रो की जनता को कितने भयकर परीक्षण मे से गुजरना पड रहा है, और इससे हम जान सकते है कि भारत की एकता को भग करने का कितना खतरनाक परिणाम हो सकता है।"

श्री एमरी ने खेद प्रकट किया कि नवम्बर मे वाइसराय को शासन-परिषद् की स्थापना के सम्बन्ध मे अपनी कोशिशे छोड देनी पडी; क्योकि मुस्लिम-लीग ने खास तौर पर हिन्दुओ के मुकाबले मे एक निश्चित प्रतिनिधित्व की माग की और भविष्य के लिए भी यही शर्त रखी। परन्तु वाइसराय महोदय ने उसे स्वीकार करने मे अपनी असमर्थता प्रकट की।

गांधीजी का वक्तव्य

कामन सभा मे श्री एमरी के भाषण के सम्बन्ध मे गाधीजी ने निम्नलिखित वक्तव्य दिया —

"भारत के सम्बन्ध मे कामन-सभा की लम्बी बहस पढकर मुझे दु ख हुआ। कहा तो ऐसा जाता है कि मुसीबत से लोगो के दिल नरम पड जाते है और वे सचाई का महत्व समझने लग जाते है, परन्तु साफ जाहिर है कि ब्रिटेन आज जिस भारी सकट मे से गुजर रहा है उसका श्री एमरी पर कोई प्रभाव नही है। ऐसा प्रतीत होता है कि उनका हृदय आज भी चिकनी-मिट्टी के घडे-जैसा बना हुआ है। उनके कान पर जू तक नही रेगती। उनकी इस निर्भयता को देखकर मेरी यह धारणा और भी दृढ हो जाती है कि चाहे काग्रेस को कितनी ही मुसीबते क्यो न झेलनी पडे, उसे अहिसा की नीति पर ृढता से अमल करना चाहिए। भारत की मौजूदा परिस्थिति के प्रति श्री एमरी ने जो अवहेलना प्रदर्शित की है उससे उन्होने ब्रिटेन की कोई मदद नही की। वह इस बात की बडी डीग हाक रहे है कि ब्रिटिश-राज ने भारत मे शान्ति स्थापना की है। क्या उन्हे मालूम नही कि अहमदाबाद और ढाका मे क्या हो रहा है? इन दोनो स्थानो पर शान्ति बनाये रखने की जिम्मेदारी किस पर है? मेरा खयाल है कि वह मुझे यह कहकर टालने की कोशिश न करेगे कि बगाल मे तो स्वायत्त-शासन कायम है। वह जानते है कि इस तरह की सकटपूर्ण परिस्थितियो मे इन कठपुतली मन्त्रिमडलो के हाथ मे कितनी ताकत रहती है, फिर चाहे ये मन्त्रिमण्डल काग्रेस के हो, लीग के हो अथवा किसी और दल के।

"श्री एमरी ने यह बात फिर दोहराकर भारतीय जनता का अपमान किया है कि भारत के राजनीतिक दलो के लिए आपस मे समझौता करने के अलावा और कोई चारा ही नही है और ब्रिटेन तो सिर्फ सयुक्त भारत की ही बात सुनेगा। मै बार-बार यह बात साबित कर चुका हूँ कि ब्रिटेन की यह परपरागत नीति रही है कि भारतीय दलो मे एकता न हो सके। ब्रिटेन का आदर्श सदा से यही रहा है कि लोगो मे फूट डालकर अपना राज बनाये रखे। भारतीयो की पारस्परिक फूट की जिम्मेवारी ब्रिटिश राजनीतिज्ञो की है और जब तक हिन्दुस्तान गुलाम रहेगा, यह भेदभाव और आपस की फूट भी बनी रहेगी। मै वादा करता हूँ कि अगर अग्रेज हिन्दुस्तान से चले जायँ तो काग्रेस, लीग और अन्य दल अपने हितो के खयाल

से एक-दूसरे से मिल जायँगे और खुद ही भारत के लिए अपने ढग की कोई मुनासिब सरकार बना लेंगे। हो सकता है कि हमारी यह सरकार वैज्ञानिक ढग की या पश्चिमी ढाचे की न हो, लेकिन यह निश्चित रूप से स्थायी होगी।

"मैंने जब भारत की समृद्धि के सबध मे उनका बयान पढा तब मुझे बडा आश्चर्य हुआ। भारत की जनता धीरे-धीरे मुफलिसी की ओर बढती जा रही है। उसे तन ढकने को कपडा और भरपेट खाना भी मयस्सर नही होता। इसकी वजह यह है कि देश पर एक ही आदमी की हुकूमत हे और वह लाखो का बजट तैयार करता है। मै दावे के साथ कह सकता हूँ कि यह बात हिन्दुस्तान की भूखी जनता की समृद्धि की सूचक न होकर इस बात की सूचक है कि आज हिन्दुस्तान ब्रिटेन के पैरो तले रौंदा जा रहा है। हर हिन्दुस्तानी का, जो हमारे किसानो की मुसीबत को जानता है, फर्ज हो जाता है कि इस स्वेच्छाचारी-शासन के खिलाफ बगावत का झण्डा खडा करे। सौभाग्य से हिन्दुस्तान की मानवता शान्तिपूर्ण है और मै उम्मीद करता हूँ कि इसी शान्तिपूर्ण तरीके से वह अपनी किस्मत का फसला करेगी और अपने पैदायशी हक को हासिल करेगी।"

शासन-परिपद का विस्तार

इसी बीच २२ जून को जर्मनी ने रूस पर आक्रमण कर दिया। फलत भारत की परिस्थिति का स्वरूप भी बदल गया। सरकार इस बात से बडी परेशान थी कि लडाई भारत के द्वार तक आ पहुँची थी। यद्यपि पार्लमेण्ट मे प्रति सप्ताह मजदूर-दलीय सदस्य, श्री एमरी को यह समझाने की कोशिश करते रहते थे कि अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति बदल गई है, इसलिए ब्रिटेन की भारतीय नीति में भी परिवर्तन होना आवश्यक है, परन्तु वह ऐसी बाते कब मानने वाले थे। २१ जुलाई को इन सात भारतीयो—सर सुलतान अहमद, सर होमी मोदी, सर अकबर हैदरी, श्री अणे, श्री एन० आर० सरकार, श्री राघवेन्द्र राव और सर फिरोजखा नून को वाइसराय की शासन-परिषद मे नियुक्त किए जाने की घोषणा की गई। इनके अलावा श्री रामस्वामी मुदालियर को भी इसमे शामिल कर लिया गया। इस प्रकार वाइसराय की शासन-परिषद् मे आठ भारतीय, तीन यूरोपियन सदस्य और प्रधान-मत्री हो गये और यह दावा किया गया कि इस शासन-परिषद् के विस्तार का उद्देश्य युद्ध-रत राष्ट्र के लिए कार्यकुशल सरकार की स्थापना करना है तथा ये परिवर्तन मौजूदा विधान के अन्तर्गत किये गये है और इनके कारण भविष्य के वैधानिक निर्णय पर जो राजनैतिक दलो के पारस्परिक समझौते से किया जाएगा—किसी किस्म का प्रतिकूल प्रभाव नही पडेगा।

शासन-परिपद के इस विस्तार और राष्ट्रीय सुरक्षा-परिषद् की स्थापना के पीछे काम करनेवाली नीति का स्पष्टीकरण करते हुए यह कहा गया कि उक्त

दोनों बाते महज युद्धकालीन आवश्यकताओ को ध्यान मे रखते हुए की गई है और इनका मकसद किसी राजनैतिक दल की माग को पूरा करना नही है। इस कार्रवाई के परिणामस्वरूप किसी भी राजनैतिक मांग को न तो ओझल ही किया गया है और न उसके विरुद्ध कोई कदम उठाया गया है। इसके साथ ही २२ जुलाई को भारत-मत्री श्री एमरी ने भारत और युद्ध की परिस्थिति के बारे मे पार्लमेण्ट मे एक श्वेत-पत्र उपस्थित किया। यह श्वेत-पत्र न्यूनाधिक रूप मे पिछले ग्यारह महीनो की घटनाओ का सिंहावलोकन और वाइसराय-द्वारा जारी की गई विज्ञप्ति की पुनरावृत्ति मात्र था।

विस्तार के प्रति प्रतिक्रिया

वाइसराय की शासन-परिषद् के विस्तार पर जो प्रतिक्रिया हुई वह बडी दिलचस्प थी। श्री जिन्ना इस बात से तिलमिला उठे कि वाइसराय ने स्वय लीग के प्रधान और उनकी कार्य-समिति से सलाह-मशविरा लिये बगैर ही उनके आदमियो से बातचीत की। उन्होने बगाल, पजाब और आसाम के प्रधान मत्रियो के खिलाफ अनुशासन-सम्बन्धी कार्रवाई करने की धमकी दी।

भारत की दलित जातियो के नेता डा० अम्बेदकर पर इसकी प्रतिक्रिया वड़ी आश्चर्यजनक हुई। उन्होने कहा—"मुसलमानो को लगभग हिन्दुओं जितना अर्थात् ४३ प्रतिशत प्रतिनिधित्व देकर ६ करोड दलितो का अपमान किया गया है। यह बहुत ही आश्चर्यजनक बात है। दलित वर्ग भारत के राष्ट्रीय जीवन का एक महत्त्वपूर्ण और प्रधान अग है। किसी भी वैधानिक परिवर्तन के लिए उसकी सहमति आवश्यक है। महामाननीय श्रीनिवास शास्त्री जैसे अनुभवी और कुशल व्यक्ति का कथन था कि मुझे तो इस घोषणा से कोई लाभ होता नजर नही आ रहा है। सरकार ने न तो अपनी स्थिति ही सुदृढ बनाई और न किसी भी अंश मे जनता की माग ही पूरी करने का प्रयत्न किया। दूसरी ओर गांधीजी का विचार था कि इससे काग्रेस की स्थिति पर कोई प्रभाव नही पड़ता और न उससे काग्रेस की माग ही पूरी होती है। सिक्खो ने इसे अपनी सारी जाति का अपमान समझा क्योकि उनका एक भी आदमी केन्द्रीय मन्त्रि-मण्डल मे नही लिया गया और खासकर उस हालत मे जबकि इस विस्तार का असली उद्देश्य सरकार के युद्ध-प्रयत्न को प्रोत्साहन देना था।

श्री चर्चिल का वक्तव्य

लडाई के तीसरे साल के शुरू मे जबकि यूरोप की ताकतें पिछले सालों की परिस्थितियो के सिंहावलोकन मे लगी हुई थीं, काग्रेस को अपना आन्दोलन छेडे अभी एक वर्ष भी पूरा नही हुआ था, क्योकि उसने सत्याग्रह आन्दोलन का

सूत्रपात १७ अक्टूबर १९४० को किया था। गाधीजी के सामने पीछे कदम हटाने का कोई सवाल ही नही उत्पन्न होता था। समय और धैर्य इन दो मुख्य वातो को ध्यान मे रखकर वह आगे वढ रहे थे। उन्होने शत्रुओ की वदनामी या गाली-गलौज की परवाह नही की। लडाई शुरू हुए दो साल हो चुके थे, पर परिस्थिति वैसी ही वनी थी। सिर्फ पत्र-प्रतिनिधि ही ऐसे व्यक्ति थे जो ये भविष्यवाणिया कर रहे थे कि नयी शासन परिषद के पद सभाल लेने पर राजनीतिक कैदियो को रिहा कर दिया जायगा। यहा तक कहा गया था कि नये सदस्यो मे इस सम्वन्ध मे परस्पर पत्र-व्यवहार भी चल रहा है। लेकिन जेल के वन्दियो के लिए इन अफवाहो का कोई महत्व नही था। लगता है इन्ही शकाओ और भविष्य-वाणियो को खत्म कर देने के खयाल से श्री चर्चिल ने ९ सितम्बर को पार्लमेंट मे एक वडा उल्लेखनीय भाषण दिया। सभी शकाओ का विवरण करते हुए उन्होने कहा —

"हमारी इस सयुक्त घोषणा का उस नीति से सम्वन्ध रखनेवाले विभिन्न वक्तव्यो से कोई सम्वन्ध नही है जो समय-समय पर भारत, वर्मा अथवा ब्रिटिश साम्राज्य के दूसरे हिस्सो मे वैधानिक सरकार की उन्नति के वाद दिये गए है। हमने अगस्त १९४० की घोषणा मे भारत को ब्रिटिश राष्ट्रमडल के अन्तर्गत स्वतत्र और समान साझेदारी का पद प्राप्त करने में मदद देने का वादा किया है। हॉ, अलवत्ता ऐसा करते समय हमे भारत के साथ अपने पुराने सम्वन्धो के परिणामस्वरूप पैदा होने वाली जिम्मेदारियो और उसकी वहुतसी जातियो, स्वार्थों और धर्मों के प्रति अपने उत्तरदायित्वो को ध्यान में अवश्य रखना होगा।

"उन इलाको मे जिनकी जनता ब्रिटिश सम्राट् के प्रति वफादार है, प्रगतिशील सस्थाओ के विकास से इस समस्या का कोई सम्वन्ध नही है। यह समस्या उनसे बिलकुल अलग है। हमने इन विषयो पर जो स्वयपूर्ण है, सर्वथा असदिग्ध शब्दो मे अपनी घोषणाए कर दी है। इनका सम्वन्ध उन देशो और जनता के हालात से है जिन पर युद्ध का प्रभाव पडा है। इस सयुक्त घोपणा को आजादी और न्याय की जिस भावना से प्रेरणा मिली है, उसके साथ इनका पूर्ण मेल है।

"भारत पर अपना शासन और अधिकार बनाये रखना ब्रिटेन के पूजीपतियो के हित में है।"

जब गाधीजी से कहा गया कि श्री चर्चिल के भाषण पर उनकी क्या राय है तब उन्होने कुछ भी कहने से इन्कार कर दिया, क्योकि उनके विचारो से उनका मौन रहना और उनके द्वारा चलाया गया आन्दोलन श्री चर्चिल के भाषण का स्पष्ट प्रत्युत्तर था।

सत्याग्रह-आंदोलन की वर्षगांठ

१९४०-४१ के व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन को शुरू करने और उसे

आगे चलाने के लिए गाधीजी के पास अपनी निश्चित योजना मौजूद थी। राष्ट्र के लिए बडे सौभाग्य की बात थी कि गाधीजी जेल नही गए और वह स्वतत्र रहकर इस आन्दोलन का नियत्रण और सचालन करते रहे। वह अनेक बाधाओ और कठिनाइयो के रहते हुए भी प्रमुख काग्रेसजनो के साथ अपना सपर्क और पत्र व्यवहार जारी रख सके। राजनीतिक नजरबन्दो की वजह से प्रारम्भ मे ही जेले भरने लगी। शुरू शुरू मे तो उन्हे १० रु० और ५ रु० के हिसाब से भत्ता भी दिया जाने लगा, किन्तु कुछ ससय बाद ही यह भत्ता बन्द कर दिया गया और सब से बड़ी बात यह हुई कि उन्हे दो श्रेणियो—'ए' और 'बी' मे विभक्त कर दिया गया। पहली श्रेणी के आदमियो को ०-४-३ फी आदमी के हिसाब से स्थान मिलत था और दूसरी श्रेणी के कैदियो को ०-१-४ फी आदमी के हिसाब से। जब बार-बार अनुरोध करने का भी कुछ फल न निकला तब कही-कही भूख हडताल भी की गई। यह एक बडी असाधारण बात थी कि सीधे-साधे मामलो का निबटारा सीधे और सरल तरीको से नही किया जाता था। जेलो मे पत्र बहुत देर के बाद मिलते थे, कभी-कभी महीने के बाद और इसी प्रकार जेलो से बन्दियो के पत्र भी उनके घरवालो को बहुत देर से पहुँचते थे।

सत्याग्रहियों को दी जानेवाली सजाओ के मामले मे सरकार ने विभिन्न समय पर विभिन्न नीति से काम लिया। शुरू-शुरू मे सजाएं कडी दी गईं और भारी-भारी जुर्माने किये गए। इस आन्दोलन के प्रारभ मे ही दी गई सजाओ मे भारी अन्तर था। उदाहरण के तौर पर पडित जवाहरलाल नेहरू और श्री विनोबा भावे को दी गई सजाओ को ही देख लीजिए। पहले व्यक्ति को दूसरे के मुकाबले मे सोलह गुना सजा दी गई। आध्र जैसे प्रान्त मे ही अकेले कुल मिलाकर १,१८,९६० रु० १२ आ० जुर्माना किया गया। सबसे अधिक गिरफ्तारिया उत्तर प्रदेश मे हुईं। फरवरी के मध्य तक वहा, १,४९५ व्यक्ति गिरफ्तार किये गए। सबसे अधिक जुर्माना आध्र प्रान्त मे हुआ। वहा केवल सत्याग्रहियो पर कुल मिलाकर ७६,५३३ रु० जुर्माना किया गया।

मार्च के प्रारभ तक सत्याग्रहियो को न पकडने की नीति काफी व्यापक रूप धारण कर चुकी थी। पहले तो गाधीजी ने गैर-गिरफ्तारशुदा सत्याग्रहियो को यह हिदायत दी कि वे मार्ग मे युद्ध-विरोधी प्रचार करते हुए दिल्ली की ओर कूच करे, लेकिन बाद मे उन्होने हिदायत दी कि गिरफ्तार न होनेवाले को चाहिये कि दिल्ली रवाना होने से पहले वे अपने गाव के घर-घर में जाकर और प्रत्येक व्यक्ति के पास जाकर अपना प्रचार करें।[1] उनकी योजना यह थी कि प्रत्येक जिले में एक ऐसा ताल्लुका चुन लिया जाय जहा तहसील के हर गांव मे, हर घर में और हर नागरिक में जोरदार प्रचार किया जाय। उनकी सारी योजना का उद्देश्य वाणीस्वातत्र्य का अधिकार प्राप्त करना था।

गाधीजी की हिदायते हर समय उपलब्ध हो सकती थी और वे प्रत्येक क्षण इस आन्दोलन की नब्ज देखते रहते थे। इतवार के दिन सत्याग्रह नही होता था। वडे दिनो मे २३ दिसम्बर से लेकर ४ जनवरी तक सत्याग्रह-आन्दोलन स्थगित रखा गया और ५ जनवरी को इतवार था। फरवरी के शुरू से ही ये अफवाहे सुनने मे आ रही थी कि शायद गाधीजी गिरफ्तार कर लिये जाय। परन्तु चाहे कुछ भी हो, जब तक गाधीजी स्वय कुछ विरोधी कार्रवाई में भाग न लेते, सरकार उन्हे गिरफ्तार करने की मूर्खता नही कर सकती थी। जून १९४१ तक सत्याग्रह की दूसरी अवस्था खत्म हो गयी थी। इसलिए अखिल भारतीय काग्रेस महासमिति के जनरल सेक्रेटरी आचार्य जे० बी० कृपलानी ने महात्मा गाधी के परामर्श से १७ जून, १९४१ को सत्याग्रहियो और काग्रेस कमेटियो के पथ-प्रदर्शन के लिए नीचे लिखी हिदायते जारी की —

(१) जेल से रिहा होकर आनेवाले सत्याग्रही को यथासभव शीघ्र ही फिर दुबारा सत्याग्रह करना चाहिए। अगर किसी खास वजह से वह ऐसा नही कर सकता तो उसे चाहिये कि वह सबद्ध प्रान्तीय काग्रेस कमेटी के प्रधान के ज़रिये गाधीजी से इस बारे मे छूट देने के निमित्त आवेदनपत्र भेज दे। इसमे उसे इस छूट की वजहे भी देनी चाहिये।

(२) जिस तारीख को सभावित सत्याग्रही का नाम गाधीजी के पास स्वीकृति के लिए भेजा जाय उसी दिन से उसे अपना निजी काम स्थगित करके नीचे लिखे रचनात्मक-कार्यक्रम की १३ मदो मे से किसी एक को या ज्यादा को लेकर पूरी तरह से उसमे जुट जाना चाहिये —

(क) हिन्दू-मुस्लिम अथवा साप्रदायिक एकता, (ख) अस्पृश्यता-निवारण, (ग) मद्यनिषेध या शराबबन्दी, (घ) खादी, (च) दूसरे ग्रामोद्योग, (छ) गाव की सफाई, (ज) नयी या बुनियादी तालीम, (झ) प्रौढ शिक्षा, (ट) स्त्रियो की उन्नति, (ठ) स्वास्थ्य और सफाई की शिक्षा, (ड) राष्ट्र-भाषा का प्रचार, (ढ) स्वभाषा-प्रेम और (त) आर्थिक समानता का यत्न।

(३) प्रत्येक सभावित सत्याग्रही से यह आशा की जाती है कि वह अपने पास एक डायरी रखे जिसमे वह अपने प्रतिदिन के काम का ब्योरा लिखे और १५ दिन के बाद उसे सबद्ध प्रान्तीय काग्रेस कमेटी के पास भेज दे।

(४) अगर कोई सत्याग्रही, जिसने अपना नाम पहली शर्तो और प्रतिबन्धो को ध्यान मे रखकर सूची मे लिखाया था—अब इन नयी शर्तो को मजूर करने मे अपने को असमर्थ समझता है तो उसे चाहिये कि वह अपना नाम वापस ले ले और अगर वह ऐसा करता है तो उसमे कोई अपमान-जनक बात नही है। वह यथाशक्ति किसी और तरीके से देश की सेवा का काम जारी रख सकता है।

(५) जिन सत्याग्रहियो ने अपने नाम दर्ज करा दिये है वे स्थानीय सस्थाओ

के चुनाव नहीं लड़ सकते। जो लोग सत्याग्रहियों की सूची में नाम दर्ज कराने से पहले इन चुनावों में उम्मीदवार खड़े हो गए थे उन्हें चाहिये कि या तो वे चुनाव से हट जाएं अथवा सत्याग्रह न करें। एक सत्याग्रही की हैसियत से वे दोनों जगहों पर नहीं रह सकते।

(६) जेल-मुक्त होनेवाला कोई भी सत्याग्रही जो किसी स्थानीय संस्था का सदस्य है तब तक उसकी बैठकों में भाग नहीं ले सकता, जबतक कि गांधीजी उसे उसके लिए विशेष रूप से अनुमति न दे दें।

(७) गिरफ्तार न किये जानेवाले सत्याग्रही जो अपने-अपने जिलों का दौरा कर रहे हैं तथा वे सत्याग्रही जिनका नाम स्वीकार कर लिया गया है—स्थानीय संस्थाओं की बैठकों में भाग नहीं ले सकते।

(८) वर्षा-ऋतु में, अगर कोई सत्याग्रही चाहे तो अपने गांव के अलावा किसी और गांव अथवा गांवों के समूह में ठहर सकता है और वहीं उसे सत्याग्रह और रचनात्मक-कार्य करते रहना चाहिये।

सत्याग्रह-जैसे महान् और व्यापक तथा राष्ट्रव्यापी आन्दोलन के दौरान में समय-समय पर थोड़ी-बहुत अनुचित परिस्थितियों का पैदा हो जाना सर्वथा स्वाभाविक ही था। एक ऐसी ही नई बात यह पैदा हो गई थी कि लोग धार्मिक उत्सवों के अवसर पर और मन्दिरों पर राष्ट्रीय झण्डा लहराना चाहते थे। 'राष्ट्रीय' झण्डा और 'हिन्दू' पताका के प्रश्न के सम्बन्ध में 'निमोगा हिन्दू-महासभा' के सेक्रेटरी के नाम गांधीजी ने जो पत्र भेजा उसमें उन्होंने लिखा —

मिनट तक इस सभा मे भाषण किया। अपने भाषण के दौरान मे गाधीजी ने सत्याग्रह की प्रगति पर सतोष प्रकट करते हुए कहा —

"अन्त में मै लोगो पर फिर स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि सत्याग्रह की लडाई कष्ट उठाने और त्याग करने की लडाई है। हिसा-जैसी पैशाचिक युद्धकला में जैसा कि आजकल यूरोप मे देखने मे आ रहा है लोगो को मजबूरन कष्ट सहन करने पड रहे है। परन्तु हमारे सघर्ष में इतने वडे पैमाने पर कष्ट झेलने का सवाल नही पैदा होता। इसमे तो हमे सिर्फ वारम्वार जेल ही जाना है। अगर हम इस मामूली से कष्ट को भी वरदाश्त नही कर सकते तो हमारे लिए स्वराज्य की चर्चा करना विलकुल वेकार हे।"

विभिन्न दलों के मत

सत्याग्रह-आन्दोलन की इस वर्षगाठ का इसलिए इतना महत्व न था कि उसके परिणाम-स्वरूप लोगो मे भावोद्रेक को प्रोत्साहन मिलेगा, वल्कि बहुत से महत्त्व-पूर्ण नेता जेल से रिहा होकर आ रहे थे। १९ अक्टूबर तक कार्यसमिति के ग्यारह सदस्य मुक्त होकर वर्धा पहुँच चुके थे। उनके अलावा और भी नेता वहाँ मौजूद थे। यद्यपि कोई भी दल सरकार के रुख और उसकी कार्रवाई का समर्थक नही था, तथापि उनका दो बातो के वारे में आपसी मतभेद था एक तो यह कि कांग्रेस के साधारण रुख का समर्थन वे अपने-अपने दृष्टिकोण से करते थे और दूसरे गति-रोध का अन्त करने के लिए उनके अपने-अपने सुझाव थे। कुछ दल तो पूर्णत भारतीय शासन-परिषद् के हामी थे और कुछ दूसरे यह चाहते थे कि शासन-परिषद् का स्वरूप तो यही बना रहे, लेकिन वह सम्राट् और वाइसराय के प्रति सामूहिक रूप से जिम्मेवार होनी चाहिये। डा० सप्रू के नेतृत्व मे निर्दल नेताओ की माग यह थी कि उपर्युक्त आधार पर शासन-परिषद् के निर्माण के अलावा ब्रिटिश सरकार को युद्ध समाप्त होने के बाद एक निश्चित अवधि के भीतर भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देन के सम्वन्ध मे भी घोपणा कर देनी चाहिये। निर्दल नेता निरन्तर गाधीजी से यही कह रहे थे कि वे सत्याग्रह-आन्दोलन वापस ले ले। मुस्लिम-लीग का दृष्टिकोण बिल्कुल निराला ही था। उसने इस सिलसिले मे पाकिस्तान का सवाल खडा कर दिया और यह फैसला किया कि जब तक इस प्रश्न का निपटारा न हो जाय तब तक शासन-परिषद् अथवा सुरक्षा-परिषद् से असहयोग किया जाय। २६ अक्टूबर से केन्द्रीय असेम्बली का अधिवेशन शुरू हो रहा था। इससम्बन्ध मे लीग का रुख क्या होगा, इस बात की देश मे बडी चर्चा थी।

नरम दलवालो की नीति यह थी कि वे पृथक् पृथक् घटनाओ के सम्बन्ध मे अपने पवित्र और जोरदार विचार प्रकट करके सन्तोष कर लेते थे। लेकिन समस्या को हल करने की कोई उपयुक्त योजना नही सुझाते थे। इनके अलावा देश मे

साम्यवादी दल—साम्यवादी नेता अलग-अलग अपनी हैसियत से, उसके सदस्य की हैसियत से नही—समाजवादी दल, अग्रगामी दल और किसान सभा वाले अपने विचार सार्वजनिक रूप से नही जाहिर कर रहे थे। उन्हे ऐसा करने का मौका भी नही मिला था। लेकिन इनमे से कुछ कार्यकर्ता मुख्य रूप से अपना कार्य कर रहे थे और ये सभी दल ब्रिटेन के विरोधी थे। प्रश्न यह था कि उन्हे अपने दृष्टिकोण मे परिवर्तन करना चाहिये या नही ? कुछ लोग यह कह रहे थे कि उन्हे अपनी नीति मे आमूल परिवर्तन करके युद्ध-प्रयत्न मे सक्रिय रूप से जोरदार मदद करनी चाहिये। दूसरा पक्ष यह कहता था कि रूस को तो पूरी मदद दी जाय, लेकिन ब्रिटेन को नही। अखिल भारतीय किसान-सभा ने यद्यपि अपने "पितृदेश" की यथासभव मदद करने का समर्थन किया, तथापि इस बात पर खेद भी प्रकट किया कि भारत मे उनकी स्थिति बडी शोचनीय है और इसलिए उनके लिए प्रत्यक्ष रूप से रूस की कोई मदद करना सभव नही है। सिक्खों और हिन्दू-महासभाइयों ने युद्ध-प्रयत्न मे पूरी-पूरी मदद की। इधर तो ये विरोधी विचारधाराएँ, वाद-विवाद और विचार-विनिमय हो रहे थे, उधर काग्रेस निश्चल भाव से अपना मस्तक ऊँचा किये अपने निर्धारित कार्यक्रम पर अग्रसर हो रही थी। उसे पूरा यकीन था कि लड़ाई मे मदद न करते हुए या ब्रिटेन को परेशानी मे न डालने की उसकी जो नीति है, वह सही और समयानुकूल है। सत्याग्रह-आन्दोलन मे इस दूषित विचार के लिए कोई स्थान ही नही था कि दुश्मन की मुसीबत से फायदा उठाया जाय। गाधीजी को इस बात पर कोई यकीन नही था कि सामूहिक सत्याग्रह-द्वारा हम शत्रु पर विजय प्राप्त कर लेगे।

इसी बीच कुछ ऐसी शक्तियाँ जिन पर हमारा कोई नियंत्रण नही था, सत्याग्रह के कार्यक्रम मे कुछ परिवर्तन करने को बाध्य कर रही थी। अक्टूबर के अन्तिम सप्ताह मे गाधीजी ने एक व्यापक और विस्तृत वक्तव्य प्रकाशित किया जो उन लोगो की इस युक्ति का प्रत्युत्तर था कि कार्यक्रम मे परिवर्तन किया जाय और आन्दोलन की पिछले साल की प्रगति-समीक्षा की जाय। गाधीजी ने अपने वक्तव्य मे अपने शाश्वत सिद्धान्तो को दोहराते हुए कहा कि "सिविल नाफरमानी को छोड़ देना बेवकूफी होगी। सिविल नाफरमानी स्वय पूर्ण रूप से एक अहिंसात्मक कार्रवाई है। हिसा के मुकाबले मे यह परम कर्तव्य बन जाता है, जिसकी मिसाल दुनिया मे नही मिल सकती।"

जेल से रिहाइयाँ

अचानक २७ अक्टूबर, १९४१ को सारे भारत मे यह समाचार प्रकाशित हुआ कि वेलौर सेंट्रल जेल से कुछ नजरबन्द कैदी छोड़े जा रहे है जिनमे मद्रास की

व्यवस्थापिका सभा के अध्यक्ष और छ अन्य सदस्य भी शामिल है। इस समाचार के तुरन्त बाद ही कैदियो को पहली नवम्बर को रिहा कर दिया गया। सरकार ने बहुत से साधारण सत्याग्रहियो को भी आमतौर पर पहली बार सत्याग्रह करने पर गिरफ्तार करना छोड दिया। इसके अतिरिक्त किसी-किसी को दूसरी बार और किसी को तीसरी बार सत्याग्रह करने पर भी गिरफ्तार नही किया। मद्रास मे इन रिहाइयो के बाद बम्बई के प्रधान मत्री और एक-दो और आदमियो को तथा और जगह भी एकाध आदमियो को रिहा कर दिया। बात दरअसल यह थी कि सभी हल्को के लोगो द्वारा जिनमे कामन सभा के कुछ सदस्य भी शामिल थे, यह माग की जा रही थी कि पडित जवाहरलाल नेहरू तथा दूसरे कैदियो को रिहा कर दिया जाय जिससे कि देश मे गतिरोध का अन्त करने के लिए नया प्रयत्न करने के अनुकूल वातावरण पैदा हो सके। इसी बीच भारत-सरकार ने अचानक नई दिल्ली से एक विज्ञप्ति प्रकाशित की जिसमे बताया गया कि भारत-सरकार को इस बात का यकीन है कि भारत के सभी जिम्मेवार व्यक्ति युद्ध मे विजय प्राप्त होने तक युद्ध-प्रयत्न मे सहायता करने का दृढ निश्चय किये हुए है। इसलिए वह इस नतीजे पर पहुँची है कि सविनय-भग-आन्दोलन के उन कैदियो को जिनका अपराध सिर्फ रस्मी तौर पर अथवा साकेतिक रूप मे था, रिहा किया जा सकता है। इनमे पडित जवाहरलाल नेहरू और मौलाना अबुल कलाम आज़ाद भी शामिल है। इसके अनुसार उन्हे तत्काल ही रिहा कर दिया गया। जैसी कि आशा थी, गाधीजी ने अपनी स्थिति और स्पष्ट कर दी और काग्रेस के अध्यक्ष की रिहाई को ध्यान मे रखते हुए कहा कि काग्रेस की भावी नीति का निर्णय अखिल भारतीय काग्रेस महासमिति और कार्यसमिति ही करेगी। गाधीजी का नीचे दिया गया वक्तव्य ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व रखता है, क्योकि आजतक उन्होने यह नही कहा कि यह वक्तव्य काग्रेस के सत्याग्रह-आन्दोलन के सम्बन्ध मे अन्तिम घोषणा है।

गांधीजी का वक्तव्य

गाधीजी ने कहा—"मै अपने विद्यार्थी-जीवन से अपने को ब्रिटिश जनता का मित्र समझता रहा हूँ और अभी तक समझता हूँ, लेकिन इस मित्रता का यह तात्पर्य नहीं कि मै यह खयाल करना छोड़ दू कि ब्रिटेन के प्रतिनिधि भारत को अपना क्रीतदास समझते है। भारत को आज जो आजादी मिली हुई है, वह गुलामो-जैसी आजादी है, बराबरी के दरजेवालो की वह आजादी नही, जिसे हम दूसरे शब्दो मे मुकम्मिल आजादी कहते है।

"श्री एमरी की घोषणाओ से हमारे घाव और हरे होते है, क्योकि वह उन

पर नमक छिडकने की कोशिश करते है। इस पृष्ठभूमि को ध्यान मे रखकर मुझे रिहाइयो के प्रश्न की समीक्षा करनी है।

"अगर भारत-सरकार को ऐसा यकीन है कि देश के सभी उत्तरदायी लोग युद्ध-प्रयत्न मे सहयोग देने का दृढ निश्चय किये हुए है तो उसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि सविनय-भग के कैदियो को जेलों मे बन्द रखा जाय, क्योकि वे इस कथन के अपवाद है। मै तो इन रिहाइयो का सिर्फ एक ही मतलब समझ सका हूँ और वह यह है कि सरकार यह उम्मीद करती है कि उनके विचार बदल जाएगे। मुझे उम्मीद है कि इस बारे मे सरकार को बहुत शीघ्र ही निराश होना पडेगा।

"सत्याग्रह-आन्दोलन खूब सोच-विचार करने के बाद ही शुरू किया गया था। यह बदला लेने की भावना से नही प्रारभ किया गया था। यह इसलिए शुरू किया गया था और मुझे उम्मीद है कि आगे भी जारी रहेगा कि काग्रेस ब्रिटिश जनता और ससार के सामने अपना यह दावा साबित कर देना चाहती है कि देश का एक बडा भाग जिसका काग्रेस प्रतिनिधित्व करती है, लडाई का सर्वथा विरोधी है। वह निश्चित रूपसे जानती है कि भारत को इस लड़ाई के फ़लस्वरूप आजादी नही मिलेगी।

"काग्रेस का यह दावा है कि वह देश की करोडो मूक जनता का प्रतिनिधित्व करती है। उसने गत बीस वर्षो से अहिसा पर चलते हुए ही भारत की आजादी हासिल करने की कोशिश की है और यही उसकी निरन्तर नीति भी रही है। इसलिए सत्याग्रह को, चाहे वह फिलहाल प्रतीक स्वरूप ही क्यो न हो, बन्द करने का मतलब यह होगा कि उसने नाजुक घडी मे आकर अपनी नीति छोड दी।

"सरकार यह दावा करती है कि काग्रेस के विरोध करने पर भी उसे भारत से यथेष्ट सैनिक और धन मिल रहा है। इसलिए काग्रेस का विरोध सिर्फ एक नैतिक विरोध ही है। मै तो इससे बिल्कुल सतुष्ट हूँ, क्योकि मुझे यकीन है कि इसी नैतिक प्रदर्शन से समय आने पर हमे स्वाधीनता मिल जाएगी, फिर ब्रिटेन मे चाहे किसी भी दल का प्रभुत्व क्यो न हो।"

नेहरूजी का संदेश

स्वाभाविक तौर पर यह आशा की जा रही थी कि मुक्त हुए नेता धुआधार भाषण देगे। इनमे से सर्वप्रथम पडित जवाहरलाल नेहरू थे, जिन्हें ४ दिसम्बर, १९४१ को जेल से मुक्त किया गया। उन्होने रिहा होने के बाद ही अपने सभी सहयोगियो और मित्रो का हार्दिक अभिवादन करते हुए उनके नाम निम्नलिखित अत्यधिक हृदयस्पर्शी, क्रान्तिकारी और जोरदार सदेश भेजा —

"एक विदेशी हुकमत के कहने पर जेल जाने और उससे बाहर आने मे मुझे

किसी किस्म की खुशी नही महसूस होती। जेल की तग चहारदीवारी में से निकलकर भारत जैसे विशाल कैदखाने मे आना कोई खुशी की वात नही है। निश्चय ही एक समय ऐसा आएगा जव हम गुलामी की इन वेडियो को तोडकर आजादी के साथ सास ले सकेंगे। परन्तु अभी वह दूर है और हमे इस तुच्छ-से परिवर्तन पर प्रसन्न नही होना चाहिये।

"इस ससार मे जहाँ असीम दुखो, हिंसा, घृणा और सर्वनाश का साम्राज्य छाया हुआ है, हम आराम और चैन से क्यो कर वैठ सकते है। इस भारत मे जहा विदेशी और स्वेच्छाचारी शासन हमे दवाकर और जकड कर रखता है, हमे शान्ति नही मिल सकती। इसलिए स्वतत्र भारत तथा स्वतत्र ससार के हितो को अग्रसर करने का हमे निरतर आह्वान करना है। जो व्यक्ति इस आह्वान को सुनना चाहते है, उनके लिए यह मौजूद है।"

गांधीजी का वक्तव्य

गाधीजी ने अपने वक्तव्य मे कहा —

"इस समय सत्याग्रहियो की शीघ्रता के साथ जो रिहाइया हो रही है, उनसे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि हमे अखिल भारतीय महासमिति की वैठक अवश्य वुलानी चाहिये, क्योकि सरकार का प्रत्यक्ष रूप से यह ख्याल है कि उसमे वम्वई के उस प्रस्ताव को वापस ले लिया जायगा जिसकी विना पर मैंने सत्याग्रह-आन्दोलन चलाया है। इसलिए मैंने मौलाना साहव से काग्रेस कार्यसमिति और अखिल भारतीय महासमिति की वैठक वुलाने को कहा है, लेकिन जव तक वह फैसला वदल नही दिया जाता, तव तक सत्याग्रह-आन्दोलन जारी ही रहना चाहिये। मै यह मानता हूँ कि सरकार-द्वारा सत्याग्रही वन्दियो की मुक्ति के कारण सत्याग्रह का सचालन कठिन अवश्य हो गया है, लेकिन अगर हमे अपने मकसद तक पहुँचना है तो हमे हरेक मुश्किल का मुकावला करना होगा। यह मुश्किल तो उस मुश्किल के मुकाविले मे कुछ भी नही है जिसका सामना शायद हमे अपनी स्थिति सुधर जाने पर करना होगा। अखिल भारतीय महासमिति की वैठक होने तक काग्रेस-कार्यसमिति और भारतीय महासमिति के सदस्यो को तथा जो लोग वम्वई के प्रस्ताव को वदलना चाहते है, उन्हे किसी भी हालत मे सत्याग्रह नही करना चाहिये। इसके अलावा सत्याग्रह-आन्दोलन निर्वाध रूप से चलता रहना चाहिये। साकेतिक-सत्याग्रह का एक खास मतलव है, लेकिन सरकार अगर चाहे तो उन काग्रेसजनो को भी भाषण देने पर पकड सकती है, जिनका इरादा सत्याग्रह मे भाग लेने का नही है। औरो का तो क्या कहना, सरकार ने इसी तरह से मौलाना साहव और पडित जवाहरलाल नेहरू को गिरफ्तार कर लिया था। मै यह वात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मुझे किसी वाहरी कारण के आधार पर

सत्याग्रह-आन्दोलन मुल्तवी कर देने का कोई हक नही है। यह काम तो काग्रेस का है।"

कार्यसमिति की बैठक

जैसा कि स्वय गाधीजी ने सकेत किया था, सत्याग्रहियो की रिहाई के बाद पहला काम शीघ्र ही कार्यसमिति की बैठक बुलाने का था और इसके बाद अखिल भारतीय महासमिति की बैठक बुलाकर उसमे काग्रेस की भरती-नीति पर सोच-विचार करके कोई फैसला कर लेना था। तदनुसार कार्यसमिति की बैठक २३ दिसम्बर, १९४१ को बुलाई गई। कार्यसमिति की बैठक बारदोली मे गाधीजी के निवास-स्थान पर हुई। उसका निर्णय अप्रत्याशित परन्तु उचित ही था।

उसका मुख्य प्रस्ताव इस प्रकार था :—

"समिति गाधीजी के नेतृत्व और राष्ट्र-द्वारा इस आन्दोलन मे दिए गए सहयोग की सराहना करती है और उसकी कद्र करती है। उसकी राय है कि इससे जनता की शक्ति बढी है। ब्रिटेन ने भारत की आजादी का विरोध किया है और वह भारत मे यहा की जनता की आकाक्षाओ को ठुकराकर, पूर्णत स्वेच्छाचारी शासन पर अमल करता रहा है। प्रजातन्त्र और स्वाधीनता के उद्देश्य और लडाई के फलस्वरूप वह जिस सकट मे फसा हुआ है, उसे ध्यान मे रखते हुए भी उसकी नीति और मनोवृत्ति मे किसी किस्म का परिवर्तन देखने मे नही आया और जो परिवर्तन हुए भी है उनके कारण परिस्थिति बिगडी ही है, सुधरी नही है।

"हाल मे राजनीतिक बन्दियो की जो रिहाई हुई है, वह महत्वहीन है, क्योकि यह कारंवाई जिन परिस्थितियो मे की गई है और इस सम्बन्ध मे सरकारी तौर पर जो घोपणा हुई है उससे साफ जाहिर है कि इसका सम्बन्ध नीति मे किसी परिवर्तन से नही है, फिर भी कार्य-समिति उस नयी परिस्थिति पर पूरी तरह से ध्यान देना चाहती है, जो इस लडाई के विश्वव्यापी रूप धारण कर लेने तथा उसके भारत के द्वार तक आ पहुँचने के कारण पैदा हो गई है। भारत का सारा वातावरण अग्रेजो के विरोध और उनके प्रति अविश्वास की भावना से ओतप्रोत है और बडे-बडे व्यापक वादो से भी इस परिस्थिति मे कोई फर्क नही पड सकता और न भारत स्वेच्छा से, अभिमानी साम्राज्यवाद की कोई मदद ही कर सकता है, क्योकि उसकी दृष्टि मे साम्राज्यवाद और तानाशाही मे किसी किस्म का अन्तर नही है।

"इसलिए समिति की राय है कि १६ सितम्बर १९४० को अखिल भारतीय महासमिति ने बम्बई मे जो प्रस्ताव पास किया था और उसमे काग्रेस की जो नीति बताई गई थी, वह अभी तक कायम है।"

इसके अलावा कार्य-समिति ने और भी कई प्रस्ताव पास किये। राजेन्द्र बाबू, सरदार पटेल, श्री कृपलानी और डा० घोष ने एक वक्तव्य निकाल कर अखिल भारतीय महासमिति की आगामी बैठक मे स्वतत्र रूप से अपने-अपने विवेक के अनुसार काग्रेस की भावी नीति पर विचार प्रकट करने का आग्रह किया।

बारदोली-प्रस्ताव का प्रभाव

तत्काल ही इस प्रस्ताव की ओर इगलैण्ड के लोगो का ध्यान आकृष्ट हो गया, लेकिन प्रत्यक्ष रूप से इसकी कोई प्रतिक्रिया या प्रभाव देखने में नही आया। भारत-मत्री ने ९ जनवरी, १९४२ को कामन सभा मे भाषण देते हुए कहा, "दिसम्बर के अन्त मे भारत के राजनीतिक दलो ने जो प्रस्ताव पास किये है और इस सम्बन्ध मे राजनीतिक नेताओ ने जो विभिन्न वक्तव्य दिये है, उनकी ओर मेरा ध्यान आकृष्ट हुआ है, लेकिन मुझे खेद है कि हाल में वाइसराय ने समान सकट को देखते हुए भारतीय जनता से सहयोग और एकता की जो अपील की थी, उसके सम्बन्ध में इन दलो ने कोई सन्तोषजनक उत्तर नही दिया।

श्री चर्चिल अभी अमरीका मे ही थे जब कि उन्हे बारदोली के प्रस्ताव का समाचार मिला और एक सवाल का जवाब देते हुए उन्होने कहा कि मै फिलहाल इस बारे मे कुछ भी नही कह सकता, क्योकि पिछले कुछ समय से मेरा भारत की घटनाओ से कोई सपर्क नही रह सका। २२ जनवरी, १९४२ को कामन सभा मे एक सवाल का जवाब देते हुए श्री एमरी ने कहा कि मै भारत की राजनीतिक स्थिति के बारे मे कोई और वक्तव्य नही देना चाहता। २७ जनवरी १९४२ को कामन सभा की एक बहस मे हिस्सा लेते हुए श्री पेथिक लारेस ने कहा, कि मेरे विचार मे भारतीय समस्या का कोई सन्तोषजनक हल ढूढ निकालना युद्ध-प्रयत्न का एक महत्वपूर्ण अग है और प्रधान मत्री को भारतीय जनता तथा उसके राजनीतिक नेताओ को यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि देश के सभी लोगो की हार्दिक इच्छा यह है कि लडाई के बाद उन्हे औपनिवेशिक स्वराज्य दे दिया जाय। श्री एडगर ग्रेनविल (उदार राष्ट्रवादी) ने यह आशा प्रकट की कि सरकार भारत के सभी साधनो का एकीकरण करने मे सफल हो जाएगी और प्रधान मत्री यह घोषणा कर देगे कि दूसरे स्वाधीनताप्राप्त उपनिवेशो की भाति भारत का प्रतिनिधि भी लन्दन के युद्ध-मत्रिमण्डल मे ले लिया जाएगा।

३ फरवरी को एक बार फिर लार्ड सभा मे एक गरमागरम बहस हुई, जिसमे लार्ड फैरिगटन (मजदूर-दल) ने प्रमुख भाग लिया। उन्होने सरकार का ध्यान उस वक्त की जरूरी समस्या की ओर आकृष्ट किया और यह शिकायत की कि सरकार मे आत्म-सतुष्टि की भावना घर कर गई है और परिस्थिति हर रोज नाजुक होती जा रही है, लेकिन इतने पर भी उसका मुकाबला करने की

कोई कोशिश नही की जाती। मेरा सबसे पहला सुझाव यह है कि सरकार यह घोषणा कर दे कि वह भारत को भविष्य मे नही, बल्कि इसी वक्त स्वराज्य दे देना चाहती है। उन्होने कहा कि सरकार ने यह घोषणा की है कि अगर भारत के दोनो दलो मे कोई समझौता हो जाय तो वह उसका समर्थन करेगी, लेकिन मेरे ख्याल से यह कुछ अनुचित रवैया है। मुस्लिम लीग ने, जो कि मुसलमानो का प्रतिनिधि होने का दावा करती है, कागज पर अपनी माँगे लिखकर रख दी है और स्पष्ट है कि काग्रेस उन्हे किसी भी हालत मे मजूर नही कर सकती। लेकिन वास्तविकता यह है कि मुस्लिम लीग सभी मुसलमानो का प्रतिनिधि होने का दावा नही कर सकती और यह आवश्यक है कि ब्रिटेन के लोगो को भी यह बात आसानी से समझ लेनी चाहिए और उन्हे उग्र विचारोवाले मुसलमानो के हाथ का खिलौना बनकर भारतीयो के समझौते के मार्ग मे रुकावट नही पैदा करनी चाहिये।

लार्ड हेली ने कहा कि यह वक्त छोटी रस्मी बातो का नही है। हमे सीरिया की तरह ही भारत के बारे मे भी कोई स्पष्ट घोषणा कर देनी चाहिए। लार्ड हेली ने पूछा कि भारतीय रियासतो की स्थिति क्या होगी? और क्या अब हमे मुसलमानो की यह बात मजूर कर लेनी चाहिए कि सयुक्त भारत के टुकडे-टुकडे कर दिए जायँ? उन्होने कहा कि मेरे ख़याल से तो सम्राट् की सरकार को एक ऐसी सतोपजनक घोषणा कर देनी चाहिए जिसके अन्तर्गत या तो कोई तारीख निश्चित कर दी जाय अथवा कोई ऐसा तरीका बताया जाय जिससे कि भारत के दोनो दलो में कोई समझौता हो सके।

लार्ड सभा मे भारत-विषयक बहस के दौरान में उप भारत-मत्री ड्यूक आफ डीवनशायर ने जो भाषण दिया उससे साफ तौर पर यह जाहिर हो जाता है कि साम्राज्य के लिए भारी खतरा पैदा हो जाने पर भी अपनी भारत-विषयक नीति के सम्बन्ध मे ब्रिटेन की मनोवृत्ति मे किसी किस्म का कोई फर्क नही आया है। उन्होने काग्रेस का असर घटाकर और मुस्लिम लीग का असर बढाकर दिखाने की कोशिश की। उन्होने कहा, "ऐसा मालूम होता है कि मुस्लिम लीग का असर और उनकी ताकत निश्चित रूप से बढ रही है और इस वक्त काग्रेस की ताकत कम हो रही है। काग्रेस के दावे को चुनौती दी जा रही है और महान् मुस्लिम जाति हमेशा ही उसके दावे को चुनौती देती रहेगी।"

बने रहना था। ब्रिटेन और अमरीका मे होनेवाली प्रतिक्रियाओ और आलोचनाओ का उन पर कोई प्रभाव नही पड सकता था। उधर अन्ध महासागर के पार न्यूयार्क का ध्यान गाधी और चागकाई शेक के मिलन की ओर आकृष्ट हो गया और "न्यूयार्क टाइम्स" ने लिखा है कि भारतीय राष्ट्रवादी इस समय केवल समय की प्रतीक्षा मे बैठे है। आग वह प्रश्न करता है कि "क्या भारत की जागृति का समय निकट आ गया है? इस बारे मे हमे कुछ नही मालूम, लेकिन हम इतना अवश्य जानते है कि अब चीन और भारत अग्रेज के घर पानी नही भरते, वे अब उसकी कठपुतली नही रहे।"

चांगकाई शेक का स्वागत

९ फरवरी, १९४२ को अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की एक घटना हुई जब कि भारत ने जनरल चागकाई शेक, मदाम चांगकाई शेक और उनके सैनिक अफसरो का भारत के वाइसराय के अतिथियो के रूप मे स्वागत किया। एक विज्ञापन मे बताया गया कि "जेनरलिस्सिमो चागकाई शेक भारत और चीन से सम्बन्ध रखनेवाले समान विषयो के सम्बन्ध मे भारत-सरकार और खासतौर पर भारत के प्रधान सेनापति से सलाह-मशविरा करने आए है। उन्हे आशा है कि भारत मे अपने प्रवास की अवधि मे उन्हे भारत के प्रमुख सार्वजनिक नेताओ से भेंट करने का अवसर प्राप्त हो सकेगा।"

आधुनिक चीन के उद्धारक के नाम भारत के विभिन्न भागो से उनका स्वागत करते हुए बहुत से सन्देश भेजे गए। ब्रिटेन और अमरीका के समाचारपत्रो ने इस अभूतपूर्व और अप्रत्याशित घटना पर बडी प्रसन्नता प्रकट की। पडित जवाहरलाल नेहरू ने उनके साथ कई बार भेंट की। पहले तो स्वय अकेले, फिर कांग्रेस के प्रधान मौलाना आजाद के साथ और बाद मे अपनी बहन और पुत्री के साथ। यह आशा की जाती थी कि जेनरलिस्सिमो गाधीजी से भी मुलाकात करेंगे, लेकिन ऐसा न हो सका।

१९ फरवरी, १९४२ को शान्तिनिकेतन मे जनरलिस्सिमो चागकाई शेक और मदाम चागकाई शेक का खूब धूम-धाम से स्वागत किया गया। रथीन्द्रनाथ के स्वागत-भाषण का उत्तर देते हुए जेनरलिस्सिमो ने कहा —

"इस अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय मे महाकवि के निवास-गृह पर आकर मुझे और मदाम चागकाई शेक को बडी प्रसन्नता हुई है। आपने हमारा जो स्वागत किया है उसके लिए हम आपके आभारी है। हमने महाकवि के साक्षात् दर्शन तो नही किये है, लेकिन अपनी इस सस्था मे जो जीवन वह डाल गए है, उसे देखकर हमे बडी प्रसन्नता हुई है।

"हमे पूर्ण आशा है कि इस सस्था के अध्यापक और छात्रगण, जो यहाँ एकत्र

है, इस संस्था की परपरा को बनाए रखने का प्रयत्न करेगे और उस महान् कर्म को जारी रखेगे जिसकी आधार-शिला आपके गुरुदेव रख गए है। जिस प्रकार हमारे सनयात सेन ने हममे विश्वव्यापी भ्रातृत्व का बीज बोया था और नवीन चीन के यश को बढाया था उसी प्रकार आपके गुरुदेव ने आपके महान् देश के अध्यात्म को उन्नत करके एक नयी जागृति पैदा कर दी है।" आगे उन्होने कहा—"अपनी सहृदयता और चीन-वासियो की शुभकामनाओ के अतिरिक्त मै आपके लिए चीन से और कुछ नही लाया हूँ। भगवान् करे आप उस विशाल कार्य को पूरा कर सके जिसे पूरा करने का भार आपके महान् नेताओ ने समस्त राष्ट्र के कन्धो पर छोडा है।"

जनरलिस्सिमो चागकाई शेक और उनके साथी कलकत्ता से स्पेशल गाडी मे शान्ति-निकेतन पहुँचे थे। उनके साथ पण्डित जवाहरलाल नेहरू भी थे।

बोलपुर स्टेशन पर उनका स्वागत कवि की पौत्री श्रीमती प्रतिभा टैगोर, प्रिसिपल क्षितिमोहन सेन और विश्वभारती के प्रधान सेक्रेटरी श्री अनिलचन्द्र ने किया। वहाँ से वे सब लोग सीधे मोटर-द्वारा उत्तरायण पहुँचे जहाँ श्री रथीन्द्र-नाथ टैगोर ने उनकी आवभगत की।

कवि के अन्तिम निवासस्थान "उदीची" मे कुछ देर तक विश्राम करने के बाद मार्शल चागकाई शेक और मदाम चागकाई शेक ने शान्ति-निकेतन के कला-विभाग का निरीक्षण किया। मध्याह्नोत्तर उनका स्वागत सिह-सदन मे किया गया। जब सम्मानित अतिथि अपने-अपने स्थानो पर बैठ गए, तब समारोह वैदिक मंत्रो से प्रारम्भ हुआ। इसके बाद उन्हे पुष्पमालाएँ पहनाई गई और उनके मस्तक पर भारतीय विधि के अनुसार चदन का तिलक लगाया गया। विश्व-भारती की ओर से जेनरलिस्सिमो को एक जोडा रेशमी धोती तथा एक चादर और श्रीमती चागकाई शेक को एक सुन्दर रेशमी साडी भेट की गई।

विश्व-भारती की ओर से मार्शल चागकाई शेक और श्रीमती चागकाई शेक का अभिनन्दन करते हुए श्री रथीन्द्रनाथ टैगोर ने चीन के प्रति महाकवि रवीन्द्र-नाथ की असीम सहानुभूति और प्रेम का उल्लेख किया और कहा कि अन्तिम समय तक कवि ने आपके देश की निर्जाति के सम्बन्ध मे गहरी दिलचस्पी ली और वह आपकी जनता के महान् गुणो और जीवन मृत्यु के महान् सघर्ष मे भी ज्ञान के प्रति उनके आराम की प्रशसा करते नही थकते थे श्रीमती चागकाई शेक ने पृथक् रूप से उत्तर देते हुए कहा—"जब से जापान ने चीन पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया है, हमारे हजारो छात्रो को बमो, टैको और तोपों का सामना करना पड़ा है। शत्रु ने उनके घरो और विश्वविद्यालयो को नष्ट कर दिया है। लेकिन जैसा आपको ज्ञात है, हमारे छात्र सैकडो मील पैदल चलकर सरकार द्वारा देश के भीतरी भागो मे स्थापित नये शिक्षालयो मे पढने के लिए गए है। उन्होने

चीन के मस्तिष्क को जागरूक बनाए रखा है और देश-भक्ति की ज्योति को अपूर्व द्युति के साथ प्रज्ज्वलित रखा है। इस शान्तिमय भूमि में जहाँ जापानी सैनिकवाद का कोई खतरा नही है, आपके लिए यह समझना कठिन होगा कि इसका क्या अभिप्राय है।"

शान्तिनिकेतन की छात्राओ ने केसरिया साडियो मे मार्शल चागकाई शेक को "गार्ड आव आनर" दी। पडित जवाहरलाल नेहरू ने इस "गार्ड आव आनर" का निरीक्षण किया।

मार्शल चागकाई शेक और श्रीमती चागकाई शेक ने कला-भवन और श्री-भवन का निरीक्षण किया। चीन-भवन में दोपहर बाद चाय दी गई। भवन चीनी चित्रो से कलापूर्ण ढग से सजाया गया था। बाद मे वे उत्तरायण गए जहा उनके मनोरजन का प्रबन्ध किया गया था।

मार्शल चांग का सन्देश

मार्शल चाग दो सप्ताह तक भारत मे रहे। इस बीच उन्होने सर्वोच्च सैनिक अधिकारियो तथा भारतीय मित्रो से बात-चीत की। चलते समय उन्होने जो सन्देश दिया वह सक्षेप मे इस प्रकार है—"वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति के कारण ससार दो भागो मे विभक्त हो गया है। एक अत्याचारी दल और दूसरा अत्याचार-विरोधी दल। उन सब लोगो को अत्याचार-विरोधी दल मे सम्मिलित होना चाहिये जो आतकवाद के विरोधी हैं और अपने देश तथा मानव-समाज की स्वतत्रता के लिए यत्न कर रहे हैं। बीच का कोई मार्ग नहीं है और न घटनाक्रम की प्रतीक्षा करने का अवसर है। मानव-समाज के भविष्य के लिए यह बडा महत्त्वपूर्ण कार्य है। हमारे सामने न तो किसी एक व्यक्ति या देश की स्वतन्त्रता का प्रश्न है और न किन्ही दो राष्ट्रो के निवासियो के बीच की किसी खास समस्या से इस प्रश्न का कोई सबध है। इसलिए जो भी राष्ट्र आतकविरोधी मोर्चे मे सम्मिलित होगा वह किसी खास देश के साथ नही, बल्कि सारे मोर्चे के साथ ही सहयोग करेगा। इस प्रकार हम यह विश्वास कर सकते हैं कि राष्ट्रीयता के इतिहास मे प्रशान्त सागर का युद्ध एक युगान्तकारी घटनाक्रम है। लेकिन जिन साधनो के द्वारा ससार के लोग अपनी स्वतत्रता प्राप्त कर सकते हैं, वे अतीत मे काम मे लाए जानेवाले साधनो से भिन्न हो सकते है। आतकवाद-विरोधी राष्ट्रो को आशा है कि नये युग मे स्वतत्र ससार की रक्षा के लिए, जिसमे भारत का अपना स्थान होगा, भारत के निवासी अपनी इच्छा से वर्तमान युद्ध मे पूरी तरह सहयोग प्रदान करेगे। ससार के लोगो का बहुत बडा भाग भारतीयो की स्वतत्रता की माग से पूर्ण सहानुभूति रखता है। यह सहानुभूति इतनी मूल्यवान है तथा इसे प्राप्त करना इतना कठिन है कि इसकी

कीमत धन या साज-सामान की दृष्टि से नही कूती जा सकती। इसलिए इस सहानुभूति को बनाए रखने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये।

"वर्तमान युद्ध स्वतत्रता और गुलामी का, प्रकाश और अन्धकार का, अच्छाई और बुराई का तथा आतकवाद और उसकी विरोधी शक्ति का युद्ध है। यदि आतकवाद-विरोधी मोर्चा युद्ध मे पराजित हो गया तो ससार की सभ्यता को सौ वर्ष पीछे ढकेल देनेवाला धक्का लग जाएगा और मनुष्य-समाज के कष्टो का पारावार नही रहेगा। "बर्बरता और पाशविक दल के इस युग मे चीनियो और उनके आर्य भारतीयो को चाहिए कि अटलाटिक अधिकार-पत्र तथा २६ राष्ट्रो के सयुक्त घोषणापत्र मे प्रतिपादित सिद्धातो का वे एक होकर समर्थन करे और आतक-विरोधी मोर्चे का साथ दे। मुझे आशा है कि भारत के निवासी पूर्ण रूप से मित्र-राष्ट्रो अर्थात् चीन, ब्रिटेन, अमरीका और रूस का साथ देगे और स्वतन्त्र ससार की रक्षा के लिये तब तक कन्धे-से-कन्धा भिडाकर लडते रहेगे जब तक कि पूर्ण विजय न प्राप्त कर ली जाय और जब तक कि वे इस सकट-काल के अपने कर्तव्यो को अच्छी तरह पूरा न कर ले।

"अन्त मे, मुझे पूरी आशा और दृढ विश्वास है कि हमारा महान् मित्र ब्रिटेन भारतीयो की माग की प्रतीक्षा किये बिना ही उन्हे शीघ्र-से-शीघ्र वास्तविक राजनीतिक शक्ति प्रदान करेगा जिससे कि वे अपनी आत्मिक तथा भौतिक शक्तियो को और भी अधिक उन्नत कर सके और इस प्रकार यह अनुभव कर सके कि वे सिर्फ आतकवाद के विरोधी राष्ट्रो की विजय के लिए ही युद्ध मे सहयोग नही दे रहे है, बल्कि यह भी अनुभव करे कि उनका यह सहयोग भारतीय स्वतत्रता के उनके सघर्ष मे भी एक युगान्तकारी घटना है। क्रियात्मक दृष्टि से मेरे विचार मे यह सब से अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण नीति होगी जो ब्रिटिश साम्राज्य के यश को चतुर्दिक प्रसारित कर देगी।"

हिज एक्सलेसी जेनरलिस्सिमो चागकाई शेक का भारतीयो के प्रति यह सन्देश मूल रूप से चीनी भाषा मे था, परन्तु उसका अग्रेजी मे अनुवाद श्रीमती चागकाई शेक ने किया जो अखिल भारतीय रेडियो के कलकत्ता स्टेशन से ब्राडकास्ट किया गया था।

गांधीजी से भेंट

चागकाई शेक की भारत-यात्रा जितनी अप्रत्याशित थी उतनी ही गोपनीय थी। जहा तक गैर-सरकारी क्षेत्रो का सम्बन्ध है श्रीमती चागकाई शेक ने सब से पहले पडित जवाहरलाल नेहरू से उनकी गति-विधि के बारे मे पूछताछ की। इसके बाद ही दूसरा समाचार पडित नेहरू को कलकत्ता से यह मिला कि जेनरलिस्सिमो और उनकी पत्नी कलकत्ता पहुंच गए है। अब तक यह एक रहस्य

बना हुआ है कि क्या चीन के ये दोनो महान् नेता भारत-सरकार के आग्रह करने पर यहा आए थे अथवा स्वय अपनी मर्जी से ? सभवत पहली वात ज्यादा ठीक हो। जो कुछ भी हो, हम यह वात कभी नही भूल सकते कि उन्हें गाधीजी से मुलाकात करने मे कितनी कठिनाई अनुभव करनी पडी। आखिरकार उन्होने पूछा कि क्या कलकत्ता मे गाधीजी के लिए भेट करना उपयुक्त रहेगा। गाधीजी ने डरते-डरते उन्हे पत्र लिखा। इस पर जेनरलिस्सिमो ने उत्तर दिया कि मेरे ऊपर आपके पत्र का इतना गहरा असर पडा है कि मै हर हालत मे आप से मुलाकात करने को उत्सुक हूँ। आखिर कलकत्ता मे इस मुलाकात का प्रवन्ध किया गया। दोनो नेताओ ने एक-दूसरे से मुलाकात और लम्बी हार्दिक वात-चीत की।

जैसा कि अव पता चला है कि चागकाई शेक यह कहते थे कि भारत को बिना शर्त युद्ध मे सहयोग देना चाहिये। दूसरी तरफ गाधीजी इस वात पर दृढ थे कि किसी भी हालत में हम लडाई मे शामिल नही हो सकते। इसलिए दोनो के एक राय होने की गुजाइश न थी। हा, इतना अवश्य था कि दोनो के वीच ऊँची सस्कृति की एक अटूट कडी थी, जो चीन और भारत को एक दूसरे से वाधे हुए थी। श्री जिन्ना भी चागकाई शेक से मिले, परन्तु उनकी मुलाकात के वक्त गाधीजी की तरह श्रीमती चागकाई शेक ने दुभाषिये का काम नही किया, वल्कि चागकाई-शेक के एक कर्मचारी ने ही यह जिम्मेवारी निभायी।

२१ फरवरी, १९४२ को रात्रि के समय उक्त दोनो महानुभावो ने कलकत्ता रेडियो स्टेशन से भारतीयो के नाम अपना सदेश ब्राडकास्ट किया। जेनर-लिस्सिमो ने भारतीयो के नाम जो सन्देश दिया वह सर्वथा समीचीन था। उन्होने यह आशा प्रकट की कि ब्रिटेन भारत मे आवश्यक राजनीतिक परिवर्तन कर देगा।

सन्देश का प्रभाव

नि सन्देह जेनरलिस्सिमो की यह भारत-यात्रा सामरिक दृष्टि से बडी महत्वपूर्ण थी। परन्तु इसके अलावा न केवल चीन और भारत के लिए ही उसका सास्कृतिक महत्व था, वल्कि समस्त ससार के लिए था। ब्रिटेन के समाचारपत्रो ने इस अवसर से लाभ उठाते हुए यह प्रश्न किया कि "अगर ब्रिटेन चीन का सम्मान कर सकता है तो कोई वजह नही कि हम भारत के साथ समानता के आधार पर अपनी दोस्ती का हाथ न वढाए ?" लगभग इसी समय यह फैसला हुआ कि भारत-सरकार को ब्रिटेन के युद्ध-मन्त्रिमण्डल मे अपना एक प्रतिनिधि भेजने का निमत्रण दिया जाना चाहिये। भारत मे इसकी प्रतिक्रिया मिश्रित-सी रही, क्योकि यहां ऐसा अनुभव किया जा रहा था कि यह प्रस्ताव महज एक पुरानी

प्रथा की पुनरावृत्ति मात्र है, क्योकि इससे पहले पिछली लडाई मे भी तात्कालिक प्रधान मत्री लॉयड जॉर्ज ने शाही युद्ध-मत्रिमडल मे उपनिवशो के प्रधान मन्त्रियो के साथ-साथ एक भारतीय प्रतिनिधि को भी ले लिया था। यह भी स्मरण रहे कि किस प्रकार लॉयड जॉर्ज ने राजकीय युद्ध-सम्मेलन मे एक प्रस्ताव द्वारा भारतीय प्रतिनिधि को भी वही स्थान दिये जाने का फैसला किया था जैसा कि उपनिवेशो के प्रधान मत्रियो को प्राप्त था। १९१४-१८ के युद्ध मे भारत के प्रतिनिधि सर एस० पी० सिन्हा थे। यह सावित करने के लिए कि इस सम्बन्ध मे क्या ब्रिटेन के इरादे सच्चे थे, श्री एमरी से पूछा गया कि क्या भारतीय प्रतिनिधि को भी वही दरजा हासिल रहेगा जो स्वाधीनता-प्राप्त उपनिवेशो के प्रधान मत्रियो को प्राप्त है? इस पर श्री एमरी ने कहा 'हां'। उन्होने इस सुझाव का समर्थन किया। "मैचेस्टर गार्जियन" ने यह सुझाव दिया कि वाइसराय को इस अवसर से लाभ उठाकर एक ऐसे भारतीय को नामजद करना चाहिये, जिसे स्वयं भारत भी अपना प्रतिनिधि स्वीकार कर सके।

सेठ जमनालाल की मृत्यु

११ फरवरी, १९४२ को महान् दानवीर राजनीतिज्ञ और क्रियाशील व्यक्ति सेठ जमनालाल वजाज का सहसा देहावसान हो गया। वह वर्षो से कांग्रेस के कोषाध्यक्ष और एक अनुभवी तथा पुराने सार्वजनिक कार्यकर्त्ता थे। उनकी मृत्यु वर्धा मे अपने निवास-स्थान पर हृदय की गति के वन्द हो जाने से हो गई।

अपने देशवासियो के लिए उनकी एक अमूल्य देन वर्धा मे अछूतो के लिए श्री लक्ष्मीनारायण का मन्दिर है, जिसकी स्थापना १९२८ मे की गई थी। देश मे अपने ढग का यह एक ही मंदिर है। यदि इस नश्वर जगत् मे जीवन की सफलता का मूल्याकन जीवन की अवधि की वजाय व्यक्ति के नैसर्गिक गुणो के आधार पर किया जाता है तो केवल एक ही व्यक्ति ऐसा है जो अपने त्याग, आत्मोसर्ग, सयम, निर्मोही और विरक्त तथा विनम्र स्वभाव, सद्भाव और मनुष्यमात्र के प्रति अपने प्रेम-भाव के कारण अपने जीवन को सफल कह सकता है और वह व्यक्ति है—सेठ जमनालाल वजाज। वह यद्यपि ५२ वर्ष तक ही जीवित रहे, फिर भी इस थोडे से समय मे ही उन्होने देश के जीवन मे प्रमुख स्थान वना लिया था। भावी कई पीढयो तक वह धनिक-वर्ग के लिए आदर्श वने रहेंगे।

१९.

खुला विद्रोह: १९४२

क्रिप्स-मिशन

१९४२ के प्रारम्भ से ही भारत और ब्रिटेन दोनो ही जगह काफी राजनीतिक सरगर्मी देखने में आई। रूस से लौटने के बाद सर स्टैफर्ड क्रिप्स की शान मे चार चाँद लग गये। सभी व्यक्ति उनकी ओर उत्सुकता-भरी दृष्टि से देखने लगे। भारतीय समस्या के हल के लिए सभी व्यक्ति उनका मुह ताकने लगे। आम लोगो का यह खयाल था कि सर स्टैफर्ड क्रिप्स ही एक ऐसे व्यक्ति है, जो भारतीय प्रश्न पर नये दृष्टिकोण से विचार कर सकते है। इससे ब्रिटेन के राजनीतिक क्षेत्र में उनका स्थान बहुत ऊँचा हो गया था। श्री एमरी, श्री ईडन, श्री लिटलटन और श्री एटली को वह अपने से बहुत पीछे छोड गए थे। वह भारत के गतिरोध के बारे मे पहले ही एक वक्तव्य देकर उसके लिए आवश्यक परिवर्तनो का प्रस्ताव कर चुके थे। यह आशा की जा रही थी कि स्वय प्रधान मत्री श्री चर्चिल भारत के सम्बन्ध मे कोई घोषणा करने वाले है। १० मार्च, १९४२ को सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने भी इसकी पुष्टि करते हुए घोषणा की कि सभा की अगली बैठक में प्रधान मन्त्री भारत के सम्बन्ध में एक वक्तव्य देगे। इसके बाद ही यह घोषणा की गई कि सर स्टैफर्ड क्रिप्स एक खास उद्देश्य को लेकर भारत जा रहे है। उनका भारत-आगमन इस दृष्टि से बहुत ही उपयुक्त था कि वह इस बात की कोशिश करेगे कि अल्पसख्यक देश की राजनीतिक प्रगति मे नाहक रुकावट न पैदा करते रहे और न बहुसख्यक अल्पसख्यको के हितो की उपेक्षा करे। निस्सदेह यह एक उच्च उद्देश्य था। ११ मार्च १९४२ को श्री चर्चिल ने कामन सभा मे भाषण देते हुए जो बाते कही वे यहाँ सक्षेप मे दी जा रही है।

प्रधान मन्त्री का वक्तव्य

श्रीचर्चिल ने कहा—

"जापानियो की प्रगति के कारण भारत के लिए जो खतरा पैदा हो गया है उसे देखते हुए हम यह आवश्यक समझते है कि शत्रु से देश की रक्षा करने के लिए हमे भारत के सभी वर्गो का सगठन करना चाहिये। अगस्त, १९४० मे हमने भारत के सम्बन्ध मे अपने उद्देश्यो और नीति के सम्बन्ध मे पूर्ण रूप से प्रकाश डालते हुए एक घोषणा की थी। सक्षेप मे उसका आशय यह था कि लडाई खत्म होने के बाद यथासंभव जल्दी-से-जल्दी भारत को पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य दे

दिया जाएगा और उसका दरजा इस देश के तथा अन्य स्वाधीनता प्राप्त उपनिवेशो के समान रहेगा। इसके अलावा स्वय भारतीय पारस्परिक समझौते-द्वारा देश के लिए एक ऐसा विधान तैयार करेगे जो देश के सभी मुख्य वर्गो को स्वीकृत होगा। परन्तु इस सम्बन्ध मे हमे अल्पसख्यको के हितो का ध्यान रखना होगा, जिनमे दलित जातिया भी शामिल है। इसके अलावा रियासतो के साथ हमारी जो सन्धिया है उनका तथा भारत के साथ अपने पुरातन सम्बन्धो के कारण हमारी जो जिम्मेवारिया है उनका भी हमे खयाल रखना होगा।

"चुनाचे हमने युद्ध-मत्रिमण्डल के एक सदस्य को भारत भेजने का फैसला किया है जिससे कि वह वहा जाकर भारतीय नेताओ के साथ निजी बातचीत द्वारा इस बात की तसल्ली कर ले कि हमने जो फैसला किया है और जो हमारे खयाल से न्यायोचित है तथा इस समस्या का अन्तिम हल है, सफल हो जाएगा। अर्थात् भारतीय उसे स्वीकार कर लेगे। हमे यह स्मरण रखना चाहिये कि विश्व के स्वतत्रता के सग्राम मे भारत को प्रमुख भाग लेना है और उसे चिरकाल से युद्ध-रत बहादुर चीनी जनता का भी हाथ बँटाना है। भारत एक ऐसा अड्डा है जहाँ से हम अत्याचार और आतक की प्रगति पर जोरदार प्रत्याक्रमण कर सकते है।"

क्रिप्स के प्रस्ताव

सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने ब्रिटिश सरकार की ओर से नीचे लिखे प्रस्ताव प्रकाशित किये —

"भारत के भविष्य के सम्बन्ध मे दिये गए वचनो के पूरे होने के विषय में जो चिन्ता प्रकट की गई है उस पर विचार करते हुए सम्राट् की सरकार स्पष्ट तथा निश्चित शब्दो मे उन उपायो को बता देना आवश्यक समझती है, जो भारत मे शीघ्रातिशीघ्र स्वायत्त शासन स्थापित करने के लिए वह करना चाहती है। ऐसा करने मे उसका उद्देश्य एक नवीन भारतीय सघ को जन्म देना है। यह सघ एक स्वाधीनताप्राप्त उपनिवेश होगा और ब्रिटेन तथा साम्राज्य के अन्य स्वाधीनता प्राप्त उपनिवेशो से उसका सम्बन्ध सम्राट् के प्रति समान राजभक्ति-द्वारा कायम रहेगा। यह भारतीय सघ पद की दृष्टि से पूरी तौर पर ब्रिटेन तथा अन्य स्वाधीनताप्राप्त उपनिवेशो के समान होगा और आन्तरिक शासन तथा वैदेशिक समस्याओ के सम्बन्ध मे भी वह किसी प्रकार से भी पराधीन न होगा। इसलिए सम्राट् की सरकार निम्न घोषणा करती है —

(क) युद्ध बन्द होने के बाद तुरन्त ही भारत के लिए नवीन शासन-विधान का निर्माण करने के उद्देश्य से बाद मे वर्णित आधार पर एक निर्वाचित सस्था कायम की जाएगी।

(ख) विधान बनानेवाली सस्था मे देशी रियासतो-द्वारा भाग लिये जाने की व्यवस्था जिस प्रकार से की जाएगी, उसका वर्णन नीचे किया गया है।

(ग) सम्राट् की सरकार इस प्रकार तैयार किये गए विधान को स्वीकार करके कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर केवल उसी अवस्था मे लेती है जब कि निम्न शर्तें भी पूरी होती हैं—

(१) यदि ब्रिटिश भारत का कोई प्रान्त नये विधान को स्वीकार न करना चाहे तो उसे वर्तमान वैधानिक स्थिति को कायम रखने का अधिकार रहे, किन्तु साथ मे यह व्यवस्था भी रहेगी कि यदि वह प्रान्त बाद में चाहे तो विधान मे सम्मिलित कर लिया जाय।

"नये विधान मे सम्मिलित न होनेवाले ऐसे प्रान्तो को, यदि वे चाहे, सम्राट् की सरकार नया विधान देना स्वीकार करेगी और उनका पद भी पूर्ण रूप से भारतीय सघ के ही समान होगा। यह विधान उस क्रम से मिलते-जुलते ढंग पर तैयार होगा, जिसका उल्लेख यहा किया गया है।

(२) सम्राट की सरकार तथा उस विधान-निर्मात्री सस्था के बीच एक सधि होगी। अग्रेजो से भारतीयो के कन्धो पर पूर्ण उत्तरदायित्व हस्तान्तरित होने की सभी आवश्यक समस्याओ का पूर्ण समावेश इस सधि मे रहेगा। सम्राट् की सरकार-द्वारा दिये गए आश्वासनो को ध्यान मे रखते हुए सधि मे जातीय तथा धार्मिक अल्पसख्यको की रक्षा के लिए प्रबन्ध रहेगा, किन्तु उसमे ऐसा कोई प्रतिबन्ध न रखा जाएगा जिसके कारण भारतीय सघ के ब्रिटिश राष्ट्रमडल के अन्य सदस्यो से अपने भावी सबध निश्चित करने के अधिकार में कमी होने की सभावना हो।

"देशी रियासते नये विधान के अनुसार चलना चाहें अथवा नही, नयी परिस्थिति को दृष्टि मे रखते हुए उनकी सन्धियो की व्यवस्था मे सशोधन करना आवश्यक होगा।

(घ) यदि प्रमुख सप्रदायो के नेताओ ने युद्ध समाप्त होने तक और किसी प्रणाली के विषय मे मिलकर निश्चय न कर लिया, तो विधान-निर्मात्री संस्था का निर्माण इस प्रकार होगा—

"प्रान्तीय चुनावो के परिणाम ज्ञात होते ही (युद्ध समाप्त होने पर प्रान्तीय चुनावो की आवश्यकता पडेगी) प्रान्तो की निम्न धारा-सभाओ के सपूर्ण सदस्य मिलकर एक निर्वाचक मडल की हैसियत से बैठेगे और आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर विधान-निर्मात्री सस्था का चुनाव करेंगे। निर्वाचक मडल मे जितने व्यक्ति होगे उसकी दशमाश सख्या इस विधान-निर्मात्री सस्था मे होगी।

"ब्रिटिश-भारत की तरह देशी राज्यो से भी अपनी जन-सख्या के अनुपात से

प्रतिनिधि नियत करने को कहा जाएगा और इन प्रतिनिधियों के अधिकार ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों के समान रहेंगे।

(ङ) भारत के सम्मुख जो सकट-काल उपस्थित है उसके बीच मे और जब तक कि नया विधान लागू नही होता तब तक सम्राट् की सरकार भारत की रक्षा, नियत्रण और निर्देशन का उत्तरदायित्व सपूर्ण विश्वयुद्ध-प्रयत्नो के एक अग के रूप मे अपने हाथ में रखेगी। किन्तु भारतीय जनता के सहयोग से देश के सपूर्ण सैनिक, नैतिक तथा आर्थिक साधनों को सगठित करने की जिम्मेदारी भारत-सरकार पर रहेगी। सम्राट् की सरकार की इच्छा है, और वह भारतीय जनता के विविध वर्गों के नेताओं का आह्वान करती है कि वे अपने देश, ब्रिटिश राष्ट्र-मंडल तथा मित्रराष्ट्रों के सलाह-मशविरे मे तुरन्त और प्रभावोत्पादक ढग से भाग ले। इस प्रकार एक महान् कार्य के सम्पादन मे वे रचनात्मक और सक्रिय सहायता प्रदान कर सकेंगे, जो भारत की भावी स्वाधीनता के लिए बहुत ही महत्त्व-पूर्ण है।"

क्रिप्स की नेताओं से भेंट

समिति १० अप्रैल तक क्रिप्स-प्रस्तावो पर सोच-विचार करती रही। लेकिन १० अप्रैल को कांग्रेस के प्रधान की सर स्टैफर्ड क्रिप्स के साथ अन्तिम मुलाकात के बाद कांग्रेस का यह भ्रम दूर हो गया। निस्सन्देह यह एक बडी विचित्र-सी बात है कि जिस आधार को लेकर विभिन्न दलो मे यह बातचीत शुरु हुई थी अन्त मे वही आधार एक मृगमरीचिका साबित हो और सारी बातचीत उस पर आकर टूट जाय।

क्रिप्स योजना का अन्त

सर स्टैफर्ड क्रिप्स के प्रस्ताव ३० मार्च, १९४२ को प्रकाशित हुए। उस समय वह बडे विचित्र और अनोखे प्रतीत हुए। उनमे प्रत्येक दल को खुश करनेवाली बाते थी। कांग्रेस को प्रसन्न करने के लिए इन प्रस्तावो की पूर्व-भूमिका में औपनिवेशिक स्वराज्य, वेस्टमिन्स्टर कानून, पृथक् होने का अधिकार और सर्वोपरि बात विधान-परिषद् का उल्लेख था जिसे प्रारभ मे ही ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डल से पृथक् हो जाने की घोषणा कर देने का अधिकार दिया गया था। मुस्लिम-लीग के लिए सब से बडी बात यह थी कि किसी भी प्रान्त को भारतीय सघ से अलग हो जाने का हक था। नरेशो को न केवल इस बात की आजादी थी कि वे चाहे तो इस सघ मे शामिल हो या न हो बल्कि विधान परिषद् मे रियासतो के प्रतिनिधि भेजने का एकमात्र अधिकार भी उन्हे ही दिया गया था। रियासतो की जनता की बुरी तरह उपेक्षा की गई थी और यहा तक कि उन्हे यह हक भी नही था कि वे गुलामो की तरह अपने मालिको के साथ भी वहा जा सके। कार्यसमिति को ब्रिटेन की इस योजना का रहस्य समझने मे बहुत देर नही लगी। इससे साफ जाहिर था कि ब्रिटेन का इरादा सत्ता हस्तान्तरित करने का बिल्कुल नही था। आजादी के सवाल को टाल-मटोल कर खटाई मे डालने की कोशिश की गई थी। इसके अलावा तीसरी बात यह थी कि रियासतो की जनता को विधान परिषद् मे अपने प्रतिनिधि भेजने के अधिकार से वचित कर दिया गया था। इससे रियासतो की जनता मे बेचैनी और क्षोभ फैल जाना स्वाभाविक और अनिवार्य था। चुनाचे लोक-परिषद् के प्रधान पडित जवाहरलाल ने सारी स्थिति पर प्रकाश डालते हुए इस सम्बन्ध मे सर स्टैफर्ड क्रिप्स को लिखा और यह सुझाव पेश किया कि इस विषय पर और सोच-विचार करने के लिए उन्हे उक्त परिषद् के उप-प्रधान से भेट करनी चाहिये। फलत ३१ मार्च को परिषद् के उप-प्रधान ने सर स्टैफर्ड क्रिप्स से बातचीत की। उन्होने बताया कि किस प्रकार ज्योही एक बार ब्रिटिश सरकार के प्रस्तावो के सम्बन्ध मे कोई समझौता हो जाएगा, देशी नरेश भी स्वत वाइसराय और राजनीतिक विभाग के नैतिक प्रभाव मे आ जाएगे और वे स्वयमेव रियासतो की जनता के प्रतिनिधियो को विधान-परिषद् मे भेज देगे।

परन्तु देशी राज्यो की जनता के राजनीतिक कष्टों के निवारण के लिए यह एक अप्रत्याशित औपध्र थी जिसे जल्दी से प्रयोग मे नही लाया जा सकता था। यह एक ऐसा प्रस्ताव था, जिसे आसानी से स्वीकार नही किया जा सकता था। सर स्टैफर्ड क्रिप्स का यह कहना था कि रियासतो के साथ ब्रिटिश सरकार ने जो सधिया कर रखी है, उनकी शर्तो के अन्तर्गत उसके लिए रियासतो को विधान-परिषद् मे जनता के प्रतिनिधि भेजने की किसी खास प्रणाली पर अमल करने के लिए मजबूर करना सभव नही था। परन्तु उनके पास इस तर्क का कोई जवाब नही था कि ५६२ रियासतो मे से केवल तीस-चालीस रियासतों को छोडकर बाकी किसी भी रियासत के साथ ब्रिटिश सरकार की कोई सधि नही थी। शेष के साथ तो उसके सम्बन्ध केवल सनदो और समझौतो पर आधारित थे।

अब समझौते के प्रमुख और महत्त्वपूर्ण पहलू अर्थात् रक्षा के प्रश्न पर विचार कीजिए। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल ने भारत के विभिन्न दलो की मजूरी के लिए सर स्टैफर्ड क्रिप्स के जरिये जो प्रस्ताव यहाँ भेजे थे, उनमे रक्षा के प्रश्न को छुआ तक नही गया था। परन्तु बात यही तक सीमित नही थी। दिल्ली के अपने पहले ही पत्र-प्रतिनिधि-सम्मेलन मे सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने साफ-साफ शब्दो मे यह कह दिया था कि अगर सभी दल एक साथ मिलकर रक्षा-विषय को भारतीयो के सुपुर्द करने की माग करे तब भी उसे उन्हे हस्तान्तरित नही किया जा सकता। इस प्रकार मामला बिलकुल साफ था। इसीसे प्रभावित होकर काग्रेस ने क्रिप्स-योजना को ठुकरा देने का फैसला किया। जब समाचारपत्रो की इस सम्बन्ध में की गई भविष्यवाणियों का ज्ञान सर स्टैफर्ड क्रिप्स को हुआ तब उन्होने पहली अप्रैल को विनम्रतापूर्वक काग्रेस के प्रधान और पडित जवाहरलाल को लिखा कि मेरी यह इच्छा है कि आप लोग इस प्रश्न पर प्रधान सेनापति से बातचीत करे। दूसरे दिन उन्होने एक और पत्र लिखा जिसमे यह आग्रह किया कि यदि काग्रेस कार्यसमिति ने इन प्रस्तावो को ठुकराने का ही फैसला कर लिया हो तो भी उसे अपना निर्णय तब तक नही प्रकाशित करना चाहिये, जब तक कि मै काग्रेस के प्रधान से मुलाकात न कर लू। परन्तु इससे पूर्व सर स्टैफर्ड क्रिप्स ३० मार्च को काग्रेस के प्रधान को लिख चुके थे कि न काग्रेस के प्रधान और न पंडित जवाहरलाल नेहरू की प्रधान सेनापति से हुई मुलाकात का और न उनसे सर स्टैफर्ड क्रिप्स की मुलाकात का कोई ऐसा परिणाम निकला जिससे प्रभावित होकर कार्यसमिति अपना निर्णय बदल लेती। लेकिन उसने १० अप्रैल तक अपना प्रस्ताव प्रकाशित नही किया।

इसी बीच काग्रेस कार्यसमिति द्वारा क्रिप्स-प्रस्तावो को ठुकरा दिये जाने पर सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने रक्षा-व्यवस्था के विषय मे एक और हल पेश किया जो कांग्रेस को सर्वथा अमान्य था, इसलिए उसने इस बार भी उसे ठुकरा दिया। इस सुझाव

का विस्तृत उल्लेख उस पत्र मे किया गया है, जो उन्होने ७ अप्रैल, १९४२ को काग्रेस के प्रधान को लिखा था। इसके अनुसार प्रधान मत्री युद्ध-सस्दय के रूप में वाइसराय की शासन-परिपद् मे बने रहेगे और युद्ध-सम्वन्वी सभी कार्रवाइयो का नियत्रण उनके हाथ मे रहेगा। वाइसराय की शासन-परिपद् मे रक्षा-विभाग का सदस्य एक भारतीय भी रहेगा, जिसके अधीन ये विपय होगे —जनसपर्क-विभाग, सैन्य-विघटन और युद्धोत्तर पुनर्निर्माण, पेट्रोल का नियत्रण, पूर्वी देश-समूह परिपद् का प्रतिनिधित्व, सैनिको की सुख-सुविधाओ की व्यवस्था, कैण्टीन (उपाहार-गृह) सगठन, कुछ गैर-टेकनिकल शिक्षण सस्थाए, सेना के लिए स्टेशनरी और छपाई आदि की व्यवस्था, विदेश से आनेवाले सभी शिप्ट-मडलो और अफसरो के लिए आवश्यक प्रवन्ध की देखरेख—यदि वह चाहे तो उनके आगमन पर आपत्ति भी उठा सकता है—खतरेवाले इलाको से लोगो का स्थानान्तरण, सिगनल-व्यवस्था का एकीकरण तथा आर्थिक सुख-सुविधा की व्यवस्था।

इस प्रकार साफ जाहिर है कि सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने ७ अप्रैल के अपने सुझाव मे जिस दुहरी शासन पद्धति की योजना का प्रस्ताव किया था उसकी जगह अब इस नये सुझाव के अनुसार, उन दायित्वो को छोडकर जो प्रधान सेनापति शासन परिपद् के युद्ध-सदस्य के रूप मे स्वय उठाते है, रक्षा-विभाग के अन्तर्गत शेप सब विषय प्रतिनिधित्व-प्राप्त भारतीय को पूर्ण रूप से सौप दिये जाएगे। एक तरह से यह कार्यो का विभाजन न होकर उनके उत्तरदायित्व का बँटवारा था। १० अप्रैल को इसके स्पष्टीकरण के सम्बन्ध मे सर स्टैफर्ड क्रिप्स से जो मुलाकात की गई उसके दौरान मे उन्होने कहा कि ये विषय युद्ध-विभाग के सदस्य के रूप मे प्रधान सेनापति की अधिकार-सीमा मे होगे, परन्तु जब उनसे विषयो की तालिकाओ के सम्वन्ध मे स्पष्टीकरण करने को कहा गया तब उन्होने फिर १० अप्रैल वाली उन तालिकाओ का उल्लेख किया जो नामजूर की जा चुकी थी। जिन कारणो से अन्त मे जाकर क्रिप्स-प्रस्ताव अस्वीकार किये गए उनमे से एक मुख्य बात यह भी थी। दूसरा कारण धारासभा के प्रति मत्रिमडल के उत्तरदायित्व का प्रश्न था। सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने इस बात से साफ इन्कार कर दिया कि उन्होन २५ मार्च की अपनी मुलाकात के दौरान मे मौलाना आजाद से बातचीत करते समय 'मत्रिमडल' शब्द का प्रयोग किया था और यदि काग्रेस इस तरह का उत्तर-दायित्व चाहती है तो उसे अपनी यह माग वाइसराय के सामने रखनी चाहिये।

इस प्रकार हम देखते है कि कार्य समिति तीन बार इन प्रस्तावो को ठुकरा चुकी थी, लेकिन सर स्टैफर्ड क्रिप्स इसे समाचारपत्रो मे प्रकाशित नही होने देना चाहते थे। पहली बार उसने २ अप्रैल को इन प्रस्तावो को नामजूर किया था। इसके बाद क्रिप्स ने कार्यसमिति के पास अपना रक्षा-व्यवस्था सम्वन्धी सुझाव

भेजा और उसे भी कांग्रेस ने ७ अप्रैल को रद कर दिया। लेकिन इस बार कर्नल जॉनसन ने इसे पत्रो मे न प्रकाशित करने का आग्रह किया। इसके बाद रक्षा-व्यवस्था के सम्बन्ध मे कर्नल जॉनसन ने एक और सुझाव पेश किया। उसके सम्बन्ध मे कई सशोधन पेश किये गए। पर अन्त मे १० अप्रैल को उसे भी कार्य-समिति ने नामजूर कर दिया। उपर्युक्त बातो से स्पष्ट है कि क्रिप्स-योजना रक्षा और मत्रिमडल के उत्तरदायित्व के प्रश्न पर आकर असफल हो गई।

लार्ड हेलीफैक्स का भाषण

भारत मे क्रिप्स-योजना की बातचीत अभी चल ही रही थी कि ७ अप्रैल की रात्रि को न्यूयार्क के टाउनहाल मे भाषण देते हुए भारत के भूतपूर्व वाइसराय लार्ड इरविन और अमरीका के तत्कालीन ब्रिटिश राजदूत लार्ड हेलीफैक्स ने यह सभावना प्रकट करते हुए कि सम्भवत भारतीय प्रवक्ता क्रिप्स प्रस्तावो को ठुकरा दे, कहा —

"अगर हमारा प्रयत्न असफल रहा तो ब्रिटिश सरकार को बडे-बडे सगठित भारतीय दलो की सहायता अथवा सहयोग के विना ही विवश होकर अपने कर्त्तव्य का पालन करना पडेगा। भारत के सबसे वडे सुसगठित राजनीतिक दल भारतीय राष्ट्रीय महासभा के सहयोग से हम वचित रहे है। कांग्रेस समस्त भारत का एक छोटा-सा भाग है और भारत के अन्य दल और सस्थाएँ, उसका यह एकमात्र दावा कि वह सारे भारत का प्रतिनिधित्व करती है, मानने को तैयार नही है।"

यह भाषण ७ अप्रैल को दिया गया और यह निश्चित है कि ऐसा भाषण देने के लिए लार्ड हेलीफैक्स को आवश्यक हिदायतें लन्दन से ही प्राप्त हुई होगी। लन्दन मे ब्रिटिश सरकार ने क्रिप्स-योजना की असफलता को निश्चित समझ लिया था और इसकी सूचना उसने न्यूयार्क को भी दे दी। दूसरी बात यह है कि ब्रिटेन अमरीका को खुश करने की फिक्र मे था। इसी उद्देश्य के लिए लार्ड हेलीफैक्स के उक्त भाषण की व्यवस्था भी की गई थी। इसलिए यह कहना अतिशयोक्ति-पूर्ण न होगा कि मूल क्रिप्स-योजना का असली मकसद भी अमरीका के जनमत को सतुष्ट करना ही था।

क्रिप्स का विरोधी रुख

चाहे युद्ध की परिस्थिति मे अथवा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति मे कोई परिवर्तन हुआ हो अथवा कोई और वजह हुई हो,लेकिन यह एक सचाई है कि १० अप्रैल की शाम को सर स्टैफर्ड क्रिप्स के रुख मे पूर्ण परिवर्तन हो गया और वह इस वातचीत को वन्द कर देने के लिए व्यग्र और चिंतित-से दिखाई दिये। इधर इस वातचीत का खत्म होना था कि सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने विरोधी रुख अख्तियार कर लिया और

वह काग्रेस पर इलजाम-पर-इलजाम लगाते चले गए। १० अप्रैल की शाम को ज्यो ही काग्रेस के प्रधान और पडित नेहरू सर स्टैफर्ड क्रिप्स के यहा से वापस लौटे त्यो ही सर स्टैफर्ड क्रिप्स फौरन श्री जिन्ना की कोठी पर दौडे गए। अगले दिन कार्यसमिति को उनकी तरफ से एक कटु पत्र मिला जिसमें उन्होने काग्रेस पर यह दोप लगाया कि वह अल्पसख्यको पर शासन करना चाहती है और उन्हें दवाकर रखना चाहती है। यह वडे आश्चर्य की वात थी कि उन्होने ऐसा पत्र लिखा, क्योकि काग्रेस ने तो इस सम्वन्ध में एक शव्द भी नही कहा था कि उसे या मुस्लिम लीग अथवा अन्य राजनीतिक दलो को कितने-कितने स्थान मिलने चाहिए। न कभी काग्रेस ने यही सुझाव पेश किया था कि प्रधान सेनापति के अलावा राष्ट्रीय सरकार के १४ सदस्यो में से उसे वहुमत दिया जाना चाहिये। इग्लैण्ड वापस पहुँचने पर सर स्टैफर्ड ने काग्रेस पर एक और दोप यह लगाया कि वह लडाई के दौरान मे ही विधान में परिवर्तन करना चाहती है, यद्यपि इस दिशा मे कभी कोई कोशिश नही की गई थी।

क्रिप्स की वापसी

इस प्रकार हम यह कह सकते है कि व्रिटिश मत्रि-मण्डल के प्रस्ताव अगस्त १९४० के प्रस्तावो का ही एक परिवर्द्धित सस्करणमात्र थे। हम इसे यो भी कह सकते है कि ये व्रिटिश मत्रि-मण्डल के निर्जीव और मृत शिशु के समान थे और सर स्टैफर्ड क्रिप्स नयी दिल्ली मे वीस दिन तक इस प्राणहीन शिशु मे कृत्रिम उपायो से जीवन-सचार करने की चेष्टा कर रहे थे। उसमे जीवन फूकने की उन्होने लाख कोशिश की, पर सब वेकार गया। वीच-वीच मे कभी उसमे थोडा स्पन्दन और गति का अनुभव होने लगता था। परन्तु काग्रेस कार्यसमिति ने ३१ मार्च, १९४२ को इस शिशु के मरने की घोषणा कर दी थी—अर्थात् उन प्रस्तावो के प्रकाशित होने से पहले ही उसने उन्हे असफल कर दिया, केवल सर स्टैफर्ड क्रिप्स के अनुरोध और निवेदन करने पर उसने अपनी ओर से उनके ठुकराए जाने का समाचार प्रकाशित नही होने दिया। इसके वाद उसे अनेक तरह की छोटी-मोटी रिआयते देकर फुसलाने की कोशिश की गई, लेकिन इसका परिणाम जले पर नमक छिडकने-जैसा ही हुआ। दरअसल ईमानदारी से गलती को सुधारने की कोशिश ही नही की गई। ८ अप्रैल तक यही स्थिति रही। इसके बाद उन्हे फिर नामजूर कर दिया गया और अब उनकी सफलता की कोई आशा न रही। उस शिशु के पुनर्जीवित होने की सब आशाओ पर पानी फिर गया। लेकिन इसी बीच एक अमरीकी डाक्टर कर्नल जॉनसन आ गया। पहले डाक्टर सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने उससे इस शिशु के बारे मे सलाह-मशविरा किया। परन्तु इस नये डाक्टर का नुसखा भी वेकार रहा और अन्त मे ११ अप्रैल को इस

शिशु को जमीन मे दफ़ना दिया गया—अर्थात् ११ अप्रैल को क्रिप्स-प्रस्तावो के अन्तिम रूप से असफल हो जाने की घोषणा कर दी गई। सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने भी अपने प्रस्ताव ११ अप्रैल को वापस ले लिए और १२ अप्रैल को वह इग्लैण्ड लौट गए। फिर भी श्री चर्चिल और श्री एमरी यही घोषणा करते रहे कि प्रस्ताव ज्यों-के-त्यो कायम है और उनमें किसी किस्म का परिवर्तन नही किया गया है।

विफलता के कारण

भारत के सभी प्रमुख दलो और सार्वजनिक सस्थाओ ने क्रिप्स-प्रस्तावो को नामजूर कर दिया था। परन्तु प्रत्येक की वजह अलग-अलग थी। यह स्थिति बिलकुल साइमन-कमीशन-जैसी थी। उस समय भी १९२७-२९ मे विभिन्न दलो और सार्वजनिक सस्थाओ ने अलग-अलग वजहो से उसका वहिप्कार किया था। काग्रेस-द्वारा क्रिप्स-योजना को नामजूर किये जाने की मुख्य वजह यह थी कि उनके अनुसार शासन-परिपद् धारासभा के प्रति जिम्मेदार नही थी। इसके अलावा ऐसा करने के दूसरे और गौण कारण ये थे—एक तो प्रान्तो को भारतीय सघ से अलग हो जाने की आज्ञा दे दी गयी थी, दूसरे भारतीय रियासतो की जनता को इस योजना के अन्तर्गत कोई प्रतिनिधित्व नही दिया गया था। उसके लिए उसमे कोई गुजाइश नही थी। तीसरे, रक्षा और युद्ध-विभागो को सुरक्षित विषय मानकर उन्हे भारतीयो को देने से इन्कार कर दिया गया था। मुस्लिम लीग की स्थिति यह थी कि वह इस योजना को केवल उस हालत मे स्वीकार करने को राजी थी जब काग्रेस भी उसे स्वीकार कर लेती। उसने इन प्रस्तावो को इस वजह से नामजूर कर दिया कि उनके अनुसार प्रान्तो को सघ से अलग होने का पूरा और साफ-साफ शब्दो मे कोई अधिकार नही दिया गया था और न ही उनसे पाकिस्तान की माँग ही पूरी होती थी। हिन्दू-महासभा ने उसे इसलिए अस्वीकार कर दिया कि उनमे भारत के विभाजन की गुजाइश रखी गई थी, हालाँकि इस बात की बडी अस्पष्ट-सी सभावना थी। दलित वर्ग का यह कहना था कि हमें काफी सरक्षण नही दिये गये। भारतीय ईसाइयो और मजदूरो ने उसे उसी बिना पर नामजूर कर दिया जिस पर काग्रेस ने किया था। सिर्फ रेडिकल डेमोक्रेटिक दल ही एक ऐसा दल था जिसने उसे स्वीकार किया। रियासतो को उससे कोई सरोकार नही था क्योकि चाहे वे भारतीय सघ में शामिल होती या न होती; उनके लिए तो नयी परिस्थिति मे अपने सधिजन्य अधिकारो मे संशोधन करना ही था। रही रियासतो की जनता, उसके लिए उसमे कोई गुंजाइश नही थी। इसलिए वह उसकी ओर देखना भी नही चाहती थी।

सामूहिक आन्दोलन का निश्चय

भारत से लन्दन लौटकर सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने अमरीका के नाम जो भाषण ब्राडकास्ट किया उसकी बडी जोरदार प्रतिक्रिया हुई। इस भाषण मे क्रिप्स ने कहा, "हमने प्रतिनिधित्वपूर्ण भारतीय राजनीतिक नेताओ को तत्काल वाइसराय की शासन-परिषद् मे ऐसा प्रतिनिधित्व देने का प्रस्ताव किया जैसा कि आपके उन मन्त्रियो को प्राप्त है जो आप (अमरीका) के राष्ट्रपति को परामर्श देत है।" उन्हे इतने से ही सतोष नही हुआ। उंन्होने यह भी कहा कि काग्रेस अल्पसख्यको पर छा जाना चाहती है। उसने गाधीजी के इशारे पर ही इन प्रस्तावो को ठुकराया। गाधीजी ने इन प्रस्तावो को एक दिवालिए बैक की गैर-मियादी हुँडी कहा हे। राजनीतिज्ञो, पत्रकारो, लेखको और प्रचारको ने उन्ही असत्य और वेबुनियादी वातो को लेकर झूठा प्रचार करना शुरू कर दिया।

परन्तु गाधीजी गिरे हुए राजनीतिज्ञ नही थे। उनका सिद्धान्त असत्य का मुकाबला सत्य और अन्धकार का मुकावला प्रकाश तथा मृत्यु पर जीवन द्वारा विजय पाने का था। इसलिए उन्होने अप्रैल, १९४२ के अन्त मे अपना आन्दोलन शुरू कर दिया। उन्होने कहा—"भारत के लिए चाहे इसका कैसा भी परिणाम क्यो न हो, उसकी और ब्रिटेन की भी वास्तविक सुरक्षा इसी मे है कि अग्रेज व्यवस्थापूर्वक और समय रहते भारत से चले जाएँ।" यह कोई पहला मौका नही था जब कि गाधीजी ने अग्रेजो से भारत को छोड कर चले जाने को कहा हो। २२ अप्रैल १९४१ को श्री एमरी के उत्तेजनापूर्ण भाषण का प्रत्युत्तर देते हुए गाधीजी ने कहा था, "आखिर ब्रिटेन के राजनीतिज्ञ यह बात क्यो नही मान लेते कि यह भारत का घरेलू मामला है ? वे भारत से एक बार हट जाए, मै वादा करता हू कि काग्रेस, लीग और देश के दूसरे सभी दल तब यह अनुभव करने लगेगे कि सब का भला इसी मे है कि हम सब आपस मे मिल जाएँ।" गाधीजी का दृढ विश्वास था कि ब्रिटेन के इस देश मे बने रहने से जापानियो को भारत पर आक्रमण करने का प्रोत्साहन मिलता है।"मुझे यकीन हो गया है कि अव वह वक्त आ गया है जब अग्रेजो और भारतीयो को एक-दूसरे से सर्वथा किनारा कर लेना चाहिए। अगर अग्रेज भारत से तत्काल और व्यवस्थित रूप मे, पूर्णत हट जाए तो उससे मित्र-राष्ट्रो का लक्ष्य एकदम पूर्ण नैतिक आधार पर अधिष्ठित हो जाएगा।"

आगे चलकर गाधीजी ने इस बात को स्पष्ट किया कि किस प्रकार हमे जापानियो का विशुद्ध अहिसात्मक असहयोग के आधार पर विरोध करना चाहिए। उन्होने लोगो को सलाह दी कि उन्हे किसी भी तरीके से जापानियो की मदद नही करनी चाहिये। और न जापानियो के प्रति किसी प्रकार का दयालुतापूर्ण व्यवहार ही करना चाहिए, उन्हे तो करोडो प्राणियो की आहुति देने को तैयार रहना

की धारासभा और कांग्रेस की प्रारंभिक सदस्यता से भी इस्तीफा दे दें। १५ जुलाई को उन्होंने ऐसा ही किया भी।

कार्य समिति का प्रस्ताव

जुलाई, १९४२ मे कार्यसमिति का एक लम्बा अधिवेशन हुआ जो ६ जुलाई से लेकर १४ जुलाई तक जारी रहा। उस समय ससार की सुरक्षा और नाजीवाद, फासिस्टवाद, सैनिकवाद तथा साम्राज्यवाद के अन्त के लिए भारत में तत्काल ब्रिटिश शासन का अन्त नितान्त आवश्यक समझा जा रहा था। सितम्बर १९३९ से लेकर अक्टूबर, १९४० तक कांग्रेस ने ब्रिटेन को परेशानी मे न डालने की नीति अख्त्यार की थी और फिर अक्टूबर, १९४० से लेकर अक्टूबर, १९४१ तक उसने व्यक्तिगत सत्याग्रह-आन्दोलन के जरिये अपना विरोध प्रकट करते हुए जान-बूझ कर सयम से काम लिया था। लेकिन ब्रिटेन पर इसका रत्ती भर भी असर नही हुआ। ब्रिटिश सरकार से भारत से हट जाने की जो माग की जा रही थी उसके पीछे भी सद्भावना थी और उसके फलस्वरूप देश मे राष्ट्रीय सरकार की स्थापना मे मदद मिलती। ब्रिटिश सरकार से इस प्रस्ताव को स्वीकार करने का जोरदार आग्रह किया गया —

"जो घटनाए प्रतिदिन घट रही है और भारतवासियो को जो-जो अनुभव हो रहे है उनसे कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओ की यह धारणा पुष्ट होती जा रही है कि भारत मे ब्रिटिश शासन का अन्त अति शीघ्र होना चाहिये। यह केवल इसलिए नही कि विदेशी सत्ता अच्छी-से-अच्छी होते हुए भी स्वय एक दूषण और परतत्र जनता के लिए अनिष्ट का अबाध स्रोत है, बल्कि इसलिए कि दासत्व-शृङ्खला मे जकडा हुआ भारत अपनी ही रक्षा के काम मे, और मानवता का विध्वस करने वाले युद्ध के भाग्य-चक्र को प्रभावित करने मे, पूरा पूरा भाग नही ले सकता। इस प्रकार भारत की स्वतत्रता न केवल भारत के हित मे आवश्यक है, बल्कि ससार की सुरक्षा के लिए और नाजीवाद, फासिस्टवाद, सैनिकवाद और अन्य प्रकार के साम्राज्यवादो एव एक राष्ट्र पर दूसरे राष्ट्र के आक्रमण का अन्त करने के लिए भी। ससारव्यापी युद्ध के छिडने के बाद से कांग्रेस ने यत्नपूर्वक परेशान न करने वाली नीति को ग्रहण किया है। सत्याग्रह के प्रभावहीन हो जाने का खतरा उठाते हुए भी कांग्रेस ने इसे जान बूझ कर साकेतिक स्वरूप दिया और यह इस आशा से कि परेशान न करनेवाली इस नीति के यौक्तिक पराकाष्ठा तक पहुँचने पर इसका यथोचित समादर किया जायगा और वास्तविक सत्ता लोकप्रिय प्रतिनिधियो को सौप दी जायगी जिससे कि राष्ट्र विश्व भर मे मानव स्वतत्रता, जिसके कुचल दिये जाने का खतरा उपस्थित है, प्राप्त करने के कार्य मे अपना पूरा सहयोग देने मे समर्थ हो सके। इसने यह आशा भी कर रखी थी कि ऐसा कोई भी

कार्य नही किया जायगा जिससे भारत पर ब्रिटेन के आधिपत्य के और भी दृढ होने की सम्भावना हो।

"किन्तु इन आशाओ को चकनाचूर कर डाला गया है। क्रिप्स की निष्फल योजना ने स्पष्ट रूप से दिखला दिया है कि भारत के प्रति ब्रिटिश सरकार की मनोवृत्ति मे कोई परिवर्तन नही हुआ। सर स्टैफर्ड क्रिप्स के साथ वार्ता करने मे काग्रेस-प्रतिनिधियो ने राष्ट्रीय माग के अनुरूप कम-से-कम अधिकार प्राप्त करने का जी-तोड प्रयत्न किया, पर सफलता न गिली। इस असफलता के परिणाम-स्वरूप ब्रिटेन के विरुद्ध विद्वेष-भावना मे शीघ्रता के साथ और व्यापक रूप से वृद्धि हुई है और जापानियो को सैनिक सफलता से विशेष सन्तोष प्राप्त हुआ है।

"कार्यसमिति इस स्थिति को घोर आशका की दृष्टि से देखती है, क्योकि यदि इसका प्रतिरोध न किया गया तो, अनिवार्य रूप से इसका परिणाम आक्रमण को निष्क्रिय भाव से सहन करना होगा। समिति की धारणा है कि सब प्रकार के आक्रमणो का प्रतिरोध होना ही चाहिए, क्योकि इसके आगे झुक जाने का अर्थ अवश्य ही भारतीयो का पतन और उनकी परतत्रता का जारी रहना होगा। काग्रेस नही चाहती कि मलाया, सिंगापुर और बर्मा पर जो बीती है वही भारत पर भी बीते। इसलिए वह चाहती है कि भारत पर जापान या किसी अन्य विदेशी सत्ता की चढाई या आक्रमण के विरुद्ध प्रतिरोध शक्ति का सगठन करे। ब्रिटेन के विरुद्ध जो विद्वेष-भावना वर्तमान है उसे काग्रेस सद्भावना के रूप मे परिणत कर देगी और भारत को, ससार भर के राष्ट्रो और अधिवासियो के लिए स्वतत्रता प्राप्त करने के सयुक्त उद्योग और इसके फलस्वरूप उत्पन्न होनेवाले कष्ट और क्लेशो मे स्वेच्छापूर्वक भाग लेने को प्रेरित करेगी। यह केवल उसी अवस्था मे सम्भव है जव भारत स्वतत्रता के आलोक का अनुभव करे।

"काग्रेस-प्रतिनिधियो ने साम्प्रदायिक समस्या को सुलझाने का शक्ति-भर प्रयत्न किया है, किन्तु विदेशी सत्ता की उपस्थिति मे यह काम असम्भव हो गया है और वर्तमान अवास्तविकता के स्थान पर वास्तविकता की स्थापना तभी हो सकती है जब विदेशी प्रभुता और हस्तक्षेप का अन्त कर दिया जाय और भारतीय जन, जिनमे सब दलो और समुदाओ के व्यक्ति होगे, भारतीय समस्याओ का सामना करे और पारस्परिक समझौते के आधार पर उनका हल ढूँढ निकाले।

"तब सम्भवत. वर्तमान राजनीतिक दल जो प्रधानत: ब्रिटिश-सत्ता को अपनी ओर आकृष्ट करने और उसे प्रभावित करने के उद्देश्य से सगठित हुए है, अपनी कारंवाई वन्द कर देगे। भारत के इतिहास मे, फिर यह बात पहले-पहल अनुभव की जायगी कि भारतीय नरेश, जागीरदार, जमीदार और सम्पत्तिवान तथा धनिकवर्ग उन श्रमजीवियो से अपना धन और सम्पत्ति प्राप्त करते हैं, जो खेत-खलिहान, कारखानो और दूसरे स्थानो पर काम करते है और जो वास्तव में शक्ति

एवं सत्ता के अधिकारी हैं। भारत में ब्रिटिश शासन के हटा लिए जाने पर देश के जिम्मेदार स्त्री-पुरुष एक साथ मिलकर एक अस्थायी सरकार का निर्माण करेंगे जो भारत के समस्त महत्वपूर्ण वर्गों का प्रतिनिधित्व करेगी और बाद में ऐसी योजना को जन्म देगी जिससे विधान-निर्मात्री-परिषद् की रचना हो सकेगी जो राष्ट्र के सब वर्गों के स्वीकार करने योग्य भारतीय शासनविधान का निर्माण करेगी। स्वतत्र भारत के प्रतिनिधि और ब्रिटेन के प्रतिनिधि दोनो देशों के सहयोग और भावी सम्बन्ध को स्थिर करने के लिए, आक्रमण का सामना करने के सामूहिक कार्य मे सहयोगियो के रूप मे, परस्पर वार्तालाप करेंगे।

"कांग्रेस की हार्दिक इच्छा है कि वह, जनता की सम्मिलित इच्छा और शक्ति के बल पर भारत को आक्रमण का सफल प्रतिरोध करने के योग्य बनाए। भारत से ब्रिटिश सत्ता के उठा लिए जाने का प्रस्ताव पेश करने मे कांग्रेस की यह इच्छा नही है कि इससे ब्रिटेन अथवा मित्रराष्ट्रो के युद्ध-कार्यों मे बाधा पहुचे या इससे जापान या धुरी-समूह के किसी अन्य राष्ट्र को भारत पर आक्रमण करने या चीन पर दबाव बढाने को प्रोत्साहन मिले। और न कांग्रेस मित्रराष्ट्रो की रक्षा-शक्ति को हानि पहुचाने का इरादा रखती है।

"इसलिए जापानियो के या किसी और के आक्रमण को दूर रखने या उसका प्रतिरोध करने के लिए, तथा चीन की रक्षा और सहायता के लिए कांग्रेस भारत मे मित्रराष्ट्रो की सशस्त्र सेनाओ को टिकाने के लिए, यदि उनकी ऐसी इच्छा हो, राजी है। भारत से ब्रिटिश सत्ता के हटा लिए जाने के प्रस्ताव का उद्देश्य यह कभी नही है कि भारत से सारे अग्रेज और निश्चय ही वे अग्रेज विदा हो जाय जो भारत को अपना घर बना कर वहा दूसरो के साथ नागरिक और समानाधिकारी बन कर रहना चाहते है। यदि इस प्रकार का हटना सद्भावनापूर्वक सम्पन्न हो तो इसके परिणामस्वरूप भारत मे स्थायी शासन की स्थापना और आक्रमण का प्रतिरोध करने तथा चीन को सहायता देने मे इस सरकार तथा सयुक्त राष्ट्रो के मध्य सहयोग हो सकता है। कांग्रेस इस बात को समझती है कि ऐसा मार्ग ग्रहण करने मे खतरे भी उपस्थित हो सकते हैं। किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए और खासकर वर्तमान सकटापन्न स्थिति मे देश एव ससार भर मे कही अधिक खतरो और विपदाओ से घिरे हुए स्वतन्त्रता के विशालतर आदर्श को बचाने के लिए, किसी भी देश को ऐसे खतरो का सामना करना ही पडता है। अस्तु, जब कि कांग्रेस राष्ट्रीय उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अधीर है, वह जल्दबाजी मे कोई काम करना नही चाहती और न ऐसा मार्ग ग्रहण करना चाहती है जिससे मित्रराष्ट्रो को परेशानी हो। इसलिए यदि ब्रिटिश सरकार इस अत्यन्त यौक्तिक और उचित प्रस्ताव को स्वीकार कर लेगी, जो न केवल भारत के, बल्कि ब्रिटेन के और उस स्वतन्त्रता के हित मे है जिससे मित्रराष्ट्र अपने को सश्लिष्ट घोषित करते हैं, तो कांग्रेस को ब्रिटिश सरकार

के इस कार्य से प्रसन्नता होगी। अतएव, यदि यह अपील व्यर्थ गई तो काग्रेस वर्तमान स्थिति के स्थायित्व को, जिससे परिस्थिति का धीरे-धीरे बिगड़ना और भारत की आक्रमण-विरोधी शक्ति और इच्छा का दुर्बल होना स्वाभाविक है, घोर आशका की दृष्टि से देखेगी। उस स्थिति मे काग्रेस का अपनी समस्त अहिसात्मक शक्ति का, जो सन् १९२०—जबकि इसने राजनीतिक अधिकारो और स्वाधीनता के समर्थन के लिए अहिसा को अपनी नीति के एक अग के रूप मे स्वीकार किया था—के वाद सचित की गई है, अनिच्छापूर्वक उपयोग करने को बाध्य होना पडेगा। इस प्रकार के व्यापक सघर्ष का नेतृत्व अनिवार्य रूप से महात्मा गाधी करेगे। चूँकि, जो प्रश्न यहा उठाए गए है वे भारतीय जनता एव मित्रराष्ट्रो की जनता के लिए सुदूरव्यापी तथा अत्यन्त महत्व के है, इसलिए कार्यसमिति अन्तिम निर्णय के लिए इन्हे अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के सुपुर्द करती है। इस कार्य के लिए ७ अगस्त १९४२ को अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी की बैठक होगी।"

महासमिति का प्रस्ताव

इस प्रस्ताव को पास किए दो महीने गुजर चुके थे और इस अवधि मे जो घटनाए हुई थी उनके परिणामस्वरूप अखिल भारतीय महासमिति के पास इसके सिवा और कोई चारा ही नही था कि वह अपने वम्बई वाले अधिवेशन मे कार्यसमिति के प्रस्ताव को पास करे। उसने यह प्रस्ताव कुछ साधारण हेर-फेर के साथ पास कर दिया। यह साधारण परिवर्तन भी उसमे इसलिए किया गया कि कुछ बातों पर अधिक जोर दिया जा सके और कुछ बातो को अधिक स्पष्ट किया जा सके। कार्यसमिति की सिफारिशो पर ७ और ८ अगस्त, १९४२ को अखिल भारतीय महासमिति द्वारा बम्बई मे जो प्रस्ताव पास किया गया वह इस प्रकार था —

"अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी ने कार्यसमिति के १४ जुलाई १९४२ के प्रस्ताव के विपयो पर, जो कार्यसमिति द्वारा प्रस्तुत किये गये थे, और वाद की घटनाओ पर, जिनमे युद्ध की घटनावली, ब्रिटिश सरकार के जिम्मेदार वक्ताओ के भाषण और भारत तथा विदेशो मे की गयी आलोचनाए सम्मिलित है, अत्यन्त सावधानी के साथ विचार किया है। अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी उस प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए उसका समर्थन करती है और उसकी राय है कि वाद की घटनाओ ने इसे और भी औचित्य प्रदान कर दिया है और इस वात को स्पष्ट कर दिखाया है कि भारत मे ब्रिटिश शासन का तात्कालिक अन्त, भारत के लिए और मित्रराष्ट्रो के आदर्श की पूर्ति के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इस शासन का स्थायित्व भारत की प्रतिष्ठा को घटाता और उसे दुर्वल वनाता है और अपनी रक्षा करने तथा विश्व-स्वातन्त्र्य के आदर्श की पूर्ति में सहयोग देने की उसकी शक्ति में क्रमिक ह्रास उत्पन्न करता है।

"इसलिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी पूरे आग्रह के साथ भारत से ब्रिटिश सत्ता के हटा लेने की माग को दुहराती है। भारत की स्वतन्त्रता की घोषणा हो जाने पर एक अस्थायी सरकार स्थापित कर दी जायगी और स्वतन्त्र भारत मित्र-राष्ट्रो का मित्र बन जायगा और स्वातन्त्र्य-सग्राम के सम्मिलित प्रयत्न की परीक्षाओं और दु ख-सुख मे हाथ बटायेगा। अस्थायी सरकार देश के मुख्य दलो और वर्गों के सहयोग से ही बनायी जा सकती है। इस प्रकार यह एक मिली-जुली सरकार होगी जिसमे भारतीयो के समस्त महत्वपूर्ण वर्गों का प्रतिनिधित्व होगा। उसका प्रथम कर्त्तव्य अपनी समस्त सशस्त्र तथा अहिंसात्मक शक्तियो द्वारा मित्रराष्ट्रो से मिल कर भारत की रक्षा करना, आक्रमण का विरोध करना, और खेतो, कारखानो तथा अन्य स्थानों में काम करनेवाले इन श्रमजीवियो का कल्याण और उन्नति करना होगा जो निश्चय ही समस्त शक्ति और अधिकार के वास्तविक पात्र है। अस्थायी सरकार एक विधान-निर्मात्री-परिषद की योजना बनायेगी और यह परिषद भारत-सरकार के लिए एक ऐसा विधान तैयार करेगी जो जनता के समस्त वर्गों को स्वीकार होगा। कांग्रेस के मत से यह विधान सघ-विषयक होना चाहिए जिसके अन्तर्गत सघ मे सम्मिलित होने वाले प्रान्तो को शासन के अधिकतम अधिकार प्राप्त होगे। अवशिष्ट अधिकार भी इन प्रान्तो को प्राप्त होगे। भारत और मित्रराष्ट्रो के भावी सम्बन्ध इन समस्त स्वतन्त्र देशो के प्रतिनिधियो द्वारा निश्चित कर दिये जायगे जो अपने पारस्परिक लाभ तथा आक्रमण का प्रतिरोध करने के सामान्य कार्य मे सहयोग देने के लिए परस्पर वार्तालाप करेगे। स्वतन्त्रता भारत को अपनी जनता की सम्मिलित इच्छा और शक्ति के बल पर आक्रमण का कारगर ढग से विरोध करने मे समर्थ बना देगी।

"भारत की स्वतन्त्रता विदेशी आधिपत्य से अन्य एशियाई राष्ट्रो की मुक्ति का प्रतीक और प्रारम्भ होगी। बर्मा, मलाया, हिन्दचीन, डच द्वीप समूह, ईरान और ईराक को भी पूर्ण स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि इस समय जापानी नियन्त्रण मे जो देश है उन्हे बाद को किसी औपनिवेशिक सत्ता के अधीन नही रखा जायगा।

"इस सकट-काल मे यद्यपि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को प्रधानत भारत की स्वाधीनता और रक्षा से सम्बन्ध रखना चाहिये तथापि कमेटी का मत है कि ससार की भावी शान्ति, सुरक्षा और व्यवस्थित उन्नति के लिये स्वतन्त्र राष्ट्रो का एक विश्वसघ बनाने की आवश्यकता है। अन्य किसी बात को आधार बना कर आधुनिक ससार की समस्याए नही सुलझाई जा सकती। इस प्रकार के विश्वसघ से उसमे सम्मिलित होनेवाले राष्ट्रो की स्वतन्त्रता, एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण और शोषण का रोकना, राष्ट्रीय अल्पसख्यको का सरक्षण, पिछडे हुए समस्त क्षेत्रो और लोगो की उन्नति और सब के सामान्य हित के लिए

विश्व-साधनो का एकत्रीकरण किया जाना निश्चित हो जायगा। इस प्रकार का विश्वसघ स्थापित हो जाने पर समस्त देशों मे नि शस्त्रीकरण हो सकेगा। राष्ट्रीय सेनाओ, नौसेनाओ और वायुसेनाओ की कोई आवश्यकता नही रहेगी और विश्व-रक्षक सेना विश्व मे शान्ति रखेगी और आक्रमण को रोकेगी।

"स्वतन्त्र भारत ऐसे विश्वसघ मे प्रसन्नतापूर्वक सम्मिलित होगा और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएं सुलझाने मे अन्य देशो के साथ समान आधार पर सहयोग करेगा।

"ऐसे सघ का द्वार उसके आधारभूत सिद्धान्तो का पालन करनेवाले समस्त राष्ट्रो के लिये खुला रहना चाहिये। युद्ध के कारण यह सघ आरम्भ मे केवल मित्रराष्ट्रो तक ही सीमित रहेगा। यदि यह कार्य अभी प्रारम्भ कर दिया जाय तो युद्ध पर, धुरी राष्ट्रो की जनता पर और आगामी शान्ति पर इसका बहुत जोरदार प्रभाव पडेगा।

"परन्तु कमेटी खेदपूर्वक अनुभव करती है कि युद्ध की दु खद और व्याकुल कर देने वाली शिक्षाएं प्राप्त कर लेने के पश्चात् और विश्व पर संकट के बादलो के घिरे होने पर भी कुछ ही देशो की सरकारे विश्वसघ बनाने की ओर कदम उठाने को तैयार हैं। ब्रिटिश सरकार की प्रतिक्रिया और विदेशी पत्रो की भ्रमपूर्ण आलोचनाओ से स्पष्ट हो गया है कि भारतीय स्वतन्त्रता की स्पष्ट मांग का भी विरोध किया जा रहा है। ऐसी दशा में न तो नित्य बढते जाने वाले खतरे का कोई प्रतिकार ही किया जा सकता है और न मित्रराष्ट्रों की जनता की कोई सेवा ही की जा सकती है। कार्यसमिति ने ब्रिटेन और मित्रराष्ट्रो से जो सच्ची अपील की थी उसका अभी तक कोई उत्तर नही मिला है। बहुत से विदेशी क्षेत्रो मे की गई आलोचनाओ से प्रकट हो गया है कि भारत और विश्व की आवश्यकताओ के विषय मे अज्ञानता फैली हुई है। कभी-कभी तो आधिपत्य बनाये रखने की भावना और जातिगत ऊच-नीच का प्रतीक वह विरोध भी दिखाया गया है जिसे अपनी शक्ति और अपने उद्देश्य के औचित्य का ज्ञान रखनेवाली कोई भी अभिमानी जाति सहन नही कर सकती।

"इस अन्तिम क्षण मे विश्व-स्वातन्त्र्य का ध्यान रखते हुए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी फिर ब्रिटेन और मित्रराष्ट्रो से अपील करना चाहती है। परन्तु वह यह भी अनुभव करती है कि उसे अब राष्ट्र को एक ऐसी साम्राज्यवादी और शासनप्रिय सरकार के विरुद्ध अपनी इच्छा प्रदर्शित करने से रोकने का कोई अधिकार नही है जो उस पर आधिपत्य जमाती है और जो उसे अपने तथा मानव-समाज के हित का ध्यान रखते हुए काम करने से रोकती है। इसलिए कमेटी भारत के स्वतन्त्रता और स्वाधीनता के अविच्छेद्य अधिकार का समर्थन करने के उद्देश्य से अहिंसात्मक प्रणाली से और अधिक-से-अधिक विस्तृत परिमाण पर एक विशाल संग्राम चालू करने की स्वीकृति देने का निश्चय करती है, जिससे देश गत २२ वर्षो

के शान्तिपूर्ण सग्राम मे सचित की गई समस्त अहिसात्मक शक्ति का प्रयोग कर सके। यह सग्राम निश्चय ही गाधीजी के नेतृत्व में होगा और कमेटी उनसे नेतृत्व करने और प्रस्तावित कार्रवाइयो मे राष्ट्र का पथ-प्रदर्शन करने का निवेदन करती है।

"कमेटी भारतीयो से उन खतरो और कठिनाइयो का, जो उनके ऊपर आयेंगे, साहस और दृढतापूर्वक सामना करने तथा गाधीजी के नेतृत्व में एक बने रह कर भारतीय स्वतन्त्रता के अनुशासित सैनिको के समान उनके निर्देशो का पालन करने की अपील करती है। उन्हें यह अवश्य याद रखना चाहिए कि अहिसा इस आन्दोलन का आधार है। ऐसा समय आ सकता है जब निर्देश देना अथवा निर्देशो का हमारी जनता तक पहुचना सम्भव न होगा और जब कोई भी काग्रेस समिति कार्य नही कर सकेगी। ऐसा होने पर इस आन्दोलन में भाग लेने वाले प्रत्येक नर-नारी को सामान्य निर्देशो की सीमा मे रहते हुए अपने-आप काम करना चाहिए। स्वतन्त्रता की कामना और उसके लिए प्रयत्न करनेवाले प्रत्येक भारतीय को स्वयं अपना पथ-प्रदर्शक बनकर उस कठिन मार्ग पर अग्रसर होते जाना चाहिए जहा विश्राम का कोई स्थान नही है और जो अन्त मे भारत की स्वतन्त्रता और मुक्ति पर जाकर समाप्त होता है।

"अन्त मे यह बताया जाता है कि यद्यपि अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी ने स्वतन्त्र भारत की भावी सरकार के विषय मे अपना विचार प्रकट कर दिया है, तथापि कमेटी समस्त सबद्ध लोगो के लिए यह बिल्कुल स्पष्ट कर देना चाहती है कि विशाल सग्राम आरम्भ करके वह काग्रेस के लिए कोई सत्ता प्राप्त करने की इच्छुक नही है। सत्ता जब मिलेगी तब उस पर समस्त भारतीयो का अधिकार होगा।"

७ और ८ अगस्त को जब अखिल भारतीय महासमिति का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ तब उसके सदस्यो और जनता दोनो मे ही बडी उत्तेजना पाई जाती थी। सभामडप कमेटी की बैठक के बजाय काग्रेस का एक छोटा-सा अधिवेशन प्रतीत हो रहा था, जिसमे करीब बीस हजार आदमी सम्मिलित हुए थे। उक्त प्रस्ताव पडित जवाहरलाल नेहरू ने पेश किया और सरदार पटेल ने उसका समर्थन किया और यह प्रस्ताव केवल १३ विरोधी मतो से पास हो गया। प्रस्ताव के विरोधियो मे १२ साम्यवादी और तेरहवें व्यक्ति एक साम्यवादी के पिता थे।

गांधीजी का भाषण

प्रस्ताव पास हो जाने के बाद गाधीजी ने अपना भाषण दिया। उन्होने कहा —

"मै इस लडाई मे आपका नेतृत्व करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेता हू, सेनापति अथवा नियत्रक के रूप मे नही, बल्कि आपके तुच्छ सेवक के रूप मे और जो कोई सर्वाधिक सेवा करेगा वही मुख्य सेवक माना जायगा। मै तो राष्ट्र का

मुख्य सेवक हूँ। मेरी अत्तरात्मा कहती है कि मुझे अकेले ही ससार से लोहा लेना पड़ेगा। वह मुझसे यह भी कहती है कि जबतक तुममे निश्शक होकर ससार का सामना करने की ताकत है, तबतक तुम सुरक्षित हो, भले ही दुनिया तुम्हे किसी और नजर से देखे। गाधीजी ने सवाल किया—आखिर आज भारत की आजादी मांग कर काग्रेस ने कौन-सा अपराध किया है ? क्या ऐसी माग करना गलती है, क्या उस सस्था पर सन्देह करना ठीक है ? मुझे आशा है कि इग्लैण्ड ऐसा नही करेगा। मुझे उम्मीद है कि अमरीका के राष्ट्रपति भी ऐसा नही सोचेगे और चीन के सर्वोच्च प्रधान सेनापति मार्शल चागकाई शेक भी, जो इस समय अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए जापानियों के साथ भीषण युद्ध कर रहे हैं, काग्रस के बारे मे ऐसा कोई बात नही सोचेगे। अगर ससार के सभी राष्ट्र मेरा विरोध करे; यदि समस्त भारत भी मुझे समझाने की कोशिश करे तो भी मै अपने मार्ग से विचलित नही हूँगा। मै आगे ही कदम बढाता जाऊँगा—सिर्फ भारत के लिए नही, बल्कि सारे ससार के लिए।"

गाधीजी ने हिन्दू-मुस्लिम समस्या पर भी विशद रूप से प्रकाश डालते हुए साफ-साफ शब्दो में कहा, "पाकिस्तान के सवाल पर मेरे मन मे कोई भ्रम नही है। चाहे कुछ भी हो, पाकिस्तान हिन्दुस्तान के बाहर नही बन सकता। हम सभी को एक-दूसरे के साथ कन्धे-से-कन्धा मिलाकर देश की आजादी की कोशिश करनी चाहिए। मै बडा उतावला हूँ। आजादी सबके लिए है, किसी एक जाति या कौम के लिए नही। किसी भी कौम को हिन्दुस्तान की हुकूमत सौप देने की जो मांग मौलाना साहब ने ब्रिटेन के सामने पेश की है, मै उसका समर्थन करता हूँ। अगर मुसलमानोको हुकूमत सौप दी जाय तो उससे मुझे कोई रज नही होगा। अब की जो लडाई छिडेगी, वह तो सामूहिक लडाई होगी। हमारी योजना मे गुप्त कुछ भी नही है। हमारी तो खुली लडाई है। हम एक सल्तनत का मुकाबला करने जा रहे है और हमारी लडाई बिलकुल सीधी लडाई है। इस बारे मे आप किसी भ्रम मे न रहे। दिल मे कोई उलझन न रखे। लुक-छिप कर कोई काम न करे। जो लुक-छिपकर काम करते है, उन्हे पछताना पडता है।"

गांधीजी की हिदायतें

गाधीजी ने सार्वजनिक रूप से यह घोषणा कर दी थी कि आन्दोलन शुरू करने के पूर्व वह वाइसराय को एक पत्र लिखकर उनके जवाव की प्रतीक्षा करना चाहते है। उनका खयाल था कि इसमे शायद दो-तीन सप्ताह लग जायँ। इस बीच उन्होने देशवासियों को सलाह दी कि वे काग्रेस के १३ सूत्री रचनात्मक कार्यक्रम मे अपनी शक्ति लगाएँ। इसके अलावा उन्होने लोगो को नीचे लिखी हिदायते भी दी :—

१—अखबारो को स्वतत्रतापूर्वक और निर्भीक होकर अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए। उन्हे सरकार से डरना नही चाहिए और न किसी से रिश्वत लेनी चाहिए। अधिकारियो-द्वारा अपना दुरुपयोग किये जाने की अपेक्षा काम वन्द कर देना कही अधिक अच्छा होगा और तब उन्हें अपनी इमारतो, मशीनो और वडे-वडे कारोवार की कुरवानी देने को तैयार रहना चाहिये।

२—राजाओ को सबोधित करते हुए गाधीजी ने कहा—"राजाओ को स्थिति के अनुसार अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिये। उन्हे समय की गति को पहचान कर अपने शासन की वागडोर अपनी प्रजा को सौंप देनी चाहिये और इसकी सूचना सरकार के राजनीतिक विभाग को भी दे देनी चाहिये।"

३—आन्दोलन के स्वरूप और उसे किस ढग से चलाना चाहिये, इस वारे मे गाधीजी ने कहा "गुप्त रूप से कोई काम न कीजिये, यह पाप है। लुक-छिपकर कोई आन्दोलन न चलाइये।"

४—विद्यार्थियो और शिक्षको को सबोधित करते हुए गाधीजी ने कहा कि 'वे अपने अन्दर आजादी की भावना को धारण करे,' काग्रेस के साथ खडे रहें, यह कहने की हिम्मत दिखाये कि वे काग्रेस के है, और अगर जरूरत आ ही पडे तो वे अपने धन्धे और 'कैरियर' को खुशी-खुशी छोड दें।

५—सरकारी नौकरो का जिक्र करते हुए गावीजी ने उन्हे सलाह दी कि "उनके लिए यह ज़रूरी नही है कि वे फौरन ही अपनी नौकरियो से इस्तीफे दे दे, लेकिन उन्हे सरकार को यह तो लिखकर दे ही देना चाहिए कि वे काग्रेस के साथ है।"

नेताओं की गिरफ्तारी

इस बात के बावजूद कि एक-के-वाद-एक सभी काग्रेसी प्रवक्ताओ ने पहले सरकार से समझौता करने पर जोर दिया, सरकार ने उनकी वातो पर कोई ध्यान न देकर उलटे जनता पर अपना जोरदार दमन-चक्र चलाने की तैयारी शुरू कर दी। उसने पौ फटने से पहले ही काग्रेस कार्यसमिति के सदस्यो और बम्बई के ४० प्रमुख नागरिको को गिरफ्तार करके उन्हें विक्टोरिया टरमिनस स्टेशन पर पहुँचा दिया, जहाँ उनके लिए एक स्पेशल ट्रेन तैयार खडी थी। यह सारी कार्रवाई उसने इतनी तेजी और अप्रत्याशित ढग से की कि कुछ लोग अपने साथ अपनी ऐनक, बटुआ, कपडे, पुस्तके और इसी प्रकार का अन्य आवश्यक सामान भी ले जाना भूल गए। श्री प्यारेलाल और बा को भी गिरफ्तार करके गाधीजी के नजरबन्द कैम्प मे भेज दिया गया। कार्यसमिति के सदस्य किस जेल मे नजरबन्द किये जाएँगे, इस सम्बन्ध मे सरकार ने बड़ी सतर्कता से काम लिया और इस खबर को प्रकाशित नही होने दिया। लेकिन अखबारो मे यह छप गया

कि गाधीजी को पूना मे आगा खा के महल मे नजरबन्द किया जा रहा है। गाधी जी, उनके दल और श्रीमती सरोजिनी देवी को चिचवाद नामक स्थान पर गाडी से उतार कर यरवडा जेल के पास एक बँगले मे ले जाया गया। बम्बईवाले दल को किर्की मे गाडी से उतार कर यरवदा भेज दिया गया और कार्यसमिति के सदस्यो को लेकर यह स्पेशल ट्रेन ढोड पहुँची, जहाँ से उसने मद्रास-बम्बई वाली लाइन पर स्थित अहमदनगर का रुख किया। अहमदनगर मे चाँदबीबी के किले मे बडे लम्बे-चौडे हालवाले एक बडे और अलग भवन मे इन लोगो को लाकर नजरबन्द कर दिया गया।

गांधीजी का वक्तव्य

गाधीजी की गिरफ्तारी के बाद प्रकाशित किया गया उनका लेख सक्षेप में इस प्रकार है :—

"हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय महासभा की कार्य-समिति ने पूर्ण स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव पास किया है उसके सम्बन्ध मे अपनी स्थिति को स्पष्ट करना मेरे लिए आवश्यक हो गया है, क्योकि यह माना जाता है कि वह मेरी ही प्रेरणा से पास किया गया है। आप मुझसे बिल्कुल अपरिचित नही हैं। पश्चिमी देशो मे शायद अमरीका ही एक ऐसा देश है, जहा मेरे अधिक-से-अधिक मित्र हैं, और ग्रेट ब्रिटेन भी इसका अपवाद नही है। इसके सिवा, थोरो के रूप मे आप ही ने मुझे एक ऐसा शिक्षक दिया, जिसके "सविनय अवज्ञा का कर्तव्य" (ड्यूटी आफ सिविल डिसओबीडियन्स) नामक निबन्ध के द्वारा मुझे अपने उस कार्य का वैज्ञानिक समर्थन प्राप्त हुआ था, जो मै उन दिनो दक्षिण अफ्रीका मे कर रहा था। ग्रेट ब्रिटेन ने मुझे रस्किन जैसा गुरु दिया, जिसके "सर्वोदय" यानी "अनटू दि लास्ट" ग्रथ ने मुझमे इतना परिवर्तन किया कि मै एक ही रात मे बिल्कुल बदल गया। मैने वकालत छोडी, शहर मे रहना छोडा, और मै एक देहाती बनकर डरबन से दूर एक ऐसे चक पर रहने लगा जो नजदीक के रेलवे स्टेशन से भी तीन मील दूर था। रूस ने टाल्सटाय के रूप मे मुझे वह गुरु दिया, जिससे मुझे अपनी अहिसा का एक बुद्धिसम्मत और तर्क-शुद्ध आधार प्राप्त हुआ। उन्होने दक्षिण अफ्रीका के मेरे उस आन्दोलन को, जो उस वक्त शुरू ही हुआ था, और जिसकी अद्भुत सम्भावनाओ को उस समय तक मै जान भी नही पाया था अपना आशीर्वाद दिया था। इसलिए आप यह समझ सकेगे कि इस वक्त जो कदम मैने उठाया है, उसमे ग्रेट ब्रिटेन के और पश्चिमी देशो के खिलाफ दुश्मनी का कोई भाव नही है। "अनटू दि लास्ट" मे दिये गए "सर्वोदय" के सन्देश को अच्छी तरह पचाने और आत्मसात् करने के बाद मै उस फासिस्टवाद या नाजीवाद के

अनुमोदन के समर्थन का दोषी नही बन सकता, जिसका ध्येय व्यक्ति का और उसकी स्वतन्त्रता का दमन करना है।

"मै आपसे निवेदन करता हूँ कि आप मेरे निर्माण की इस पार्श्वभूमिका को ध्यान मे रखकर हिन्दुस्तान से हट जाने के मेरे उस सूत्र को पढेंगे, जो आमतौर पर "क्विट इडिया" यानी "भारत छोडो" के नाम से पुकारा जाता है। इस सूत्र के पूर्वापर सम्बन्ध को ध्यान मे रखते हुए इसका जो अर्थ निकल सकता है, उतना ही अर्थ आप इससे निकालिये—उससे ज्यादा नही। मेरा दावा है कि मै अपने वचपन से ही सत्य का पुजारी रहा हूँ। मेरे लिये यह अत्यन्त स्वाभाविक वस्तु थी। मेरी भक्ति-भाव युक्त खोज के कारण "ईश्वर सत्य है" के प्रचलित वचन के वदले यह दिव्य अर्थवाला वचन प्राप्त हुआ कि "सत्य ही ईश्वर है।" इस वचन के कारण मै मानो ईश्वर को अपने सामने साक्षात् खडा पाता हूँ। मै अनुभव करता हूँ कि वह मेरे रोम-रोम मे व्याप्त है। अपने और आपके वीच इसी सत्य को साक्षी रखकर मै वलपूर्वक यह कहता हूँ कि अगर मुझे अचानक यह वोध न हुआ होता कि ग्रेट ब्रिटेन और मित्र-राष्ट्रो के हित के लिये यह ज़रूरी है कि ब्रिटेन हिन्दुस्तान को वन्धन से मुक्त करने के अपने कर्तव्य का साहसपूर्वक पालन करे तो मैने अपने देशवासियो को यह सलाह कभी न दी होती कि वे ग्रेट ब्रिटेन को हिन्दुस्तान सेअपनी हुकूमत उठा लेने को कहे और इसके खिलाफ पेश की जानेवाली किसी भी माग की परवाह न करे।

"अगर ब्रिटेन ने इस सर्वोत्तम न्याय से काम लिया तो आज हिन्दुस्तान में उसके खिलाफ जितना भी असतोष वढ रहा है, वह सव मिट जायगा। अपने इस एक कार्य-द्वारा वह वढते हुए दुर्भाव को सद्भाव मे वदल डालेगा। इस पर आप विचार कीजिए। विना किसी शर्त के हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता को मान लेने की जो माग कांग्रेस कर रही है, उसमे अनुचित क्या है ? कहा जाता है कि 'यह उसका वक्त नही है।' हम कहते है, 'हिन्दुस्तान की आजादी को मान लेने का यही मनोवैज्ञानिक मुहूर्त है,' क्योकि उसी एक हालत मे जापानी हमलो का अचूक प्रतिकार किया जा सकता है।"

श्री एडगर स्नो का मत

श्री एडगर स्नो की यह राय थी कि अमरीकी जनता ने अभीतक यह महसूस नही किया कि भारत का विरोध हमारे लिए कितना निर्णायक और घातक साबित हो सकता है। अब तक जर्मनी ने जितने भी देशो पर अधिकार किया है, उन सब की अपेक्षा यह देश कही वडा है। इसकी जन-शक्ति नाजी साम्राज्य की तुलना मे दुगुनी है। इसके साधन अपार है। ब्रिटेन, रूस और आस्ट्रेलिया को छोडकर यह देश मित्रराष्ट्रो का सब से बड़ा औद्योगिक अड्डा है। पश्चिमी गोलार्द्ध से बाहर होने

के कारण यह दक्षिण-पूर्वी एशिया मे हमारा अन्तिम मजबूत अड्डा है। ऐसे महान् देश और जाति के सबसे बडे नेता गाधीजी है। पिछले बीस वर्षो में यदि 'काग्रेस भारतीय राष्ट्रवाद का प्रतीक' बन गई है तो इस पर हमे कोई आश्चर्य नही होना चाहिए। परन्तु वाइसराय महोदय मेरे इस विचार से सहमत नही है। यह सत्य है कि गाधीजी के वचन सूत्रबद्ध होते है। उनके विचारो मे जो पारस्परिक विरोध प्रतीत होता है, उसे भारतीय जनता अपनी प्रेरणा-शक्ति से समझ लेती है, क्योकि गाधीजी मे, आपको रहस्यवाद, आध्यात्मवाद और परपरागत भावनाओ के साथ 'राजनीतिक यथार्थवाद' का सुन्दर सम्मिश्रण मिलेगा। वास्तव मे उनके 'भारत छोडो' आन्दोलन के सिद्धान्त पर हमे इसी दृष्टिकोण से सोच-विचार करना चाहिए। 'साम्राज्य छोडिए और भारत को अपने पक्ष मे कीजिए' इस विषय का प्रतिपादन करते हुए आपने लिखा कि एक मुख्य बात जिसे हमे समझ लेना चाहिए यह है कि गाधीजी के कुछ विचार और वक्तव्य हमे चाहे कितने ही अनोखे क्यो न प्रतीत होते हों, परन्तु उनका भारत के राष्ट्रीय नेता होने की उनकी स्थिति पर कोई प्रभाव नही पड सकता। बल्कि उसके विपरीत उन विचारो के कारण भारतीय जनता मे उनकी स्थिति और भी अधिक सुदृढ हो जाती है। वे ही आत्मा है और वे ही विचार-शक्ति। वे एक महान् आत्मा है, जिसकी अधिकांश भारतीय पूजा करत है। गाधीजी मे भारतीय जनता को अन्धविश्वास है।

सरकार का दमन-चक्र

परन्तु ब्रिटेन पर इनमे से किसी बात का भी प्रभाव नही पडा। उसके अभिमान और प्रतिष्ठा को इस बात से ठेस पहुंचती थी कि एक परतत्र राष्ट्र अपनी स्वाभाविक गुलामी और परवशता को छोडकर युद्ध के नगाडे बजा रहा है। एक ऐसे संगठन के शान्तिदूत का, जो उन्हे युद्ध की धमकिया देता रहा हो—भला वह क्योकर स्वागत कर सकता था। इससे उसके बडप्पन को धक्का लगता था। सरकारी आदेश था कि तीन बजने से पहले-पहले "सब" को गिरफ्तार करके जेलो मे ठूस दिया जाय। इसलिए पूर्व-निर्धारित योजना के अनुसार जो कुछ बम्बई मे हुआ वही देश के सभी भागो—देशी राज्यो और प्रान्तो, शहरो और कस्बो मे हुआ। काग्रेस कमेटिया गैर-कानूनी घोषित कर दी गई। काग्रेस के दफ्तरो पर कब्जा करके उनमें ताले डाल दिये गए। काग्रेस की कार्रवाइयो पर पाबंदियां लगा दी गई। अखिल भारतीय महासमिति के जो सदस्य अपने घरो को वापस लौट रहे थे, उन्हे गाडियो मे मार्ग मे ही गिरफ्तार कर लिया गया। बम्बई में पुलिस ने काग्रेस-भवन, अखिल भारतीय महासमिति के भव्य और विशाल पडाल तथा ग्वालिया तालाब के क्रीडा-मैदान पर कब्जा कर लिया। सभी प्रकार के जुलूस और सभाएं निषिद्ध घोषित कर दी गई और शहर की सारी पुलिस, रिजर्व

पुलिस और सैनिक दस्तो को एकत्र कर लिया गया। काग्रेस के स्वयसेवको और देशसेविकाओ ने निर्धारित समय पर अपना उत्सव मनाया, परन्तु पुलिस ने अश्रु-गैस छोडकर और लाठी-चार्ज करके उन्हे तितर-वितर करने की चेष्टा की। पडाल पर लहराते हुए राष्ट्रीय झडे को नीचे गिरा दिया गया और जो स्वयसेवक उसकी रक्षा के लिए आगे बढे उन पर मार-पीट की गई। काग्रेस कार्यसमिति, अखिल भारतीय महासमिति और बम्बई प्रात में बम्बई, गुजरात, महाराष्ट्र और कर्नाटक की प्रान्तीय काग्रेस कमेटिया अवैध घोषित कर दी गई। इसी प्रकार उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त के अलावा शेष सभी प्रान्तो की प्रान्तीय काग्रेस कमेटिया गैर-कानूनी करार दे दी गई। शायद इतना ही काफी नही था। केन्द्रीय सरकार ने नयी दिल्ली से ८ अगस्त के अपने एक आदेश के अन्तर्गत अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी की ओर से चलाए गए सार्वजनिक आन्दोलन अथवा इस आन्दोलन के विरुद्ध सरकार-द्वारा अपनाए गए उपायो से सम्बन्ध रखनेवाले किसी वास्तविक समाचार का (जिनमे सदस्यो द्वारा दिये गए भाषणो अथवा वक्तव्यो के विवरण सम्मिलित है) किसी भी मुद्रक, प्रकाशक अथवा सपादक-द्वारा मुद्रण अथवा प्रकाशन वर्जित कर दिया।

सरकार ने काग्रस के प्रस्ताव के सम्बन्ध मे अपना खेद, क्षोभ और प्रस्ताव मे निहित चुनौती का मुकाबला करने का अपना दृढ निश्चय प्रकट करने मे विलब नही होने दिया। वस्तुत देखा जाय तो सरकार ने अपनी तैयारिया उसी समय से शुरू कर दी थी, जब उसने देश के राजनीतिक-जीवन मे उथल-पुथल के प्रारभिक चिह्न देखे थे, क्योकि १४ जुलाई, १९४२ के वर्धा-प्रस्ताव के थोडी देर बाद ही उसने १७ जुलाई १९४२ को एक गश्ती चिट्ठी जारी की जो बाद मे "पकल गश्ती चिट्ठी" के नाम से प्रसिद्ध हुई। यहा हम उस चिट्ठी का सक्षेप मे उल्लेख करना उचित समझते है।

पकल की गश्ती चिट्ठी

यह स्मरण रहे कि बम्बई मे अखिल भारतीय महासमिति के अधिवेशन से कुछ ही समय पहले अखिल भारतीय काग्रेस महासमिति के कार्यालय की तलाशी लेकर गाधीजी-द्वारा भेजे गए प्रस्ताव के मसविदे की प्रतियो पर कब्जा करके सरकार ने उन्हे छाप दिया था। इसके अलावा उसने इस सम्बन्ध मे, इलाहाबाद की बैठक मे काग्रेस-कार्यसमिति के सदस्यो के भाषणो का अपूर्ण और अनियमित विवरण भी प्रकाशित किया था। इस सबध मे भारत-सरकार के सेक्रेटरी सर फ्रेडरिक पकल की एक गोपनीय और महत्वपूर्ण गश्ती चिट्ठी गाधीजी के हाथो मे पड गई और उन्होने इसके साथ भूमिका के रूप मे अपनी एक टिप्पणी जोडकर

वम्बई मे उसे विस्तृत रूप से प्रचारित कर दिया। इस गश्ती चिट्ठी का साराश इस प्रकार है :—

१—७ अगस्त को बम्बई मे होनेवाले अखिल भारतीय महासमिति के अधिवेशन मे अभी तीन सप्ताह और है। इस बीच मुख्य समस्या काग्रेस के प्रस्ताव मे वर्णित ठोस सुझावो के विरुद्ध प्रचार और उस प्रस्ताव के अन्त मे गाधीजी के शब्दो मे 'खुले विद्रोह' की जो धमकी दी गई है उसके विरुद्ध लोकमत तैयार करना है। हमे (१) उन लोगो को प्रोत्साहन देना है जिनके सहयोग पर हम यकीन कर सकते है, (२) जो लोग अभी तक दुविधा मे पडे है, उन्हे अपने साथ मिला ले, और (३) काग्रेसजनो मे दृढ निश्चय की भावना को रोके। ऐसा करने मे हमारा एक उद्देश्य तो यह है कि काग्रेस पर दबाव डाला जाय कि वह अपना कदम पीछे हटा ले और दूसरा उद्देश्य यह है कि अगर हमे काग्रेस के खिलाफ कोई कार्रवाई करनी ही पडे तो हमे देश के अन्दर और वाहर से जनता का समर्थन प्राप्त हो सके। कृपया आप लोग सभी उपलब्ध साधनो द्वारा जोरदार प्रचार करे जिससे कि प्रभावशाली व्यक्ति और प्रमुख गैर-काग्रेसी सगठन काग्रेस के प्रस्ताव के अन्तर्गत वर्णित योजना का खुले रूप मे और तर्क के आधार पर विरोध करे। आजकल धुरीराष्ट्रो के रेडियो-स्टेशन से जो प्रचार हो रहा है, उसके मुख्य पात्र काग्रेस के नेता होते है। इससे साफ जाहिर है कि भारत के दुश्मन काग्रेस के प्रस्तावो मे अपना हित-साधन समझते है। मित्रराष्ट्रो की विजय के अलावा भारत के पास अपने उद्देश्य-प्राप्ति का कोई और साधन ही नही है। गुलामो की दुनिया मे आजाद भारत का होना असम्भव है।

२—काग्रेस प्रस्ताव एक दल का घोषणापत्र है। यह काग्रेस की आवाज है, भारत की नही। इसमे काग्रेस के अलावा सभी दलो और लोगो की अवहेलना की गई है। जहाँ तक युद्ध का प्रश्न है, मुसलमान, सिक्ख, साम्यवादी, रायवादी, सगठित मजदूर, किसान सभाएँ और विद्यार्थियो के प्रमुख सगठन काग्रेस के विरोधी है। लोग स्वेच्छा से सेना मे भरती हो रहे है। इससे सावित हो जाता है कि युद्ध के प्रश्न पर काग्रेस भारत का प्रतिनिधित्व नही करती। क्रिप्स-प्रस्तावो की जो गलत व्याख्या की गई है, उसे भी ध्यान मे रखिए, क्योकि उनके अनुसार लडाई खत्म हो जाने के वाद हिन्दुस्तान को औपनिवेशिक स्वराज्य अथवा आजादी देने का वादा किया गया है। इस वात पर भी जोर दीजिए कि काग्रेस जो स्वयं तो विशुद्ध रूप से एक स्वेच्छाचारी सस्था है और जिस पर वड़े-वडे उद्योगपतियो और मध्य वित्तवाले लोगो का कब्जा है—मजदूरो को सत्ता हस्तान्तरित करने का स्वाग रचती है। इस समय मजदूरो को मताधिकार प्राप्त नही है और अस्थायी युद्ध-सरकार पर प्रभाव डालने के लिए उन्हे इसी समय मताधिकार नही दिया जा सकता।

३—प्रस्ताव के अन्तर्गत जिस ठोस रूप मे ये सुझाव पेश किए गये है, वे एकदम अस्पष्ट और अव्यावहारिक है। काग्रेस के प्रस्तावो में ऐसी कोई भी वात नही पाई जाती जो प्रजातन्त्र के सिद्धान्तो के अनुकूल हो। उसका उद्देश्य अस्थायी काग्रेसी सरकार के हाथो मे सत्ता सौप देना है और उसके वाद यह सरकार खुद फैसला करेगी कि भविष्य के लिये कौन-सी व्यवस्था आवश्यक है। इस वात को ध्यान में रखिए कि पहले तो ब्रिटिश राज के यहाँ से हट जाने को कहा गया है और उसके वाद अस्थायी सरकार बनाई जाने की। इस सक्रान्ति-काल मे क्या होगा? अस्थायी सरकार किस तरह से और कौन बनाएगा और वह किस विधान के अन्तर्गत अपना काम करेगी? काग्रेस ने अन्य महत्त्वपूर्ण तत्वो की सहायता प्राप्त करने की कोशिश नही की और ये तत्व इस वात को कभी वरदाश्त नही करेंगे कि अस्थायी रूप से भी क़ाग्रेस को सत्ता सौप दी जाय।

४—इस प्रस्ताव मे एक और उल्लेखनीय वात यह है कि यद्यपि इसमे आक्रमण का प्रतिरोध करने की वडी लम्बी-चौडी डीग हाकी गई है, फिर भी इसमे इसका जिक्र तक भी नही किया गया कि इस प्रतिरोध का स्वरूप क्या होगा और सारे प्रस्ताव मे जान-बूझ कर हिंसा या अहिंसा का उल्लेख नही किया गया। प्रस्ताव मे 'आक्रमण के निष्क्रिय प्रतिरोध' की निन्दा की गई है, लेकिन पिछले कई वर्षों से गाधीजी इसी वात का ही तो प्रचार करते रहे हैं। वर्धा मे निराशावाद और पराजय की जो भावना पाई जाती थी और जो अधिकाश काग्रेसियो मे अब भी पाई जाती है—उस पर १२ जुलाई के 'हरिजन' मे श्री महादेव देसाई ने एक उल्लेखनीय लेख मे काफी प्रकाश डाला है। इसका उल्लेख आपको अँग्रेजी 'हरिजन' के २२६वे पृष्ठ पर "निराशा का खेल" नामक शीर्षक-पैरे मे मिलेगा। पढे-लिखे लोगो के साथ वातचीत करते समय इस लेख का उल्लेख करना उपयोगी सावित होगा।

५—प्रस्ताव के अन्त मे जो धमकी दी गई है वह अस्पष्ट है। वाद मे गाधीजी और मौलाना आजाद ने उसका खुलासा करते हुए यह कहा है कि उसका मतलब व्यापक पैमाने पर एक सार्वजनिक आन्दोलन से है। अगर काग्रेस की वात न मानी गई तो वह सन्तोष करके नही बैठ रहेगी और दूसरो को अपना काम नही करने देगी, वल्कि वह भारत को जापान और जर्मनी के हवाले कर देगी।

६—राष्ट्रीय युद्ध-मोर्चे से हमे पूरा-पूरा लाभ उठाकर इन प्रस्तावो का विरोध करना चाहिए, जिनसे केवल युद्ध-प्रयत्न को ही नुकसान पहुँच सकता है। स्थानीय प्रचार-कार्य के लिए हम भाषणो, स्थानीय-पत्रो के नाम पत्रो, परचो, व्यग्यचित्रो, पोस्टरो और लोगो मे जाकर वातचीत करने के साधनो से काम ले सकते है। इस सम्बन्ध मे केंद्रीय सरकार द्वारा अखिल भारतीय रेडियो स्टेशनो को आवश्यक हिदायते दे दी जायेगी।

काग्रेस ने अपने आन्दोलन के सम्बन्ध में वास्तव मे अभी विस्तृत बातो का कोई फैसला नही किया था। गाधीजी ने केवल इतना कहा था कि अहिंसा और सत्य के आधार पर अबतक के व्यक्तिगत और सार्वजनिक आन्दोलनो मे जिस कार्यक्रम को अपनाया गया है, उसकी सब बातें इस आन्दोलन मे भी रहेगी। परन्तु सरकार इतनी उत्तेजनापूर्ण कार्रवाइया कर रही थी कि उनसे जनता को हिसा और तोड-फोड की उन सभी कार्रवाइयो के करने का प्रोत्साहन मिलता था, जिनकी उसे आशका थी और जिन्हे आधार बनाकर वह अपनी कार्रवाई का औचित्य सिद्ध कर रही थी। तात्पर्य यह है कि सरकार ने जनता को अराजकता और अव्यवस्था फैलाने के लिए प्रोत्साहित किया और उसे यकीन था कि वह अहिसात्मक सार्वजनिक सविनय अवज्ञा आन्दोलन की अपेक्षा जनता की अराजकता को अपने बल-प्रयोग से सुगमता से दबा लेगी।

कांग्रेस पर दोषारोपण

इसके बाद ही इस बारे मे भारत-सरकार ने ८ अगस्त को अपना प्रस्ताव प्रकाशित किया जिसमे कहा गया कि पिछले कुछ दिनो से सपरिषद् गवर्नर-जनरल को मालूम रहा है कि काग्रेस ने अवैध और कुछ दिशाओ मे हिंसक कार्यों के लिए खतरनाक तैयारियॉ की है, जिनका उद्देश्य और बातो के अलावा यह भी है कि यातायात और सार्वजनिक उपयोग के साधनो मे विघ्न डाला जाय, हडतालो का सगठन किया जाय, सरकारी कर्मचारियो को राजभक्ति से विमुख किया जाय और रक्षा के उपायो मे, जिनमे रगरूटो की भरती भी शामिल है, बाधा पहुँचायी जाय। वास्तव मे तथ्य तो यह है कि काग्रेस कार्यसमिति ने आन्दोलन का कोई भी कार्यक्रम तैयार ही नही किया था। सरकार ने अपनी सूचना की अधिकार-सीमा के बाहर जाकर काग्रेस पर उस समय ऐसा दोपारोपण किया जिस समय देश मे कोई भी ऐसा उत्तरदायित्वपूर्ण काग्रेसजन बाहर नही था जो सरकार के इन इलजामो का प्रत्युत्तर देता।

आगे चलकर सरकार ने अपने इसी प्रस्ताव मे काग्रेस की मांग का जिक्र करते हुए यह भी कहा कि उस पर सोच-विचार ही नही किया जा सकता, क्योकि इसकी स्वीकृति से भारत मे अव्यवस्था और अराजकता फैल जायगी और मानव-स्वतन्त्रता के सार्वजनिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जो उद्यम वह कर रही है वह बिल्कुल ही ठण्डा पड़ जायगा। सरकार का यह एक अनोखा तर्क था, क्योकि मानव-स्वतन्त्रता के सार्वजनिक उद्देश्य मे भारत की अपनी स्वतन्त्रता भी तो सम्मिलित थी। वास्तविकता यह थी कि सरकार ने कांग्रेस की स्थिति बडी डाँवाडोल बना रखी थी। काग्रेस के जिम्मेदार नेताओं ने यह स्पष्ट कर दिया था कि 'भारत छोडो' नारे का अर्थ वह नही है जो सरकार ले रही है।

सरकार के उक्त प्रस्ताव के अलावा कांग्रेस और उसके नेता गान्धीजी पर अर्द्ध-सरकारी हल्कों की ओर से यह दोष भी लगाया गया कि कांग्रेस ने हाल में अपनी पिछले बाईस वर्ष की नीति परिवर्तन करके यह कहना शुरू कर दिया है कि आजादी मिलने के बाद साम्प्रदायिक ऐक्य स्वयं ही स्थापित हो जायगा, जबकि इससे पहले वह यह कहा करती थी कि स्वाधीनता की प्राप्ति से पहले साम्प्रदायिक ऐक्य अत्यावश्यक है। यह भी कहा गया कि लड़ाई के जमाने में कोई वैधानिक परिवर्तन सम्भव नहीं है। परन्तु इन तर्कों में हमें कोई जान नहीं दिखाई देती। इनसे केवल यही प्रकट होता है कि ब्रिटेन सत्ता हस्तान्तरित करने को तैयार नहीं थी। ऐसी स्थिति में कांग्रेस ने जो कदम उठाया वह बिल्कुल ठीक और उचित था। जिस दिन गान्धीजी और उनके साथी गिरफ्तार किए गये थे और सरकार ने अपना दमन-चक्र चलाया था—उसी दिन से देश के विभिन्न वर्ग उनकी रिहाई और फिर से समझौते की बातचीत शुरू करने की माँग करने लगे थे। यह माँग भारत के प्रमुख उद्योगपतियों या व्यापारियों की ओर से नहीं की जा रही थी, बल्कि साम्य-वादियों की ओर से की जा रही थी—जो युद्ध-प्रयत्न में सक्रिय भाग लेने के समर्थक थे। इसके अलावा यह माँग ट्रेड यूनियन कांग्रेस, नरम दल, मिल-मालिकों और लखपतियों, सिक्खों, भारतीय ईसाइयों, एंग्लो-इण्डियन एसोसिएशन, स्थानीय बोर्डों, म्युनिसिपैलिटियों, धार्मिक संस्थाओं, हिन्दू महासभा, विशेष प्रयोजन के लिए आयोजित सभाओं, प्रमुख व्यक्तियों तथा डा० सप्रू और श्री जयकर सरीखे निर्बल नेताओं की ओर से की जा रही थी। लेकिन सरकार ने इन माँगों, सुझावों और अनुरोधों की कोई परवाह नहीं की और वह मदान्ध होकर दमन-चक्र चलाती रही।

दमन-चक्र का प्रभाव

९ अगस्त को नेताओं की गिरफ्तारी के बाद सरकार ने पहला हमला कांग्रेस के स्वयंसेवकों की रैली पर किया। उसने राष्ट्रीय झण्डे को नीचे गिरा दिया और लोगों को चेतावनी दी कि वे उस मैदान में एकत्र न हों। इस झण्डे का उद्घाटन उसी दिन प्रात पण्डित नेहरू द्वारा किया जाना था। पुलिस की चेतावनी के बाव-जूद श्रीमती आसफअली ने झण्डा फहराया और इन गिरफ्तारियों की घोषणा की। प्रान्त भर में और बम्बई नगर में सार्वजनिक सभाओं, जमघटों और जुलूसों पर प्रति-बन्ध लगा दिये गये और इनके लिए अधिकारियों से पहले से अनुमति प्राप्त कर लेना आवश्यक घोषित किया गया। शस्त्रास्त्रों को लेकर चलना निषिद्ध कर दिया गया और एक पखवारे के लिए कुछ इलाकों में लोगों को शाम के ७–३० बजे के बाद और सुबह ६–० बजे से पहले अपने घरों से बाहर निकलने की मनाही कर दी गई। पहले ही दिन पुलिस और सेना ने लोगों पर लाठी-चार्ज किया, उनपर अश्रु-

गैस छोडी और उन्हे गोलियों का शिकार बनाया। बम्बई-जैसे निषेधात्मक आदेश एक-साथ ही सभी प्रान्तो मे लागू किये गये। संयुक्त प्रान्त की सरकार ने अपने यहाँ काग्रेस कार्यसमिति, अखिल भारतीय महासमिति तथा सभी प्रान्तीय, जिला, नगर, तहसील, वार्ड और मण्डल काग्रेस कमेटियो को अवैध घोषित कर दिया और १९३२ के सयुक्त प्रान्तीय विशेषाधिकार कानून को प्रान्त के सभी जिलो पर लागू कर दिया। इलाहाबाद मे स्वराज्य-भवन पर कब्जा कर लिया गया। मध्यप्रान्त मे नागपुर काग्रेस समाजवादी दल, नागपुर हिन्दुस्तान लाल सेना और हिन्दुस्तान लाल सेना को भी गैर-कानूनी घोषित कर दिया गया। उडीसा की सरकार ने न केवल काग्रेस कमेटियो को ही गैर-कानूनी घोषित किया, बल्कि उनके दफ्तरों और अन्य सम्बद्ध सस्थाओ को भी, जिनकी सख्या ३८ थी, घोषित क्षेत्र करार दिया। यही हाल लाहौर, नयी दिल्ली और करॉची मे भी हुआ। मद्रास मे भी तीनो प्रान्तीय काग्रेस कमेटियॉ और उनकी सस्थाएँ गैर-कानूनी घोषित कर दी गईं। बंगाल, आसाम और पटना मे भी इसी तरह के प्रतिबन्ध लगा दिये गये और पटना का 'सदाकत-आश्रम' भी एक घोषित क्षेत्र करार दिया गया।

खुला विद्रोह

इस प्रकार वास्तविकता यह थी कि काग्रेस पर एक-तरफा हमला कर दिया गया, नेता और उनके अनुयायी युद्ध की घोषणा होने से पहले ही युद्ध-बन्दी बना लिये गये। ऐसी स्थिति मे आप यह आशा कैसे कर सकते है कि सैनिक इस युद्ध-कला के सिद्धान्तो पर उचित रूप से अमल करेंगे। जनता ने समझा कि उन्हे ऐसा मौका जीवन मे शायद फिर कभी न मिल सके, इसलिए वह काबू से बाहर हो गई। सभाओ, जुलूसो, प्रदर्शनो, मिलने-जुलने की स्वतन्त्रता और वाणी स्वातन्त्र्य पर लगाये गये प्रतिबन्धो की तनिक भी अवज्ञा करने पर जब अधिकारियो-द्वारा जनता पर न केवल लाठी-चार्ज द्वारा, बल्कि राइफलो, रिवाल्वरो, मशीनगनों की मार और बमवर्षा की गयी तब वह गुस्से से पागल हो उठी। नेताओं की गिरफ्तारी को मुश्किल से १२ घण्टे भी नही हुए थे कि सरकार ने ईंट-पत्थरो और गोलियो की बौछार की वही पुरानी कहानी दुहरानी शुरू कर दी। इस तरह एक विषाक्त और दूषित चक्र चल पडा जिसे देखकर नागरिक न तो चुप ही बैठ सकते और न उसे रोक सकते थे। जनता की भीड चलती हुई रेलों पर पत्थर बरसाने लगी, गाड़ियों और कारों को रोकने लगी, रेलवे स्टेशनो को नकसान पहुँचाने लगी, उनमे अथवा उनकी सम्पत्ति को अग्नि की भेट करने लगी, अनाज की दूकाने लूटी जाने लगी, टेलीफोन के तार काटे जाने लगे, कारो के टायरो को खोल दिया गया और उन्हे बेकार कर दिया गया तथा विक्टोरिया, बैलगाड़ी तथा तॉगेवालों को परेशान किया जाने लगा। आम जनता की इन ज्यादतियो को आर्डिनेन्स-द्वारा निषिद्ध घोषित किये

जाने पर भी देशभर मे हडतालें हुईं, जिनमे स्कूल, कालेजो और विश्वविद्यालय के छात्रो ने विशेष रूप से भाग लिया। विद्यार्थियो ने पिकेटिंग करने में भी प्रमुख भाग लिया। शिक्षण संस्थाएँ और यूनिवर्सिटियाँ बहुत शीघ्र ही खाली हो गईं और देश के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक अर्थात् अलीगढ को छोडकर ढाका से दिल्ली तक और लाहौर से मद्रास तक सभी शिक्षा-सस्थाएँ बन्द हो गईं। बनारस विश्वविद्यालय पर सेना ने आन्दोलन के शुरू मे ही कब्जा कर लिया था। इस आन्दोलन के शुरू मे रेल की पटरियो और फिश-प्लेटो को उखाडने की घटनाएँ भी देखने मे आई, जिनके कारण रेलवे-यातायात पगु बना दिया गया। उदाहरण के तौर पर कई दिन तक मद्रास मेल नही चल सकी और बाद में कुछ समय तक रात्रि के समय वह बन्द कर दी गई। बित्रगुन्ता से लेकर बेजवाडा तक का १३० मील का रेल-मार्ग बुरी तरह से छिन्न-भिन्न हो गया। बिहार में लगभग दो सप्ताह तक मुगेर का बाहरी दुनिया के साथ सब प्रकार का सम्पर्क कटा रहा। जहाँ तक रेलो की अव्यवस्था का प्रश्न है, सबसे अधिक गडबड बिहार में रही। अहमदाबाद में सभी मिलें बन्द रही, लेकिन बम्बई मे केवल तीन-चार मिलें ही बन्द रही। म्युनिसिपैलिटियो के असख्य बिजली के बल्ब, आग बुझाने के केन्द्र और म्युनिसिपैलिटियो के छकडे चकनाचूर कर दिये गये। बी० बी० एण्ड सी० आई० के दादर रेलवे स्टेशन के पास ९ अगस्त को एक कार को अग्नि की भेंट कर दिया गया। ९ अगस्त को बी० बी० एण्ड सी० आई० और जी० आई० पी० रेलो की सभी गाडिया लगभग एक घण्टे तक पूरी तरह बन्द रही। सरकार ने इस गडबड का डट कर मुकाबला किया। गडबड शुरू होने के दूसरे दिन १० अगस्त को बम्बई में पुलिस और सेना को सुबह १० बजे से लेकर शाम के ४ बजे तक लगभग १० बार भीड पर गोली चलानी पडी। एक सरकारी रिपोर्ट के अनुसार ९ अगस्त, रविवार के दिन बम्बई-नगर के उपद्रवो मे ९ व्यक्ति मारे गए और १६९ घायल हुन जिनमे २७ पुलिस के सिपाही भी थे। ११ अगस्त मगलवार के दिन पुलिस ने सुबह से लेकर दोपहर के २-३० बजे तक बम्बई में लगभग १३ बार गोली चलाई। इसी प्रकार १० अगस्त तक पुलिस ने पूना, अहमदाबाद, लखनऊ और कानपुर मे भी गोली चलाई। उत्तर प्रदेश की सरकार ने एक आर्डिनेन्स लागू किया जिसके अन्तर्गत यह ऐलान किया गया कि आग लगाने या किसी विस्फोटक द्वारा शरारत फैलाने पर किसी भी व्यक्ति को अपराधी घोषित किया जा सकेगा और उसे ताजीरात हिन्द के अन्तर्गत दी जाने वाली साधारण सजा के अलावा कोडे लगाए जाने की भी सजा दी जा सकेगी। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति ऐसी किसी इमारत, मोटर-गाडी, मशीन इत्यादि को नुकसान पहुँचाएगा, जो सरकारी कार्य के लिए इस्तेमाल की गई हो अथवा की जाने वाली हो, अथवा किसी रेलवे स्टेशन, ट्राम, सडक, पुल, नहर इत्यादि को नुकसान पहुचाएगा अथवा बलात्कार करेगा,

किसी इमारत मे चोरी करेगा या डाकेजनी करेगा तो उसे भी अपराधी घोषित कर दण्ड दिया जा सकेगा। मध्य-प्रान्त मे स्थानीय संस्थाओ को कांग्रेस के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के लिए भंग कर दिया गया और इसी आधार पर दूसरे प्रान्तो मे भी ऐसा किया गया। पुलिस ने पूना, नयी दिल्ली और नासिक मे भी गोली चलाई। रेलवे स्टेशनो, इन्कमटैक्स के दफ्तरो, स्कूल और कालेज की इमारतो, डाकखानों और रेल के मालगोदामो मे आमतौर पर आग लगाई गई। बिहार मे एक भीड ने सेक्रेटेरियट पर हमला करने की कोशिश की। इस पर गोरखा सैनिको ने गोली चलाई, जिससे पाच आदमी मारे गए और १९ घायल हुए। सरकार की अराजकता के विरोध स्वरूप बिहार और बम्बई के एडवोकेट जनरलो तथा बम्बई के सरकारी वकील ने अपने पदो से इस्तीफा दे दिया।

बम्बई-शहर मे यतायात रोक दिया गया। यहा तक कि प्राइवेट कारों को भी तब तक नही गुजरने दिया गया जब तक कि उसमे बैठी हुई सवारियो मे कम-से-कम किसी एक ने गाधी टोपी न पहनी हो। ट्राम-पटरियो को बारीक पत्थरों से पाट दिया गया, जिन्हे आसानी से नही हटाया जा सकता था। सडको के जकशनों पर लटकी हुई जजीरो को खोल कर उनके साथ ट्रामों को बॉध दिया गया और उनके मार्ग मे कही से लाकर बडे-बडे दरवाजे गाड दिये गए, जिनके कारण ट्रामों का चलना और भी कठिन हो गया। यह भी पता चला कि रेल की पटरियो पर तेल आदि लगा कर उन्हे पूरी तरह से चिकना कर दिया गया।

सी० पी० रामस्वामी का इस्तीफा

अभी इन घटनाओं को हुए तीन सप्ताह भी पूरे नही हुए थे कि भारत मे और भी घटनाए हुईं, जिनपर हम विचार करना आवश्यक समझते है। इस सम्बन्ध मे सब से अधिक उल्लेखनीय घटना वाइसराय की शासन-परिषद् से सर सी० पी० रामस्वामी अय्यर का इस्तीफा था। उन्होने ५ सितम्बर को अपना पद सभाला था। शासन-परिपद् की बैठक मे जब वह पहली बार ही शामिल हुए तब उन्हे गाधीजी और कार्यसमिति की गिरफ्तारी से सम्बन्ध रखने वाली इस नीति पर सोच-विचार करना पडा कि क्या इन लोगो को अखिल भारतीय महासमिति की बैठक से पहले गिरफ्तार कर लिया जाय अथवा बाद मे? उस समय परिषद् के सम्मुख एकमात्र विचारणीय विपय यही था। सरकार ने आन्दोलन को कुचल देने के सम्बन्ध मे पहले से ही कानून और आर्डिनेन्स तैयार कर लिए थे। सर सी० पी० ने स्वेच्छा से सूचना विभाग को चुना था और अपना पद सभालने से पहले उन्होंने अपने कर्तव्यो पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला था। उन्होने यह आशा भी प्रकट की थी कि मै गाधीजी से मिल कर समझौता करने की चेष्टा करूँगा। लेकिन यह सब निष्फल रहा। गृह-विभाग ने सर सी० पी० के विचारो को पहले ही

भाँप लिया था और उसने उनके पद सँभालने से पहले ही सूचना-विभाग के कार्य-क्षेत्र को सकुचित और सीमित बनाकर अपने फैसले कर लिए थे। इसलिए सर सी० पी० आते ही दुविधा मे पड गए। परन्तु शिष्टाचार का तकाजा था कि वह जल्दबाजी से काम न ले। फलत १५ दिन के वाद यह वहाना बनाया गया कि रियासतो के हितो को देखते हुए उनका सरकारी पद पर बने रहना उचित और लाभकारी प्रतीत नही होता। हिमालय की चोटी पर बैठने की बजाय उनकी आवश्यकता कुमारी अन्तरीप मे अधिक है। इसलिए उन्होने ट्रावन्कोर वापस चले जाने का फैसला किया, परन्तु इसके लिए कोई वजह भी तो चाहिए थी। इसलिए इस सम्बन्ध मे उन्होने अपनी ओर से जो वक्तव्य दिया और सरकार ने अपनी ओर से जो विज्ञप्ति प्रकाशित की, उन दोनो मे ही वास्तविकता पर पर्दा डालने की कोशिश की गई।

महादेव देसाई की मृत्यु

जहा एक तरफ सरकार की मनमानी और हिंसात्मक कार्रवाइयो के कारण समाज के परेशान करने वाले तत्व प्रतिहिंसा और प्रतिशोध की भावना से प्रेरित हो कर उसका मुकावला कर रहे थे और सार्वजनिक सुरक्षा-व्यवस्था के लिए खतरा पैदा कर रहे थे, वहा दूसरी तरफ आगा खाँ महल मे नजरबन्द गाधीजी तथा उनके सहयोगियो और कार्यसमिति के सदस्यो के, जिन्हे किसी अज्ञात स्थान में नजरबन्द रखा गया था, स्वास्थ्य के बारे मे गहरी चिन्ता प्रकट की जा रही थी। इसके अलावा जनता को इस वात से भी गहरी चिन्ता हो रही थी कि क्या गाधीजी अनशन करेंगे, जैसा कि उन्होने अपनी गिरफ्तारी से पहले ऐसा करने की घोषणा की थी। और अगर कही उन्होने अनशन किया तो उसका क्या परिणाम होगा? इस प्रकार जब कि देश भर मे इस सबध मे गहरी चिन्ता प्रकट की जा रही थी, श्री महादेव देसाई के अचानक निधन का समाचार प्राप्त हुआ। इन गिरफ्तारियो को हुए अभी एक सप्ताह भी नही हुआ था कि देश पर ऐसा गहरा वज्रपात हुआ।

अमरीका में प्रतिक्रिया

यदि अगस्त १९४२ का आन्दोलन और गाधीजी तथा काग्रेसी नेताओ की गिरफ्तारी लडाई के शुरू मे हुई होती तो निस्सदेह अमरीका मे उसकी प्रतिक्रिया उस प्रतिक्रिया से सर्वथा विभिन्न होती जो वास्तव मे हुई। कारण यह है कि ज्यो-ज्यो लडाई ने ज़ोर पकडा, अमरीका ने ब्रिटेन के साथ अपने आर्थिक सम्बन्ध फिर से स्थापित किए। लेकिन वह अभी तक पहली लडाई के अनुभव को नही भूला था। उसे मालूम था कि उस वक्त ब्रिटेन के और उसके आर्थिक सम्बन्ध कैसे थे और ब्रिटेन उसे उसका कर्ज अदा नही कर सका था। इसलिए इस बार उसने ब्रिटेन को

बडी कडी शर्तों पर माल देना मजूर किया। पहले तो वह उसे "नकद चुकाओ और माल उठाओ" के सिद्धात पर माल देता रहा। लेकिन बाद मे जब ब्रिटेन की अमरीका मे लगाई हुई सिक्योरिटिया भी खत्म हो गई तब उसने उधार-पट्टे की एक नयी प्रणाली निकाली। इस प्रणाली के परिणामस्वरूप ब्रिटेन और अमरीका मे घनिष्ठ व्यापारिक और आर्थिक सपर्क स्थापित हो गया और पर्लहार्बर पर जापानी आक्रमण होने (७ सितम्बर, १९४१) तक उन दोनों की यह घनिष्ठता निरन्तर बढती ही गई। परन्तु इस घटना के बाद से इन दोनों राष्ट्रो मे न केवल खरीद और बिक्री और उधार-पट्टे की व्यवस्था ही चलती रही, बल्कि उनके उद्देश्यो, आदर्शो, हितो और कार्यक्रम मे भी एकता और तारतम्य स्थापित हो गया। तात्पर्य यह कि १९३९-४० से १९४१ तक अमरीका कुछ हद तक ब्रिटेन पर अपना प्रभाव डालता रहा। यह प्रभाव ऐसा ही था जैसा कि एक दुकानदार का अपने गाहक, अथवा साहूकार का अपने कर्जदार या जमीदार का किसान पर होता है। लेकिन जब अमरीका लडाई के अखाडे मे कूद पडा तब उसकी भी गिनती बहुत से युद्धलिप्त राष्ट्रो मे होने लगी। और लडाई से उसका भी उतना ही सम्बन्ध हो गया जितना ब्रिटेन का, क्योकि जापान ने फिलिपाइंस पर अपना कब्जा कर लिया था और वह प्रशात मे विशेषकर न्यूब्रिटेन और न्यूगिनी तथा आस्ट्रेलिया के आस-पास के टापुओ पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर अमरीका पर आक्रमण करने की योजनाएं बना रहा था। इसलिए ऐसी हालत मे यह सवाल ही नही उठ सकता था कि अमरीका भारत की वैधानिक प्रगति अथवा उसकी स्वतत्रता के बारे में ब्रिटेन पर प्रभाव डालेगा, यद्यपि ब्रिटेन के विवेकशील व्यक्ति और भारत-स्थित अमरीका के पत्रकार यह आशा कर रहे थे। चाहे कुछ भी हो, काग्रेस अपने इरादो और निर्णयो के बारे मे अमरीका और चीन दोनो को ही सूचित कर देना अपना परम कर्तव्य समझती थी। यही वजह है कि बम्बई मे अखिल भारतीय महासमिति की बैठक मे गाधीजी, काग्रेस के प्रधान और पडित जवाहरलाल ने इन राष्ट्रो के अध्यक्षो को इस सम्बन्ध मे पत्र लिखने की बात पर इतना जोर दिया था।

जहा तक सवाल ब्रिटिश सरकार का है वह अच्छी तरह जानती थी कि भारतीय समस्या का केन्द्र जहा एक ओर लन्दन के बजाय दिल्ली बनता जा रहा था, वहा दूसरी तरफ न्यूयार्क भी बन रहा था। इसी वजह से उसने अमरीका मे आई० सी० एस० के एक योग्य व्यक्ति श्री बाजपेयी को अपना प्रतिनिधि नियुक्त करना आवश्यक समझा। इस प्रकार लार्ड हेलीफेक्स अमरीका मे ब्रिटेन के राजदूत और सर गिरजाशंकर बाजपेयी भारत-सरकार के हाई कमिश्नर नियुक्त हुए। लार्ड हेलीफेक्स ने अमरीकी जनता के सामने काग्रेस को बदनाम करने की कोशिश की और ब्रिटेन तथा उसके एजेण्ट क्रिप्स के पक्ष का समर्थन किया। प्रत्यक्ष है कि ब्रिटेन इसी नीति पर आचरण करना चाहता था। परन्तु काग्रेस को अपना

सदेश अमरीकन जनता तक पहुचाने के लिए ब्रिटेन की उदारता, अमरीका की रियासतो मे काम करने वाले कार्यकर्ताओ और भारत-स्थित अमरीकी सवाद-दाताओ की सद्भावना पर निर्भर रहना पडता था। पता चला है कि जव अमरीकी सवाददाता भी वम्वई-प्रस्ताव के सम्वन्ध मे अपने सदेश और समाचार अमरीका न भेज सके तव उनमें से एक सवाददाता वायुयान-द्वारा चीन पहुचा और वहा से उसने अपना सदेश अमरीका भेजा।

जिस प्रकार ब्रिटिश और भारत सरकार ने अपने-अपने प्रतिनिधि अमरीका भेजे—उसी प्रकार समय-समय पर उसके प्रतिनिधि भी भारत आते रहे। वम्वई-प्रस्ताव के पास होने के अगले दिन ही प्रधान रूजवेल्ट के एक और प्रतिनिधि श्री लौचलिन क्यूरी नयी दिल्ली मे पधारे (९ अगस्त, १९४२) और पता चला कि उन्होने वाइसराय के साथ वडी देर तक वातचीत भी की। उनके वाद श्री विलियम फिलिप्स आए। १९४२ की गर्मियो के प्रारम्भ मे भारत-स्थित अमरीकी पत्र-प्रतिनिधियो मे एक उल्लेखनीय व्यक्ति लुई फिशर भी थे, जो भारत मे यद्यपि काफी देर तक रहे, फिर भी उन्होने यहा रहते हुए अपने विचारो के सम्वन्ध में कोई वात प्रकट नही होने दी। लेकिन अमरीका पहुच कर उन्होने भारत के पक्ष मे जोरदार आन्दोलन किया और भारत की समस्या को तर्क संगत और निष्पक्ष भाव से अमरीकी जनता के समक्ष उपस्थित किया। जुलाई १९४२ मे जव वह भारत से अमरीका के लिए रवाना हुए तव अपने साथ प्रधान रूजवेल्ट के लिए गाधीजी का एक सदेश भी लेते गए और उसे अमरीका के राष्ट्रपति के पास पहुचा दिया। इसमे गाधीजी ने प्रधान रूजवेल्ट से प्रार्थना की थी कि भारत की स्वतन्त्रता की माग के सम्वन्ध मे जो गतिरोध पैदा हो गया है उसे दूर करने के लिए आपको मध्यस्थ बनना चाहिए। लेकिन दुर्भाग्यवश वह १३ अप्रैल, १९४५ को अपनी इहलीला समाप्त कर परलोक सिधार गए।

इसके वाद से नौ महीने से भी अधिक समय तक एक तरफ ब्रिटिश सरकार और भारत-सरकार और दूसरी ओर प्रमुख पत्रकारो और प्रचारको मे भारतीय समस्या के वारे मे अमरीकी जनमत को शिथिल करने और अमरीका के प्रधान को प्रभावित करने की जोरदार होड लगी रही। भारत से इगलैण्ड वापस जाने के कुछ समय वाद ही सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने 'न्यूयार्क टाइम्स' मे एक लेख लिखा और इसी प्रकार एक और प्रसिद्ध अमरीकी सवाददाता श्री एडगर स्नो ने भी भारत के पक्ष मे बहुत से लेख लिखे। दिसम्वर १९४२ के प्रारम्भ मे श्री लुई फिशर ने भारत के बारे मे स्वय अमरीका मे जो भाषण दिये उनके कारण उस देश मे ब्रिटेन के एजेण्टो और उसके राजदूत ने जो भ्रमजाल फैलाया था उसका सारा रहस्य खुल गया और जनता के सामने भारत की वास्तविक स्थिति उपस्थित हो गयी। अमरीका की प्रसिद्ध पत्रिका 'एटलांटिक मैगजीन' ने लिखा—"भारतीय समस्या

को हल करने का एक रचनात्मक तरीका यह है कि मित्रराष्ट्र सयुक्त रूप से यह घोषणा कर दे कि यदि लडाई मे उनकी जीत हुई तो उनका उद्देश्य क्या होगा। भारत की समस्या साधारण समझौते का ही एक अग होना चाहिए।"

सिर्फ अमरीका मे ही ऐसे विचार नही प्रकट किये गए बल्कि ब्रिटिश साम्राज्य के स्वाधीनता-प्राप्त उपनिवेश कैनेडा के एक प्रमुख राजनीतिक दल 'कोआपरेटिव कामनवेल्थ फेडरेशन' ने भी अपने यहा के प्रधान मत्री श्री मेकेंजी किग से आग्रह किया कि वह मित्रराष्ट्रो के द्वारा "इस समय और युद्ध के बाद भारत मे स्वायत्त सरकार की स्थापना" के लिए फिर से समझौते की बातचीत शुरू करने पर जोर दे। इस प्रकार बम्बई-प्रस्ताव के बाद नेताओ की गिरफ्तारी को अभी मुश्किल से दो ही महीने हुए होगे कि अक्टूबर, १९४२ मे अमरीका मे भारत के पक्ष मे एक जोरदार लहर दौड गई। नोबेल-पारितोषिक-विजेता श्रीमती पर्ल बक और प्रसिद्ध चीनी लेखक लिन युताग ने भी भारत के पक्ष मे अपनी जोरदार लेखनी उठाई। इनके अलावा जगह-जगह पर श्री वेडेल विल्की ने ब्रिटेन और अमरीका दोनो की ही टीका-टिप्पणी की। इन आलोचनाओ का सभ्य ससार पर बहुत अधिक असर पडा। इन्ही दिनो न्यूयार्क मे 'फ्री वर्ल्ड एसोसियेशन' के तत्वावधान मे 'फ्री वर्ल्ड काग्रेस' का एक अधिवेशन हुआ। एसोसियेशन की ओर से एक भोज दिया गया। इस अवसर पर अमरीका के उप-प्रधान श्री वालेस ने एक अत्यन्त विवेकयुक्त और दूरदर्शितापूर्ण भाषण दिया, जिसका मुख्य विषय, "जन क्राति" अथवा "साधारण व्यक्ति का देश" था। कहा जाता है कि इस भाषण के परिणामस्वरूप अमरीका और विदेशों मे न केवल सयुक्त राष्ट्रो के उद्देश्यो के प्रति वल्कि साधारण मानव के अधिकारो के प्रति भी गहरी दिलचस्पी और जाग्रति पैदा हो गई।

अमरीका की विभिन्न रियासतो के भूतपूर्व गवर्नरो, राष्ट्रपति-पद के उम्मीदवारों और उस महान् प्रजातत्र के उप-प्रधानो ने ही भारत और प्रशान्त के देशो के पक्ष का समर्थन नही किया, वल्कि अमरीका के मजदूरो ने भी उन्हे सामयिक सहायता प्रदान की। अमरीका के शक्तिशाली मज़दूर संगठन—औद्योगिक संघ काग्रेस ने वोस्टन मे अपने वार्षिक सम्मेलन मे एकमत से भारत की आजादी की माग का समर्थन करते हुए एक प्रस्ताव पास किया। वोस्टन, शिकागो, न्यूयार्क, वाशिगटन, मेक्सिको और कैनेडा सभी जगह भारतीय प्रश्न की चर्चा हुई। फिलिपाइस राष्ट्र-मण्डल मे नवम्बर, १९४२ मे वार्षिकोत्सव के अवसर पर प्रधान रूजवेल्ट ने पहली वार एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घोषणा की जिससे अटलाटिक अधिकार-पत्र की कुछ अस्पष्ट धाराओ के सम्बन्ध मे अमरीका के इरादो पर प्रकाश पडा।

इस प्रकार इन वड़े-वडे प्रश्नो को अपने गर्भ में लिए १९४२ समाप्त हुआ और

१९४३ का श्रीगणेश हुआ। नये वर्ष के प्रारभ मे २६ जनवरी को अमरीका के कई शहरो मे भारतीय-स्वाधीनता-दिवस मनाया गया। इस साल न्यूयार्क और वाशिंगटन दोनों ही शहरो में इस अवसर पर प्रदर्शन किये गये। इस अवसर पर कुछ बडे-बडे प्रोफसरो ने भारतीय समस्या के वारे में अपने स्वतन्त्र और निर्भीक विचार जनता के सामने रखे। प्रोफेसर फ्रेडरिक समन ने 'दि टाइम' नामक पत्रिका में "भारत को वचाने के लिए" शीर्षक से एक लेख मे लिखा—"भारत इस वात की कसौटी हे कि क्या हममे जीवित रहने की सामर्थ्य है।" हारवर्ड यूनिवर्सिटी के एक प्रोफेसर और हारवर्ड-रक्षा-दल के प्रधान श्री राल्फ वार्टन पेरी ने अमरीका के स्थायी असिस्टेण्ट सेक्रेटरी श्री सुमनर वेल्स को एक पत्र लिखा जिसमे उन्होने भारतीय गतिरोध को दूर करने में अमरीका की असफलता और हस्तक्षेप न करने की नीति की आलोचना की। प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर वाल्टर फेल्पो हाल ने 'करेण्ट हिस्ट्री' पत्रिका में अपने एक लेख मे इस बात पर जोर दिया कि भारत में जो-कुछ हो रहा है उससे केवल अकेले ब्रिटेन ही नही, वल्कि सभी सयुक्त राष्ट्रो का घनिष्ट सपर्क है। उन्होने लिखा कि "उनके नाम पर एक तरफ ब्रिटेन को अपना वाइसराय भारत से वुला लेना चाहिए, काग्रेस-दल के साथ फिर से समझौता करना चाहिए और अमरीका तथा चीन के एक पचायती वोर्ड की सहायता से इस समस्या का हल ढूंढना चाहिए और दूसरी तरफ भारत से कहना चाहिए कि वह अपने असहयोग-आन्दोलन को वन्द कर दे, युद्धकाल तक के लिए उपर्युक्त पंचायती-वोर्ड का फैसला मान ले और सैनिक और गैर-सैनिक सभी तरीको से जापानियो को वर्मा और चीन से मार भगाने मे कोई कसर न उठा रखे।" आगे आपने कहा कि "भारतीय लोग प्रतिदिन अधिकाधिक ब्रिटिश-विरोधी वनते जा रहे है, लेकिन उसका मतलव यह नही कि वे जापानियो के हामी या पक्षपाती भी वनते जा रहे है। उन्हें ब्रिटेन की सद्भावना मे जो थोडा-वहुत विश्वास था, उसे भी वे अब खोते जा रहे हैं। भारत की इस उदासीनता और वेरुखी से युद्ध-प्रयत्न मे वाधा पहुँचती है।"

भारत मे रूजवेल्ट के निजी दूत श्री फिलिप्स ने मुस्लिम लीग के मन्त्री और वाद मे उसके अध्यक्ष, हिन्दू महासभा के कुछ व्यक्तियो, कुछ वडे-वडे सार्वजनिक व्यक्तियो, कुछ निर्दलीय नेताओ तथा सिखो, हरिजनो और भारतीय ईसाइयो के प्रतिनिधियो से मुलाकात की। वह निस्सदेह एक कूटनीतिज्ञ थे। भारतीय समस्या के वारे मे वह अपने विचारो को सकेतमात्र भी प्रकट नही होने देते थे। केवल एक ही वार उन्होने अपने इस नियन्त्रण को कुछ ढीला किया। गाधीजी के उपवास के शुरू मे ही (१० फरवरी, १९४३ को) उन्होने अपना निर्धारित दौरा स्थगित कर दिया और इसी उपवास के दौरान मे जो ३ मार्च को समाप्त हुआ, श्री फिलिप्स ने इसके फलस्वरूप पैदा होनेवाली स्थिति के सम्बन्ध मे प्रश्न किये जाने पर कहा कि

"भारतीय स्थिति के विभिन्न पहलुओं पर अमरीका और ब्रिटेन के बडे-बड़े सरकारी अधिकारी सोच-विचार कर रहे है।"

प्रशान्त-सम्मेलन में प्रतिक्रिया

इस प्रकार ज्यों-ज्यों समय गुजरता गया, भारत के सम्बन्ध मे अमरीका की दिलचस्पी घटने के बजाय बढती ही गई और १९४२ मे भारत के सम्बन्ध मे अमरीका मे 'अमेरिकन राउण्ड टेबल' नाम से एक नये राष्ट्रीय सगठन की स्थापना हुई। इस सगठन ने २९ अक्टूबर, १९४३ को प्रधान रूजवेल्ट से आग्रह किया कि वह भारत और ब्रिटेन मे समझौता कराने की कोशिश करे।

चीन में प्रतिक्रिया

दूसरे महायुद्ध का एक प्रत्यक्ष और तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि भारत और चीन एक-दूसरे के बहुत निकट-सपर्क मे आ गए। सितम्बर, १९३८ मे पडित जवाहरलाल नेहरू की चुगकिग-यात्रा और १९४२ मे मार्शल और श्रीमती चागकाई शेक की भारत-यात्रा के फलस्वरूप विश्व के दो बड़े-बडे एशियाई राष्ट्रो की सस्कृति और अकाक्षाओ को एकता के सूत्र मे नये सिरे से बाधने मे बड़ी सहायता मिली। चीनियो ने भारत की माग का समर्थन किया। गाधीजी की गिरफ्तारी के तीन दिन बाद १२ अगस्त को चुगकिग के एक सन्देश मे कहा गया—"गाधीजी की गिरफ्तारी, उपद्रवों और रक्तपात का समाचार जानकर यहां बहुत शोक हुआ है। मौजूदा लडाई के पीछे तो यह भावना काम कर रही है कि आजादी के लिए लडी जानेवाली लडाई पर किये गए आक्रमण का डट कर प्रतिरोध किया जाए। इसके बिना मौजूदा लडाई एक बेमानी चीज है। भारत की आजादी की लडाई सयुक्त-राष्ट्रो के युद्ध-उद्देश्यो के सर्वथा अनुरूप है और इसलिए कोई वजह नही कि हम भारत के प्रति सहानुभूति क्यो न प्रकट करे।"

दक्षिण अफ्रीका में प्रतिक्रिया

दक्षिण अफ्रीका मे गाधीजी ने सत्य और अहिसा सबधी अपने प्रारम्भिक परीक्षण किय थे, और बाद मे उन्होंने इन्ही परीक्षणो को राष्ट्रीयता और विश्व-जातीयता की बडी-बड़ी समस्याओ को हल करने के लिए भारत मे एक विशाल पैमाने पर कार्यान्वित किया था। जनरल स्मट्स उनसे परिचित थे। लन्दन के एक पत्र-प्रतिनिधि-सम्मेलन मे भारतीय पत्रकारो को जवाब देते हुए उन्होने कहा, "गाधीजी को 'पचमागी' कहना महज एक बेवकूफी है। वह एक महान् व्यक्ति हैं। वह ससार के एक महापुरुष हैं और उन्हे इस तरह की श्रेणी मे किसी सूरत मे भी नही रखा जा सकता। वह आध्यात्मिकता के आदर्शो मे रगे हुए हैं।

यह सन्देहास्पद हो सकता है कि क्या हमारी इस कठिन दुनिया में उन आदर्शों पर हमेशा अमल किया जा सकता है, लेकिन इसमें तो किसी को कोई सन्देह हो ही नही सकता कि गाधीजी एक महान् देशभक्त, महापुरुष और एक महान् आध्यात्मिक नेता हैं।"

ब्रिटेन में प्रतिक्रिया

भारत-मन्त्री श्री एमरी ने लन्दन मे तुरन्त ही दो ब्राडकास्ट-भाषण दिये। एक भाषण उन्होने ९ अगस्त, १९४२ को ब्रिटेन के लोगो के नाम और दूसरा १० अगस्त को अमरीका के लोगो के नाम ब्राडकास्ट किया। अपने पहले ब्राडकास्ट में श्री एमरी ने सर स्टैफर्ड क्रिप्स के मिशन का हवाला देते हुए कहा कि भारत के उत्तरदायित्वपूर्ण शासन-प्रबन्ध और युद्ध-प्रयत्न मे भाग लेने की बातचीत मुख्यत काग्रेस-नेताओ के दुराग्रह अथवा "सब कुछ दीजिए या कुछ भी नही" वाले रुख के कारण असफल हो गई। आगे आपने कहा कि ब्रिटेन के प्रस्तावो को ठुकरा देने का परिणाम यह हुआ है कि उससे भारतीय लोकमत अत्यधिक निराश हुआ है और काग्रेस के नेतृत्व मे उसका विश्वास बुरी तरह से उठ गया है।

भारत की घटनाओ के बारे मे ब्रिटेन की जनता और विभिन्न हलको की प्रतिक्रियाए भिन्न-भिन्न थी। वहा के न केवल सरकारी और गैर-सरकारी हलको की प्रतिक्रियाए ही एक-दूसरे के विपरीत थी, बल्कि समाचार-पत्रो मे भी मतैक्य न था। इस युग के प्रारभिक-काल मे लन्दन के सुप्रसिद्ध पत्र 'टाइम्स' का रुख बिल्कुल असाधारण रहा। उसने अपनी परपरा को तिलाजलि देकर सत्य की खोज और इस मामले के पक्ष-विपक्ष के सम्बन्ध मे निष्पक्ष जाच-पडताल करने पर जोर दिया। 'माचेस्टर गार्जियन' की भाति उसने भी तत्कालीन सरकार की सर्वतोमुखी दमन-नीति का समर्थन न कर युगो से चली आने वाली दमन और समझौते की दुहरी नीति का प्रतिपादन किया। उसने लिखा कि "किसी रचनात्मक नीति के बिना दमन-नीति युद्ध और शान्ति दोनो ही मे असफल और बेकार साबित होगी। इतना ही नही, वह उससे कही अधिक खतरनाक भी साबित हो सकती है। 'माचेस्टर गार्जियन' ने ब्रिटेन, गैर-काग्रेसी भारतीयो और मित्रराष्ट्रो से भी अनुरोध किया कि आप हमे इस झगडे को निबटाने मे मदद दे जिसकी वजह से हम सभी को नुकसान पहुच रहा है। ब्रेलसफोर्ड-जैसे सुप्रसिद्ध लेखक ने 'रेनाल्ड्स न्यूज' और श्री लियोनल फील्डन ने 'आब्जर्वर' मे लिखे गए अपने लेखो मे यह सुझाव रखा कि "गाधीजी को विडसर अथवा चेकर्स मे अतिथि के रूप मे आमन्त्रित कर सरकार को उनसे समझौता कर लेना चाहिए।" इनके अलावा कलकत्ता के बिशप और भारत के लाट-पादरी डा० फौस वेस्टकॉट ने भी ब्रिटिश सरकार से काग्रेस के साथ समझौता कर लेने का जोरदार आग्रह किया। लाट-पादरी ने इस

वात पर ज़ोर दिया कि काग्रेस के नेताओं के अन्तिम वक्तव्यो मे अब भी समझौता करने की 'दृढ भावना' पाई जाती है। आपने आगे कहा कि "दमन-नीति के परिणामस्वरूप सरकार को समझौते की कोशिशों को नही छोड़ देना चाहिए। स्वय काग्रेस के भीतर ऐसे शक्तिशाली तत्व मौजूद हैं जो युद्ध-प्रयत्न मे सक्रिय रूप से भाग लेने और मित्रराष्ट्रों के साथ कन्धे-से-कन्धा मिलाकर काम करने के पक्ष ही हैं। इस वक्त सभी को समान रूप से युद्ध-प्रयत्न के लिए संगठित करने का एक मे तरीका है कि देश के राजनीतिक दलो के वास्तविक नेताओ को एक ऐसी शासन-परिषद् स्थापित करने के लिए कहा जाय जिसे वास्तविक अधिकार प्राप्त हो।" १२ अगस्त, १९४२ को ब्रिटेन के मजदूर-दल ने एक वक्तव्य प्रकाशित किया, जिसमे उसने कहा—बरसों लेबर-पार्टी का यह सुनिश्चित मत और दृढ धारणा है कि भारतीयों को स्वभाग्य-निर्णय का पूर्ण अधिकार है। अब ब्रिटिश सरकार और पार्लमेण्ट ने भी स्पष्ट रूप से भारतीयों के इस अधिकार को मान लिया है। मजदूर दल को यकीन है कि युद्धोत्तर-कालीन ससार मे स्वतत्र भारत की स्थापना निश्चित है और इस सम्बन्ध मे ब्रिटिश सरकार-द्वारा किसी प्रकार के विलम्ब या टालमटोल की नीति की सम्भावना नही है।

एबरडीन मे ७ सितम्बर को श्री एटली ने अपने एक भाषण मे कहा कि भारतीय समस्या के समाधान मे हमने वहुत-सी गलतिया की हैं, लेकिन हमने एक शताब्दी से भी अधिक समय तक भारत मे आन्तरिक शाति और अच्छे शासन-प्रबन्ध को बनाए रखा है और पिछले पचीस साल मे भारत ने स्वराज्य की प्राप्ति के लिए बडी भारी प्रगति की है। इस दिशा मे और प्रगति इसलिए नही हो सकी कि एक तो भारतीयो मे आपस मे कोई समझौता नही हो पाया और दूसरे ३० करोड की आबादीवाले देश मे प्रजातत्र की स्थापना मे काफी कठिनाइया हैं।

सितम्बर मे जब पार्लमेण्ट का अधिवेशन हुआ तब श्री चर्चिल ने भारत के वारे मे एक वक्तव्य दिया जो उनके पिछले सभी वक्तव्यो से वाजी ले गया। उन्हे भारत, काग्रेस अथवा गाधीजी से कोई विशेष प्रेम नही था। उनका एकमात्र उद्देश्य गाधीवाद को धराशायी कर पैरों-तले कुचल देना था। १० सितम्बर १९४२ को उन्होने कहा—"काग्रेस पार्टी के सिवा और जिन लोगो का उससे बुनियादी मतभेद है वे ब्रिटिश-भारत के ९ करोड मुसलमान हैं (इस अवसर पर एक सदस्य ने कहा, 'यह एक बेहूदा बात है' और इस पर 'शान्ति, शान्ति' की आवाजे सुनाई दी) जिन्हें आत्मनिर्णय का पूरा-पूरा हक है। इसके अलावा दलितवर्ग अथवा ५ करोड़ 'अछूत'—जिन्हे अछूत इसलिए समझा जाता है कि उनके स्पर्शमात्र से उनके धर्म-बन्धु हिन्दुओ का धर्म भ्रष्ट हो जाता है, और देशी नरेशो की ९।। करोड जनता, जिनके साथ हमने सधिया कर रखी हैं, काग्रेस की विरोधी है और उनका उससे किसी किस्म का कोई सबंध नहीं है। इस प्रकार

भारत की कुल ३९ करोड की आवादी मे से केवल इन तीन वर्गो की २३ करोड ५० लाख जनता ही उसके विरुद्ध है। इसके अलावा इसमे ब्रिटिश भारत के हिन्दुओ, सिक्खो और ईसाइयो के वहुत-से वे वर्ग शामिल नही है, जिनका काग्रेस की वर्तमान नीति से विरोध है। यह जरूरी है कि हमे ब्रिटेन मे और दूसरे देशो में इन मुख्य तथ्यो की अपेक्षा नही करनी चाहिए, क्योकि इस आधार-भूत तथ्य के विना भारतीय समस्या अथवा ब्रिटेन और भारत के पारस्परिक सम्बन्धो पर विचार करना सभव नही है। अव काग्रेस वहुत-सी वातो मे गाधीजी की अहिंसा को तिलाजलि देकर खुले रूप मे एक क्रान्तिकारी आन्दोलन की शक्ल मे प्रकट हुई है। उसके इस आन्दोलन का उद्देश्य यातायात के साधनो—रेल और तार आदि को पगु वना देना और साधारणत अव्यवस्था फैलाना, दुकाने लूटना तथा पुलिस पर हमले और क्रूरता पूर्ण अत्याचार करना है। इस सारे कार्यक्रम का मकसद अथवा उसका परिणाम भारत पर जापान के आक्रमण के खिलाफ देश की रक्षा-व्यवस्था के मार्ग मे अडचन पैदा करना है।

"अत गाधीजी और दूसरे वडे-वडे नेताओ को नजरवन्द कर लिया गया है और उन्हे हर किस्म की सहूलियतें और आराम पहुँचाने की कोशिश की गई है। जव तक यह सकट दूर नही हो जाता उन्हें जेल मे ही रखा जाएगा। वास्तव मे यह वडे सौभाग्य की वात है कि लडाकू जातियो के ऊपर काग्रस का कोई प्रभाव नही है, क्योकि ब्रिटिश फौजो के अलावा हिन्दुस्तान के वचाव की मुख्य जिम्मेदारी इन्ही जातियो पर है। इनमे से वहुत-सी जातियो का हिन्दू-काग्रेस से गहरा मत-भेद है और वे यह कभी भी गवारा नही करेंगी कि काग्रेस उन पर हुकूमत करे अथवा उन्हे उनकी मर्जी के खिलाफ इस तरह से गुलाम वनाया जाय।"

आगे श्री चर्चिल ने कहा—"भारत मे अनिवार्य सैनिक सेवा अथवा भर्ती नही है, लेकिन फिर भी दस लाख से भी ज्यादा भारतीय इस विश्व-युद्ध में सयुक्त-राष्ट्रो की मदद के लिए स्वेच्छा से शामिल हुए है। भारतीय सैनिको ने लडाई के विभिन्न अखाडो मे अपनी वहादुरी के जौहर दिखाए है और यह वडे सतोष की वात है कि इन पिछले दो महीनो मे, जव कि काग्रेस भारत-सरकार के खिलाफ अपनी शक्ति का सगठन करती रही है, १,४०,००० से भी अधिक नये रगरूट स्वेच्छा से सेना मे भरती हुए है और उन्होने सम्राट् के प्रति वफादारी की शपथ ली है। इस तरह अपने देश की रक्षा के लिए उन्होने पिछले सब रेकार्ड तोड दिये है। अब तक जो कुछ भी हुआ है उससे तो यही सावित होता है कि काग्रेस भारतीय सेना को उसके कर्तव्य-पथ से विमुख करने मे असफल रही है। वह उसे अपने मायाजाल से प्रभावित नही कर सकी है। इतना ही नही, भारतीय सरकारी अफसरो अथवा स्वय भारतीय जनता को प्रभावित करने मे भी वह बुरी तरह अस-फल रही है।

"३९ करोड जनता का संपूर्ण शासन-प्रबन्ध स्वय भारतीयो के ही हाथो मे है और भारतीय सिविल सर्विस मे अग्रेजो की संख्या ६०० से भी कम है। सभी सार्वजनिक सर्विसे इस समय अपना काम कर रही है। पाच प्रान्तो मे, जिनमे दो सबसे बडे प्रान्त भी शामिल है और जिनकी आबादी ११ करोड है, धारासभाओ के प्रति उत्तरदायी प्रान्तीय मत्रिमडल काम कर रहे है। शहरो और देहातो के बहुत-से स्थानो मे जनता ने नागरिक अधिकारियो का हाथ बँटाया है।

"यातायात के साधनो को काट देने से सबध रखनेवाला काग्रेस का विद्रोह अब असफल होता जा रहा है। आग लगाने और लूटमार की कार्रवाइयो को दबाया जा रहा है और जानमाल का बहुत ही कम नुकसान हुआ है। इतने विशाल और विस्तृत देश मे ५०० से भी कम जाने गई है और नागरिक अधिकारियो की सहायता के लिए ब्रिटिश-सेना के केवल थोडे से ब्रिगेड ही इधर-उधर भेजने पडे है। अधिकाश जगह भारतीय जनता ने बलवाइयो की खूब खबर ली है और उन पर काबू पा लिया है।

"मुझे पूरा यकीन है कि यह सभा चाहेगी कि मै बहादुर भारतीय पुलिस और भारतीय सरकारी वर्ग के प्रति, जिनका व्यवहार साधारणत. बडा प्रशसनीय रहा है, उनकी दृढता और राजभक्ति के लिए आभार प्रकट करू। सक्षेप मे, सबसे बडी और उल्लेखनीय बात, जोकि काग्रेस के इस हिसात्मक आन्दोलन से स्पष्ट हुई है, यह है कि काग्रेस देश का प्रतिनिधित्व नही करती, वह एक कमजोर जमात है और वह देश के साधारण जीवन को व्यवस्थित करने मे नाकामयाब रही है।

"इस सम्बन्ध मे मै आपको यह बता दू कि बहुत-सी सेनाएं भारत पहुच गई है और इस वक्त उस देश मे श्वेत सैनिक इतनी बडी सख्या मे मौजूद है, जितने पहले कभी नही रहे, यद्यपि देश की विशालता और भारी जनसख्या को देखते हुए वे अब भी बहुत थोडे है। इसलिए मै इस सभा को सूचित कर देना चाहता हू कि भारत की मौजूदा स्थिति से हमे अनुचित रूप से घबराना या निराश होना नही चाहिए।"

२९ सितम्बर को लन्दन मे युद्ध की परिस्थिति का सिहावलोकन करते हुए श्री एमरी ने कहा, "किसी भी दल-द्वारा लादा गया विधान कभी टिक नही सकता, लेकिन गाधीजी और काग्रेस के सगठन का नियत्रण करनेवाले उनके मुट्ठीभर साथियो का असली मकसद यही है। इसी मकसद को हासिल करने के लिए उन्होने हाल मे बडे पैमाने पर तोड-फोड का आन्दोलन शुरू करने का फैसला किया था और इस तरह वे भारत-सरकार से घुटने टिकवा लेना चाहते थे। उससे न केवल तात्कालिक युद्ध-प्रयत्न के लिए भारी खतरा पैदा हो जायगा, बल्कि भारत की भावी स्वतन्त्रता और एकता भी खतरे मे पड़ जायगी।"

इग्लैण्ड और भारत में ही नही, वल्कि अमरीका और दूसरे मुल्को में भी श्री चर्चिल के उक्त भाषण पर गहरा खेद प्रकट किया गया। पार्लमेण्ट के सदस्य श्री ऐलन और विरोधी-दल के नेता और भूतपूर्व मत्री ग्रीनवुड ने प्रधान मत्री के भाषण की आलोचना करते हुए उसे एक तरह से "उत्तेजनात्मक और विरोध-मूलक" बताया जिससे 'लाखो ही लोगो को धक्का' पहुँचेगा। चर्चिल के उक्त भाषण के सम्वन्ध में टिप्पणी करते हुए 'टाइम्स' ने अपने एक अग्रलेख मे लिखा—"कांग्रेस सभी विवेकशील भारतीयो अथवा शायद उनके वहुमत का भी प्रतिनिधित्व नही करती। यद्यपि यह ठीक है कि केवल कांग्रेस के दृष्टिकोण का ख्याल करते हुए ही कोई समझौता करना सभव नही है तथापि यह भी उतना ही सही है कि उसकी उपेक्षा करके कोई समझौता नही हो सकता।" 'मांचेस्टर गार्जियन' ने लिखा कि "उन्होने भारतीय स्थिति की कुछ ऐसी सहल वातो का, जिसका प्रचार अमरीका मे हो चुका है, खण्डन किया है। यदि चर्चिल के वक्तव्य को अन्तिम वाक्य मान लिया जाय तो उससे न केवल ब्रिटेन, वल्कि मित्रराष्ट्रो को भी गहरी निराशा होगी।" इसी विषय को लेकर २८ सितम्बर को उसने फिर लिखा, "भारत के मामले में ब्रिटिश राजनीतिज्ञता की साख को धीरे-धीरे वट्टा लग रहा है। हम अमरीका और चीन को यह यकीन दिलाने मे असफल रहे है कि हम अव तक अपने उदार विचारो पर दृढ वने हुए है। भारत मे तो श्री चर्चिल के भाषण ने केवल घाव पर नमक छिडकने का काम किया।" सायकाल के समय प्रकाशित होने वाले दैनिक मुस्लिम पत्र 'स्टार आफ इडिया' ने लिखा कि भारत मे श्री चर्चिल के भाषण से इतना अधिक क्षोभ फैलेगा जितना कि उनके यह कहने पर भी नही फैला था कि अटलाटिक अधिकार-पत्र भारत पर लागू नही होगा, क्योकि वह एक ऐसे कट्टर साम्राज्यवादी है, जिन्हे दूसरे देशो को स्वाधीन करने की अपेक्षा साम्राज्य मे शामिल करने की अधिक लालसा और उत्सुकता रहती है।" 'अमृत वाजार पत्रिका' ने लिखा—"यह भाषण आदि से लेकर अन्त तक उत्ते-जनापूर्ण है। इससे अराजकता को प्रोत्साहन मिलता है और यह भारत की प्रगति-शील शक्तियो को चुनौती है।" 'सिविल ऐन्ड मिलिटरी गजट' ने लिखा—"प्रत्येक वास्तविक राष्ट्रवादी और देशभक्त भारतीय यह कह सकता है और उचित रूप से कह सकता है कि भारत ने तो रोटी मागी थी लेकिन उसके बदले मे उसे मिला पत्थर। साथ ही हमे यह नही भूलना चाहिए कि बहुत से राष्ट्रवादी भार-तीयो के दिलों मे ब्रिटेन के लिए अत्यधिक सम्मान और प्रेम है और वे मित्रराष्ट्रो की असदिग्ध रूप से हार्दिक सहायता करना चाहते है। यह कहकर कांग्रेस को बदनाम करने या उसकी मान-प्रतिष्ठा घटाने की कोशिश करना कि केवल थोडे से लोग ही उसके समर्थक है, सिवाय मूर्खता के और कुछ नही है।"

श्री चर्चिल ने गैर-कांग्रेसियो मे ९ करोड मुसलमानो, ५ करोड़ अछूतो और

९।। करोड रियासती जनता की गिनती की थी। बेहतर होता, अगर इसमे वह उन १० करोड लोगो को भी शुमार कर लेते जो राजनीतिक दृष्टि से पिछडे हुए है और इस तरह उन्हे तसल्ली हो जाती कि काग्रेस के साथ केवल ५ करोड़ लोग है और इस प्रकार भारत के बारे मे उनके दृष्टिकोण की निरर्थकता प्रमाणित हो जाती।

अक्तूबर १९४२ के अन्त मे पार्लमेण्ट मे भारत-विषयक बहस होने से पहले ही १० अक्तूबर को 'न्यू स्टेट्समैन ऐण्ड नेशन' ने भारतीय समस्या को सुलझाने के लिए वास्तविक कोशिश करने पर जोर देते हुए लिखा कि क्या भारत मे गतिरोध को दूर करने के लिए कुछ भी नही किया जा सकता? हमारी राय मे अमरीका की मध्यस्थता के जरिये भारतीय समस्या को सुलझाने का प्रस्ताव ठुकरा कर हमने गलती की है। 'टाइम्स' ने लिखा कि ब्रिटिश सरकार को अपना प्रयास नही छोडना चाहिए और वाइसराय की शासन-परिषद् के उन पाच स्थानो पर भी जिन पर इस समय अग्रेज है—भारतीयो को ही नियुक्त कर देना चाहिए। कठिनाई तो यह है कि कोई भी भारतीय जिसे अपने देशवासियो का विश्वास प्राप्त नही है अथवा जिसे किसी दल का समर्थन प्राप्त नही है, वाइसराय की शासन-परिषद मे नही शामिल हो सकता और उसमे ऐसे भारतीयो को लेने से कोई लाभ नही जो सिवाय अपने किसी का भी प्रतिनिधित्व नही करते। इस दिशा में एकमात्र उचित तरीका यह होगा कि श्री राजगोपालाचारी, सर तेजबहादुर सप्रू अथवा सर सिकन्दर हयात खा जैसे किसी योग्य भारतीय राजनीतिज्ञ से राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के लिए कहा जाय। भारतीयो को शक है कि हम उन्हे सत्ता सौपने को तैयार नही है, इसलिए जब तक हम उपर्युक्त कार्रवाई नही करेगे तब तक हम नही जान सकेगे कि भारत के विभिन्न दल देश की रक्षा के लिए सगठित होकर कोई कार्रवाई करना चाहते है या नही।

पहली अक्तूबर को श्री एमरी से कामन-सभा मे यह सवाल पूछा गया कि भारत के कितने प्रभावशाली व्यक्तियो अथवा सगठनो ने काग्रेसी बन्दियो के साथ समझौते की बातचीत करने के बारे मे मुनासिब सहूलियते देने को लिखा है। उनसे यह भी पूछा गया कि पडित नेहरू इस वक्त कहा है और क्या उनके साथ लिखा-पढी की जा सकती है? इसके जवाब में श्री एमरी ने कहा कि मुझे इस बारे मे किसी ने नही लिखा, पडित नेहरू को घरेलू मामलो के बारे में अपने परिवार-वालो से पत्र-व्यवहार करने की इजाजत है, लेकिन मै यह बताने को तैयार नही कि वह कहा है। जब उनसे यह पूछा गया कि भारत मे उपद्रव फैलानेवाली भीड पर वायुयानो द्वारा जो बम-वर्षा की गई है उसके बारे मे वह पूरा हाल बताएँ और भविष्य मे इन तरीको से काम न ले तब श्री एमरी ने कहा, "पिछले सप्ताह भारत की केन्द्रीय असेम्बली मे सराकरी तौर पर जो वक्तव्य दिया गया है और जो यहां

के पत्रो मे भी प्रकाशित हो चुका है, मै उससे अधिक और कुछ नही कह सकता। इसमे वताया गया है कि हाल के उपद्रवो मे पाच दफा भीड पर वायुयान से मशीन-गन-द्वारा गोली-वर्षा करनी पडी है और यह गोली उस वक्त चलाई गई जवकि विहार मे १८ सितम्वर को एक वायुयान दुर्घटना में चालक के मर जाने पर उस वायुयान के कर्मचारियो को भीड ने मौत के घाट उतार दिया। जिन इलाको मे व्यापक रूप से रेलमार्गो को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया और जहा वाढ के कारण फौजो के यातायात मे कठिनाइया पैदा हुई वहा तोड-फोड के काम को रोकने के लिए वायुयानो की सहायता लेना आवश्यक समझा गया।" भारत की वर्तमान और निकट-भविष्य की परिस्थिति के वारे मे व्रिटिश सरकार और भारत-सरकार की नीति का जिक्र करते हुए श्री एमरी ने कहा कि जहाँ तक काग्रेस का सवाल है उसके नेताओ ने स्वय अपनी नीति से सावित कर दिया है कि उनके साथ कोई वात-चीत नही हो सकती।

२९ अक्टूवर को 'माचेस्टर गार्जियन' मे वर्टरैण्ड रसल और उनकी पत्नी ने लिखा कि अग्रेज पूरी तरह से यह अनुभव नही कर रहे कि अमरीका में भारतीय गतिरोध के वारे में कितनी वेचैनी और उत्तेजना पाई जाती है। उन्होंने इस वात पर जोर दिया कि न केवल भारत, वल्कि अमरीका और दूसरे मित्र-राष्ट्रो को यकीन दिलाने के लिए भी व्रिटेन को इस मामले मे कुछ-न-कुछ अवश्य करना चाहिये। उसी दिन श्री वर्नन वार्टलेट ने भारतीय गतिरोध के निराकरण के लिए 'न्यूज क्रानिकल' मे लिखा—"श्री एटली और श्री एमरी दोनो ने ही पिछले महीने यह स्पष्ट कर दिया है कि व्रिटिश सरकार अव तक क्रिप्स-योजना पर कायम है। लेकिन उन्हे अपने इन आश्वासनो के समर्थन मे ऐसा कोई वैधानिक कदम उठाना चाहिए या शाही घोषणा कर देनी चाहिए कि लडाई के वाद यथासंभव जल्दी-से-जल्दी भारत को आजादी दे दी जायेगी। यही नही, इस अन्तर्कालीन अवधि मे उन्हे ऐसी कोई व्यवस्था करनी चाहिए जिससे भारत समान-शत्रु के विरुद्ध अपना पूरा सहयोग प्रदान कर सके।" १५ नवम्बर को "दमन के वाद—अव क्या?" शीर्षक से हेरल्ड लास्की ने अपने एक लेख मे लिखा—"यह कहा जा सकता है कि काग्रेसी नेता इस समय नज़रबन्द है। इसलिए यह सावित करने के लिए कि हम वस्तुत समझौता करना चाहते है और सम्मेलन को सफल वनाने के इच्छुक है, हमे उन्हे रिहा कर देना चाहिये। अगर यह तर्क और युक्ति दी जाय, जैसी कि सर स्टैफर्ड क्रिप्स दे रहे है कि यदि इस वक्त सत्ता एक भारतीय सरकार को सौप दी जाय तो उससे देश मे अव्यवस्था और अराजकता फैल जायगी, तो क्या यह नही हो सकता कि हम किसी भारतीय को वाइसराय नियुक्त कर दे। अगर हिन्दू वाइसराय की नियुक्ति पर कोई एतराज उठाया जाता है तो आप समझौते से किसी सुप्रसिद्ध मुसलमान को वाइसराय वना दे। अगर यह कहा जाय कि लडाई

के खत्म होने तक अन्तर्कालीन मन्त्रिमडल की अवधि अनिश्चित प्रतीत होती है तो आप यह कर सकते है कि दो-दो साल के लिए वारी-वारी से दोनो जातियो की सरकार स्थापित कर दे। यह सम्मेलन ही इस वात का फैसला कर ले कि प्रधान-मन्त्री किसे वनाया जाय और रक्षा-मन्त्री उससे भिन्न सप्रदाय से लिया जाय। इसके अलावा रक्षा-विभाग पर व्यापक रूप से मंत्री का अधिकार रहे और उसके वारे मे क्रिप्स-प्रस्तावो की तरह तू-तू मैं-मैं न की जाय।"

लन्दन मे इडिया लीग की एक वैठक मे एक प्रस्ताव-द्वारा भारत को आजाद करने, वहां एक राष्ट्रीय सरकार की स्थापना और उसके साथ तत्काल समझौते की वातचीत शुरू करने की माग की गई। यह प्रस्ताव पार्लमेण्ट के प्रसिद्ध मजदूरदलीय सदस्य श्री आर० डब्लू सोरेन्सन ने पेश किया था। इसी समय कामन-सभा मे श्री एमरी से पूछा गया कि अव तक क्यो वाइसराय की शासन-परिषद् के उन तीन स्थानो पर, जहा इस समय यूरोपियन सदस्य आसीन है, भारतीयो को नियुक्त करके उसका पूर्णत भारतीयकरण नही किया गया? इस पर उन्होने जवाव दिया कि युद्धकालीन परिस्थितियो का मुकावला करने के लिए और कार्य-कुशलता के विचार से वाइसराय ने अपनी शासन-परिषद् मे विस्तार कर लिया है। उन्हे सन्तोष है कि वाइसराय की शासन-परिषद् के मौजूदा सदस्य अपने काम के लिए सर्वोत्तम व्यक्ति है। मौजूदा यूरोपियन सदस्य इसलिए अव तक वने हुए है कि इन जगहो के लिए योग्य भारतीय नही मिल रहे है।

सत्य के वारे मे ब्रिटिश राजनीतिज्ञो के अपने मापदड है जिन्हे समझना वहुत कठिन है। वहुत अरसा हुआ, लार्ड लिटन ने कहा था कि "राजनीति सत्य को छिपाने का विज्ञान और कला है।" लेकिन उसके वाद से वह झूठ को सत्य सावित करने का विज्ञान और कला वन गई है। अन्यथा हमारे लिए श्री एमरी के वे उत्तर समझने कठिन हो जाते है, जो उन्होने अक्तूवर मे एक अमरीकी रेडियो आलोचक के प्रश्नों के सिलसिले मे दिये थे। यह पूछे जाने पर कि क्या श्री चर्चिल ने भारत को अटलाटिक अधिकार-पत्र से वचित करने की घोषणा की है, श्री एमरी ने कहा कि "इस प्रकार की कोई वात नही कही गई।" उन्होने कहा कि ब्रिटिश नीति उक्त चार्टर की धारा ३ के अन्तर्गत निहित सिद्धान्तो के सर्वथा अनुरूप है और 'इस नीति का सूत्रपात हमने पचीस वर्ष पूर्व किया था, जिसे क्रमश' उन्नत किया जाना था।" उनसे पूछा गया कि "क्या आप जो कुछ कह रहे है भारतीयो को उस पर यकीन है?" उन्होने जवाव दिया, "हां, उन्हें यकीन है।" 'मानचेस्टर गार्जियन' ने इस विषय को फिर उठाया और इस वात पर जोर दिया कि अधिकार-पत्र भारत पर भी लागू किया जाना चाहिए। उसने लिखा—"जब कि सरकार भारत की सहायता करने का उपाय ढूंढ रही है—जैसा कि उनके

लिए सर्वथा उचित है—उसे चाहिए कि वह अटलाटिक अधिकार-पत्र के इस पेचीदा सवाल का भी फैसला कर दे।"

नवम्बर मे वहुत-सी आश्चर्यजनक और परस्पर विरोधी वातें देखने में आई। श्री सी० राजगोपालाचार्य ने समझौते के लिए अपना आन्दोलन जारी रखने के उद्देश्य से जुलाई मे मद्रास असेम्बली और काग्रेस की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया था। अक्तूवर में उन्होंने पासपोर्ट और वायुयान से लन्दन जाने की इजाजत मागी जिससे कि वे समझौते के वारे मे अपनी शर्तें अधिकारियो के सामने रख सके और उन्हे यकीन दिला सके कि उन पर अमल करना सभव है। लेकिन उन्हें ये सहूलियते देने से इन्कार कर दिया गया। पर इससे पूर्व भी सरकार, भारत के लाट पादरी, डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी, भारत में राष्ट्रपति रूजवेल्ट के विशेष दूत श्री विलियम फिलिप्स और स्वय श्री राजगोपालाचार्य को गाधीजी से मिलने की इजाजत देने से इन्कार कर चुकी थी। श्री राजगोपालाचार्य के साथ उसने जो सलूक किया वह उसी नीति का एक अग था। राजाजी को इगलैण्ड आने के लिए सुविधाएँ प्रदान करने के सम्वन्ध मे ब्रिटेन के चालीस से अधिक प्रमुख व्यक्तियो के हस्ताक्षरो से एक पत्र श्री एमरी को भेजा गया। इन लोगो मे लार्ड मॉर्ले और स्ट्रावोल्गी, जी० डी० एच० कोल, हेरल्ड लास्की, जुलियन हक्सले, ब्रेल्सफोर्ड, प्रोफेसर जोड और मैडम एलिजावेथ कैडबरी और लेडी लिटन-जैसी प्रमुख महिलाए भी शामिल थी। परन्तु ब्रिटिश सरकार की नीति का आभास तो हमे प्रधान मत्री चर्चिल की उस घोषणा से मिलता है जो उन्होने लार्ड मेयर के वार्षिक भोज के अवसर पर दिये गए अपने भाषण मे की थी। उन्होंने कहा कि उत्तर अफ्रीका अथवा दुनिया के किसी भी हिस्से मे ब्रिटेन किसी प्रदेश पर कब्जा नही करना चाहता।

श्री चर्चिल ने कहा, "हम इस लडाई मे लाभ अथवा प्रभुता-विस्तार की दृष्टि से नही, वल्कि केवल प्रतिष्ठा और न्याय की रक्षा के लिए अपने कर्तव्य-पालन के उद्देश्य से लगे हुए हैं। परन्तु मै यह वात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ और इस बारे मे कोई संदेह नही रहना चाहिए कि हम अपना साम्राज्य बनाए रखना चाहते हैं। मै सम्राट् का प्रधान मत्री ब्रिटिश साम्राज्य का दिवाला निकालने के लिए नही बना। अगर कभी ऐसा होता है तो उसके लिए किसी और आदमी को जन्म लेना होगा और प्रजातत्रात्मक पद्धति के अन्तर्गत इस काम के लिए राष्ट्र से परामर्श लेना पडेगा। मै इसे अपने लिए वडे गौरव की वात समझता हूँ कि मै इस विस्तृत राष्ट्रमण्डल तथा उन राष्ट्रो और विभिन्न जातियो के समूह का सदस्य हूँ जो ब्रिटेन के प्राचीन राजतन्त्रवाद से सम्बद्ध हैं और जिसके विना शायद पृथ्वी पर अच्छाई का लोप हो जाता। इस डगमगाते हुए ससार के बीच हम मुक्ति की एक दृढ चट्टान की तरह खड़े हैं।"

श्री चर्चिल का भाषण १० नवम्बर को हुआ था और उसी दिन सम्राट् ने पार्लमेण्ट को स्थगित करते हुए निम्न भाषण दिया —

"मेरी प्रजा और हमारे सहयोगियों का उद्देश्य जहा-कही भी स्वाधीनता पर आक्रमण हो उसकी रक्षा करना और शत्रु के प्रदेश पर आक्रमण करना है जिससे कि हम यथा-शक्ति शीघ्र-से-शीघ्र उन देशो और शक्तियो को, जो इस समय शत्रु के कब्जे मे है, स्वतत्र करा सके।

"ब्रिटेन मे मेरी सरकार ने भारत के नरेशों और जनता से साफ तौर पर कह दिया है कि वह लडाई समाप्त हो जाने के तत्काल वाद ही स्वयं भारतीयो-द्वारा तैयार किए गए विधान के आधार पर ब्रिटिश-राष्ट्रमडल के अन्तर्गत भारत को पूर्ण स्वाधीन देखना चाहती है। इस वीच भारत के राजनीतिक दलों के नेताओ को अपने देश के शासनसूत्र और युद्ध के सचालन मे पूर्णरूप से भाग लेने का निमत्रण दिया गया था। मुझे अत्यन्त खेद है कि अभी तक उन्होने हमारा यह निमत्रण स्वीकार नही किया। मेरी हार्दिक आशा है कि वे वुद्धिमत्ता से काम लेकर स्वयं आपस मे कोई समझौता करके जल्दी ही इन कठिनाइयो पर कावू पा लेगे।"

प्रधानमत्री के भापण के कारण सोया हुआ ब्रिटेन एक वार फिर सजग हो उठा। इसके कुछ दिनो वाद ही ब्रिटेन के गृह-मन्त्री हर्वर्ट मौरीसन ने भी भारत के लोगो के लिए 'ब्रिटेन की देन' का जिक्र किया, लेकिन उससे भी भारत का घाव भरने मे मदद नही मिली। उन्होने कहा कि ब्रिटेन ने भारत के लोगो को स्वय अपना विधान वनाने की पूरी आजादी दे दी है, चाहे उसका परिणाम पूर्ण स्वाधीनता ही क्यो न हो। लडाई के वाद उन्हे अपने देश के भाग्य का निर्णय करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है, वशर्ते कि लडाई के दौरान मे वे सयुक्त-राप्ट्रो की विजय-प्राप्ति मे कोई अडचन न पैदा करे। क्या आप मुझे इतिहास मे कोई और ऐसा उदाहरण दे सकते है जव कि किसी शासक ने अपनी गुलाम प्रजा को इस तरह की आजादी देने की वात कही हो? आप इसका क्या मतलव लेते है? मै तो कम-से-कम इसका मतलव यह लेता हूँ कि इस तरह से ब्रिटेन ने अपने उन उद्देश्यो का एक और सवूत पेश किया है जिनसे प्रेरित होकर वह इस लडाई मे शामिल हुआ है।

समय-समय पर गाधीजी और वर्किंग कमेटी के सदस्यो के साथ वाहर के लोगों का सपर्क स्थापित करने के प्रयत्न किये गए। नवम्बर के अत मे कामन-सभा मे श्री एमरी से यह सवाल किया गया कि क्या इस देश के किसी गैर-सरकारी व्यक्ति को इस समय नजरवन्द काग्रेसी नेताओ के साथ पत्र-व्यवहार करने की इजाजत दी जाएगी, क्या ये नेता इस देश के किसी गैर-सरकारी आदमी से लिखा-पढी कर सकते है अथवा उन्हे ऐसा करने की इजाजत दी जा सकेगी और क्या उन्हे कोई सार्वजनिक घोपणा करने की भी आजादी होगी? इनके जवाव में श्री एमरी ने कहा, "मुझे पता चला है कि इन नजरवन्द भारतीय नेताओ को केवल अपने

परिवारवालो के साथ पत्र-व्यवहार करने की आज्ञा है और वह भी केवल घरेलू मामलो पर ही। मै फिलहाल कुछ नही कह सकता कि उन पर से ये प्रतिवन्ध कव तक हटाए जा सकेंगे। क्या भारतीय नेताओ को कोई सार्वजनिक घोषणा करने की इजाजत दी जा सकेगी या नही—यह इस पर निर्भर करेगा कि वह घोषणा किस तरह की है।"

इस आपत्काल मे भी भारत को उसके पुराने शुभचिंतको—अर्थात् इगलैण्ड के सुहृद् सघ ने नही भुलाया। सघ के वयोवृद्ध कर्णधार श्री कार्ल हीथ ने भारतीय स्थिति के वारे मे 'स्पेक्टेटर' में एक जोरदार पत्र लिखकर अपना क्षोभ प्रकट करते हुए भारतीय समस्या को सुलझाने की हार्दिक अपील की। श्री वेडलविल्की ने प्रधान मत्री चर्चिल की व्रिटिश साम्राज्य को अक्षुण्ण वनाए रखनेवाली घोषणा का मुहतोड जवाव दिया। इसके अलावा लार्ड क्रेनवोर्न ने व्रिटेन की युगो पुरानी औपनिवेशिक नीति के वारे में जो कुछ कहा, उसकी भी कडी प्रतिक्रिया हुई। उधर अमरीका के समाचार-पत्रो ने भी व्रिटेन की खूव खवर ली। 'टाइम्स' ने औपनिवेशिक व्यवस्था के भविष्य के सम्वन्ध मे अपने एक लेख मे 'अतीत की मनोवृत्तियो को छोड देने' की जोरदार अपील की। व्रिटिश साम्राज्य को अक्षुण्ण वनाए रखने के सम्वन्ध मे श्री चर्चिल की घोषणा की न केवल भारत मे ही वल्कि सारे पूर्व मे अर्थात् सुदूर-पूर्व, निकट-पूर्व और मध्य-पूर्व मे कडी आलोचना हुई और उससे इन देशो में गहरी वेचैनी पैदा हो गई।

इस प्रकार नवम्वर भी वीत गया और वडे दिन आ गए। पर भारत को इससे क्या, उसके दिन तो अभी नही फिरे थे। लार्ड लिनलियगो का कार्य-काल और छ. महीने तक अर्थात् अक्तूवर १९४३ के अन्त तक के लिए वढा दिया गया। व्रिटिश सरकार-द्वारा 'वाइसराय के कार्यकाल की अवधि' का वढाना, पार्लमेंट मे श्री चर्चिल और श्री एमरी के प्रतिक्रियावादी और दुराग्रहपूर्ण भाषण, श्री राजगोपालाचर्य को गाधीजी से मिलने की इजाजत न देना और भारतीय जनमत की तनिक भी परवाह न करके फेडरल-कोर्ट (सघ-न्यायालय) मे प्रधान न्यायाधीश के पद पर एक अगरेज की नियुक्ति—इन सभी वातो से 'न्यूज क्रानिकल'-जैसे गभीर और शान्तिप्रिय पत्र को भी यह लिखना पडा कि "भारत-द्वारा क्रिप्स-योजना को ठुकरा देन के परिणामस्वरूप निराश होकर व्रिटिश सरकार ने इस दिशा मे और कोई रचनात्मक प्रयत्न करने की कोशिश नही की। प्रोफेसर वुड ने जिनकी ऐसी दृढ धारणा थी, लिखा कि, "जव गाधीजी के मित्र और प्रशसक भारत-सरकार से उनसे (गाधीजी) वातचीत करने का अनुरोध करते है, तव उससे यह जाहिर होता है कि वे यह आग्रह इसलिए नही कर रहे कि गाधीजी की साख को वनाए रखे, वल्कि इसलिए कि वे गाधीजी की नैतिक प्रतिष्ठा से कितना अधिक प्रभावित हुए है। मेरी दृष्टि मे गाधीजी एक महान् आध्यात्मिक और

नैतिक नेता है और इसीलिए मेरा दृढ विश्वास है कि भारत के वर्तमान गतिरोध को दूर करने का प्रयत्न उन्ही की ओर से होना चाहिए।"

काग्रेस की दृष्टि से प्रत्येक नये वर्ष की महत्वपूर्ण और पवित्र घटनाओ मे 'स्वाधीनता-दिवस' विशेष महत्व रखता है। पिछले सालो की भाति १९४३ मे भी यह दिवस २६ जनवरी को लन्दन के स्वराज्य-भवन मे डा० एस० वी० वार्डन की अध्यक्षता मे बडी धूमधाम के साथ मनाया गया। इसके दो दिन बाद श्री सोरेन्सन ने कामन-सभा मे श्री एमरी से गैर-काग्रेसी प्रतिनिधियो पर से काग्रेस नेताओ से मुलाकात करने के सम्बन्ध मे प्रतिबन्ध उठा लेने का आग्रह किया जिससे कि वे सम्भावित राजनीतिक परिस्थिति पर सोच-विचार कर सके।

प्रथम महायुद्ध की भाति इस बार दूसरे महायुद्ध मे भी ब्रिटिश-सरकार ने दिखावे के तौर पर भारत के दो प्रतिनिधि अपने युद्ध-मन्त्रि-मण्डल मे लिए। ये प्रतिनिधि वाइसराय की शासन-परिषद् के सदस्य सर रामस्वामी मुदालियर और जामनगर के जामसाहब थे। इग्लैण्ड मे भारत के ये दोनों प्रतिनिधि वहाँ की विभिन्न औद्योगिक सस्थाओ और युद्धकेन्द्रो का निरीक्षण करने मे व्यस्त रहे। हिज हाईनेस जामसाहब तो जनवरी १९४३ मे स्वदेश लौट आए। इंग्लैण्ड के लिए इन महानुभावो के प्रस्थान करने से पूर्व यह कहा जा रहा था कि सर रामस्वामी मुदालियर वहा जाकर भारतीय गतिरोध को दूर करने का प्रयत्न करेंगे। इसलिए इग्लैण्ड मे उन्होने इस बारे मे जो कुछ भी किया हो, भारत को उसकी कोई सूचना न होना स्वाभाविक ही था। लेकिन जामसाहब ने इगलैण्ड पहुँचते ही एक भाषण दिया जिसमे आपने वाइसराय की शासन-परिषद् के पूर्ण भारतीयकरण पर जोर दिया। प्रत्यक्ष था कि वह पत्थर की दीवार से अपना सिर टकरा रहे थे। अपने चाचा की मृत्यु के कारण उन्हे शीघ्र ही भारत वापस आना पडा। भारत लौटने पर उन्होने ८ फरवरी, १९४३ को नयी दिल्ली के एक पत्र-प्रतिनिधि सम्मेलन मे स्पष्ट रूप से बताया कि युद्ध-मन्त्रि-मण्डल की बैठको मे किसी राजनीतिक अथवा वैधानिक समस्या पर सोच-विचार नही किया गया, क्योकि उसका मुख्य काम तो केवल युद्ध जीतना है।

फरवरी का महीना सारे ससार के लिए सनसनीपूर्ण और बेचैनी का रहा, क्योकि १० फरवरी को गाधीजी ने सामर्थ्य के अनुसार, यथाशक्ति उपवास प्रारंभ किया और वे तीन सप्ताह की कठोर तपस्या के बाद ३ मार्च को इसमे सफलतापूर्वक उत्तीर्ण हुए।

कांग्रेस-विरोधी पुस्तिका

इस प्रकार एक महीने तक वातावरण पूर्णतः शान्त बना रहा। केवल २२ फरवरी १९४३ को यह शान्ति भग हुई जब कि सरकार ने भारत मे 'भारत

उपद्रवो के लिए काग्रेस का उत्तरदायित्व' शीर्षक से एक पुस्तिका प्रकाशित की और उसके कुछ सप्ताह वाद ही इस वारे में ब्रिटेन में एक श्वेतपत्र भी छपा। सरकार के दृष्टिकोण से यह प्रकाशन सर्वथा सामयिक था, क्योकि अप्रैल में पार्लमेंट मे होनेवाली भारत-विषयक वहस के लिए वह पार्लमेंट के सदस्यो के हाथो में यह सामग्री पहुँचा देना चाहती थी। उक्त पुस्तिका में कहा गया कि अव तक जानी गई और प्रमाणित सपूर्ण घटनाओ को दृष्टि में रखकर केवल यही वात युक्तिसगत मालूम पडती है कि ९ अगस्त की गिरफ्तारियो के वाद व्यापक रूप से फैलनेवाले ऐसे उपद्रवो को काग्रेस ने पैदा किया और उनका पथ-प्रदर्शन किया, जो कुछ क्षेत्रो में खुले विद्रोह के सिवा और कुछ न थे। इस पुस्तिका की टीका टिप्पणी करते हुए 'न्यू स्टेट्समैन ऐंड नेशन' ने अपने एक अगलेख मे लिखा कि "भारत-सरकार ने यह श्वेत-पत्र छापकर कोई अच्छा काम नही किया, जिसमे शुरू से लेकर आखिर तक गाधीजी पर व्यक्तिगत रूप से अभियोग लगाने की कोशिश की गई है और इसके अलावा वह केवल एक प्रचार-सम्वन्धी पुस्तिका है।"

'टाइम्स' सहित ब्रिटेन के शेप पत्रो ने प्रत्यक्ष रूप से गाधीजी और काग्रेस के खिलाफ जहर उगला। 'उपद्रवो के लिए काग्रेस का उत्तरदायित्व' शीर्षक पुस्तिका ऐन उस मौके पर प्रकाशित की गई जव कि २१ दिन के दौरान में गाधीजी का भाग्य पलडे में झूल रहा था और ठीक उसके एक महीने वाद उक्त श्वेत-पत्र प्रकाशित किया गया। इसके प्रकाशन से लगभग पन्द्रह दिन पहले वम्वई मे निर्दल नेताओ का एक सम्मेलन हुआ। उन्होने समझौते की कोशिश की और इस काम मे उन्हें कुछ सफलता भी मिली। वाइसराय ने उनसे मिलने का वादा कर लिया और उन नेताओ से कहा गया कि वे अपना मामला एक विचार-पत्र के रूप में पेश करें। लेकिन इस श्वेत-पत्र के कारण उनकी सब कोशिशो पर पानी फिर गया। उक्त पुस्तिका छापने का उद्देश्य गाधीजी की रिहाई के लिए की जाने वाली व्यापक माग और उनके प्रति प्रकट की गई सहानुभूति पर तुषारापात करना था। इसके बारे मे यदि हम किसी कागेसी की प्रतिक्रिया प्रकट करें तो उसे पक्षपात पूर्ण समझा जायगा, लेकिन यहाँ हम 'स्टेट्समैन' मे 'हमारे भारतीय प्रेक्षक' द्वारा प्रकाशित 'राजनीतिक आलोचना' को उद्धृत करना उचित समझते हैं, क्योकि उसे अधिक निष्पक्ष खयाल किया जा सकता है —

"लन्दन मे प्रकाशित किया गया श्वेत-पत्र सर्वथा असामयिक है। यह एक ऐसे अवसर पर छापा गया है जब कि जेल के वाहर के हल्को मे काग्रेस और सरकार में समझौते की बातचीत का आग्रह ही नही, बल्कि प्रार्थना भी की जा रही है। इसके अलावा जो लोग गाधीजी से मिल कर आये हैं, उनका भी

साफ तौर पर केवल यह कह देना चाहिए कि मेरी नीति का आधार अब तक डा० डूलिटिल और डा० बर्नाडो के सिद्धान्त है।" उप-प्रधान मन्त्री श्री एटली ने अपना भाषण समाप्त करते हुए कहा कि "मै समझता हूँ श्री गोखले, श्री राजगोपालाचार्य, पडित नेहरू और श्री जिन्ना आदि जो वास्तव में प्रजा-तन्त्र वादी है, इस प्रकार के परिवर्तन को अमल मे ला सकते है।" श्री गोखले १९ फरवरी, १९१५ को परलोक सिधार चुके थे, किन्तु श्री एटली-द्वारा उनके उल्लेख से पता चल जाता है कि भारत की राजनीतिक स्थिति के बारे में विशाल ब्रिटिश साम्राज्य के उप-प्रधान-मत्री कितना ज्ञान रखते है।

लार्ड सभा मे विचार

लार्ड सभा की बहस यद्यपि अधिक दिलचस्प रही, लेकिन उससे कोई लाभ नही पहुँचा। इस सम्बन्ध मे हम दो भाषणो का उल्लेख करना चाहते है। लार्ड फॅरिगडन (मजदूर-दल) ने कहा कि उन काग्रसी नेताओ के साथ समझौता करने का आधार प्रस्तुत है जिनमे से बहुतो के उद्देश्य ब्रिटिश सरकार-जैसे ही हैं। उन्होने यह स्वीकार नही किया कि गाधीजी डिक्टेटर है अथवा काग्रेस एक वर्गवादी सस्था है। श्री राजगोपालाचारी तथा अन्य भारतीय नेताओ के गाधीजी से मिलने के लिए वाइसराय की अनुमति न मिलने की उन्होने अलोचना की। उन्होने यह सुझाव रखा कि ब्रिटिश सरकार समस्त दलो के नेताओ को लन्दन मे निमत्रित करे जिससे यह मालूम किया जा सके कि कोई उपाय निकल सकता है या नही। यदि सभव हो तो इसमे मित्रराष्ट्रो की सरकारो का भी सहयोग ले लेना चाहिए।

लार्ड सेम्युएल ने कहा, "भारतीय-विधान के अनुसार जब प्रजातन्त्र पर आधारित उन व्यवस्थापिका सभाओ का निर्वाचन हुआ, जिनके प्रति विभिन्न प्रान्तीय सरकारे उत्तरदायी है तब उदार दल ने इस पर अत्यधिक सतोष प्रकट किया था। हमने इसे वैधानिक प्रजातन्त्र-प्रणाली की सब से बडी विजय कहा था, जेसी कि अब तक किसी भी पूर्वी देश मे नही देखने मे आई। जब मै भारत गया था तब मेरा यह खयाल नही था कि प्रान्तीय विधान इतनी आश्चर्यजनक सफलता के साथ अपना काम कर रहे होगे।"

लार्ड सभा मे ६ अप्रैल १९४३ को लार्ड सेमुएल ने जो भाषण दिया था, उसका उत्तर देते हुए गाधीजी ने १९ मई, १९४३ को उन्हे एक पत्र लिखा जिसे सरकार ने लार्ड सेम्युएल तक नही पहुँचने दिया।

भारत-सरकार की प्रतिक्रिया

काग्रेस-नेताओ की गिरफ्तारी के पॉच सप्ताह बाद १५ सितम्बर को केन्द्रीय असेम्बली का अधिवेशन शुरू हुआ और इसके एक सप्ताह बाद राज-परिषद् का।

वास्तव मे ऐसा प्रतीत होता है कि पार्लमेण्ट और केन्द्रीय असेम्बली के अधिवेशन किसी पूर्व-निर्धारित योजना के अनुसार साथ-साथ ही शुरू हुए। कहन का तात्पर्य यह है कि पार्लमेण्ट का अधिवेशन भारत की केन्द्रीय धारासभाओ के शुरू होने से ठीक कुछ समय पूर्व आरम्भ हुआ। भारत के गृह-सदस्य सर रेजिनाल्ड का अनुमान था कि इन दगो के कारण कुल मिलाकर हानि एक करोड रुपयों से भी अधिक होगी और उन्होंने इन उपद्रवो के कुछ खास पहलुओ का जिक्र करते हुए यह बात मानन से इन्कार किया कि ये दंगे काग्रेसी नेताओं की गिरफ्तारी के कारण यकायक स्वाभाविक प्रतिक्रिया के रूप मे हुए है। उन्होने ऐसी बाते गिनाई जो उनकी राय मे यह साबित करती थी कि इन उपद्रवो के पीछे अत्यन्त दुर्भावना के साथ पहले से ही कोई सगठन अवश्य था। उन्होने कहा, "अभी मै यह नही बता सकता कि इस सगठन को प्रेरणा कहा से प्राप्त हुई। अभी हमे ऐसी कितनी ही बातो की जानकारी प्राप्त करना शेष है, जिनके सम्बन्ध मे कुछ ज्ञात नही हुआ है। किन्तु इन उपद्रवो से काग्रेस का सम्बन्ध रहने के विपय मे जो सन्देह शेष रह गया हो उसे काग्रेसियो, विशेषकर बिहार के काग्रेसियो के उन भाषणो से असख्य उदाहरण दे कर निर्मूल सिद्ध किया जा सकता है, जिनमे साधारण जनता को हिसा और विध्वस करने के लिए खुलेआम उकसाया गया था। इसके अतिरिक्त बम्बई की बैठक के तत्काल बाद कितने ही काग्रेसी नेता लापता हो गए और वे किन्ही ऐसे कारणो से लापता है, जिनका स्वय उन्ही को पता है। इसलिए अभी जो जानकारी प्राप्त हुई है, उसके आधार पर इन गम्भीर घटनाओ के लिए हम काग्रेस को उत्तरदायित्व से मुक्त नही कर सकते।" आगे चल कर उन्होंने कहा कि अगर काग्रेस को थोडा और समय मिल जाता तो उससे हालत और भी ज्यादा बिगड़ जाती और अपरिमित क्षति होती। उन्होने विनाश के इस नग्न नृत्य तथा भारत-वासियो के जीवन और धन की इस हानि पर गहरा खेद प्रकट किया। फिर उन्होंने कहा कि ऐसी बातो से स्वय भारतवासियों की हानि होगी और उन्ही की कठिनाइया बढेगी। उन्होने यह भी बताया कि सम्पूर्ण मुस्लिम-समुदाय और परिगणित जातिया इनसे बिल्कुल अलग रही है। साथ ही इस बात पर भी प्रसन्नता प्रकट की कि न केवल पुलिस, वरन् समस्त सरकारी कर्मचारियो ने उन्हे आतकित करने के समस्त प्रयत्नो के बावजूद दृढता के साथ अपने कर्तव्य का पालन किया है। बहुतेरो ने तो अपने कर्तव्य का पालन करते हुए अपने प्राण तक दे दिये है।

बहस की बहुत-सी बातो के स्पष्टीकरण की आवश्यकता थी। यह एक तरफा चीज़ थी, इसलिए इसमे विवेकहीनता का होना अनिवार्य था और एक तरह से यह अभियुक्त की अनुपस्थिति मे धारासभा के सामने उस पर दोषारोपण करना और मुकदमा चलाना था। काग्रेस-सदस्यो की अनुपस्थिति से लाभ उठाकर सरकार ने ऐसे वक्तव्य दिये, जिन्हे चुनौती नही दी जा सकती थी।

यह एक बडी उल्लेखनीय बात है कि एक ओर जब पार्लमेंट मे भारतीय स्थिति के सम्बन्ध में कितनी ही बहसे हो रही थी और कितने ही सवाल पूछे जा रहे थे तथा भारत-मत्री और उप-भारत-मत्री को वक्तव्य देने पड रहे थे और घोषणाए करनी पड रही थी, दूसरी ओर वाइसराय महोदय बिल्कुल मौन धारण किए हुए थे और उन्होने उपद्रवो के बारे में सार्वजनिक रूप से कुछ नही कहा। अन्त मे १७ दिसम्बर १९४२ को उनका मौन भग हुआ जब कि उन्होने व्यापारमडल-सघ के वार्षिक अधिवेशन मे भाषण दिया। फेडरेशन के सम्मुख अपने लम्बे भाषण मे वाइसराय महोदय ने देश की राजनीतिक, औद्योगिक और सैनिक स्थिति का पर्यवेक्षण करते हुए अपनी उन असफल कोशिशो का जिक्र किया जो उन्होने भारत के विभिन्न समूहो और दलो के दरमियान समझौता कराने के लिए की थी। उन्होने यह भी कहा कि उनका कार्यकाल दस महीने तक के लिए यद्यपि बढा दिया गया है, तथापि वह समझौता कराने के लिए अपनी कोशिशो में कोई शिथिलता नही आने देंगे। उन्होने भारत से यह यकीन करने का अनुरोध किया कि अगर अपने शासन काल के इन अगले दस महीनो मे वह भारत के विभिन्न दलो की मौजूदा खाई को पाटने मे सफल हो गए तो उनसे अधिक भाग्यशाली व्यक्ति और कोई नही होगा। आगे चल कर उन्होने यह भी कहा—"लेकिन यह भी उतना ही सत्य है कि देश के सभी सम्बद्ध वर्गों और दलो में वास्तविक समझौता हुए बिना केवल कृत्रिम एकता से काम नही चल सकता। उससे तो लाभ के बजाय हानि हो सकती है। किसी बाहरी दबाव के परिणामस्वरूप पैदा होने वाले मतभेद उन मतभेदो की अपेक्षा अधिक खतरनाक होते हैं, जो सर्वविदित हैं और जिन्हें दूर करने की व्यवस्था आसानी से हो सकती है। केवल विभिन्न दलो और विभिन्न समुदायो के पारस्परिक समझौते-द्वारा ही हम अपना वाछित उद्देश्य हासिल कर सकते हैं और इस समझौते का आधार पारस्परिक विश्वास, एक-दूसरे की ऐतिहासिक प्रथाओ के प्रति सम्मान और उदारता का बर्ताव और भावी योजनाओ मे एक-दूसरे के न्यायोचित दावो की पूर्ति होनी चाहिए। क्या हमें इस उद्देश्य की प्राप्ति की कोशिश नही करनी चाहिए? अगर हमे उसे हासिल करने के लिए किसी कुर्बानी की जरूरत पडे तो क्या हमे वह कुर्बानी नही करनी चाहिए?"

किसी व्यक्ति के कथन की परीक्षा हमेशा उसके व्यवहार और आचरण से होती है। वाइसराय महोदय ने भारत की एकता पर जोर दिया है। क्या यह एकता कोरा सिद्धान्तवाद या कोई काल्पनिक चीज है जिसके लिए उन्हे इतनी लम्बी-चौडी बाते करनी पडी और इतनी वाक्यपटुता दिखानी पडी अथवा क्या यह सुलह-सफाई, समझौते और आदान-प्रदान की भावना के लिए विभिन्न दलो से आग्रह था? क्या यह उपदेश विभिन्न दलो से तत्काल अपने निर्धारित लक्ष्य तक पहुचने का अनुरोध था? जो लोग गतिरोध के हल के लिए वाइसराय पर आशा लगाए बैठे

थे उन्हें निराश होना पड़ा, क्योंकि उन (वाइसराय) के कथन और व्यवहार, पवित्र प्रार्थना और व्यावहारिक कार्यक्रम में कोई सामंजस्य नहीं था। फरवरी, १९४२ में केन्द्रीय असेम्बली में श्री नियोगी के उस प्रस्ताव पर बहस शुरू हुई जो उन्होंने उनके पिछले अधिवेशन में पुलिस द्वारा 'हाल के उपद्रवों' को शान्त करने के लिए की गई 'ज्यादतियों' की जाँच-पड़ताल के सम्बन्ध में सभा के सदस्यों की एक समिति स्थापित करने के बारे में पेश किया था। बहस का उत्तर देते हुए गृह-सदस्य ने कहा कि अपने कर्मचारियों पर प्रतिबन्ध लगाए जाने की सभी कोशिशों का सरकार विरोध करेगी। उन्होंने कहा कि हमें सार्वजनिक कर्मचारियों की सभी न्यायोचित कार्रवाइयों का समर्थन करना चाहिए और सभी प्रकार के उपद्रवों को हर सम्भव तरीके से दबाना चाहिए। अगर सरकारी कर्मचारियों के सम्बन्ध में ऐसी जाँच-पड़ताल की गई जिसका प्रस्ताव किया गया है तो कानून और व्यवस्था को सुरक्षित रखना असम्भव हो जायगा। दृढ़ निश्चय और राजभक्त पुलिस और सरकारी कर्मचारियों के बिना इस सभा अथवा ऐसी ही अन्य संस्थाओं के किसी आदेश को कार्यान्वित करना असम्भव हो जायगा।

भारत-सरकार-द्वारा उपद्रवों के सम्बन्ध में प्रकाशित की गई पुस्तिका से

व्यवहार मे व्यापक सशोधन करने की सिफारिश और केन्द्रीय असेम्वली के सदस्यो को जेलो में जाकर राजनीतिक वन्दियो से मुलाकात करने के लिए इजाजत देने का आग्रह किया गया था, ताकि उन पर लगाए गए प्रतिवन्व कम किये जा सके ओर उन्हे आवश्यक सुविवाए प्रदान की जा सके। इस प्रस्ताव के वारे में सरकार के रुख का स्पष्टीकरण करते हुए गृह-सदस्य सर रेजिनाल्ड मैक्सवेल ने कहा, "मौजूदा आन्दोलन के सिलसिले मे नजरवन्द किये गए सुरक्षा-वदियो पर लगाए गए प्रतिवन्धो मे फिलहाल किसी किस्म की नरमी नही की जा सकती, क्योकि अभी तक लडाई जारी हे।"

यह प्रसग समाप्त करने के पूर्व भारत की राजनीतिक परिस्थिति के सम्वन्व मे वाइसराय की शासन-परिपद् के कतिपय भारतीय सदस्यो के विचारो का सक्षेप मे उल्लेख करना सर्वथा समीचीन प्रतीत होता है। राजपरिपद् में २४ सितम्वर १९४२ को भापण देते हुए माननीय सर जोगेन्द्रसिह ने कहा —

"हमे काग्रेस और लीग को भुला देना चाहिए। हमे उन सिद्धातो के पीछे पड कर अपना और समय नही गवाना चाहिए, जिनका वास्तविकता से कोई सम्वन्ध नही है। राजाओ और जनता के प्रतिनिधियो को एक साथ मिलकर आगे वढना चाहिए और वर्तमान गतिरोध को दूर कर के एक सयुक्त माग पेश करनी चाहिए।"

दिसम्वर मे, वम्वई के भारतीय व्यापार-मडल द्वारा पेश किये गए मानपत्र का उत्तर देते हुए माननीय श्री एन० आर० सरकार ने कहा —

"आदर्शवाद की वात एक ओर रहने दीजिए, केन्द्रीय और प्रान्तीय दोनो ही सरकारो के शासन-सचालन मे, और अपने जीवन के सर्वोत्तम भाग मे देश के व्यापारिक-क्षेत्र मे मुझे जो अनुभव प्राप्त हुआ है, उससे मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे पूर्ण उन्नति करने के उद्देश्य से भारत के लिए अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है।"

ओटावा मे २२ दिसम्वर को भाषण देते हुए ब्रिटेन के युद्ध-मन्त्रिमंडल मे भारत के प्रतिनिधि सर ए० रामस्वामी मुदालियर ने कहा, "भारत की जनता अपने राजनीतिक पद के निर्धारण के लिए अत्यधिक व्यग्र है और उसमे पाए जानेवाले मतभेद का आधार उस उद्देश्य के सम्बन्ध मे न होकर उसे प्राप्त करने के विभिन्न साधनो के सम्वन्ध मे है।"

गैर-सरकारी प्रतिक्रिया

किसी भी अवसर पर जनता ने काग्रेस के प्रति इतनी गहरी सहानुभूति प्रकट नही की थी, जितनी इस बार, जबकि काग्रेस-द्वारा अपना आन्दोलन शुरू करने से पहले सरकार ने उस पर एक जोरदार आक्रमण कर देश मे हिंसा और दमन का साम्राज्य स्थापित कर दिया था। यह केवल पीडित लोगो के प्रति सहानुभूति ही

नही थी, बल्कि सरकार से एक जोरदार मांग थी कि वह स्वय अपने पैदा किये हुए गतिरोध का निराकरण करे और यह माग ऐसे प्रमुख व्यक्तियो और बडी-बड़ी सस्थाओ की ओर से की जा रही थी जो कुछ समय पूर्व तक भारत मे ब्रिटिश सरकार की ढाल बने हुए थे। सर शादीलाल, सर चिमनलाल सीतलवाड, सर तेजबहादुर सप्रू, सर ए० दलाल, सर मिर्जा इस्माइल, सर एस० राधाकृष्णन्, राइट आनरेबल वी० श्रीनिवास शास्त्री और राइट आनरेबल श्री एम० आर० जयकर जैसे बडे-बडे व्यक्तियों, व्यापारमडलो, व्यापारमण्डल-सघो, ट्रेड यूनियनो, पारसी-सघो, बगाल और पजाब के यूरोपियन एसोसियेशनो, बिहार और बम्बई के एडवोकेट जनरलो, श्री विश्वास सरीखे हाईकोर्ट के जजो, कलकत्ता के लाट-पादरी जैसे प्रमुख धार्मिक नेताओ, ईसाई और साम्यवादी नेताओ, निर्दल नेता-सम्मेलन और महिला सम्मेलन प्रभृति देश की प्रमुख सस्थाओ के एकस्वर होकर सरकार से स्थिति पर पुन विचार करने और गतिरोध को शीघ्र ही दूर करने का आग्रह करने पर भी यदि सरकार के कान पर जू तक नही रेंगती तो साफ जाहिर है कि उसके दिमाग मे कोई ऐसा बडा विकार या खराबी आ गई थी कि वह स्वय अपने भूतपूर्व समर्थको की भी बात मानने को तैयार नही थी।

और एडवोकेट जनरल का नाम मोतीलाल सी० सीतलवाड था, जो सर चिमनलाल सीतलवाड के पुत्र थे और जो पाच साल तक इस पद पर काम कर चुके थे। दूसरे एडवोकेट विहार के श्री वलदेवसहाय थे, जिन्होने अपने इस्तीफे के थोड़ी देर वाद ही सुलह-सफाई के सम्वन्ध में जोरदार अपील की।

इस सम्वन्ध में महाराजा होल्कर ने भी एक अत्यन्त रोचक और दिलचस्प वक्तव्य दिया। भारतीय व्यापार-मण्डल के प्रधान श्री जे० सी० सीतलवाड ने गाधीजी और नेहरूजी जैसे नेताओ को जेल में वन्द कर दिये जाने की निन्दा करते हुए उन लोगो के रुख पर खेद प्रकट किया जो इस आन्दोलन के लिए इन नेताओ को वदनाम कर रहे थे और इसकी सारी जिम्मेदारी उन्ही पर डाल रहे थे। १५ दिसम्वर १९४२ को निर्दल सम्मेलन की स्थायी समिति ने भी एक जोरदार वक्तव्य प्रकाशित किया। अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस की जनरल कौसिल ने ब्रिटेन की ट्रेड यूनियनो और मजदूर दल से महात्मा गाधी, मौलाना आजाद और दूसरे काग्रेसी नेताओ को तत्काल रिहा करने और भारतीय जनता को तत्काल सत्ता सौपने की भारतीय माग को स्वीकार करने के लिए ब्रिटेन की सरकार से अनुरोध करने की अपील की, क्योकि नेताओ के जेल मे रहते हुए किसी किस्म का समझौता सम्भव नही था। वम्बई के रहनेवाले ६०० से भी ऊपर पारसियो ने अपने हस्ताक्षरो से एक वक्तव्य जारी किया जिसमे उन्होने यह घोषणा की कि भारत के नये विधान मे उन्हे किसी किस्म के भी सरक्षण नही चाहिए। यह वक्तव्य कामन-सभा में दिए गए श्री सी० आर० एटली के उस वक्तव्य के जवाव में था, जो कि उन्होने भारतीय स्वाधीनता के वारे मे दिया था जिसमे उन्होने कहा था— "भारत में सिक्खो, पारसियो, नरेशो और रियासती जनता जैसे वहुत से वडे प्रभावशाली अल्पसख्यक मौजूद है, जिनके हितो की ओर हमे खास तौर पर ध्यान देना है।" नवम्बर मे एक पत्र-प्रतिनिधि-सम्मेलन के सम्मुख सर तेजवहादुर सप्रू ने यह सुझाव रखा कि वाइसराय को चाहिए कि वह राष्ट्रीय आदोलन के अध्यक्ष के रूप मे सभी दलो का एक सम्मेलन वुलाए, जिसमे काग्रेस भी शामिल हो। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के वाइस-चासलर सर एस० राधाकृष्णन ने २९ नवम्बर को विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह पर अभिभाषण देते हुए कहा— "हमें सदियो की अपनी निद्रा का त्याग कर अपना मस्तक ऊँचा उठाना चाहिए।" वगाल चेम्वर की वार्षिक साधारण वैठक के अध्यक्षपद से भाषण देते हुए श्री आर० आर० हैडाऊ ने कहा, "भारत-द्वारा पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त करने के सम्बन्ध में हमारा उससे कोई झगडा नही है, लेकिन उसी प्रकार हम यह वात भी रहस्य के गर्भ मे छिपाकर नही रखना चाहते कि हमने भारत की उन्नति मे जो महान् भाग लिया है और अव तक ले रहे है, उसके लिए हमे पूर्ण आश्वासन और सरक्षण दिया जाय।" नवम्बर के मध्य मे 'हिन्दू' के बम्बई-स्थित सवाददाता

से अपनी एक भेट मे डा० अम्बेडकर ने यह राय प्रकट की कि इस वक्त भारत में कोई राष्ट्रीय सरकार स्थापित करने की आवश्यकता नही है, वर्तमान राजनीतिक गतिरोध की वजह इस देश के बहुसख्यक और अल्पसख्यकों का पारस्परिक अविश्वास है और भारत की भावी स्थिति को सुलझाने के लिए हमे युद्ध समाप्त होने तक प्रतीक्षा करना बेहतर है। बाद में डा० अम्बेडकर ने गाधीजी और श्री जिन्ना की तुलना करते हुए कहा कि इन दोनो ही नेताओ को भारतीय राजनीति से अलग हो जाना चाहिए। डा० अम्बेडकर के इस वक्तव्य का जवाब देते हुए प्रोफेसर अब्दुल मजीद खाँ ने कहा —"गाधीजी की श्री जिन्ना से तुलना करते समय डा० अम्बेडकर स्वय अपनी ही वाक्पटुता के चक्कर मे फँसकर अपने को भूल गए। वास्तव मे इन दोनो मे किसी तरह की तुलना हो ही नही सकती। दोनो मे आकाश-पाताल का अन्तर है और दोनो एक-दूसरे से सर्वथा विभिन्न है। कितने अफसोस और दुर्भाग्य की बात है कि डा० अम्बेडकर दूध और पानी मे भी भेद न कर सके।"

अब हम सिन्ध की सब से अधिक महत्वपूर्ण घटना का उल्लेख करना चाहते है। २६ सितम्बर, १९४२ को सिन्ध के प्रधान मन्त्री खान बहादुर अल्लाहबख्श ने ब्रिटिश सरकार की नीति के विरोध स्वरूप वाइसराय को एक पत्र लिखा जिसमे उन्होने अपनी 'खान बहादुर' और 'ओ० बी० ई०' की उपाधियो के परित्याग करने की घोषणा की थी। २६ सितम्बर को एक पत्र-प्रतिनिधि-सम्मेलन मे अपने इस निर्णय की घोषणा करते हुए सिन्ध के बडे वजीर ने कहा कि ब्रिटेन की नीति, "भारत मे अपने साम्राज्य को कायम रखने, और इस देश को परतन्त्र बनाए रखने, उसके राजनीतिक और साम्प्रदायिक मतभेदो को अपने प्रचार के लिए इस्तेमाल करने और राष्ट्रीय ताकतो को कुचल कर अपने ही स्वार्थों को पूरा करने की है।" इस सम्मेलन में उन्होने वाइसराय के नाम भेजे गए अपने पत्र को भी पढ़कर सुनाया। एक सवाल के जवाब में उन्होने कहा कि उन्होने एक ओर साम्राज्यवाद और दूसरी ओर नाजीवाद और फासिस्टवाद से दुहरा युद्ध करने की ठान ली है। उन्होने इस बात पर खास तौर से जोर दिया कि साम्राज्यवाद के खिलाफ युद्ध करना उनका जन्म-सिद्ध अधिकार है और प्रत्येक भारतीय का परम कर्तव्य है कि वह अपने देश पर आक्रमण करने वाली किसी भी शक्ति का डटकर मुकाबला करते हुए देश की रक्षा करे।

मुस्लिम नेताओं की प्रतिक्रिया

जैसी कि आशा थी, कांग्रेस के प्रस्तावित आन्दोलन के सम्बन्ध में लीग की प्रतिक्रिया अनुकूल अथवा तटस्थ नही हो सकती थी। लीग कांग्रेस का खुला विरोध ही नही कर रही थी, बल्कि वह कांग्रेस-द्वारा आजादी प्राप्त करने के प्रत्येक व्यावहारिक प्रयास का भी विरोध करती थी, जब कांग्रेस के प्रति उसे अपने इतने विरोध

से ही सतोष न हो सका, तव १९४१ में मद्रास में होने वाले अपने वार्षिक अधिवेशन में उसने अपने ध्येय मे भारत में पाकिस्तान की स्थापना अथवा मुस्लिम-बहुल प्रान्तो का एक पृथक् स्वायत्त-शासन प्राप्त सघ बनाना भी शामिल कर लिया। दिन-प्रति-दिन, सप्ताह-प्रति-सप्ताह और मास-प्रति-मास लीग का सारा प्रयत्न और ध्यान पाकिस्तान की ओर लगने लगा और बहुत सी घटनाओं के कारण लीग का प्रभाव बढ गया। पाच प्रान्तो में स्वायत्त-शासन-प्रणाली के अन्तर्गत मन्त्रि-मडल बनाने के फलस्वरूप कुछ सीमा तक उसकी शक्ति और भी बढ गई।

मुस्लिम लीग की वर्किंग कमेटी ने २२ अगस्त, १९४२ को एक प्रस्ताव पास किया, जिसमे उसने ब्रिटिश सरकार से मुसलमानो के लिए आत्म-निर्णय का अधिकार प्रदान करने और पाकिस्तान की स्थापना के हक में मुसलमानो के मतदान के बाद तुरन्त ही उसे कार्यान्वित करने की माग करते हुए दूसरी किसी भी पार्टी से देश मे एक अस्थायी सरकार स्थापित करने की इच्छा प्रकट की जिससे कि देश की रक्षा और युद्ध के सफल सचालन के लिए भारत के सभी साधनो का सगठन किया जा सके। इसके कुछ समय बाद ही २५ अगस्त को अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय के छात्र-सघ के सम्मुख भाषण देते हुए वाइसराय की शासन-परिषद् के रक्षा-सदस्य सर फीरोज खा नून ने भारत को पाच स्वाधीनता प्राप्त उपनिवेशो मे विभाजित कर देने की एक योजना प्रस्तुत की। उन्होंने कहा —

"मै चाहता हूँ कि ब्रिटिश भारत पांच स्वाधीनता-प्राप्त उपनिवेशो मे विभक्त कर दिया जाय —(१) बगाल और आसाम, (२) मध्यप्रान्त, उत्तर प्रदेश और बिहार, (३) मद्रास अर्थात् द्राविडी, (४) बम्बई अर्थात् महाराष्ट्र और (५) पजाब, बिलोचिस्तान, सिन्ध और उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त। ये पाचो उपनिवेश न्यूजीलैण्ड, जिसकी जनसख्या १५ लाख है, आस्ट्रेलिया और दक्षिण अफ्रीका जिनमे से प्रत्येक की जन-सख्या ७० या ८० लाख है, की भाति पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हो सकते है। किन्तु कुछ ऐसी भी बातें है, जिनके लिए एक केन्द्रीय सत्ता और सब उपनिवेशों की तरफ से सामूहिक प्रयत्न की आवश्यकता है। ये विषय, मेरे विचार से रक्षा, कस्टम (आयात-निर्यात-कर), पर-राष्ट्र सम्बन्ध और मुद्रा है। इन चारो विषयो के प्रबन्ध के लिए मै एक केन्द्रीय सरकार की रचना का पक्षपाती हूँ, जिसमे पाचो उपनिवेश-सरकारो-द्वारा नामजद किए हुए प्रतिनिधि सम्मिलित हो। ये प्रतिनिधि तब तक अपने पदो पर बने रहेगे जब तक कि नियुक्त करने वाले अधिकारी अपने उपनिवेशो मे शासनारूढ रहेगे। परन्तु यह बात इस महत्वपूर्ण शर्त के साथ लागू होगी कि यदि किसी समय किसी उपनिवेश को केन्द्रीय शासन के सचालन से असतोष होगा तो उस उपनिवेश को यह अधिकार होगा कि वह केन्द्र से पृथक् हो जाय, किन्तु साथ ही यह व्यवस्था भी रहेगी कि इस

प्रकार पृथक् होने वाला उपनिवेश मतभेद दूर हो जाने पर फिर केन्द्र मे प्रविष्ट हो सके।"

बम्बई-प्रस्ताव के सम्बन्ध मे श्री जिन्ना ने कहा.—

"मुझे अत्यत खेद है कि आखिरकार काग्रेस ने रणभेरी छेड ही दी और उसने देश के विभिन्न व्यक्तियो, दलो और सगठनो-द्वारा दी गई चेतावनियो की तनिक भी परवाह न कर एक अत्यन्त खतरनाक सामूहिक आन्दोलन शुरू कर दिया। यह यकीन करना असम्भव है कि काग्रेस के नेता यह बात न जानते थे कि इस तरह के आन्दोलन का परिणाम हिसा, रक्तपात और बेगुनाह लोगो का विनाश होगा। यह और भी अधिक खेदजनक है कि यह आन्दोलन इस सकटपूर्ण घडी मे शुरू किया जा रहा है और इसका वास्तविक उद्देश्य सगीनो का भय दिखा कर जबरदस्ती अपनी मागे मनवाना है और अगर काग्रेस के इस धृष्ठतापूर्ण रुख और उसकी मनमानी एवं उत्तरदायित्वविहीन चुनौती से डर कर उसे खुश करने की कोशिश की गई तो उसका परिणाम पूर्ण रूप से आत्मसमर्पण और दूसरे सभी प्रकार के हितो का विशेषकर मुस्लिम भारत के स्वार्थो का बलिदान होगा।" सितम्बर मे एक भेट मे उन्होने कहा —

"अखिल-भारतीय महासमिति की अन्तिम बैठक के अन्तिम अधिवेशन मे गाधीजी ने यह बात बहुत जोर देकर कही थी कि केवल काग्रेस ही भारत की एकमात्र प्रतिनिधि-सस्था है। यही बात पण्डित नेहरू ने भी कही, लेकिन वह उनसे भी आगे बढ गए और कहा कि मुस्लिम-लीग एक प्रतिक्रियावादी सस्था है और मुस्लिम जनता उसके साथ है तथा काग्रेस ही समस्त देश का प्रतिनिधित्व करने वाली एकमात्र सस्था है। यह बात केवल भारत मे ही नही कही गई, बल्कि इसका ढिढोरा सारी दुनिया मे पीटा गया और चूंकि उन देशो की जनता भारत की वास्तविक परिस्थिति से परिचित नही है, इसलिए वह इस पर यकीन कर लेती है। यह दूषित और सगठित प्रोपेगैडा जनता को धोखे मे रखने की गरज से किया जाता है और अगर आप श्री चर्चिल का भाषण पढ़ कर देखे तो आप जान जाएगे कि उन्होने काग्रेस के इस दावे का खण्डन किया है।"

युद्ध-प्रयत्न के सम्बन्ध मे एक अमरीकी सवाददाता के प्रश्न के जवाब मे श्री जिन्ना ने निम्न वक्तव्य दिया —"मुस्लिम-लीग युद्ध-प्रयत्न मे सहयोग नही दे रही है। इसकी वजह यह नही है कि वह इसका विरोध करती है, बल्कि यह है कि वह तब तक युद्ध-सचालन मे हार्दिक सहयोग और सहायता प्रदान करने को तैयार नही है जब तक कि जनता यह न अनुभव करने लग जाय कि देश के शासन-संचालन मे उसका वास्तविक हाथ है। परन्तु हम ब्रिटिश सरकार की नीति की चाहे कितनी ही निन्दा क्यो न करें अथवा उस पर कितना ही खेद क्यो न प्रकट करें, पिछले तीन साल मे हमारी हालत एक खरबूजे जैसी रही है। चाहे खरबूजा छुरी पर रहे अथवा

छुरी खरबूजे पर रहे—दोनो ही तरह से नुकसान तो बेचारे खरबूजे का ही है। गला तो उसीका कटेगा। मान लीजिए कि ब्रिटिश सरकार की नीति से तग आ कर मै गुस्से मे कल से यह कहने लगू कि 'ब्रिटिश सरकार को परेशान करो और उसके साथ असहयोग करो'—तो आप यकीन रखिए कि इसकी वजह से आज की अपेक्षा हमें पाच सौ गुना अधिक मुसीबतें झेलनी पडेंगी। यह सवाल कोई बन्दूको का नही है, इस तरह से तो मुसलमानो के पास पाच सौ गुना ज्यादा बन्दूकें है। मै यद्यपि हिन्दुओ को भला-बुरा नही कहना चाहता, लेकिन भारत में कोई भी विवेकशील व्यक्ति आपको यह बता देगा कि यह तो उन (हिन्दुओ) का स्वभाव ही है और उन्हें इसी वातावरण में पाला-पोसा गया है। लेकिन मै स्वय अपने से ही पूछता हू कि क्या यह ठीक है कि हम पाच सौ गुना अधिक तकलीफें दे सकते है, पर सवाल तो यह है कि आखिर इसका नतीजा क्या निकलेगा? मुझे तो इसके केवल दो ही परिणाम दिखाई देते है—पूर्व, पश्चिम, दक्षिण अथवा उत्तर किसी भी दिशा से विदेशी आक्रान्ता इस देश पर छा जायगा। अगर ऐसा हुआ तो फिर भला मेरी कुर्बानियो से क्या लाभ होगा? और अगर दूसरे दल मेरे साथ नही है तो इसका परिणाम गृह-युद्ध होगा। दूसरा परिणाम मुझे यह दिखाई देता है कि अगर मुसलमान इस विद्रोह की आग लगाते है और वे ब्रिटिश सत्ता को पंगु बना देने के काम मे सफल भी हो जाते है, तब भी मेरा खयाल है कि उसके परिणामस्वरूप भारत के टुकडे-टुकडे हो जायगे। चाहे मै ब्रिटेन की नीति की कितनी ही निन्दा क्यो न करूँ और इस बारे मे जोरदार विचार प्रकट करूँ, फिर भी जब मै इन परिणामो की बात सोचता हूँ तब मै इसी नतीजे पर पहुँचता हूँ कि मेरी स्थिति खरबूजे से भिन्न नही है।"

श्री जिन्ना का सब से अधिक अनोखा रुख उस वक्त प्रकट हुआ जब कि उन्होने 'न्यूज क्रानिकल' के सवाददाता से एक भेंट में १३ अक्टूबर को जोरदार शब्दो मे यह कहा कि "भारत कभी भी अपनी समस्याओ का हल ढूँढने मे सफल नही हो सका है, और अतीत मे सदैव ब्रिटेन ने अपना हल भारत के ऊपर लादा है। इस समय वह ब्रिटेन से यह पक्का वादा ले लेना चाहते है कि लडाई के बाद उन्हे पाकिस्तान मिल जायगा और इसके बदले मे वह एक अस्थायी सरकार मे इस शर्त पर शामिल होने को तैयार होगे कि उन्हे भी हिन्दुओ जितनी ही सीटे मिले।" आगे उन्होने कहा, "अगर ब्रिटिश सरकार कल ही ऐसा कोई आश्वासन दे दे तो मेरा खयाल है कि हिन्दू-भारत इस प्रत्यक्ष और अनिवार्य परिणाम को स्वीकार कर लेगा।"

इस समय सर सिकन्दर हयात खा ने पजाब की अन्त साप्रदायिक समस्या को सुलझाने के लिए एक हल निकाला। उनकी योजना के अन्तर्गत पंजाब को दो हिस्सो मे बाँट देने की बात कही गई थी—पूर्वी और पश्चिमी भाग। परन्तु यह

विभाजन उसी हालत मे किया जाना था जब वर्तमान मताधिकार के आधार पर निर्वाचित आगामी प्रान्तीय धारासभा के ७५ प्रतिशत सदस्य यह फैसला करे कि पजाव प्रस्तावित सघ मे शामिल नही होगा। उस अवस्था मे धारासभा के मुसलमान और गैर-मुसलमान सदस्य ६० प्रतिशत वहुमत से यह फैसला कर लें कि क्या उन्हे अपने-अपने सम्प्रदाय के लिए पृथक्-पृथक् राष्ट्र स्थापित करने चाहिए या नही। परन्तु इसका फैसला जनता की मतगणना के जरिये ही किया जाय और केवल वही लोग इसके लिए वोट दे जिन्हे ऐसा करने का हक हासिल हो। यदि मुस्लिम-वहुल आवादी वाला पश्चिमी प्रदेश प्रस्तावित संघ से अलग रहने का फैसला करे तो पूर्वी पजाव के हिन्दू और सिक्ख वहुल इलाके को भी हक हो कि वह अपनी इच्छा से भारतीय सघ मे शामिल हो जाय। लेकिन इतने पर भी सर सिकन्दर ने एक ही राष्ट्र का प्रतिपादन करते हुए गुरु नानक के जन्म-दिवस पर दिसम्वर १९४२ मे कहा कि, "हम एक ही राष्ट्र है और हमारा एक ही देश है।" दिसम्वर मे भारत और इग्लैण्ड दोनो ही जगह मुगल सम्राट् अकवर की ४०० वी सालगिरह मनाई गई। लन्दन के समारोह मे श्री एमरी ने भी भाग लिया। इस अवसर पर उन्होने भारतीयो को अकवर की नीति पर चलने की सलाह दी।

इन्ही दिनो सर मोहम्मद जफरुल्ला खा प्रशान्त सघ के सम्मेलन मे भाग लेने अमरीका गए हुए थे। न्यूयार्क से केनेडा जाते हुए उन्होने भारतीय समस्या को सुलझाने के लिये दो तरीके वताए। उन्होने कहा कि पहला तरीका यह है कि काग्रेस उत्तर-पूर्व और उत्तर-पश्चिम के इलाको मे पाकिस्तान की स्थापना के सम्वन्ध में श्री जिन्ना की माग स्वीकार कर ले। दूसरा यह कि अग्रेजो को भारत छोड़ कर चले जाने की माग करने से पूर्व महात्मा गाधी, पडित नेहरू और उनके अन्य सहयोगियो को यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि "मुसलमानो का डर उचित है और इसलिए उन्हे एक ऐसा समझौता कर लेना चाहिए जिसके अन्तर्गत मुसलमानो और दूसरे अल्पसंख्यको के अधिकारो के संरक्षण की उचित व्यवस्था कर दी गई हो।"

लीग के सभी अनुयायी उसके दृष्टिकोण से सहमत नही थे। एक विचारपत्र मे मुसलमानो की ओर से भारत मे ब्रिटिश हुकूमत खत्म किये जाने, नेताओ की रिहाई और जिन्ना से काग्रेस के साथ फिर समझौते की वातचीत शुरू करने की माग की गई। इसके अलावा इसमे तत्काल काग्रेस और लीग मे समझौते और एकता की आवश्यकता और इस संकटपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में विदेशी आक्रमण के विरुद्ध भारत की रक्षा के लिए एक अस्थायी राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की भी ज़ोरदार माग की गई।

नवम्बर १९४२ के मध्य में दिल्ली में श्री जिन्ना ने भारत के मुसलमानो से पाकिस्तान हासिल करने के लिए कटिवद्ध रहने की अपील करते हुए कहा कि

या तो हम पाकिस्तान लेकर रहेंगे और या फिर अपना अस्तित्व ही मिटा देंगे। १९१७ में श्री जिन्ना एक सयुक्त भारत के ज़बरदस्त हामी थे, लेकिन १९४२ में हम देखते हैं कि वह अपने इस उच्च आदर्श से कितना नीचे गिर गये थे। १९४२ (दिसम्बर) मे कलकत्ता के फेडरेशन आफ (यूरोपियन) चैम्बर्स आफ कामर्स के सम्मुख भाषण देते हुए वाइसराय ने भारत की 'भौगोलिक एकता' पर ज़ोर देकर मुस्लिम लीग की माग पर पानी फेर दिया था। इसके वाद भारत से प्रस्थान करने से पूर्व नरेन्द्र मण्डल के सम्मुख दिए गए अपने भाषण मे भी लार्ड लिनलियगो ने भारत के लिए सघ-योजना का जोरदार समर्थन कर लीग के इस आदर्श पर अपना अन्तिम प्रहार किया था। इसी बीच सिन्ध मे श्री अब्दुल मजीद और सिन्ध असेम्बली के दो और सदस्यो ने मुस्लिम लीग से इस्तीफा दे दिया।

आजाद मुस्लिम कान्फ्रेंस ने दिल्ली में हुई अपनी एक बैठक मे निम्न प्रस्ताव पास किया—"आजाद मुस्लिम बोर्ड की यह सभा भारत के लोगो से अपील करती है कि वे इस महान् सकट के अवसर पर देश और जाति के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करते हुए अन्तर्सांप्रदायिक एकता और विश्वास की दृढ भावना पैदा करने के लिए अपनी कोई कसर न उठा रखें। साम्प्रदायिक समस्या के निवटारे के सिलसिले मे कांग्रेस इतना आगे वढ चुकी है कि उसके नेताओ के साथ और समझौता करके युद्धोत्तरकालीन वैधानिक फैसले मे किसी भी सम्प्रदाय के हितो और अधिकारो को नुकसान पहुचाए बिना ही युद्धकाल तक के लिए एक अस्थायी सयुक्त सरकार की स्थापना की जा सकती है।"

भारत की भावी स्थिति से सम्बन्ध रखनेवाली सपूर्ण समस्या के प्रति श्री जिन्ना के रुख का उनके धर्मावलवियो की एक वडी सख्या समर्थन नही कर रही थी और इसकी पुष्टि इस वात से हो जाती है कि पाकिस्तान की योजना के खिलाफ लडने के लिए जून १९४३ के मध्य मे शेख मुहम्मद एम० एल० सी० की अध्यक्षता मे 'मुस्लिम मजलिस' नाम से एक नये मुस्लिम सगठन की नीव रखी गई जिसका प्रधान कार्यालय कलकत्ता मे था। अखबारो के नाम जारी किये गए अपने एक वक्तव्य मे उन्होंने कहा—"पिछले दो वर्षो से श्री जिन्ना ने वारंवार कोई-न-कोई वहाना करके कांग्रेस के नेताओ से मुलाकात करने मे अपनी असमर्थता प्रकट की है और उन्हे यह वताने की कोशिश भी नही की कि पाकिस्तान की योजना या मुसलमानो के लिए आत्मनिर्णय के अधिकार से उनका वास्तविक अर्थ क्या है। कांग्रेस से बिना शर्त आत्मसमर्पण करने की उनकी माग के कारण उनके कट्टर समर्थको को भी यकीन हो गया है कि श्री जिन्ना को न तो भारत की आजादी की परवाह है और न पाकिस्तान की ही। उन्हे तो केवल इस बात की परवाह है कि भारत की आजादी और पाकिस्तान को खो देने का खतरा उठा कर भी किसी-न-किसी प्रकार उनकी मौजूदा अनुचित स्थिति बनी रहे। इस मजलिस के तीन

उद्देश्य है। इसका पहला उद्देश्य भारतीय-समस्या का हल ढूंढने के लिए अन्य दलो के साथ मिलकर देश के वर्तमान गतिरोध को दूर करना हे, दूसरा उद्देश्य भारत के लिए राजनीतिक और आर्थिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति और तीसरा न केवल भारत के मुसलमानो की जन-सख्या को देखते हुए ही, वल्कि भारत मे मुसलमानो की विशिष्ट परिस्थिति और इस उप-महाद्वीप मे उसके महत्व का खयाल रखते हुए उनके अधिकारो का सरक्षण करने की व्यवस्था है। इसके अलावा मजलिस का एक और उद्देश्य भारत के विभाजन का विरोध करना है, क्योकि यह न केवल अव्यावहारिक और भारत की आजादी को नुकसान पहुचाने वाला है, वल्कि उससे भारतीय मुसलमानो के हितो को नुकसान पहुचेगा।

हिन्दू-सभा की प्रतिक्रिया

समय-समय पर भारतीय राजनीतिक आकाश मे विभिन्न राजनीतिक अथवा सामाजिकता-युक्त राजनीतिक सस्थाओ ने जन्म लिया है। इनमे से पुरानी राष्ट्रीय महासभा और सब से छोटी एव नवीनतम सस्था हिन्दू महासभा है। २९ दिसम्बर १९४२ को कानपुर मे उसका २४ वा अधिवेशन हुआ था। जिस प्रकार काग्रेस और लीग को भारत-सरकार ने सदा से अधिकृत सस्थाओ के रूप मे स्वीकारकर लिया था, उसी प्रकार उसने ८ अगस्त १९४० वाले वक्तव्य मे पहली वार हिन्दू महासभा को भी एक अधिकृत सस्था मान लिया था। गाधीजी और उनके साथियो की गिरफ्तारी के अवसर पर श्री सावरकर ने हिन्दुओ को सलाह दी कि वे "काग्रेस-आन्दोलन मे किसी प्रकार की भी मदद न करे।" इसमे आश्चर्य की कोई वात नही थी, क्योकि वह भारतीय राष्ट्रवाद के स्थान पर हिन्दुत्व और हिन्दू साप्रदायिकता का प्रचार करते रहे थे। काग्रेस के जेल जाने के वाद मुस्लिम-वहुल प्रान्तो मे मन्त्रिमडल वनाने मे उन्होने विभिन्न प्रान्तो मे अलग-अलग कारणो से हिन्दुओ को भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया, लेकिन इन सभी मामलो मे वास्तव मे वह मुस्लिम लीग की नीति का अनुसरण कर रहे थे। लीग की भाति उन्हे भविष्य के वजाय अपने तात्कालिक उद्देश्य की अधिक परवाह थी, भारतीय आजादी के वजाय साप्रदायिक लाभ का अधिक ध्यान था और ब्रिटेन के विरुद्ध लडने के वजाय उनके साथ मिल कर काम करने की नीति अधिक पसन्द थी।

भारतीय ईसाइयो की प्रतिक्रिया

जैसी कि आशा की जाती थी, अगस्त-प्रस्ताव के सम्वन्ध मे भारतीय ईसाइयो की प्रतिक्रिया अच्छी और सतोषजनक रही। मार्च मे दिल्ली मे होनेवाले अखिल भारतीय ईसाई सम्मेलन के २५ वे अधिवेशन के नाम अपने स्वागत-सन्देश मे सर फ्रेडरिक जेम्स ने कहा कि यह सम्मेलन भारत मे सुलह-सफाई कराने के लिए एक

सर्वथा उचित साधन सिद्ध हो सकता है। काफ्रेस के सम्मुख भापण देते हुए पण्डित कुजरू ने कहा कि एक ऐसे समय मे जब कि देश के विभाजन का खतरा बढता जा रहा हे, केवल यही एकमात्र सस्था है जो देश की एकता का प्रतिपादन करती हुई साम्प्रदायिक हितो का खयाल न कर के देश के हितो को सर्वोपरि स्थान देने को तैयार है। इसके अलावा भारतीय ईसाई स्वय भी चूकि एक अल्पसख्यक है, इसलिए वे साधारणत दूसरे अल्पमतो की कठिनाइयो और दृष्टिकोण को अच्छी तरह समझ सकते है। सर महाराजसिह ने अध्यक्षपद से भापण देते हुए साप्रदायिक समस्या को सुलझाने, गाधीजी को रिहा करने, भारतीय राजनीतिक समस्या को हल करने के लिए सभी प्रमुख दलो की एक गोलमेज-परिपद् बुलाने और लडाई के समाप्त होने तक पाकिस्तान के बारे मे अन्तिम निर्णय स्थगित करने की जोरदार अपील की। इसके अलावा सम्मेलन ने यह सुझाव भी पेश किया कि अगर विभिन्न सम्प्रदायो मे कोई समझौता न हो सके तो 'इस समस्या का फेसला एक अन्तर्राष्ट्रीय पच से करा लिया जाय।' साप्रदायिक समस्या को सुलझाने के अलावा सम्मेलन ने ब्रिटिश सरकार से लडाई खतम हो जाने के बाद दो साल के भीतर भारत को पूर्ण आजादी देने की स्पष्ट घोपणा करने के लिए भी कहा।

: २० :

उपवास और उसके बाद : १९४३

उपवास का आरंभ

गाधीजी और उनके सहयोगियो को जेल मे गए हुए लगभग छ महीने होने को आए थे। बम्बई मे अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के अधिवेशन मे उन्होने अपने मित्र वाइसराय को पत्र लिखने की घोपणा की थी। स्वतत्र रहते हुए उन्हे जो बात लिखने की इजाजत नही दी गई थी, उसे उन्होने आगाखा महल से एक नजरबन्द कैदी की हैसियत से लिखने का साहस किया। उसी वक्त किसी तरह यह खबर समाचार-पत्रो को भी लग गयी, लेकिन किसी को नही मालूम था कि उन्होने क्या लिखा है और न कोई यही कह सकता था कि जो कुछ उन्होने सितम्बर १९४२ मे लिखा है, वह वही है जो वह जेल से बाहर रहने पर ९ अगस्त को लिखते। इस दौरान मे गाधीजी और उनके अनुयायियो पर अनेक तरह के लाछन और दोप लगाए गए। उन्हे झूठा कहा गया। उनके इरादो और मकसदो के बारे मे सन्देह प्रकट किया गया। जनता को बताया गया कि वह

चुपचाप आदोलन की तैयारिया कर रहे थे और उसके लिए उन्होने जरूरी हिदायते भी जारी की है। उन्होने अनैतिकता से काम लिया, इत्यादि इत्यादि। इसलिए इन सब बातो का खण्डन करना उनका आवश्यक कर्तव्य हो गया था। लेकिन वह ऐसा करने मे स्वतन्त्र नही थे, यद्यपि सरकार की ओर से यह कहा जा रहा था कि उन्हे अपने विचारो का खण्डन-मडन करने की पूरी स्वतन्त्रता है, तथापि सिद्धात-प्रिय और सत्य, अहिसा एव प्रेम के पुजारी व्यक्ति के पास एक उच्च शक्ति का सहारा लेने के सिवाय और कोई चारा ही नही था। इस उच्च शक्ति का सहारा उन्होने उपवास के रूप मे लिया।

गाधीजी के उपवास का समाचार पहले-पहल जनता को केवल १० फरवरी और वर्किंग-कमेटी के सदस्यो को अहमदनगर किले मे ११ फरवरी को मिला। यदि उनकी गिरफ्तारी के बाद एक सप्ताह के भीतर ही उनके सेक्रेटरी श्री महादेव देसाई की अचानक मृत्यु न हो गई होती तो वह यह उपवास बहुत पहले ही शुरू कर देते। इस सबध मे ५ फरवरी १९४३ को लार्ड लिनलिथगो ने गाधीजी को जो पत्र लिखा उसके निम्न अग से उन (लिनलिथगो) की निर्भयता और निर्दयता पर प्रकाश पडता है —

"आप इस बात का यकीन रखिए कि काग्रेस के ऊपर जो इलजाम लगाए गए है, उनका उसे एक-न-एक दिन जवाब देना ही होगा और उस समय आपको और आपके साथियो को, अगर हो सके तो, दुनिया के सामने अपनी सफाई देनी पडेगी। और यदि इस दौरान मे किसी ऐसी कार्रवाई के जरिये, जिसकी आप इस समय कल्पना कर रहे प्रतीत होते है, अपने आपको इस तरह से आसानी से बचा लेना चाहते है तो मै आपको स्पष्ट बतादूँ कि फैसला आपके खिलाफ जायगा।" परन्तु इस निन्दनीय आरोप के बावजूद भी गाधीजी ने अनशन आरम्भ किया।

उपवास की प्रगति

गाधीजी के उपवास की सूचना जनता को जल्दी-से-जल्दी उसके दूसरे दिन और साधारणत तीसरे दिन मिली। सौभाग्यवश श्रीमती कस्तूरबा गाधी और मीराबेन के अतिरिक्त श्रीमती सरोजिनी नायडू भी इस अवसर पर गाधीजी के पास थी। आगाखा महल से कुछ ही दूर यरवडा जेल मे डा० गिल्डर भी नजरबन्द थे। इस मौके पर उन्हे ११ फरवरी को आगाखा महल जाने की इजाजत दे दी गई और इस प्रकार डा० गिल्डर भी गाधीजी के पास पहुँच गए। गाधीजी को केवल दो घण्टे के लिए हर रोज बाहर बरामदे मे लाया जाता था। उपवास के चौथे दिन से उनका जी मचलने लगा और उन्हे नीद न आने की वजह से बडी बेचैनी होने लगी। जी मचलने और नीद न आने के कारण १५ फरवरी को उनकी हालत १४ फरवरी की तरह सन्तोषजनक नही थी। बेचैनी रहने

और पानी पीने मे कठिनाई होने के कारण धीरे-धीरे गाधीजी की हालत विगडने लगी। १५ फरवरी को डा० विधानचन्द्र राय भी पूना पहुँच गए और वह ३ मार्च तक वही रहे। कान, नाक और गले के एक विशेषज्ञ डा० माडल्कि ने भी गाधीजी की परीक्षा की। उपवास के दूसरे सप्ताह मे गाधीजी की आम हालत के वारे मे चिन्ता होने लगी। १६ फरवरी के वाद से नित्य प्रति उनकी मालिश की जाने लगी। अगले दिन हृदय-गति मन्द पडने लगी। १९ फरवरी के वाद से छ डाक्टरो—श्री एम० डी० डी० गिल्डर, मेजर-जनरल कैण्डी, वम्वई के सर्जन-जनरल, डा० वी० सी० राय, लेफ्टिनेन्ट-कर्नल भण्डारी, आई० जी० पी०, डा० सुशीला नायर और लेफ्टिनेन्ट-कर्नल वी० जे० शाह के हस्ताक्षरो से वम्वई-सरकार की ओर से गाधीजी के स्वास्थ्य के वारे मे वुलेटिन प्रकाशित होने लगे। गाधीजी वोलना नही चाहते थे और न वह अपने दर्शको से मिलना चाहते थे। यह देखकर डाक्टरो को वडी चिन्ता होने लगी।

१९ तारीख को गाधीजी को श्री मोदी, श्री सरकार और श्री अणे के इस्तीफे की सूचना दी गई। इससे वह कुछ मुस्कराए। २० फरवरी के वुलेटिन मे वताया गया कि गाधीजी की हालत खराव होगई है और वहुत गम्भीर है। २१ फरवरी को अर्थात् उपवास के वारहवे दिन वताया गया कि वे दिन भर वहुत वेचैन रहे। दोपहर को ४ वजे उनकी हालत खतरनाक हो गई और वह प्राय वेहोश हो गए। उनकी नव्ज इतनी हल्की होगई कि उसे प्राय पहचानना कठिन हो गया। वाद मे वह नीवू के मीठे रस के साथ पानी पी सकने मे समर्थ हो सके। उस दिन वह खतरे से वाहर हो गए और रात को ५॥ घण्टे सोए। २२ फरवरी को गाधीजी का मौन दिवस था। वह आराम अनुभव कर रहे थे और अधिक प्रसन्न दिखाई देते थे, लेकिन हृदय कमजोर था। तीसरे सप्ताह का प्रारभ होने पर पेशाव की शिकायत धीरे-धीरे दूर होने लगी और वह अधिक खुश नजर आने लगे। २५ फरवरी को गाधीजी वहुत प्रसन्न थे। उस दिन प्रात काल उन्होने स्पज स्नान किया और मालिश की। दो दिन तक नीवू का मीठा रस और पानी पीने के वाद गाधीजी ने इसकी मिकदार कम करदी। २७ तारीख के वुलेटिन मे वताया गया कि गाधीजी आज उदासीन-से दिखाई देते थे, लेकिन अगले दिन वह सजग और अधिक खुश थे। पहली मार्च को सोमवार था। यद्यपि वह खुश दिखाई देते थे तथापि मुलाकात करनेवालो के कारण वह थकावट महसूस कर रहे थे। ३ मार्च को सुवह ९ वजे गाधीजी ने अपना उपवास खोला। लेकिन सरकार यह सहन नही कर सकती थी कि उस दिन खुशिया मनाई जायँ। इसलिए उसने दर्शको को उनसे मिलने की इजाजत नही दी। दर्शको की सख्या कम होने के कारण इस समारोह मे अधिक गम्भीरता आ गई, लेकिन गाधीजी से मिलनेवालो ने शहर मे अन्यत्र एक सभा की जिसमे गाधीजी की दीर्घायु के लिए कामना की

गई। इस सभा में श्री अणे भी उपस्थित थे। इसके वाद गाधीजी के स्वास्थ्य मे कोई उल्लेखनीय घटना नही हुई।

इंग्लैण्ड में उपवास की प्रतिक्रिया

मार्च के पहले सप्ताह मे गाधीजी के उपवास समाप्त होने के परिणामस्वरूप ब्रिटेन की जनता का ध्यान पुनः भारतीय गतिरोध को दूर करने की ओर आकृष्ट हुआ। 'मांचेस्टर गार्जियन' ने अपने एक सपादकीय लेख मे लिखा —

"यह सौभाग्य की वात है कि हमारे और भारत के दरम्यान अन्तिम मैत्री स्थापित होने की आशा से गाधीजी जीवित रहे। परन्तु यह सत्य है कि भारत की राजनैतिक स्थिति मे कोई सुधार नही हुआ।"

गाधीजी ने हाल के उपद्रवो की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेने से साफ इन्कार कर दिया था, इस पर टिप्पणी करते हुए उसने लिखा—"काग्रेसी नेताओ की गिरफ्तारी के वाद से सरकार ने ऐसी कोई भी कार्रवाई नही की जिससे देश के विद्यमान् खिचाव मे कमी हो जाती। स्थिति को सुधारने के लिए न तो कुछ किया गया है और न किया जा रहा है और अव गाधीजी जो उपवास करने जा रहे है भले ही भारत-सरकार उसकी जिम्मेदारी अपने ऊपर न ले, परन्तु हो सकता है कि भारत पर उसका व्यापक प्रभाव पडे।" पार्ल्यामेंट के वहुत से मजदूरदली सदस्यो ने भारत की परिस्थिति, विशेष कर उपवास के समय गाधीजी को नजरवन्द रखने के सम्वन्ध मे गहरी चिन्ता प्रकट की। वाइसराय की शासन-परिषद् के तीन सदस्यो के इस्तीफे का समाचार मिलने के वाद इनमे से लगभग १५ सदस्यो ने १७ फरवरी को कामन-सभा के कमेटी रूम मे एक वैठक की। लन्दन मे इडिया लीग द्वारा आयोजित एक सभा मे भाषण देते हुए लार्ड स्ट्रैवोल्गी ने कहा कि अगर कही उपवास के परिणाम स्वरूप गाधीजी की जान जाती रही तो उन्हे आशका है कि हिन्दुओ के साथ ब्रिटेन के भावी सम्वन्ध वहुत कटु और खतरनाक हो जाएगे।

२५ फरवरी को एक शिष्ट मण्डल ने, जिसमे श्री कैनन हालैण्ड और पार्ल्यामेंट के मजदूर-दल के वहुत-से सदस्य भी शामिल थे श्री एमरी से भेंट की और उनसे गाधीजी को रिहा करने और गाधीजी तथा काग्रेसी नेताओ मे पारस्परिक सपर्क स्थापित करने की आवश्यकता पर जोर दिया। कामन-सभा में एक प्रश्न का उत्तर देते हुए श्री एमरी ने कहा कि ब्रिटिश-सरकार भारत-सरकार के इस फैसले से पूर्णत. सहमत है कि इस प्रकार गाधीजी-द्वारा विना शर्त अपनी रिहाई की कोशिश के आगे घुटने न टेके जावें।

उपवास की समाप्ति पर वहुत कम ब्रिटिश-पत्रों ने कोई राय जाहिर की। 'डेलीमेल' और 'डेली टेलिग्राफ' ने इसे ब्रिटिश-सरकार की विजय वताया।

उदार-दली पत्र 'स्टार' ने कहा कि उपवास के परिणामस्वरूप भारतीयों की मनोकामना पूरी नही हो सकी। इडिया लीग-द्वारा आयोजित एक सभा मे ३ मार्च को भाषण देते हुए लार्ड स्ट्रैबोल्गी ने कहा कि अब जबकि गाधीजी का उपवास खत्म हो गया है, काग्रेस के नेताओ और भारत के अन्य समुदायो के साथ तुरन्त ही नये सिरे से समझौते की बात-चीत शुरू कर देनी चाहिए और गाधीजी की रिहाई इस दिशा मे पहला कदम हो सकता है। प्रोफेसर लास्की ने ९ मार्च, १९४३ के 'रेनाल्ड्स न्यूज' मे लिखा "ब्रिटिश सरकार निस्सन्देह सौभाग्यशालिनी है कि उपवास के दौरान मे गाधीजी की मृत्यु नही हुई, अगर कही ऐसा हो जाता तो हमारे इन दोनो देशो के दरम्यान बहुत भारी गलतफहमी पैदा हो जाती जिसे दूर करना असम्भव हो जाता।" लार्ड हैरिंगडन, श्री एडवर्ड थानसन, श्री लारेंस हाउसमेन और कैण्टरबरी के डीन ने गाधीजी को तत्काल रिहा कर देने की आवश्यकता पर जोर देते हुए सदेश भेजे।

अमरीका में उपवास की प्रतिक्रिया

अमरीका मे उपवास की विभिन्न प्रतिक्रिया हुई। अमरीका के सभी प्रमुख पत्रो मे गाधीजी के उपवास और वायसराय के साथ उनके पत्र-व्यवहार का विस्तृत विवरण प्रकाशित हुआ। १२ फरवरी तक न्यूयार्क और वाशिगटन के किसी भी पत्र ने इस सम्बन्ध मे कोई टिप्पणी नही की। अमरीका की प्रतिनिधि-सभा के सदस्यो ने कहा कि उनके पास गाधीजी की कार्रवाइयो के अध्ययन करने का समय नही है और इसलिए वे इस सम्बन्ध मे कोई राय प्रकट करने को तैयार नही है।

गाधीजी के उपवास के सम्बन्ध मे २२ फरवरी को अपने सपादकीय लेख मे टिप्पणी करते हुए 'न्यूयार्क टाइम्स' ने लिखा, "भारत की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए जिस व्यक्ति ने अपना सारा जीवन लगा दिया है, उसकी चरम सीमा अब उपवास मे जाकर समाप्त हो रही प्रतीत होती है। पिछले सप्ताह गाधीजी की गम्भीर अवस्था के कारण एक बडा सकट पैदा हो गया है।" २० फरवरी को अमरीका के स्वराष्ट्र-मत्री श्री कार्डल हल और ब्रिटेन के राजदूत लार्ड हेलीफेक्स ने एक-दूसरे से बातचीत की, और श्री हल ने गाधीजी के उपवास से पैदा होनेवाली परिस्थिति के सम्बन्ध मे गहरी चिन्ता प्रकट की।

भारत में उपवास की प्रतिक्रिया

उपवास की महत्वपूर्ण और सर्वप्रथम प्रतिक्रिया भारत मे यह हुई कि १७ फरवरी १९४३ को श्री एच० पी० मोदी, श्री एम० एस० अणे और श्री एन० आर० सरकार ने सरकार-द्वारा गाधीजी को रिहा न करने के विरोध मे वाइसराय की शासन-परिषद् से इस्तीफा दे दिया। इस नयी परिस्थिति पर सोच-

विचार करने के लिए १९ फरवरी को नयी दिल्ली मे नेताओ का एक सम्मेलन बुलाया गया। इसमे भाग लेने के लिए विभिन्न दृष्टिकोण रखनेवाले लगभग १५० प्रमुख नेताओ को, जिनमे श्री जिन्ना भी शामिल थे, बुलाया गया। लेकिन श्री जिन्ना ने यह कहकर इसमे भाग लेने से इन्कार कर दिया कि "गाधीजी के उपवास के कारण पैदा होनेवाली परिस्थिति पर सोच-विचार करने का काम वास्तव मे हिन्दू-नेताओ का है।"

इस सम्बन्ध मे सब से पहले अपने विचार प्रकट करनेवाले सार्वजनिक नेता हिन्दू-महासभा के कार्यवाहक अध्यक्ष डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी थे। उन्होंने एक वक्तव्य मे कहा—"महात्मा गाधी के बिना भारतीय समस्या कभी नही सुलझ सकती।" भारतीय व्यापार और उद्योग-सघ के प्रधान श्री जी०एल०मेहता ने वाइस-राय के नाम अपने तार मे कहा—"उपवास करने के बारे मे यदि गाधीजी के फैसले मे कोई परिवर्तन नही हो सकता था, तो कम-से-कम सरकार को उन्हे बिना शर्त रिहा कर देना चाहिए था।" पण्डित मदनमोहन मालवीय ने २० फरवरी को ब्रिटेन के प्रधान मत्री श्री चर्चिल को इस आशय का एक तार भेजा कि भारत और इग्लैण्ड के भले के लिए मै आप से गाधीजी को मुक्त कर देने की यह अतिम क्षण अपील करता हूँ। यदि कही गाधीजी का जीवन जाता रहा तो भारत और इग्लैण्ड के पारस्परिक मैत्रीपूर्ण सम्बन्धो के लिए भारी खतरा पैदा हो जायगा। श्री आर्थर मूर ने भी एक वक्तव्य मे कहा कि इस समय, जब कि गाधीजी का जीवन ख़तरे मे है,सरकार उन्हे छोडकर कोई ख़तरा नही उठाएगी और न उसकी प्रतिष्ठा पर ही कोई आच आएगी।

परन्तु इन प्रार्थनाओ के बावजूद भी भारत-सरकार ने एकदम अप्रत्याशित रुख धारण कर लिया। उसने आदेश जारी कर दिया कि उपवास तोडने के समय गाधीजी के पुत्रो को छोडकर और कोई भी व्यक्ति उनके पास नही रह सकता और गाधीजी का अथवा ऐसे दूसरे किसी भी व्यक्ति का, जिसकी उन तक पहुच है कोई भी वक्तव्य तब तक प्रकाशित नही किया जा सकता जब तक कि उसे पहले से प्रातीय प्रेस-सलाहकार को न दिखला लिया गया हो। यह प्रतिबन्ध छः महीने और २१ दिन तक जारी रहा।

गाधीजी के उपवास के बाद फिर वही पुराना सवाल जिसके कारण उन्होने उपवास किया था, सामने आया। प्रत्येक व्यक्ति यह जानने को उत्सुक और चितित था कि अगला कदम क्या होगा? क्या सरकार अब कुछ झुक जायगी और नरम पड जायगी? क्या वह अपने किए पर पश्चात्ताप करेगी? क्या उसके कठोर हृदय मे परिवर्तन हो सकेगा? क्या वह अपना दुराग्रह छोड देगी? इस प्रमग मे हम जार्ज बर्नार्ड शा का एक वक्तव्य उद्धृत करना उचित समझते है जो उन्होने मई १९४३ के अन्त मे दिया था। उन्होने कहा—"आप मेरा हवाला

देकर यह कह सकते है कि ब्रिटिश सरकार ने दक्षिण पक्ष (टोरी) के प्रतिक्रियावादी और दुस्साध्य लोगो के कहने मे आकर गाधीजी को जेल मे बन्द करके एक मूर्खतापूर्ण और भारी भूल की है। उसने ब्रिटेन के धनिकवर्ग के साथ मिलकर हिटलर के खिलाफ इस देश की नैतिक स्थिति बिल्कुल खत्म कर दी है। सम्राट् को चाहिए कि वह गाधीजी को बिना शर्त मुक्त करके उनसे अपने मत्रिमडल के मानसिक विकार के लिए क्षमा-याचना करे। इस तरह जहा तक हो सकेगा भारतीय स्थिति को सुलझाया जा सकेगा।" निस्सदेह ये बडे महत्त्वपूर्ण शब्द है। लेकिन यूरोपीय महाद्वीप पर राजनीतिज्ञता यदि खत्म नही हो चुकी थी तो कम-से-कम उसका दिवाला अवश्य निकल चुका था।

निर्दलीय नेताओं का प्रयत्न विफल

भारत में गाधीजी की प्राण-रक्षा मे जितनी खुशी हुई थी उससे अधिक नही तो कम-से-कम उतनी ही खुशी ब्रिटेन मे इस बात से हुई कि अनशन असफल रहा। भारत के लिए यह जिन्दगी और मौत का सवाल था और ब्रिटेन के लिए सफलता या असफलता का। इस बात के यकीन मे कि अनशन असफल रहा, अगेजो की अभिमान-भावना तुष्ट हुई, उन्हे सतोष हुआ और ब्रिटेन और साम्राज्य के शत्रु की दुर्गति से उन्हे अमिश्रित हर्ष हुआ।

अनशन के बाद २० मार्च को दिल्ली मे नेताओ का जो सम्मेलन हुआ था उसके अध्यक्ष के रूप मे डा० सप्रू को उत्तर देते हुए वाइसराय ने सरकार की नीति स्पष्ट करते हुए कहा —

"यदि दूसरी तरफ गाधीजी पिछले अगस्तवाले कांग्रेस के प्रस्ताव को रद करने और हिसा के लिए उत्तेजक अपने शब्दो-जैसे 'खुला विद्रोह' आदि की कांग्रेस अनुयायियो को दी गयी 'करो या मरो' सलाह की और अपने इस कथन की कि नेताओ के हट जाने पर साधारण व्यक्ति स्वय ही निर्णय करे, निन्दा करने को तैयार हो और साथ ही कांग्रेस और वह भविष्य के लिए ऐसा आश्वासन देने को तैयार हो, जो सरकार को मजूर हो, तो इस विषय पर आगे विचार किया जा सकता है। परन्तु जब तक ऐसा नही होता और कांग्रेस अपने रुख पर कायम रहती है, तब तक सरकार का पहला फर्ज हिन्दुस्तान की जनता के प्रति है और अपने इस फर्ज को वह पूरी तरह से अदा करना चाहती है। यह कहा गया है कि इस तरह फर्ज अदा करने से कटुता और दुर्भावना मे वृद्धि होगी। सरकार इस सुझाव को निराधार मानती है और यदि इसमे कुछ आधार हो भी तो सरकार अपनी जिम्मेदारी निबाहने के लिए वह मूल्य चुकाने के लिए भी तैयार है।"

फिर भी अखिल भारतीय नेताओ ने हिम्मत करके ९ मार्च १९४३ को एक सम्मेलन किया और निम्न वक्तव्य निकाला —

"हमारा मत है कि पिछले कुछ महीने की घटनाओ को ध्यान मे रखते हुए सरकार और काग्रेस को अपनी नीति पर फिर से विचार करना चाहिए। हममें से कुछेक को गाधीजी से हाल ही मे जो बातचीत करने का मौका मिला है उसके कारण हमारा विश्वास है कि इस समय सुलह की बाते जरूर कामयाब होगी। हमारी तरफ से वाइसराय से अनुरोध किया जाना चाहिए कि वह हमारे कुछ प्रतिनिधियो को गाधीजी से मिलने की अनुमति प्रदान करे ताकि हाल की घटनाओ के सम्बन्ध मे वह उनकी प्रतिक्रिया का प्रमाणित विवरण प्राप्त कर समझौता कराने का प्रयत्न कर सके।" इस वक्तव्य पर ३५ नेताओ के हस्ताक्षर थे जिन मे सर तेजबहादुर सप्रू, श्री एम० आर० जयकर, श्री भूलाभाई देसाई, श्री सी० राजगोपालाचारी और सर जगदीशप्रसाद के नाम विशेष रूप मे उल्लेखनीय है। इससे आशा की जाती थी कि आवश्यक अनुमति मिल जायगी। परन्तु उसकी जगह वाइसराय का एक लम्बा उत्तर मिला, जिसमे अनुमति देने से इकार कर दिया गया। तब वाइसराय के पास एक डेपुटेशन ले जाने का फैसला किया गया। वाइसराय ने १ अप्रैल को चार प्रतिनिधियो के एक डेपुटेशन से मिलना स्वीकार कर लिया, लेकिन साथ ही उन्होने एक आवेदनपत्र भी भेजने का अनुरोध किया। डेपुटेशन को सूचित किया गया कि डेपुटेशन से अपना आवेदनपत्र पढने को कहा जायगा और फिर वाइसराय अपना उत्तर पढ देगे। दूसरे शब्दो मे, इस प्रश्न पर कोई बातचीत न होगी। यह सूचना मिलने पर डेपुटेशन ने स्वय उपस्थित होने की आवश्यकता न समझी और वाइसराय को सूचित भी कर दिया। वाइसराय ने पहली अप्रैल को आवेदनपत्र का उत्तर दिया।

नेताओ के आवेदनपत्र का उत्तर देते हुए वाइसराय ने कहा —

" मै पहले ही बता चुका हू कि गाधीजी या काग्रेस की तरफ से मस्तिष्क या हृदय के परिवर्तन का कोई सबूत अभी या पहले नही मिला है। अपनी नीति त्यागने का अवसर उन्हे पहले भी था और अब भी है। आपके अच्छे इरादो तथा समस्या के सफल निवटारे के लिए आप की चिन्ता की कद्र करते हुए भी गाधीजी तथा काग्रेसी नेताओं से मिलने की विशेष सुविधा मै आपको तब तक नही दे सकता जब तक परिस्थिति वैसी ही बनी हुई है जैसी ऊपर बतायी जा चुकी है।"

इस प्रकार अखिल भारतीय निर्दलीय नेताओ-द्वारा गाधीजी से सम्बन्ध स्थापित करने के सभी प्रयत्न बेकार सिद्ध हुए।

राजाजी और पाकिस्तान

यह कोई नही कह सकता कि श्री राजगोपालाचार्य ने श्री जिन्ना से दो बार बाते करने के बाद जब समझौता होने की आशा दिलाई उस समय उनके पास क्या गुप्त योजना थी। नेता-सम्मेलन के समय समझौते की जो आशा उठी थी,

उस पर वाइसराय ने बाहरी नेताओं को गांधीजी से मिलने की अनुमति न देकर पहले ही तुषारपात कर दिया था। किन्तु राजाजी का उत्साह इतने पर भी कम न हुआ और उन्होंने १० मार्च को सर्वदल नेता-सम्मेलन का आयोजन किया। पर इस बार भी नेताओं को गांधीजी से मुलाकात करने की अनुमति नहीं प्राप्त हुई। इसमें कोई शक नहीं कि यह सब किसी भ्रम के कारण हो रहा था। राजाजी शायद यही खयाल करते थे कि समस्या का हल पाकिस्तान की गुत्थी को सहानुभूति-पूर्वक सुलझाने से हो सकता है। पाकिस्तान के विचार को मि० जिन्ना ने कोई शक्ल नहीं दी थी, पर राजाजी कुछ अधिक स्पष्टता से सोचने लगे थे। पाकिस्तान का आधार 'दो राष्ट्रवाला सिद्धांत' था, जिसे राजाजी ने मंजूर कर लिया था। राजाजी का खयाल था कि पाकिस्तान को जैसे ही माना गया वैसे ही बाकी परिणाम अपने आप निकल आएंगे। १२ अप्रैल को बंगलौर में मुहम्मद साहब के जन्म-दिवस पर राजाजी ने पाकिस्तान के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये। उन्होंने कहा कि राजनीतिक अडंगे को दूर करने का तरीका पाकिस्तान को मान लेना है और यह भी कहा कि पाकिस्तान हिन्दुओं के सामने उनकी इतनी डरावनी शक्ल में रखा गया है कि वे उससे अनावश्यक रूप से भयभीत हो गये हैं। उन्होंने यह भी कहा —

"मैं पाकिस्तान का इसलिए समर्थक हूं कि मैं ऐसे राज्य की स्थापना नहीं चाहता जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही का सम्मान न किया जाता हो। मुसलमानों को पाकिस्तान ले लेने दो। यदि हिन्दू-मुसलमानों में समझौता हो जाता है तो देश की रक्षा हो जायगी। यदि अंग्रेजों ने और कोई कठिनाई उठाई तो हम उस पर भी विजय कर लेंगे। मैं पाकिस्तान का समर्थक हूँ, किन्तु मेरे खयाल में कांग्रेस पाकिस्तान को नहीं मानेगी। कांग्रेस के बाग में फूल लगे हुए हैं, किन्तु बाग के फाटक बंद हैं और मुझे निकट जाकर उन्हें चुनने नहीं दिया जाता।"

जिन्ना साहब का मत

अखिल भारतीय मुस्लिम लीग का ३४ वां अधिवेशन दिल्ली में १९४३ के ईस्टर-सप्ताह में हुआ था और श्री जिन्ना उसके अध्यक्ष थे। श्री जिन्ना ने अपने भाषण में गांधीजी से अपने को पत्र लिखने का अनुरोध किया था। उन्होंने अपने भाषण में कहा था —

"ब्रिटिश सरकार सभी की उपेक्षा करने की जो नीति बर्त रही है उससे लड़ाई में कामयाबी हासिल नहीं की जा सकती। यह बात जितनी ही जल्द महसूस कर ली जाय उतनी ही जल्द इससे सभी का लाभ होगा। यदि लड़ाई में हमारी हार होती है तो वह इस देश में सरकार की गलत नीति के कारण होगी। भारत

की खाद्य-स्थिति, आर्थिक अवस्था तथा मुद्रा-प्रबध बडी सकटपूर्ण स्थिति मे पहुच चुके है और इस विपय मे सरकार की हाथ-पर-हाथ रख कर बैठ रहने की नीति से उस युद्ध-प्रयत्न को हानि पहुच सकती है, जो लडाई मे जीत हासिल करने के लिए अत्यावश्यक है।"

भापण का पूरा विवरण दिल्ली के एक अग्रेजी दैनिक "डॉन" ने, जिससे स्वय मि० जिन्ना का सम्बन्ध था, प्रकाशित किया था। जहा तक गाधीजी से किये गये अनुरोध का सम्बन्ध है, पूरे विवरण मे भी वह उसी तरह दिया हुआ है, जिस तरह वह सक्षिप्त विवरणो मे दिया हुआ है। मि० जिन्ना ने कहा था —

"इसलिए काग्रेस की स्थिति वैसी ही है, जैसी पहले थी। सिर्फ यह दूसरे शब्दो और दूसरी भाषा मे बताई गई है, किन्तु इसका मतलब है अखड हिन्दुस्तान के आधार पर हिन्दू-राज और इस स्थिति को हम कभी स्वीकार न करेगे। यदि गाधीजी पाकिस्तान के आधार पर मुसलिम लीग से समझौता करने को तैयार हो जायँ तो मुझसे अधिक और किसी को खुशी न होगी। मै आपसे कहता हू कि हिन्दू और मुसलमान दोनो ही के लिए वह वडा शुभ दिन होगा। यदि गाधीजी इसका फैसला कर चुके है तो उन्हे मुझे सीधा लिखने मे दिक्कत ही क्या है? (हर्षध्वनि) वह वाइसराय को पत्र लिख रहे है। वह मुझे सीधा क्यो नही लिखते? वाइसराय के पास जाने, डेपुटेशन भेजने और उनसे पत्र-व्यवहार करने से लाभ ही क्या है? आज गाधीजी को रोकनेवाला कौन है? मै एक क्षण भी विश्वास नही कर सकता—इस देश मे यह सरकार चाहे जितनी शक्तिशाली क्यो न हो और हम उसके विरुद्ध चाहे कुछ क्यो न कहे, मै नही मान सकता कि यदि मेरे नाम ऐसा पत्र भेजा जाय तो सरकार उसे रोकने का साहस करेगी। (जोरो की हर्ष-ध्वनि)

"यदि सरकार ने ऐसा कार्य किया तो यह सचमुच बहुत ही गम्भीर वात होगी। परन्तु गाधीजी, काग्रेस या हिन्दू नेताओ की नीति मे परिवर्तन होने का कोई लक्षण मुझे नही दिखाई देता।"

गांधीजी के पत्र पर रोक

पाठको को स्मरण होगा कि जव मि० जिन्ना से गाधीजी के अनशन के दिनो मे नेता-सम्मेलन मे भाग लेने का अनुरोध किया गया था तव उन्होने यह कहकर सम्मेलन मे भाग लेने से इकार कर दिया था कि गाधीजी ने यह खतरनाक अनशन काग्रेस की माग पूरी कराने के लिए किया है और यदि दवाव मे आकर इस माग को स्वीकार कर लिया गया तो इसके परिणामस्वरूप मुसलमानो की माग नष्ट हो जायगी और इस प्रकार सम्मेलन मे भाग लेने से भारतीय मुसलमानो के हितो की हानि होगी। गाधीजी ने मि० जिन्ना के भापण का विवरण समाचारपत्रो

मे पढने ही उन्हे पत्र लिखने की अनुमति के लिए भारत-सरकार को लिखा। पत्र को बाकायदा पूना से बम्बई-सरकार के पास और उनके पास से भारत-सरकार तक पहुचने मे तीन सप्ताह का समय लग गया होगा। मई के अन्तिम दिनो मे अखबारो मे भारत-सरकार की एक विज्ञप्ति प्रकाशित हुई। इससे जनता मे बडी सनसनी फैल गयी। विज्ञप्ति मे यह नही बताया गया कि गाधीजी-द्वारा मि० जिन्ना को लिखे गये पत्र मे क्या था। उसमे सिर्फ यही कहा गया था कि गाधीजी मि० जिन्ना से मिल कर बडे प्रसन्न होगे। भारत-सरकार ने बडा निराला और पेचीदा रास्ता अख्तियार किया। उसे या तो गाधीजी का पत्र मि० जिन्ना के पास भेज देना चाहिए था या उसे रोक लेना चाहिए था। परन्तु सरकार ने इसमें से कुछ भी नही किया। सरकार ने यही कहा कि गाधीजी ने इस आशय का अनुरोध किया है, किन्तु दूसरी विज्ञप्ति मे बताये गये कारणो से सरकार उस पत्र को मि० जिन्ना के पास भेजने मे असमर्थ है। सरकार ने विज्ञप्ति की एक प्रतिलिपि मि० जिन्ना के पास भेज दी।

भारत में प्रतिक्रिया

गाधीजी के लिखे पत्र को मि० जिन्ना के पास भेजने से इन्कार करने से लन्दन के सरकारी हल्को मे जो प्रतिक्रिया हुई उस पर 'रायटर' के राजनीतिक सवाददाता ने प्रकाश डाला था। उसने लिखा कि "भारत मे हुए इस निश्चय का ब्रिटिश-सरकार पूरी तरह समर्थन करेगी। सरकारी तौर पर यह कहा गया कि भारत की हिफाजत और युद्ध को सफलतापूर्वक चलाये जाने का महत्व सबसे अधिक होने के कारण गाधीजी या किसी दूसरे नजरबन्द काग्रेसी नेता को युद्धकाल के दरमियान राजनीतिक बातचीत मे भाग लेने की सुविधा तब तक नही दी जा सकती जब तक वे युद्ध-प्रयत्न के प्रति असहयोग करने और उसके खिलाफ आन्दोलन करने की नीति का त्याग नही करते, या विज्ञप्ति के शब्दो मे, जब तक उनके देश के सार्वजनिक जीवन मे भाग लेने से हानि का खतरा बना हुआ है।" 'मांचेस्टर गार्जियन' ने लिखा—"भारत-सरकार का यह निश्चय अपनी पहले की नीति के अनुसार हो सकता है, लेकिन शासन-कार्य मे अपरिवर्तनशीलता ही एकमात्र गुण नही होता और न्याय का तकाजा तो यह कहता है कि भारत-सरकार कितनी ही बार अपने वचन से टल गयी है। सरकार दूसरे नेताओ को गाधीजी से मिलने की इजाजत क्यो नही देती, जिससे देखा जा सके कि क्या परिणाम निकलता है।"

गाधीजी का पत्र भेजने से भारत-सरकार के इन्कार करने पर अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के अध्यक्ष मि० एम० ए० जिन्ना ने 'टाइम्स आफ इण्डिया' पत्र को एक वक्तव्य देते हुए कहा—"गाधीजी का यह पत्र मुसलिम लीग को ब्रिटिश

सरकार से भिडा देने की एक चाल है, ताकि उनकी रिहाई हो सके और उसके बाद वह जैसा चाहे कर सके।" उन्होने यह भी कहा कि "मैने अखिल भारतीय मुसलिम लीग के दिल्लीवाले अधिवेशन मे जो सुझाव रखे थे उन्हे मजूर करने या अपनी नीति मे परिवर्तन करने की कोई इच्छा गाधीजी की नही जान पडती।" आगे उन्होने यह भी कहा कि "उस भाषण मे मैने कहा था कि अगर गाधीजी मुझे पत्र लिखने, ८ अगस्त को काग्रेस के प्रस्ताव मे बताये कार्यक्रम को समाप्त करने और इस प्रकार कदम पीछे हटाकर अपनी नीति मे परिवर्तन करने और पाकिस्तान के आधार पर समझौता करने को तैयार हो तो हम पिछली बातो को भूलने को तैयार है। मेरा अब भी विश्वास है गाधीजी के ऐसे पत्र को रोकने की हिम्मत सरकार नही कर सकती।

"गाधीजी या किसी भी दूसरे हिन्दू नेता से मिलने के लिए मै खुशी से तैयार रहा हूँ और आगे भी रहूँगा, लेकिन सिर्फ मिलने की इच्छा प्रकट करने के लिए ही पत्र लिखने से मेरा मतलब न था और अब सरकार ने गाधीजी के एक ऐसे ही पत्र को रोक लिया है। मुझे भारत-सरकार के गृह-विभाग के सेक्रेटरी से २४ मई को सूचना मिली है, जिसमे लिखा है कि गाधीजी ने अपने पत्र मे सिर्फ मुझसे मिलने की इच्छा प्रकट की है और सरकार ने यह पत्र मेरे पास न भेजने का निश्चय किया है।"

दिल्ली के 'डॉन' मे प्रकाशित मि० जिन्ना के भाषण के विवरण तथा खुद जिन्ना साहब द्वारा दिए गए सक्षेप मे एक बडा भारी फर्क है। पहले विवरण मे मि० जिन्ना की माग सिर्फ यही थी कि गाधीजी पाकिस्तान के आधार पर उन्हे लिखे। इसका मतलब यही हो सकता था कि गाधीजी को पाकिस्तान के सिद्धान्त तथा नीति के सम्बन्ध मे बातचीत करने को रजामन्द होना चाहिए। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि जबतक मि० जिन्ना ने लफ्ज पाकिस्तान को दोहराने के सिवा उसके अर्थ या विस्तार के विषय मे कुछ भी नही कहा था। इसके अलावा, उन्होने बम्बई-प्रस्ताव वापस लेने और हृदय-परिवर्तन का सबूत देने की बात कहाँ कही थी? शक्तिशाली ब्रिटिश सरकार गाधीजी से हृदय-परिवर्तन को कहती थी और उससे भी अधिक शक्तिशाली मि० जिन्ना उसे दोहराते थे। प्रति-हिसाशील ब्रिटिश सरकार आश्वासन और गारण्टियाँ माँगती है और अधिक प्रतिहिसाशील मि० जिन्ना कहते थे कि गाधीजी को कदम पीछे हटाने और बम्बई-वाले प्रस्ताव के कार्यक्रम तथा नीति मे परिवर्तन करने के लिए तैयार रहना चाहिये। क्या उन्होने मूल भाषण मे यह सुझाव पेश किया था? सच तो यह है कि मि० जिन्ना अपने वक्तव्य मे कुछ जरूरत से ज्यादा बढ गये थे। गाधीजी के पत्र को सरकार ने जिस हिकारत की नजर से देखा था उसकी अग्रेजी और उर्दू के पत्रो मे एक समान निन्दा की गयी थी। परन्तु मि० जिन्ना के तर्को का सब से सम्मान-

पूर्ण और जोरदार उत्तर भारत-सरकार के अवकाशप्राप्त आई० सी० एस० सदस्य सर जगदीश प्रसाद ने दिया। उन्होंने कहा —

"भारत-सरकार-द्वारा महात्मा गांधी को मि० जिन्ना के लिए पत्र लिखने की अनुमति न देने पर मि० जिन्ना ने जो वक्तव्य दिया है वह इस अस्वीकृति से भी अधिक विचारणीय है। कभी-कभी मि० जिन्ना का अनर्गल प्रलाप उन्हें परेशान करनेवाली हालत मे डाल देता है। अभी हाल मे अपने दिल्लीवाले भाषण में उन्होंने यह असर पैदा करने की कोशिश की थी कि जब वे इतने ताकतवर हो गये हैं कि खुद ब्रिटिश-सरकार भी उन्हे नाराज करने की हिम्मत नहीं कर सकती। कायदे-आजम ने महात्मा गांधी को सीधा उन्ही को लिखने की दावत दी थी और कुछ शान के साथ फरमाया था कि सरकार मे इस चिट्ठी को रोकने की जुर्रत नही है। चिट्ठी लिखी गयी और उसे रोक लिया गया। अब मि० जिन्ना एक चतुर खिलाडी की तरह इस अप्रिय परिस्थिति से बचने के लिए उस पत्र के लेखक की ही निन्दा कर रहे है। वह जानते है कि वह बिना किसी दिक्कत के ऐसा कर सकते है, क्योंकि गांधीजी को जवाब देने का अवसर नही मिलेगा।"

४ जून को कराची मे मि० जिन्ना ने पत्रकारो के बीच कहा कि हिन्दू-पत्रो ने उन्हे गलत समझा है, उनके भाषण से गलत उद्धरण दिये है और जान-बूझकर भ्रम फैलाने का प्रयत्न किया है। परन्तु वे ब्रेलवी, शौकत अन्सारी, हैदराबाद के डा० लतीफ और इनायतुल्ला खां मशरिकी-जैसे आलोचकों से अपनी रक्षा न कर सके। अल्लामा मशरिकी ने तो यहाँ तक कहा कि अगर कांग्रेस पाकिस्तान मानने को तैयार है तो फिर उस समझौते की कोई जरूरत नही है, जिसकी मांग मि० जिन्ना ने की है। मशरिकी ने यह भी कहा कि मि० जिन्ना को अपने मूल प्रस्ताव पर ही जमना चाहिए, जिसमे पाकिस्तान की बात तो कही गयी थी, पर बम्बईवाले प्रस्ताव को वापस लेने को नही कहा गया था। उर्दू-पत्रो ने एक स्वर से गांधीजी के पत्र के सम्बन्ध मे सरकार के रुख की निन्दा की और फिर मि० जिन्ना के भी वक्तव्य की छीछालेदर की।

इंग्लैण्ड में प्रतिक्रिया

१९४३ की गर्मियो से इग्लैंड मे विभिन्न राजनीतिक दलो के सालाना जलसे हुए। भारत मे हुई हलचलो तथा ट्यूनीशिया की विजय मे चौथे भारतीय डिवीजन के हिस्से की वजह से भारत का सवाल महत्वपूर्ण बन गया और उस पर इन जलसो मे विचार हुआ।

भारत के प्रति जो व्यवहार हुआ उसके लिए मजदूर-दल को नहीं—मजदूरो को दुख हुआ। १४ से अधिक श्रमजीवी सस्थाओ ने विटसन टाइड सम्मेलन (१३ जून) मे प्रस्ताव पेश करने के लिए सूचनाए भेजी। एक भी प्रस्ताव मे दल के

नेताओ की, जो मन्त्रिमडल के सदस्य थे, प्रशसा नही की गयी, बल्कि हिन्दुस्तान का सवाल हल न करने के लिए उनकी निंदा की गई। उन सभी ने एक स्वर से भारत मे फिर से बातचीत शुरू करने का अनुरोध किया और सबसे अधिक इस आवश्यकता पर जोर दिया कि काग्रेसजनो को छोड दिया जाय।

जुलाई, १९४३ मे इग्लैड की कितनी ही सस्थाओ ने, जिनमे इडिया लीग, ब्रिटिश कम्यूनिस्ट पार्टी और इजीनियरो की सम्मिलित यूनियन भी थी, जोरदार शब्दो मे भारतीय नेताओ से बातचीत शुरू करने की माग की और कहा कि उनमे से जो अभी जेलो मे हो उन्हे रिहा कर दिया जाय। मेसर्स लिडसे ड्रमड ने महात्मा गाधी के उन लेखो, भाषणो तथा वक्तव्यो के चुने हुए अश एक पुस्तिका के रूप मे प्रकाशित किये, जो उन्होने अगस्त १९४२ मे अपनी गिरफ्तारी से पहिले दिये थे। पुस्तिका मे प्रकाशक ने साथ मे कोई टिप्पणी या भूमिका तक नही दी थी और उसका उद्देश्य सिर्फ जनता का ज्ञान-वर्द्धन था।

सर रिचार्ड आकलैड के नेतृत्व मे जो नई कामनवेल्थ पार्टी सगठित हुई वह भी भारत के सवाल मे दिलचस्पी रखनेवाली सस्थाओ के साथ मिल गई। जुलाई के पहिले सप्ताह मे प्रधानमत्री चर्चिल ने गिल्ड हाल मे एक भाषण दिया। यह भारत के सम्बन्ध मे उनका पहला भाषण था, जिसमे उन्होने प्रतिक्रियावादी रुख नही प्रकट किया था। बाद मे ब्रिटिश कौंसिल आफ चर्चेज ने भी भारत को सहायता का वचन दिया। प्रोफेसर जोड, प्रोफेसर हेरल्ड लास्की, मि० क्लीमेंट डेवीज, आर्क डीकन आफ वेस्टमिनिस्टर, सर रिचार्ड ग्रेगरी, सर अर्नेस्ट बेनेस्ट, प्रोफेसर नारमन बेनविच तथा बरमिघम और ब्रेडफोर्ड के बिशप एव दूसरे कितने ही प्रमुख व्यक्तियो के हस्ताक्षरो से ६ अगस्त को एक अपील निकाली गयी कि नेताओ की गिरफ्तारी की पहली साल-गिरह के अवसर पर भारत-सम्बधी नीति मे संशोधन किया जाय। सर आलफ्रेड वाटसन-जैसे कट्टरपथी ने भी भारत के साथ समानता का व्यवहार किये जाने का अनुरोध किया और कहा कि अब अग्रेजो को चाहिए कि वे अपने को भारत मे "मेहमान" माने और बड़प्पन की भावना त्याग दे।

मंत्रिमंडलों की स्थिति

काग्रेसी नेताओ के जेलो मे बन्द होने के बाद देश मे मन्त्रिमडलो की क्या स्थिति थी, इस पर भी हमे लगे हाथो विचार कर लेना चाहिए। जिन सूबो मे लीग की हुकूमत थी उनमे **बंगाल** की अहमियत सबसे ज्यादा थी। दिसम्बर, १९४१ मे फजलुल हक ने प्रधानमत्री के पद से इस्तीफा दे दिया था और गवर्नर ने उनसे अपनी वजारत नये सिरे से कायम करने को कहा था। नयी वजारत बनाते समय फजलुल हक ने कुछ लीगी वजीरो से अपना पीछा छुडाया था। लीग वाले इसे आसानी से नही सह सके। उन्होने डेढ साल तक इन्तजार किया और

इस अरसे मे बहुत-कुछ हो गया। लडाई बगाल की पूर्वी सरहद तक आ गई। फेनी और चटगाव जापानी बटमारो के निशाने बन गये। अन्न के मसले की वजह से मुल्क के दूर-से-दूर के हिस्से भी लडाई की दिक्कत महसूस करने लगे। अन्न की बेहद कमी के अलावा वजीरो के काम मे गवर्नर की रोजमर्रा की दस्तन्दाजी ने भी उनके धीरज का खात्मा कर दिया। मिदनापुर के अत्याचारो तथा ढाका के गोलीकाण्ड के लिये सार्वजनिक जाच की माग की गई, जिसे प्रधानमत्री ने तो मजूर कर लिया, पर गवर्नर ने मजूरी नही दी। इसी बीच मिया फजलुल हक की स्थिति पुन सन्दिग्ध हो गयी। कुछ तो भीतरी हमलो की वजह से और कुछ शासन-सम्बन्धी ऐसे कार्यो के कारण, जो उन्हे करने ही चाहिए थे, दिसम्बर, १९४२ का सकट उत्पन्न हुआ। लीग पार्टी उनके शासन-प्रबन्ध पर जोरदार हमले करने लगी। फिर भी फजलुल हक अपनी जगह पर कायम रहे। फरवरी १९४३ में मिया हक को दोतरफे हमलो का सामना करना पडा। गवर्नर उनके अधिकारो मे जो हस्तक्षेप करते जा रहे थे वह उनके लिए असहनीय होता जा रहा था और दूसरी तरफ वह असेम्बली मे इस पर रोशनी भी नही डाल सकते थे। आखिरकार विवश होकर ३० मार्च, १९४३ को उन्होने इस्तीफा दे दिया और इसके २९ दिन बाद २८ अप्रैल, १९४३ को सर नजामुद्दीन की सरकार कायम हुई। प्रान्तीय असम्बली की बैठक जुलाई के पहले सप्ताह मे हुई। उसमे जिन दो महत्व-पूर्ण घटनाओ ने सनसनी पैदा कर दी थी उनमे बजट की समस्या पहली थी। दूसरी घटना मि० फजलुल हक द्वारा गवर्नर की उस स्वेच्छाचारितापूर्ण कार्रवाई का रहस्योद्‌घाटन थी। इससे प्रकट हो गया कि किस तरह उन्होने कानून और विधान को उठा कर ताक पर रख दिया था और सेक्रेटरियेट की सहायता से निरकुश शासक की तरह कार्य किया था। सब से बुरी बात तो यह थी कि मत्रियो के अधीन कर्मचारी गवर्नर के कहने पर मत्रियो की मर्जी के खिलाफ आदेश निकालते थे। नये प्रधानमत्री को भी १९४४ के फरवरी तथा मार्च महीनो मे वैसे ही सकट से गुजरना पडा। इसी बीच सर जान हर्बर्ट की मृत्यु हो गयी और मि० केसी गवर्नर नियुक्त हुए। उन्होने चुपचाप असेम्बली को स्थगित कर दिया।

युद्ध छिडने के समय से सिंध की राजनीति बडी ढुलमुल थी। इस प्रान्त मे दूसरे किसी प्रान्त के मुकाबले मे मत्रि-मडल जल्दी-जल्दी बदले गये। पहले बदे-अली खा का, फिर हिदायतुल्ला का, फिर अल्लाहबख्श का, फिर हिदायतुल्ला का दूसरा और फिर तीसरा—इस तरह कितने ही मत्रि-मडल कायम हुए और भग हुए। सिंध की इस पेचीदी राजनीति का एक परिणाम यह भी हुआ कि सीमाप्रान्त मे खान अब्दुल गफ्फार खा की रिहाई के बाद सिंध के छ प्रमुख कांग्रेसी जेलो से छोड दिये गये।

मुस्लिम लीग ने अगली वजारत सीमाप्रान्त मे बनायी थी। प्रान्तीय असेम्बली

में उसका बहुमत होने या न होने का सवाल नही था, किन्तु प्रान्तीय लीग ने अचानक ही यह कार्य कर डाला और सरदार औरगजेब को अपना प्रधान मन्त्री बना दिया। औरगजेब की वजारत कायम होने पर प्रान्तीय असेम्बली के जो कई उप-चुनाव हुए थे उनमे से एक असेम्बली के एक सिख-सदस्य की मृत्यु से खाली हुई सीट के लिए हुआ था। कुछ अज्ञात कारणो से यह उप-चुनाव हिन्दू तथा मुस्लिम सीटो के उप-चुनावो के साथ नही हुआ। गोकि सार्वजनिक रूप से इसका कोई कारण नही बताया गया, फिर भी उस पर प्रकाश पड ही गया। चुनाव २५ फरवरी, १९४४ को हुआ जिसमे काग्रेसी उम्मीदवार ने अपने विरोधी सरदार अजीतसिह के उम्मीदवार को ८१ वोट से हरा दिया। इस घटना के एक वर्ष बाद १२ मार्च १९४५ को सीमाप्रान्तीय असेम्बली मे औरगजेब खा की वजारत के खिलाफ अविश्वास का प्रस्ताव १८ के विरुद्ध २४ वोटो से पास हो गया। मार्च के महीने में भारत मे काग्रेस की नीति मे पहली बार परिवर्तन दिखाई दिया। औरगजेब खा की वजारत की हार का वही परिणाम हुआ, जो वैधानिक दृष्टि से होना चाहिए था। गवर्नर को प्रान्त के भूतपूर्व प्रधान मत्री डा० खान साहब को बुलाना पडा, जिनके अविश्वास के प्रस्ताव के कारण औरगजेब खा के मत्रिमडल का पतन हुआ था डा० खानसाहब इस परिस्थिति के लिए पहले से ही तैयार थे। उन्होने १६ मार्च को पद ग्रहण करने के बाद बताया कि उन्होने प्रान्त की जनता की इच्छा के ही अनुसार कार्य किया है।

सीमाप्रात मे काग्रेस के शक्ति-ग्रहण करते ही जनता मे प्रतिक्रिया आरम्भ हो गयी। जनता के मस्तिष्क मे प्रश्न उठा कि सीमाप्रान्त के 'अच्छे' उदाहरण का अनुसरण अन्य प्रातो को करना चाहिए या नही, और इस सवाल को गोपीनाथ वारदोलोई तथा रोहिणी दत्त-द्वारा आसाम के प्रधान मत्री सर मुहम्मद सादुल्ला को दी गयी चुनौती के कारण और भी बल प्राप्त हुआ। इस प्रकार १५-६-४५ को काग्रेस कार्य-समिति की रिहाई से पूर्व ही परिस्थिति ठीक होने लगी

पंजाब मे सर सिकन्दरहयात खा की अचानक मृत्यु हो जाने के कारण जो स्थान खाली हुआ उसकी पूर्ति कर्नल खिज्रहयात खा ने की। इससे लीग और यूनियनिस्ट पार्टी की शक्तियो मे सघर्ष आरम्भ हो गया। इसी समय पजाब में मि० जिन्ना ने एक विजेता के रूप मे प्रवेश किया। वह देखना चाहते थे कि पजाब की वजारत दरअसल एक लीगी वजारत है या नही। कर्नल खिज्रहयात खा को वजारत के रगढग मे तब्दीली करने के लिए तीन महीने का वक्त दिया गया। लेकिन सर छोटूराम पजाब-वजारत को लीगी वजारत का नाम देने के खिलाफ थे और उन्होने धमकी दी कि अगर ऐसी कोशिश की गयी तो वह वजारत का साथ देना छोड़ देगे। कर्नल खिज्र के एक तरफ कुआँ था तो दूसरी तरफ थी खाई।

गोकि खिज्रहयात खा ने मुसलिम लीग के मच पर आकर पाकिस्तान का

समर्थन पहली वार किया, फिर भी मन्त्रिमडल का पुनर्निर्माण करने या कम-से-कम उसे लीग के पथ पर लाने का मि० जिन्ना का प्रयत्न असफल हो गया। जिन्ना साहव की न्यूनतम माग यही थी कि मन्त्रिमडल का नाम यूनियनिस्ट से लीगी कर दिया जाय, किन्तु पजाव का मुस्लिम-लोकमत यूनियनिस्ट पार्टी भग करने या सर छोटूराम वगैरह से ताल्लुक तोडने के खिलाफ था। ऐसी स्थिति में कायदे-आजम ने पजाव की वजारत तथा असेम्वली को अल्टीमेटम दिया कि २० अप्रैल को लाहौर वापिस आने तक उन्हे इस सवाल का आखिरी फैसला कर लेना चाहिए। किन्तु दुर्गपति कर्नल खिज्रहयात खा तिवाना ने, जो अनावश्यक वातो की अपेक्षा कार्य मे अधिक विश्वास रखते थे, दुश्मन को गहरी शिकस्त दी और लाहौर के किले को अछूता रखा।

पहले **उड़ीसा** मे काग्रेस का वहुमत था। काग्रेस के कुछ सदस्य जेल मे रहने के समय पार्लेकामेडी के महाराज के नेतृत्व मे अल्पसख्यक दल ने एक मन्त्रिमडल कायम किया। यह मन्त्रिमडल थोडे ही समय तक चला।

अव हम **आसाम** को लेते है। आसाम उन प्रान्तो मे नही है, जिनमे १९३७ मे काग्रेस का वहुमत था। परन्तु सर सादुल्ला के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास होने पर जव उनके मन्त्रिमडल का पतन हो गया तव वार्दोलोई मन्त्रिमडल उसकी जगह कायम हुआ, जिसमे प्रधानमन्त्री वार्दोलोई तथा एक अन्य मत्री ही काग्रेसजन थे। कुछ अन्य मत्री काग्रेस मे सम्मिलित हो गये थे। जव वार्दोलोई ने अन्य काग्रेसी मन्त्रिमण्डलो के साथ १९३९ मे इस्तीफा दिया तव सादुल्ला-मन्त्रिमण्डल फिर कायम हुआ और उसने अपनी शक्ति वढा ली। १२ मार्च, १९४५ को आसाम-मन्त्रिमण्डल प्रान्तीय असेम्वली मे हार गया और उसे इस्तीफा देना पडा। फिर सरकारी पक्ष ने मिली-जुली वजारत वनाने के लिए काग्रेसी दल की शर्ते स्वीकार कर ली। निश्चय हुआ कि नयी वजारत को सभी दलो का समर्थन तथा विश्वास प्राप्त हो। सरकारी दल ने सर सादुल्ला को विरोधी दल से अन्य विषय तय करने का भी अधिकार दे दिया। जिन शर्तो को स्वीकार किया गया उनमे राजनीतिक कैदियो की रिहाई, सार्वजनिक सभाओ तथा जुलूसो से रोक हटाया जाना तथा सरकार की नाज वसूल करने तथा उसे उपलब्ध करने की नीति मे परिवर्तन मुख्य थी। भूतपूर्व प्रधानमत्री श्री गोपीनाथ वार्दोलोई ने सर मुहम्मद सादुल्ला से तय कर लिया था कि यदि उपर्युक्त शर्ते मान ली जायें तो काग्रेस पद-ग्रहण न करके भी मौजूदा वजारत का नैतिक समर्थन करने को तैयार हो जायगी। वाद मे यह समझौता भग हो गया और शिमला-सम्मेलन के समय आशा की जाने लगी कि आसाम मे मिली-जुली काग्रेसी वजारत कायम हो सकेगी।

१९४३ और १९४४ मे स्पष्ट हो गया कि राजनैतिक अडगा दूर करने के जिन प्रयत्नो को सरकार से प्रोत्साहन मिल रहा था उनका मुख्य उद्देश्य प्रान्तो

मे वजारते कायम करना था। इरादा यह था कि सूबो मे वजारते कायम होने के बाद कहा जायगा कि राजनीतिक अडगा समाप्त हो गया। **मध्यप्रान्त** मे वार्ता लीगी तथा गैर-लीगी मुसलमानो के एक ही वजारत मे शामिल करने मे कठिनाई होने के कारण भग हो गयी। इसके अलावा लीग किसी ऐसी वजारत मे भी शामिल नही होना चाहती थी, जिसमे काग्रेस और हिन्दू-महासभा का सहयोग प्राप्त न हो। **मध्यप्रान्त, बिहार, उत्तर प्रदेश** और **मद्रास** मे मन्त्रिमडल कायम करने का कोई बाकायदा प्रयत्न नही किया गया। वजारत बनाने मे बिहार को कोई अधिक सफलता नही हुई।

प्रान्तीय असेम्बलियो के काग्रेसी सदस्यो तथा काग्रेसी नेताओ के जेल मे बद होने के कारण अन्य राजनीतिक दलो को मन्त्रिमडलो के निर्माण के लिए खुला मैदान मिल गया। इसी कारण हिन्दू महासभा और मुसलिम लीग मे एक विरोधी सहयोग भी स्थापित हो गया। १९३७ के आम चुनाव मे ७३,१९,४४५ मुस्लिम वोटो मे लीग को केवल ३,२१,७७२ वोट यानी कुल डाले गये मुस्लिम वोटो में से उसे सिर्फ ४ ४ प्रतिशत वोट ही मिले थे। ९२ प्रतिशत मुस्लिम आबादीवाले सीमाप्रान्त मे लीग को कुल मुस्लिम वोटो मे से सिर्फ ५ प्रतिशत ही प्राप्त हुए थे। फिर भी सरकार की कृपा से सीना के प्रान्तो मे लीगी प्रधान मन्त्रियो या लीगी विचार-वाले प्रधान मन्त्रियो के नेतृत्व मे मन्त्रिगडल बनने के लिए खिचडी पकने लगी। यह दृश्य हिन्दू-महासभा के लिए असहनीय था। इसलिए चुनाव मे लीग से अधिक असफल होने के बावजूद हिन्दू महासभा के नेता हिन्दू-बहुमतवाले प्रान्तो मे मीठे सपने देखने लगे।

'सर्वेन्ट्स आफ इडिया सोसाइटी'-जैसी नर्म तथा सयत विचारवाली सस्था ने जून, १९४४ के दूसरे सप्ताह मे होनेवाली अपनी वार्षिक बैठक मे राजनीतिक परिस्थिति, तत्कालीन गति-अवरोध, नयी वजारते कायम करने और समाचार-पत्रो मे इस सम्बन्ध मे होनेवाले आन्दोलन पर विचार किया। सोसाइटी ने अपने प्रस्ताव मे धारा ९३ के अनुसार शासित कुछ प्रान्तो मे बहुमत प्राप्त किये बिना ऐसे मन्त्रिमडल कायम करने के प्रयत्नो की निदा की, जो गवर्नरो की सहायता से और काग्रेसजनो की अनुपस्थिति मे ही कायम रह सकते थे। ऐसी वजारतो मे मत्री गैर-सरकारी सलाहकार से अधिक और कुछ न होते, क्योकि वे अपने पदो पर बहुमत की जगह सरकारी समर्थन के बल पर कायम रहते। इन मन्त्रिमडलो की स्थापना से अतर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे भ्रम फैलता और ऐसा लगता जैसे प्रान्त मे लोकतन्त्रवादी शासन चल रहा हो।

जबकि तटस्थ दलो का मत इस प्रकार प्रकट हो रहा था, काग्रेसी मत बिहार तथा मध्यप्रात मे ऐसे अनियमित मन्त्रिमडल स्थापित करने के विरुद्ध प्रकट हुआ। अब सभी काग्रेसी सदस्य जेलो मे नही थे। कुछ अपनी मियाद खतम कर चुके थे,

कुछ नजरबंदी से छूट चुके थे, कुछ जेल गये नही थे और कुछ को सरकार ही ने गिरफ्तार नही किया था। बिहार तथा मध्यप्रांत मे जो कांग्रेसी एम० एल० ए० जेलो के बाहर थे उन्हे चेतावनी मिल चुकी थी कि उन्हे व्यक्तिगत रूप से कुछ न करके मिलकर और सलाह करके ही कोई कार्य करना चाहिए। जून के मध्य में बिहार असेम्बली के कांग्रेसी सदस्यो का एक सम्मेलन हुआ और उसमे मंत्रिमंडल बनाने से इन्कार कर दिया गया। इसी प्रकार नागपुर से श्री कालप्पा ने एक वक्तव्य प्रकाशित करके वजारत कायम करने से इन्कार कर दिया।

लार्ड वेवल की नियुक्ति

विदेशी सरकार मुसीबत के वक्त एक दिमागी चाल यह चलती है कि वह जनता का ध्यान नाराजी की वजह से हटा कर किसी ऐसी बात की ओर खींचती है, जिसकी ओर वह सहज ही मे आकर्षित हो जाय। ऐसे वक्त जब कि सब का रोष एक ऐसे वाइसराय के व्यक्तित्व मे केन्द्रित था, जो अपने कार्यकाल का ड्योढा समय पूरा कर चुका हो, अखबारो मे उसके उत्तराधिकारी के चुनाव की चर्चा बार-बार होने लगी। कम-से-कम लोग इस सोच-विचार मे तो पड ही गये कि शायद नया वाइसराय इससे अच्छा हो या वह नयी नीति पर ही अमल करने लगे। उस समय लार्ड लिनलिथगो के उत्तराधिकारी के लिए जितने नाम लिये जा रहे थे उनमे से आर्किबाल्ड वेवल चुने गये।

सर आर्किबाल्ड वेवल अवकाश ग्रहण करनेवाले वाइसराय की अधीनता मे प्रधान सेनापति के रूप मे काम कर चुके थे। पर नागरिक वेवल ने सैनिक वेवल को गलत साबित कर दिया। अब सवाल था कि यह लेखक और चरितकार, यह योद्धा और रणनीति-विशारद, यह बहुभाषा-भाषी, जो स्टालिन से रूसी भाषा मे बात चीत कर चुका है और रूसी भाषा मे ही रूस मे व्याख्यान दे चुका है, और यह फील्ड-मार्शल, जो सिगापुर के पतन से ३६ घटे पहले टूटी पसली लिये जान बचा कर भाग चुका है—भारत को निराशा के उस गड्ढे से निकालने के लिए क्या करेगा, जिसमे उसके अब तक के अभिमानी शासको ने उसे डाल रखा था।

देश की स्थिति

जिस समय लार्ड लिनलिथगो अपने पद से अवकाश लेकर अपने साढे सात वर्ष के कार्य का सिंहावलोकन करते हुए विदाई ले रहे थे उस समय देश के राष्ट्रीय जीवन या उसके अभाव की ये विशेषताए दिखायी दे रही थी। ज्यादातर सूबो मे दफा ९३ का शासन चल रहा था और जिन सूबो मे वजारते काम कर रही थी उनमे भी शासन प्राय गवर्नरो का ही था। केन्द्रीय असेम्बली की बैठक के समय भी आर्डिनेंस निकाले जाते थे। अन्न का प्रबन्ध बहुत बुरा था। इसी

तरह कपडे का भी कुप्रबन्ध रहा। कलकत्ते की स्वास्थ्य तथा सफाई-सम्बन्धी हालत असहनीय थी। पूर्वी बंगाल में सेना ने किसानों की नावें छीन ली थी और वे नदियो के पार जाने में असमर्थ थे। बंगाल मे चावल का मूल्य ३५ रु० मन तक पहुच चुका था, जबकि बेजवाडा मे सिर्फ ८ रु० मन ही था। देश मे सभी तरफ अकाल और बाढ का दौरदौरा था। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि सरकार तथा जनता मे विरोध की भावना लगातार बढती जाती थी। जहा तक वैधानिक समस्या का सम्बन्ध है, गति-अवरोध पहले ही के समान बना हुआ था। नवीनता सिर्फ मि० चर्चिल का एक भाषण था, जिसमे उन्होने अपने हमेशा के रुख को एक क्षण के लिए त्याग कर भारत के बारे मे फरमाया था कि "इस विशाल महाद्वीप को हाल ही मे ब्रिटिश राष्ट्र-मडल मे पूर्ण सन्तोष प्राप्त होगा।" इस घोषणा से कुछ ही पूर्व लार्ड वेवल ने, जो उस समय सिर्फ सर आर्किबाल्ड वेवल थे, कहा था कि भारत की राजनीतिक उन्नति मे युद्ध के कारण बाधा नही पडी है और मुझपर भारत का जो ऋण है, उसे चुका सकने की मुझे पूरी आशा है। इस कथन से लोगो को उम्मीद हो चली थी कि शायद नये वाइसराय सुलह के युग का श्रीगणेश करे।

इस स्थल पर यह बता देना लाभकर होगा कि हमारी राष्ट्रीय माग क्या थी और इस माग तक ऊपर बताये गये प्रस्ताव या निर्दल-नेताओ की योजना नहीं पहुचती थी। हमारी राष्ट्रीय माग तो यह थी कि ब्रिटेन पहले तो भारत की स्वाधीनता की घोषणा करे और फिर भारत तथा इग्लैड के बीच एक सन्धि हो, जिसमे वर्तमान परिस्थिति तथा स्वतन्त्र भारत के बीच के परिवर्तन-काल की सब बातें निश्चित की जायं। इस बीच के काल मे एक अस्थायी सरकार रहे, जो युद्ध-सचालन मे बाधा खडी न करने का वचन दे और युद्ध-सचालन का कार्य पहले की व्यवस्था के अनुसार प्रधान सेनापति की देख-रेख मे और बाद मे हुई व्यवस्था के अनुसार पूर्वी एशिया कमान की देख-रेख मे होता रहे।

गांधीजी की गिरफ्तारी की वर्षगांठ

हुई, और इन सभाओ मे राजनीतिक वंदियो और विशेषकर गांधीजी तथा कांग्रेस-नेताओ की रिहाई की माग की गयी। लंदन मे भी कितनी सभाएँ हुई, जिनमे से एक मे स्वाधीनता के अनन्य प्रेमी सोरेसन ने कहा, कि भारत की परिस्थिति का सामना करने के लिए आध्यात्मिक साहस की जरूरत है। सालगिरह के मौके पर श्रीमती सरोजनी नायडू ने भी समाचारपत्रो मे वक्तव्य दिया ।

प्रशान्त-सम्मेलन और भारत

इस समय छोटे-वडे, अंग्रेज, भारतीय, इंग्लैड, हिन्दुस्तान तथा अमरीका—सभी तरफ से भारत की राजनीतिक परिस्थिति के सम्बन्ध मे विचार प्रकट किए जाने लगे थे। आन्दोलन वापस लेने तथा वाइसराय के सिंहासन तक नतमस्तक होकर पहुँचनेवाले लोगो ने यह कहना शुरू कर दिया था कि गांधीजी ने अपने साथियो की सलाह के खिलाफ खिलाफत का पक्ष लेकर तथा सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन छेडकर वडी भारी भूल की है। परन्तु यह भारत के लिए सौभाग्य की वात थी कि ऐसे विचार रखनेवाले भारतीय महानुभावो की तुलना मे 'स्टेट्समैन' के भूतपूर्व संपादक आर्थर मूर-जैसे महत्वपूर्ण व्यक्तित्व के लोग भी थे जिन्होने अपनी अन्तर्भेदिनी दृष्टि-द्वारा समस्या का विश्लेषण कर उसे हल करने का रास्ता निकाल लिया था। लाहौर के 'ट्रिव्यून' मे एक विशेष लेख लिखकर उन्होने कहा कि भविष्य की तुलना मे वर्तमान का महत्व ही अधिक है। उन्होने कांग्रेस के इस रुख का समर्थन किया कि उसकी तात्कालिक उत्तरदायित्व की मांग पूरी करने से साम्प्रदायिक प्रतियोगिता समाप्त हो जाती है, परन्तु भावी वैधानिक योजना की जो वात वाइसराय ने उठायी है उससे देश मे आपसी झगडे फैलने की सम्भावना है। इन्ही दिनो (अगस्त १९४३) महामाननीय शास्त्रीजी ने प्रशान्त-सम्मेलन मे गांधीजी के उपस्थित होने पर जोर दिया ।

प्रशान्त-सम्मेलन की रिपोर्ट को देखने से पता लगता है कि उसकी सिफारिशो तथा उसके फैसलो का हवाला देकर मन्त्रिमंडल अपनी स्थिति मजबूत करना चाहता था। इसीलिए प्रशान्त-सम्मेलन को गैर-सरकारी संस्था भी वताया जा रहा था, गोकि उसमे सरकारी प्रतिनिधि उपस्थित थे। सर रामस्वामी मुदालियर और सर मुहम्मद जफरुल्ला खा को सरकारी प्रतिनिधि माना गया या नही, यह तो स्पष्ट नही है, किन्तु एक 'भारतीय प्रतिनिधि' द्वारा सम्मेलन की कार्रवाई तथा भारतीय गोलमेज वैठक मे प्रकट किए गए प्रतिक्रियावादी विचार इन्ही दो महानुभावो मे से किसी एक के थे। पूर्ण अधिवेशन मे जो निश्चय हुए वे इसी भारतीय प्रतिनिधि के प्रतिक्रियावादी विचारो के परिणाम थे। सुदूर क्वेवेक जाने के लिए भारतीय प्रतिनिधियो का चुनाव जिस प्रकार किया गया था उसे देखते हुए उनसे यही आशा की जा सकती थी। वाइसराय की शासन-परिषद्

का भारतीयकरण प्रगतिशील कदम तो जरूर जान पडा होगा, लेकिन उसकी असली अहमियत भी किसी की नजर से छिपी न होगी। एक जाच-कमीशन की नियुक्ति और उसका मार्ग-प्रदर्शन करने के लिए सयुक्त-राष्ट्र-सघ की एक सलाह-कार-समिति की सिफारिशे उन लोगो के लिए भले ही पर्याप्त हो, जिन्हे भारत के हाल के इतिहास का कुछ ज्ञान न हो, किन्तु उन लोगों के लिए जो साइमन कमीशन, चारो गोलमेज परिषदो, शिक्षा-सम्बन्धी हर्टजोग-समिति, आर्थिक-व्यवस्था सम्बन्धी ओटो राथफील्ड-समिति, देशी राज्यो-सम्बन्धी बटलर-समिति, लोथियन मताधिकार समिति, सयुक्त पार्लीमेंटरी समिति वगैरह के काम को १९२७ से १९३५ तक देख चुके है, प्रशान्त-सम्मेलन की यह नयी समिति भी निरुद्देश्य ही थी। फलत प्रशान्त-सम्मेलन की सिफारिशो का असर कुछ भी नही हुआ। भारत की राजनीतिक समस्या वही रही, जहा वह पहले थी।

लार्ड वेवल का रुख़

मनोनीत वाइसराय ने १६ सितम्बर को अपने सम्मान मे पिलग्रिमो के द्वारा दिए गए एक भोज के अवसर पर अपने भावी कार्यक्रम की एक झलक दी। इसके उपरान्त ईस्ट इडिया एसोसियेशन मे भी लार्ड वेवल के सम्मान मे एक समारोह हुआ। लार्ड महोदय ने सामने आनेवाली कठिनाइयो तथा खतरो का जिक्र किया और साथ ही इस बात पर प्रसन्नता प्रकट की कि इग्लैड की सभी वर्ग की जनता मे भारत के प्रति सद्भावना वर्तमान है। उन्होने यह भी कहा कि इस समय भारत के सामने एक बडा अवसर है। यदि मै भारत को सन्मार्ग पर लाने मे उसकी कुछ सहायता कर सकूं तो इससे अधिक अभिमान और प्रसन्नता की बात मेरे लिए और कोई न होगी।

लार्ड वेवल को अपनी उपाधि जिस विचेस्टर के लिए मिली उसके बारे मे उन्होने एक नयी बात भी कही—"भारत मे हमने व्यवहार करने और एक या दो बार निर्णय करने मे गलतिया की है, किन्तु ये गलतिया हमने लोभ या भय से प्रेरित होकर नही की है। दूसरी तरफ भारत को शान्ति प्रदान कर, उसमे राष्ट्रीयता की भावना प्रोत्साहित कर और उसे स्वतत्रता तथा स्वाधीनता के पथ पर ले जाकर हमने उसका जो कल्याण किया है, इसे अच्छे शासन व सुप्रबध का एक सर्वोत्तम नमूना कहा जा सकता है।"

मज़दूर-दल का रुख़

दिल्ली मे नये वाइसराय की नियुक्ति से ब्रिटेन मे मजदूर दल एक बड़ी कठिनाई मे पड गया। अनुदार-दलवाले तो स्पष्ट रूप से अपरिवर्तनवादी, प्रतिक्रियावादी और पिछडे हुए थे और मि० चर्चिल के नेतृत्व मे घोषित कर ही चुके थे कि

वे साम्राज्य का दिवाला निकालने के पक्ष मे किसी भी तरह नही है। उदारदल-वाले सिर्फ नाम के ही उदार थे और उनकी सख्या भी पर्याप्त न थी। जिस मजदूर-दल ने दो बार हकूमत सभाली थी वह अपने को अनुदार-दल के बीच घिरा और कमजोर पा रहा था। दल मे तीन वर्ग थे। सबसे प्रभावशाली वर्ग नर्म विचार-वालो का था और उसके नेता एटली, मारीसन, बेविन, ग्रीनवुड और रिडले थे। मध्यवर्ग के नेता सोरेमन और बाये या उग्र वर्ग के नेता श्री कोवे थे। मजदूर-दल मे पहले वर्ग का ही जोर अधिक था और वह हिन्दुस्तान के सवाल पर सरकार को किसी परेशानी मे नही डालना चाहता था। इसीलिए इस वर्ग का एक डेपु-टेशन लार्ड वेवल से मिला और उसने उन्हे बताया कि राजनीतिक अडगा दूर करने का जो भी प्रयत्न वह करेगे उसका पूरा समर्थन मजदूर-दल करेगा। इसलिए मजदूर-दल वालो ने और कुछ नही तो कम-से-कम यह जाहिर तो कर ही दिया कि नकारात्मक प्रतिक्रियावाद ब्रिटेन क विचारो का सच्चा प्रतीक नही है, इसलिए आगे कदम उठाकर वे विरोधी दलवालो को खुश ही करेगे। इसके विपरीत मध्यम वर्ग नकारात्मक नीति से सतुष्ट होनेवाला न था। वह ब्रिटेन की यह नैतिक जिम्मेदारी महसूस करता था कि परिस्थिति को विषम बनानेवाले कारणो को हटाना और भारत की आकाक्षाओ तथा मागो को पूरी करने के लिए प्रयत्न-शील होना उसी का काम है। यह वह भी कहता था कि परिस्थिति बदल जाने और सुदूरपूर्व के युद्ध के रुख मे परिवर्तन के कारण काग्रेसी नेता भी अपनी नीति मे रद्दोबदल करने की जरूरत महसूस कर सकते है। मजदूर-दल का मध्यम वर्ग नया विधान लागू होने तक ऐसी अस्थायी सरकार की स्थापना पर जोर देना चाहता था, जिसके प्रति वाइसराय अपना नकारात्मक अधिकार काम मे न ला सके। मि० कोवे का दृष्टिकोण काग्रेस के प्रति रिआयत करने का नही, बल्कि उनके अधिकारो का था। वह भारत की स्वतन्त्रता की घोषणा करने, राष्ट्रीय-सरकार की तुरत स्थापना तथा राजनीतिक बदियो की रिहाई और सद्भावना बढाने के अन्य उपाय करने के पक्ष मे थे।

जब कि एक तरफ मजदूर-दल की कार्यसमिति तथा पार्लीमेटरी समिति की भारत-सम्बन्धी उप-समिति मे विचार हो रहा था, दूसरी तरफ ट्रेड यूनियन-दल इसके मुकाबले मे अच्छे दृष्टिकोण का परिचय दे रहा था। ट्रेड यूनियन-दल के नेता मि० डोबी ने भारत-सम्बन्धी नीति मे परिवर्तन की माग जोरदार शब्दो मे उप-स्थित की और कहा कि भारत का दुर्भिक्ष बहुत कुछ शासन-सम्बन्धी अव्यवस्था तथा जनता का सहयोग प्राप्त न करने के कारण हुआ है। इस बार पादरियो की उत्सुकता विशेष रूप से उल्लेखनीय थी। भारत की मिशनरियो-द्वारा भेजी गयी सूचना के आधार पर मेथडिस्ट गिरजा की एक जिला शाखा-द्वारा पास किया गया एक प्रस्ताव मि० एमरी के पास भेज दिया गया।

लार्ड लिनलिथगो का कार्य-काल

भारत से लार्ड लिनलिथगो की विदाई-द्वारा १८५७ के गदर के समय से अब-तक की वाइसरायी का सब से लम्बा काल समाप्त हो गया। दरअसल उनका कार्य-काल दूसरे किसी भी वाइसराय की तुलना मे अधिक था। वह भारत मे लार्ड कर्जन की अपेक्षा छ महीने ज्यादा रहे थे। लार्ड लिनलिथगो के कार्य-काल का दूसरा महत्व यह था कि दूसरे वाइसरायो की अपेक्षा उनका कार्य-काल सबसे नाटकीय था। नाटक जिस तरह सुखात हो सकता है उसी तरह दुखान्त भी हो सकता है। लार्ड लिनलिथगो जिस नाटक के नायक थे वह दुखात ही था। वह देखने मे हृष्ट-पुष्ट, स्वभाव से अज्ञानी, राजनीति मे कट्टरपथी, दृष्टिकोण मे साम्राज्यवादी, कुछ अभिमानी और रीति-रिवाज को बहुत माननेवाले व्यक्ति थे। उन तक पहुँचना कठिन था। उनके व्यवहार मे शिष्टाचार की मात्रा अधिक होती थी और वह दूसरो से मिलना-जुलना कम पसद करते थे। बात को सक्षेप मे कहना पसद करने पर भी वह उसे घुमा-फिराकर ही कह पाते थे। कभी-कभी उनके कार्य निरुद्देश्य तथा प्रभावहीन भी हुआ करते थे। यदाकदा उनसे हृदय-हीनता भी टपकती थी। स्पष्टवादिता के अभाव के कारण लोग उनके इरादो पर सदेह करने लगे थे। यह शक यहा तक बढा कि जब वह भारत की भौगोलिक और आर्थिक एकता पर जोर देते थे और देश मे सघ-विधान स्थापित करने का आग्रह करते थे तब लोग आश्चर्य करते थे, क्योकि उन्होने अपनी नीति के द्वारा देश मे हिन्दू-मुसल्मानो के बीच, प्राती और रियासतो के बीच, सवर्ण हिन्दुओ और परिगणित जातियो के बीच और प्रातो व परिगणित प्रदेशो के बीच जिस भेदभाव को प्रोत्साहन दिया था उससे उनके एकता स्थापित करने के आग्रह का समर्थन नही होता था। लार्ड लिनलिथगो ने नरेशो को बढावा देकर उनका काग्रेस के ही नही, बल्कि लोकतत्रवाद के भी विरुद्ध उपयोग किया था। उन्होने अपनी शासन-परिषद् मे ऐसे व्यक्तियो को रखा जो काग्रेस के कट्टर विरोधी थे या उसे छोड चुके थे। उन्होने मि० एमरी के शब्दो मे "देश के सब से महत्वपूर्ण राजनीतिक दल के नेताओ को जेल मे ठूँस दिया था और फिर यह शिकायत भी की थी कि वह मुस्लिम लीग से समझौता नही करते।" उन्होने काग्रेसी नेताओ और लीगी नेताओ के बीच चिट्ठी-पत्री तक बद कर दी थी और फिर आरोप लगाया था कि वे मेल-मिलाप नही करते। उन्होने अगस्त १९४२ मे महात्मा गाधी को मुलाकात करने की इजाजत नही दी और उनकी सरकार ने सेना तथा पुलिस की हिंसा के कारण देश मे असाधारण उपद्रव फैलाने दिये थे। बगाल और उडीसा मे जब लाखो व्यक्ति भुखमरी के शिकार हो रहे थे तब उन्होने उनकी सहानुभूति मे न तो एक शब्द कहा और न कोई अपील ही निकाली। अपने कार्य-काल के अतिम

दिनो मे लाट साहव १६ अक्टूवर को 'सववर्सिव एक्टिविटीज आर्डिनेन्स' के रूप मे हिन्दुस्तान को अपना आखिरी तोहफा दिया।

इस प्रकार भारत की आर्थिक व्यवस्था तथा राजनीति से पिछला सम्बन्ध होने के कारण लार्ड लिनलिथगो से वाइसराय का पद सभालने के समय जो आशा की गई थी वह पूरी नही हुई। महात्मा गाधी से मैत्री का जो दावा उन्होने किया था उसके पीछे शत्रुता की भावना छिपी हुई थी। उन्होने भारत को एक ऐसे युद्ध मे, जो उसका अपना युद्ध न था, व्यस्थापिका सभा को सूचित किये विना ही फँसा दिया। उनके इस कार्य की लदन के 'टाइम्स' तक ने निंदा की। उन्होने २१ दिन के अनशन के अवसर पर गाधीजी को आगाखा महल मे उनके भाग्य के भरोसे छोड दिया। गाधीजी ने जव सद्भावना प्रकट करने के लिए एक पत्र मि० जिन्ना को लिखा तव लार्ड लिनलिथगो ने उसे रोक दिया। सव से वडा विरोधाभास तो यह है कि जिस वाइसराय का कृषि से इतना सम्वन्ध रहा उसी के काल मे वहुत दिनो से भूली हुई दुर्भिक्ष की विभीपिका का सामना देश को करना पडा। तात्पर्य यह कि वह अपने पीछे इतिहासकार के लिए निराशाओ तथा निरर्थक प्रयत्नो का लेखा ओर उत्तराधिकारी के लिए असुविधापूर्ण विरासत छोड गये और इस तरह उन्होने भारतीय समुद्रतट से नही—वल्कि दिल्ली की कब्रो से विदाई ली। उनका न किसी ने सम्मान किया, न किसी ने उनके लिए आँसू वहाये और न किसी ने उनके गुणानुवाद ही गाये।

: २१ :

अगला कदम : १६४४

वेवल का व्यक्तित्व

दिल्ली मे लार्ड लुई माउटवेटन के अक्टूवर के दूसरे सप्ताह मे अचानक पहुचने के बाद १७ अक्टूबर, १९४३ को लार्ड वेवल भी पहुच गये। लार्ड वेवल का आगमन अप्रत्याशित न था, किन्तु इस पद का कार्य-भार सभालने के लिए वायुयान-द्वारा भारत पहुँचनेवाले पहले वाइसराय थे। लदन से रवाना होते समय उन्होने पत्र-प्रतिनिधियो से कहा था—"मेरे सामने इस वक्त एक वहुत वडा सवाल है।" इससे जाहिर होता है कि भारत के वाइसराय का पद-ग्रहण करते समय लार्ड वेवल अपनी जिम्मेदारी कितनी अधिक महसूस कर रहे थे। इस सवाल की एक झलक मि० एमरी ने उस समय पार्लमेंट मे दी थी, जब उन्होने

आशा प्रकट की थी कि नये वाइसराय विभिन्न सम्प्रदायो के मध्य सद्-भावना स्थापित करने के लिए अधिक-से-अधिक प्रयत्न करेगे। यह जाहिर था कि सवाल बहुत टेढा और नाजुक था। यह कठिनाई पिछले वाइसराय ने उत्पन्न करदी थी। यह भाव प्रकट किये विना ही कि पुरानी नीति मे परिवर्तन किया जा रहा है, नयी नीति आरम्भ करने के लिए असाधारण राजनीतिज्ञता अपेक्षित थी—खासकर एक ऐसे व्यक्ति के लिए जो पिछले वाइसराय की अधीनता मे काम कर चुका हो। यह कार्य सहल न था, किन्तु उसे करने के लिए जिस आत्म-विश्वास, विवेक और दृष्टिकोण की आवश्यकता थी, वह उनमे भरपूर था। भारत मे आते ही उन्होने गवर्नमेट हाउस के उस राजकीय शिष्टाचार को कम कर दिया, जिसका लार्ड लिनलिथगो को इतना चाव था।

एमरी का वक्तव्य

जिस दिन लार्ड वेवल भारत पहुचे उसी दिन मि० एमरी ने काग्रेस के विरुद्ध अपने आरोपो को दोहराया ताकि लार्ड वेवल उन्हे भूल न जाय। अपने आरोपो मे उन्होने सारी जिम्मेदारी काग्रेस पर लाद दी। उनके आरोप इस प्रकार थे —

"(१) काग्रेस योजना के सघवाले हिस्से का आरम्भ से ही विरोध करती आयी है, (२) काग्रेस ने रियासतो मे असतोष पैदा करके नरेशो की हिचकिचाहट बढा दी है और (३) मुसलमान अब तक सघ-योजना के विरुद्ध नही थे, किन्तु प्रातो मे काग्रेस के तानाशाही रगढग देखकर वे भी उसके कट्टर-विरोधी हो गये है।" मि० एमरी ने यह भी कहा कि इस आशका के कारण कि केन्द्र मे काग्रेसी मत्री केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के प्रति जिम्मेदार मन्त्रियो के रूप मे काम न करके कांग्रेस-कार्यसमिति और गाधीजी के आदेशो के अनुसार कार्य करेगे, मुस्लिम लीग तथा नरेश दोनो ही १९३५ के विधान की सघ योजना के विरुद्ध हो गये है।

साथ ही मि० एमरी ने पहली बार स्वीकार किया कि देश के सब से महत्व-पूर्ण राजनीतिक दल के जेल मे बद होने के कारण उसका दूसरे दल से बातचीत चलाना असम्भव हो गया है। उन्होने यह भी कहा—"लार्ड लिनलिथीगो का विचार ठीक है कि जो लोग युद्ध के समय खुलेआम विद्रोह को प्रोत्साहन देने के लिए तैयार थे उन्हे यह सुविधा नही मिल सकती।" इसके उपरात उन्होने लार्ड लिनलिथिगो के साथ किया गया निर्णय सुनाया और कहा कि "उन्हे अपने पिछले कार्यों के लिए पश्चात्ताप करना चाहिए। इसके बाद ही उन्हे भारत के भावी विधान के निर्माण मे हिस्सा लेने की अनुमति दी जा सकती है।" इसके बाद उन्होने भविष्य के बारे मे कहा, "अब यह देखना शेष है कि विदेश मे हमारी विजय के साथ ही भारत की आन्तरिक स्थिति मे ऐसा सुधार होता है या नहीं, जिससे कि भारतीय नेताओ को आपस मे समझौता करने के लिए राजी किया जा सके, क्योंकि

इसी आधार पर शासन की स्थायी व्यवस्था खड़ी की जा सकती है। यदि ऐसी प्रगति हुई तो निस्सन्देह वाइसराय, सम्राट की सरकार और भारतीय जनता उसमें प्रोत्साहन प्रदान करेगी।"

वेवल की कठिनाइयां

ऊपर जो उद्धरण दिये गये हैं, उनसे स्पष्ट है कि 'नेताओं' से भारत-मंत्री का तात्पर्य उन लोगों से नहीं था, जो बाहर थे, किन्तु उनसे था जो जेलों में थे। परन्तु इस पहेली का कुछ उत्तर नये वाइसराय को नहीं मिला कि जेल से बाहर आये बिना कांग्रेसी नेता अन्य लोगों से समझौता कैसे कर पायेंगे?

यदि सच पूछा जाय तो भारतमंत्री का यह वक्तव्य लार्ड वेवल के नाम एक आदेश-पत्र था, जिसमें लार्ड वेवल को कांग्रेस के विरुद्ध चेतावनी दी गयी थी और गांधीजी तथा दूसरे कांग्रेसी नेताओं के क्षमा-प्रार्थना करने और अगस्तवाले प्रस्ताव को वापस लेने तक वाइसराय को अपने विशेषाधिकारों से काम लेने को कहा गया था।

इस सम्बन्ध में महामाननीय वी० एस० शास्त्री ने मि० एमरी, लार्ड वेवल तथा गांधीजी के नाम तीन खुले पत्र लिखे। इन पत्रों को उन्होंने स्याही की जगह अपने रक्त से लिखा था। इनमें उन्होंने अपनी आत्मा निकाल कर रख दी थी और अनुरोध किया था कि इन तीनों व्यक्तियों को अपने अवसर तथा अधिकारों का उपयोग भारत तथा ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की गौरव-वृद्धि के लिए करना चाहिए। उन्होंने एमरी को वर्साई की संधि का स्मरण दिलाया और कहा कि मित्रराष्ट्रों ने जर्मनी को जिस प्रकार अपमानित किया उसका परिणाम प्रतिहिंसा एवं प्रतिशोध की नीति के रूप में दिखाई दिया। लार्ड वेवल से उन्होंने मि० एमरी की सलाह न मानने तथा गतिरोध समाप्त करने का उपाय शीघ्र करने का अनुरोध किया। इसके साथ ही उन्होंने गांधीजी से "एक योजना तथा एक नीति" पर जमे रहने के सिद्धांत को त्यागने तथा समय के अनुसार नीति में परिवर्तन करने का अनुरोध किया।

इस प्रकार लार्ड वेवल-द्वारा वाइसराय का पद संभालते ही लोगों ने अनेक सुझाव तथा अनुरोध उपस्थित करने आरम्भ कर दिए, जिनमें कहा गया कि उन्हें अपने तात्कालिक कार्यक्रम में क्या शामिल करना चाहिए और क्या नहीं। यदि एक आवाज गतिरोध समाप्त करने के प्रयत्नों के विरुद्ध आई तो कितनी ही आवाजें ऐसे प्रयत्न आरम्भ किये जाने के पक्ष में उठीं। पृथ्वी पर शांति और मनुष्य-जाति में सद्भावना की वृद्धि के लिए भी बहुत-कुछ कहा गया।

वेवल का कार्य

बिना मांगे, परम्परावश या शिष्टाचार के कारण जो सलाह दी जाती है

उससे लोग बहुत कम प्रभावित होते है। लार्ड वेवल इसके अपवाद नही थे। उनके अपने विचार, अपने सिद्धात, कर्तव्य के सम्बन्ध मे अपनी निजी भावना और अपनी रुचि थी। सब से पहले उनका ध्यान बगाल की भुखमरी की तरफ गया। इसलिए सब से पहले उन्होने इसी समस्या को हाथ मे लिया। उन्होने स्वास्थ्य-जाच तथा २६ अक्तूबर, १९४३ को शुरू होने वाली उन्नति समिति की बैठक के लिए जो सदेश दिया उसमे उन्होने गन्दी बस्तियो तथा उनमे रहनेवालो को नये सिरे से बसाने की समस्या, जल का प्रबध, सफाई की व्यवस्था, मलेरिया-निवारण के लिए देशी कीटाणुनाशक दवाओ का प्रयोग, मच्छरदानियो का अधिक उपयोग, स्कूलो मे दवाखाने खोलने, अधिक डाक्टर-उपलब्ध करने, गावो मे डाक्टरो तथा नर्सों का प्रबन्ध करने, देशी दवाओ को प्रोत्साहन देने और अनुसधान-सगठनो की चर्चा की। इसके अतिरिक्त एक अन्य महत्वपूर्ण बात बगाल के पीडितो के लिए दी गयी रकमो की व्यवस्था के लिए एक विशेष कोप का खोला जाना था। लका की सरकार ने वाइसराय को इस कोप के लिए २७ लाख रुपये भेजे थे। दूसरा अच्छा कार्य २४ अक्तूबर को लार्ड वेवल की अविज्ञापित कलकत्ता-यात्रा थी। इसकी सभी तरफ़ कद्र की गयी—खासतौर पर जेल मे बन्द उन काग्रेसी बदियो द्वारा जो सीखचो के भीतर रहकर बगाल की बरबादी का दृश्य दीनता-पूर्वक देख रहे थे और जिसकी तरफ शासन-व्यवस्था का प्रधान होते हुए भी युद्ध-प्रयत्न मे व्यस्त भूतपूर्व वाइसराय ने कुछ ध्यान नही दिया था। नये वाइसराय ने प्रधान सेनापति को सब से बुरी तरह प्रभावित जिलों के लिए सेना के साधन, विशेपकर अन्न के यातायात के लिए, उपलब्ध करने, सहायता के केन्द्र खोलने और इन केन्द्रो के लिए अन्न का सकलन करने का आदेश दिया। इन उपायो की सूचना २८ अक्तूबर को पत्र-प्रतिनिधियो के एक सम्मेलन मे दी गयी और इसी मे योजना को कार्यान्वित करने के कार्यक्रम पर विचार किया गया।

लार्ड वेवल के कार्य-काल की एक विशेष घटना गवर्नरो का वाइसराय से परामर्श के लिए एकत्र होना भी थी। पिछले दस वर्षों मे वाइसराय के लिए गवर्नरो को परामर्श के लिए बुला भेजना एक साधारण घटना हो गयी थी। ऐसा उस समय विशेप रूप से किया जाता था जब दमनकारी उपाय करना होता था या उन्हे हटाना होता था। परन्तु उन दिनो गवर्नर वाइसराय से दो-दो या तीन-तीन की टोलियो मे मिलते थे। नवम्बर, १९४३ के गवर्नर-सम्मेलन की सब से बडी विशेषता यह थी कि ग्यारह-के-ग्यारह गवर्नर दिल्ली मे उपस्थित हुए और ऐसे सम्मेलन बीस महीनो मे तीन हुए।

यह सच है कि वाइसराय ने गवर्नरो का सम्मेलन जल्दी ही बुलाया, पर उसका कुछ भी परिणाम न निकला। लोकमत मे अशान्ति के लक्षण दिखाई देने

लगे। लोग सोचने लगे कि वाइसराय के विचारो मे कोई ऐसी वात नही है, जिस मे राष्ट्र के राजनीतिक आदर्शो की तुष्टि हो सके। बगाल के लिए अन्न उपलब्ध करने की समस्या की बहुत समय से उपेक्षा की गयी थी। नए वाइसराय ने उसकी तरफ ध्यान देकर सिर्फ अपने साधारण कर्तव्य का ही पालन किया था। लेकिन लार्ड वेवल के सार्वजनिक आचरण मे एक परिवर्तन दिखाई दिया। उन्होने अखिल-भारतीय समाचारपत्र-सम्पादक-सम्मेलन की स्थायी समिति को एक भोज दिया। यह समाचारपत्रो के लिए सद्भावनापूर्ण सकेत था। वाइसराय ने समिति के एक सदस्य को बताया कि उन्हे इग्लैड तथा भारत से परामर्श के कितने ही पत्र मिले थे। उन्होने यह भी कहा कि अपनी तरफ से कुछ कहने से पहले मै इन विचारो का अध्ययन करना चाहता हूँ।

मुस्लिम लीग की स्थिति

एक बार फिर १९४३ के नवम्बर महीने मे मुस्लिम लीग की कौंसिल तथा कार्यसमिति की बैठके दिल्ली मे हुई। अप्रैल के महीने मे लीग के पूरे अधिवेशन मे जैसी चुनौतिया और धमकिया दी गयी थी वैसी इस बार नही दी गयी। पिछले १२ महीनो मे जो लाभ हुए थे उनकी हिफाजत की ही तरफ इस बार अधिक ध्यान दिया गया था। कहा गया कि लीग के प्रभाव मे पाच वजारते काम कर रही है। पाचो प्रधान मन्त्रियो को लीग के अध्यक्ष तथा कार्य-समिति के सदस्यो से मिलने के लिए बुलाया गया। जनता यह भी नही जानती थी कि पाचो प्रान्तो के लिए राजनीतिक और आर्थिक सुधार के क्या कार्यक्रम तैयार किये गये है। फिर भी यह जाना जा सकता था कि दल के सगठन को सब से अधिक महत्व दिया गया। लीग अब तक कांग्रेस के सगठन की निन्दा करती थी, लेकिन अब उसने अपना भी सगठन कांग्रेस के ढग पर किया। लीग की कार्यसमिति को समाचारपत्र 'हाई कमाड' कहने लगे। कहा गया कि सभी लीगी प्रान्तो को एक नीति, एक कार्यक्रम और एक ही अनुशासन का पालन करना चाहिए।

जहा तक वजारतो का सवाल है वहाँ तक यह कहा जा सकता है कि पजाब, सिध, सीमाप्रान्त, बगाल और आसाम मे से किसी एक भी प्रान्त की असेम्बली मे मूल लीगी सदस्यो का बहुमत नही था। पाचो वजारते ब्रिटिश सरकार के कृपापूर्ण प्रभाव मे कायम हुई थी। सरकार ने युद्धकाल मे वजारते कायम करके राजनीतिक अडगा भग करने और कांग्रेस का सफाया करने की सोची थी। इन पाच प्रान्तो से बाहर और कही भी ब्रिटिश सरकार का यह षड्यत्र सफल नही हो सका। ब्रिटिश सरकार ने हिन्दुस्तान के सवाल को जो ताक पर रख दिया था उस पर मुसलमानो मे आम असतोष फैलने लगा था। यह लीग की कौंसिल तथा कार्यसमिति के सदस्यो के रुख से स्पष्ट था। यही मुस्लिम एम० एल० ए०

के आचारण तथा पत्रकारो के लेखो से जाहिर होता था। इतना ही नही, मुस्लिम समाज मे वास्तविक राष्ट्रीय जागृति के स्पष्ट लक्षण दिखायी देने लगे थे।

एमरी से इस्तीफा देने की मांग

लार्ड वेवल के भारत पहुचने के कुछ सप्ताह के अदर ही साम्राज्य के इतिहास की कुछ महत्वपूर्ण घटनाए होने लगी। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल मे परिवर्तन की जो अफवाहे उड रही थी उनमे मि० एमरी, सर जेम्स ग्रिग और लार्ड साइमन के नाम भी लिए जा रहे थे। ब्रिटेन भर की राजनीतिक तथा औद्योगिक सस्थाए मि० एमरी की भारत-सम्बन्धी नीति—विशेषकर उनके अकाल-सम्बन्धी कुप्रवध के विरोध मे प्रस्ताव पास कर रही थी। हाल ही मे जिन सस्थाओ ने मि० एमरी को अपदस्थ करने का अनुरोध करते हुए प्रस्ताव पास किये थे उनमे माचेस्टर नगर-मजदूर-दल, ग्रीनफर्ड की सम्मिलित इजीनियर्स यूनियन, ट्रासपोर्ट जनरल वर्कर्स की नम्बर १ हल्के की समिति, म्यूनिसिल कर्मचारी य्नियन की बर्नले शाखा, राज-मजूरो की सम्मिलित यूनियन की सेट ऑलवस गाखा और लेनार्क खनक यूनियन की केस्टन शाखा मुख्य थी। वरमिंघम अनुदार सघ की तरफ से होनेवाली एक सभा मे जब मि० एमरी व्याख्यान देने गये तब उन पर बेहद आवाजकशी की गयी। यहाँ तक कि पुलिस न होती तो गम्भीर उपद्रव हो जाता। अत मे मि० एमरी को भाषण दिये बिना ही सभा से उठकर चले जाना पडा। कई मिनट तक भारतमत्री ने सभा से शान्त हो जाने की प्रार्थना की, लेकिन लोग चुप न हुए और अन्त मे सभा भग हो गयी। ट्रासपोर्ट ऐंड जनरल वर्कर्स यूनियन ने, जिसे ससार की सबसे बडी ट्रेड यूनियन कहा जा सकता है, सर्वसम्मति से मि० एमरी के इस्तीफे की माग की।

वेवल का भाषण

लार्ड वेवल के शासन के पहले छ महीने भारत के लिए और खुद लार्ड वेवल के लिए परीक्षा के दिन थे। राजनीतिक परिस्थिति मे सुधार के लिए लोकमत की माग दिन-प्रतिदिन जोर पकडती जा रही थी, परन्तु उन्होने अभी तक इस दिशा मे कुछ भी नही किया था। श्री राजगोपालाचार्य का प्रस्ताव था कि क्रिप्स-योजना पर फिर से विचार किया जाय। श्री एन० आर० सरकार ने क्रिप्स-प्रस्तावो के ही आधार पर काग्रेस को नयी नीति ग्रहण करने की सलाह दी। महामाननीय शास्त्रीजी ने भारत को स्वाधीनताप्राप्त उपनिवेश माने जाने का अनुरोध किया।

इन्ही दिनो ब्रिटिश समाचार-पत्रो मे एक खबर छपी कि चागकाई शेक ने चुंगकिंग से महात्मा गाधी और जवाहरलाल नेहरू को पत्र लिखकर जापान को पराजित करने के लिए युद्ध मे सहयोग करने के लिए कहा है। च्यागकाई शेक

के पत्रो का सवाद छपा ही था कि वाइसराय उडीसा और आसाम का दौरा समाप्त करके कलकत्ता आये और उन्होने २० दिसम्बर को असोसियेटेड चेम्बर्स आफ कामर्स के वार्षिक अधिवेशन मे भाषण दिया —

"मैने भारत की वैधानिक तथा राजनीतिक समस्याओ के बारे मे कुछ नही कहा है—इसलिए नही कि ये समस्याए हमेशा मेरे दिमाग मे नही रहती, इसलिए भी नही कि भारत की स्वशासन-सम्बन्धी आकाक्षाओ के प्रति मेरी सहानुभूति न हो ओर इसलिए भी नही कि मेरे विचार मे युद्ध के दरमियान राजनीतिक प्रगति होना असम्भव है उसी तरह जिस तरह मै यह नही सोच सकता कि युद्ध के खत्म होने से ही राजनीतिक अडगे का कोई हल निकल आएगा, बल्कि इसलिए कि मेरा विश्वास है कि उनके सम्बन्ध मे कुछ कहकर मै उनके निबटारे का रास्ता साफ नही कर सकता। अभी तो मै अपनी शक्ति उस काम मे ही लगाना चाहता हू जो मेरे सामने है। इस समय भारत के पास सकल्प-शक्ति और बुद्धिमत्ता का जो खजाना है उसका उपयोग उसे युद्ध मे विजय प्राप्त करने, घरेलू आर्थिक मोर्चे का सगठन करने और शान्ति की तैयारी करने में ही लगा देना चाहिए।

"भारत का भविष्य इन महान समस्याओ पर ही निर्भर है और इन समस्याओ को निबटाने के लिए मुझे प्रत्येक इच्छुक व्यक्ति के सहयोग की जरूरत है। यह तो मेरा विश्वास नही है कि शासन-सम्बन्धी कार्यो से राजनीतिक मतभेदो का निबटारा होना सम्भव है, किन्तु यह विश्वास अवश्य है कि शासन-सम्बन्धी महान् लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए यदि हम अभी ऐसे समय सहयोग करेगे, जबकि देश के लिये सकट उपस्थित है, और उन लक्ष्यो के सम्बन्ध मे सहयोग करेगे जिनके बारे मे विभिन्न राजनीतिक दलो के बीच कोई मतभेद नही है, तो हम ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करने के लिए बहुत-कुछ कर सकेगे, जिसमे राजनीतिक गतिरोध का हल हो सकेगा। सरकार के प्रधान और भारत के पुराने और सच्चे दोस्त के नाते मै अपने कार्यकाल मे देश को उसके उज्ज्वल की ओर ले जाने के लिए भरपूर प्रयत्न करूगा। हमारा रास्ता न तो सरल है और न उसे छोटा करने के लिए पगडडिया ही है। फिर भी यदि हम अपनी समस्याओ के निबटारे के लिए मिलकर प्रयत्न करे तो उज्ज्वल भविष्य के सम्बन्ध मे हम निश्चिन्त हो सकते है।"

ब्रिटिश राजनीतिज्ञों का विरोधी रुख़

इस भाषण की भारतीय पत्रो तथा जनता ने बडी ही कटु आलोचना की। वाइसराय ने जो यह कहा कि 'अभी राजनीतिक समस्याओ के निबटारे के सम्बन्ध मे कुछ कहकर उनका हल आसान नही बनाया जा सकता," इससे उनका मतलब क्या था ? कुछ ने 'कहने' तथा दूसरो ने 'अभी' पर ज्यादा जोर दिया। यदि 'कहना' ठीक न था तो कम-से-कम कुछ 'करना' तो चाहिए था। यदि अभी कुछ नहीं

होना था तो 'भविष्य' का इतजार किया जा सकता था। इस प्रकार अगले वर्ष (१९४४) की १५ फरवरी तक राष्ट्र को इतजार मे रखा गया। इस दिन वाइसराय को केन्द्रीय धारासभाओ के सयुक्त अधिवेशन मे भाषण देना था। हरेक को यही आशा थी कि इस भाषण मे वह राजनीतिक परिस्थिति के विषय मे कोई महत्वपूर्ण घोषणा करेगे। राजनीतिक गतिरोध अभी बना हुआ था और कलकत्ते मे वह कह चुके थे कि अभी कुछ कहने से परिस्थिति के हल को आसान नही बनाया जा सकता। यह भी सम्भव था कि मि० एमरी ने समस्या को हल करने की कोई योजना भेज दी हो, जिसे अब वाइसराय थोडी-थोडी करके अमल मे लाने जा रहे हो। परन्तु उच्च अग्रेज कर्मचारियो मे घबराहट फैली हुई थी—न जाने वेवल क्या करने जा रहे है! जिस तरह भारतीयो के मन मे योजना के खोखलेपन का भय लगा हुआ था उसी तरह उच्च अग्रेज कर्मचारी उसके ठोस होने की सम्भावना से भयभीत थे। ब्रिटेन मे कितने ही शक्तिशाली गुट प्रगतिशील उपायो को निष्फल करने के लिए षड्यत्र कर रहे थे। उनके उर्वर मस्तिष्क एक ऐसे राजनीतिक सगठन की कल्पना कर रहे थे, जिसकी सहायता से साम्राज्य को कायम रखते हुए भारत की स्वाधीनता के मार्ग मे रोडे अटकाए जा सके। प्रातो मे नये प्रदेश सम्मिलित करने की योजना प्रोफेसर कूपलैड की थी। लार्ड हेली प्रादेशिक गुट सगठित किये जाने की बात कह रहे थे। भारतमत्री मि० एमरी ऐसे शासन-परिषदो की बात सोच रहे थे, जिन्हे हटाया न जा सकेगा। दूसरे शब्दो मे ब्रिटेन को भारत मे एक अनिश्चित समय तक रहना चाहिए, ताकि यहा के विभिन्न दल एक-दूसरे को हडप न जाय। इनके अतिरिक्त श्री प्रो० एव० एडवर्ड-जैसे पत्रकार-जगत् मे काम करनेवाले राजनीतिज्ञ भी बोले, जिन्होने 'वर्ल्ड रिव्यू' मे लेख लिखकर सुझाव उपस्थित किया था कि ब्रिटेन को दिल्ली अपने अधिकार मे रखना चाहिए और वहा से हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बीच शाति बनाए रखनी चाहिए और देश भर की रक्षा का भार भी उसे अपने ही कधो पर बनाये रखना चाहिए। ब्रिटिश पत्रो मे इन प्रतिक्रियापूर्ण वक्तव्यो को तो प्रमुख स्थान दिया गया, किन्तु भारत की आर्थिक तथा कृषि-सम्बन्धी परिस्थिति पर थोडा भी प्रकाश न डाला गया। अमरीका का लोकमत कुछ तटस्थ लेखको की पुस्तको-द्वारा प्रकट हुआ, किन्तु इन लेखको का राजनीतिक प्रभाव अधिक न था।

स्वाधीनता-दिवस : १९४४

अन्य वर्षो की तरह १९४४ मे भी स्वाधीनता-दिवस आया। श्रीमती सरोजिनी नायडू स्वास्थ्य बिगडने के कारण २१ मार्च, १९४३ को जेल से छूटी थी। करीब १० महीने बाद ७ जनवरी, १९४४ को श्रीमती नायडू ने अपना मुँह खोला।

पिछले साल की तरह इस वर्ष भी स्वाधीनता-दिवस के अवसर पर देश भर मे गिरफ्तारिया हुई, किन्तु इनकी सख्या पिछले साल मे कम थी। स्वाधीनता-दिवस-समारोह के सिलसिले मे सिर्फ वम्बई मे लगभग ६० गिरफ्तारिया हुई, जिनमे १७ महिलाए, १ बालिका व १ बालक था। दूसरी जगहो मे भी लोगो को पकडा गया।

स्वाधीनता-दिवस की प्रतिज्ञा मे समय-समय पर रद्दोबदल होता रहा है। गोकि भाषा मे परिवर्तन कर दिया गया था, फिर भी विदेशी चगुल मे छुटकारा पाकर स्वाधीनता की प्राप्ति करने के राष्ट्र के दृढ सकल्प मे कोई कमी नही हुई थी। यह सकल्प बराबर हमारे सामने उस प्रकाश-स्तम्भ के समान रहा, जो अधकार, तूफान, समुद्री चट्टानो व बर्फीले पहाडो के बीच है। यद्यपि कार्य-समिति के सदस्य स्वाधीनता-समारोह मे भाग लेने के लिए जनता के मध्य उपस्थित न थे, फिर भी साधारण काग्रेसजन ने झडे को ऊचा रखा। जहा दिवस मनाने पर पाबदी नही थी, वहा सार्वजनिक रूप से और जहा पाबदी थी वहा अपने घरो मे सदा ही इस पवित्र त्योहार को मनाया गया, क्योकि घरो मे कडे-से-कडे कानून और अत्याचारी से अत्याचारी शासक की पहुच नही हो सकती थी। नौकरशाही ने मद्रास, बम्बई, दिल्ली, आसाम, बिहार और उत्तर प्रदेश मे स्वाधीनता समारोह पर रोक लगा रखी थी। किन्तु एक लोकप्रिय सरकार को यह पाबदी लगाने का गर्व सिर्फ सिध मे ही हासिल हुआ था। सिध सरकार ने जनता के लिए यह आदेश निकाला —

"प्रतिज्ञा को पढना, या प्रकाशित करना या स्वाधीनता-दिवस मनाने के लिए अपील करना क्रिमिनल ला एमेडमेट ऐक्ट के अतर्गत जुर्म माना जायगा और यह जुर्म करनवाले पर मुकदमा चलाया जायगा।" २६ जनवरी को लाहौर स्टेशन पर पहुचने के समय पजाब सरकार ने श्रीमती सरोजिनी नायडू के खिलाफ एक आदेश जारी किया। यह आदेश चीफ सेक्रेटरी की तरफ से आना चाहिए था, किन्तु इस पर पजाब पुलिस के सी० आई० डी० विभाग के डिप्टी इस्पेक्टर-जनरल की तरफ से घसीटाराम नामक व्यक्ति के हस्ताक्षर थे। कहा जाता है कि घसीटाराम डिप्टी इस्पेक्टर-जनरल सी० आई० डी० के दफ्तर मे एक कर्मचारी था। जब यह आदेश श्रीमती नायडू को पढकर सुनाया गया तब उन्होंने उसको पीठ पर लिख दिया कि अपने डाक्टर की हिदायत के मुताबिक मेरा इरादा पहले ही से किसी सभा मे भाषण करने या जुलूस मे भाग लेने का नही है और इसलिए जहा तक मेरा सम्बन्ध है मेरे लिए आदेश का अस्तित्व न होने के समान है। आदेश पर हस्ताक्षर करने के बाद जब वह अपने डिब्बे से बाहर निकलीं तब उनके मुँह से सहसा निकल पडा—"पजाब बडा दिलचस्प सूबा है और यहा की पुलिस तो और भी दिलचस्प है।"

गतिरोध दूर करने की लालसा

वेवल आये, वेवल ने देखा, पर वेवल परिस्थिति पर विजयी नही हुए। इसके लिए हम लार्ड वेवल को दोष नही दे सकते, किन्तु हमे खेद तो सिर्फ इतना ही है कि उनके भाषणो को देखते हुए परिणाम अधिक नही निकला। वाइसराय के रूप मे लार्ड लिनलिथगो कुछ दुखी और निराश होकर ही भारत से विदा हुए थे। कम-से-कम उन्हे इस बात से तो धीरज मिल सकता था कि नाकामयाबी ने उनका पल्ला मीयाद खत्म होने के दिनो मे ही पकडा था। परन्तु लार्ड वेवल के साथ यह बात न थी। उन्होने अपने पूर्वाधिकारी से यह दुर्भाग्य प्राप्त किया था। इसलिए उन्होने सहयोग प्राप्त करने के लिए प्रयत्न तो आरम्भ कर दिया था, किन्तु वह सहयोग की कीमत चुकाने के लिए तैयार न थे। वह तो अपनी ही शर्तो पर सहयोग चाहते थे। या कम-से-कम बदनामी के कारण को मिटाने के लिए उत्सुक थे। परन्तु काग्रेस सिर्फ अपनी शर्तो पर ही सहयोग करना चाहती थी। इसलिए उनको सहयोग के सम्बन्ध मे काफी निराशा हुई।

यदि अग्रेजो मे गतिरोध दूर करने की इच्छा होती तो इसमे कठिनाई कुछ भी न थी। भारत मे तथा इग्लैड और अमरीका के विवेकशील हलको मे यह बात समान रूप से अनुभव की जाती थी। भारत मे सर जगदीशप्रसाद, डा० सप्रू और प्रोफेसर वाडिया-जैसे व्यक्तियो के स्पष्ट वक्तव्य मौजूद थे। सभी तरफ धीरज का अत होने लगा था और अधैर्य नही तो कम-से-कम लोगो मे आश्चर्य फैलने लगा था। नेताओ की जेल से रिहाई के बारे मे सरकार की घोषणाए खास तौर पर क्षुब्ध कर देनेवाली जान पडती थी। जो लोग नेताओ की रिहाई के विरुद्ध थे उन्हे जेल से बाहरवाले नेताओ के साथ जेल के भीतरवाले नेताओ का सम्मेलन करने का प्रस्ताव मूर्खतापूर्ण लगता था। उधर भारत मे नरम-से-नरम विचारवाले नेता देश मे बढती हुई राजनीतिक कटुता को देख रहे थे और महसूस कर रहे थे कि यदि वाइसराय ने राजनीतिक विचारो मे भरे हुए भारतीयो को सतुष्ट करने के लिए कुछ न किया तो यह असतोष और भी बढ जायगा। उधर इग्लैड मे पादरी लोग इस आशका से चिन्तित हो रहे थे कि कही भारत में नाराजी इतनी अधिक न फैल जाय कि बाद में अनेक प्रयत्न करने पर भी उसे दूर न किया जा सके।

जिन्ना साहब का मत

केन्द्रीय धारासभाओं के समक्ष लार्ड वेवल का भाषण हुए एक पखवारा बीत चुका था, पर अभी देश को इसके सम्बन्ध मे मि० जिन्ना की प्रतिक्रिया का कुछ पता नही चला था। अपनी आदत के मुताबिक मि० जिन्ना कही एक महीने बाद वाइसराय या भारतमत्री के भाषण पर मत प्रकट किया करते थे। परन्तु

'न्यूज क्रानिकल' के दिल्ली के प्रतिनिधि के मि० जिन्ना से मुलाकात करने की वजह से इस बार लोगो को अधिक प्रतीक्षा न करनी पडी। यह मुलाकात २९ फरवरी को हुई और इसमे मि० जिन्ना स्पष्ट और जोरदार शब्दो मे बोले। मि० जिन्ना के पिछले वक्तव्यो और मुलाकातो के बावजूद पाकिस्तान-योजना पर अभी तक अस्पष्टता और रहस्य का पर्दा पडा हुआ था, किन्तु इस मुलाकात में यह पर्दा हट गया। उन्होने देश की राजनीतिक अवस्था पर विचार प्रकट करते हुए 'न्यूज क्रानिकल' लदन के प्रतिनिधि को जो वक्तव्य दिया, वह इस प्रकार है —

मि० जिन्ना ने कहा—"सरकार वर्तमान परिस्थिति से सतुष्ट जान पडती है और वह कोई कदम नही उठाना चाहती। कांग्रेस गैर-कानूनी घोषित कर दी गयी है और उसने अपनी तरफ से किसी हृदय-परिवर्तन का परिचय नही दिया है।"

प्रश्न—"सरकार कांग्रेस से बातचीत क्यो नही शुरु करती? या वह श्री राजगोपालाचार्य-जैसे किसी व्यक्ति को, जिसने आपकी पाकिस्तान की माग के सिद्धात को—हिन्दू और मुसलमानो के दो पृथक् राज्यो को मान लिया है, गाधीजी से मिलकर उन्हे अपने मत मे परिवर्तन करने के लिए राजी करने का मौका क्यो नही देती?"

मि० जिन्ना—"इसका मतलब यह हुआ कि जब तक गाधीजी को राजी नही किया जाता तबतक सरकार हमारी उचित माग को स्वीकार न करेगी। यह तर्क हम नही मान सकते। जहा तक सरकार का सम्बन्ध है, मै नही कह सकता कि उसकी नीति क्या है, किन्तु यदि सरकार आपके सुझाव को मान ले तो इसका मतलब यह होगा कि जीत कांग्रेस की हुई है और सरकार कॉंग्रेस के बिना आगे नही बढ सकती।"

प्रश्न—"किया क्या जाय?"

मि० जिन्ना—"यदि ब्रिटिश सरकार सच्चे हृदय से भारत मे शान्ति स्थापित करने को उत्सुक है तो उसे भारत को दो स्वाधीन राष्ट्रो मे बाट देना चाहिए—पाकिस्तान मुसलमानो के लिए, जिसमे देश का एक चौथाई भाग शरीक होगा, और हिन्दुस्तान हिन्दुओ के लिए जिसमे समस्त भारत का तीन-चौथाई भाग होगा।

प्रश्न—"परन्तु भारत को दो देशो मे बाटकर कमजोर बनाना या शत्रु के आक्रमण का शिकार बना देना कभी वाछनीय नही हो सकता।"

मि० जिन्ना—"मै नही मानता कि भारत को जबर्दस्ती एक रखकर उसे अधिक सुरक्षित बनाया जा सकता है। सच तो यह है कि इस हालत मे उस पर आक्रमण का खतरा ज्यादा होगा, क्योकि हिन्दू और मुसलमानो मे कभी सद्भावना नही हो सकती। हिन्दू और मुसलमानो के लिए एक ही देश मे रहना या शासन सघ मे सहयोग करना असम्भव है। ब्रिटेन वर्षो से हिन्दुस्तान को एक राष्ट्र का

रूप देने के लिए प्रयत्नशील रहा है, किन्तु उसे असफलता ही मिली है। अब उसे भारन मे दो राष्ट्रो का अस्तित्व मान लेना चाहिए।"

प्रश्न—"पर आप जानते है कि काग्रेस और हिन्दू इसे कभी न मानेगे। यदि सरकार इस प्रकार की कोई योजना अमल मे लाती है तो हिन्दू और काग्रेस सत्याग्रह शुरू कर देते है और तब हिसा और गृह-युद्ध की सम्भावना उत्पन्न हो जाती है।"

मि० जिन्ना—"नही, ऐसा कुछ नही होगा। यदि ब्रिटिश सरकार पाकिस्तान और हिन्दुस्तान अलग-अलग कायम कर दे तो काग्रेस और हिन्दू उसे तीन महीने के भीतर स्वीकार कर लेगे। दूसरे लफ्जो मे सरकार चाहे तो काग्रेस की शेखी कुछ ही समय मे भुला सकती है। सच तो यह है कि मुस्लिम बहुमतवाले पाच प्रान्तो मे पाकिस्तान के सिद्धान्त के अनुसार पहले ही कार्य हो रहा है। इसके मुस्लिम लीगी मन्त्रिमडलो मे हिन्दू मंत्री भी कार्य कर रहे है। पाकिस्तान से सभी का लाभ है। निश्चय ही हिन्दुओ को इसमे कोई आपत्ति नही होनी चाहिए, क्योकि तीन-चौथाई भारत पर उनका अधिकार रहेगा। उनका देश, भूमि और जनसख्या के विचार से, रूस और चीन को छोड कर संसार मे सबसे विशाल होगा।"

प्रश्न—"परन्तु गृह-युद्ध छिडने मे कोई कसर न रहेगी। आप एक भारतीय अल्सटर को जन्म देगे, जिस पर हिन्दू अखड भारत का नारा उठाकर आक्रमण कर सकते है।"

मि० जिन्ना—"इससे मै सहमत नही हू। परन्तु नये विधान के अतर्गत एक परिवर्तनकाल भी होगा और इस काल मे, जहा तक सशस्त्र सेना और विदेशी सम्बन्धो का ताल्लुक है, ब्रिटिश सत्ता सर्वोपरि रहेगी। परिवर्तन-काल की लम्बाई इस बात पर निर्भर रहेगी कि दोनो राष्ट्र ब्रिटेन के साथ अपने सम्बन्ध तय करने मे कितना समय लगाते है। अन्त मे दोनो भारतीय राष्ट्र ब्रिटेन से उसी प्रकार संधि करेगे, जिस प्रकार मिस्र ने स्वाधीनता प्राप्त करते समय की थी।"

प्रश्न—"यदि उस समय ब्रिटेन ने तर्क उपस्थित किया कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान पडोसियो के रूप मे नही रह सकते और भारत से अपना अधिकार न हटाया जाय तब क्या होगा?"

मि० जिन्ना—"यह हो सकता है, पर इसकी सम्भावना नही जान पडती। यदि ऐसा हुआ भी तो हमे वह आंतरिक स्वाधीनता मिली होगी, जिससे आजकल हम वचित है। एक पृथक् राष्ट्र और स्वाधीन उपनिवेश के रूप मे हम ब्रिटिश सरकार से समझौता करने की उत्तम स्थिति मे रहेगे जो कम-से-कम वर्तमान गतिरोध से तो अच्छी ही होगी।"

प्रश्न—"जब ब्रिटेन यह कहता है कि वह भारत को जल्दी-से-जल्दी स्वाधीनता देना चाहता है तब क्या आप उस पर विश्वास करते है?"

मि० जिन्ना—"मैं ब्रिटेन की नेकनीयती पर उस वक्त यकीन करूंगा जब वह भारत का बटवारा करके हिन्दू और मुसलमान दोनो को आजादी देगा। १८५८ मे जान ब्राइट ने कहा था—इग्लैड कब तक हिन्दुस्तान पर हुकूमत करना चाहता है? क्या साधारण बुद्धि रखनेवाला कोई व्यक्ति विश्वास कर सकता है कि भारत-जैसा विशाल देश, जिसमे बीस विभिन्न राष्ट्र और बीसियो विभिन्न भाषाए है, कभी एक, अखड साम्राज्य के रूप मे रह सकता है?"

प्रश्न—"क्या आप दिल्ली मे वाइसराय से मिलेगे?"

मि० जिन्ना—"यदि वाइसराय मुझसे मिलना चाहेगे तो मैं उनसे बडी प्रसन्नतापूर्वक मिलूंगा। किन्तु अभी जो कुछ कह चुका हू उससे अधिक मैं और कुछ नही कह सकता।"

जिन्ना साहब के मत की आलोचना

मि० जिन्ना से जो प्रश्न किए गए थे वे ऐसे थे कि उनका वही उत्तर दिया जा सकता था, जो मि० जिन्ना ने वास्तव मे दिया था। ये उत्तर निश्चित और स्पष्ट थे, जबकि मि० जिन्ना के पिछले कथन अस्पष्ट तथा अनिश्चित हुआ करते थे। १७ फरवरी, १९४४ को मि० जिन्ना ने माग की थी कि अग्रेजो को भारत का बटवारा करके चले जाना चाहिए और लार्ड वेवल का भाषण एक प्रकार से मि० जिन्ना की उस माग का जवाब था। लार्ड वेवल ने अपने इस भाषण मे "भौगोलिक एकता" कायम रखने का अनुरोध किया था। मि० जिन्ना ने 'न्यूज क्रॉनिकल' के प्रतिनिधि को जो वक्तव्य दिया उसमे उन्होने अपना विचार बदलकर यह कर दिया कि "देश का बँटवारा करके यही बने रहो।" यह नारा लीग के स्वाधीनता के ध्येय की सबसे बडी आलोचना है। जरूरत पडने पर अग्रेज भारत मे ही रह जायगे और हिन्दुस्तान से पाकिस्तान की रक्षा करेगे। मि० जिन्ना को यह भी विश्वास था कि यदि पाकिस्तान की स्थापना की गयी तो कांग्रेस और हिन्दू न तो सत्याग्रह करेगे और न गृह-युद्ध ही छेडेगे। मि० जिन्ना का मतलब दूसरे शब्दो मे यही था कि अल्पसख्यक बहुसख्यक को जबर्दस्ती अपनी बात मानने के लिए विवश करेगे। उनके इस मत मे स्पष्ट था कि वह भारत मे अग्रेजो के इशारे पर चल रहे थे और लीग ब्रिटेन की दोस्ती का पार्ट अदा कर रही थी। यदि लीग ने एकता की जगह बँटवारे को पसद किया तो इसके समर्थन मे कुछ कह सकने की गुँजाइश है, किन्तु जब उसने स्वाधीनता और स्वतत्रता की तुलना मे पराधीनता और दासत्व को पसद किया—गोकि लीग का ध्येय स्वाधीनता घोषित किया जा चुका है—तो कांग्रेस के विरुद्ध यह शिकायत करने का कुछ भी आधार नही रह जाता कि उसका बम्बईवाला प्रस्ताव लीग के विरुद्ध था। कांग्रेस ने सर स्टेफर्ड क्रिप्स के आगमन के समय दिल्ली मे एक प्रस्ताव पास करके अपना यह निश्चय जाहिर

किया था कि "वह किसी प्रदेश की जनता को उसकी मर्जी के खिलाफ भारतीय सघ मे सम्मिलित करने की स्थिति की कल्पना नही कर सकती।" परन्तु मि० जिन्ना इससे सतुष्ट नही हुए। इस स्थिति की तुलना फिलिस्तीन की वेलिग वाली घटना से की जा सकती है। उसमे न तो यहूदी अरबो की अप्रत्यक्ष स्वीकृति को मानते थे और न अरब ही खुले शब्दो मे स्वीकृति देते थे। इसी तरह न तो मुस्लिम लीग ही काग्रेस-द्वारा सिद्धात की अप्रत्यक्ष स्वीकृति को मानने को तैयार हुई और न काग्रेस ने ही साफ लफ्जो मे स्वीकृति प्रदान की।

सहयोग की भावना

राजनीति मे कभी-कभी ऐसे लोगो को मिलकर काम करना पडता है, जिन्हे मामूली तौर पर एक-दूसरे के विरुद्ध ही कहा जायगा। इन विरोधी दलो मे विचारो या सिद्धातो का मेल नही होता, बल्कि किसी तीसरे दल के विरोधी होने के कारण उनका हित एक-दूसरे से मिल जाता है। ऐसी घटनाए बजट के ही समय दिखायी देती है। इस दृष्टि से १९४४ का बजट विशेष महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ। इस अवसर पर काग्रेस तथा लीग के एक-दूसरे के निकट आने के लक्षण दिखायी देने लगे। लाहौर मे कायदे-आजम ने भी अपने ढग से इसका पूर्वाभास दिया। २३ मार्च को लीग के मन्त्री सर यामीन खा ने केन्द्रीय असेम्बली मे भारत-रक्षा-नियमो मे सशोधन प्रस्तुत करते समय काग्रेस तथा लीग की एकता के सम्बन्ध मे एक वक्तव्य दिया। इसका उद्देश्य दुनिया को यही दिखाना था कि काग्रेस अथवा लीग मे से एक को भी सरकार पर विश्वास नही है। सर यामीन खा ने ऐसा कह कर सिर्फ अर्थ-सदस्य या ब्रिटिश सरकार को ही ताना नही दिया, उन्होने अग्रेजो के दिमाग मे एक तथ्य भरने का प्रयत्न भी किया। कई सप्ताह की जबानी लडाई के बाद जब केन्द्रीय असेम्बली मे बजट पर वोट लेने का दिन आया तब उसके पक्ष मे ५५ और विपक्ष मे ५६ वोट आये।

बजट की नामजूरी मे एक उल्लेखनीय बात यह थी कि मि० जिन्ना न तो असेम्बली मे आये और न उन्होने भाषण अथवा वोट ही दिया था। इस प्रकार असेम्बली का यह अधिवेशन प्रसन्नतापूर्वक समाप्त हुआ। काग्रेस और लीग ने सिर्फ मिलकर दुश्मन को ही शिकस्त नही दी थी, बल्कि काग्रेस की तरफ से भूलाभाई देसाई ने लीगी व स्वतत्र सदस्यो को जो दावते दी और नवाबजादा लियाकत अली खा ने काग्रेसियो एव स्वतत्र सदस्यो को जो दावते दी उनमे भी मेल-मिलाप के दृश्य दिखाई दिये। साथीपन की यह भावना बढना अच्छा ही था, क्योकि सद्भावना के बढने से विभिन्न दलो के मनमुटाव दूर होने का रास्ता खुल सकता था। श्रीमती सरोजिनी नायडू ने इस मेल-मिलाप मे आगे बढकर भाग लिया। कई अखबारो मे तो यहा तक छप गया था कि दोनो दलो मे कितनी ही महत्वपूर्ण

बातो के सम्बन्ध मे समझौता हो गया है। उधर वाइसराय ने ६९ दिनो में भारत के ग्यारहो प्रातो का दौरा कर लिया था। इस दौरे का मुख्य उद्देश्य खाद्य-स्थिति का अध्ययन करना और साथ ही देश के विभिन्न भागो मे सैनिक स्थिति को देखना भी था। इस दौरे मे लार्ड वेवल ने राजनीतिक समस्या पर न तो कुछ कहा और न मद्रास मे श्री राजगोपालाचार्य से हुई बातचीत के अतिरिक्त किसी राजनीतिक वार्ता मे ही भाग लिया।

गांधीजी की रिहाई की मांग

लार्ड वेवल को भारत आये हुए छ महीने और वाइसराय के पद पर उनकी नियुक्ति की घोषणा हुए एक साल का समय बीत चुका था। उन्हे भारतीय राजनीति का अनुभव भी कम न था, क्योंकि इग्लैंड मे भारतमत्री के कार्यालय मे रहकर उन्हे साम्राज्यवाद के रहस्यो का ज्ञान पूरी तरह हो चुका था। इस प्रकार लार्ड वेवल अपने कार्यकाल का दसवा हिस्सा इन छ महीनो मे समाप्त कर चुके थे। देश की आर्थिक, सामाजिक, सैनिक और राजनीतिक समस्याओ का निकट से अध्ययन करने के लिए उन्होने कोई प्रयत्न बाकी न छोडा था। गोकि सैनिक क्षेत्र मे ख्याति प्राप्त करने का समय नही रहा था, फिर भी सैनिक विषयो मे लार्ड वेवल की दिलचस्पी बनी रही। अगर्चे वह फील्डमार्शल की वर्दी छोडने की बात कह चुके थे फिर भी दौरो के मध्य वह सैनिक मामलो मे विशेष दिलचस्पी लेते थे। परन्तु राजनीतिक गतिरोध के सम्बन्ध मे लार्ड वेवल का दृष्टिकोण मानने के लिए भारत, इग्लैंड या अमरीका का लोकमत तैयार न था। हिन्दुस्तान के वयोवृद्ध राजनीतिज्ञ अपने शातिपूर्ण जीवन को त्यागकर सोई हुई ताकतो को जगाने और कुछ न करने की नीति के खतरे से आगाह करने के लिए मैदान मे आ गये थे। महामाननीय शास्त्रीजी का मकसद सिर्फ गाधीजी की रिहाई या राजनीतिक अडगे को दूर करना न होकर कुछ आगे की बातो का खयाल करना था। इसके उपरात भारत के वयोवृद्ध मनीषी महामना पडित मदनमोहन मालवीय ने भी गाधीजी और उनके साथियो की रिहाई की विवेकपूर्ण माग उपस्थित की थी। उन्होने अपनी माग उस उत्तर पर आधारित की थी जो सरकार-द्वारा लगाये गये आरोपो के सम्बन्ध मे गाधीजी ने दिया था। जब कि एक तरफ इस प्रकार की सस्थाए अपनी आवाज शासको के कानो तक पहुचाने का प्रयत्न कर रही थी, जेल के बाहर के काग्रेसियो—विशेषकर उत्तर प्रदेश के काग्रेसियो ने मिलकर महात्मा गाधी के नेतृत्व मे विश्वास प्रकट किया और रचनात्मक कार्यक्रम को आगे बढाने की आवश्यकता पर जोर दिया।

गांधीजी की रिहाई

आखिरकार चमत्कार हुआ, लेकिन उसका एक दु खद पहलू भी था। दूसरी

परिस्थितियो मे गाधीजी की रिहाई एक खुशी की घटना ही मानी जाती और कहा जाता कि ब्रिटेन के युद्ध-मन्त्रिमडल ने एक बुद्धिमत्तापूर्ण काम किया। परन्तु उनकी रिहाई उनकी वीमारी और आसन्न-सकट के कारण हुई। एक सप्ताह पहले उनकी तन्दुरुस्ती विगड़ने के वारे मे जो समाचार छपे उनके कारण देश भर मे घवराहट फैल गयी और वाइसराय के पास रिहाई के लिए तार-पर-तार पहुचने लगे। ब्रिटेन और अमरीका के दूरदर्शी लोग भी अशान्त हो गये। गाधीजी १४ अप्रैल को वीमार पडे। उनके स्वास्थ्य के सम्वन्ध मे जो पहला वुलेटिन निकला उसमे डरानेवाली कोई वात न थी, पर उसी दिन उनकी हालत एकाएक विगडने की सूचना भी मिली। पार्ल्यामेंट मे उनके स्वास्थ्य के वारे मे एक सवाल भी किया गया, जिसके जवाव मे मि० एमरी ने कहा कि गाधीजी की वीमारी ऐसी सगीन नही है कि उन्हे फौरन रिहा किया जाय। इसमे कोई शक नही कि चर्चिल, एमरी और वेवल किसी-न-किसी तरह राजनीतिक अडगे को दूर करने के लिए उत्सुक थे, पर उनकी एक भी माग पूरी नही हो रही थी। दूसरे तरीको के नाकामयाव होने पर वाइसराय के रुख मे भी कुछ परिवर्तन होने लगा था और वह इस पर उतर आये थे कि काग्रेसजनो को खुद ही फैसला करके व्यक्तिगत रूप से वम्वईवाले प्रस्ताव के विरुद्ध मत प्रकट करना चाहिये। परन्तु काग्रेसजन जितना ही विचार करते थे उतना ही प्रस्ताव पर कायम रहने का उनका इरादा पक्का होता था। इतना ही नही, एक आर्डिनेस के अतर्गत काग्रेसजनो पर कुछ आरोप लगाये गये, किन्तु उनका कोई उत्तर प्राप्त नही हुआ। तव क्या होना चाहिये? १५ जनवरी से ६ महीने के लिए नजरवदी के जो आदेश दिये गये थे वे समाप्त हो रहे थे और वन्दियो को आदेशो की अवधि वढाये विना जेलो मे नही रखा जा सकता था। इस कठिनाई को हल करने के लिए प्रकृति या ईश्वर का वरद हस्त आगे वढा। पहले जो वुलेटिन जल्दवाजी मे प्रकाशित किया गया उसमे "चिन्ता की कोई वात नही" और "सब ठीक है" की ध्वनि थी। इसके वाद जो सूचना प्रकाशित हुई उसमे घवराहट थी और एकाएक आगाखा महल का फाटक खोल दिया गया। ६ मई, १९४४ के दिन गाधीजी को उनके दल के साथ आजाद करके पर्णकुटी पहुचा दिया गया, जो पूना मे लेडी ठाकरसी का प्रसिद्ध निवास-स्थान है।

रिहाई के वाद

अव क्या हो? गाधीजी की रिहाई के वाद भारत मे ही नही, इग्लैड और अमरीका मे भी यही सवाल उठाया जा रहा था। न्यूयार्क के 'ईवनिंग टाइम्स' ने साफ लफ्जो मे मजूर किया कि सेंसर की कडाई के कारण अमरीकावालो को गाधीजी की गिरफ्तारी के समय की असली हालत मालूम नही हो सकी। रिहाई

सिर्फ 'डाक्टरी कारणो' मे हुई है, इस बहाने को किसी ने महत्व न दिया और एक-एक करके सभी पत्रो ने यही मत प्रकट किया कि अधिकारी अवसर मिलते ही इस कटु जिम्मेदारी से मुक्त होना चाहते थे। जो भी हो, कम-से-कम सभी इस विषय मे एकमत थे कि कार्य-समिति के सभी सदस्यो को तुरत रिहा किया जाय और इस तरह समझौता का एक और प्रयत्न किया जाय। जापान के विरुद्ध सर्वांगीण युद्ध चलाने के लिए सिर्फ सेना मे भर्ती करना ही काफी न था। यह बात भी ध्यान देने की थी कि इस बार जापान का हमला सीमा की मुठभेड न होकर भारत का पूरा आक्रमण ही था। वे आसाम और बगाल के हिस्सो मे घुस आये थे और स्थिति पहले के मुकाबले मे कही ज्यादा सगीन थी। प्रश्न यह था कि अब इसका मुकाबला कैसे किया जाय?

गाधीजी की तदुरुस्ती सुधर चली थी—या कम-से-कम ऐसी हो गयी थी कि वह मामूली कामकाज कर सके। अब उस राजनीतिक वार्ता को फिर से चलाना जो ९ अगस्त १९४२ को एकाएक भग कर दी गयी थी, ब्रिटिश सरकार का ही काम था। साधारण तौर पर यह विश्वास किया जाता था कि जिस तरह महात्मा गाधी ने गाधी-अरविन-वार्ता और समझौते से पूर्व १४ फरवरी, १९३१ को लार्ड अरविन को पत्र लिखकर बातचीत शुरू की थी, उसी तरह इस बार भी वह वाइसराय को निजी तौर पर पत्र लिखकर उस जगह से वार्ता आरम्भ करेगे, जहा से वह भग हुई थी। जहा तक गाधीजी का सम्बन्ध था, उनके रुख का अदाज ९ अगस्त १९४२ से पहले की उनकी मनोवृत्ति से लगाया जा सकता है। यदि वह और उनके साथी गिरफ्तार न कर लिये जाते तो निश्चय है कि वह वाइसराय को पत्र लिखते। परन्तु गिरफ्तार हो जाने के कारण वे ऐसा न कर सके। इस तरह ६ मई, १९४४ को उन्होने अपने को एक ऐसी लडाई के सेनापति की स्थिति मे पाया, जो कभी शुरू ही नही हुई। अब रक्त और आसुओ से सने इन इक्कीस महीनो का कोई अस्तित्व ही न था और गाधीजी वाइसराय के आगे अपने विचार बिना किसी बाधा के जाहिर कर सकते थे। सच बात तो यह थी कि उनकी रिहाई उनकी शारीरिक अवस्था के कारण नही, बल्कि भारत की बदली हुई परिस्थिति की वजह से हुई थी और लार्ड हैलिफेक्स ने भी यही मत प्रकट किया था। हिन्दुस्तान की हालत मे जो तब्दीली आ गयी थी वह तो इतनी साफ थी कि उसे बताने के लिए लार्ड हैलिफेक्स के कुछ कहने की जरूरत न थी। यह बदली हुई परिस्थिति ही तो थी, जिसमे जापानी, जिन्हे भारत की उत्तर-पूर्वी सीमा से एक सप्ताह मे निकाल दिया जाना चाहिए था, नौ महीने तक बने रहे। इस बदली हुई परिस्थिति मे वाइसराय से कुछ कहने का गाधीजी का अधिकार था—उनका कर्तव्य था। दूसरी तरफ उनसे मि० जिन्ना से मिलने का अनुरोध भी किया जा रहा था। इस सबध मे अल्लामा मशरिकी ने जब तार-द्वारा गाधीजी से अनुरोध

किया तब गाधीजी ने कहा कि मि० जिन्ना के लिए मेरा पिछले वर्ष का निमत्रण कायम है और मै उनसे मिलने के लिए हमेशा तैयार हू। परन्तु मै अपने जेल जीवन तथा राजनीतिक परिस्थिति के बारे मे तब तक कोई वक्तव्य न दूँगा जब तक यह विश्वास न हो जाय कि वक्तव्य मे कोई काट-छाट न की जायगी। यह ठीक है कि यह प्रतिबध गाधीजी के वक्तयो के खिलाफ न था, किन्तु उन्हे इस बात का कोई आश्वासन नही दिया गया कि सेसर के साधारण नियमो के अन्तर्गत देश से बाहर जानेवाले उनके वक्तव्यो मे कोई काट-छाट न की जायगी। स्थिति यह थी कि भारत से बाहर जानेवाले सभी तारो और पत्रो के सेसर होने का नियम था और सरकार गाधीजी के साथ भी इस सम्बन्ध मे कोई रियायत करने को तैयार न थी।

गाधीजी की रिहाई को तीन हफ्ते से अधिक समय बीत चुका था। उनके अगले कदम के बारे मे इन तीन हफ्तो मे तरह-तरह की अटकलबाजिया लगायी गयी। एक अनुमान यह भी था कि मई के आखिर मे वह एक ऐसा वक्तव्य देगे, जिसके परिणामस्वरूप सब काग्रेसी नेता छोड दिये जायेगे। कुछ तो यहा तक सोचने लगे थे कि गाधीजी बम्बईवाला प्रस्ताव वापस ले लेगे। परन्तु गाधीजी चट्टान के समान अडिग थे और १३ मई को उन्होने डाक्टर जयकर के नाम लिखा अपना निम्न पत्र प्रकाशित कर दिया —

जुहू, २० मई, १९४४

प्रिय डा० जयकर,

देश मुझसे बहुत कुछ आशा करता है। मै नही जानता कि मेरी इस रिहाई के बारे मे आपकी क्या राय है। सच यह है कि इससे मुझे खुशी नही हुई है। मै तो इसके कारण लज्जित हूँ। मुझे बीमार न पडना चाहिए था। मेरा खयाल है कि मौजूदा कमजोरी दूर होते ही सरकार मुझे फिर जेल भेज देगी। और अगर वह मुझे गिरफ्तार न करे तो मै क्या करूँ ?

मै अगस्तवाला प्रस्ताव वापस नही ले सकता ? जैसा कि आप कह चुके है, वह दोषहीन है। उसके समर्थन के बारे मे शायद आपका मत मुझसे न मिले, लेकिन मुझे तो वह प्राणो के समान प्रिय है। मै २९ तारीख तक चुप हूँ। इस बीच क्या मै आपके पास प्यारेलाल को भेजूँ ? यह भी आपके स्वास्थ्य पर निर्भर रहेगा, क्योकि मै जानता हू कि आपकी भी तन्दुरुस्ती ठीक नही है।

आपका शुभचितक
एम० के० गांधी

यह पत्र प्रकाशित होते ही जनता का ध्यान उसकी तरफ केन्द्रित हो गया, क्योकि उसमे उन दिनो की सबसे महत्वपूर्ण समस्या के विषय मे मत प्रकट किया

गया था। गाधीजी की रिहाई मे यह आशा नही की गयी थी कि प्रस्ताव वापस लेकर या आत्म-समर्पण करके राजनीतिक कैदियो को छुटकारा दिलाया जायगा, बल्कि यह सोचा गया था कि गाधीजी कोई ऐसा रास्ता जरूर निकाल लेंगे, जिससे किसी पक्ष के घुटने टेके बिना ही काग्रेसी नेताओ की रिहाई हो सकेगी और राजनीतिक अडगे को दूर किया जा सकेगा।

गाधीजी जब-कभी भी कैद मे छोडे गये है तभी उन्होने राजनीतिक अडगे को समाप्त करने की चेष्टा की है। इसलिए जब इस बार छूटे तब उन्होने १७ जून को लार्ड वेवल के पास पत्र लिख कर कार्य-समिति के सदस्यो से मिलने की इजाजत मागी और लिखा कि यदि यह न हो सके तो कोई फैसला करने से पहले आप ही मुझ से मिल ले। पत्र इस प्रकार है —

नेचर क्योर क्लिनिक,
६, टोडीवाला रोड, पूना
१७ जून, १९४४

प्रिय मित्र,

यदि यह पत्र एक ऐसे काम के सम्बन्ध मे न होता, जिसमे आप व्यस्त है, तो मै आपको पत्र लिखकर कभी कष्ट न देता।

गोकि इसकी कोई वजह नही है, फिर भी देश भर और शायद बाहरवाले भी सर्वसाधारण के लिए मुझसे कोई ठोस कार्य करने की उम्मीद रखते है। खेद है कि मुझे स्वास्थ्य-लाभ करने मे इतना समय लग रहा है। लेकिन, बिल्कुल अच्छा होने पर भी मै काग्रेस की कार्य-समिति के विचार जाने बिना क्या कर सकता था? कैदी की हैसियत से मैने उनसे मिलने की इजाजत मागी थी। अब एक आजाद व्यक्ति की हैसियत से फिर मै उनसे मिलने की इजाजत मागता हू। यदि इस विषय मे कोई फैसला करने से पहले आप मुझसे मिलना मजूर करले तो डाक्टरो के लम्बी सफर की इजाजत देते ही जहा भी आप चाहेगे आने के लिए मै खुशी से तैयार हो जाऊँगा।

नजरबन्दी की हालत मे मेरे और आपके बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ था उसे मैने कुछ मित्रो के बीच निजी उपयोग के लिए वितरित कर दिया है। परन्तु मै महसूस करता हूँ और यही इसाफ का तकाजा है कि सरकार उन पत्रो को प्रकाशित करने की इजाजत दे दे।

३० तारीख तक मेरा पता वही होगा, जैसा कि ऊपर लिखा है।

आपका शुभचिन्तक
मो० क० गाधी

इस पत्र का लार्ड वेवल ने २२ जून, १९४४ वाले अपने पत्र मे उत्तर दिया। वाइसराय का पत्र यह है —

वाइसराय भवन,
नई दिल्ली,
२२ जून, १९४४

प्रिय गाधीजी,

आपका १७ जून का पत्र मिला। पिछले पत्र-व्यवहार मे हम दोनो के दृष्टि-कोण मे जो उग्र मतभेद प्रकट हुआ है उमे देखते हुए मै महसूस करता हू कि अभी हमारे मिलने से कोई लाभ न होगा और उससे केवल ऐसी आशाए ही उत्पन्न होगी, जो पूरी नही हो सकती।

यही बात आपके द्वारा कार्यसमिति से मिलने के सम्बन्ध मे कही जा सकती है। आप 'भारत छोडो' प्रस्ताव के प्रति सार्वजनिक रूप से अपनी सहमति प्रकट कर चुके है, जिसे मै भविष्य के लिए सगत तर्क या व्यावहारिक नीति नही मानता।

यदि स्वास्थ्य-लाभ और सोच-विचार करने के वाद आप भारत के हित के लिए निश्चित और रचनात्मक नीति का सुझाव पेश कर सके तो मै खुशी से उस पर विचार करूगा।

चूँकि आप मुझसे पूछे बिना अपने और मेरे बीच हुए पत्र-व्यवहार को वितरित कर चुके और वह समाचार-पत्रो मे भी प्रकाशित हो चुका है इसलिए मैने आपकी नजरबदी के समय लिखे गये सभी राजनीतिक-पत्रो को प्रकाशित करने का आदेश दे दिया है।

आपका शुभचिन्तक
वेवल

यदि लार्ड वेवल के पत्रो और भाषणो से उनके स्वभाव का पता लगाया जाय तो प्रकट होता है कि वह किसी निश्चय पर तो जल्दी पहुँच जाते है, किन्तु आगे जाकर अपने मस्तिष्क को प्रभावित होने से नही बचा सकते। १७ फरवरी, १९४४ को केन्द्रीय धारा सभाओ के सयुक्त अधिवेशन मे भाषण करते हुए उन्होने कहा कि मैने जो भी विचार प्रकट किये है वे मेरे पहले उठनेवाले विचार है और इनमे परिवर्तन हो सकता है। गाधीजी को लिखे इस पत्र मे उन्होने शुरू मे अपने और गाधीजी के बीच "उग्र मतभेद" की चर्चा की है और कहा है कि उसके कारण मिलने से कोई लाभ न होगा, किन्तु पत्र के अत मे उन्होने उदारतापूर्वक गाधीजी के स्वास्थ्य लाभ का जिक्र किया है और कहा है कि गाधीजी "सोच-विचार करने के वाद" किसी निश्चित और रचनात्मक नीति का सुझाव उपस्थित करे। गाधीजी को सोच-विचार करने मे अधिक समय नही लगा। उन्हे न तो कोई

गुत्थी सुलझानी थी और न राजनीति की पेचीदगियों में ही पड़ना था, क्योंकि गांधीजी सत्य के जिस पथ का अनुसरण करते थे वह सीधा है और अहिंसा की रणनीति भी सरल ही है।

गांधीजी की रिहाई से भारत और कांग्रेस के इतिहास में एक नये अध्याय का श्रीगणेश हुआ था। जनता और सरकार दोनों ही को उनसे बहुत कुछ आशाएं थीं। जनता चाहती थी कि गांधीजी जादू की छड़ी घुमाकर निराशा की परिस्थिति का अन्त कर उसके स्थान पर आशा और विश्वास का सचार करदे। सरकार चाहती थी कि वह व्यक्तिगत और राष्ट्रीय आत्म-सम्मान को त्याग कर सत्य और अहिंसा के अपने चिर-सिद्धांतों की बलि चढ़ाएँ और पराजित पक्ष की भांति राजनीति के अलावा अन्य राष्ट्रीय कल्याणकारी क्षेत्रों में अपना सहयोग प्रदान करें। गांधीजी ने जनता से कहा कि उनके पास ऐसा कोई पारस पत्थर नहीं है जो जनता की शिथिल मानसिक स्थिति के लोहे को सोने में बदल सके और न कोई ऐसा जीवनदायी अमृत ही है, जो उदास मन में स्फूर्ति और उत्साह का सचार कर सके। इसी तरह सरकार से भी गांधीजी ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया। आपने अपने जीवन का आधारभूत सिद्धांत बताया—उसी जीवन का जो सत्य और अहिंसा पर आधारित रहा है और जिसकी अभिव्यक्ति सत्याग्रह तथा अहिंसात्मक असहयोग द्वारा हुई है।

गांधीजी का वक्तव्य

गांधीजी की रिहाई को पांच सप्ताह हो चुके थे। संसार यह जानने को उत्सुक था कि गांधीजी राजनीतिक अड़गे को दूर करने की क्या तरकीब निकालते है या वह ऐसी क्या बात कहते है, जिससे सुलह की बातें शुरू होने का रास्ता साफ हो। ९ जुलाई १९४४ को यही हुआ। उन्होंने 'न्यूज क्रानिकल' के प्रतिनिधि मि० गेल्डर को एक वक्तव्य प्रकाशित होने के लिए नहीं बल्कि वाइसराय तक पहुंचाने के लिए दिया। अपनी इस मुलाकात में, तथा इसका विवरण प्रकाशित होने के सम्बन्ध में गांधीजी ने जो कुछ कहा उसका सार यह है —

(१) वह कांग्रेस-कार्य-समिति की सलाह के बिना कुछ नहीं कर सकते।

(२) यदि वह वाइसराय से मिलेंगे तो उनसे कहेंगे कि इस मुलाकात का उद्देश्य मित्रराष्ट्रों के युद्ध-प्रयत्न में बाधा डालना न होकर उसमें सहायता पहुँचाना ही होगा।

(३) उनका सत्याग्रह शुरू करने का इरादा बिलकुल नहीं है। इतिहास कभी दुहराया नहीं जा सकता और वह देश को फिर १९४२ की स्थिति में नहीं रख सकते।

(४) पिछले दो वर्ष में दुनिया आगे बढ़ी है, इसलिए परिस्थिति की फिर से समीक्षा करनी पड़ेगी।

(५) नयी परिस्थिति मे गाधीजी गैर-सैनिक शासन पर पूरा नियत्रण रखनेवाली राष्ट्रीय सरकार से ही सतुष्ट हो जायँगे।

(६) यदि राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हुई तो गाधीजी उसमे भाग लेने के लिए काग्रेस को सलाह देगे।

(७) स्वाधीनता की प्राप्ति के बाद वह काग्रेस को सलाह देना बद कर देगे।

गाधीजी का अगला कार्य तोड-फोड तथा गुप्त कार्रवाई की निन्दा करना था। उन्होने समाचार-पत्रो मे वक्तव्य प्रकाशित करके तोड-फोड की निन्दा की और कहा कि यह हिसा है और इसने काग्रेस के आन्दोलन को हानि पहुँचायी है। उन्होने कार्यकर्ताओ को रचनात्मक कार्यक्रम पूरा करने की सलाह दी और इस सिलसिले मे १४ बातो का हवाला दिया।

इस तरह गाधीजी ने स्पष्ट कर दिया कि यदि ब्रिटेन भारत की स्वाधीनता की घोषणा कर दे तो वह कार्य-समिति को बम्बईवाले प्रस्ताव के उस भाग को वापस लेने की सलाह देगे, जिसमे दडात्मक कार्रवाई का हवाला है, और साथ ही उससे युद्ध-प्रयत्नो मे नैतिक तथा आर्थिक सहायता करने का भी अनुरोध करेगे। गाधीजी ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि वह खुद युद्ध-प्रयत्न मे किसी प्रकार की बाधा न डालेगे। इसके बाद उन्होने बताया कि यदि युद्ध-क्षेत्र मे २००० टन गोली-गोले भेजने और दुर्भिक्ष पीडित क्षेत्र मे २००० टन भोजन भेजने का सवाल उठा तो वह इनमे से किसे तरजीह देगे और ऐसी परिस्थिति उठने पर कार्य-समिति को क्या सलाह देगे?

महान् घटनाओ और महान् व्यक्तियो का जन्म एक साथ होता है। गाधीजी ने फरवरी-मार्च, १९४३ के अनशन के दिनो मे जब साम्प्रदायिक समस्या के बारे मे लीग के कुछ सुझावो पर अपनी मजूरी दी थी तब उन्हे इस बात का गुमान भी न था कि इन सुझावो मे से एक कुछ नयी बातो के साथ स्टुअर्ट गेल्डर की मुलाकात के साथ ही प्रकाशित होगा। गाधीजी ने कहा कि दोनो घटनाए एक साथ सिर्फ सयोगवश हुई, और यह उन्होने ठीक ही कहा था। परन्तु ये दोनो ही घटनाए एक साथ जिस रूप मे हुई उसे ऐतिहासिक आवश्यकता कहा जा सकता है। इधर श्री राजगोपालाचारी गाधीजी की रिहाई के बाद जून, १९४४ मे कुछ देरी से उनसे मिलने पहुचे थे, उधर स्टुअर्ट गेल्डर उतने ही अप्रत्याशित रूप से जुलाई के प्रथम सप्ताह मे पचगनी पहुचे थे। फिर भी वे प्राय एक साथ ही गाधीजी के सम्पर्क मे आये थे। जहा एक ने साम्प्रदायिक समस्या के निबटारे के प्रस्तावो की सूचना जनता को दी थी वहा दूसरे ने राजनीतिक गतिरोध दूर करने के प्रस्तावो को अधिकारियो तक पहुचाया था। ये दो पृथक् घटनाए जान पडती है, किन्तु वे प्रकृति के निर्जीव करिश्मे के समान न होकर जीवित तथ्य के ही समान थी। वे समुद्र मे जल और मछली की तरह या व्यक्ति मे उसके मस्तिष्क और प्राणो

की तरह एक साथ हुई और एक साथ ही आगे बढी। वे चाहे असम्बद्ध घटनाएं ही जान पडती हो, किन्तु एक साथ घटित होने के कारण ही वे भविष्य और इतिहास का निर्माण कर सकी।

गांधी-जिन्ना-वार्ता

गाधीजी अपनी रिहाई के बाद जो लार्ड वेवल से सीधी बात-चीत करने लगे, इसका यह मतलब न था कि वह मि० जिन्ना की उपेक्षा करके अग्रेजो से समझौता करना चाहते थे। एक मान्य सस्था को छोडकर विदेशियो के साथ मिलकर उन्नति की बात सोचना बुद्धिमत्तापूर्ण अथवा उचित कुछ भी न था। इसीलिए अपने अनशन के समय ही आगाखा महल मे गाधीजी ने आत्म-निर्णय के सिद्धात के आधार पर समझौता का एक गुर निकाला था। यह योजना १ साल २ महीने तक श्री राजगोपालाचार्य की देख-रेख मे अतिम रूप ग्रहण करती रही। ८ अप्रैल १९४४ को यह मि० जिन्ना के आगे उपस्थित की गयी, उन्होंने उसे स्वीकार नही किया। १७ अप्रेल को श्री राजगोपालाचार्य ने एक पत्र लिखकर श्री जिन्ना से उस योजना पर फिर से विचार करने का अनुरोध किया। यह सब गाधीजी की रिहाई अर्थात् ६ मई से पूर्व हुआ। गाधीजी की रिहाई के बाद श्री राजगोपालाचार्य ने ३० जून को मि० जिन्ना के पास एक तार भेजा और उन्हे यह भी सूचित कर दिया कि गाधीजी योजना से पूरी तरह सहमत है।

श्री राजगोपालाचार्य ठीक वक्त पर पचगनी पहुँचे और तार-द्वारा उन्होने मि० जिन्ना से अपनी बाते जारी रखी और ऐसा करते समय गाधीजी की भी सहमति प्राप्त कर ली।

पाठको को शायद आश्चर्य होगा कि ८ अप्रैल, १९४४ को दिल्ली मे प्रस्ताव उपस्थित करने की गलती के बाद श्री राजगोपालाचार्य ने उनके सम्बन्ध मे पचगनी से तार क्यो दिया? कारण स्पष्ट है। राजाजी ने गाधीजी से सब कुछ बताया होगा और गाधीजी ने जो कुछ हुआ उसे उसकी अवस्था तक पहुँचाने का अनुरोध राजाजी से किया होगा। तारो के आदान-प्रदान के बाद प्रस्तावो को प्रकाशित कर दिया गया। योजना इस प्रकार थी —

(१) स्वाधीन भारत के लिए नये विधान की निम्न शर्तें पूरी होने की हालत मे मुस्लिम-लीग स्वाधीनता के लिए भारत की माग का समर्थन करेगी और सक्रान्ति काल के लिए अस्थायी अत कालीन सरकार स्थापित करने मे काग्रेस के साथ सहयोग करेगी।

(२) युद्ध समाप्त होने पर भारत के उत्तर-पश्चिम तथा उत्तर-पूर्व मे उन मिले हुए जिलो को निर्दिष्ट करने के लिए, जिनमे मुसलमानो का स्पष्ट बहुमत है, एक कमीशन की नियुक्ति की जायगी। इस प्रकार निर्दिष्ट क्षेत्रो मे वहा के

समाचारो तथा केन्द्रीय असेम्वली मे होनेवाले सवाल-जवावो मे चिंता तथा परेशानी की भावना फैलती जा रही थी। १९४५ के मार्च और अप्रैल तक सब नेता अपने-अपने प्रातो के जेलो मे भेज दिये गये। सिर्फ श्री कृपलानी को ही अपने जन्म के प्रात को भेजा गया, जिसे वे वीस साल पहले छोड चुके थे।

इसी समय २० अप्रैल, १९४५ के लगभग कामन-सभा में भारत की चर्चा छिडी और श्री एमरी ने वैधानिक व्यवस्था भग होने के सम्बन्ध मे भारत-सम्बन्धी आदेशो को स्वीकृति के लिए उपस्थित किया। ऐसा करने का यह अतिम अवसर था। इन आदेशो का सम्बन्ध मद्रास, वम्बई, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा वरार और विहार से था। श्री एमरी ने कहा कि इन आदेशो का उद्देश्य प्रातो में कामन-सभा के शासन-सम्बन्धी अधिकार मे एक वर्ष के लिए और वृद्धि करना है। यह व्यवस्था अस्थायी तथा असाधारण है। यदि इनमे से किसी प्रात मे राजनैतिक नेता मन्त्रि-मण्डल स्थापित करके युद्ध प्रयत्नो का समर्थन करना स्वीकार कर लेगे और साथ ही उनके मन्त्रिमडल के पर्याप्त समय तक स्थिर रहने और धारा-सभा का समर्थन प्राप्त कर सकने की सम्भावना दिखाई देगी तो गवर्नरो का कर्तव्य ऐसे मन्त्रिमडल को कायम करना होगा।

भूलाभाई-लियाकतअली-समझौता

दो दिन वाद २२ अप्रैल, १९४५ को श्री भूलाभाई देसाई ने पेशावर के सीमा-प्रातीय राजनैतिक सम्मेलन मे अपनी योजना के सम्बन्ध मे रहस्योद्घाटन किया। अगस्त, १९४२ के वाद भारत के किसी भी प्रात मे होनेवाला यह पहला राजनैतिक सम्मेलन था। सम्मेलन मे उपस्थित किये गये मुख्य प्रस्ताव में काग्रेस के नेताओ की रिहाई तथा केन्द्र मे राष्ट्रीय सरकार की स्थापना का अनुरोध किया गया था। प्रस्ताव पर भाषण करते हुए श्री भूलाभाई देसाई ने कहा कि केन्द्र मे अतर्कालीन-सरकार स्थापित करने के प्रस्ताव पहले से ही ब्रिटिश-सरकार के सम्मुख उपस्थित है। उन्होने माग उपस्थित की कि ब्रिटेन को घोषणा कर देनी चाहिए कि भारतीय-सरकार और उसके प्रतिनिधियो का पद अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन मे अन्य सरकारो तथा उनके प्रतिनिधियो के समान होगा। ११ जनवरी, १९४५ को होनेवाले भूलाभाई-लियाकतअली-समझौते की शर्तें अगस्त, १९४५ से पूर्व प्रकाशित नही हुई थी, किन्तु अप्रैल मे ही उन पर प्रकाश पड चुका था। उसकी मुख्य शर्तें इस प्रकार थी —

(क) केन्द्रीय शासन परिषद् मे काग्रेस तथा लीग के सदस्यो की सख्या वरावर रहेगी। सरकार से नामजद हुए व्यक्तियो का केन्द्रीय धारासभा का सदस्य होना आवश्यक नही है।

(ख) अल्पसख्यको (विशेषकर परिगणित जातियो और सिखो) के प्रतिनिधि भी रहेगे।

(ग) प्रधान सेनापति भी होगे।

"इस प्रकार की स्थापना मौजूदा भारतीय शासन के अन्तर्गत होगी और वह वर्तमान व्यवस्था के भीतर रह कर कार्य करेगी। परन्तु यह मान लिया जायगा कि यदि मत्रिमडल अपना कोई प्रस्ताव धारासभा से पास नही करा पायगा तो इसके लिए वह गवर्नर-जनरल या वाइसराय के विशेषाधिकारो के प्रयोग का आश्रय न लेगा। इसके परिणामस्वरूप मत्रिमडल काफी हद तक गवर्नर-जनरल के अधिकारो से स्वतत्र हो जायगा।

"काग्रेस और लीग इस विपय मे सहमत है कि यदि इस प्रकार की अतर्कालीन सरकार की स्थापना हुई तो उस का पहला कार्य काग्रेस कार्यसमिति के सदस्यो की रिहाई होगा।"

इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जिन उपायो को बर्ता जायगा उन पर भी नीचे प्रकाश डाला जाता है —

उपर्युक्त समझौते के आधार पर ऐसा कोई रास्ता निकाला जाय जिससे गवर्नर-जनरल यह प्रस्ताव या सुझाव करने के लिए तैयार हो जाय कि वह खुद काग्रेस तथा लीग के समझौते के आधार पर केन्द्र मे, एक अन्तर्कालीन सरकार की स्थापना करना चाहते है और जब गवर्नर-जनरल मि० जिन्ना और श्री देसाई को सयुक्त रूप से अथवा अलग बुलाएँ तब उपर्युक्त प्रस्ताव उनके सामने इस उद्देश्य से रख दिये जाय कि इन्हे नयी सरकार मे भाग लेने के लिए तैयार किया गया है।

अगला कदम प्रान्तो मे धारा ९३ का हटाया जाना और केन्द्र के ही समान वहा मिलीजुली सरकारो की स्थापना होगा।

जबकि भारतमत्री तथा वाइसराय के प्रतिक्रियावादी रुख के बावजूद भारत मे घटनाचक्र इस दिशा मे चल रहा था तभी ७ मई को यूरोपीय युद्ध समाप्त होने का सुसम्वाद भारत मे ९ मई को पहुँचा। यह समाचार पाकर सभी को प्रसन्नता हुई, किन्तु भारतीय जनता को इसके कारण कोई तसल्ली नही हुई। भारत के नेता जेल के सीखचो मे बद थे और वह खुद गुलामी की जजीरो मे जकड़ा हुआ था। इसलिए वह खुशिया कैसे मनाता!

वेवल की लदन-यात्रा

२१ मार्च, १९४५ को लार्ड वेवल की लदन-यात्रा से पूर्व उसके सम्बन्ध मे बहुत विज्ञापन किया गया और समाचार-पत्रो मे उसकी बारम्बार चर्चा भी की गई। परन्तु वह एकाएक वायुयान-द्वारा रवाना हो गये। श्री एमरी ने वेवल के आगमन के सम्बन्ध मे कहा कि इस अवसर से लाभ उठा कर वैधानिक स्थिति

पर विचार तो अवश्य किया जायगा, किन्तु उससे अधिक आशा न करनी चाहिए। सच तो यह था कि लार्ड वेवल को स्वयं श्री एमरी ने ही सलाह-मशविरे के लिए आमंत्रित किया था। हर तरफ से परिस्थिति गम्भीर थी। ब्रिटिश लोकमत इस बात पर जोर दे रहा था कि भारत के राजनैतिक अडंगे को दूर करने में भारत और इंग्लैण्ड दोनों ही का समान रूप से लाभ है। यह घोषणा हो चुकी थी कि लंदन में लार्ड वेवल कार्य-समिति के सदस्यों की रिहाई के सम्बन्ध में भारत-मंत्री श्री एमरी से सलाह करेंगे और इस बातचीत में राजनीतिक परिस्थिति तथा भारत की वैधानिक स्थिति पर विचार होगा। भारत से रवाना होने से पूर्व लार्ड वेवल के सामने एक रचनात्मक सुझाव भी पेश हो चुका था। यह उपर्युक्त देसाई-लियाकतअली-सुझाव था।

जब कि लार्ड वेवल अभी लंदन में ही थे और उनके कार्य के सम्बन्ध में सनसनी-पूर्ण तारों की झड़ी लगी हुई थी, ब्रिटिश मंत्रियों का मतभेद अपनी चरम सीमा को पहुँच गया, जिस के परिणामस्वरूप २३ मई, १९४६ को प्रधान मंत्री चर्चिल ने इस्तीफा दे दिया। मि० चर्चिल १० मई, १९४० को मि० चेम्बरलेन के स्थान पर प्रधान मंत्री बने थे। जापान के साथ होनेवाला युद्ध समाप्त होने तक संयुक्त मंत्रिमंडल में रहने से मजदूर दलवाले मंत्रियों के इनकार करने पर वर्तमान राज-नैतिक संकट उत्पन्न हुआ था। मजदूर दल के प्रमुख नेता मि० मारीसन, मि० बेविन और मि० डाल्टन थे। मि० बेविन ने घोषणा की कि यदि अगले चुनाव में शासनसूत्र मजदूर दल के हाथ में आया तो भारत मंत्री का कार्यालय तोड़ दिया जायगा और भारत से डोमीनियन कार्यालय का सम्बन्ध रहेगा। जहाँ तक भारत को स्वराज्य देने का सम्बन्ध है, मि० बेविन ने साफ कह दिया कि वह उसे क्रमशः ही मिलेगा।

एमरी का वक्तव्य

४ जून, १९४५ के दिन वेवल भारत वापस आये और दस सप्ताह की अनु-पस्थिति के बाद उन्होंने अपना कार्य-भार संभाला। इंग्लैंड में वह जितने समय रहे, वह बिलकुल असाधारण समय था। वह उस देश के इतिहास का एक ऐसा समय था, जिसमें पुरानी व्यवस्था विदाई लेती है और नवीन की आशा जाग्रत हो उठती है। इसी बीच श्री एमरी ने ६ जून को लंदन के रोटरी क्लब में भाषण देते हुए कहा—तीन साल से अधिक समय गुजरा कि हमने इच्छा प्रकट की थी कि युद्ध के बाद हम भारत को ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के अंदर—और यदि वह चाहे तो बाहर भी—पूर्ण स्वाधीनता प्रदान करें, किन्तु शर्त यह है कि भारत के मुख्य दल देश के भावी विधान के सम्बन्ध में कोई समझौता करलें। अन्त में उन्होंने यह भी कहा —

"अगर इस समस्या का कोई पूर्ण या तर्कसगत जवाब नही मिलता (यानी अगर सत्ता हस्तातरित करने के लिए स्वीकृत उत्तराधिकारी नही मिलते) तो कोई कारण नही कि भारत तथा ब्रिटेन दोनो ही जिस गतिरोध को समाप्त करना चाहते है उससे बाहर निकलने का कोई-न-कोई मार्ग उन्हे प्राप्त न हो जाय। जरूरत इस बात की है कि हम फिर से कोशिश करे।"

वेवल-योजना

१४ जून, १९४५ को लार्ड वेवल ने भारत की जनता के लिए रेडियो से एक भाषण ब्राडकास्ट किया और साथ ही प्राय उसी समय भारत-मत्री श्री एमरी ने भी पार्लमेट मे एक वक्तव्य दिया। इन दोनो वक्तव्यो मे एक ही प्रकार के विचार तथा भाव प्रकट किये गये और एक ही योजना उपस्थित की गयी। योजना की मुख्य बात यह थी कि वाइसराय चुने हुए व्यक्तियो का एक सम्मेलन बुलाएँ जिससे कि नई शासन-परिषद् के सदस्यो की एक सूची तैयार की जा सके। इस सूची मे ऐसे व्यक्ति सम्मिलित किये जाय,जो सार्वजनिक रूप से तीन बातें स्वीकार करने को तैयार हो और इन तीन बातो मे सब से महत्त्वपूर्ण जापानियो के विरुद्ध युद्ध करके उन्हे हराना हो। वाइसराय ने अपने ब्राडकास्ट मे कहा, "विभिन्न दल ऐसे योग्य तथा प्रभावशाली व्यक्तियो के नामो की सिफारिश करे, जो विदेश विषय को मिलाकर सभी विभागो के प्रबध तथा उनके विपय मे निश्चय करने की जिम्मेदारी उठाने को तैयार हो।" वाइसराय ने यह भी कहा कि हिन्दुओ (अछूतो को छोडकर) और मुसलमानो की सख्या बराबर रहेगी और कार्य का सचालन तत्कालीन विधान के अनुसार होगा यानी "भारत मत्री और गवर्नर जनरल के नियत्रण मे।" उन्होने अन्त मे कहा, "मै यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि ये प्रस्ताव सिर्फ ब्रिटिश भारत के ही सम्बन्ध मे है और इनका प्रभाव सम्राट् के प्रतिनिधि से नरेशो के सम्बन्धो पर बिलकुल नही पडता। जहा तक रियासतो का सम्बन्ध है, यह स्वीकार किया जाता है कि दर्मियानी वक्त मे सम्राट् के प्रतिनिधि के अधिकार जारी रहेगे, फिर भी यह स्पष्ट है कि राष्ट्रीय सरकार को कितने ही ऐसे विपय हाथ मे लेने पडेगे जिनका रियासतो से सम्बन्ध होगा, जैसे, व्यापार, उद्योग, श्रम आदि। इसके अतिरिक्त एक तरफ रियासती प्रजा तथा नरेश ओर दूसरी तरफ राष्ट्रीय सरकार के सदस्यो के मध्य की दीवार हटनी चाहिए जिससे समान समस्याओ को परस्पर वाद-विवाद और सलाह-मशविरे के द्वारा हल किया जा सके। यदि सम्मेलन सफल हुआ तो मुझे केन्द्रीय शासन-परिषद् स्थापित करने के विपय मे सहमत होने की आशा है। ऐसी अवस्था मे धारा ९३ वाले प्रातो मे मन्त्रिमण्डल फिर से काम करने लगेगे। ये प्रान्तीय मत्रिमडल मिलेजुले होगे। . यदि सम्मेलन दुर्भाग्यवश असफल हुआ तो विभिन्न

राजनैतिक दलो मे कोई समझौता होने तक हमे वर्तमान अवस्था मे र
पडेगा।"

शिमला-सम्मेलन

वेवल-योजना के अनुसार शिमला मे जून के महीने मे सम्मेलन हुआ।
राय ने सम्मेलन के सम्मुख पदो तथा उनमे मिलाए जाने वाले विषयो
उपस्थित की। सम्मेलन मे जो बहस तथा प्रश्नोत्तर हुए, उनका यहा
करना ठीक न होगा, किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि जब
के लिए मिल-जुलकर एक सयुक्त सूची उपस्थित करना असम्भव हो
प्रत्येक दल तथा व्यक्ति से अपनी-अपनी सूची उपस्थित करने को कह
फिर भी बडी विचित्र बातें हुई। २८ जून से दो बैठके हो चुकने के बाद
की १४ जुलाई वाली बैठक मे सफलता मिलने की आशा की जा रही थी
सोच-विचार के बाद उसमे दो सूचिया उपस्थित की गई। यह बडे दुख
थी कि अबतक कोई सयुक्त सूची नही बन पाई थी। यदि ऐसा होता तो
उन्नति का मार्ग खुल जाता। भाग्य मे तो यही था कि मुल्क की गुला
आपसी फूट के कारण हुई थी वह हमारे बीच बनी रहे। सयुक्त सूची
न कर सकने का मतलब यह हुआ कि भारत के एक कोने की आवाज
गई।

११ जुलाई को मुस्लिम लीग के नेता ने सिर्फ १५ मिनट तक वाइ
मुलाकात की और इस मुलाकात मे उन्होने कहा कि वाइसराय की सूची
गैर-लीगी नाम है उन्हे वे स्वीकार नही कर सकते, क्योकि लीग भारत के
मानो की एकमात्र प्रतिनिधि होने का दावा करती है और उन्होने जो सू
उसमे वे अपने दल के अतिरिक्त किसी बाहरी नाम को शामिल करने
तैयार नही है। वाइसराय ने इससे अपना मतभेद प्रकट किया। कुछ
बाद गाधीजी वाइसराय से मिले और अगले दिन कांग्रेस के अध्यक्ष
के लिए बुलाया गया। वाइसराय ने सिर्फ इतना ही कहा कि मैंने मुस्लि
निधियो की जो सूची बनाई है मि० जिन्ना उससे सहमत नही है। इससे
वाइसराय ने नेताओ को कुछ नही बताया। वाइसराय के कार्य की विचित्र
थी। वह दलो मे समझौता कराने का तो प्रयत्न कर रहे थे, किन्तु उन्हो
अपने हाथ मे सुरक्षित रखा था और अपने इसी अधिकार के कारण वह
सूची तैयार कर रहे थे। वाइसराय ने नेताओ से सूचिया तो सिर्फ इसलि
थी कि उनमे से शासन-परिषद् के लिए वह नामो का चुनाव करले। परन्तु
राय कोई सूची तैयार नही कर सके। उचित कार्य-पद्धति तो यह होती
अपनी सूची कांग्रेसी नेताओ को दिखाते और वे उसे स्वीकृति के लिए कार्य

के आगे उपस्थित करते। १४ जुलाई को वाइसराय ने सम्मेलन यह कहते हुए समाप्त कर दिया कि उन्हे अपने प्रयत्नो मे असफलता मिली है और इसीलिए सम्मेलन को अनिश्चित काल के लिए स्थगित किया जाता है।

वेवल का भाषण

इस प्रकार १४ जून से २५ अगस्त तक का काल सुस्ती का था जो देखने मे तो थोडा जान पडता है, किन्तु भारत में वैधानिक परिवर्तन देखने को उत्सुक लोगो के लिए वह बहुत लम्बा काल था। मध्यवर्ती काल में ब्रिटिश आम चुनाव का परिणाम प्रकट हुआ और १० जुलाई, १९४५ को मजदूर-सरकार की स्थापना हुई। चुनाव मे श्री एमरी हार गये और उनके स्थान पर लार्ड पैथिक लारेस भारत-मत्री बनाये गये। इसके कुछ ही समय बाद लार्ड वेवल को इग्लैण्ड बुलाया गया। वह लदन २५ अगस्त को पहुचे और उनकी वापसी से पहले ही भारत मे केद्रीय तथा प्रान्तीय व्यवस्थापिका-सभाओ के आम चुनावो की घोषणा की गई।

वेवल स्वय १८ सितम्बर को वापस आये। आते ही उन्होने अगले ही दिन एक भाषण ब्राडकास्ट किया, जो सक्षेप मे इस प्रकार है —

"हाल ही मे लदन मे सम्राट् की सरकार के साथ मेरा वार्तालाप समाप्त होने पर उसने मुझे निम्न घोपणा करने का अधिकार प्रदान किया है :—

"जैसा कि पार्लमेट के उद्घाटन के अवसर पर सम्राट् ने अपने भाषण मे कहा था, सम्राट् की सरकार, भारतीय नेताओ के सहयोग से, भारत मे शीघ्र ही पूर्ण स्वायत्त शासन की स्थापना मे सहायता प्रदान करने के लिए यथाशक्ति सब कुछ करने के लिए दृढ सकल्प है। मेरी लदन-यात्रा के अवसर पर उसने मेरे साथ उन उपायो पर सोच-विचार किया है जो इस दिशा मे किये जायगे।

"इस आशय की घोषणा पहले ही की जा चुकी है कि केन्द्रीय और प्रान्तीय व्यवस्थापिका-सभाओ के निर्वाचन, जो अब तक युद्ध के कारण स्थगित थे, आगामी शीत ऋतु मे किये जायगे। सम्राट् की सरकार को पूरी आशा है कि उसके बाद प्रान्तो मे राजनैतिक नेता मन्त्रि-पद का दायित्व ग्रहण कर लेगे।

"सम्राट् की सरकार का इरादा है कि यथाशीघ्र एक विधान-निर्मात्री-परिषद् का आयोजन किया जाय और फलत प्रारम्भिक प्रयत्न के रूप मे उसने मुझे यह अधिकार दिया है कि मै निर्वाचन समाप्त होते ही, यह जानने के लिए प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओ के प्रतिनिधियो से वार्तालाप करू कि १९४२ की घोपणा मे जो प्रस्ताव निहित है वे उन्हे मान्य है या किसी वैकल्पिक अथवा सशोधित योजना को वे तरजीह देते है। देशी राज्यो के प्रतिनिधियो से भी, यह जानने के लिए वार्तालाप किया जायगा कि वे किस विधि से, विधान-निर्मात्री-परिषद् मे पूरी तरह से सम्मिलित हो सकते है।

"सम्राट् की सरकार उस सन्धि के विषयो पर विचार करने जा रही है जो ब्रिटेन और भारत के मध्य आवश्यक होगी।

"इन प्रारंभिक अवस्थाओं मे, भारत की शासन-व्यवस्था जारी रहनी चाहिए और तात्कालिक आर्थिक एव समाजिक समस्याओ का निबटारा भी अवश्य होना चाहिए। इसके अतिरिक्त भारत को नवीन-व्यवस्था की रचना मे पूरा-पूरा भाग लेना है। फलत सम्राट् की सरकार ने मुझे यह भी अधिकार दिया है कि ज्योही प्रान्तीय निर्वाचनो के परिणाम ज्ञात हो जाय मैं एक ऐसी शासन-परिषद् को अस्तित्व मे लाने का प्रयत्न करूं जिसे मुख्य-मुख्य भारतीय दलो का समर्थन प्राप्त हो।

एटली का भाषण

प्रधान मत्री मि० क्लीमेंट एटली ने १९ सितम्बर के दिन ब्राडकास्ट करते हुए कहा कि ब्रिटिश सरकार भारतीय-विधान-परिषद् सस्था के साथ एक सधि करेगी, जिसका प्रस्ताव १९४२ मे की गई घोषणा मे किया गया था। श्री एटली ने यह भी कहा कि इस सधि मे ऐसी कोई बात न रखी जायगी, जो भारत के हितो के विरुद्ध होगी। आगे उन्होने कहा कि भारत के प्रति ब्रिटिश नीति की वही व्याख्या, जो १९४२ की घोषणा मे निहित है और जिसे इस देश के सभी दलो का समर्थन प्राप्त है, अपने उद्देश्य और पूर्णता की दृष्टि से पूर्ववत् वर्तमान है। उस घोषणा मे ब्रिटिश सरकार तथा विधान-परिषद के मध्य एक सधि की जाने का विचार प्रकट किया गया था। सरकार तुरन्त ही सधि के मसविदे की रूपरेखा तैयार कर रही है। यह कहा जा सकता है कि उस सधि मे भारत के हित के विरुद्ध कोई भी बात नही रखी जायगी। भारत मे विधान-निर्मात्री-सस्था की स्थापना तथा उसके सचालन में जो कठिनाइया आयगी और जिन पर विजय प्राप्त करना आवश्यक होगा उन्हे भारतीय मामलो की जानकारी रखनेवाला कोई आदमी नजरदाज नही कर सकता। इससे भी अधिक कठिनाई का सामना भारत के निर्वाचित प्रतिनिधियो को करना पडेगा, जिन्हे चालीस करोड प्राणियो वाले महान भू-खड के लिए विधान तैयार करना है।

कांग्रेस कमेटी का मत

लार्ड वेवल का भाषण भारतीय लोकमत के सभी वर्गो के लिए और विशेष कर कांग्रेस के लिए निराशाजनक तथा असतोषजनक सिद्ध हुआ। इसका कारण यह था कि भारत की स्वाधीनता की घोषणा नही की गई थी। छ महीनो के लिए न तो प्रान्तो मे मन्त्रिमडल ही कायम होगे और न केन्द्र मे शासन-परिषद् का

ही पुनस्सगठन किया जायगा। इसके अतिरिक्त गोकि यथासम्भव उत्तम निर्वाचन सूची के आधार पर चुनाव करने को कहा गया था फिर भी यह सत्य था कि देश मे इस निर्वाचक सूची के विरुद्ध गहरा असंतोष फैला हुआ था। वाइसराय का प्रस्ताव, जिसके उद्देश्य की व्याख्या प्रधानमत्री एटली ने की थी, वस्तुत १९४२ के क्रिप्स प्रस्तावो की ही पुनरावृत्ति थी। परन्तु क्रिप्स-प्रस्तावो की तुलना मे नये प्रस्ताव मे एक भेद भी था। जहाँ क्रिप्स-योजना मे युद्ध समाप्त होते ही प्रान्तो मे मत्रि-मडलो के फिर से काम जारी करने और केन्द्रीय शासन-परिषद् के पुनस्सगठन की बात थी वहा सितम्बर वाली घोषणा मे न तो ऐसी कोई व्यवस्था की गई थी और न प्रान्तो मे मत्रिमडलो की स्थापना का ही कोई समय निर्धारित किया गया था। सितम्बर वाले वक्तव्य के अनुसार जनता को १९४२ मे बताई नई क्रिप्स-योजना या घोषित नीति के अनुसार उसको किसी सशोधित रूप के मध्य चुनाव करना था। समस्या की पेचीदगियो तथा अल्पसख्यको के हितो का ध्यान रखते हुए एक नई बात यह जारी की गई कि नव-निर्वाचित धारासभाए भी मत प्रकट करे कि क्रिप्स-योजना उन्हे स्वीकार है अथवा कोई नई योजना जारी की जाय। जहा तक विधान-परिषद् मे रियासतो के प्रतिनिधित्व का सवाल था, एक बिलकुल नई बात जोडी गई थी। घोषणा मे कहा गया था कि रियासतो के प्रतिनिधियो के साथ भी बातचीत करके यह जानने का प्रयत्न किया जायगा कि विधान-निर्मात्री-सस्था मे वे किस रूप मे काम करना चाहते है। यह स्पष्ट नही किया गया था कि विधान परिषद् मे केवल नरेशो के प्रतिनिधि रखे जायगे अथवा रियासतो की जनता के प्रतिनिधि रखे जायगे और यदि ऐसा किया जायगा तो रियासती प्रजा के प्रतिनिधि धारासभाए चुनेगी या अखिल भारतीय देशी-राज्य-प्रजा-परिषद्-द्वारा चुनाव किया जायगा।

इस घोषणा मे किसी प्रान्त को पृथक् होने का अधिकार नही दिया गया था, किन्तु एटली के वक्तव्यो मे यह बिलकुल स्पष्ट कर दिया गया था कि यदि क्रिप्स-योजना को मजूर करना है तो वह पूरी की-पूरी ही मानी जानी चाहिए। सितम्बर की घोषणा के बाद जनता को यह बिलकुल स्पष्ट हो गया था कि शिमला की वार्ता केवल ब्रिटेन के चुनाव के सम्बन्ध मे ही थी और उस चुनाव के समाप्त होते ही उस सम्मेलन को भी समाप्त हो जाने दिया गया। इसमे भी कोई सदेह न था कि सितम्बर वाला प्रस्ताव केवल छ महीने का समय प्राप्त करने के लिए एक चाल मात्र थी, क्योकि प्रान्तीय चुनाव मार्च १९४६ से पूर्व समाप्त न होते और इस प्रकार भारतीय समस्या का हल छ महीने के लिए और टाल देने की चेष्टा की गई। इन सब बातो पर विचार करने के बाद अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी ने बम्बई मे इन दोनो वक्तव्यो पर विचार किया और मत प्रकट किया कि सरकार के प्रस्ताव अपर्याप्त तथा अस्पष्ट है।

भारत-मंत्री का मत

तब भारत-मंत्री लार्ड पेथिक लारेंस ने २३ सितम्बर के दिन उन प्रस्तावों के स्पष्टीकरण का प्रयत्न किया। उन्होंने कहा, "मुझे नई नीति की प्रतिक्रिया से कुछ भी निराशा नहीं हुई है। यह घोषणा स्वयं भारत की राजनैतिक समस्या का हल नहीं है। परिस्थिति को देखते हुए ऐसा हल नहीं किया जा सकता था।

"इस घोषणा से सिर्फ वह रास्ता खुल गया है जिस पर चल कर भारतीय स्वशासन की मंजिल पर पहुँच सकते हैं। इस मंजिल तक पहुंचने से पहले उन्हें जिस भी सहायता या प्रोत्साहन की जरूरत होगी, उसे मैं उन्हें सम्राट् की सरकार की तरफ से देने को तैयार हूं।

"ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के भीतर स्वशासन का जो अधिकार मिलता है उसके अंतर्गत राष्ट्रमंडल के भीतर रहने या न रहने की स्वतंत्रता पहले ही दे दी जाती है। राष्ट्रमंडल के सदस्यों को जो बंधन बांधे रहता है वह सहमति के अलावा और कोई बंधन नहीं होता। यही बात भारत पर भी लागू होती है, किन्तु हमें आशा और विश्वास है कि जब भारतीयों को राष्ट्रमंडल में रहने या न रहने की स्वतंत्रता दे दी जायगी तब वे अपनी इच्छा से और अपने हितों का ध्यान रखते हुए राष्ट्रमंडल में ही रहना चाहेंगे।" अपने भाषण के प्रारम्भिक भाग में उन्होंने बताया कि "मेरा आदर्श तो यह है कि भारत और ब्रिटेन बराबरी के पद द्वारा साझेदारी की भावना से बंध जाय। अधिकांश ब्रिटिश राष्ट्र भी इसी साझेदारी के आदर्श की प्राप्ति के लिए उत्सुक है।"

चुनाव की तैयारी

लार्ड वेवल के इंग्लैंड से दूसरी बार वापस आते ही देश में आम चुनाव का शोरगुल मच गया। गोकि इंग्लैंड में लार्ड वेवल ने जो कुछ किया था उससे कमेटी खुश न थी, यह साफ था कि तत्कालीन अवस्था में चुनाव का निष्पक्षता से होना असम्भव था। कमेटी सभी अयोग्यताओं तथा प्रतिबंधों से भी परिचित थी। परन्तु चुनाव में भाग लेने के विषय में उसका एकमात्र उद्देश्य राष्ट्र की इच्छा को प्रकट करना और उसके लिए सत्ता प्राप्त करना था। इसलिए चुनाव सम्बन्धी व्यवस्था करने के लिए चुनाव-उप-समिति नियुक्त की गई। समिति में ये व्यक्ति रखे गये —(१) मौ० अबुल कलाम आजाद, (२) सरदार वल्लभभाई पटेल, (३) डा० राजेन्द्र प्रसाद, (४) पं० गोविंद वल्लभ पंत, (५) श्री आसफ अली, (६) डा० पट्टाभि सीतारामैय्या और (७) श्री शंकर राव देव।

कुछ ही समय बाद चुनाव के सम्बन्ध में केन्द्र तथा प्रान्तों से ताल्लुक रखनेवाला एक घोषणा-पत्र निकाल दिया गया।

आजाद हिन्द फौज

इस समय तक आजाद हिद फौज के मुकदमो से भारत भर मे बडी सनसनी फैल गई थी। सबसे पहले कर्नल शाह नवाज, कप्तान सहगल तथा लेफ्टिनेट ढिल्लन पर मामले चलाए गये। सच तो यह है कि उन्हीके कारण आजाद हिद फौज की स्थापना के इतिहास पर प्रकाश पडा। भारत मे ऐसा शायद ही कोई व्यक्ति हो जिसका दिल फौज के रोमाचकारी अनुभवो तथा साहसिक कार्यो को जानकर हिल न उठा हो। जज-एडवोकेट की अदालत मे जिन घटनाओ का बयान किया जाता था उन्हे भारत की साक्षर जनता बडी उत्कठा से नित्य ही पढती थी और निरक्षर जनता बडी उत्सुकता से उसे सुनती थी। इन मुकदमो का विवरण सुनने के लिए निजी तथा सार्वजनिक रेडियो के आस-पास भीड लगी रहती थी। इस सिलसिले मे श्री भूलाभाई देसाई तथा उनके दूसरे साथियो की सेवाएँ अत्यन्त मूल्यवान सिद्ध हुई। अदालत मे स्वच्छन्दतापूर्वक विचार प्रकट करने की जो सुविधा दी गई उसके कारण पराधीन राष्ट्र के अपनी स्वाधीनता के लिए लडने के अधिकार-सम्बन्धी उदार तथा लोकतन्त्रात्मक सिद्धातो का विकास हुआ। मुकदमे रोकने और बदियो को मुक्त करने के लिए व्यापक आदोलन हुआ। मुकदमो की सुनवाई समाप्त होने पर तीनो अभियुक्तो को आजन्म कारावास का दड दिया गया, किन्तु प्रधान सेनापति ने उन्हे इस दड से मुक्त कर दिया। उनके छोडे जाने पर देशभर मे खुशिया मनाई गई और देश भर मे अपने दौरे के बीच "जय हिंद" कह कर उनका स्वागत किया गया।

यहा यह बता देना अप्रासगिक न होगा कि १९४५ के जाडो मे आजाद हिद फौज के अभियुक्तो को मुक्त कराने के आन्दोलन के सिलसिले मे देश भर मे जो प्रदर्शन हुए उनके कारण कलकत्ते मे गोली चली, जिसमे ४० आदमी मारे गये और ३०० से अधिक घायल हुए। इसी प्रकार बबई मे भी गोली चली जिस मे २३ व्यक्ति मारे गये और लगभग २०० घायल हुए। आजाद हिद फौज के दूसरे मुकदमे मे जब कप्तान रशीद को आजन्म कैद की सजा दी गई और प्रधान सेनापति ने उसे घटा कर सात वर्ष का कठोर कारावास कर दिया तो फिर राष्ट्रव्यापी प्रदर्शन हुए, जिनमे मुसलमानो ने भी भाग लिया। इस सिलसिले मे जो प्रदर्शन कलकत्ते मे हुआ उस मे ४३ व्यक्ति मारे गये और ४०० के लगभग घायल हुए। यह फरवरी १९४६ की बात है।

२३

पराधीनता के बंधन टूटे : १९४६-४७

केन्द्र मे चुनाव समाप्त हो चुके थे, किन्तु प्रान्तो मे उम्मीदवारो का चुनाव और नामजदगी का कार्य जारी था और उस कार्य मे नेता और अनुयायी दोनों ही व्यस्त थे। इस बीच कभी-कभी आजाद हिंद फौज के सदस्यो के मामलो की सनसनी भरी खबरे सुनायी दे जाती थी। एक समय तो ऐसा जान पडता था कि कर्नल शाह नवाज, कर्नल सहगल और कर्नल ढिल्लो की ख्याति राष्ट्रीय नेताओ की कीर्ति को भी ढक लेगी। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे आजाद हिंद फौज कांग्रेस की लोक-प्रियता छीन लेगी और विदेश मे युद्ध तथा हिंसा से लडी जानेवाली लडाइया अहिंसात्मक लडाइयो की याद धुंधली बना देगी। परन्तु कालेपानी की सजा पाये हुए तीनो अफसरो को वाइसराय ने जो क्षमा-प्रदान किया इससे आजाद-हिंद फौज के लिए उठने वाले जोश मे कमी हुई।

कांग्रेस की शक्ति दिन-प्रति-दिन बढने लगी। ८ जनवरी, १९४६ को श्री विलियम फिलिप्स की राष्ट्रपति रूजवेल्ट के सम्मुख उपस्थित रिपोर्ट का साराश प्रकाशित हो गया। यह रिपोर्ट श्री फिलिप्स ने भारत से अमेरिका लौटने पर राष्ट्र-पति रूजवेल्ट को दी थी। इससे कांग्रेस की शक्ति मे और भी वृद्धि हुई। यह रिपोर्ट एक उर्दू दैनिक "मिलाप" मे ८ जनवरी, १९४६ को प्रकाशित हुई थी, किन्तु ८ जनवरी, १९४६ तक उसे सरकारी तौर पर प्रकाशित नही किया गया था।

फिलिप्स की रिपोर्ट

"कांग्रेस का उद्देश्य अपने को एक फासिस्ट सरकार के रूप मे स्थापित करना न हो कर स्वाधीनता के लक्ष्य की, तथा भारतीयो-द्वारा अपना विधान आप तैयार करने के अधिकार की प्राप्ति के लिए भारत मे एकता कायम करना है।" मुस्लिम लीग की माग के सम्बन्ध मे रिपोर्ट मे कहा गया—"मुस्लिम नेता यह प्रमाणित करने में सफल नही हुए है कि कांग्रेस के शासन मे मुसलमानो के हितो की हानि हुई है। प्रान्तीय शासन की समीक्षा से सिर्फ यही जाहिर हुआ है कि एक राजनीतिक दल के रूप मे मुस्लिम लीग कभी शासन-व्यवस्था पर नियत्रण नही जमा सकेगी और कतिपय प्रान्तो को छोड कर धारा-सभाओ मे अल्पमत मे ही रहेगी। वह केन्द्रीय असेम्बली मे भी अधिकाश स्थानो पर अधिकार करने मे सफल नही हो सकती। मुस्लिम लीग की शिकायत दरअसल यही है। कांग्रेस ने रियासतो के सम्बन्ध मे जो रूप ग्रहण किया है उसके सम्बन्ध मे श्री जिन्ना तथा दूसरे मुस्लिम नेताओ की चिन्ता तथा उनकी पाकिस्तान की माग का भी इससे स्पष्टीकरण

हो जाता है।" आगे कहा गया—"मुसलमानो ने भारत को स्वराज्य देने के सम्बन्ध मे जो यह आपत्ति की थी कि राजनैतिक क्षेत्र पर काग्रेस का प्रभुत्व रहेगा, वह अब नही मानी जा सकती। इसके अलावा यह मानने के काफी कारण है कि अन्य राजनीतिक सगठनो मे हुए परिवर्तनो का खुद मुस्लिम लीग पर असर पडेगा।"

नवाब भूपाल की घोषणा

भारत की समस्या के सदा से दो भाग रहे है—प्रान्त और रियासत। नया वर्ष आरम्भ होते ही रियासतो की प्रजा को नवाब भोपाल की घोषणा के कारण आशा की किरण दिखायी देने लगी। नवाब साहब नरेन्द्रमडल के चासलर थे। १८ जनवरी, १९४६ को उन्होने निम्न घोषणा की —

"नरेन्द्र-मडल ने मत्रियों की समिति से परामर्श करने के उपरान्त रियासतो मे वैधानिक उन्नति के प्रश्न पर सावधानीपूर्वक विचार किया है और वह (समिति) सिफारिश करती है कि नरेन्द्र-मडल इस सम्बन्ध मे अपनी नीति की घोषणा करे और जिन रियासतो मे अभी तक इस सम्बन्ध मे कोई कार्रवाई नही की गई है उनमे तुरन्त उचित उपाय किये जायँ। परन्तु ठीक वैधानिक स्थिति पर इसका कुछ भी प्रभाव न पडेगा, जिसके सम्बन्ध मे सम्राट् की सरकार की तरफ से घोषणा की जा चुकी है और जिसे श्री वाइसराय भी दुहरा चुके है। कहा जा चुका है कि किसी रियासत और उसकी प्रजा के लिए कैसा विधान उपयुक्त होगा—इसका निर्णय स्वय शासक के ही हाथ मे रहेगा।

"अस्तु, नरेन्द्र-मडल की तरफ से उसके चासलर को निम्न घोषणा करने का अधिकार दिया जाता है—

"हमारा उद्देश्य ऐसे विधान का निर्माण करना है, जिसमे नरेशो की सत्ता का उपयोग नियमित वैध मार्गो से होता रहे, किन्तु इससे इन रियासतो के राजवश तथा उनकी स्वतत्रता पर कोई प्रभाव न पडना चाहिए। प्रत्येक रियासत मे निर्वाचित बहुमतवाली लोकप्रिय सस्थाए रहे, जिस मे रियासत के शासन-प्रबध से जनता का सम्बन्ध रह सके। प्रत्येक रियासत का विस्तृत विधान तैयार करते समय उस रियासत की विशेष परिस्थितियो का भी ध्यान रखा जाय।"

वेवल का भाषण

केन्द्रीय-असेम्बली मे वाइसराय ने २८ जनवरी, १९४६ को निम्न भाषण दिया —

"मै कोई नई या चित्ताकर्षक राजनीतिक घोषणा करने के लिए यहा नही आया हूँ। मै केवल भारत के नव-निर्वाचित प्रतिनिधियो से मिलने तथा उनका स्वागत करने और उनसे प्रोत्साहन की कुछ बाते कहने के लिए ही आया हूँ।

"मैं समझता हूं कि सम्राट् की सरकार के मन्तव्य यथेष्ट रूप से स्पष्ट कर दिये गये है। राजनीतिक नेताओं-द्वारा संघठित नई शासन-परिषद् स्थापित करने और शासन-विधान बनानेवाली सभा या सम्मेलन यथासम्भव शीघ्र-से-शीघ्र जुटाने का उसका दृढ निश्चय है।

"मै यह चाहता हू कि आप इस अधिवेशन के दौरान में इस सभा की बहसों मे ऐसी कोई बात न कहे, जिससे मुझे राजनीतिक आधार पर अपनी शासन-परिषद् को बनाने मे कठिनाई पेश आये अथवा मुख्य वैधानिक समस्याओं के समझौते की सम्भावना पर उसका प्रतिकूल प्रभाव पड़े अथवा देश मे पहले से ही विद्यमान कटुता और अधिक बढ जाय।

"केन्द्रीय असेम्बली के चुनावों के समय काफी से अधिक वैमनस्य पैदा हो गया है और यह सम्भावना है कि प्रान्तीय चुनावों के समय भी ऐसा ही होगा। यदि इस अधिवेशन के दौरान मे सभी भाषणों मे संयम से काम लिया जाय तो उससे मुझे और मेरा ख्याल है कि आपके दलों के नेताओं को भी बडी मदद मिलेगी।

"मुझे आशा है और मैं विश्वास करता हू कि असेम्बली-द्वारा विनाश-मूलक कार्यों के अन्त का समय निकट है। यदि मुख्य दलों-द्वारा समर्थन प्राप्त नई शासन-परिषद् मनोनीत करने मे मैं सफल हुआ, तो अगले अधिवेशन मे आप लोगों के सम्मुख अत्यधिक महत्वपूर्ण रचनात्मक कार्य उपस्थित किया जायगा।"

सरकारी विज्ञप्ति

इस बात की काफी चर्चा थी कि जुलाई, १९४५ मे शिमला मे जैसा लज्जाजनक नाटक हुआ था उसकी पुनरावृत्ति इस बार न हो। २९ जनवरी, १९४६ को प्रकाशित एक विज्ञप्ति मे उससे बचने का एक तरीका निकाला गया —

"प्रान्तों मे चुनाव समाप्त हो जाने और प्रान्तीय मन्त्रिमण्डल स्थापित हो चुकने पर वाइसराय प्रान्तीय सरकारों से कार्यकारिणी परिषद् के लिए कुछ नाम मांगेगे। ये नाम अधिक नही सिर्फ दो या तीन होंगे।

"नाम प्राप्त हो जाने पर वाइसराय एक कामचलाऊ सरकार के सदस्यों का चुनाव कर लेंगे और यदि किसी प्रान्तीय सरकार ने नाम भेजने से इन्कार कर दिया तब भी वाइसराय की योजना पर उसका कुछ प्रभाव न पडेगा।

"यदि कोई प्रान्तीय सरकार नाम भेजने से इन्कार करेगी तो वाइसराय प्रान्तीय असेम्बली के दलों के नेताओं से सम्पर्क करेंगे और फिर कार्य-कारिणी परिषद् मे उन व्यक्तियों को रख लेंगे, जिन्हे वे प्रतिनिधि समझेंगे।"

इस विज्ञप्ति मे सदाशयता की एक झलक दिखायी देती थी। लार्ड चोर्ले से भारत के भविष्य के सम्बन्ध मे कलकत्ता मे प्रश्न किये जाने पर उन्होंने कहा कि वर्तमान राजनीतिक अडंगा अधिक समय तक न रहने दिया जायगा और

यदि दुर्भाग्यवश भारतीयो के मतभेद मिट न सके तो ब्रिटिश सरकार को कुछ न कुछ घोषणा करनी ही पड़ेगी। यदि किसी दल ने सम्राट्-सरकार की योजना से सहयोग करने से इन्कार कर दिया तो सरकार विरोध के बावजूद योजना को अमल में लायेगी।

मन्त्रि-मिशन की नियुक्ति

सन् १९४५ मे इग्लैंड की मजदूर-सरकार ने भारत के लिये एक पार्लियामेण्टरी शिष्ट-मण्डल भेजने की जो एक योजना बनाई थी उससे राजनीतिक घटनाओं की प्रतीक्षा करनेवाली भारतीय जनता का ध्यान बँट गया। पहले कहा जाता था कि शिष्ट-मण्डल एम्पायर पार्लियामेंटरी एसोसिएशन की तरफ से जायगा, किन्तु इस खबर से सभी लोगो मे नाराजी फैल गई। तब पार्लियामेंट ने यह दायित्व अपने कधो पर लिया और शिष्ट मण्डल मे सभी दलो के प्रतिनिधि रखे गये। यह शिष्ट-मण्डल एक अनियमित कमीशन से अधिक और कुछ न था। १९३५ के कानून को पास हुए १९४६ मे दस से भी अधिक वर्ष बीत चुके थे। इसलिये पार्लियामेंटरी शिष्ट-मण्डल भेजकर शाही कमीशन नियुक्त करने की अप्रिय बात से बचा गया। ब्रिटिश सरकार की यह एक चाल थी, जो चल गयी और छोटे-बडे सब काग्रेसजन इस चाल मे आ गये। उसमे लार्ड पैथिक लारेंस, सर स्टैफर्ड क्रिप्स तथा श्री एच० वी० अलेग्जैंडर थे।

२५ फरवरी, १९४६ को लार्ड पैथिक-लारेंस के सम्मान मे एक भोज दिया गया, जिसमे कहा गया कि वे जैसे साथियो के साथ जा रहे है उससे उन्हे अपने मिशन मे सफलता अवश्य ही मिलनी चाहिए। उन्होने कहा, "समस्या बहुत ही पेचीदा है। हमे जिस पथ मे चल कर स्वाधीन भारत के आधार के लक्ष्य तक पहुचना है वह अभी साफ नही है। परन्तु हमे स्वाधीन भारत का नजारा दिखायी देने लगा है और इस नजारे से उत्साहित होकर भारतीय प्रतिनिधियो के साथ प्रयत्न करते हुए स्वाधीनता के मार्ग को हमे खोज निकालना है। हम भारत का सरक्षण बडे सम्मान और गौरव से उसके नेताओ को सौंप सकते है।

मंत्रि-मिशन का आगमन और कार्य

लार्ड पैथिक लारेंस २३ मार्च १९४६ को भारत पहुचे। उन्होंने अपने एक वक्तव्य मे कहा —'ब्रिटिश सरकार तथा ब्रिटिश राष्ट्र अपने उन वायदो तथा वचनो को पूरा करना चाहते है जो दिये गये है और हम विश्वास दिलाते है कि अपनी बातचीत के बीच हम ऐसी कोई शर्त उपस्थित न करेंगे, जो भारत के स्वाधीन अस्तित्व से मेल न खाता हो।" सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने कहा कि वह हिन्दुस्तान मे विरोधी दावो का फैसला करने नही आये है, बल्कि भारतीयो के हाथ मे सत्ता सौंपने का उपाय खोज निकालने आये है।

मंत्रि-मिशन का भारत में अच्छा स्वागत हुआ। वह भारत के प्रमुख राजनीतिज्ञों से मिला और इस देश की राजनीतिक परिस्थिति से अवगत हुआ। मुलाकातें लम्बी हुई। कांग्रेस की कार्यसमिति १२ अप्रैल को बुलायी गयी। मंत्रि-मिशन ने वाइसराय को भी अपना एक सदस्य बना लिया। यह १९४२ की तुलना में नवीनता थी, क्योंकि तब सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने अकेले ही जिम्मेदारी उठा रखी थी। मिशन ने बातचीत चलाने के लिए कांग्रेस तथा लीग से अपने चार-चार प्रतिनिधि चुनने का अनुरोध किया। इन प्रतिनिधियों को मिशन से शिमला में मिलना था। कांग्रेस के प्रतिनिधियों ने निर्धारित समय स्वीकार कर लिया किन्तु श्री जिन्ना ने तीन दिन बाद अपना समय दिया। त्रिदल-सम्मेलन दस दिन तक पहाड़ पर चलता रहा। फिर मिशन दिल्ली आ गया। निमंत्रण के साथ विचार के लिए कतिपय प्रस्ताव उपस्थित किये गये।

यहाँ प्रस्तावों का संक्षेप दे देना अनुचित न होगा—"जिस बालिग मताधिकार पर कांग्रेस जोर दे रही थी उसे सिर्फ इसीलिए रोक लिया गया कि उसे जारी करने में देरी अवश्यम्भावी है। ठीक प्रतिनिधित्व प्राप्त करने के लिए प्रान्तों की मौजूदा निम्न धारासभाओं को चुनाव-समितियां मान लिया गया। परन्तु स्थानों का सम्बन्ध जनसंख्या से स्थापित करके यानी १० लाख के पीछे एक प्रतिनिधि के हिसाब से कुल स्थानों की संख्या दुगनी कर दी गयी। अल्पसंख्यकों को जो अतिरिक्त-प्रतिनिधित्व दिया गया था उसका अंत कर दिया गया। मुसलमानों सिखों तथा अन्यों के लिए स्थान निर्धारित किये गये, किन्तु अन्तिम वर्ग में से भारतीय ईसाइयों तथा ऐंग्लो-इंडियनों को छोड़ दिया गया। इसीलिए अल्पसंख्यकों फिरके-वालों और अलग किये गये क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक विशेष समिति बनायी गयी और कहा गया कि उनके अधिकारों का समावेश प्रान्तों, समूहों अथवा संघ के विधानों में कर लिया जायगा। इनकी पद्धति नीचे दी जाती है —

"प्रान्त निम्न तीन समूहों (ग्रुपों) में रखे जायँगे —'ए'—मद्रास बम्बई, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रान्त, उड़ीसा, 'बी'—पंजाब, सीमाप्रान्त, सिंध 'सी'—बंगाल, आसाम। 'ए' में १६७ आम और २० मुस्लिम प्रतिनिधि रहेंगे। 'बी' में ९ आम, २२ मुस्लिम और ४ सिक्ख प्रतिनिधि रहेंगे। 'सी' में ३४ आम और ३६ मुस्लिम प्रतिनिधि होंगे। रियासतें ९२ प्रतिनिधि भेजेंगी, किन्तु चुनाव का तरीका अभी निश्चित होना बाकी है। इन कुल ३८५ प्रतिनिधियों में दिल्ली, अजमेर-मारवाड़, कुर्ग और ब्रिटिश बिलोचिस्तान के एक-एक प्रतिनिधि को जोड़ना चाहिए। ये ३८९ प्रतिनिधि शीघ्र ही नयी दिल्ली में एकत्र होकर अपने अध्यक्ष तथा अन्य पदाधिकारियों का चुनाव करेंगे और एक सलाहकार समिति भी नियुक्त करेंगे। इसके बाद वे नवीन भारत की नींव रखने का कार्य हाथ में लेंगे।

"प्रारम्भिक कार्यवाही के लिए एकत्र होने के वाद प्रतिनिधि तीन भागो (सेक्शनो) मे बॅट जायँगे जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है। वे अपने समूह के प्रान्तो के लिए विधान तैयार करेगे। वे यह भी निश्चय करेगे कि इन प्रान्तो के लिए समूह (ग्रूप) विधान की व्यवस्था की जाय अथवा नही और अगर ऐसा किया जाय तो समूह को किन विपयो का प्रवध सौपा जाय। इसके बाद सब सदस्य फिर एकत्र होकर भारतीय सघ का विधान तैयार करेगे। चुनाव की पद्धति आनुपातिक प्रतिनिधित्व की रहेगी, जिसमे एकाकी हस्तातरित मत प्रणाली को आधार माना जायगा। उद्देश्य यह है कि प्रतिनिधि अधिक से अधिक मतो के आधार पर नही बल्कि कम से कम मतो के आधार पर चुने जायँ।

कांग्रेस का मत

मंत्रि-मिशन हिन्दुस्तान मे करीब तीन महीने ठहरा। उसने शुरू से ही वाइसराय से मिल कर काम किया। पहले चुने हुए नेताओ से वातचीत से उसकी सरगर्मी आरम्भ हुई। पहले दो हफ्ते तक एक-एक व्यक्ति से मिलने की वही पुरानी चाल दुहराई गई। इस तरह विभिन्न दलो के नेताओ, राजनीतिज्ञो, महात्माओ, विद्वानो, शासन-परिषद के सदस्यो, उद्योगपतियो, व्यापारियो तथा वैधानिक कानून के अध्यापको से मुलाकाते हुई। यह गतिरोध की अवस्था थी जैसी उस समय होती है जब इजन के बॉयलर मे भाप रुकी होती है या कार के सेल्फ-स्टार्टर मे विस्फोट होने को होता है। साथ ही यह उस शक्ति के सचय का वक्त भी था, जो वायुयान मे आपके कदम रखने और उसके आकाश मे उठ जाने के दर्मियान आवश्यक होती है। इस बार मिशनरूपी वायुयान के चालक स्वय गवर्नर-जनरल थे और पहले-जैसी गलती नही की गयी थी। मिशन का वायुयान उठा और उचित ऊचाई पर पहुचकर शान से मडराने लगा। मिशन के पहले वक्तव्य का ही देश मे अच्छा प्रभाव पड़ा। परन्तु इस वक्तव्य का विश्लेपण भारत-जब पूर्वी राष्ट्र के मेधावी मस्तिष्को ने किया तो प्रकट हुआ कि उसमे जिस व्यवस्था को उपस्थित किया गया है उसने सजीव शरीर के अग-प्रत्यग तो सभी है, किन्तु जीवन के लक्षणो का पूर्णत अभाव है। इस योजना मे उस जीवनदायिनी शक्ति और लचीलेपन का अभाव था, जिससे किसी विधान की उन्नति सम्भव होती है। वक्तव्य को देखकर पहले जो हर्ष और आशा की लहर दौड गयी थी उसका स्थान अब उसकी परस्पर-विरोधिनी वातो को देखकर उदासीनता ने ले लिया। फिर जिन वातो के सम्बन्ध मे सन्देह उठा उनके स्पष्टीकरण का प्रयत्न जब किया गया तब इन स्पष्टीकरणो से वह उदासीनता निराशा मे बदल गयी।

कांग्रेस भारत को वैधानिक दृष्टि से स्वाधीन देखने की अधिक इच्छुक नही थी—वह सिर्फ वास्तविक स्वाधीनता से ही सतुष्ट हो सकती थी। परन्तु वक्तव्य

कांग्रेस की आपत्तियाँ

कांग्रेस की आपत्तियां तीन थीं—(१) जनाब निश्तर का चुनाव, क्योंकि सीमाप्रान्त के चुनाव में उन्हें कांग्रेसी उम्मीदवार के विरोध में सफलता नहीं मिली थी और औरंगजेब मंत्रिमण्डल के एक सदस्य के रूप में उनके विरुद्ध एक अविश्वास का प्रस्ताव पेश हो चुका था, (२) अंतरिम सरकार में कोई राष्ट्रवादी मुसलमान नहीं रखा गया था और (३) ये परिवर्तन कांग्रेस की सलाह के बिना ही किये गये थे।

अस्तु, वाइसराय की सूची प्रकाशित होने पर जान पड़ा कि उसे एकाएक स्वीकार नहीं किया जा सकता। सरदार बलदेवसिंह के नाम के सम्बन्ध में सिखों से सलाह लेनी बाकी थी। इसी तरह सीमाप्रान्त के नेताओं से भी परामर्श करना था। इसके अलावा श्री हरेकृष्ण मेहताब की जगह शरत बाबू का नाम रखने का सवाल था। श्री मेहताब से वाइसराय के पत्र का उत्तर देने को कहा गया कि प्रान्त के प्रधानमंत्री तथा कांग्रेसजन के रूप में वह पूरी तरह कार्यसमिति के नियंत्रण में हैं। सवाल था कि क्या इनमें से प्रत्येक आपत्ति को इस सीमा तक बढ़ाया जाय कि उससे गतिरोध उत्पन्न हो जाय? क्या कोई मुसलमान ऐसा स्थान स्वीकार करेगा जो किसी कांग्रेसी हिन्दू का नाम वापस ले कर बनाया गया हो? इसके अलावा, कांग्रेस ने श्रीमती अमृतकौर का जो नाम उपस्थित किया, उसे भी अस्वीकार कर दिया गया। इस में कांग्रेस की मर्यादा का भी प्रश्न उठता था। कांग्रेस बड़ी पेचीदी स्थिति में थी। १८ जून को अंतरिम सरकार की योजना स्वीकार करने का निश्चय कर लिया गया। उस रात प्रस्ताव का मसविदा तैयार कर लिया गया और दूसरे दिन पंडित जवाहरलाल नेहरू काश्मीर चले गये तथा कुछ अन्य सदस्य दिल्ली के बाहर चले गये।

इसके बाद परिस्थिति एकाएक गम्भीर हो गयी। खान अब्दुल गफ्फार खाँ से परामर्श करने के बाद जनाब निश्तर-सम्बन्धी समस्या प्रथम कोटि की नहीं समझी गई। मेहताब-सम्बन्धी मामला इस तरह हल हुआ कि शरत् बाबू को नियुक्त करने की बात मान ली गई। लेकिन अगर कांग्रेस राष्ट्रवादी मुसलमान को न रखने की गुस्ताखी को पी जाती तो उसका राष्ट्रीय स्वरूप नहीं रह जाता। इसी अवसर पर श्री जिन्ना ने अंतरिम सरकार में राष्ट्रवादी मुसलमान को रखने के विरुद्ध चेतावनी दे कर इस प्रश्न पर और भी ध्यान आकृष्ट कर दिया और साथ ही इससे श्री इंजीनियर के चुने जाने को भी महत्व प्रदान कर दिया। इन्हीं दिनों 'स्टेट्समैन' ने वाइसराय तथा श्री जिन्ना के मध्य हुए पत्र-व्यवहार का रहस्योद्घाटन किया। लोकमत का झुकाव कुछ यह हुआ कि श्री जिन्ना अपनी हठधर्मी-द्वारा कांग्रेस से एक-के-बाद एक रियायत प्राप्त कर रहे हैं। तब कांग्रेसी मुसलमान

के सम्मिलित न करने और एक सरकारी अफसर का नाम सूची मे सम्मिलित करने के प्रश्नो पर अधिक गौर किया गया और उन्होने पहले की अपेक्षा अधिक महत्व धारण कर लिया। अनुपस्थित सदस्यो को फिर बुलाया गया, क्योकि दोनो ही बातो पर फिर से विचार करना अनिवार्य हो गया था। कार्य-समिति के कधो पर राष्ट्र की जिम्मेदारी थी और वह किसी समस्या का फैसला खीझकर या निराशा के वशीभूत होकर कर सकती थी। सूची मे निश्तर के सम्मिलित करने, मेहताब तथा इजीनियर को बिना सलाह किये रख लेने और राष्ट्रवादी मुसलमान और एक काग्रेसी महिला को न रखने के सम्बन्ध मे गाधीजी के दृढ विचार स्पष्ट थे। कुछ सोच-विचार के बाद कार्य-समिति भी गाधीजी के ही मत पर आ गयी।

वाइसराय की हठधर्मी

२१ जून को काग्रेस के अध्यक्ष ने वाइसराय से श्री जिन्ना-द्वारा उन्हे लिखे गये पत्रों और उन पत्रों के वाइसराय-द्वारा लिखे उत्तरो की प्रतिलिपि मागी। ये पत्र अतिरिम सरकार मे एक काग्रेसी हिन्दू सदस्य के स्थान पर एक मुस्लिम सदस्य नामजद करने के काग्रेस के अधिकार के सम्बन्ध मे थे। वाइसराय ने पत्रो की प्रतिलिपि नही दी। समाचारपत्रो मे छपा था कि श्री जिन्ना ने वाइसराय से कुछ प्रश्न किये है। वाइसराय ने इन कथित प्रश्नो के उत्तरो के उद्धरण दिये। उनसे इस बात की पुष्टि होती थी कि वाइसराय इस समस्या के सम्बन्ध मे पूर्णत श्री जिन्ना के साथ है। वाइसराय का यह रुख उनके उस दृष्टिकोण से बिलकुल भिन्न था, जिस का परिचय उन्होने श्री निश्तर के अतरिम सरकार मे सम्मिलित करने की समस्या को लेकर मौलाना आजाद को लिखे गये अपने पत्र मे दिया था। इस पत्र मे वाइसराय ने लिखा था कि जिस प्रकार लीग काग्रेस-द्वारा नामजद किसी व्यक्ति का विरोध नही कर सकती, उसी प्रकार काग्रेस भी लीग-द्वारा नामजद किसी व्यक्ति के अतरिम सरकार मे सम्मिलित किये जाने पर आपत्ति नही कर सकती। यदि १४ जून तक यह स्थिति थी तो समझ मे नही आता कि २१ जून या २२ जून को वाइसराय यह कैसे कह सकते थे कि काग्रेस अतरिम सरकार के लिये किसी मुसलमान का नाम उपस्थित करने के लिये स्वतत्र नही है। वाइसराय का यह कथन इसलिए और भी आपत्तिजनक था कि ऐसा वे श्री जिन्ना के आपत्ति करने पर कह रहे थे। इसके अलावा वाइसराय ने पहले काग्रेस को यह भी आश्वासन दे दिया था कि यदि काग्रेस जाकिर हुसेन का नाम पेश करेगी तो उन पर आपत्ति न की जायगी। यह कहने के बावजूद भी वाइसराय ने अपने २२ जून के पत्र मे काग्रेस के अध्यक्ष के अनुरोध को अस्वीकार कर लिया।

सिर्फ यही नही, श्री जिन्ना के प्रश्नो मे कुछ नयी बातें भी उठती थी। यदि एक तरफ वाइसराय समान-प्रतिनिधित्व की बात मे इन्कार कर रहे थे तो दूसरी तरफ श्री जिन्ना परिगणित जातियो का प्रतिनिधित्व काग्रेस मे अलग चाहते थे और अल्पसख्यको के चार प्रतिनिधियो मे एक स्थान उसे भी देना चाहते थे। इस तरह काग्रेस के प्रतिनिधियो की सख्या सिर्फ ५ कर दी गयी थी और काग्रेस को हिन्दू-सस्था घोषित कर दिया गया था। इससे यह भी जाहिर होता था कि परिगणित जातियो का काग्रेस या हिन्दुओ से कोई सम्बन्ध नही रहेगा। परन्तु अतरिम सरकार मे अल्पसख्यको के स्थानो मे से कोई स्थान रिक्त होने पर निषेधात्मक अधिकार श्री जिन्ना को सौप दिया जायगा। इसके अलावा शासन-प्रबन्ध के सम्बन्ध में अतरिम सरकार मे सामूहिक बहुमत का नियम लागू होगा। इस तरह अतरिम सरकार की स्थिति वाइसराय की शासन-परिषद् मे भी बुरी हो गयी थी। सच तो यह है कि १६ मई के वक्तव्य से पूर्व जो भी बाते कही गयी थीं अब उनका कुछ भी महत्व नही था। ऐसा जान पड़ता था, जैसे प्रत्येक विषय मे वाइसराय श्री जिन्ना के साथ हो।

मंत्रि-मिशन का कार्य

समिति ने साहस करके २३ जून को विधान-परिषद् मे जाने का फैसला कर ही लिया। फिर भी जब मिशन और वाइसराय को काग्रेस का निर्णय बताया गया तब प्रत्येक क्षेत्र मे हर्ष की लहर दौड गई। काग्रेसी हलको में सन्तोष इस बात पर था कि लीग ने 'अल्पसख्यको' और 'समान प्रतिनिधित्व' के सवाल उठा कर काग्रेस के लिए जो बेडिया तैयार की थी उनसे वह बच गई। सरकारी अधिकारियो को यह खुशी थी कि आखिर काग्रेस को विधान-परिषद् मे लाने पर उन्हे सफलता मिल ही गई। लीगी हलको की प्रसन्नता का कारण यह था कि ऐसी अन्तरिम सरकार बन रही थी, जिसमे काग्रेस नही होगी। परन्तु लीग की आखो पर पडा पर्दा शीघ्र ही उठ गया। सरकार की तरफ से २७ जून का वक्तव्य प्रकाशित हुआ, जिसमे बातचीत स्थगित करने की घोषणा की गई थी। दूसरे लफ्जो मे इसका यही अर्थ हुआ कि १६ जून का वक्तव्य रद्द किया जाता है, क्योकि काग्रेस १६ मई का वक्तव्य स्वीकार कर चुकी थी। तब श्री जिन्ना ने १६ जून के वक्तव्य की आठवी धारा पूरी करने पर जोर दिया, जिसमें कहा गया था कि यदि अन्तरिम सरकार मे कोई अथवा दोनो दल जाने से इन्कार करेगे तब परिषद् मे रिक्त स्थानो को उन दलो के प्रतिनिधियो से भर दिया जायगा, जो १६ मई के वक्तव्य को स्वीकार करेगे। काग्रेस इस वक्तव्य को तो स्वीकार करती थी, किन्तु उसने अन्तरिम सरकार मे जाने से इन्कार कर दिया था। मिशन ने ऐसी स्थिति का अनुमान नही किया था और इसीलिए उसने ब्रिटिश मन्त्रि-मडल से परामर्श किया।

तब मिशन ने २७ जून का वक्तव्य प्रकाशित किया और वह २९ जून को इंग्लैंड के लिए रवाना हो गया। परन्तु जाने से पूर्व मिशन की श्री जिन्ना से बातचीत हुई। श्री जिन्ना ने विधान-परिषद् स्थगित करने का अनुरोध किया, क्योंकि परिषद् और अन्तरिम सरकार की योजनाएँ परस्पर सम्बद्ध थी। परन्तु मिशन ने परिषद् को स्थगित करना अस्वीकार कर दिया। वाइसराय ने कहा कि वह धारा ८ के अनुसार कार्य करेंगे। इससे सम्भवतः कुछ समय बीतने पर अन्तरिम सरकार स्थापित होने की पृष्ठभूमि तैयार हो जायगी।

कार्य-समिति की बैठक

अब बातचीत मे व्यस्त सभी प्रतिनिधियो के अपने दलो को सूचित करने का समय आया। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक ६ और ७ जुलाई को बम्बई मे हुई। उसके सामने एक पंक्ति का प्रस्ताव रखा गया, जिसमे ब्रिटिश सरकार से हुए समझौते की पुष्टि की गई। प्रस्ताव मे संशोधन के लिए स्थान नही था, क्योंकि प्रतिनिधि समझौता कर चुके थे और कांग्रेस को उस समझौते की सिर्फ पुष्टि ही करनी थी। समझौते को स्वीकार अथवा अस्वीकार ही किया जा सकता था। कमेटी ने ५१ के विरुद्ध २०५ वोटो से प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। इसी अवस्था मे धारा-सभाओ ने विधान-परिषद के सदस्यो के चुनाव शुरू कर दिये और जुलाई १९४६ तक चुनाव समाप्त भी हो गये।

लीग की प्रत्यक्ष कार्रवाई

जुलाई के अंत मे प्रतिक्रिया यह हुई कि लीग ने अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन योजनाओ मे भाग लेने से इन्कार कर दिया। लीग ने १६ अगस्त 'प्रत्यक्ष कार्रवाई' (डाइरेक्ट ऐक्शन) का दिवस घोषित किया और ऐसा जान पडने लगा कि सरकारी कार्रवाई भी आरम्भ हो गयी। ६ अगस्त को वाइसराय ने कांग्रेस के अध्यक्ष से अंतरिम सरकार के निर्माण मे सहयोग करने का अनुरोध किया। वाइसराय ने कहा कि ऐसा निर्णय सम्राट् की सरकार की सहमति से हुआ है। कार्यसमिति की बैठक ने वर्धा मे इस प्रस्ताव पर विचार किया और १२ अगस्त क सायंकाल ७ बजे वाइसराय के प्रस्ताव और कांग्रेस-अध्यक्ष-द्वारा उसकी स्वीकृति की घोषणा कर दी गयी। इसके बाद घटना-चक्र बडी तेजी से घूमा। कार्यसमिति ने प्रस्ताव पास किया, जिसमे लीग से मधुर शब्दो मे अंतरिम सरकार के निर्माण मे सहयोग की अपील की गयी। राष्ट्रपति ने तुरंत लीग के अध्यक्ष को इस सम्बन्ध मे एक पत्र लिखा। कार्यसमिति के प्रस्ताव की श्री जिन्ना पर जो प्रतिक्रिया हुई, वह अप्रत्याशित न थी। उसमे उन्हे नये गुम्बद मे पुराना चिराग ही दिखायी दिया। वाइसराय ने इस बार श्री जिन्ना को जो सीधे नही लिखा उसका कारण

श्री जिन्ना का प्रत्यक्ष 'कार्रवाई' की धमकी ही थी। बगाली सरकार ने प्रत्यक्ष कार्रवाई' मनाने के लिए १६ अगस्त को सार्वजनिक छुट्टी कर दी। कलकत्ता और सिल्हट मे गम्भीर उपद्रव हुए। कलकत्ता की सडको पर खून की नदिया वह गई। मोटे हिसाब से ७००० के लगभग व्यक्ति मारे गये और बहुसंख्यक घायल हुए। कलकत्ता की तुलना मे अन्य स्थानो की घटनाओं की तरफ किसी का ध्यान ही नही गया। सिलहट और ढाका मे भी लोग हताहत हुए। प्रतिशोध बहुत उग्र था और मूल उपद्रव की तुलना मे वह कही अधिक भयानक था। "एक के बदले तीन" की इस नीति ने नोआखाली और टिपरा मे जनता उत्तेजित हो उठी। इन दोनो ही जिलो मे मुसलमान बहुसंख्यक और हिन्दू अल्पसंख्यक हैं। नोआखाली मे उनका अनुपात १८ लाख और ४ लाख का है। पूर्वी बगाल के इन दोनो जिलो मे अपराध जितनी भयानकता से हुए थे उसे देखते हुए हताहतो की संख्या अधिक न थी। नारी-निर्यातन बलपूर्वक विवाह, जबरन धर्म-परिवर्तन, घरो को आग लगा देने, उन पर सामूहिक हमले और प्रसिद्ध परिवारो के इन हमलो मे शिकार होने से पूर्वी बगाल मे जो अविश्वास फैल गया था वह तीन वर्ष पूर्व अकाल मे हुई सामूहिक मृत्युओं से भी कही अधिक भीषण था। पूर्वी बगाल से कितने ही हिन्दू भाग कर बिहार आये और वहा अत्याचारो की अनेक कहानिया फैल गयी। इस से बिहारी जनता प्रतिशोध के लिए पागल हो उठी। इस अप्रत्याशित और भीषण परिस्थिति से कांग्रेस तथा प्रत्येक समझदार कांग्रेसजन का अंतःकरण चीत्कार कर उठा और जब कि गांधीजी पूर्वी बगाल की जनता मे धैर्य की भावना भरने और बाहर गये लोगो को उनके घरो मे फिर वापस बुलाने के लिए गये तो दूसरी तरफ शासन-परिषद् के उपाध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू बिहार की परिस्थिति का नियत्रण करने गये। किन्तु श्री जिन्ना ने कलकत्ता और पूर्वी बगाल की घटनाओ के लिए कही भी खेद नही प्रकट किया। गांधीजी और उनके साथी हिन्दू जनता से अपने मुसलमान पडोसियो की रक्षा की अपील कर रहे थे, किन्तु श्री जिन्ना ने अपने मुस्लिम अनुयायियो से हिन्दुओ की रक्षा के लिए ५ दिसम्बर, १९४६ तक एक शब्द भी नही कहा। समझा जा सकता है कि १६ अगस्त से ६ दिसम्बर तक का अरसा कितना अधिक होता है। यह उस समय की बात है जब श्री जिन्ना अंतरिम सरकार मे सहयोगपूर्वक कार्य करने और विधान-परिषद् मे हिस्सा लेने की समस्या पर बातचीत करने के लिए लदन गये थे। वे बार-बार 'प्रत्यक्ष कार्रवाई' का नारा दुहरा देते थे और उसका परिणाम बुरा होता था। इसकी लहर शीघ्र उत्तर प्रदेश पहुची। गढमुक्तेश्वर मे उपद्रव हुआ, जिसकी प्रतिक्रिया डासना मे हुई। मेरठ शहर मे, जहा कांग्रेस का अधिवेशन होने जा रहा था, कांग्रेस के पडाल को किसी ने आग लगा दी, जिसके परिणाम-स्वरूप अधिवेशन डेलीगेटो तक सीमित कर दिया गया। मेरठ शहर मे कुछ ऐसी घटनाए हुई,

जैसी पहले कभी नही सुनी गई थी। इसकी गूँज जिलो मे भी सुनायी देने लगी। दिसम्बर, १९४६ के प्रथम सप्ताह मे जब वाइसराय तथा काग्रेस और लीग के प्रतिनिधि लदन मे थे, अहमदाबाद मे ३७ घटे का कर्फ्यू लगा था, बम्बई मे छुरो के वारो का अत होता नही दिखायी देता था और ढाका मे साम्प्रदायिक उपद्रवो ने पुरानी बीमारी का रूप धारण कर रखा था। इन घटनाओ के कारण आगे की प्रगति रुकने की आशका हो चली थी और इसीलिए लदन मे बातचीत की जरूरत पडी थी। पहले तो काग्रेस ने इस बातचीत मे भाग लेने से इन्कार कर दिया, किन्तु ब्रिटिश प्रधानमत्री से आश्वासन मिलने पर पडित जवाहरलाल अकेले ही गये और फिर ९ दिसम्बर को विधान-परिषद मे सम्मिलित होने के समय तक वापस आ गये।

गांधीजी की नोआखाली-यात्रा

दु ख और दर्द की घटनाओ, परिवारो के समाप्त हो जाने, स्त्रियो के जबरन भगाये और बलात्कार किये जाने के इस दु'खद काड के मध्य, हमे आशा की केवल एक ही किरण दिखायी देती थी। हमे बगाल की दलदल से भरी भूमि मे एक व्यक्ति 'अकेला, मित्रहीन और उदास' आगे बढता हुआ दिखायी देता था, जो हजारो परिवारो-द्वारा छोडे हुए घरो को देखता हुआ आगे बढता जाता था। इस व्यक्ति के हाथ मे आशा और शान्ति की ज्योति थी। वह जनता से भय का त्याग करने और हृदय मे विश्वास बनाये रखने का उपदेश करते थे। उन्होने कहा कि अपना विश्वास या उत्साह खोने से तो अच्छा पूर्वी बगाल की दलदलो पर मर-खप जाना है। उनके हाथ मे जगी हुई अहिसा की ज्योति का प्रकाश दूर-दूर तक फैल रहा था, किन्तु वह कायरता से हिसा को अच्छा मानते थ। गाधीजी पूर्वी बगाल मे चट्टान की तरह अचल थे। उनके मित्र उनके उद्देश्य पर सन्देह करते थे और शत्रु उन्हे ताने देते थे, लेकिन वह हमेशा शहीद बनने के लिये तैयार होकर मनुष्यमात्र मे भाई-चारे और सद्भावना का उपदेश देते थे।

अंतरिम सरकार की स्थापना

१७ अगस्त को पडित जवाहरलाल वाइसराय से मिले और वापस आकर उन्होने अपने तीनो साथियो से परामर्श किया। इस प्रकार अतरिम सरकार के सदस्यो की प्रस्तावित सूची तैयार हो गयी। अब आवश्यकता सिर्फ एन० वी० इजीनियर के स्थान पर नया नाम चुनने और लीगियो की जगह पाच राष्ट्रीय मुसलमान चुनने की थी। जब वाइसराय को यह सूची दे दी गई तब शनिवार २४ अगस्त को उन्होने नामो की घोषणा कर दी और २ सितम्बर से नयी सरकार ने शपथ ले ली। २४ अगस्त की सायकाल के समय भाषण करते हुए वाइस–

राय ने एक वार मुस्लिम लीग को अतिरिम सरकार में सम्मिलित होने का फिर निमत्रण दिया।

२४ अगस्त को भापण देने के उपरान्त वाइसराय अपनी आखो मे परिस्थिति का निरीक्षण करने कलकत्ता गये। वह 'साम्राज्य के इस दूसरे नगर' में हुए अत्याचारो से ऐसे प्रभावित हुए कि उन्होने काग्रेस से परिस्थिति पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने का अनुरोध किया। उन्होने कांग्रेस से अपने वर्घा के निश्चय म परिवर्तन करने का अनुरोध किया और कहा कि प्रान्तो-द्धारा समूह में सम्मिलित होने के सम्वन्ध मे काग्रेस को मिशन की व्याख्या स्वीकार कर लेनी चाहिए कि एकवार समूह वन जाने पर कोई प्रान्त उससे तब तक पृथक् न हो सकेगा जब तक कि नये विधान के अन्तर्गत उस प्रान्त की निर्वाचित धारासभा ऐसा निश्चय न करे। यही नही, वल्कि वाइसराय ने कुछ कडा रुख भी ग्रहण किया और कहा कि यदि ऐसी वात नही की जाती तो वह विधान परिपद् ही न बुलायेगे। परन्तु, वाद मे वाइसराय सभल गये और २ सितम्वर को अतरिम सरकार की स्थापना हो गई।

जिस दिन अतरिम सरकार, जिसे अस्थायी राष्ट्रीय सरकार कहना अधिक उचित होगा, स्थापित हुई उस दिन सभी विचार करने लगे कि भारत को स्वाधीनता प्रदान करने का जो वचन दिया था उसकी पूर्ति किस सीमा तक हुई। अठारहवी शताव्दी मे मेकाले ने भारत को स्वशासन मिलने के दिन को ब्रिटिश साम्राज्य का सव से गौरवपूर्ण दिन कहा था और उसके लिए भूमि तैयार की थी। इसके उपरान्त १८८५ मे देश के विभिन्न वर्गो को एक ही झडे के नीचे लाकर स्वाधीनता का वीजारोपण श्री डब्लयू० सी० वनर्जी ने किया। १८९८ मे मद्रास मे श्री आनदमोहन वोस ने 'प्रेम और सेवा' द्वारा पौधे को सींचा। १९०६ में दादाभाई नवरोजी ने कलकत्ता मे उस वृक्ष को स्वराज्य का नाम दिया। १९१७ में वह वृक्ष फूला। १९२९ मे उसमे पूर्ण स्वराज्य का फल लगा। इस अवसर पर बागवा जवाहरलाल थे। ये सभी राष्ट्रीय सरकार के लक्ष्य तक पहुचने की विभिन्न अवस्थाए थी। निस्सदेह फल लग चुका था, किन्तु उसे प्राप्त करना वाकी था। स्वराज्य का फल उसे प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले की गोद मे स्वय गिर नही पडता, उसे पकाने के लिए चतुर मालियो की आवश्यकता होती है। स्वराज्य के फल को पकाने के लिए १४ माली अतरिम सरकार के सदस्य के रूप मे नियुक्त किये गये।

मेरठ-कांग्रेस : १९४६

इसी बीच मेरठ-काग्रेस का अधिवेशन हुआ। यद्यपि १६ जून, १९४५ को कार्यसमिति के सदस्य अहमदनगर किले से छोड दिए गये थे तथापि मेरठ का अधिवेशन

२३ नवम्बर, १९४६ को ही हो सका। इस बीच अध्यक्ष ने, अपना कार्यभार सभाल लिया और नई कार्य-समिति की भी नियुक्ति कर दी। परन्तु केन्द्र की अन्तर्कालीन सरकार मे उनके पद-ग्रहण के कारण काग्रेस के विधान के अनुसार बाकायादा नये चुनाव की आवश्यकता पडी और श्री जे० बी० कृपलानी नये अध्यक्ष चुन लिये गये। उन्होंने अपना भाषण हिन्दुस्तानी मे दिया और विषय समिति तथा पूर्ण अधिवेशन दोनो ही अवसरो पर काग्रेस की कार्यवाही का सचालन बडी योग्यता तथा सफलतापूर्वक किया। अधिवेशन के अन्त मे उन्होने अग्रेजी मे जो भाषण दिया वह एक आश्चर्यजनक वक्तृता थी। उसमे जहा एक तरफ यह बताया गया था कि अहिसा को कहा तक सफलता मिली है अथवा सफलता नही मिली है वहां दूसरी तरफ यह कहा गया था कि लोगो से कितनी अहिसा की आशा की जाती थी। आध घटे तक जनता मत्र-मुग्ध-सी उनकी गर्जना सुनती रही और उस पर इस भाषण का अभूतपूर्व प्रभाव पडा।

मेरठ-अधिवेशन मे कोई नई या ठोस बात नही हुई। अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी ने दिल्ली की सितम्बर वाली बैठक मे जो-कुछ किया था उसी की पुष्टि मेरठ के अधिवेशन मे हुई। उसमे अतर्कालीन सरकार मे काग्रेस के पद-ग्रहण को स्वीकार किया गया। परन्तु अधिवेशन की वास्तविक सफलता विधान-परिषद्वाला प्रस्ताव था, जिससे कहा गया कि काग्रेस 'स्वतत्र एव पूर्ण सत्ता-सम्पन्न राज्य' की समर्थक है। इससे प्रकट कर दिया गया कि भारत का भविष्य साम्राज्य के बाहर रहकर ही सुधर सकता है। अधिवेशन का सब से महत्वपूर्ण प्रस्ताव रियासतो के सम्बन्ध मे था, जिसका भाव यह था —

"काग्रेस हमेशा से हिन्दुस्तान की रियासतो के सवाल को भारतीय स्वाधीनता के सवाल का एक हिस्सा मानती आई है। स्वाधीनता प्राप्त करने का समय निकट आने की वजह से यह सवाल और भी जरूरी हो गया है और उसका हल स्वाधीनता की पृष्ठभूमि का ध्यान रखते हुए होना चाहिए। परन्तु काग्रेस को यह देखकर खेद हुआ है कि भारत की कुछ बडी रियासते, जिन्हे शेष रियासतो के लिए उदाहरण उपस्थित करना चाहिए था, विशेष रूप से प्रतिक्रियापूर्ण तथा दमनकारी कार्यो की अपराधिनी रही है। ऐसी स्थिति मे रियासतो की स्थिति गम्भीर होने के कारण काग्रेस घोषणा करती है कि वह रियासतो मे होनेवाले स्वाधीनता के सग्राम को भारत के व्यापक सघर्ष का अग मानती है। रियासतो के लोग अपने यहा नागरिक स्वतत्रता तथा उत्तरदायी शासन कायम करने के लिए जो प्रयत्न कर रहे है उनके प्रति काग्रेस की सहानुभूति है।"

यहा यह बात उल्लेखनीय है कि काग्रेस ने रियासतो के प्रश्न को हरिपुरा के बाद पहली बार उठाया था। इस बार काग्रेस ने नरेशो की निरकुशता के स्थान पर राजनीतिक विभाग के षड्यत्रो पर जोर दिया था और वह जो कार्य गुप्त रूप

से कर रहा था उस पर पहली बार विचार किया था। जहा तक रचनात्मक क्षेत्र का सम्बन्ध है, काग्रेस के सामने बडा कठिन तथा महान् कार्य पडा था। हाल मे हिसा, हत्याकाड, आगजनी, नारी-निर्यातन तथा बलात्कार की जो घटनाये हुई थी उनसे हुई हानि की पूर्ति काग्रेस को करनी थी। भाषणकर्ताओ ने इस विषय पर अपना मत गम्भीरतापूर्वक प्रकट किया ताकि लोगो मे जोश न फैले। इस तरह प्रत्येक दृष्टिकोण से मेरठवाले अधिवेशन को सिर्फ सफल ही नही कहा जा सकता बल्कि उसे आगामी अधिवेशनो के लिए उदाहरण-स्वरूप भी कहा जा सकता है। विधान-समिति ने अखिल-भारतीय काग्रेस कमेटी के विचार के लिए जो प्रस्ताव उपस्थित किये थे उनमे अधिवेशन की तडक-भडक बन्द करने तथा उनमे अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के सदस्यो के ही उपस्थित होने की बात थी और इस सम्बन्ध मे कुछ असन्तोष भी था। मेरठ-अधिवेशन एक प्रकार से मध्य का मार्ग था। इसमे प्रतिनिधि तो आये थे, किन्तु दर्शको को बाहर निकाल दिया गया था। पुराने विधान के अन्तर्गत मेरठ का अधिवेशन अन्तिम था। मेरठ भारत के इतिहास मे एक स्मरणीय नाम है। विद्रोह की चिनगारी पहले-पहल मेरठ में उठी थी, और मेरठ मे ही भारत के 'स्वतन्त्र एव पूर्ण सत्ता-सम्पन्न प्रजातन्त्र' की घोषणा की गयी। भारतीय राज-क्रान्ति की पहली हिंसापूर्ण लडाई (१८५७) के बाद गवर्नर-जनरल वायसराय बना था, दूसरी (अहिंसापूर्ण) लडाई के बाद भारत से वायसराय का नाम-निशान मिट गया।

लीग का मत

अब हम फिर अतरिम सरकार की ओर आते है। अतरिम सरकार पहले लीग के प्रतिनिधियो के बिना और फिर उन्हे सम्मिलित करके स्थापित हुई। लीग के सम्मिलित होने के समय विश्वास किया जाता था कि वह मिशन की दीर्घ-कालीन योजना से भी सहमत है और विधान-परिषद् मे बिना हिचक के सम्मिलित हो जायगी। ऐसा अतरिम सरकार मे सम्मिलित होने की मूल शर्तो के कारण नही, बल्कि लीग की तरफ से लार्ड वेवल-द्वारा दिये गये आश्वासन के कारण समझा जाता था। परन्तु अतरिम सरकार मे सम्मिलित होने के कुछ ही समय बाद लीग के नेता ने घोषणा की कि लीग विधान-परिषद् मे सम्मिलित नही होगी और वह अभी तक पाकिस्तान तथा दो विधान-परिषदो की अपनी मूल माग पर कायम है।

प्रतिनिधियों की लंदन-यात्रा

यही स्थिति थी कि एकाएक ब्रिटिश प्रधानमत्री ने काग्रेस तथा लीग के दो-प्रतिनिधियो तथा अतरिम सरकार के सिख-प्रतिनिधि को विधान-परिषद् के

सम्बन्ध मे बातचीत के लिए लदन बुलाया। काग्रेस की पहली प्रतिक्रिया यह हुई कि इस निमत्रण को स्वीकार न किया जाय, क्योकि उसका मत था कि विधान-परिषद् का सम्बन्ध भारत के लिये विधान-निर्माण करने से है—इसलिये परिषद् सम्बन्धी प्रत्येक बात का फैसला लदन मे न होकर भारत मे और भारतीयो-द्वारा होना चाहिये। इसी कारण भारत मे मत्रि-मिशन भेजने के विचार का स्वागत किया गया था। काग्रेस की तरफ से कहा गया कि यदि ब्रिटिश मत्री इस विषय पर फिर कोई बात करना चाहते है तो उन्हे भारत आ जाना चाहिए। परन्तु प्रधानमत्री श्री एटली के आश्वासन देने पर पडित जवाहरलाल ने इस निमत्रण को स्वीकार कर लिया। २९ नवम्बर को वह लन्दन गये। पडित जवाहरलाल नेहरू और सरदार बलदेवसिह इग्लैड मे थोडे ही दिनो रहे। भारत से आये मेहमानो से अलग और एक साथ मिलने के उपरान्त ब्रिटिश प्रधानमत्री ने सभी भारतीय मेहमानो को आमत्रित किया और उनके मध्य अपना ६ सितम्बर का प्रसिद्ध वक्तव्य पढकर सुनाया, जिसने भारतीय राजनीति मे फूट का एक बीज बो दिया। इस घोषणा के सम्बन्ध मे भारतीय नेताओ से पहले कोई परामर्श नही किया गया और काग्रेस तथा सिखो के प्रतिनिधि तुरन्त वापिस आ गये, क्योकि ९ दिसम्बर को विधान-परिषद् का अधिवेशन आरम्भ हो रहा था।

वक्तव्य का उद्देश्य

ब्रिटिश मत्रिमडल के मतानुसार लदन मे हुई बातचीत का उद्देश्य विधान-परिषद् मे सम्मिलित होने के लिए विभिन्न दलो का सहयोग प्राप्त करना था। साथ ही यह भी माना गया था कि भारतीय प्रतिनिधि अपने साथियो से सलाह किये बिना किसी निर्णय पर नही पहुच सकते थे। मुख्य कठिनाई मत्रि-मिशन के १६ मई के वक्तव्य पैरा १९ (५) और (८) के सम्बन्ध मे थी। पहले पैरे का सम्बन्ध समूह बनाने और दूसरे का समूह से प्रान्तो के पृथक् होने से था। वक्तव्य मे बताया गया कि समूह बनाने के लिए बहुमत के सम्बन्ध मे मत्रि-मिशन का क्या मत था। इस मे इस बहुमत को भाग (सेक्शन) का बहुमत कहा गया। दूसरे शब्दो मे वोट प्रान्तो के अलग-अलग नही होगे, बल्कि व्यक्तियो के होगे। मत्रि-मिशन ने लदन मे प्राप्त कानूनी सलाह-द्वारा अपने मत की पुष्टि भी प्राप्त कर ली थी। फिर वक्तव्य मे कहा गया था कि "वक्तव्य के इस अश को इसी अर्थ के साथ १६ मई की योजना का एक आवश्यक अग समझा जाना चाहिए, जिससे भारतीय राष्ट्र एक ऐसा विधान तैयार कर सके, जिसे सम्राट् की सरकार पार्लमेंट मे पेश करने मे तत्पर हो सके।" इसलिए विधान-परिषद् के सभी दलो को इसे स्वीकार कर लेना चाहिए। मत्रिमडल ने काग्रेस से मत्रि-मिशन का यह मत स्वीकार करने का अनुरोध किया, जिससे मुस्लिम-लीग अपने रुख पर फिर से विचार

कर सके। साथ ही मन्त्रिमडल ने यह भी सिफारिश की कि यदि इस आधारभूत तथ्य के सम्बन्ध मे सघ-अदालत को निर्णय के लिए कहा जाय तो ऐसा तुरन्त होना चाहिए और निर्णय होने तक परिषद् के समूहो की बैठक स्थगित रखी जाय।

कांग्रेस का मत

जिस समय लन्दन से कांग्रेस तथा सिखो के प्रतिनिधि लौटे उस समय ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल का वक्तव्य प्रकाशित हो गया था। लेकिन कांग्रेस को इस सम्बन्ध मे निश्चय करने मे कुछ समय लग गया। मन्त्रिमण्डल ने कांग्रेस से वक्तव्य को स्वीकार करने का अनुरोध उचित परिस्थिति मे नही किया। यदि दो दल किसी विशेष परिस्थिति मे कोई समझौता करते है और इस समझौते का मसविदा तैयार किया जाता है तो एक दल द्वारा उस समझौते की शर्त मे परिवर्तन करना और फिर दूसरे दल से उसे स्वीकार करने का अनुरोध करना अनुचित ही कहा जायगा। ब्रिटिश सरकार ने वक्तव्य का मनमाना अर्थ लगाया और इस अर्थ को समझौते का आवश्यक अग बना दिया और फिर कांग्रेस को धमकी दी कि यदि वह इस अर्थ को स्वीकार नही करती तो ब्रिटिश सरकार विधान-परिषद्-द्वारा तैयार किया गया विधान पार्लमेण्ट के आगे उपस्थित ही नही करेगी। ब्रिटिश सरकार की यह धमकी नियम-विरुद्ध ही नही, बल्कि नैतिक दृष्टि से विश्वासघात ही था।

इस त्रिदलीय झगडे मे अन्य दो दल चाहे जो करते, लेकिन कांग्रेस का कर्तव्य बिलकुल स्पष्ट था। सवाल था कि ६ दिसम्बरवाले वक्तव्य मे झगडा सघ-अदालत के सुपुर्द करने का जो सुझाव किया गया था वैसा किया जाय या नही? पहली इच्छा यही होती थी कि ऐसा न किया जाय। परन्तु कांग्रेस कार्यसमिति ने ऐसा करने का निश्चय किया। लदन के पत्र-प्रतिनिधि-सम्मेलन मे श्री जिन्ना ने मामला सघ-अदालत के सुपुर्द किये जाने की अवस्था मे उसका निर्णय मानने से इन्कार कर दिया, क्योकि वह इसे वक्तव्य का महत्वपूर्ण अश समझते थे। फिर भी कार्य-समिति अपने निश्चय से हटी नही। कहा गया कि विधान-परिषद् के अध्यक्ष इस सम्बन्ध मे पहले एक घोषणा करेंगे, फिर परिषद् एक प्रस्ताव पास करेगी और अत मे परिषद् के अध्यक्ष सघ-अदालत के समक्ष एक अर्जी पेश करेगे।

पैथिक लारेंस का वक्तव्य

यह निश्चय ही था कि १७ दिसम्बर के दिन लार्ड पैथिक-लारेंस ने लार्ड-सभा मे भाषण करते हुए निम्न शब्द कहे —"मै यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हू कि यह सवाल ऐसा नही है, जो ब्रिटिश सरकार की राय मे सघ-अदालत के समक्ष उपस्थित करने योग्य हो। ६ दिसम्बर के वक्तव्य मे यह स्पष्ट कर दिया गया था और ब्रिटिश सरकार जो अर्थ ठीक समझती है वह भी बता दिया गया था। सरकार

का मत है कि सभी दलो को यह अर्थ स्वीकार कर लेना चाहिए। सरकार सघ-अदालत की चर्चा सिर्फ इसीलिए करती है कि विधान-परिषद इस विषय को सघ-अदालत के सुपुर्द करना चाहती है। काग्रेस ने यही मत प्रकट किया था। ऐसा तुरत होना चाहिए। मै यह विल्कुल स्पष्ट करना चाहता हूं कि सम्राट् की सरकार १६ मई के वक्तव्य के सम्बन्ध मे अपनी व्याख्या पर कायम है और सघ-अदालत से अपील करने पर भी उसका इरादा इस अर्थ से हटने का नही है। मुझे आशा है कि ऐसा समझौता हो जायगा, जिससे दोनो दलो की आशका मिट सके।"

कार्य-समिति का वक्तव्य

अव काग्रेस बडी दुविधा मे पड गयी। विधान-परिषद् के काग्रेसी दल ने यह मामला कार्य-समिति के विचार के लिए छोड दिया और कार्य-समिति ने कई दिन और रात इस समस्या पर सोच-विचार करने मे विताये। यदि ६ दिसम्वर का वक्तव्य नही माना जाता तो समूहो के लिए पृथक् विधान-परिपद् वन जाती और आसाम तथा सीमाप्रान्त के उस परिपद् मे सम्मिलित होने या न होने का भी कोई प्रभाव न पडता। इस तरह लीग का मनचीता ही होता। कार्य-समिति को इन सव वातो पर विचार करना था। मेरठ मे काग्रेस का अधिवेशन हुए अभी एक महीना भी नही हुआ था। इसमे कार्य-समिति तथा सम्राट् की सरकार के मध्य हुई सम्पूर्ण व्यवस्था को काग्रेस स्वीकार कर चुकी थी, किन्तु अव अनेक पेचीदगियो से भरी नयी परिस्थिति उपस्थित थी। काग्रेस-अधिवेशन मे हुए निश्चयो पर केवल अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी ही विचार कर सकती थी। अत कार्य-समिति ने यह मामला उसी के सुपुर्द कर दिया। ५ जनवरी १९४७ को अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी की वैठक हुई। कार्य-समिति ने २२ दिसम्वर, १९४६ को एक विस्तृत वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमे १६ मई से अव तक की घटनाओ पर विचार करते हुए यह कहा गया कि कार्य-समिति को खेद है कि ब्रिटिश सरकार ने ऐसा आचरण किया है, जो उसके अपने आश्वासनो के विरुद्ध है और जिससे भारत की बहुसख्यक जनता के मन मे सदेह उत्पन्न हो गया है। इधर कुछ समय से ब्रिटिश सरकार तथा उनके भारत-स्थित प्रतिनिधियो का रुख ऐसा रहा है, जिसमे देश की परिस्थिति की कठिनाइया और पेचीदगिया वढ गयी है। विधान-परिषद् के सदस्यो के चुनाव के इतने समय वाद उन्होने जो हस्तक्षेप किया है इससे भविष्य मे सकट उत्पन्न हो सकता है। उसमे यह भी कहा गया कि समिति विधान-परिषद् को भारत की जनता की पूर्ण प्रतिनिधि वनाने के लिए अपने प्रयत्न जारी रखेगी और उसे विश्वास है कि मुसलिम लीग के सदस्य उसे इस विषय मे सहयोग प्रदान करेगे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए समिति ने परिषद् के काग्रेसी प्रतिनिधियो को महत्वपूर्ण विषयो पर सोच-विचार के लिए अगली वैठक के लिए स्थगित करने की

सलाह दी है। उसका अब भी यही मत है कि भागों (सेक्शनों) में मत लिए जाने के सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार ने जो अर्थ लगाया है वह प्रान्तीय स्वशासन के अधिकारों के विरुद्ध है—उसी प्रान्तीय स्वशासन के, जो १६ मई के वक्तव्य में प्रस्तावित योजना का मूल सिद्धान्त है। समिति कोई ऐसी बात नहीं करना चाहती, जिससे विधान-परिषद् का कार्य सफलतापूर्वक चलने में बाधा पड़ने की सम्भावना हो। देश के सामने उपस्थित समस्याओं के महत्व को ध्यान में रखते हुए और होनेवाले निर्णयों के जो परिणाम हो सकते हैं उनका अनुमान करते हुए समिति जनवरी में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की एक बैठक दिल्ली में बुला रही है जिससे उचित निर्देश प्राप्त किया जा सके।

कांग्रेस-कमेटी का निर्णय

१९४७ का नया साल कांग्रेस और देश के लिए महान् घटनाएं लेकर शुरु हुआ। ५ जनवरी को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन यह विचार करने के लिए हुआ कि ब्रिटिश मन्त्रिमंडल का ६ दिसम्बर का वक्तव्य स्वीकार किया जाय या नहीं। यदि वक्तव्य को अस्वीकार किया जाता है तो इसका मतलब यह हुआ कि कांग्रेस १६ मई के वक्तव्य से भी सम्बन्ध त्यागती है और इस प्रकार मुस्लिम लीग को विधान-परिषद् में सम्मिलित होने का अवसर नहीं दे सकती। मुस्लिम लीग को समूह 'बी' और 'सी' का विधान तैयार करने और उनके लिए एक केन्द्र स्थापित करने में कठिनाई होती और इसीलिए वह ब्रिटेन से नयी योजना मांगती, जो ब्रिटेन उसे सहर्ष दे देता। परन्तु यदि वक्तव्य को स्वीकार करना था तब भी उतने ही बुरे खतरों का सामना होना था। उस हालत में श्री जिन्ना की हेकड़ी उठकर आसमान से छू जाती और वह कुछ और भी शर्तें मंजूर करा लेते। इनमें एक शर्त समूह की सेना रखना होती और यदि कोई विदेशी सेना आक्रमण करती तो यह उसके साथ मिलकर देश की सेना को पराजित करने की चेष्टा करती। यही नहीं, जिन्ना साहब धारा-सभा, सेना और नौकरियों में आधे स्थान अपने लिए मांगते। इन सभी परिस्थितियों को मद्देनजर रखते हुए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने बहुमत से कार्य-समिति के सुझाव को स्वीकार कर लिया और यह यहीं समाप्त होगया। कमेटी का प्रस्ताव इस प्रकार है :—

"अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी पिछले नवम्बर के मेरठ-अधिवेशन से अब तक होनेवाली घटनाओं, ब्रिटिश मन्त्रिमंडल के ६ दिसम्बर के वक्तव्य और कार्य-समिति के २२ दिसम्बर, १९४६ वाले वक्तव्य पर विचार करने के बाद कांग्रेस को निम्न सलाह देती है :—

(१) अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी कार्यसमिति के २२ दिसम्बर, १९४६ के वक्तव्य की पुष्टि करती है और उसमे प्रकट किये विचारो से सहमति प्रकट करती है।

(२) यद्यपि काग्रेस विवादास्पद प्रश्न की व्याख्या का मामला सघ-अदालत केषपुर्द करने के पक्ष मे हमेशा से रही है, तथापि ब्रिटिश सरकार की हाल की घोझणाओ को मद्देनजर रखते हुए अब ऐसा करना बिलकुल निरुद्देश्य और अवाछनीय समझती है। यदि सम्बन्धित दल निर्णय को स्वीकार करने को तैयार हो और यह आधार मानने को तैयार हो तभी यह मामला सघ-अदालत के सुपुर्द किया जा सकता है।

(३) अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी का यह दृढ मत है कि स्वतत्र भारत के विधान का निर्माण भारतीय जनता-द्वारा और अधिक से अधिक विस्तृत मतैक्य के आधार पर होना चाहिए। इस कार्य मे किसी बाहरी शक्ति का हस्तक्षेप नही होना चाहिए और किसी प्रान्त-द्वारा दूसरे प्रान्त अथवा प्रान्त के भाग पर दवाव न डालना चाहिए। अखिल भारतीय काग्रेस महसूस करती है कि कुछ सूबो मे जैसे आसाम, बलोचिस्तान, सीमाप्रान्त, और पजाब के सिखो के मार्ग मे ब्रिटिश मिशन के १६ मई, १९४६ वाले वक्तव्य से, और खासकर ६ दिसम्बर, १९४६ वाले वक्तव्य की व्याख्या-द्वारा, कठिनाइया उपस्थित की गयी है। जिन लोगो के साथ यह जबर्दस्ती की जा रही है उन पर दवाव डालने मे काग्रेस हिस्सा नही ले सकती। यह एक ऐसा सिद्धान्त है, जिसे खुद ब्रिटिश सरकार ने मजूर किया है।

(४) अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी इस बात के लिए उत्सुक है कि विधान-परिषद् स्वाधीन भारत के लिए विधान बनाने का कार्य सभी सम्बन्धित दलो की सद्भावना से करे, जिससे व्याख्या की विभिन्नता से उठनेवाली कठिनाइयो को दूर किया जासके, और परिषद् सेक्शनो मे अनुसरण की जानेवाली कार्य-पद्धति के विपय मे भी ब्रिटिश सरकार की व्याख्या को स्वीकार कर ले। परन्तु यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि इसके कारण किसी प्रान्त पर अनुचित दवाव न पडना चाहिए और साथ ही पजाब मे सिखो के अधिकार भी सुरक्षित रहने चाहिए।

लीग का निर्णय

यद्यपि आशा यह की जाती थी कि मुस्लिम लीग ६ जनवरी को पास किये गये काग्रेस के प्रस्ताव पर विचार करने के लिए अपनी बैठक कुछ पहले बुलायेगी, तो भी लीग की बैठक विधान-परिषद् होने की तारीख के ९ दिन बाद २९ जनवरी को बुलायी गयी। इससे स्पष्ट था कि लीग का इरादा विधान-परिषद् मे सम्मिलित होने का नही था।

लीग की कार्य-समिति ने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के ६ जनवरी के प्रस्ताव को बेईमानी से भरी चाल और शब्दाडम्बर बताया, जिसका उद्देश्य ब्रिटिश सरकार, मुस्लिम लीग और लोकमत को धोखा देना था। आरोप यह था कि सिद्धातो तथा कार्य-पद्धति के विषय मे जो निश्चय किये गये हैं वे १६ मई, १९४६ के वक्तव्य के क्षेत्र से परे हैं और कांग्रेस ने विधान-परिषद् को जैसा रूप दिया है वैसा देने का मंत्रि-मिशन का उद्देश्य कदापि न था। लीग की कार्य-समिति ने सम्राट् की सरकार से यह घोषणा करने को कहा कि मंत्रि-मिशन की योजना असफल हुई है। लीग ने यह भी मत प्रकट किया कि विधान-परिषद् के लिए जो चुनाव हुए हैं वे अनियमित हैं और परिषद् मे हुई कार्यवाही और निश्चय भी अनियमित ही हैं।

एटली का वक्तव्य

२० फरवरी १९४७ को हाउस आफ कामन्स मे बोलते हुए ब्रिटिश प्रधान-मंत्री श्री क्लेमेंट एटली ने जो कुछ कहा वह सक्षेप में इस प्रकार है —

"बहुत समय से ब्रिटिश सरकार की नीति रही है कि भारत मे स्वायत्त शासन की स्थापना कर दी जाय। इसी नीति के अनुसार भारतीयो को अधिकाधिक दायित्व सौंपा जाता रहा है और आज नागरिक शासन तथा सेनाओ की बागडोर बहुत हद तक भारतीय असैनिक तथा सैनिक अफसरो के ही हाथ है। सम्राट् की सरकार की धारणा है कि यही नीति उचित है। मंत्रि-मिशन के उद्देश्य तथा उसके कार्य का उल्लेख करते हुए उन्होने कहा कि सम्राट् की सरकार के लिये यह खेद का विषय है कि अभी तक भारतीय दलो मे मतभेद है जिसके कारण विधान-परिषद् का कार्य सुचारु रूप से चलने मे बाधाए उपस्थित हो रही हैं। सम्राट् की सरकार की यह इच्छा है कि मंत्रि-मिशन की योजना के अनुसार, भारत के विभिन्न दलो की स्वीकृति से बनाये गये विधान-द्वारा निश्चित अधिकारियो को अपना दायित्व सौंप दिया जाय। किन्तु दुर्भाग्यवश ऐसे विधान तथा अधिकारियो का अस्तित्व इस समय सम्भव नही मालूम होता। वर्तमान अनिश्चित स्थिति विपद की आशकाओ से परे नही है और ऐसी स्थिति अनिश्चित समय तक रहने भी नही दी जा सकती। सम्राट् की सरकार स्पष्ट रूप से अपने इस निश्चय को सूचित कर देना चाहती है कि वह जून १९४८ तक जिम्मेदार भारतीयो के हाथ मे शक्ति सौप देने के कार्य को सम्पन्न कर देगी। इसलिये यह आवश्यक है कि सब दल आपसी मतभेदो को भुलाकर अगले वर्ष आनेवाले भारी उत्तरदायित्व को सँभालने के लिये तैयार हो जायँ।"

आगे उन्होने कहा कि यदि निश्चित की गयी तिथि तक सब प्रकार से प्रतिनिधित्वपूर्ण परिषद्-द्वारा ऐसा विधान न बनाया जा सका तो सम्राट् की सरकार

को यह विचार करना पडेगा कि ब्रिटिश भारत की केन्द्रीय सरकार का दायित्व पूरे का पूरा, ब्रिटिश भारत की किसी केन्द्रीय सरकार को या विभक्त करके वर्तमान प्रान्तीय सरकारो को, अथवा किसी ऐसे ढग से जो सर्वोचित तथा भारतीयो के लिए सर्वाधिक लाभपूर्ण हो, सौपा जाय। किन्तु यह निश्चित है कि ज्यो-ज्यो दायित्व सौपने का कार्य आगे बढता जायगा, भारत-सरकार के १९३५ के कानून की शर्तो को निभाना अधिकाधिक कठिन होता जायगा। निश्चित समय पर पूर्ण रूप से दायित्व सौपने का विधान लागू हो जायगा।

भारतीय रियासतो के बारे मे उन्होने कहा कि सम्राट् की सरकार अपनी सार्वभौमसत्ता (प्रभुसत्ता) के अतर्गत भारतीय रियासतो को ब्रिटिश भारत की किसी भी सरकार के सुपुर्द नही करना चाहती। अतिम रूप से दायित्व सौपने से पहले सम्राट् की सार्वभौम सत्ता का अन्त कर देने की कोई इच्छा नही है, किन्तु यह विचार किया जा रहा है कि इस अन्तर्काल मे व्यक्तिगत रूप से सम्राट् हर देशी रियासत से पारस्परिक परामर्श-द्वारा अपने सम्बन्ध स्थिर कर ले।

नए वाइसराय की नियुक्ति के सबध मे उन्होने कहा कि फील्ड-मार्शल माननीय वाइकाउन्ट वेवल को १९४३ मे वाइसराय नियुक्त किया गया था। यह स्वीकार किया गया था कि यह नियुक्ति युद्धकाल के लिये होगी। ऐसे कठिन समय मे लार्ड वेवल ने इस उच्च पद का कार्य बडी लगन तथा निष्ठा से निभाया है। जब भारत नवीन तथा अतिम स्थिति को प्राप्त होने जा रहा है, यह सोचा गया है कि यह समय इस युद्धकाल की नियुक्ति को समाप्त करने के लिये उपयुक्त है। सम्राट् ने एडमिरल वाइकाउन्ट माउटबेटन की नियुक्ति लार्ड वेवल के स्थान पर प्रसन्नतापूर्वक की है जिनको भारत की भावी समृद्धि तथा सम्पन्नता को दृष्टिकोण मे रखते हुए भारत-सरकार का दायित्व भारतीय हाथो मे सौपने का भार दिया जायगा। यह परिवर्तन मार्च मास मे सम्पन्न होगा। सभा को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि सम्राट ने प्रसन्नतापूर्वक वाइकाउन्ट वेवल को अर्ल की पदवी देना स्वीकार किया है।"

वक्तव्य की आलोचना

यह वक्तव्य भी सदा की तरह अस्पष्ट था। इसमे अनेक विकल्प इस तरह रखे गये थे, जिससे जिन व्यक्तियो को सत्ता हस्तातरित की जाय वे विकल्पो के अनेक अर्थ लगा सके। काग्रेस आशा कर सकती थी कि देश की सबसे बडी राजनीतिक सस्था के रूप मे, और एक ऐसी सस्था के रूप मे जिसका अल्पसख्यक समुदायो से (जिनमे मुसलमान भी थे) गहरा सम्बन्ध था, उसे विशेष महत्व मिलेगा। उधर लीग 'पूर्ण प्रतिनिधित्व' शब्दो के महत्व पर निर्भर थी और उसको आशा थी कि जब तक वह विधान-परिषद् मे भाग नही लेगी तब तक परिषद् को

"पूर्ण-प्रतिनिधित्व" नही कहा जा सकेगा और इस तरह लीग के दावे को पूरी तरह माना जायगा। इसके अतिरिक्त रियासतो का प्रोत्साहन यह कह कर बढाया गया कि सत्ता अतिम रूप से हस्तातरित करने तक प्रभु-शक्ति की प्रणाली का अन्त नही किया जायगा और दरमियानी काल में रियासतो की शासक-शक्ति मे नये सम्बन्ध कायम किये जायगे। इस प्रकार वक्तव्य के कुछ भाग अस्पष्ट थे, फिर भी कांग्रेस को वह वुद्धिमत्तापूर्ण और साहसिक जान पडा। जो भी हो विवान-परिषद् को अब अधिक तेजी से काम करना था। सत्ता-हस्तातरण के लिए आवश्यक कार्रवाई तुरन्त आरम्भ हो जानी थी। उस समय यह सब बडा ही आकर्षक जान पडा।

झगड़े और रक्तपात

इग्लेड के कठोर नीतिज्ञो तथा सीधे-सादे हिन्दुस्तानियो की यह आशा बलवती थी कि यह काम इतने सुचारु रूप से किया जायगा कि दोनो पक्षो को सम्पूर्ण सतोष प्राप्त होगा, परन्तु यह आशा पूरी न हो सकी। भारत मे खीचा-तानी क्या, आपस की मार-काट से खून की नदिया वह गई और लूट तथा आग से वह तवाही हुई कि बयान नही किया जा सकता। मुस्लिम लीग की तरफ से पजाब, सिध तथा सीमाप्रात मे अपना शासन जामाने की चेष्टा, खुल्लम-खुला निर्लज्जता से अपनी ताकतो को सजाना, मानो युद्ध-क्षेत्र मे मौजूद हो, आसाम की सरहद पर तीन ओर से आक्रमण आदि इस सस्था की नई रण-कला के प्रत्यक्ष प्रमाण थे, और इस बात के परिचायक थे कि पाकिस्तान बलपूर्वक कायम किया जायगा।

सीमाप्रान्त के दगो मे जानो का भारी नुकसान, और हिन्दुओ-सिखो का बलात् मुसलमान बनाया जाना, उस समय दिखलाया गया जबकि वाइसराय आने ही वाले थे। श्री मेहरचन्द खन्ना, मन्त्री इन्फार्मेशन ने पत्रकारो की कान्फरेस मे बतलाया, कि दिसम्बर से अप्रैल तक, प्रात भर के दगो मे ४०० हिन्दू और सिख मारे गये, १५० घायल हुए और १६०० घरो तथा ५० हिन्दू या सिख धर्मस्थानो को जलाया गया। ३०० से अधिक को जबरन मुसलमान बनाया गया और ५० को भगा ले जाया गया। उन्होने बतलाया कि मुस्लिम नेशनल गार्ड्स ने बिहार से लौट कर, फ्रण्टियर के मुसलमानो को कुरान के फटे पन्ने और इन्सानी खोपडिया दिखला कर, तथा "बिहार का बदला फ्रण्टियर लेगा" और "खून का बदला खून" के नारे लगा कर मुसलमानो को भडकाया।

हिन्दुस्तान के लिए, पाकिस्तान कुछ नई चीज नही थी। १९०६ से शुरु करके, हर वह कदम जो कि मुस्लिम अधिकारो के लिए उठाया गया, उन्हे देश से दूर ही ले गया और इससे एकता की सम्भावना नष्ट हो गई। किन्तु अन्तिम कदम, जिससे कि तख्ता पलट जाय, विचाराधीन रहा। दुख से कहना पडता है

कि बल का प्रयोग किया गया। दिल्ली मे बडी भयानक खबरे गश्त लगा रही थी और फ्रण्टियर तथा पजाब से छुपे-छुपे आनेवाली खबरे चौकानेवाली थी। १९४२ मे, जैसे हिन्दुस्तान पर जापानी हमले का आतक छाया था, वैसे ही उत्तर से हर समयआक्रमण की आशका थी।

गांधीजी का वक्तव्य

किन्तु यह तनातनी महात्मा गाधी के उस प्रार्थना के वादवाले भाषण से, जो उन्होने नये वाइसराय से मिलने के बाद ४ मई १९४७ को दिया था, कुछ हद तक कम हो गई। भगी कालोनी नई दिल्ली मे प्रार्थना के बाद बोलते हुए उन्होने कहा कि वाइसराय ने उन्हे यकीन दिलाया है कि वह हिन्दुस्तान मे इसलिए आये है कि शान्तिपूर्वक सब शासन हिन्दुस्तानियो के हाथो मे सौप दे। गाधीजी ने यह भी कहा, कि उनकी यह दिली ख्वाहिश है, कि हिन्दुस्तान एक रहे और सब लोग चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय के हो, प्रेमपूर्वक मिलकर रहे। यदि, वाइसराय की कोशिशो के बावजूद, इस बीच झगडे बद न हुए तो वह फौजी ताकत का प्रयोग करने मे भी नही चूकेगे। उनकी इच्छा है कि हिन्दुस्तानी बीती को भूल जायँ और अग्रेजो की नीयत मे विश्वास रखे कि वे, यदि हो सका तो, जाने से पहले, हिन्दू-मुसलमानो मे समझौता करवा देगे। ऐसी स्थिति मे जबतक वाइसराय पर विश्वासघात का इलजाम साबित न हो जाय, जनता को उनकी नेकनीयती पर भरोसा करना चाहिये। यदि हिन्दू और मुसलमान लडते ही रहे तो इसका यह मतलब होगा कि वे अग्रेजो को यहाँ से नही भेजना चाहते। अग्रेज जून १९४८ तक जरूर चले जायँगे। बेहतर होगा, यदि परस्पर-दोषारोपण बद किया जाय।

पंजाब और बंगाल का विभाजन

पजाब और सीमाप्रात मे, मार्च-अप्रैल १९४७ मे हिंसा की जो आधी उठी और तीव्र हुई, उसका उद्देश्य मौजूदा मन्त्रि-मडलो को, वैध और कानूनी विधि के बजाय बलपूर्वक उखाड फेकना था, किन्तु मनसूबे पूरे न हुए। तिस पर भी, लूट-मार, कत्ल और खून की वारदातो ने सारे देश को हिला दिया और अत मे काग्रेस की कार्यकारिणी ने पजाब के दो प्रान्त बनाये जाने का प्रस्ताव पास कर दिया ताकि हिन्दू-बहुसख्यक विभाग को विरोधियों के अन्याय से सुरक्षित बनाया जाय। ज्योही यह प्रस्ताव मार्च १९४७ के मध्य मे पास हुआ, त्योही बगाल मे इसकी प्रतिक्रिया प्रत्यक्ष हो गई और बगाल को बाँट देने की माँग की गई। बंगालियों ने यह अनुभव किया कि ६३० लाख की आबादी मे मुसलमानो की कुल मिलाकर ७० लाख की अधिक सख्या होने से सारे प्रान्त को सदा के लिए मुस्लिम लीग के अधीन नही छोडा जा सकता। कुदरती तौर पर यह सवाल उठा, कि पच्छिमी

बंगाल के हिन्दू, पूरबी बंगाल के हिन्दुओं की अवस्था को, जो कि अत्यधिक मुस्लिम बहुमत के रहम पर रह जायँगे, किस तरह शान्ति और धीरज से सहन करेंगे? तो इसका उत्तर मिला कि पच्छिमी बंगाल के मुस्लिम अल्पसंख्यक जिस तरह दिन गुजारेंगे, उसी तरह पूरबी बंगाल की हिन्दू अल्पसंख्या रहेगी।

भारत छोड़ने की तैयारी

इन घटनाओं से फिर यह शक होने लगा कि ब्रिटेन ने जो भारत छोड़ जाने की घोषणा की है उसमे सचाई कहां तक है। अगर वे सच्चे है तो फिर इस देश के टुकडे कर जाने का इरादा क्यो रखते है? फिर भी पिछले तीन महीनो मे जो परिवर्तन हुए उनसे यही प्रतीत होता था कि अंग्रेजो की यह घोषणा सच्ची और गम्भीर है। और यही तथ्य, कि हिन्दुस्तान भर के अंग्रेजो की गणना की जा रही है ताकि उन्हे वापस भेजने का प्रबन्ध किया जाय, जनता के मन से सदेह दूर करने को काफी था। सिविल, मेडिकल तथा पुलिस विभागो को समेट देने की योजना को, जो कि हिन्दुस्तान को ह्वाइट हाल से मालूम हुई है, यो ही नही उडाया जा सकता। इसे चालाकी की चाल नही कही जा सकती। १५० साल मे, प्रथम बार हिन्दुस्तानी फौज का बनाया जाना कुछ मजाक नही है। रियासतो मे, एजण्ट-जनरल का ओहदा हटाये जाने के साथ-साथ पोलिटिकल डिपार्टमेट का समेटा जाना, और रेजीडेंटो के अधिकारो का ह्रास इत्यादि, ऐसे लक्षण है, जिनसे अंग्रेजी दुकान के उठाये जाने का निश्चय जाहिर होता है। रुपये का पिंड स्टर्लिंग से बहुत पहले छुटाया जाना चाहिये था, किन्तु यह ब्रिटिश साम्राज्य के प्रतिकूल होने से नही हो सका था। शिलिंग कमेटी तथा कोल कमेटियो ने बडी प्रबल रिपोर्टें पेश की है, जिनसे अब हिन्दुस्तान को इग्लैड का पुछल्गा नही बना रहना होगा।

कांग्रेस-समिति की बैठक

जब कि परिस्थिति ऐसी थी, तब यह घोषणा की गई कि वाइसराय ने २ मई को लार्ड इस्मे के हाथ ब्रिटिश मन्त्रिमडल को अपनी रिपोर्ट भेज दी है। इस प्रकार कैबिनेट-द्वारा हिन्दुस्तान को अधिकार हस्तातरित करने का ऐलान फिर वही १६ मई को किया गया जैसा कि ठीक एक वर्ष पूर्व किया गया था। किन्तु पार्ल्यामेंट के अवकाश के कारण, यह महत्वपूर्ण काम २ जून १९४७ तक मुल्तवी किया गया।

जब निश्चित तिथि आई तब २ जून को वाइसराय ने थोडे-से नेताओ को दावत दी और ३ जून को माउण्टबेटन-योजना घोषित हुई। इसके बाद पं० नेहरू, मि० जिन्ना तथा सरदार बलदेवसिंह के रेडियो-भाषण हुए।

३ जून १९४७ के अंग्रेजी सरकार के वक्तव्य पर विचार करने के लिए, विधान-परिषद्, करजन रोड नई दिल्ली में, आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी का एक विशेष अधिवेशन १४-१५ जून १९४७ को दिन के २ बजे हुआ। सभापति आचार्य कृपलानी और २१८ सदस्य उपस्थित थे।

कांग्रेस कार्यकारिणी-द्वारा सिफारिश किये गये प्रस्ताव का मसविदा श्री गोविंदवल्लभ पंत ने पेश किया और मौलाना अबुलकलाम आजाद ने उसका अनुमोदन किया। इस प्रस्ताव के संबंध में बहस समाप्त होने पर, मत लिया गया। असली प्रस्ताव २९ के विरुद्ध १५३ के बहुमत से पास हुआ। कुछ सदस्य तटस्थ रहे। प्रस्ताव यह था —

आल इंडिया कांग्रेस कमेटी ने, जनवरी की पिछली बैठक के बाद की घटनाओं पर पूरा-पूरा ध्यान दिया है। खासकर, ब्रिटिश सरकार के २० फरवरी तथा ३ जून १९४७ के वक्तव्यों पर गहरा विचार किया है। इस बीच, कार्यकारिणी द्वारा पास किए गए प्रस्तावों का, यह कमेटी अनुमोदन तथा समर्थन करती है।

कमेटी, ब्रिटिश सरकार के इस निश्चय का स्वागत करती है कि आगामी अगस्त तक, सारे अधिकार पूर्णतया हिन्दुस्तानियों को सौंप दिये जायँगे।

ब्रिटिश कैबिनट-मिशन के १६ मई १९४६ के वक्तव्य तथा बाद में ६ दिसम्बर १९४६ की उस पर की गयी व्याख्याओं को कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया है और मिशन की योजना के अनुसार विधान-परिषद् कायम करके, उस पर अमल कर रही है। विधान-परिषद ६ मास से अधिक समय से अपना काम कर रही है। परिषद् ने, अपना ध्येय हिन्दुस्तान के लिए स्वतंत्र लोकतंत्र राज घोषित किया है। इसके अलावा, प्रत्येक हिन्दुस्तानी के लिए, समान बुनियादी अधिकारों और सुअवसरों के आधार पर, आजाद हिन्दुस्तान संघ का विधान बनाने में भी विधान-परिषद् ने काफी उन्नति कर ली है।

१६ मई की योजना को मुस्लिम लीग ने अस्वीकार किया था और विधान-सभा में शामिल होने से भी उसने इन्कार किया था। इसको दृष्टि में रखते हुए तथा कांग्रेस की इस नीति के अनुसार कि, "यह किसी प्रदेश के लोगों को हिन्दुस्तानी संघ में शामिल हो जाने पर बाधित नहीं करेगी," आल इंडिया कांग्रेस कमेटी ने, ३ जून की घोषणा में लिखी तजवीजों को मंजूर कर लिया है, जिसमें जनता का मत जानने की विधि भी लिखी है।

३ जून, १९४७ की तजवीजों के अनुसार सम्भवतः हिन्दुस्तान के कुछ भाग इससे अलहदा हो जायँ। बड़े खेद के साथ, मौजूदा हालात में आल इंडिया कांग्रेस कमेटी इस सम्भावना को मान रही है।

गो आजादी निकट है, मगर समय भी विकट है। आजादी के दीवानों से, आज के हिन्दुस्तान की परिस्थिति, सतर्क तथा संगठित रहने की मांग कर रही

है। आज के सकट-समय मे, जबकि देशद्रोही तथा विच्छेद करनेवाली शक्तिया हिन्दुस्तान और इसकी जनता के हितो को आहत करने की चेष्टा कर रही है, आल इडिया काग्रेस कमेटी, आम जनता और विशेषकर प्रत्येक काग्रेसी से तकाजा करती है, कि वह अपने छोटे-मोटे झगडे भूलकर सतर्क और सगठित हो तथा हिन्दुस्तान की आजादी को, हर उस व्यक्ति से जो इसे हानि पहुँचाना चाहता है, अपनी पूरी ताकत लगाकर सुरक्षित रखने के लिए तत्पर हो जाय।

इसके बाद हिन्दुस्तानी रियासतो-विषयक प्रस्ताव जिसकी सिफारिश कार्य-कारिणी ने की थी, श्री पट्टाभि सीतारामय्या द्वारा पेश किया गया और शकरराव देव ने उसका समर्थन किया। प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुआ। प्रस्ताव सक्षेप मे इस प्रकार है —

"आल इडिया काग्रेस कमेटी, विधान-परिषद् मे बहुत-सी रियासतो के शामिल होने का स्वागत करती है। कमेटी आशा करती है कि शेष सभी रियासते भी, आजाद हिन्दुस्तान के विधान-निर्माण मे, जिसके अनुसार रियासती इकाइया सघ मे सम्मिलित होनेवाली दूसरी इकाइयो की तरह बराबर की भागीदार होगी, अपना-अपना सहयोग देंगी।

"जो वैधानिक तब्दीलिया की जा रही है उनमे रियासतो की स्थिति, कैबिनट मिशन के मेमोरेडम ता० १२ मई, १९४६ के वक्तव्य मे निर्धारित कर दी गयी है। ३ जून १९४७ के वक्तव्य ने इस स्थिति मे कोई तब्दीली नही की। इन दस्तावेजो के अनुसार हिन्दुस्तानी सघ में ब्रिटिश भारत और रियासते दोनो शामिल होगी। सर्वोपरि सत्ता, अधिकार हस्तारित होने पर समाप्त हो जायगी, और यदि कोई रियासत सघ मे सम्मिलित नही होती, तो वह किसी अन्य प्रकार के राजनीतिक नाते से बँध जायगी।

"आल इडिया काग्रेस कमेटी, हिन्दुस्तान की किसी रियासत के स्वतत्र हो जाने का हक तस्लीम नही करती, जिससे कि वह शेष भारत से अलग-थलग रह सके। इसका मतलब हिन्दुस्तानी इतिहास की गति तथा आज के हिन्दुस्तानियो की वास्तविक स्थिति से इन्कार करना होगा।

"आल इडिया काग्रेस कमेटी को भरोसा है कि राजा लोग, आज की स्थिति को भलीभाति समझकर, अपनी प्रजा तथा समस्त भारत के हितार्थ, अपनी प्रजा के हमराह प्रजातत्र की इकाइया बनकर हिन्दुस्तानी सघ मे सम्मिलित होगे।"

कृपलानीजी का भाषण

इसके बाद काग्रेस के प्रधान ने अपना भाषण दिया। नीचे हम उनके भाषण के अन्तिम भाग का साराश देते है —

"जब मै इस सस्था का प्रधान बना था तब गाधीजी ने अपने एक प्रार्थना-

भाषण में कहा था कि मुझे न केवल कांटों का ताज सिर पर धारण करना होगा बल्कि कांटों की सेज पर भी लेटना पडेगा। मैंने तब यह अनुभव नहीं किया था कि सचमुच वही होगा। १६ अक्टूबर को मेरे प्रधान चुने जाने की घोषणा हुई और १७ ता० को मुझे विमान द्वारा नोआखली जाना पडा। इसके बाद मुझे बिहार जाना पडा और अभी-अभी पंजाब भी गया था। दोनों सम्प्रदाय वाले बढबढ़ा कर हिंसा और मारकाट कर रहे हैं और हाल की भिडन्त में जिस प्रकार की संगदिली और जुल्म की वारदातें हुई हैं उनकी मिसाल पहले कहीं नहीं मिलती। मैंने एक कुआँ देखा है जिसमें १०७ स्त्री-बच्चों ने अपनी आबरू बचाने के लिए छलांग लगाकर जान दे दी। एक दूसरी जगह, एक धर्मस्थान में पुरुषों ने ५० स्त्रियों को इसी कारण अपने हाथों वध कर डाला। मैंने एक घर में हड्डियों के ढेर देखे हैं, जिसमें ३०७ व्यक्तियों—अधिकांश स्त्री-बच्चों को—आक्रमण-कारियों ने बंद कर जिन्दा जला डाला था। इन भयानक दृश्यों को देखकर उस समस्या के विषय में मेरे विचारों पर बहुत प्रभाव पडा है। कुछ सदस्यों ने हम पर इलजाम लगाया है कि हमने भयभीत होकर ही यह निश्चय किया है। मैं इस आरोप के तथ्य को कबूल करता हूँ, मगर उस मतलब से नहीं जिसके अधीन कि यह आरोप किया गया है। हमें जानों की क्षति या विधवाओं के विलाप या अनाथों के क्रन्दन या अनेक घरों के जलाये जाने का भय नहीं है, बल्कि भय इस बात का है कि यदि हम इस प्रकार एक-दूसरे से बदला लेने के लिए वार करते रहे तो अन्त में हम नर-भक्षी राक्षस या उनसे भी ज्यादा पतित हो जायँगे।

मैं पिछले ३० साल से गांधी जी की संगति में रहा हूँ। उनके प्रति मेरी वफा-दारी और श्रद्धा कभी डांवांडोल नहीं हुई। यह निजी नहीं वरन् राजनीतिक वफादारी है। जब-जब उनसे मेरा मतभेद भी हुआ तब तब मेरी विशाल तर्कसंगत युक्तियों से उनका राजनीतिक सहज-ज्ञान मुझे अधिक ठीक प्रतीत हुआ। आज भी, मैं समझता हूँ कि गांधीजी अपनी श्रेष्ठतम निर्भीकता के साथ ठीक हैं और मेरा मत दोषयुक्त है। तो फिर मैं उनके साथ क्यों नहीं हूँ? इसका कारण यह है

कि यह हो रहा है। अहिंसापूर्ण असहयोग की तरह, कोई निश्चित पथ नहीं है कि जिसपर चलकर हम अपनी मंजिल पर पहुंच जायं।

इस हृदय-विदारक हालात में, मैंने हिन्दुस्तान का विभाजन स्वीकार कर लिया है। आप जानते होंगे कि मेरा जन्मस्थान, परिवार और घर-बार पाकिस्तान में है। मेरे बन्धु-बाधव सभी वहीं रह रहे हैं। सन् १९०६ में जब मैंने राजनीतिक क्षेत्र में कदम रक्खा था तब मैंने कभी नहीं सोचा था कि मैं हिन्दुस्तान के किसी भाग-विशेष की आजादी की खातिर काम कर रहा हूं। मैं तो समस्त भारत के लिए काम कर रहा था। इस देश का प्रत्येक नदी-नाला, कोना-कोना मेरे लिए पवित्र है और इस कृत्रिम बँटवारे के बाद भी वह मेरे लिए वैसा ही बना रहेगा।

कहा जाता है कि इस फैसले से साम्प्रदायिक दंगे-फिसाद बंद नहीं होंगे और न हो सकेंगे। हां, इस समय तो ऐसा ही प्रतीत हो रहा है कि शैतान की गुड्डी चढ़ी है। तो फिर भविष्य में ये दंगे क्योंकर सँभाले जायँगे? क्या यह जहरीला चक्र और भी वेग पकड़ लेगा जैसा कि अभी-अभी बदला लेने से बढ़ा है? इस प्रश्न का उत्तर मैं अपने मेरठ के सभापति के भाषण में दे चुका हूं। मैंने तभी कहा था कि केन्द्र ढीला पड़ जाने से प्रान्तों में मन-मानी होने लगी है। बिहार-सरकार को चाहिए था कि बंगाल-सरकार को चेतावनी दे दे कि यदि बंगाल के हिन्दुओं पर अत्याचार होते रहे तो बिहार-सरकार अपनी नेकनीयती के बावजूद बिहारी मुसलमानों की जान-माल की रक्षा नहीं कर सकेगी। इसका मतलब यह होता कि मामला ऊँचे अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में पहुँच जाता जहां सुव्यवस्थित सरकारें इस-पर एक दूसरे से बातचीत करतीं। तब यह मामला उत्तेजित बलवाइयों के हाथों से, जिनके नजदीक नैतिकता या कानून या संयम तुच्छ होता है, निकल जाता। दंगाइयों का जोश अन्धा होता है। अन्तर्राष्ट्रीय अहिंसा भी किसी विधि से की जाती है। मुझे यकीन है कि १५ अगस्त के बाद हिन्दुस्तान की बाग-डोर जिनके हाथों में होगी वे देखेंगे कि पाकिस्तान के अल्पसंख्यक हिन्दुओं के साथ अन्याय नहीं होता। यदि मेरे इन शब्दों का हिन्दुस्तान के पाकिस्तान विभाग पर कुछ भी असर हो सकता है तो मैं जरूर कहूँगा कि "दोनों विधान परिषदों को एक संयुक्त कमेटी नियुक्त करनी चाहिये जो कि अल्पसंख्यकों के अधिकारों का निर्णय करे।" इस प्रकार व्यक्तियों और दंगाइयों के जन-समूह और उसके बदले की आग से इसकी रक्षा हो सकेगी।

हमने देशी राज्यों के सम्बन्ध में अभी-अभी प्रस्ताव पास किया है। इस सिल-सिले में मैं एक बात सुझाना चाहूंगा। जिन रियासतों ने अभी तक अपने प्रतिनिधि विधान-परिषद् में नहीं भेजे हैं उनकी प्रजा ऐसे प्रतिनिधियों को स्वयं भेज दे। जहां-जहां व्यवस्थापिका सभाओं का अस्तित्व है वहां-वहां वे एसेम्बलियां ब्रिटिश भारत की एसेम्बलियों की ही भाँति एकाकी हस्तांतरण-मत पद्धति-द्वारा प्रति-

निधियो का चुनाव करले। जहा ऐसी एसेम्बलिया नही है वहा प्रतिनिधियो के चुनने के लिए अन्य उपाय काम मे लाए जा सकते है। बुनियादी अधिकारो की कमेटी मे हमने सारे देश के लिये एक ही सामान्य नागरिकता मान ली है। प्रत्येक रियासत का नागरिक हिन्दुस्तान का नागरिक है और उसे भारतीय विधान-परिषद् मे प्रतिनिधित्व करने का अधिकार है। रियासत के बाहर से आया हुआ दीवान नागरिको का यह अधिकार सीमित नही कर सकता। हमे भारत का विधान बनाने मे रियासती प्रजाजन के परामर्श की जरूरत है।

फैसले के रूप मे मै कहूँगा कि हमे उस आजादी से ही सतुष्ट नही हो जाना चाहिये जो शीघ्र ही मिलनेवाली है। हमे उस एकता के लिए अपनी सारी शक्ति लगा देनी चाहिए जिसे हमने शीघ्र स्वतत्रता प्राप्त करने के प्रयत्न मे खो दिया है। यह काम केवल भारत को सुदृढ, सुखी, गणतत्रात्मक और समाजसत्तावादी राज्य बनाकर किया जा सकता है। इस प्रकार का भारत अपने बिछुडे बच्चो को फिर अपनी गोद मे बिठा सकता है। इस काम मे उन सभी सच्ची सेनाओ और बलिदानो की आवश्यकता होगी जिनकी हमे आजादी की लडाई मे जरूरत थी। हमे सभी शक्ति की भूखी राजनीति का परित्याग कर देना चाहिए। हा, उस त्याग, कठिनाई और स्वेच्छापूर्ण अकिचन की गौरवपूर्ण परम्परा का परित्याग नही करना चाहिए जिसका निर्माण हमने जेल जाकर, लाठी-प्रहार सहकर और गोलियॉ खाकर किया है। हमे फिर अपने को उस नए कार्य मे लगा देना चाहिए जो स्वतत्रता-प्राप्ति के समान ही महत्वपूर्ण है, क्योकि हमने जो आजादी हासिल की है वह तबतक पूरी नही हो सकती जब तक भारत की एकता न स्थापित हो जाय। विभाजित भारत तो गुलाम बन जायगा। इसलिए हम दूसरी गुलामी से जहा तक शीघ्र हो सके दूर हो जायँ। हमे स्वभाग्य-निर्णय के जो सुअवसर प्राप्त है उन्हे अब हमारे भारत मे एकता कायम करने के उत्कृष्ट ध्येय मे लगा देना चाहिए। इस कार्य मे ईश्वर हमारी मदद करे।"